Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३७ | Reg. No. A-708
भाग ७ | मेष, १९७५. अप्रेल १९१८ | संख्या १
Vol. VII. | No. 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

सौर-लटकाङ्ग

मेष सं० १९७५, चैत्र सं० १९७५, अप्रेल १९१८।

वार					
रविवार	१ ४ चै. कृ. १४ अ.	८ ११ २१	१५ २ २८	२२ ९ ५	२९ २ १२
सोमवार	२ ५ १५	९ १२ २२	१६ ३ २९	२३ १० ६	३० ३ १३
मंगलवार	३ ६ १६	१० १२ २३	१७ ४ ३०	२४ १२ ७	३१ ४ १४
बुद्धवार	४ ७ १७	११ १३ २४	१८ ५ १मई	२५ १३ ८	
बृहस्पतिवार	५ ८ १८	१२ १४ २५	१९ ६ २	२६ १४ ९	
शुक्रवार	६ ९ १९	१३ १५ २६	२० ७ ३	२७ ३० १०	
शनिवार	७ १० २०	१४ १ शु० २७	२१ ८ ४	२८ १ वै० कृ० ११	

नोट—बीचमें सौर तिथि, बाएं को चान्द्र तिथि, और दाएं को अंग्रेज़ी तिथ दी गई है।

यह दवा बालकोंको सब प्रकारके रोगों-से बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है। क़ीमत फ़ी शीशी ॥।)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा क़ीमत फ़ी शीशी ।) मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा।

हमारे शरीरकी रचना

कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने घरका पूरा पूरा हाल न मालूम होगा। पर ऐसे कितने मनुष्य हैं कि जन्हें अपने असली घरका (शरीर) पूरा ज्ञान है। शरीरकी रचनासे पूरे परिचित न होनेके कारण हम अपने नित्यके जीवनमें बड़ी बड़ी भूलें करते हैं और अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ डालते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि हम अपने शरीरकी रचना भली भांति जानें। इसका सहज उपाय डा० त्रिलोकीनाथ रचित "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पढ़ना है।

पुस्तकमें २६८ पृष्ठ हैं और ५९ चित्र हैं। मूल्य केवल २।) ; विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सदस्यों-को २) रुपयेमें दी जायगी।

मिलने का पता—मंत्री—विज्ञानपरिषद्, प्रयाग।

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषत्- प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ७ { मेष, संवत् १९७४ । अप्रैल, सन् १९१८ । { संख्या १

मंगलाचरण

जय सत चित आनन्द सघन विज्ञान ज्ञान मय
जय प्रति छुन प्रत्यच्छ प्रभृति लच्छन प्रमान मय
जयति सजग साकार नित्यनव निराकार जय
जय शोभा-आगार सुघर संसार-सार जय
त्यों सबलन बीच बलिष्ठ जो जो घनिष्ठ सघनन विषै
जो व्यष्टि समष्टि वरिष्ठ विभु गुन गरिष्ठ थिर जयति जै

श्रीपद्मकोट
प्रयाग, २६-३-१८.

—श्रीधर पाठक

प्राचीन भारतमें रसायन विज्ञानकी खोज*

[ले०—रसायनाचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, डी. एस-सी.]

आज मैं आप लोगोंके सामने भारतवासियोंके बुद्धि-विकासके इतिहासके उस भूले हुए अध्यायका वर्णन करनेका प्रयत्न करूंगा, जिसका नाम है 'प्रयोगात्मक विज्ञानकी उन्नति।' साधारणतः लोगोंकी यह धारणा है कि हिन्दू जाति मनमोदक खानेवाली, और गूढ़ चरित्रवाली जाति है और अपना जीवन आध्यात्मिक विचार तथा ब्रह्मके ध्यानमें ही बिता देती है। इस बातमें निस्सन्देह इसका बड़ा आदर है, जो उचित भी है, क्योंकि इसीके कारण वह बहुमूल्य

* मद्रास विश्वविद्यालयमें इस विषयपर रसायनाचार्य प्रफुल्ल चन्द्रायने व्याख्यान दिया था। उसकी एक प्रति आपने हमारे पास भेजनेकी कृपा की है। उसी का यह अनुवाद है।

Chemistry रसायन शास्त्र]

भाण्डार देखनेमें आया है, जिसमें उत्तमोत्तम उपदेशमय उपनिषद्, गंभीर सांख्य और गीता युत षड्दर्शन भरे पड़े हैं। परन्तु आजकल यह लोगोंको बहुत कम मालूम है कि हिन्दू जाति प्रयोगात्मक विज्ञानकी उन्नतिमें कितनी सहायक हुई है और सब सभ्य जातियां उसकी कितनी ऋणी हैं। प्रयोगात्मक विज्ञानके सम्बन्धमें कुछ कहनेके पहले यह बतला देना बड़ा आवश्यक है कि यह शब्द जिस प्रकारके विज्ञानके सूचक समझे जाते हैं, उसका प्रचार युरोपमें भी बहुत थोड़े दिनोंसे हुआ है।

माध्यमिक कालके युरोपीय तार्किकों (School-men) के वादविवादोंसे यह मत पुष्ट होता है कि युरोपके विद्वान प्रकृतिके स्पष्टसे स्पष्ट तथ्योंका निर्णय करनेके लिए प्रयोगात्मक रीतिसे जांच करनेसे दूर भागते थे। आप लोगोंमेंसे कुछ सज्जन जानते होंगे कि एक बार रायल सोसाइटीके संस्थापकोंमें इसपर गम्भीर विवाद छिड़ा कि मरी मछलीमें भार अधिक होता है कि जीती मछलीमें। यहां इस उलझनको सुलझानेकेलिए किसी विशेष तर्ककी आवश्यकता नहीं थी, केवल जीती और मरी मछलीका तोल लेना ही बस था। जिस समय बाइल, हुक, क्रिस्टोफर रेन तथा प्रकृतिके अन्य जिज्ञासुओंने रायल सोसाइटीकी स्थापना की हाब्स उनको "प्रयोगकर्त्ता" 'experimentarians' कहकर उनकी हंसी उड़ाया करता था। जब इंगलैंडमें ही १७ वीं शताब्दीमें सत्य ज्ञानका इतना आदर था तब भारतके प्राचीन ज्ञान-भाण्डारकी जांच करते समय हमको कसौटीका मान बहुत ऊंचा नहीं रखना चाहिए।

विज्ञानकी नींवके मुख्य पत्थर प्रयोग और निरीक्षण (observation) हैं। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दीके हिन्दू रसायन शास्त्र संम्बन्धी रामचन्द्रके 'रसेन्द्र चिन्तामणि' तथा यशोधरके 'रस प्रकाश सुधाकर' नामक दो प्रमाणिक ग्रन्थोंमें नीचे लिखे नियमोंको पढ़कर चित्त गद्गद हो जाता है। पहलेने लिखा है—

जो बातें मैंने विद्वानोंके मुखसे सुनी हैं और शास्त्रोंमें भी पढ़ी हैं, परन्तु जिनकी सत्यताकी जांच मैंने स्वयम् प्रयोग करके नहीं की है, उनका मैंने परित्याग किया है। हां, जो क्रियाएं मैंने अपने विद्वान् शिक्षकोंकी सम्मतिके अनुसार स्वयम् की हैं, केवल उन्हींको मैं इस ग्रन्थमें लिख रहा हूं।

उन्हींको सच्चा शिक्षक समझना चाहिए जो सिखाते समय अपनी बातोंको प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दें और सच्चे शिष्य भी वही हैं जो सीखी हुई बातोंको स्वयम् कर सकें। इनके सिवा और प्रकारके गुरु शिष्य तो रंगमंचपर अभिनय करनेवाले हैं।

दूसरे ग्रन्थके रचयिता यशोधर लिखते हैं—

मेरे ग्रन्थमें जितने रासायनिक प्रयोग लिखे जाते हैं, उन सबको मैंने स्वयम् किया है। दूसरोंसे सुनी हुई बातें मैं नहीं लिख रहा हूं। जो कुछ लिखा गया है उसका निश्चय परीक्षण द्वारा मैंने स्वयम् किया है।

प्राचीन राष्ट्रोंमें रसायन शास्त्रके ज्ञानकी वृद्धि कितनी थी इसकी खोजमें मेरा मन बहुत ही लगता है। ३५ वर्ष पहले जब मैं एडिनबरामें पढ़ रहा था, तभीसे टामसन, होफर और कापके प्रमाणिक ग्रन्थोंको मैं बड़े चावसे पढ़ता रहा हूं। इस क्षेत्रमें खोज करते करते मुझे यह जाननेका चस्का सहजमें ही हो गया कि उसमें भारतका स्थान कौन सा है। इसी उद्देशसे मैंने चरक, सुश्रुत, तथा उन प्रमाणिक ग्रन्थोंकी, जो आयुर्वेदिक तथा वैद्य-रसायन (Iatro-chemical) कालके थे और जो कालके कठोर हाथोंसे बच गये थे, रासायनिक दृष्टिसे क्रमबद्ध परीक्षा करनी आरम्भ कर दी।

मेरी इन खोजोंका परिणाम यह हुआ कि कोई इक्कीस वर्ष पहले मेरा परिचय महात्मा बरथेलोसे हो गया। इस घटनासे रसायन-विज्ञानके इतिहासकी जिज्ञासा सम्बन्धी मेरे जीवनमें एक महान् परिवर्तन हो गया। यह प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान रसायनी संसारमें उस समय मुखिया माना जाता था। पच्छिमी रसायन विज्ञानकी

उन्नतिका पता लगाने और उसके उद्गम स्थानोंको जाननेमें इसने सबसे अधिक काम किया है। इन्होंने मुझसे यह जाननेकी उत्कट इच्छा प्रकट ही नहीं की कि हिन्दुओंने इस विषयमें क्या क्या काम किये हैं, वरन् आग्रह भी किया कि जो कुछ जाना जा सके उससे मैं उनकी सहायता करूं। इन्हींके पवित्र आग्रहके उत्तरमें मैंने भारतीय रसायन-पर (alchemy) एक छोटा लेख १६५५ वि० में लिखकर इनके पास भेजा। यह विशेषतया 'रसेन्द्रसार संग्रह' के आधारपर लिखा गया था। पीछेसे पता चला कि इस ग्रन्थका महत्व अधिक नहीं है और इससे हिन्दू रसायन शास्त्रके उद्गम सम्बन्धी जटिल प्रश्नोंपर अधिक प्रकाश नहीं पड़ सकता। बरथेलो महाशयने इस लेखकी विस्तृत समालोचना करके ही मेरा आदर नहीं किया, वरन् अपनी वृहत् रचनाका पूरा सेट जो तीन जिल्दोंमें था मुझे भेज दिया। इनमें माध्यमिक कालके रसायन शास्त्रकी खोजोंका ब्योरा था और विशेषतया अरब और सीरिया निवासियोंके ज्ञानकी चर्चा थी, जिसके अस्तित्वका मुझे कुछ पता नहीं था। इन्हींके पढ़नेसे मुझे यह लालसा हुई कि इनकी पुरौनी मैं हिन्दू रसायन-शास्त्र लिख कर करूं।

मैं यह मानता हूं कि जिस समय मैं यह काम करनेपर अपने आप ही उतारू हुआ मुझे यह भ्रम था कि खोजकी सामग्री बहुत थोड़ी और क्रम रहित मिलेगी। इतना समझते हुए भी मैं दृढताके साथ अपना काम करने लगा। पीछे तो मुझे यह जान कर बड़ा अचम्भा हुआ कि भारतके सभी प्रदेशोंसे कीड़ोंसे खाये हुये रसायन शास्त्रके हस्तलिखित ग्रन्थ अनगिनत संख्यामें आ रहे हैं। मद्रास, तंजौर, अलवर, काश्मीर, काशी काठमान्डू (नैपाल) से ही नहीं वरन् तिब्बतसे भी पुस्तकें आयीं। तिब्बतको तो भारतवर्षके ज्ञानका तंजूर अथवा विश्वकोष ही समझना चाहिए। १६६१-६२ वि० में लासापर अङ्गरेज़ोंका अस्थायी अधिकार हो जानेसे वहांका आना जाना और पत्र व्यवहार सुगम हो गया था। वर्षों व्यर्थ परिश्रम करनेपर जब कोई साहसी मनुष्य (Prospector) किसी बहुमूल्य धातुकी तह तक एकाएक पहुंच जाता है तो उसे जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता मुझे भी हुई। जिसके पानेकी कभी आशा नहीं थी और जिसकी याद भी जाती रही थी ऐसे विपुल भाण्डारकी जानकारी हो जानेसे मुझमें इतना बल आ गया कि अपने जीवनके बारह अच्छे वर्षोंतक निरन्तर उद्योग करनेके योग्य हो गया, यद्यपि प्रयोगशाला और पुस्तकालय दोनोंमें काम करनेके लिए समय निकालनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी। अब मैं आप लोगोंका ध्यान अपनी खोजके कुछ परिणामोंकी ओर दिलाना चाहता हूं। प्राचीन भारतके विविध विद्यापीठोंमें साहित्य और विज्ञानकी अन्य शाखाओंके साथ वैद्यकका पढ़ना पढ़ाना भी बड़े महत्वका समझा जाता था। ढाई हज़ार वर्ष हुए जब तक्षशिलाके विश्वविद्यालयमें आत्रेय ऋषिके पास जीवक कुमारवच्च वैद्यकका अध्ययन करते थे। अब ज़रा 'कुमार वच्च' शब्दका अर्थ समझिये। इसमें बहुत रहस्य है। यह पाली शब्द संस्कृतके कुमारभृत्यका अपभ्रंश है। आयुर्वेद विद्यार्थीको यह भली भांति मालूम होगा कि भारतीय वैद्यक शास्त्रके आठ अङ्ग हैं, जिनमें एक है 'कौमार भृत्य' अर्थात् 'बाल रोग चिकित्सा'। यही जीवक महाशय कुछ दिन पीछे बुद्धके समकालीन मगधके महाराजा बिम्बिसारके प्रसिद्ध राजवैद्य हुए। इस प्रकार इतिहासकी साक्षी भी दी जा सकती है कि विक्रमके कई शताब्दी पहले भी भारतवर्षमें आयुर्वेदकी चर्चा थी। परन्तु जिस विज्ञानका प्रतिनिधि होनेका मुझे गौरव प्राप्त है उसकी इतनी प्राचीनताका पता नहीं चलता है। यथार्थमें 'रसायन' शब्दका अर्थ वह नहीं है जो आजकलकी 'केमिस्ट्री' अथवा 'रसायन विज्ञानसे' समझा जाता है।

इसका मौलिक अर्थ है वह औषधि जो आयु और स्मरण शक्तिको बढ़ावे तथा स्वास्थ्य और बलको स्थिर रखे इत्यादि (चरक, चिकित्सास्थान अ० १,५-६)* । दूसरे शब्दोंमें रसायनको माध्यमिक कालके कीमियागरोंका अमृत या आबेहयात (Elixir vitae) समझना चाहिए । तान्त्रिक कालमें पारा आदि धातुओंकी बनी हुई औषधियोंके प्रयोगको ही रसायन कहने लगे और अब तो इसका अर्थ वही समझा जाता है जो कीमिया या केमिस्ट्रीका है। तेरहवीं अथवा चौदहवीं शताब्दीमें एक कीमियाके ग्रन्थके रचयिताने अपने विषयका नाम रखा है 'रसायनी विद्या' अर्थात् पारा और अन्य धातुओंका विज्ञान। रसरत्न समुच्चय नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें, जिसमें पारा आदि धातुओंके रत्नोंका संग्रह है और जिसका हवाला मुझे कई बार देना होगा, ग्रन्थकर्ताने आरंभमें सत्ताईस विद्वानोंकी वंदना की है। रससिद्धिप्रदायक शब्द—रस (पारा), सिद्धि (सफलता) तथा प्रदायक (देनेवाला)—इन तीन शब्दोंसे बना है; इसलिये इसका तात्पर्य्य हुआ वह पुरुष, जो पारेकी औषधियोंके बनानेमें या यह सिखानेमें कि ऐसी औषधियां कैसे बनायी जाती हैं सिद्धहस्त है; अर्थात् इस शब्दका अर्थ हुआ कीमियामें प्रवीण। इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि चरक, सुश्रुत और वाग्भट जैसे प्रमाणिक आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें पारे और पारेसे बनी हुई औषधियोंका वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है।

यह बतलानेके लिए कि प्राचीन भारतमें रसायन विज्ञानके अध्ययनमें कितना प्रोत्साहन मिला था, मुझे अपने विषयको थोड़ी देरके लिए छोड़ देना होगा। माध्यमिक कालमें युरोपमें रसायनशास्त्र वा कीमियामें विशेष उन्नति केवल इस लिए हुई कि औषधोपचारमें इसका काम बहुत पड़ता था। हमारे देशमें इस विज्ञानकी खोजसे चिकित्साशास्त्रमें तो सहायता मिलती ही थी, परन्तु इसकी उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी इस कारण हुई कि योग दर्शनसे इसका सम्बन्ध बड़ा गहरा हो गया। आप लोगोंको विदित ही होगा कि इस पद्धतिके अनुसार पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए सात अवस्थाओंको पार करना पड़ता है, जिसके लिए आठ साधन रखे गये हैं, जिनमें धारणा, ध्यान और समाधि मुख्य हैं। जब इन अन्तिम तीनोंका मेल होता है तब संयमकी बारी आती है, जिससे सिद्धि (occult powers) प्राप्त होती हैं। पिछले दिनों योगदर्शन विज्ञानकी सेवामें रखा गया और भ्रष्ट होकर, विशेष कर बंगालमें, तान्त्रिक क्रियाओंमें लीन हो गया।

इसका कारण क्या है कि तान्त्रिक ग्रन्थ रसायन सम्बन्धी ज्ञानके भाण्डार हो गये? इसका उत्तर रसायन विद्याके एक प्रमाणिक तान्त्रिक ग्रन्थ रसार्णवमें ही दिया हुआ है, जिसका सम्पादन बिबलिओथिका इन्डिका सीरीज़में (Bibliotheca Indica series) श्रीयुत पं० हरिश्चन्द्र कविरत्नकी सहायतासे मैंने स्वयम् किया है। इस ग्रन्थमें पारे और इसके योगसे बनी हुई औषधियोंका गुणगान यों किया गया है।

"इसका नाम 'पारद' इसलिए पड़ा कि इसका प्रयोग श्रेष्ठ योगियोंने परमपद प्राप्त करनेके लिए किया है।"

"देवि! इसकी उत्पत्ति मेरे अङ्गोंसे हुई है, इसलिए यह मेरे समान है। 'रस' इसलिए कहने लगे कि यह मेरे शरीरका स्राव है।"

"यह तर्क किया जा सकता है कि इन शब्दोंका शब्दार्थ अशुद्ध है, क्योंकि इसी जीवनमें मोक्ष प्राप्त करनेका दूसरा अर्थ भी हो सकता है। परन्तु यह आपत्ति मानी नहीं जा सकती, क्योंकि छओं दर्शनोंमें मोक्ष देहान्तके अनन्तर ही रखी गयी है, जिसपर भरोसा ही नहीं किया जा सकता। फिर इसके

* ये दोनों श्लोक नीचे लिख दिये जाते हैं—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभा वर्णं स्वरौदार्यं देहेन्द्रिय बलं परम् ॥ ५ ॥
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्।
लाभापायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥६॥

प्राप्त करनेके लिए कोई कर्म भ्रम रहित नहीं हो सकता। यह भी उसी ग्रन्थमें लिखा हुआ है।"

"छओं दर्शनोंमें यह माना गया है कि मुक्ति देहान्तके बाद होती है।"

"ऐसी मुक्तिका ज्ञान करतलगत आमलककी नाईं नहीं होता।"

"इसलिए मनुष्यको पारद और अन्य ओषधियोंके द्वारा अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिए।"

इस विषयपर अधिक प्रकाश डालनेके लिए कुछ आदर्श उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

"कुछ लोग कह सकते हैं कि शरीर तो नाशमान देखा गया है, इसलिए इसको नित्य बना देना कैसे सम्भव है? इसका उत्तर यह दिया गया है कि यद्यपि षट्कोशमय अथवा आत्माका ६ आवरणमय शरीर नाशमान है तथापि पारे और अभ्रकके रूपमें हर और गौरीसे उत्पन्न शरीर अविनाशी है, क्योंकि रसहृदयका मत है कि—

"जो हर और गौरी (पारा और अभ्रक) के प्रभावसे देहान्तके पहले ही नये शरीर प्राप्त कर चुके हैं उनको रस सिद्ध (Alchemist) समझना चाहिए। ऐसे सिद्धोंके वशमें सारे मन्त्र हो जाते हैं।"

"इसलिए जो सन्यासी इसी जीवनमें मुक्त हो जानेकी इच्छा रखते हैं उन्हें चाहिए कि पहले अपना शरीर ओजस्वी बनावें। चूंकि पारा हर और गौरीकी उत्पादनी शक्तिके संयोगसे उत्पन्न हुआ है (और अभ्रक गौरीसे) इसलिए पारा और अभ्रककी समानता हर और गौरीसे नीचे लिखे श्लोकोंमें अलग अलग दिखायी गयी है:—

"अभ्रक तेरा बीज है और पारा मेरा; इसलिए हे गौरी! इन दोनोंका योग मृत्यु और दीनताको नाश करनेवाला है।"

"इस सम्बन्धमें बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं है। रसेश्वरसिद्धान्तमें यह बड़ी दृढ़तासे दिखलाया गया है कि देवताओं, दैत्यों, मुनियों और मनुष्योंमें बहुतसे ऐसे हुए हैं, जो अपने जीवनमें ही पारेके प्रभावसे दिव्य शरीर प्राप्त करके मुक्त हो गये हैं।"

"महेशादि देवता, काव्य (शुक्राचार्य) इत्यादि दैत्य, बालखिल्यादि ऋषि, सोमेश्वर तथा अन्य राजा; गोविन्द वाग्भट, गोविन्दनायक, चर्पटी कपिल, व्यालि इत्यादि अन्य रससिद्धोंने पारदमय शरीर प्राप्त करके जीते जी मुक्ति प्राप्त की है।

रसायनी विद्या और योगदर्शनका यह गठ जोड़ा ११वीं शताब्दीमें ही दृढ़ हो गया था, क्योंकि ग़ज़नी-निवासी महमूदका समकालीन प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान अलबरूनी जो संस्कृत साहित्यका उतना ही विद्वान था जितना यूनानी और अरबी भाषाओंका, इस प्रकार लिखता है—

"इस कलाके विद्वान इसको गुप्त रखनेका प्रयत्न करते हैं और अपरिचित मनुष्योंसे इसके सम्बन्धमें बातचीत करनेमें भी संकोच करते हैं। इस कारण मैंने हिन्दुओंसे इस विषयमें कुछ नहीं सीख पाया है कि वे कौन सी विधि काममें लाते हैं और कौनसी वस्तुका मुख्यतः प्रयोग करते हैं और वह वस्तु खनिज है कि प्राणिज अथवा उद्भिज। ऊर्ध्वपातन (sublimation), भस्मीकरण (calcination) विश्लेषण (anlysis) तथा हरतालमारण (waxing of talc) के सम्बन्ध में बात चीत करते हुए जो कुछ मैंने सुना है उससे अनुमान होता है कि कीमियामें खनिज रीतिको काममें लाते हैं। तालकको वे अपनी भाषामें तालक या हरताल कहते हैं।

"इनके यहां भी कीमिया जैसी एक अनोखी, निराली विद्या है। इसे यह 'रसायन' कहते हैं। इससे अभिप्राय उस विद्यासे है जिसमें कुछ क्रियाओं, ओषधियों और यौगिकोंका वर्णन है, जिनमेंसे अधिकांश वानस्पतिक हैं। इसके तथ्योंसे ऐसे लोग भले चंगे हो जाते हैं, जिनके जीनेकी आशा नहीं रहती, वृद्ध भी युवा हो जाते हैं और उनकी दशा ऐसी हो जाती है जैसी यौवन कालमें होती है; श्वेत बाल काले हो जाते हैं, इन्द्रियोंकी शक्ति तीक्ष्ण हो जाती है और बालकोंकी सी फुरती आ जाती है। इसी संसारमें मनुष्योंकी आयु बढ़ जाती है। और ऐसा क्यों न हो? क्या हमने पातंजलिके मतानुसार यह नहीं कहा है कि मुक्तिका एक साधन 'रसायन' भी है।

तन्त्र शास्त्रकी क्रियाओंसे रसायनके जिन ग्रंथोंका सम्बन्ध है उनकी संख्या अब अनगिनत है। ये ग्रन्थ यदि पहले नहीं तो ११ वीं से १४ वीं शताब्दीतक इतने महत्वके समझे जाने लगे थे कि इनकी गणना उस समयके प्रचलित दर्शन शास्त्रोंमें होने लगी थी। आप लोगोंको विदित है कि विजयनगरके राजा प्रथम बुक्कके प्रधान मंत्री प्रसिद्ध माधवाचार्यने अपने 'सर्व दर्शन संग्रह' नामक ग्रन्थमें उस समयके प्रचलित १६ दर्शनोंका संग्रह किया है, जिसमें एक अध्याय 'रसेश्वर

दर्शन ' अर्थात् ' पारद विज्ञान ' पर भी है। इस विषयकी व्याख्या करते हुए मद्रासके बहुत पास ही शृङ्गेरी मठके विज्ञ जगद्गुरुने रसायनके प्रमाणिक ग्रन्थोंसे विशेषतया रसार्णव, रसेश्वर सिद्धान्त, और गोविन्द भागवतके रसहृदयके कई लम्बे लम्बे उद्धरण दिये हैं।

[असमाप्त]

इमली

[ले०-पं० रामस्वरूप भार्गव, बी. ए.,]

भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें यह पेड़ पाया जाता है। पञ्जाबमें झेलम नदीके तट तक और मध्य भारत, मध्य प्रदेश, बर्मा, बम्बई मदरास और राजपूतानेमें सर्वत्र, इस जातिके बहुत पेड़ मिलते हैं। भारतके बाहर केवल अफरीकामें यह उगता है। अरबोंको पहले पहल इस पेड़से परिचय भारतवर्षमें ही हुआ था और उनकी भाषामें इसका नाम 'तमर-ए-हिन्द' है, जिससे अङ्गरेज़ी शब्द 'टेमेरिण्ड' भी निकला है। इसका वैज्ञानिक नाम 'टेमेरिण्डस इण्डिका' (Tamarindus Indica) है। देशी भाषाओंमें इसके अमली, इमली, तितूल, तितड़ी आदि बहुतसे नाम हैं।

बीज बोना और पौदा लगाना।

जंगलोंमें यह प्रायः स्वयम् ही उग आता है, पर शहरोंमें और बगीचोंमें इसे लगाना हो तो बरसातके आरम्भमें, उथले गड्ढोंमें बीज बोने चाहियें। जब पेड़ उग आयें और कुछ बड़े हो जायं तब जिस स्थानपर लगाना हो ३ फुट गहरा और ३ फुट चौड़ा गड्ढा खोदें। उसमें २॥ फुटकी तह अच्छी मट्टी और पुराने खादकी नीचे देदें और पेड़ लगा कर मट्टीका एक ढेर सा उसके चारों ओर इसलिए लगा दें कि पानी ढ़ल जाया करे। पेड़की रक्षाकेलिए कांटोंकी टट्टी लगा देनी चाहिये। तीन महीने बाद फिर पेड़के आस पास धरती गोद कर नई कांटोंकी टट्टी लगा देनी चाहिये।

इमली तीन प्रकारकी होती हैं:—(१) मीठे फलवाली (२) खट्टे फलवाली और (३) लाल फलवाली। यदि गूदेको 'रक्षित' रखना चाहें तो लाल फलवाली इमली लेनी चाहिये।

पत्ती

इमलीकी पत्ती कई छोटी छोटी पत्तियोंसे मिल कर बनी होती है और निकम्मी समझी जाती है। इसीसे एक कहावत भी प्रचलित है—'इमली के पत्तोंपर डण्ड पेलो'। पत्तियोंका क्वाथ एक प्रकारका लाल रंग होता है, जो नीलसे रंगे हुए वस्त्रोंको पीली झांई दे सकता है।

इस देशमें, प्रायः सभी प्रान्तोंमें, इस वृक्षके नीचे सोना वर्जित है। सर्व साधारणका विश्वास है कि इसके नीचे सोनेसे कई भांतिके रोग हो जाते हैं। इसका कारण केवल यह जान पड़ता है कि वृक्षमेंसे अम्लमय भाप निकला करती है। कुछ यात्रियोंका यह अनुभव है कि यदि डेरे इस वृक्षके नीचे लगा दिये जाते हैं, तो जहां जहां उनपर पत्तियां गिरती हैं, वहां वहां कपड़ा गल जाता है और छेद हो जाते हैं।

गोंद

इसका फल चारसे छः इञ्चतक लम्बा होता है। इसका गूदा खट्टा मीठा होता है। निम्बूकी भांति यह फल भी लवणरक्त रोगका बाधक है। फलके गूदेसे पन्ना, सोंठ, या चटनी तैय्यार की जाती है।

इमलीका पन्ना बच्चोंकेलिए बहुत अच्छा रेचक (दस्तावर) है। जैनोंमें इमलीके गूदेसे मुरब्बे और मिठाइयां तय्यार होती हैं। अन्य देशोंमें भी अब इसका उपयोग होने लगा है। अतएव गूदेको 'रक्षित' अवस्थामें चालान करनेकी विधियोंका महत्व बढ़ता जाता है। भारत वर्षमें प्रायः छिलका उतार कर गूदेको नमकके साथ पीपोंमें भर कर

Agriculture कृषिशास्त्र]

विदेशको भेजते हैं, पर जैमेका द्वीपमें शक्करका उपयोग किया जाता है। बड़े बड़े पीपोंमें पहले एक तह गूदेकी बिछाते हैं और उसपर सस्ती शक्कर बुरक देते हैं, इस प्रकार पीपेके मुंहके आठ दस अंगुल तक भरते चले जाते हैं। अन्तमें एक मोटी तह शक्करकी देकर पीपोंको बन्द कर देते हैं। इस प्रकार 'रक्षित' इमली कई सालतक खराब नहीं होती। अपने देशमें तो प्रायः सुखा कर ही रख छोड़ते हैं।

बम्बईमें मद्रासी इमलीका भाव ३।=) प्रति मन और कलकतियाका ४॥) मन रहता है, पर जैमाकासे जो इमली पूर्वोक्त रीतिसे सुरक्षित आती है, उसका भाव कलकतियासे दुगना होता है।

बीज

प्रायः बीज फेंक दिये जाते हैं, पर अकालमें भूखे देहाती छिलका उतार कर और उबाल कर खा जाते हैं। बीजोंसे भूरे रङ्गका एक प्रकारका तेल भी निकलता है। बीजोंसे सीमेन्ट भी बनाया जाता है, जिसका उपयोग कम्बलोंके कारखानोंमें होता है।

लकड़ी

इमलीकी लकड़ी, बड़ी टिकाऊ (देरपा) और मज़बूत होती है, यद्यपि इसकी चीज़ें बनानेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसके पहिये, खाट, मूसल, गन्ने पेरनेकी कल इत्यादि बनती हैं। लकड़ी जलानेके काममें भी आती है, विशेषतः जब कि बहुत गरमीकी ज़रूरत होती है।

कांच और सिलकन

[ले० प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम-ए.]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

यद्यपि बालू पानीमें साधारणतः नहीं घुलती तथापि धरतीके गंभीर गर्भमें, जहां जल बड़वानलके प्रचण्ड तापसे उत्तप्त हो रहा है और मीलों ऊंचे चट्टानके भारसे दब रहा है, बालू जलमें घुल जाती है और एक अम्ल बनाती है, जिसमें सिलकनके एक परमाणुसे ओषजन और उज्जनके चार चार परमाणु मिले हुए हैं। इस घुलित बालूको लेकर जब जल धरतीके ऊपरी तलपर आता है, जहां दबाव और ताप दोनों ही अत्यन्त कम हैं, सिकताम्लको घुलित दशामें रख नहीं सकता। यद्यपि सोता बहुत तेज़ीसे निकलता है तथापि मुंहके पास गाढ़ी लपसीकी नाईं सिकताम्ल जमता जाता है, जो ठण्डा होकर पत्थर हो जाता है। ज्वालामुखी प्रदेशोंमें और गरम सोतोंके पास सिकताके ऐसे चबूतरे पाये जाते हैं। न्युज़ीलैण्डमें उत्तरी द्वीपके मध्यमें गरम सोते और कीचके कुण्ड एक नहीं हजारोंकी संख्यामें हैं। एक मीलसे अधिक दूरीतक तप्पोझील धरतीके भीतरकी गरमीसे उबलता रहता है और धुआं निकलता रहता है। यहांसे एक नदी निकलकर समुद्रको गयी है, जिसकी घाटीमें दोनों ओर खौलते जलके फव्वारे हैं—एक नहीं सैकड़ों, बल्कि एक एक जगहपर सत्तर सत्तर तक गिने गये हैं। इनमें भिन्न भिन्न ऊंचाई तक पानी उठता है। इन फव्वारोंमें यह विशेषता है कि पिचकारी छोड़ते हैं और फिर बन्द हो जाते हैं और फिर छोड़ते हैं। इन सबोंकी ऐसी बारी बंधी हुई है कि जान पड़ता है कि कोई समझदार यन्त्रविज्ञानी इन्हें चला रहा है। और आगे बढ़िये तो क्या देखते हैं कि जलके खम्भे सूर्य्यकी किरणोंसे चमक रहे हैं। और चांदीका सा उज्ज्वल प्रपात सुन्दर प्राकृतिक

Chemistry रसायन शास्त्र]

सीढ़ियोंपरसे उछलता हुआ नदीमें मिल रहा है। दृश्य पल पलपर बदलता है और फव्वारोंके मिले जुले रागमें नये नये स्वर श्रवणानन्दको भी बढ़ाते जाते हैं। इसी प्रदेशमें पहले रक्तमोहन नामक एक अद्भुत मनोहर झील था जिसके चारों ओर ऐसे-ही प्राकृतिक फव्वारे थे। झीलसे बयासी फुट ऊपर एक गहरा ज्वालामुख था, जहां तक पहुंचने-के लिए प्रकृतिने सुन्दर स्फटिककी सीढ़ियां बना रखी थीं। इस झीलका स्वच्छ जल श्याम नीलिमा युक्त था, जिसपर ज्वालामुखीकी भापके उड़ते हुए बादल अपनी छाया डालकर उसकी नीलिमा-को और भी गम्भीर कर देते थे। इन प्राकृतिक सीढ़ियोंसे जल पतली तहोंमें बहता था और अन्ततः प्रपातका रूप धारण कर लेता था और कभी कभी झीलका जल एकाएकी उठकर विशाल खम्भेके रूपमें खड़ा हो जाता था और साथ ही आकाश भेदी नाद होता था। खेदकी बात है कि थोड़े ही दिन हुए उस ज्वालामुखी पर्व्वतने आग उगलकर इस दृश्यको नष्ट कर दिया।

सिकताम्लके दो रूप हैं। एक तो जलमें गोंद-की नाईं घुल जाता है, दूसरा अनघुल है और जलके साथ लपसी सा हो जाता है।

जब बालूको शुद्ध दाहक सोडाके साथ गलाते हैं, तो सोडियम सिकतेत बन जाता है, जिसमें उज्जनके चारों परमाणुओंका स्थान सोडियमके चार परमाणु ले लेते हैं। यह पदार्थ देखनेमें कांच सा होता है, परन्तु जलमें घुल जाता है। इसी-लिए इसे जल-कांच कहते हैं। विलायतके लोग इसमें अण्डा रखते हैं तो बहुत दिनोंतक नहीं सड़ता। इससे नकली पत्थर भी बनाते हैं। इसी जल-कांचके घोलमें यदि नमकका तेज़ाब डाल दें, तो सिकताम्ल बन जाता है। इस क्रियाका समीकरण यह है—

सि (ओ सो)$_४$ + ४ उ ह = सि (ओउ)$_४$ + ४ सो ह

जलकांच | नमकका तेजाब | सिकताम्ल | (खानेका नमक)

इसमें सि=सिलकन, ओ=ओषजन, सो=सोडियम, उ=उज्जन, ह=हरिण वायव्य। जिन परमाणुओंके दक्षिण पार्श्वमें कोई अंक नहीं है, उन्हें एक परमाणु गिनना चाहिए।

जल कांच और नमकके तेजाबकी प्रक्रियासे सिकताम्ल और मामूली नमक बनता है। दोनोंके दोनों पानीमें घुले रहते हैं। अब इन्हें अलग कैसे किया जाय? इसके लिये एक विशेष उपाय किया जाता है। साधारण झिल्लीकी चलनीमेंसे पिसान गिरनेके लिये छेद बने होते हैं। ऐसी एक चलनी लीजिये जिसमें छेद कहीं न हों और झिल्ली मेख-लाके ऊपर तक लपेटी हुई हो। इसीमें उस मिले जुले घोलको डाल दीजिये और इस चलनीको एक बड़े तसले या थालीमें रखिये, जिसमें एक अंगुल या दो अंगुल ऊंचा जल हो। नमक झिल्ली-से बाहर छन छन कर थालीमें आ जायगा और सिकताम्ल चलनीमें ही घुलित अवस्थामें रह जायगा। जब सब नमक थालीमें चला जाता है तो उस सिकताम्लके घोलको निकालकर निर्वात बर्तनमें अथवा ऐसी दशामें कि बर्तनके ऊपर-की हवा पम्प द्वारा अथवा और किसी रीतिपर बराबर खिंचती जा रही हो पानीको खौलाकर उड़ा देते हैं और कुछ आंच ज्यादा करके सिक-ताम्लकी लपसी अलग कर लेते हैं। यह पानीमें नहीं घुलती। इसे और ज्यादा सुखानेकी कोशिश की जाय तो आंचसे सूखती जायगी और बहुत ताव देनेपर एक सफेद चूर्ण रह जायगा जो बालू है।

प्राणियोंके शरीरमें असंख्य कर्बनयौगिक हैं, जो इसी प्रकारकी लपसी और गोंदके से घोल बनाते हैं। वनस्पतियोंमें भी यही बात होती है और जिस तरह झिल्लीमेंसे नमकके से घोल निकल जाते हैं और गोंदके से घोल रह जाते हैं, उसी तरह प्राणियोंके शरीरमें भी झिल्लीकी यही क्रिया होती है। जब सिकताके यौगिकोंकी लपसी और गोंदके से घोल होते हैं तो यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि प्राणियोंके शरीरमें इनका भी होना सम्भव है। यह कल्पना बिलकुल ठीक है। बहुत

सी वनस्पतियोंके दृढ़ भागोंमें बालूकी अच्छी मात्रा हुआ करती है। बल्कि बालूके होनेसे ही उनमें कड़ापन और सीधे खड़े होनेकी शक्ति होती है। बहुत तरहकी घासोंमें, पयालोंमें और बांसोंमें बालूका बहुत कुछ अंश रहता है। जड़ोंसे यह घुलित सिकताको खींच लेते हैं। समुद्रके जन्तु और पौधे स्वभावतः बालू पचा लिया करते हैं। समुद्रके बहुत नन्हें नन्हें जीव बारीक बहती हुई मिट्टीमेंसे बालू लेकर अपनी ठठरी बनाते हैं। इन जन्तुओंकी असंख्य लाशोंसे कई युगोंमें धीरे धीरे इकट्ठी होकर पालिश करनेवाली मिट्टीके मैदान बन गये हैं। इस मिट्टीमेंके जन्तुओंको यंत्रसे देखें तो बड़ी अद्भुत, अत्यन्त मनोहर और अनुपम सौन्दर्य्यकी कोठरियां और घर दिखाई पड़ेंगे, जो शुद्ध बालूके बने हुए हैं। कई तरहके स्पंजोंमें भी बालू निकलती है।

ऐसा जान पड़ता है कि जब इस पृथ्वीके ऊपरी भागका तापक्रम ऐसा था कि समुद्रका जल खौलता रहता था, संभवतः उस समय प्राणियोंके शरीरका अधिकांश कर्बनके स्थानमें इसी सिकताका बना हुआ होगा।

कांच अनेक सिकता-लवणोंके मिश्रणका नाम है, जो घुलित अवस्थामें हैं। मिट्टी, पत्थर, चट्टान सभी सिकता-लवणोंके बने हुए हैं। सिकता-लवणोंसे तात्पर्य्य है सिकताके साथ धातुके ओषिदोंका वा भस्मोंका मिला हुआ होना। इस धरतीके विविध भागोंके ८३० नमूनोंकी जांच करके क्लार्क नामक एक रासायनिकने पृथ्वीके अवयवोंकी निम्न लिखित सूची बनाई है—

सिकता	५९·७१
अलूमिना	१५·४१
लौहओषिद	६·१५
चूना	४·९०
मेगनीसिया	४·३६
पोटाश	२·८०
सोडा	३·५५
पानी	१·५२
टैटनाम्ल	०·६०
स्फुराम्ल	०·२२
	९९·२२

इस सूचीसे यह कभी न समझना चाहिये कि सब जगहकी मिट्टी लगभग इसी ढंगकी होगी। ऊपर लिखे पदार्थोंकी मात्रामें इतना अंतर पड़ जाता है कि मिट्टी मिट्टीमें बहुत फ़र्क मालूम होता है, तो भी इसमें तो कसर ही नहीं कि सौमें साठ भाग सिकता और शेष चालीस भागोंमें मुख्य मुख्य ग्यारह, और साधारणतः, सैकड़ों चीज़ें हैं।

सिकता कहनेसे केवल बालूकी कल्पना होती है, परन्तु जितने रूपोंकी सिकता इस पृथ्वीमें पाई जाती है उनकी ठीक संख्या अब तक मालूम नहीं हो सकी है। इन यौगिकोंकी आणुविक रचना बहुत बिकट है, रासायनिकोंके लिये यह अपार समुद्र अभी बे थहाया हुआ पड़ा है। जब कभी भविष्यमें बालूकी खोजमें मनुष्यको वास्तविक सफलता प्राप्त होगी, हमारा दृढ़ विश्वास है कि अनेक बड़े बड़े विचित्र और अद्भुत रहस्योंका उद्घाटन होगा। जिन पर्वत शिखरों और चट्टानोंको हम चुपचाप खड़े देखते हैं, उनकी तहोंके भीतर, उनके गर्भके अंतरालमें, युगान्तर और कल्पान्तर उपस्थित करनेवाली घटनाएँ पल पलपर होती जाती हैं, बल्कि यों कहना चाहिये कि पलमें लाखों बार होती रहती हैं। अनेक पत्थर ऐसे हैं, जिनके नन्हें नन्हें छिद्रोंमें प्रचण्ड दबावसे हवा पानीकी तरह भरी हुई है और उस द्रवके भीतर सूक्ष्म रवे पड़े हुए हैं। अनेक चट्टानोंके भीतर अनेक अदृष्ट कन्दराएँ और मार्ग हैं। यह सब बातें अणुवीक्षण यंत्रसे देखी जा सकती हैं। जो कहीं हमारी इन्द्रियां दस लाख गुना अधिक सूक्ष्म हो जायं तो इन पहाड़ोंको हम कैसा देखेंगे, यह सोचना बड़ा कौतूहल जनक है। यही चट्टान

एकाएकी जागत और कर्मण्य हो जावेंगे। इनमेंसे बादलसे भी अधिक गरजता हुआ शब्द निकलता रहेगा। अगणित शंख अणु बराबर धक्के देते, दौड़ते, लड़ते, और फिरते दिखाई पड़ेंगे। यह चट्टान उन अपार शक्तियोंका केन्द्र जान पड़ेगा जिसकी विशालतासे हमारे आश्चर्य्य और भयकी सीमा न रहेगी। हमारी अज्ञानताके साथ साथ उनकी अकर्मण्यता भी लुप्त हो जायगी। पहाड़का अचल कहलाना निरर्थक हो जायगा और जान पड़ेगा कि पहाड़ पुराणोंके उड़नेवाले पहाड़ोंसे भी कहीं अधिक भयंकर और शक्तिमान हैं। हम पहाड़ोंको देखते हैं तो समझते हैं कि यह अनादिकालसे इसी तरह अचल खड़े हैं और रहेंगे। पर यह बात बिलकुल झूठ है। यह सब धीरे धीरे छीज रहे हैं। यहां तक कि मिट्टीमें मिल जायंगे, पता भी न लगेगा। घुलघुलाकर समुद्रकी तहमें पहुंच जायंगे।

इसका कारण क्या है? कर्बनद्विओषिद, जो हमारी सांससे निकलता है, जो पदार्थोंके जलनेसे भी बनता है और जो ज्वालामुखी पर्वतोंसे भी उगला जाता है, हमारे वायुमण्डलमें फैल जाता है। यह पहाड़ इसे पीते रहते हैं, अर्थात् इससे और पहाड़ोंसे रासायनिक क्रिया होती रहती है। सोडावाटरमें यही कर्बनद्विओषिद घुला रहता है। यह अम्ल है। पत्थरके क्षारोंसे मिल कर कर्बनेत बनाता रहता है और बालूको अलग करता रहता है। कर्बनेत पानीमें घुलघुलकर बह जाते हैं और बालू और मिट्टी रह जाती है। यह क्रिया इतने धीरे धीरे होती है कि हमारे देखनेमें पहाड़ ज्योंका त्यों बना रहता है। किसी समय पृथ्वीका वायुमण्डल कर्बनद्विओषिदसे ही भरा था। धीरे धीरे पीते पीते इन पहाड़ोंने उसे इतना कम कर दिया कि जहां पहले वायुका आठ सौ गुना था अब वायुका $\frac{३}{१००}$ वां भाग रह गया है अर्थात् जहां पहले अस्सी लाख था वहां अब कुल तीन रह गया है। सोचनेकी बात है कि पृथ्वीने कितना कर्बनद्विओषिद सोख रखा है।

यदि कोई हिरण्याक्षकी नाईं बड़ा भारी दैत्य पृथ्वीको चुराकर अपने लोकमें ले जाय और हलके तेज़ाबके एक महाकुण्डमें इसे थोड़ी ही देरके लिये डुबो दे तो क्या दशा होगी। सिरका या नीबूका अरक पृथ्वीपर गिरे तो मिट्टी चुरने लगती है और कर्बनद्विओषिद निकलने लगता है। इस हिरण्याक्षके लोकमें पृथ्वीसे इतना कर्बन द्विओषिद निकलेगा कि चारों ओर इस वायु मण्डलका आठ सौ गुना अधिक आयतनका वायु मण्डल बनावेगा। इस क्रियामें इतने जोरके धड़ाके होंगे कि बड़े बड़े महाद्वीप राखकी तरह हवामें उड़ जायेंगे और इस वायुका अपना ही दबाव इतना ज्यादा होगा, कि दबते दबते अपने ही बोझसे द्रव हो जायेगी और सोडावाटरसे करोड़ों गुने तेज कर्बनाम्लके समुद्र बन जायंगे।

किसी कर्बनेतको तेज आंच दी जाय तो उसमेंसे कर्बनद्विओषिद निकलकर वायुमें मिल जायगा। हमारा काल्पनिक हिरण्याक्ष यदि हलके तेजाबके ही कुण्डमें न डालकर अग्निके महाकुण्डमें डालकर पृथ्वीको तपावे तो भी यही दशा होगी। इस काममें सिकता सहायक होगा, क्योंकि अत्यन्त तापकी दशामें सिकता कर्बनद्विओषिदका स्थान ले लेता है और ठण्डकी दशामें कर्बन द्विओषिद सिकताका स्थान ले लेता है। इस प्रकार ठण्डक होते ही फिर कर्बन द्विओषिदका सोखना पृथ्वी आरम्भ कर देगी। ज्वालामुखी पर्वतोंमेंसे कर्बनद्विओषिद जो अधिक मात्रामें निकलता है, उसका कारण भी प्रचण्ड ताप है।

सफ़ेद चीनीमिट्टी सिकता और अलूमिनाका यौगिक है, जो विशेष प्रकारके चट्टानोंके गल जानेसे बनती है। जब यह चट्टानोंके भीतर दब जाती है तो स्लेट आदि मटीले पत्थर बनाती है। यह शुद्ध मिट्टी है। अशुद्ध मिट्टीमें बालू, मेगनीसियम कर्बनेत और खटिक और लौहओषिद आदि मिले

रहनेसे सफेद चीनी मिट्टीसे बड़ा अन्तर पड़ जाता है। लोहेके कारण मिट्टी लाल रङ्गकी हो जाती है। चीनी मिट्टीको मजबूत बनानेके लिये थोड़ी थोड़ी मात्राओंमें कई धातुओंके ओषिद मिलाये जाते हैं। यह विषय कांचकी नाईं अपना विस्तार अलग ही रखता है, इसकेलिए इस लेखकी सीमा पर्य्याप्त नहीं है। लेखकने प्रेम-महाविद्यालय वृन्दावनमें इसकी शिक्षाका आरंभ देखा है। यह काम इस योग्य है कि बड़े विस्तृत और विशाल रूपसे बड़ी पूंजी लगाकर किया जाय। इससे बहुत लाभकी संभावना है।

एडिसन और उनके आविष्कार

[ले०—प्रोफेसर कान्तिलाल छगनलाल पांडे, एम. ए.,]

अमेरिका, जो नई दुनियाके नामसे प्रसिद्ध है, उसकी समृद्धिका वर्णन करते हुए एक विद्वानने इस प्रश्नपर विचार किया है कि अमेरिकाको किस बातकी कमी है ? यह नई दुनिया विद्या, कला, कौशल, स्वतंत्रता, धन, धान्य, सुख सम्पत्ति इत्यादि हर प्रकारसे पुरानी दुनियासे कहीं बढ़कर है। अगर कोई यह प्रश्न करे कि किस देशने व्यक्ति, समाज और राज्य संबंधी उदारसे उदार भावनाओंको व्यावहारिक जीवनमें सफलतापूर्वक परिणत किया है तो निस्सन्देह हर एकको कहना पड़ेगा कि वह देश अमेरिका ही है। अमेरिकामें अगर कोई कमी है तो वह केवल दो बातोंकी है—एक साहित्यकी और दूसरी भूतकालकी।

अमेरिकावासी इस बातका उत्तर इस तरह देते हैं कि अगर यह दोनों त्रुटियां दोषरूपी समझी जाती हैं तो स्मरण रहे कि ये दोनों एक ही कारणसे उत्पन्न हुई हैं। साहित्य और भूतकालको लेकर किसी प्रजाका जन्म नहीं हुआ है, उन्हें तो प्रत्येक नई प्रजा धीरे धीरे उत्पन्न कर लेती है। उनका दूसरा उत्तर यह है कि जिस देशने एमरसन, लांग-फेलो, मार्कट्वेन जैसे साहित्यिक वीर इस जगतको अर्पण किये हैं उस देशके साहित्यका समारंभ उस देशको कालिमा लगावे ऐसा नहीं हो सकता। वैसेही जिस प्रजाका वर्तमान इतना उत्कृष्ट है और जिसका भविष्य भी समस्त संसारको आशा-जनक मालूम होता है कौन कह सकता है कि सैकड़ों वर्ष पीछे उसका भूतकाल बड़े गौरवका न माना जायगा।

जगतके इतिहासमें जो बड़े और महत्पुरुष हो गये हैं, जिनकी कीर्ति चिरस्थायी और जिनका जीवन संसारके उपकार करनेमें व्यतीत हुआ उन महापुरुषोंकी उज्ज्वल नामावलीमें अमेरिकाके सपूतोंके नाम कुछ तुच्छ स्थानको नहीं सुशोभित करते हैं। राजनैतिक-साहित्य, धर्म, दान और विज्ञान इत्यादि पुण्यक्षेत्रोंमें सत्कीर्ति और सुकृति-वाले जो अमेरिकन हो गये हैं उन सबके नाम प्रसिद्ध करनेका यह उचित स्थान नहीं है, तो भी प्रत्येक शिक्षित मनुष्यको इस बातका कुछ ज्ञान होना परमावश्यक है। पर इस समय हम जगत् विख्यात पण्डितोंमें उच्च आसनपर विराजनेवाले "टामस आल्वा एडिसन" नामक अमेरिकनका, जिसका अर्वाचीन शोधकोंमें अति उच्च पद है और जो भारतवर्षमें फोनोग्राफ बनानेवालेके नाम-से प्रसिद्ध है, परिचय करानेका यत्न करेंगे।

अब इनकी सत्तर वर्षकी आयु है। जैसे चमत्कारक इनके शोध हैं वैसा ही चमत्कारक इनका जीवनचरित्र और व्यक्तित्व है। उनकी आयुका विचार करके उन्हें वृद्ध कह सकते हैं, परन्तु इस वयमें भी उनका शारीरिक बल, मानसिक उत्साह, और शक्ति सत्रह वर्षके बालकको भी लज्जित करनेवाली हैं। उनके कामका औसत १० से लेकर १८ घंटेतक प्रतिदिन होता है और इतनी उम्र

होनेपर भी उसमें कमी नहीं हुई है। इतना कठिन परिश्रम करनेके उपरान्त भी उनको रातको ४ घंटेसे अधिक निद्रा नहीं लेनी पड़ती। वह सदा यह कहा करते हैं कि साधारण मनुष्य सोनेमें बहुत समय व्यतीत करते हैं; क्योंकि उनका मत है कि बालक और बीमारके अतिरिक्त किसीको ६ घंटेसे अधिक निद्राकी आवश्यकता नहीं होती है।

अगर उनसे कोई पूछता है कि यह इतना भीषण उद्योग किस लिए आप करते हैं तो उत्तर देते हैं कि एडिसनके जीवनका लक्ष्य विज्ञानके व्यवहारिक शोध करनेका है। ७० वर्षकी आयुमें-से उन्होंने अन्तिम ५० वर्ष लगातार वैज्ञानिक शोधोंमें ही व्यतीत किये हैं। जैसी आश्चर्य कारक यह उद्योग शक्ति है वैसी ही अनुपम उस शक्तिकी सफलता है। उनके आविष्कारोंकी अगर औसत निकाली जाय तो मालूम होगा कि गत ५० वर्षमें प्रतिपक्ष उन्होंने एक एक शोध अर्थात् आविष्कार किया है। स्वतः एडिसनने १००० से अधिक पेटेन्ट कराये हैं। इन आविष्कारोंमेंसे अधिकांश तो इस जगतमें प्रायः शिक्षित प्रजाओंके उपयोगमें आते हैं। बिजलीको व्यवहारिक उपयोगमें लानेकेलिए अति आवश्यक यंत्र-बिजलीकी बत्ती, फोनोग्राफ़, सीनामेटोग्राफ, कांक्रीटके मकानोंकी रचना, ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके लोकोपयोगी शोध उन्होंने किये हैं।

अब हम अपने पाठकोंको एडीसनके जीवनकी कथा सुनाएँगे।

एडीसनके पिताको विज्ञानमें कुछ कुछ अभिरुचि थी और प्रायः घरकी ऊँची अटारीपर चढ़कर दूरबीनसे आकाश देखा करते थे। प्रायः अपनी पत्नी और कुटुम्बके लोगोंको भी आकाशकी दैवी रचना दिखलाया करते थे और कभी कभी अपने मित्रोंको भी दिखलानेके लिये बुलाया करते थे। इतनाही नहीं उन्होंने घरके नीचेके तलघरमें बालक एडीसनको वैज्ञानिक प्रयोग करनेके लिये स्वतंत्र जगह दे दी थी, जहांपर एडीसन रासायनिक पदार्थोंके साथ खेला करता था। एडीसनकी माता महापुरुषकी माता होने योग्य थीं, उनका नैतिक बल उनके सुपुत्रमें अच्छी तरह दिखलाई दे रहा है।

दस वर्षके वयतक घर और स्कूलमें थोड़ा पढ़नेके बाद एडीसन अखबार बेचनेवाले लड़केके काम पर रेलमें नौकर हुए। उस समय एक हास्यास्पद घटना हुई, जिसका खराब असर एडीसनपर अबतक है। रेलगाड़ीमें वह समाचारपत्र बेचा करते थे, परन्तु उनकी तीव्र बालबुद्धि इस कामसे संतुष्ट न होकर उनको दूसरे कामोंके लिए प्रेरित करने लगी। उनमेंसे एक काम यह था कि जहांसे गाड़ी चलती उस शहरकी ताज़ी खबरें जानकर चलती गाड़ीमें उनको स्वयम् कम्पोज़ करके छाप लेते और एक छोटेसे समाचारपत्रके रूपमें अन्य स्टेशनोंपर बेच डालते। दूसरे पत्रोंसे अधिक नूतन समाचार वह छापते थे। इसीलिये यद्यपि उनके पत्रका आकार जेबमें रखनेके रूमालसे बड़ा नहीं होता था तो भी उसकी बिक्री अच्छी होती थी। स्वयं ही सम्बाददाता, लेखक, एडीटर, कम्पोज़ीटर, प्रूफ़-रीडर, छापनेवाले और बेचनेवाले होनेके कारण उनको उचित लाभ होता था। वह अपना काम इतनी चतुर्ता, योग्यता और तत्परतासे करते थे कि थोड़े समयमें वह और उनका पत्र लोकप्रिय हो गये। लेकिन पत्र छापनेके उपरान्त मुसाफिरीके शेष समयमें निठल्ले बैठा रहना उनके लिए असह्य था। इस दश वर्षके बालकको वैज्ञानिक प्रयोगोंमें इतनी अभिरुचि थी कि उसने रेलवे कन्डकटरको (गार्ड) समझा कर अपने लिये रेलके डब्बेका एक भाग खाली करवा लिया। उसके एक कोनेमें उसने अपना प्रेस और दूसरेमें अपनी प्रयोगशाला बनाई। एक समय ऐसा हुआ कि ट्रेन स्टेशनपर खड़ी थी और एडीसन पत्र बेचनेके लिए बाहर निकल आया था कि इतनेमें

उसके कमरेमें एक बड़े जोरका धमाका हुआ। एडीसनके पास स्फुर (phosphorous) और दूसरे ज्वलनःहर्ष पदार्थ रहते थे और भूलसे अथवा जल्दीके कारण उनकी उचित व्यवस्था न करनेसे यह विस्फोटन हुआ। क्या हुआ! क्या हुआ! कहकर बहुतसे लोग उस तरफ दौड़े और गाडने, जो उदारहृदय होने पर भी मोटी बुद्धिका था, गुस्सेमें आकर एडिसनके गालपर जोरसे थप्पड़ लगाया और उसको ट्रेनसे उतार दिया, उसका छापाखाना और प्रयोगशाला जप्त कर ली और ट्रेन चला दी। इस तरह इस कामका अन्त हुआ। पुनः वह रेलवेके दूसरे विभागोंमें नोकर हुए, वहां भी उनके लक्षण छिपे न रहनेसे एक तरफसे उनको पदच्युत होनेकी आज्ञा मिलती तो दूसरी तरफसे उनकी बुद्धि और शोधन शक्तिकी प्रशंसा होती। ऐसे काम करते करते उन्होंने तारके यंत्रका किस तरह आविष्कार किया यह कथा बड़ी रसमय है, परन्तु बहुत लम्बी है; लेकिन उस थप्पड़का असर यह हुआ कि उनके कानके परदे फट गये और हमेशाकेलिए वह बहरे हो गये।

संभवतः यह परिणाम किसीको बहुत गंभीर नहीं मालूम होगा, लेकिन इतना तो ज़रूर याद रखना होगा कि वही एडिसन जो अब तीन फुटके अंतरसे आवाज नहीं सुन सकता है फोनोग्राफ़का पहला शोधक है। इतना ही नहीं परन्तु यह बहरा मनुष्य ऐसे ऐसे सूक्ष्म स्वर सुन सकता है कि जिनको संगीत वा वादित्रशास्त्रके उस्ताद भी, जब तक एडिसन उनका ध्यान आकर्षित न करे, नहीं सुन सकते। सचमुच फोनोग्राफ़का ढूंढ निकालनेवाला ऐसा बहरा है और उसने अपनी प्रयोगशालाके सिवाय कहीं भी गानेका अभ्यास नहीं किया है—यह सुनकर सबको आश्चर्य होगा। वह एक राग भी नहीं गा सकते और वादित्रोंमें भी फोनोग्राफ़के सिवाय वह कुछ नहीं बजा सकते। अगर कोई यह समझे कि फोनोग्राफ़का बनानेवाला कोई कुशल गवैय्या होगा या वादित्रशास्त्रमें तो अवश्य निपुण होगा तो उसको निराश होना पड़ेगा, क्योंकि एडिसन इन दोनोंमेंसे कोई भी नहीं है। वह केवल विज्ञान शास्त्री और शास्त्रीय शोधक है।

इन बातोंकी व्याख्या एडिसनने इस प्रकार की है—"मैं खोपड़ी और दांतसे सुनता हूं। प्रायः मैं सिरको फोनोग्राफ़से लगाकर खोपड़ीसे ही बारीकसे बारीक स्वर भी सुन सकता हूं। अगर कोई स्वर इस तरह भी क्षीण होनेसे न सुनाई दे तो लकड़ीको दांतसे पकड़ता हूं, जिससे आवाज़ तेज़ और साफ सुनाई देती है।"

साधारण पाठकोंको यह बात अत्यन्त विस्मयजनक प्रतीत होगी, परन्तु भौतिक शास्त्र जाननेवालोंके लिए यह बात अत्यंत सुगम है। इसमें कोई एडिसनकी करामात नहीं है। इस बातका निश्चय सुगमतासे हो सकता है। अगर इच्छा हो तो आप अपने दांतसे सुन सकते हैं। बाहरसे आती हुई आवाज रोकनेके लिए कानमें अंगुली लगाकर, मुंहमें घड़ी रखिये और दांतसे धीरेसे दबाइये तो तुरन्त ही टिक टिक आवाज़ सुनाई देगी। अगर दांत अलग कर लिये जायं तो आवाज भी बंद हो जायगी। इससे स्पष्ट विदित है कि दांत और खोपड़ीका कानके अंतरविभागसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये उनका किसी ध्वनि उत्पन्न करनेवाले पदार्थसे संसर्ग कराया जाय तो कानको ध्वनि अवश्य पहुंचेगी। केवल एडिसन इतना ही अधिक कहता है कि कानकी रचनामें ऐसा कुछ दोष आ गया है, कि कान कई प्रकारकी ध्वनियोंको ग्रहण नहीं कर सकता है। अतः हम उनको कानसे नहीं सुन सकते हैं। लेकिन खोपड़ी और दांत द्वारा सुननेमें किसी प्रकारकी बाधा न होनेसे कितने ही अधिक प्रकारके स्वर ग्रहण कर सकते हैं।

एडिसनके मूल फोनोग्राफ़का नित्य नवीन सुधारोंसे इतना रूपान्तर हो गया है कि अब

उसको अद्भुतालयके अतिरिक्त एक कौड़ीमें भी कोई मोल न लेगा। इतना सुधार होनेपर भी एडिसनकी कल्पना बहुत दूर दौड़ती है। उनके मतानुसार फोनोग्राफ़ अति उत्तम वादित्रका स्थान ग्रहण करने लायक होगा और करेगा। आधुनिक यंत्रोंमें मशीनकी घड़घड़ाहट और कई अन्य प्रकारके सुर मिले रहते हैं। उन सबको मैं दूर कर सकूंगा, यह उनका विश्वास है। इतना ही नहीं, वह यह भी कहते हैं कि मैं ऐसा करना चाहता हूं कि कोई भी गीत गवैय्येके कण्ठसे उतना मधुर न लगे, जितना कि मेरे यंत्रमें भरकर, सुननेसे लगे। इसका कारण यह है कि प्रत्येक गवैय्येके गानेमें उसके ऊँचे स्वरके साथ साथ नाना प्रकारके धीमे स्वर भी उत्पन्न होते हैं। वे इतने धीरे और सूक्ष्म होते हैं कि साधारण श्रोता उनको पूर्णतया ग्रहण नहीं कर सकते और जितने अंशमें वे ध्वनियां (स्वर) नहीं सुनाई देतीं उतने ही अंशमें संगीतकी मधुरताका नाश होता है*। लेकिन मेरे यंत्रमें गवैय्येकी सब ध्वनियां ज्योंकी त्यों भर दी जायंगी और जब उसको बजाया जायगा तो उतना ही आनन्द आयेगा, जितना गवैय्येको पाससे सुननेमें आयेगा।

ग्रामोफ़ोनसे अधिक रोचक और लोकप्रिय यंत्र जिसका हालमें ही आविष्कार हुआ है सिनामेट्रोग्राफ़ है, जो जीते जागते, चलते फिरते चित्र दिखानेवाले यंत्र या बायसकोपके नामसे प्रसिद्ध है। इस आविष्कारको पूर्णतः व्यवहारिक बनानेका यश भी एडिसनको ही प्राप्त है। ये तसवीरें आजकल कितनी आकर्षक और उपयोगी हो गई हैं—यह बात किसी शिक्षित मनुष्यसे छिपी नहीं है। लेकिन इन्हें देखकर बहुतोंके दिलमें यह ख़्याल पैदा हुआ होगा कि ये चित्र हिलने डोलनेके साथ बोलते हंसते और गाते होते तो और भी अच्छा होता।

एडिसनने जब सिनेमाका (cinema) शोध किया, तबसे ही उनका विचार ग्रामोफ़ोन और सिनेमाको किसी तरह जोड़ देनेका था। कुछ समय यानी चार पांच वर्षके प्रयोगोंके बाद यह काम भी एडिसनने पूरा कर डाला है। अब जो कायनेटोफोन (kinetophone) तय्यार हुये हैं, उनमें सिनेमा और ग्रामोफ़ोन ऐसी तरह जोड़े गये हैं कि चित्रके साथ ध्वनि भी मुद्रित होती है और फिर उचित समयपर उत्पन्न भी की जा सकती है। इस तरह चलते फिरते चित्रोंके साथ साथ बोलते हंसते, गाते बजाते, चित्र भी विज्ञानने उत्पन्न किये हैं। यंत्रका नाम दोनोंका संयोग सूचित करता है।

कहते हैं कि एक रातको ऐडीसन उसके बनानेके विचारमें बैठा था और जितनी युक्तियां उसके हृदयमें फुरती थीं उन सबका सविस्तार वर्णन व आकृति कागज़पर खैंचता जाता था। इस तरह रातको बहुत देर तक बैठकर कई घंटोंमें योजनापत्रोंका एक बड़ा भारी बंडल तय्यार हो गया। दूसरे दिन उसका मुख्य सहायक उनको ले गया। चित्रकारी करने वालोंने, यंत्रविद्याविशारदोंने, और विज्ञान शास्त्रियोंने, जो उसके कारखानेमें काम करते थे, सब योजनाओंकी परीक्षा आरम्भ की और जो उनको काममें आने लायक मालूम पड़ीं उनपर अधिक प्रयास करने लगे। एडिसन उन योजनाओंके प्रयोगोंको बारबार देखने और घड़ी घड़ी उनकी त्रुटियोंको पूरा करनेमें व्यस्त रहने लगे। इस तरह चार वर्षमें हज़ारों सुधार, परिवर्तन और अनुभवोंके बाद यह यंत्र तैय्यार हुआ। अब इस यंत्रमें परिवर्तन कुछ करना एडिसनको आवश्यक न जान पड़ता था, परन्तु तो भी उन्होंने अपने मुख्य सहायकके एक प्रश्नके उत्तरमें यही अनुमति प्रकट की कि दो चार मास तक

* भिन्न भिन्न बाजों और मनुष्योंके उसी स्वरके उत्पन्न करनेपर भी कुछ न कुछ भेद रहता ही है। इसी भेदके कारण बाजों और मनुष्योंकी आवाज़ स्पष्ट पहचान ली जाती है। यह भेद उपरोक्त ध्वनियोंके कारण हो होता है। गानेकी मधुरता इन्हींपर निर्भर है।—सं

उससे कारखानेमें ही काम लेकर देखा जाय और तद्‌पश्चात् बिक्रीके लिए भेजा जाय। इस घटनासे ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक शोधोंमें कितना धन व्यय होता है और समय लगता है। अन्तमें वह यंत्र दो बालकोंको जो उसके संबंधमें कुछ भी न जानते थे सोंपा गया। उनको उसके चलानेकी रीति समझा दी गयी। चार पांच महीनेके बाद एडिसनने पूछा कि उस यंत्रकी क्या दशा है। बालक जहां खेलते थे वहां जाकर देखा तो मालूम हुआ कि यंत्र उनको अत्यंत प्रिय लगा है।

कुछ दिनोंके बाद मुख्य पत्रोंके प्रतिनिधियों और व्यापारियोंको निमंत्रण दिया गया और कायनेटोफोनका खेल उनको दिखाया गया। यंत्रके उपयोग करनेके अधिकारके लिये बहुत जगहोंसे मांग आने लगी। नाटक शालाओंके मैनेजरोंकी समितिने जो वार्षिकधन (royalty) देना कहा है, केवल उसीसे एडिसनको पांच लाख डालरका(१५००००० रुपये) नफा होगा।

क्या यह उदाहरण--एडिसनके आविष्कार कितने परिश्रमसे होते हैं, कितने उपयोगी और मनोरंजक होते हैं और उनसे आदमी कितना पैदा कर सकता है--इन सब बातोंको दिखानेको बस नहीं है? यह पद्धति उनकी लाक्षणिक है और इस पद्धतिके अनुसार काम करनेमें उन जैसे प्रतिभा-शालीको भी धैर्य और आग्रहसे काम लेना पड़ता है।

प्रिय पाठकगण, अगर आपको इससे आनन्द प्राप्त हुआ है, अगर आप इस पद्धति और उसकी सिद्धिके अन्य उदाहरण जाननेके लिये उत्कंठित हैं, अगर आप एडिसनका अभिप्राय अर्थात् अपने जीवनमें विज्ञान क्या क्या रंग दिखलायगा जानना चाहते हैं, तो कुछ समय तक विश्राम कीजिये, फिर किसी समय आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगा।

बिजलीकी तरंगें

[ले० प्रो० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

सं १८४४ वि० तक लीडनघट या विद्युत्संग्राहक (condenser) बनानेकी तरकीब यही थी कि दो धातुके पत्रोंको बहुत पास पास रख कर उनके बीचमें कांच या अन्य रोधक वस्तुकी एक पतली तह रख दी जाती थी। किंतु हर्ट्ज़ने (Hertz) एक नये प्रकारका विद्युत्-संग्राहक बनाया। इसमें भी दो धातुके पत्र थे, किंतु ये दोनों एक ही धरातलमें एक दूसरेसे बहुत दूर-पर रखे गये, और प्रत्येक पत्रसे एक एक छड़ जोड़ दी गई, जिसके सिरेपर एक धातुकी गोली भी लगी थी। पत्र इस प्रकार रखे थे कि
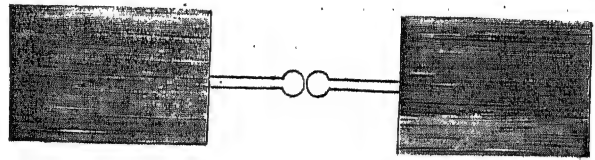
चित्र १ हर्ट्ज़ का विद्युत्संग्राहक।

ये दोनों छड़ें एक ही सीधमें थीं। दोनों गोलियोंके बीचमें थोड़ी ही जगह थी। जब एक पत्रपर धन-विद्युत् और एक पर ऋण-विद्युत् पहुंचा दी जाती है, तब इनमें और लीडनघटके पत्रोंमें कोई अन्तर नहीं रह जाता, केवल कांचका काम चारों ओर-की वायु कर देती है। यदि मात्रा इतनी हुई कि गोलियोंके बीचमें चिनगारी पैदा हो जाय तब तो दोनों प्रकारकी विद्युत् आपसमें मिल जावेंगी, किन्तु ऐसा होते समय विद्युत्स्पन्दन होगा अर्थात् दोनों छड़ोंमें विद्युत्कण बड़े वेगसे कम्पन करने लगेंगे। और जैसा पहले बतलाया जा चुका है इस कम्पनका परिणाम यह होगा कि विद्युत्कण-

Physics भौतिक शास्त्र]

के साथ चलनेवाली शक्ति रेखाओंमें मोड़ पड़ जावेंगे और ये मोड़ चारों ओर ईथरमें बड़े वेगसे गमन करने लगेंगे; अथवा, संक्षेपमें, बिजलीकी एक लहर या तरंग चलने लगेगी। लीडनघटमें भी यही होता था, किन्तु हर्ट्ज़के इस संग्राहक-में यह विशेषता है कि सभी विद्युत्कणोंकी तरंगें सर्वथा एकसी होंगी और एक ही प्रकार ईथरमें फैलेंगी। लीडन घटकी टेढ़ी सीधी शक्लके कारण कोई विद्युत्कण किसी ओर तरंग भेजता है और कोई किसी ओर, किन्तु प्रस्तुत यंत्रमें सब विद्यु-त्कण एक ही प्रकार तरंगें भेजते हैं, जिन सबके मिल जानेसे एक बहुत शक्तिशाली तरंग बन जाती है।

इस तरंगके अस्तित्वका प्रयोगद्वारा पता चलाना कोई सरल कार्य न था। परन्तु हर्ट्ज़को भी बहुत दूरकी सूझी। उन्होंने एक तारको मोड़-कर एक वृत्त बनाया और उसके दोनों सिरोंपर दो गोलियां लगा कर ऐसा प्रबंध किया कि दोनों गोलियोंके बीचमें थोड़ासा स्थान बच जानेके अतिरिक्त वृत्तके पूरा होनेमें कोई कसर न रह जाय (चित्र २), ऐसे वृत्तको अब हर्ट्ज़का अनुनादी (resonator) छल्ला कहते हैं। इसकी दोनों गोलियां लीडन जारके भीतर और बाहरके टीन पत्रोंका काम देती हैं, मध्यवर्त्ती वायु बोतलके कांचका काम देती है। अतः यह समझा जा सकता है कि यह भी एक प्रकारका बहुत छोटा (condenser) विद्युत्संग्राहक है, जिसके दोनों वाहक भाग एक मोटे तार द्वारा जुड़े हैं। यदि इसके विद्यु-त्कणोंको भी वेगका धक्का लगे तो अवश्य ही वे भी स्पन्दन करने लगेंगे। उनके स्पन्दनका समय भी इस अनुनादीके आकार और परिमाणके अनु-सार निश्चित होगा, जिस प्रकार छेड़े जानेपर सितारके तारसे उसकी लम्बाई और तनावके अनुसार ही सुर निकलता है।
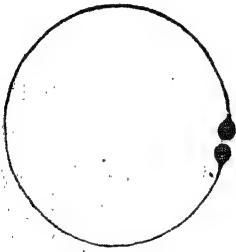
चित्र २

हर्ट्ज़ने अपना स्पन्दक एक बड़े कमरेमें इस प्रकार रखा कि उसकी छड़ें आड़ी (Horizontal) थीं और उनकी गोलियोंके बीचमें प्रायः आध इंच-का दूरी थी। इन छड़ोंको एक विद्युत्यंत्रसे जोड़ कर उन्होंने बिजलीकी तरंगें उत्पन्न कीं। सामने-की दीवार उन्होंने जस्तेके पत्रसे ढक दी। तब अनुनादी छल्लेको इस प्रकार रखा कि उसका पृष्ठ देश खड़ा और स्पन्दककी छड़ोंसे समानान्तर रहे और गोलियां ऊपर हों। यह आवश्यक नहीं है कि अनुनादीका तल खड़ा ही हो। स्पन्दककी छड़ोंसे समानान्तर रह कर, वह पड़ा या खड़ा कैसा भी रखा जा सकता है। तब स्पन्दकका कार्य प्रारम्भ करके अनुनादीको दीवारसे भिन्न भिन्न दूरियोंपर रखा। ज्ञात हुआ कि किसी किसी जगह गोलियोंके बीचमें चिनगारियां देख पड़ती थीं। इससे स्पष्ट परिणाम निकला कि अनुनादीमें भी विद्युत्स्पन्दन हो रहा है। नापनेसे यह भी मालूम हो गया कि जिन जिन स्थानोंपर चिनगारियां दिखलाई देती हैं वे एक दूसरेसे क्रमसे समान अन्तर पर हैं। इन्हीं स्थानोंके बीचमें ऐसे भी स्थान हैं, जहां चिनगारी बिलकुल नहीं निकलती।

हर्ट्ज़के इस प्रयोगसे डाक्टर यंगके प्रकाश सम्बंधी उस प्रयोगकी याद आ जाती है, जिसमें उन्होंने दो प्रकाशोंको मिलाकर अंधकार उत्पन्न किया था। यहां भी स्पन्दकसे चलनेवाली तरंग और दीवारसे परावर्त्तित होनेवाली तरंगके मि-लनेसे कहीं अधिक स्पन्दन होता है और कहीं उसका सर्वथा अभाव हो जाता है। इस बातको भली भांति समझनेके लिये हमें देखना चाहिये कि जो तरंग स्पन्दकसे चलती है वह अनुनादी-के पास पहुंचकर क्या करती है।

यह पहले दिखलाया जा चुका है कि इन तरं-गोंके चलनेसे मतलब यह है कि विद्युत्शक्ति रेखा-

ओं और चुम्बकीय शक्ति रेखाओंमें कुछ मोड़ पड़ जाता है और यह मोड़ ईथरमें गमन करता है। यदि स्पन्दककी गोलियों और अनुनादीकी गोलियोंके बीचसे एक रेखा खींची जावे तो उसे अक्षीय रेखा कह सकते हैं। तब यह समझनेमें कोई कठिनाई न होगी कि यदि तरंग इस रेखापर गमन करे तो विद्युत्शक्ति रेखा इससे समकोण बनाएगी और स्पन्दककी छड़ोंसे समानान्तर रहेगी। अतः जब वह अनुनादीकी गोलियोंके पास पहुंचेगी तब अवश्य ही दोनों गोलियोंके बीचमें कुछ विद्युत्शक्ति उत्पन्न हो जायगी। अर्थात् क्षणभरके लिये एक गोलीपर धनविद्युत् और एकपर ऋणविद्युत् पैदा हो जायगी और विद्युत्कणोंको इस शक्ति द्वारा एक धक्का लगेगा।

चित्र ३

परन्तु तरंग अभी यहीं नष्ट न हो जायगी। वह आगे बढ़ती ही जावेगी और दीवारसे परावर्तित होकर उसी मार्गसे पुनः लौटेगी। इस बार भी ठीक पहलेकी भांति अनुनादीके विद्युतकणोंको धक्का लगेगा। इन दोनों धक्कोंके बीचका समय उतना ही होगा जितना कि तरङ्गको वहांसे दीवारतक जाकर लौट आनेमें लगता है। यदि ये दोनों धक्के उचित समयपर लगें, तब तो परिणाम यह होगा कि विद्युत्कण अधिक ज़ोरसे स्पन्दन करने लगेंगे और यदि उचित समयपर न लगा तो उनका स्पन्दन घट जावेगा। जैसे यदि एक झूलेको एक धक्का मारें और दूसरा धक्का ठीक उसके एक सामयिक समय के पश्चात् लगावें तब तो झूला अधिक दूर तक चलने लगता है। किन्तु यदि आधे सामयिकसमयके बाद ही धक्का लगा दिया जावे तब तो पहले धक्केकी शक्तिका भी नाश हो जायगा और झूला ठहर ही जावेगा। यदि झूलेके सामयिकसमयके अंतरसे बहुत ज़रा ज़रासे भी धक्के लगाये जावें तब भी झूलेका कम्पविस्तार बहुत बढ़ सकता है, किन्तु यदि इन धक्कोंका अंतर और कुछ हो तो ज़ोरके धक्कोंसे भी झूला न चलेगा।

इस बातका एक बार बड़ा भयंकर परिणाम हुआ। एक सेना एक पुलपरसे उतर रही थी। सब सिपाही एक साथ ही और नियत समयके अंतरसे पांव पुलपर रखते थे। पुलको भी उनके प्रत्येक क़दमपर एक हलका धक्का लगता था। संयोगवश उस पुलके कम्पनका सामयिक समय

भी उतना ही था। थोड़ी ही देरमें उसका कम्प-विस्तार इतना बढ़ गया कि उसके कारण वह टूट गया और सैनिक नदीमें गिर पड़े !*

इससे परिणाम यह निकला कि अनुनादीके स्पन्दनका सामयिकसमय यदि उतना ही है जितना कि तरंगको वहांसे दीवारतक जाकर लौट आनेमें लगता है, तब तो उसमें चिनगारी निकल सकती है। यदि इससे कम या ज़्यादा हुआ तो चिनगारी न निकलेगी। हां, जितनी देरमें तरंग लौटकर आवे उतनी देरमें अनुनादीके विद्युत्कण एक स्पन्दनके स्थानमें दो चार या और अधिक स्पन्दन भी कर लें तो कोई हानि नहीं।

गणितसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि हर्ट्ज़के अनुनादीके विद्युत्कणोंके स्पन्दनका सामयिक समय एक सेकंडका वह भाग है जो उस छल्लेके व्यासको (सेंटीमीटरोंमें) ८ से गुणा करके ३० अरबका भाग देनेसे प्राप्त होता है। जैसे यदि अनुनादीका व्यास ५० सेंटीमीटर (लगभग २० इंच) है तो उसका सामयिक समय एक सेकंडका ७॥ करोड़वां भाग और आधे कम्पनका समय सेकंडका १५ करोडवां भाग हुआ। अर्थात् ऐसे अनुनादीके विद्युत्कण एक सेकंडमें ७॥ करोड बार स्पंदन कर लेंगे!

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि यद्यपि उपरोक्त समय एक सेकंडसे उतने ही छोटे हैं, जितना कि एक सेकंड आधे महीनेसे, तथापि वे ठीक ठीक नापे जा सकते हैं। इसलिए यदि हर्ट्ज़के अनुनादीके द्वारा ऊपर लिखी हुई विधिसे उन स्थानोंका अन्तर नाप लिया जावे, जहां कि अनुनादीमें चिनगारी निकलती है, तब स्पष्ट है कि अनुनादीके सामयिक समयमें विद्युत्तरंग उतनी दूर चल कर लौट आती है, अर्थात् तरंगोंका वेग मालूम करनेके लिये इस दूरीके द्विगुणको अनुनादीके सामयिक समयसे भाग दे देना चाहिये।

१९४८ वि० में जयनिवा नगरमें (Geneva) सैरैसिन (Sarasin) और डिलाराइव ने (de la Rive) यह वेग बड़ी सावधानीसे नापा था। उन्होंने भिन्न भिन्न नापके अनुनादियोंका व्यवहार किया, किन्तु परिणाम प्रायः यही निकला। एक अनुनादीका व्यास १०० सेंटीमीटर था। उसके प्रयोग करनेपर चिनगारीवाले दो संलग्न स्थानोंका अंतर ४०६ सेंटीमीटर आया। इस अनुनादीका सामयिक समय $\frac{१०० \times ८}{३०,०००,०००,०००}$ सेकंड हुआ

अतः तरंगका वेग हुआ $\frac{२ \times ४०६ \times ३०,०००,०००,०००}{१०० \times ८}$

= प्रायः ३० अरब सेंटीमीटर प्रति सेकंड। प्रकाश तरंगोंका वेग भी ठीक इतना ही है। इस ही प्रकारके और अन्यान्य अगणित प्रयोगों द्वारा अब यह निश्चित हो गया है कि हर्ट्ज़के स्पंदक द्वारा जो बिजलीकी तरंगें उत्पन्न होती हैं वे आकाशमें प्रकाश तरंगोंके वेगसे चलती हैं। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये तरंगें भी उसी ईथरमें यात्रा करती हैं, जिसमें प्रकाशकी तरंगें चलती हैं।

यदि ऐसा है तो प्रकाशकी भांति ही इन तरंगोंका भी परावर्त्तन और त्रिपार्श्व द्वारा वर्त्तन (refraction) होना चाहिये। हर्ट्ज़ने बड़ी चतुराईसे इन सब बातोंमें भी प्रकाश और विद्युत्तरंगोंकी समता प्रयोगोंद्वारा प्रमाणित कर दी, किन्तु उन बातोंके उल्लेखकी यहां आवश्यकता नहीं।

जब निश्चल जलमें हम एक कंकड़ डालते हैं तब उस केन्द्रसे वृत्ताकार तरंगें चलती हैं, और बहुत दूर तक फैल जाती हैं। अर्थात् जलमें एक प्रकारका मोड़ बन जाता है और वह स्थिर जलकी पृष्ठपर अपना स्थान परिवर्त्तन करता है।

इसी प्रकार विद्युत्कणके वेगमें परिवर्त्तन करनेसे, उसे सहसा चला देने या ठहरा देनेसे,

* तबसे पुलोंपर सिपाहियोंको कदम मिलाकर चलनेकी आज्ञा नहीं है। सं.

ईथर समुद्रमें भी एक गोलाकार तरंग बन जाती है, और इस तरंगमें भी सीधी शक्ति रेखाओंमें मोड़ बनता है, जो उन्हीं रेखाओंकी दिशामें यात्रा करता है।

यदि हम एक तारके विद्युत्कणोंके तारकी लम्बाईकी दिशामें होनेवाले स्पन्दनका विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि प्रत्येक विद्युत्कण ऊपर लिखित गोलाकार तरंग बनाता है। वे सब तरंगें एक दूसरीसे मिलती हैं। इस कारण प्रयोग द्वारा जो तरंग हम देख सकेंगे वह गोलाकार न होगी, क्योंकि उसमें तो सभी तरंगोंका भाग है। यह समझना कठिन न होगा कि यह तरंग बेलनाकार होगी। तार इसकी अक्षपर होगा। विद्युत्शक्ति तारके समानान्तर होगी और चुम्बकीय शक्ति रेखाएँ तारके चारों ओर वृत्ताकार होंगी।

इसी बातको एक दूसरी प्रकार समझ सकते हैं। चित्र ४ में मान लीजिये कि छोटे छोटे
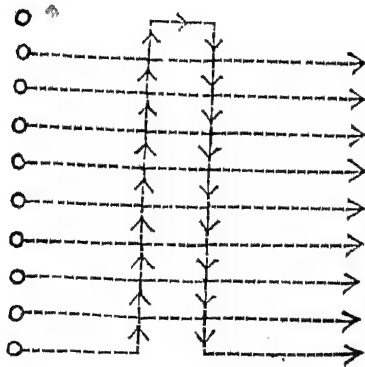
चित्र ४

वृत्त तारके विद्युत्कण हैं और विन्दुमयी रेखाएँ विद्युत्शक्तिकी रेखाएँ हैं। अब यदि ये कण सहसा ऊपरकी ओर कूद कर झटपट अपने स्थानपर लौट आवें तो इन शक्ति रेखाओंमें मोड़ पड़ जावेंगे। रस्सीके एक सिरेको पकड़ कर हाथको शीघ्रतासे ऊपर नीचे करनेपर रस्सीमें जिस प्रकार मोड़ पड़ जाता है और वह मोड़ रस्सीपर चलता है ठीक उसी भांति ये मोड़ भी इन रेखाओं-पर गमन करेंगे। सरलताके लिये मान लीजिये कि इन मोड़ोंका आकार जैसा चित्रमें दिया है वैसा ही है। यह स्पष्ट है कि ये सब मोड़ एक साथ ही बनते हैं और एक साथ ही एक ही वेगसे गमन भी करते हैं। अतः बिना कठिनाई हम यह समझ सकते हैं कि स्थिर सीधी शक्ति रेखाओंके अतिरिक्त, तारसे समानान्तर, दो और विद्युत्-शक्ति रेखाएँ हैं, जो प्रकाशके वेगसे गमन कर रही हैं। एकमें विद्युत्शक्ति ऊपरकी ओर है और दूसरीमें नीचेकी ओर।

यह भी स्पष्ट है कि तारके चारों ओर चुम्बकीय शक्तिके भी वृत्त होंगे, क्योंकि विद्युत्शक्ति रेखाके चलनेपर चुम्बकीय शक्ति अवश्य ही उत्पन्न होती है। यदि हम तारको सिरेकी ओरसे देखें और हममें इन चुम्बकीय शक्ति रेखाओंको देख लेनेकी भी शक्ति हो तो हम देखेंगे कि जिस प्रकार जलमें पत्थर डालनेसे तरंगोंके वृत्त बनते हैं और फैलते हैं उसी प्रकार इन चुम्बकीय शक्ति-के वृत्तोंका भी आकार बढ़ रहा है। यदि वह तार बहुत लम्बा नहीं है तो ये गमनशील विद्युत् शक्ति रेखाएँ अन्तरहित वक्राकार (closed loops) हो जाती हैं (चित्र ५)। चुम्बकीय रेखाएँ तब भी वृत्ताकार होंगी।

उनका धरातल इन रेखाओंके धरातलसे समकोण बनायेगा। विद्युत्कणोंके प्रत्येक स्पन्दन द्वारा इन रेखाओंका एक फंदा (loop) तारके निकट बन जाता है और वह प्रकाशके वेगसे चलना प्रारम्भ कर देता है। यदि विद्युत्कण स्पन्दन करते ही रहें तो ये फंदे भी एकके बाद एक निकल निकल कर फैलते ही रहेंगे।

किन्तु बेतार में (wireless telegraphy) एक दूसरी प्रकारका स्पन्दक काममें लाते हैं। इसमें एक तार पृथ्वीपर खड़ा होता है और

पृथ्वीके भीतर गड़े हुए धातुके एक पत्रसे जुड़ा रहता है। इसे तार न कहकर छड़ कहना अच्छा
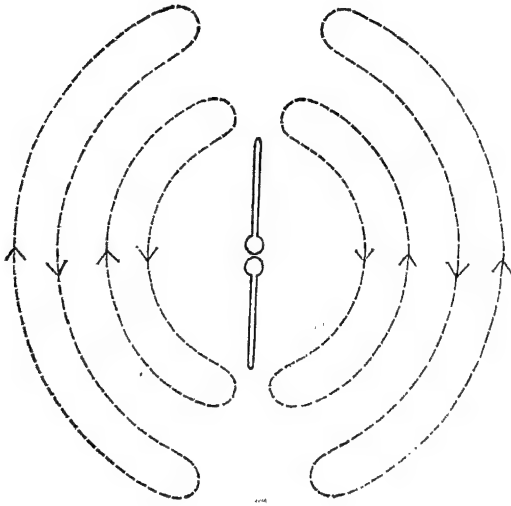
चित्र ५

होगा, क्योंकि यह खूब मोटा होता है। इसे वायु-वर्तीतार (aerial wire) या (antenna) ऐनटेना कहते हैं। इसमें बहुत शक्ति शाली स्पन्दन अनेक उपायों द्वारा उत्पन्न कर देते हैं। ये उपाय आगे बतलाये जावेंगे। यदि यह समझ लिया जावे कि पृथ्वीका पृष्ठ अच्छा वाहक है (और यह बात है भी ठीक, कमसे कम समुद्र पर) तब यह स्पष्ट है कि यह ऐनटेना हर्ट्ज़के स्पन्दकका आधा भाग है। अतः इससे चलनेवाली विद्युत् शक्ति रेखाएँ आधे फंदोंके आकारकी होती हैं। (चित्र ६)

इस चित्र में यह प्रयत्न किया गया है कि वैद्युत और चुम्बकीय शक्ति रेखाओंको दिखलाया जाय। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि सिने-मेटोग्राफ (cinematograph) के जीविति चित्रों-के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारके चित्रके द्वारा इनका व्यक्त करना असंभव है, क्योंकि ये रेखाएँ स्थिर नहीं हैं वरन् छड़से निकल कर प्रकाशके वेगसे चारों ओर दौड़ती हैं। वृत्ताकार चुम्बकीय रेखाएँ भी इसी प्रकार फैलती हैं।

एक बात ध्यान देने योग्य है। छड़से किसी एक दिशामें चलनेसे ज्ञात होगा कि कहाँ विद्युत
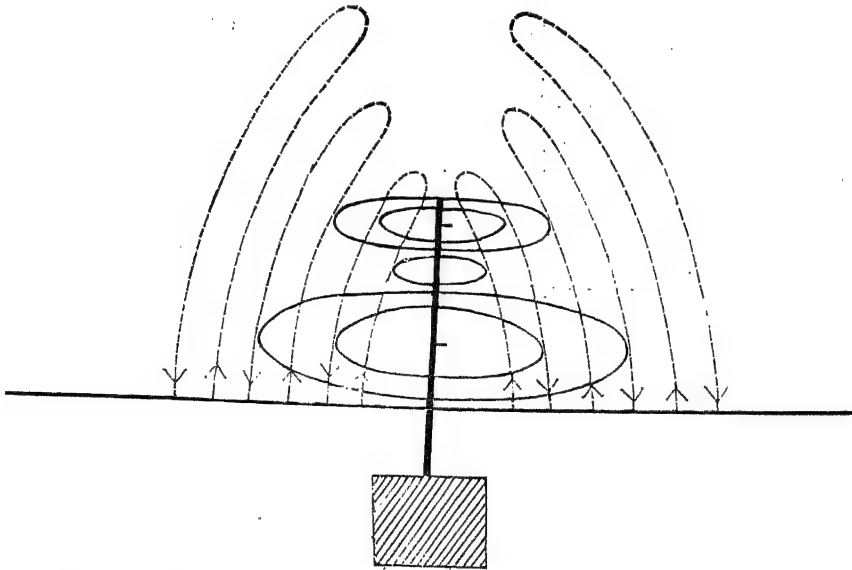
चित्र ६—टूटी रेखाएं विद्युतशक्ति रेखाएँ हैं और पूरी रेखाएं चुम्बकीय शक्ति रेखाएं हैं।

रेखा ऊपरसे नीचेकी ओर है और कहीं नीचेसे ऊपरकी ओर। यही नहीं, यह दिशा परिवर्त्तन सदा उतनी ही दूर चलनेसे मिलता है। या यों कहिये किसी एक स्थानसे जितनी दूर चलनेपर विद्युत् रेखाकी दिशा बदल जावेगी, उस दूसरे स्थानसे भी उतनी ही दूर चलनेपर यह परिवर्त्तन होगा। यदि ऐसे दो स्थानोंकी दूरी नापी जावे कि जिनपर विद्युत्शक्ति एक ही दिशा और एक ही कलामें (phase) है तो उस दूरीको तरंगान्तर (wave-length) कहते हैं। पानीकी तरंगोंमें भी इसी प्रकार एक उन्नत भागसे दूसरे तककी दूरीको तरंगकी लम्बाई कहते हैं

यह पहिले बतलाया जा चुका है कि इन तरंगोंका वेग प्रकाशके वेगके बराबर अर्थात् १८६००० मील प्रति सेकंड होता है। यह भी लिखा जाचुका है* कि आवृत्ति और तरंगान्तरका गुणनफल तरंगवेगके बराबर होता है। अतः यदि स्पन्दककी आवृत्ति कम हुई तो तरंगें बहुत लम्बी होंगी और यदि स्पन्दन संख्या अधिक हुई तो यह तरंगान्तर भी कम होगा। या फुटोंमें नापनेपर

$$\text{तरंगान्तर} = \frac{\text{९८४, ००००००}}{\text{स्पन्दन संख्या}}$$

और मीटरोंमें नापनेपर

$$\text{तरंगान्तर} = \frac{\text{३००,०००,०००}}{\text{स्पन्दन संख्या}}$$

उदाहरणार्थ यदि स्पन्दन संख्या १०,००,००० हो तो तरंगान्तर ९८४ फुट या ३०० मीटर होगा। विद्युत् तरंगें प्रकाशकी तरंगोंकी भांति छोटी छोटी नहीं होतीं, किन्तु कई मील लम्बी भी हो सकती हैं। वास्तवमें तो प्रकाश और तापकी तरंगें भी विद्युत् तरंगें ही हैं। इस बातको प्रमाणित करनेकेलिए यह आवश्यक था कि इन तरंगोंकी लम्बाई कम करके प्रकाश और तापकी तरंगोंके बराबर की जावे। इस प्रयत्नमें इस देशके सुप्रसिद्ध डाक्टर (अब सर) जगदीशचंद्र वसुने ही सबसे प्रथम बहुत कुछ सफलता प्राप्त की थी।

ये तरंगें दो प्रकारकी होती हैं। एक तो वे जो एक ही स्पन्दन द्वारा बनती हैं। इनके चित्र ऊपर दिये गये हैं। इसी विभागमें वे भी तरंगें आ सकती हैं जो एकसे अधिक स्पन्दनों द्वारा बनती हैं, किन्तु जिनका कम्पविस्तार (amplitude) घटता जाता है और अन्तमें कुछ नहीं रहता। यदि एकके बाद एक ऐसी बहुतसी तरंगें चलें, तो एक तरंग श्रेणी बन जायगी जिसका चित्र नीचे दिया जाता है (चित्र ७)

(१) एक हीयमान (Damped) तरंग समूह

(२) (३) (४)

हीयमान तरंग श्रेणी

चित्र ७

हर्ट्ज़ीय स्पन्दकसे इसी प्रकारकी हीयमान तरंगश्रेणी उत्पन्न होती है।

तरंगका कम्पविस्तार किस हिसाबसे घटता है यह जानना बहुत आवश्यक है। इस घटावके नापनेकी रीति यह है कि यह बतलाया जावे कि कम्पविस्तारमें एक प्रतिशत कमी कितनी तरंगोंके निकल जानेपर होती है। जैसे यदि १० वीं तरंगका कम्पविस्तार पहलीसे एक प्रतिशत कम है तो कहा जायगा कि उस तरंगसमूहका घटाव ९ है। इस घटावका भाग ४·६ में देनेसे एक संख्या प्राप्त होती है जिसे हीनता (Derement) कहते हैं। जिस तरंग समूहकी हीनता जितनी ही अधिक होगी उसमें उतनी ही कम तरंगें होंगी।

* विज्ञान वृश्चिक १९७४ पृष्ठ ७७–सर्वव्यापी ईथर और प्रकाश सिद्धान्त

चित्र ७ की हीयमान तरंगश्रेणीमें दो तरंग समूहोंमें अंतर बहुत है। यह भी हो सकता है यह अंतर तरंग समूहकी लम्बाईकी अपेक्षा बहुत ही अधिक हो। किन्तु कभी कभी ऐसी भी श्रेणी-से काम पड़ता है जिसमें यह अन्तर बहुत ही थोड़ा हो। इनके अतिरिक्त एक दूसरी प्रकारकी तरंगें होती हैं जिनमें कम्पविस्तार घटता नहीं। ऐसे एक तरंग समूहका चित्र नीचे दिया जाता है।

चित्र ८

सोध अर्थात् छुआछूत

[ले०—'विज्ञान-विद्यार्थी']

परिवर्तन जीवन-शक्ति या सजीवता-का लक्षण और संसारकी उन्नति-का एकमात्र साधन है। जहां परिवर्तन नहीं होता, तहां मृत्यु शीघ्र ही अपना डेरा आ जमाती है। भारत भी मुगल बादशाहोंके समयमें निस्तब्ध रहा, पर मर-हटोंके राज्य कालसे फिर इसमें जागृतिके चिह्न दीखने लगे हैं। उपर्युक्त राज्यवंशोंके शासन-कालमें यहां परिवर्तन होते अवश्य रहे, पर जित-नी कायापलट अन्तिम पचास वर्षोंमें हुई है, उतनी शायद गत दो शताब्दियोंमें भी न हुई होगी। इसके मुख्य कारण विचारकी स्वतंत्रता, हिन्दू समाजके बन्धनोंका ढीला पड़ना, यात्रा करनेके सुगम साधन, भिन्न भिन्न प्रान्तोंके निवा-सियोंमें परस्पर समागम और अनेक मतमतान्तर-का विकास आदि हैं। यहांपर हम उस महान् परिवर्तनके एक अंग विशेषपर ही विचार करेंगे और इस बातका अन्दाज़ा लगानेकी कोशिश करेंगे कि सोधके सम्बन्धमें कितना परिवर्तन

Hygiene स्वास्थ्यरक्षा]

हुआ है, उसका रूप स्थायी है अथवा नहीं और उसका प्रभाव भविष्यमें भारतपर क्या पड़ेगा।

सुभीतेकेलिए हम इस विषयके तीन विभाग करके, प्रत्येकपर क्रमसे विचार करेंगेः—

(१) खाने पीनेमें सोध

(२) घरों और कपड़ोंका सोध

और (३) मिलने भेंटनेमें सोध।

खाने पीनेका सोध

पुरानी प्रथाके अनुसार प्रत्येक घरमें एक रसोई अलहदा होती है, सुबह और शाम घरकी कोई स्त्री या रसोइया स्नान करके धोकर पहलेसे सुखाया हुआ वस्त्र पहनता है और रसोईमें प्रवेश करता है। एक बार जो कुछ सामग्री भोजन बनानेकेलिए पर्याप्त होती है लेकर वह चौकेमें चला जाता है। फिर जबतक कि कुल भोजन न बन चुके और सब न खा चुकें, वह चौकेसे बाहर नहीं निकलता। यदि उसे किसी चीज़की आव-श्यकता पड़ती है, तो कोई दूसरा आदमी बाहरसे दे देता है, पर इस बातका ध्यान रखा जाता है कि बाहरवाला आदमी चौकेमेंकी धरती या अन्य वस्तुएं न छुए। कदाचित् रसोई बनाने-वालेको बाहर आनेकी आवश्यकता पड़ जाय, तो फिर चौकेमें जानेके पहले उसको अपने हाथ, पैर अच्छी तरह धोना और दूसरा धुला हुआ वस्त्र पहरना पड़ता है।

रसोईमें ही, या उससे मिले हुए किसी कमरे-में, छोटी छोटी क्यारियां बनी होती हैं। इन्हींमें बैठकर खाना खाया करते हैं। प्रायः प्रत्येक क्यारी-में एक आदमी बैठता है और उसे जातिवालोंके सिवा और कोई नहीं छू सकता। सजातियोंको भी न्हानेकी अपेक्षा रहती है। मद्रास और महा-राष्ट्रमें क्यारियां नहीं होतीं, परन्तु वहां ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंमें बहुत विचार किया जाता है। संयुक्तप्रान्तमें शूद्रोंको छोड़, द्विजातियोंमेंसे किसी जातिके आदमी बराबरकी क्यारियोंमें बैठकर खा सकते हैं, पर एक दूसरेको छू नहीं सकते।

मद्रास और महाराष्ट्रमें कच्चे पक्के या सखरे निखरेका कोई भेद नहीं समझा जाता। इसका कारण यही समझना चाहिये कि वे सदा, सुबह शाम, चावल अवश्य खाते हैं। पञ्जाबकी दशा बिलकुल विपरीत है, वहां कच्चे पक्केमें बिलकुल भेद नहीं माना जाता और न चौके वगैरहका ही ख्याल रहता है। ऐसा होना भी चाहिये था। जिस प्रान्तमें दिन रात लड़ाइयां हुआ करती थीं, जहां सदा मुसलमानोंके आक्रमण हुआ करते थे, जहां हिन्दू धर्मकी रक्षा करना ही कठिन हो रहा था, वहां इन साधारण बातोंमें ढील होना प्राकृतिक घटना थी।

संयुक्तप्रान्तमें पक्के खानेमें इतने कड़े नियम नहीं हैं। सभी द्विज बराबर बैठकर पक्का खाना खा लेते हैं। यदि कभी कोई बहुत कट्टर ब्राह्मण हुए तो पूरियां, दूधमें आटा सानकर, बनवाते हैं और तरकारीको नमकसे वञ्चित रखते हैं। यदि दूध-मलाई खानेको मिले तो तो सभी, महाराष्ट्र या इतर देशीय, ब्राह्मण या अब्राह्मण, चौकेका ध्यान नहीं रखते और मिठाइयोंके साथ पूरा सलूक करते हैं।

अब जैसे जैसे पाश्चात्य सभ्यताका प्रचार होता जाता है, वैसेही चौकेपर चौका फिरता जाता है और मेज़ कुर्सी अपना रंग जमाती हैं। यदि ऐसा घरपर, दरिद्रताके कारण, कर न सकें, तो सभाओंमें तो करना फैशन ही हो गया है। चलते हुए खानेमें, जूते पहरे खड़े खड़े या बाज़ारोंमें खानेमें अब लोग इतना नहीं झिचकते। कच्चा खाना भी बैठकमें या दफ़तरमें मंगाकर खाना बुरा नहीं समझा जाता। कहार या किसी और नौकरको खानेकी वस्तुएं छुलानेमें भी कुछ हर्ज नहीं समझा जाता। सोडा, लेमनेडकी बोतलें उड़ाना भी सभ्यताका चिह्न ख्याल किया जाता है।

अब हमको यह विचार करना है कि वैज्ञानिक दृष्टिसे क्या कर्तव्य है।

भोजन सुपाच्य, हालका पका हुआ, शुद्धतासे बनाया हुआ, शुद्ध आदमियोंके हाथसे परसा गया, शुद्ध स्थानपर, शुद्ध और स्वस्थ चित्तसे खाना चाहिये।

यदि इतनी शर्तें पूरी हो जाती हैं तो वैज्ञानिकोंको कुछ शिकायतका मौका नहीं है, उन्हें न नूतन प्रथासे प्रेम है और न पुरानी प्रथासे द्वेष।

अब यदि विचार किया जाय तो पुरानी प्रथाके अनुसार यह सब नियम आसानीसे और बिना खर्चा उठाये बरते जा सकते हैं। उसमें जो दो चार त्रुटियां दीख पड़ती हैं वह यह हैं:—वस्त्र चाहे भले ही मैला हो पर जहां उसे पानीमें खंगाल कर सुखा दिया कि वह पवित्र हो गया। फिर वह बिलकुल सफेद कपड़ेकी अपेक्षा भी अच्छा समझा जाता है। इसमें सिर्फ यह न्याय है कि धोकर धूपमें सुखा देनेसे यदि रोगाणु कपड़ेमें होंगे तो मर जायंगे, पर तो भी यह बात रसोइयोंको सिखलानी चाहिये कि वे अपने कपड़ोंको रोज़ साबुनसे धोवें और साफ़ सफ़ेद रखें। रसोईमें जानेके पहले अवश्य ही उनके हाथ, साबुन या मट्टीसे, अच्छी तरहसे, कुहनीतक, धुला देने चाहिये। यदि रसोइयेको खांसी हो तो जैनियोंकी तरह उसके मुंहपर कपड़ा बांध देना चाहिये। उसको उफान आनेपर या चूल्हा जलानेकेलिए फूंकनेकी सख्त मुमानियत कर देनी चाहिये। दूसरी त्रुटि जो प्रायः देखी जाती है वह चौकेके 'पोते' के सम्बन्धमें है। जो कपड़ा पोतनेकेलिए रखा जाता है, वह कई सप्ताहतक काम आता रहता है। यदि उसे ध्यानसे देखा जाय, तो उसमें बहुतसे कीट पाये जायंगे और उसमें बड़ी दुर्गन्ध आती होगी। इसलिए उचित यह है कि जहां तक हो सके रसोईका पक्का फर्श हो, जो खानेके उपरान्त धो दिया जाय। यदि कच्चा ही चौका हो तो पोतेसे पोत कर दिनमें एक बार गोबरसे लीप देना चाहिये। पोतेको भी धोकर रोज़ सुखा देना चाहिये। यहांपर हम यह भी कह देना उचित समझते हैं कि

चौकेमें जहां तक बन पड़े झाड़ूका प्रयोग न करना चाहिये। गीले कपड़ों, पोतों या ब्रुशोंका प्रयोग ही श्रेयस्कर है। ऐसा करनेसे धूल, जो रोगाणुओं-की धात्री समझनी चाहिये न उड़ेगी और चीज़ें खराब न होंगी।

जब खाना खाने बैठें, तो साफ जगहपर, साफ कपड़े पहन कर बैठें। यदि पहलेसे धोकर सुखाया हुआ वस्त्र पहनें, चौकेमें साफ़ आसन-पर बैठकर खाना खायं, तो ठीक है। इसके बर-अक्स अगर बाहरसे आकर, बिना कपड़े बदले, हाथ पैर धोये, बैठकमें ही मंगाकर खाना शुरू कर दें, तो पाठक स्वयम् समझ लेंगे कि सफ़ाई और शुद्धता कहां रहेगी। दिनमें न जाने कैसे कैसे स्थानोंपर जाना पड़ता है, कहां कहां कैसी गलियोंमें होकर चलना पड़ता है, रास्तेमें या रेलमें, और दफ़तरोंमें कैसे कैसे आदिमियोंसे मिलना पड़ता है। इन सब जगहोंमें हमारे वस्त्रोंपर न जाने कैसे कैसे रोगाणु और विषैले पदार्थ पड़ जाते हैं। यदि इन्हें साथ लिए, और कभी कभी हाथमें लगाये, खाना शुरू कर दें, तो हम अपनेको कैसे जोखिममें डालते हैं। इसलिए, शुद्ध धुले हुए कमरेमें न्हाकर, शुद्ध कपड़े पहनकर खाना चाहिये। यदि नौकर, जो मामूली तौरपर बहुत गन्दे रहते हैं, खाना रसोईसे लाकर परोसे, तो इतनी बातोंका ध्यान रखना पड़ेगाः—

(१) नौकर साफ़ रहे, खाना लानेके पहले अपने हाथ साबुनसे साफ करे।

(२) रास्ता, जहां होकर नौकर आता जाता है, बहुत साफ हो। बीचमें कोई दुर्गन्ध देनेवाली, या गन्दी चीज़ न हो।

(३) बैठककी हर एक चीज़ बहुत साफ हो और रोज़ धोई जाती हो।

यह बातें तभी हो सकती हैं, जब बहुत धन हाथमें हो, परन्तु चौके और रसोइयेका साफ़ रहना, सभी अमीर और गरीब घरोंमें मुमकिन है।

चौकेमें क्यारियां होनेका यह लाभ है कि किसी आदमीके खानेसे एक ही क्यारी खराब होती है, जो आसानीसे साफ़ हो सकती है। जब अनजान या नये आये हुए आदमियोंके साथ खाना पड़े, तो क्यारियां ज़रूरी हैं, विशेषतः यदि वह किसी छूतके रोगसे पीड़ित हो तो।

चलते हुए या खड़े खड़े खाना सर्वथा अनुचित है।

बाज़ारोंमें खोमचोंपर खाना बहुत निकृष्ट कर्म है। बाज़ारकी धूल खोमचोंपर बराबर गिरा करती है, मक्खियां जो थूकपर बैठती हैं, वही खोमचेपर भी बैठती हैं। न जाने वह थूक कैसे रोगीका हो। बाज़ारमें ही नहीं, घरमें भी रसोईके आस पास बिलकुल गन्दगी नहीं होनी चाहिये। मक्खी उड़कर दूर तक नहीं जाती। आसपासमें ही रहती है। इसलिए रसोईके चारों तरफ़ सफ़ाई रखना आवश्यक है। सोडा और लेमनेड पीना भी बड़ी ग़लीज़ आदत है। हरशख्स मुंह लगाकर बोतल चढ़ा जाता है। फिर क्या वह बोतलें साफ़ की जाती हैं? कारखानेमें गईं और भरकर लौटा दी गईं। इङ्गलैंड आदि देशोंमें बिना उनको कृमिघ्न घोलोंसे साफ़ किये, यदि काममें लाया जाय तो बड़ा दण्ड दिया जाता है। उसी बर्तनसे कई आदमियोंका खाना या पीना भी उचित नहीं है। साथ बैठकर एक थालीमें खाना भी वर्जित है, क्योंकि इससे रोगोंको फैलनेमें बड़ी सुगमता हो जाती है।

बड़ा अनुचित कार्य जो घरके वृद्ध पुरुष किया करते हैं वह बच्चोंको झूठा खिलाना है। बेचारे निरपराधी बच्चे उनके इस मूर्खताके लाड़ पियारके कारण, आजन्म रोगोंसे पीड़ित होकर मरते हैं। वृद्धोंको अनेक प्रकारके रोग सताया करते हैं। उनका झूठा खानेसे या उनके चुम्बनसे बच्चोंको यह रोग हो जाया करते हैं। इसलिए घरके बड़े बूढ़ोंसे हमारा अनुरोध है कि बच्चोंको न तो झूठ खिलाएँ और न किसी प्रकार राल उनके मुंहमें जाने दें। बच्चोंको खांसी, दम-

का आज़ार, और तपेदिक प्रायः इस कारण ही हो जाया करते हैं।

पाठको! सम्भव है आपमेंसे बहुतोंको यह बातें अप्रिय लगती हैं, पर वास्तवमें हम सुधारकी धुनमें मतवाले हो रहे हैं। हमको आगे पीछेकी, बुरे भलेकी, कुछ सुध नहीं है। नियमोंको तोड़ना, प्रथाओंको मिटाना, अनियमित रीतिसे कार्य करना ही हम, जाने या अनजाने, अच्छा समझ बैठे हैं। बहुधा हमको ख़्याल भी नहीं आता कि हम क्या कर रहे हैं और अनुचित परिवर्तनमें योग दे बैठते हैं। पर यह उन्नतिके चिह्न नहीं हैं। उन्नतिके लिए सुव्यवस्थित, सुनियमित परिवर्तन करना ही श्रेयस्कर है।

नीचे हम अमेरिकन मेडिसिन नामक अमरीकाके प्रसिद्ध डाक्टरी पत्रसे (American medicine) कुछ उद्धृत करते हैं, जिससे आपको हमारे कथनकी सार्थकता प्रकट हो जायगी।

'रसोई, थालियां और खाने पकानेके बर्तनोंकी सफ़ाई बड़े महत्वका विषय है। स्वास्थ्य विभागकी जांचसे होटेल और ढाबोंकी बिगड़ी हुई दशाका पता चला है और अब उनका सुधार कानूनन कराया जायगा। उक्त स्थानोंमें पवित्रताकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता और न खाने पीनेकी अच्छी चीज़ें काममें लायी जाती हैं।

'इस जांचके परिणामोंसे हमें उपदेश ग्रहण करना चाहिये और उनके अनुसार घरोंमें सुधार करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं है कि प्रायः औसत दर्जेके कुटुम्बोंमें पाकशालाका प्रबन्ध अच्छा रहता है, पर तो भी सफ़ाईके लिहाज़से बहुत सी छोटी छोटी बातोंका ध्यान नहीं रखा जाता।

'रसोईके फर्शपर, घरोंके अन्य कमरोंकी अपेक्षा, अधिक गन्दगी और मैल आता रहता है। खोमचेवाले प्रायः गलीमेंसे चीज़ें बेचनेको सीधे रसोईमें चले आते हैं। उनके जूते सब प्रकारके मैल मक्कड़से लिहसे रहते हैं, विशेषतः बरसातके दिनोंमें। यद्यपि फ़र्श कभी कभी रगड़कर धो डाले जाते हैं, पर जब तक धोये नहीं जाते तब तक रोज़ झाड़ दिये जाते हैं।

'रसोईमें झाड़ू देना बड़ा हानिकर है, क्योंकि ऐसा करनेसे धूल उड़कर मेज़, कुर्सी, बर्तन, और खाद्य पदार्थोंपर, जो पकाये हों या बे पकाये हों, जम जाती है और रोगाणुओंको उन तक पहुंचा देती है। झाड़ू देनेकी अपेक्षा गरम पानीमें कपड़ा भिजोकर सब चीज़ोंको पोंछ देना ज्यादा अच्छा है। जितने आदमी रसोईमें आवें अपने जूते द्वारपर बिछाई हुई चटाईपर खूब रगड़नेके बाद आवें।

'रसोईमें भूलकर भी झाड़ू न देनी चाहिये। भीगे हुए कपड़ेसे ही सब चीज़ोंको पोंछ देना चाहिये।"

पाठकगण, यदि पैर धोकर और न्हाकर चौकेमें सभी जाया करें और खाना खाकर आजाया करें, तो उपरोक्त कथनके अनुसार कितना सराहनीय है।

रेलगाड़ियोंमें बैठे हुए, विशेषतः जब गाड़ियां खचाखच भरी हों, भोजन करना अनुचित है, पर साथही साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि जैसा हमारे मारवाड़ी भाई अकसर किया करते हैं, रेलसे उतरकर, प्लेटफार्मपर बैठकर, खाना भी उतना ही खराब है।

बाज़ारकी मिठाइयां खाना भी स्वास्थ्यकेलिए हितकर नहीं है। घरपर, स्वच्छतासे बनाये हुए पदार्थ खानेमें ही सर्वसाधारणका कल्याण है।

[असमाप्त]

अलुमिनियम या अलुमिनम

[ले०—प्रो०मनोहरलाल, एम. ए.]

पिछले दस पन्द्रह सालमें अलुमिनियमका व्यवहार इस देशमें बहुत होने लगा है और जान पड़ता है कि थोड़े दिनोंमें पीतल और कांसेके बर्तन केवल अद्भुतालयोंमें देखनेको मिला करेंगे। भारतमें खपत बढ़ते हुए भी, अलुमिनियमका कारखाना मद्रासमें ही है। यदि अलुमिनियम बनाने और ढालनेके कारखाने और खुल जायं, तो यह धातु और भी अधिक बरती जाने लगेगी। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि जब भारतमें अलुमिनम बनने लगेगा, तो और भी सस्ता हो जायगा। दूसरे ढलाईका काम होने लगेगा तो पुराने टूटे फूटे बर्तन भी बिकने लगेंगे और जैसा अब तक होता था, व्यर्थ फेंक न दिये जाया करेंगे। हर्ष है कि ढलाईका काम अब कई स्थानोंपर, जैसे बङ्गालके केमिकल वर्क्स आदिमें, होने लगा है और अब बाज़ारमें टूटे फूटे बर्तन भी बिक सकते हैं।

न तो यह धातु चीनी और ढलवां लोहेकी नाईं भञ्जनशील है, न इसके बर्तनोंमें खाना पकानेसे विषाक्त हो जानेका डर रहता है, जैसे सीसेके यौगिकोंसे ग्लेज़ (रोग़न) किये हुए मट्टीके बर्तनोंमें होता है; न इसके बर्तनोंपर एनेमल चढ़ानेकी आवश्यकता होती है, न इसमें टीनकी तरह ज़ंग लगती है और मामूली काममें आनेवाली धातुओंमें सबसे हलकी है। इन सब कारणोंसे यह धातु लोकप्रिय होती जाती है।

जहां कहीं भारी चीज़ोंको इधर उधर ले जाना पड़ता है, तहां हलकी धातुकी बनी हुई चीजें ही पसन्द की जाती हैं। इसीसे (टार्पेडो) नौकानाशकोंके इञ्जिनोंके हिस्से, जहाज़ोंके भीतरका सामान; वायुयानोंके पंख, रासायनिक तुलाओंके दण्ड, कढाइयां, मोटरकारके हिस्से, इत्यादि चीज़ें अलुमिनमको ही बनने लगी हैं। लिथोछापेके पत्थर भी अब इसीके बनते हैं। तांबेका मूल्य अब बढ़ता जा रहा है, इसलिए विद्युत् वाहक तार भी अलुमिनमके बनते हैं। परीक्षाओंसे जाना गया है कि '१२६ इञ्च व्यासका अलुमिनमका तार विद्युत्धाराका उतना अच्छा वाहक है, जितना ताम्बेका '१०० इञ्च व्यासका है। तिसपर भी उसका बोझ मील पीछे १ मन होता है और ताम्बेका दो मनसे कुछ अधिक। यदि यह मान लें कि प्रति वर्ग इञ्च शक्ति लगानेसे भार-धारण-शक्ति दोनों धातोंकी बराबर होती है, तो भी अलुमिनमके तारके प्रयोगसे बोझ ५२% कम होगा, और भारधारण शक्ति ६०% और व्यास २६% बढ़ जायंगे।

Industrial Chemistry, औद्योगिक रसायन]

अलुमिनमके गुण

इसका रंग सफेद, पर नीली झांई लिए हुए होता है। हवाके प्रभावसे कुछ कुछ बैंजनी रंगत भी थोड़े दिनोंमें, चढ़ जाती है। यह ६२६° श पर गलने लगता है। इसके वर्क इतने बारीक बनाये जा सकते हैं कि ४०००० वर्कोंकी मोटाई एक इञ्चके लगभग होती है। इसका बारीकसे बारीक तार जो अभीतक खेंचा जा सका है '००४ इञ्चके व्यासका है।

नमकके तेजाबको छोड़, और तेज़ाबोंमें यह धातु कठिनाईसे गलती है। अन्य वानस्पतिक तेजाब भी इसको नहीं गला सकते, इसीलिए खाने पकानेके लिए इसके बर्तन बहुत उपयुक्त हैं। कठोरतामें भी यह टीनसे बढ़कर है। यह स्मरण रखना चाहिये कि क्षार इस धातुको आसानीसे गला लेते हैं। इसीलिए अलुमिनमके बर्तन राखसे साफ नहीं करने चाहिएँ। जहां तक हो सके मट्टीसे साफ़ किये जायं, तो खुरदरे और काले न पड़ेंगे।

अलुमिनमके धातुमिश्रण

अलुमिनम स्वयम् इतना कड़ा नहीं होता, जितने उसके धातु-मिश्रण होते हैं। इसीसे यह अनु-

मान किया जाता है कि भविष्यमें अलुमिनमकी जगह उसके धातुमिश्रण ही काम आएँगे, जिनमेंसे सर्वोत्कृष्ट मेगलेनियम है। मेगनेलियममें ६०% अलुमिनम, २% से कम मगनेसियम (मग्न) और शेष अन्य धातुओंके अंश पाये जाते हैं।

इतिहास और बनानेकी विधि

१७७६ वि० में होफमेनने (Hoffmann) यह सिद्ध किया कि फिटकरीको गरम करनेसे जो पदार्थ प्राप्त होता है, वह एक नवीन धातुका ओषिद होता है। इस पदार्थका नाम एल्युमिना रखा गया, क्योंकि फिटकरीको फ्रांसीसी भाषामें 'सेल एल्युमिनो' कहते हैं। इस घटनाके पीछे कई रासायनिकोंने उपरोक्त ओषिद या क्षारसे धातु निकालनेका प्रयत्न किया, पर सफल मनोरथ न हुए। १८६५ वि०में डेवीने सोडियम और पोटासियम क्षारोंका वैद्युतिक विश्लेषण करके धातुओंको निकाला और उसके बाद फिटकरी-क्षारसे भी धातु निकालनेका प्रयत्न किया। डेवी धातुको अलग न कर सके, पर उनके लोहेके तारके साथ धातुने एक यौगिक बना लिया। अतएव यह सिद्ध हो गया कि कोई नई धातु इस क्षारमें अवश्य है।

१८८१ वि० में औरस्टेडने पोटासियमके पारद-मिश्रणके* साथ अलुमिनम हरिदको गरम किया, पर जो अलुमिनम बना वह प्रस्तुत पारेमें घुल गया। अतएव जब वोहलरने खाली पोटासियमका प्रयोग किया तो धातु बन गयी, पर केवल चूर्णके रूपमें प्राप्त हुई; क्योंकि उसमें पोटासियम, प्लाटिनम आदि अशुद्धियां मिली हुई थीं। थोड़े दिनोंके परिश्रमके अनन्तर शुद्ध धातु बनानेमें भी वोहलर सफल प्रयत्न हुआ।

*जब दो धातु गलाकर एक जुज़ कर दी जाती हैं तो धातु-मिश्रण (alloys) बन जाते हैं, जैसे पीतल ताम्बे और जस्ते का धातु-मिश्रण है। पारद भी बहुतसे धातु-मिश्रण बनाता है, जो पारद मिश्रण (amalgams, कहलाते हैं। पोटासियमके छोटे छोटे टुकड़े पारदमें डुबोनेसे थोड़ी देरमें पोटासियमका पारद-मिश्रण बन जाता है।

१६११ वि० में डेविलिने भी अलुमिनम हरिद और पोटासियम गरम करके स्वतंत्र रीतिसे अलुमिनम बना डाला (इसे वोहलरके प्रयोगोंका ज्ञान भी न था) और धातुको व्यापारिक दृष्टिसे बनानेकी चेष्टा आरम्भ कर दी। यह स्पष्ट था कि पोटासियमका प्रयोग धातुके बनानेमें नहीं हो सकता, क्योंकि वह ५२५ रु० सेर बिकता था, प्रयोगशालामें ही उसका प्रयोग करना सम्भव था। अब दूसरा उपाय यह था कि अलुमिनम हरिदका विद्युद्धारा द्वारा विश्लेषण किया जाय, पर इसमें यह कठिनाई थी कि उन दिनोंमें विद्युद्धारा विद्युत्घटोंसे पैदा की जाती थी, जिनमें जस्ता गंधकके तेज़ाबमें गलाया जाता था। जस्ता भी महंगा था, अतएव इस रीतिको भी त्यागना पड़ा। फिर इसने यह विचार किया कि सोडियमका उपयोग पोटासियमके स्थानपर हो सकता है, अतएव कोई सस्ती तर्कीब सोडियम बनानेकी निकालनी चाहिये। सौभाग्यवश वह इस प्रयत्नमें सफल हुआ और प्राकृतिक कच्ची धातसे शुद्ध अलुमिना बनानेकी रीतिभी निकाल डाली। फिर क्या था, शुद्ध अलुमिनासे शुद्ध अलुमिनम हरिद बनाना और उससे अलुमिनम बनाना बाएं हाथका काम था। ३० वर्षतक अलुमिनम इस विधिसे बनता रहा। अन्तमें जब विद्युत्धारा डैनेमो यंत्रों द्वारा बहुत कम खर्चसे पैदा की जाने लगी, तबसे अलुमिनम मुख्यतः वैद्युतिक विश्लेषण द्वारा ही बनाया जाता है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि केवल दो खनिजोंसे ही अलुमिनम बनाना सम्भव था—बोक्सैट नामक अशुद्ध प्राकृतिक ओषिदसे और क्रायोलिटसे, जो अलुमिनियम और सोडियम फ्लोरिदोंका द्विधातुक लवण है। इनमेंसे प्रत्येकके साथ दो क्रियाएँ की जा सकती थीं।

(१) ऋणद क्रिया—अर्थात् सोडियम या अन्य किसी ऋणदकी क्रियासे ओषिदकी ओषजन और फ्लोरिदकी फ्लोरिन निकाल ली जाय।

(२) वैद्युतिक विश्लेषण-विद्युत्धाराके प्रभावसे धातु ओषजन आदिसे अलग हो जाय।

अब दोनों खनिजोंपर विचार कीजिये। ओषिद्का विच्छेद किसी भी रससे (रासायनिक पदार्थ) नहीं किया जा सकता है, जब तक कि यह द्रवित (गली हुई) अवस्थामें न हो। साधारण तापक्रमोंपर वह बिलकुल शिथिल रहता है, पर गलानेके लिए ओषोज्जन धौंकनीकी लौ या विद्युल्लाटकी गर्मीकी ज़रूरत होती है।

यह दोनों उपाय उस समय अनुपादेय थे, क्योंकि इनमें बहुत अपव्यय होता था। विद्युद्धारा जब सस्ती हो गई, तब भी उसके उपयोगसे गर्मी पैदा करके अलुमिनासे धातु निकालना केवल ताम्बेकी मौजूदगीमें सम्भव पाया गया। अतएव जबतक अलुमिनियम कांसेकी मांग रही तब तक इस विधिसे कार्ल्स काम करता रहा, पर जब शुद्ध धातुकी मांग बढ़ने लगी, तब इसका परित्याग कर दिया गया। एक और उपाय हो सकता था कि अलुमिनाका वैद्युतिक विश्लेषण किया जाय, पर इस कामके लिये जिस दबावकी विद्युद्धाराका उपयोग किया जाता, उससे अलुमिनाका द्रवित करना असम्भव था और जब तक कोई वस्तु द्रव न हो, तब तक उसका वैद्युतिक विश्लेषण कैसे हो। अतएव यह उपाय भी कार्यरूपमें परिणत न हुआ।

जब अलुमिनाका किसी उपायसे भी विच्छेद न हो सका, तो अलुमिनम हरिद बनानेका प्रयत्न किया गया। यद्यपि अलुमिना लवणाम्लमें सहज ही गल जाता है, पर घोलसे सूखा शुद्ध हरिद बनाना असम्भव जान पड़ा। जहां उसके घोलको गाढ़ा करके पानी उड़ा देनेका प्रयत्न किया कि पानीके प्रभावसे लवणाम्ल और अलुमिना फिर बना। पानीसे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया।

$$अ_2 ह_6 + ३ उ_2 ओ = अ_2 ओ_3 + ६ उह$$

फिर यह उपाय निकाला गया कि सूखे ओषिद्को नोन और कोयला मिलाकर गोलियां बना लें, उन्हें गरम करके सुखा लें, और हरिन उनपरसे छोड़ें। कोयला ओषिद्के ओषजनसे मिलकर द्विओषिद (क ओ$_2$) बना लेगा और अलुमिनम हरिद बन जायगा।

$$२ अ_2 ओ_3 + ६ ह_2 + ३क$$
$$= ३ क ओ_2 + २ अ_2 ह_6$$

यह हरिद नमकके साथ मिलकर द्विधातुक लवण बना लेगा, जो निडर होकर गरम किया और सुखाया जा सकता है।

डेविलिने पहले केवल अलुमिनम हरिद्का उपयोग किया, पर यह पदार्थ पसीजता जल्दी था और बड़ी जल्दी गरम करनेसे उड़ जाता था। इसीलिए उपरोक्त द्विधातुकलवण बनाया गया। यह यौगिक १८०° श पर गल जाता है। इसके दोनों अवयवोंका वैद्युतिक विश्लेषण भी इतने अधिक अन्तरवाली धाराओंसे होता है कि दबावके थोड़े बहुत बढ़नेसे कुछ हर्ज नहीं होता। अलुमिनम हरिद्का २·३ वाल्टकी दबावकी धारासे विश्लेषण होता है और सोडियम हरिद्का ४·३ वाल्टकीसे। विधि बहुत अच्छी थी पर द्विधातुक हरिद्का बनाना बड़ा कठिन था।

यहांपर हरिद्का विचार पहले इसीलिए किया था कि वह ओषिद्से ही बनता है। अब हम फ्लोरिद्का विचार करेंगे। १६१२ वि० में जोनपरसी ने फ्लोरिद्से अलुमिनम बनाया और कहा कि यह प्राकृतिक लवण होनेसे शुद्धावस्थामें पाया जाता है। अतएव इसके उपयोगमें शुद्ध करने आदिका झंझट नहीं है। फाराडेने उसी वर्ष फालगुनमें इस पदार्थसे बने हुए अलुमिनमके नमूने रायल इन्स्टिट्यूशनमें दिखलाये, जो डिक और स्मिथने तय्यार किये थे। रोज़ने भी प्रयोग कर सफलता प्राप्त की, पर डेविलिने यह समझकर कि यह नया पदार्थ है, जिसकी खानि-

योंमें खुदाईका इन्तज़ाम अभी ठीक नहीं है, अपने हरिदसे ही धातु बनाना जारी रखा। इसी समय डैनेमोका आविष्कार हुआ और विद्युल्लाटके तापसे और वैद्युतिक विश्लेषणसे हरिद और फ्लोरिदके विच्छेद करनेका प्रयत्न होने लगा। हरिदकी कथा हम सुन ही चुके हैं। उसके द्रवणविन्दु और उबालविन्दुमें केवल ५°श का अंतर है, इसीसे द्विधातुक हरिदका प्रयोग किया गया। क्रायोलिट द्विधातुक फ्लोरिद है। इसके अवयव नीचे दिये हुए दबाववाली धाराओंसे टूटते हैं:—

(१) सोडियम फ्लोरिद...४·७ वाल्ट

(२) अलुमिनम फ्लोरिद...४·० वाल्ट

अतएव जहां धाराके दबावमें घट बढ़ हुई कि सोडियमका बनना भी आरम्भ हो जाता था। फिर क्या था, सोडियम और अलुमिनम मिलकर धातुमिश्रण बना लेते थे।

अन्तमें यह मालूम हुआ कि गला हुआ क्रायोलिट शुद्ध अलुमिनाको इसी भांति घुला लेता है, जैसे पानी शक्करको। इस घोलका वैद्युतिक विश्लेषण किया जा सकता है। ऐसा करनेसे केवल अलुमिना टूटकर अलुमिनम और ओषजन बन जाती है और क्रायोलिट ज्योंका त्यों बना रहता है। सोना चांदी चढ़ानेमें प्रायः देखा होगा कि सोना हरिद, जो पानीमें घुला रहता है, टूट जाता है, पर पानी ज्योंका त्यों बना रहता है। यही घटना यहां भी होती है। इस विधिसे द्विधातुक हरिद बनानेका परिश्रम बच जाता है और इसीसे यह सर्वश्रेष्ठ विधि है। अब इसीका अवलम्बन किया जाता है।

बनानेकी पुरानी विधि

डेविलिकी विधिसे ही पुराने ढंगका कुछ ज्ञान हो जायगा। इसीसे उसे यहां संक्षेपसे लिखकर आधुनिक विधिपर सविस्तार विचार करेंगे। उक्त विधिमें तीन भिन्न भिन्न काम करने पड़ते थे:—

(१) सोडियमका बनाना

(२) द्विधातुक हरिदका बनाना

और (३) उपरोक्त दोनों पदार्थोंसे रासायनिक क्रियासे अलुमिनमका उत्पादन।

यहांपर हम सोडियमके बनानेकी तर्कीबोंका ज़िक्र न करेंगे। अलुमिनमकी कच्ची धातुको बोक्सैट कहते हैं। यह अलुमिनम और लौह ओषिदोंका मिश्रण होता है। पहले इसको शोध कर शुद्ध अलुमिना बनाते हैं। इस उद्देश्यसे बोक्सैट और सोडाको एक परावर्तन-भट्टेमें* गरम करते हैं। सोडा अलुमिनाको सोडियम अलुमिनेतमें परिवर्तित कर देता है, पर लौहौषिदको ज्योंका त्यों छोड़ देता है। क्रिया समाप्त होनेपर कुल पदार्थ पानीमें डाल देते हैं। सोडियम अलुमिनेत, घुलनशील होनेके कारण घुल जाता है, पर लौह ओषिद नहीं घुलता। छानकर दोनोंको अलग कर सकते हैं। घोलमें यदि कर्बनद्विओषिद छोड़ी जाय तो अलुमिनम और सोडा बन जाते हैं। जब सोडा और बोक्सैटको गरम किया था, तो कर्बनद्विओषिद बना था, उसीका यहां प्रयोग किया जाता है। समीकरणोंसे यह क्रियाएँ इस प्रकार व्यक्त की जा सकती हैं:—

$$(१)\ \text{अ}_2\text{ओ}_3,\ \text{लो}_2\text{ओ}_3 + ३\ \text{सो}_2\ \text{क}\ \text{ओ}_3$$

(बोक सैट) (सोडा)

$$= \text{अ}_2\text{ओ}_3,\ ३\ \text{सो}_2\text{ओ} + ३\ \text{कओ}_2$$
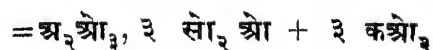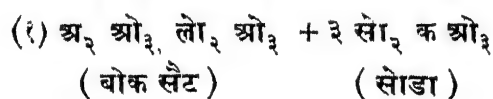
(सोडियम अलुमिनेत) (कर्बन द्विओषिद)

---

* साधारण भट्टोंमें जो पदार्थ गरम किया जाता है, वह या तो वैसे ही या किसी पात्रमें रखकर भट्टेमें दे दिया जाता है। इसमें या तो पदार्थ अशुद्ध हो जाता है या काफी गर्म नहीं होता। अतएव भट्टेके पास एक कुण्ड बनाते हैं, जिसके दूसरे छोरपर चिमनी होती है। भट्टेकी ज्वालाकी शिखाएं कुण्डकी छतसे टकराती हैं (कुण्ड और भट्टेकी एक ही छत रहती है) और वहांसे परावर्तित होकर कुण्ड तक पहुंचकर वहां रक्खी हुई चीज़ गरम करती हैं। रेत, कोयलेके कण आदि छतसे टकराकर भट्टेमें ही आ गिरते हैं। ऐसे भट्टोंको परावर्तन-भट्टे (reverberatory furnace) कहते हैं।

$+ \text{लो}_2\text{ओ}_3$

(लौह ओषिद)

(२) $\text{अ}_2\text{ओ}_3,\ 3\ \text{सो}_2\text{ओ} + 3\ \text{कओ}_2$

(सोडियम अलुमिनेत) (कर्बनद्विओषिद)

$= \text{अ}_2\text{ओ}_3 + 3\ \text{सो}_2\ \text{कओ}_3$

(अलुमिना) (सोडा)

अलुमिना अनघुल होनेसे अलग होकर पानीपर तिरने लगता है और सोडा घुल जाता है। जितना सोडा आरम्भमें खर्च हुआ, उतना फिर घोलको उड़ाकर मिल जाता है। छान कर अलुमिना अलग कर लेते हैं और सुखा लेते हैं। अब कोलतार(अलकतरा) और नोन मिलाकर लड्डू बना लेते हैं जो गरम करके सुखा लिए जाते हैं और तदनन्तर उन बेलनाकार बर्तनोंमें गरम किये जाते हैं, जिनमें होकर हरिन गैस बहती रहती है। इस गैसके प्रभावसे द्विधातुक लवण बनता है, जो उड़कर ठंडे कमरोंमें पहुंचता रहता है और जमता रहता है। जब द्विधातुक लवणकी भाप बनना बन्द हो जाती है, तभी गरम करना बन्द कर देते हैं।

अब १०० भाग द्विधातुक हरिद, ४५ भाग क्रायोलिट जो द्रावकका काम देता है और ३५ भाग सोडियमके छोटे छोटे टुकड़े एक भट्टीके कुण्डमें डाल दिये जाते हैं। तीन घण्टेतक द्रवित पदार्थोंको चलाते रहते हैं। अंतमें मैल ऊपर और शुद्ध धातु नीचे इकट्ठी हो जाती है।

$\text{अ}_2\ \text{ह}_6,\ 6\,\text{सोह} + 6\,\text{सो} = 2\ \text{अ} + 12\ \text{सोह}$

अलुमिनियम बनानेकी आधुनिक विधिपर फिर कभी विचार करेंगे।

मनो-विज्ञान

(२) अध्ययन विधि*

[ले० अध्यापक विश्वेश्वर प्रसाद, बी. ए.]

मनोविज्ञानके स्वरूपको जान लेनेपर उसके अध्ययनकी विधिका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। किसी ज्ञानको वैज्ञानिक रीतिसे प्राप्त करनेमें तीन सीढ़ी चढ़नी पड़ती हैं। पहलीको निरीक्षण, दूसरीको क्रमनिर्धारण और तीसरीको सिद्धान्त-विनिश्चय कह सकते हैं। सबसे पहले उस वस्तुको भली प्रकार देख लेना चाहिए, जिसके विषयमें हमें कुछ ज्ञान प्राप्त करना है। इससे तात्पर्य यह है कि उस वस्तु विशेषको अन्य वस्तुओंसे भिन्न और विशेष समझना सबसे पहला काम है। इतना करनेपर हम दूसरी सीढ़ीपर चढ़नेके योग्य हो सकते हैं। शब्दके अर्थपर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जावेगा कि इस पहली सीढ़ीका नाम निरीक्षण क्यों रखा गया।

इसके उपरान्त हमको क्रमनिर्धारण नामक दूसरी सीढ़ीपर चढ़ना होगा। यहां यह देखना होगा कि उस वस्तुके जन्मके पूर्व, जिसका हम अध्ययन कर रहे हैं, कौन कौन सी वस्तु और किस क्रमसे थीं अर्थात् कौनसी पहले और कौन सी उसके पश्चात् आती हैं, जिनके बिना उस वस्तुका, जिसका हम अध्ययन कर रहे हैं, जन्म ही असम्भव है। इतना काम कर लेनेपर हम तीसरी सीढ़ीपर चढ़नेके अधिकारी हो सकते हैं।

अब तीसरी सीढ़ीपर जब हम चढ़े तो, हमने पहली और दूसरी सीढ़ीपर जो ज्ञान प्राप्त किया है उस सबको मिलाकर, समष्टि रूपमें अध्ययन करके, हमें सिद्धान्त निश्चय करना होगा। अर्थात् ध्येयवस्तुको और वस्तुओंसे भिन्न और विशेष समझ कर, उसके जन्मको सम्भव करनेवाली

*विज्ञान भाग ६, संख्या ३, पृष्ठ १३२ से आगे

[Psychology मनोविज्ञान]

वस्तुओंके क्रमपर ध्यान देते हुए, यह निश्चय करना होगा कि अमुक सिद्धान्त इस संबंधमें मानने योग्य है।

इस साधारण वैज्ञानिक अध्ययनविधिका अब मनोविज्ञानमें प्रयोग करना चाहिए। मनोविज्ञान संबंधी ध्येय वस्तु मानसिक व्यापार हैं। इनके अध्ययन करनेमें सबसे पहले एक मानसिक व्यापारको दूसरे मानसिक व्यापारसे भिन्न और विशेष समझना चाहिए। यह पहली सीढ़ीका काम हुआ। इसको सफलतापूर्वक करनेमें मनकी चंचलता अत्यन्त बाधक होती है। कुछ लोगोंका तो विचार यह है कि इसके कारण मानसिक व्यापारका निरीक्षण अर्थात् एक व्यापारको दूसरे व्यापारसे भिन्न और विशेष अनुभव करना, व्यापार विशेषके होजानेपर उसका स्मरण करनेसे ही, हो सकता है, क्योंकि व्यापारके होते समय उसके निरीक्षणके लिए उसे ठहराए रखना असंभव है।

परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकोंका यह मत है कि अभ्याससे मानसिक व्यापारके होते ही समय उसका निरीक्षण संभव है। उसका उपाय वे यह बताते हैं कि जिस व्यापारका निरीक्षण करना हो जब जब वह व्यापार हो तब तब मनको यथाशक्ति एकाग्र करके प्रत्येकवार थोड़ा थोड़ा निरीक्षण करनेसे अन्तमें एक समय ऐसा होगा कि उन अंशोंके समूहरूपमें व्यापारका पूर्ण निरीक्षण हो जावेगा। इस कार्यकी सफलता अभ्यास और बुद्धिकी तीक्ष्णतापर निर्भर है।

इतना करनेपर हम आगे बढ़ सकते हैं। एक मानसिक व्यापारके स्वरूपका अनुभव करलेनेपर यह देखना होता है कि कौन कौनसे मानसिक अथवा ज्ञानतन्तुव्यूह (nervous system) संबंधी व्यापार हैं, जो ध्येय व्यापारविशेषके जन्मके कारण हैं। इतना ही नहीं परन्तु यह भी समझना होगा कि उन व्यापारोंका क्रम क्या है अर्थात् कौनसा व्यापार पहले होता है और कौनसा उसके पीछे। यह काम दूसरी सीढ़ीका हुआ।

अब रही सिद्धान्त विनिश्चय नामक सीढ़ी। मानसिक व्यापारका निरीक्षण हो चुका, उसके जन्मको संभव करनेवाले व्यापारोंके क्रमको जान चुके, अब सिद्धान्त निश्चय करना बाकी है। इसके करनेके लिए व्यापारके निरीक्षण और क्रम संबंधी ज्ञानको समिष्टरूपमें अनुभव करके उसपर विचारपूर्वक ध्यान करनेसे हम सिद्धान्त निश्चय कर सकेंगे। सिद्धान्त निश्चय करनेसे तात्पर्य यही है कि हम जान लें कि जिस व्यापार विशेषका हम अध्ययन कर रहे हैं उसके घटना संबंधी नियम क्या क्या हैं। अर्थात् जब वह व्यापार होता है तो कौन कौन सी बातें अनिवार्य होती हैं। इसी ज्ञानको सूत्ररूपमें जब लिख देते हैं तो वही सिद्धान्त कहलाता है।

दृष्टान्तके लिए क्रोध नामक मानसिक व्यापारको लीजिए। कभी कभी हम सबको आश्चर्य होता है जब हम यह देखते हैं कि हमारे देखनेमें तो अमुक व्यक्तिने इतने क्रोधके लायक कोई कार्य नहीं किया जितना अन्य अमुक उसपर क्रोध करता है। परन्तु विचार करनेसे यह ज्ञात होगा कि पहले भी इन दो व्यक्तियोंमें ऐसे झगड़े हो चुके हैं और यद्यपि इस समय हमारे देखनेमें इतने अधिक क्रोधका कारण कोई नहीं था तब भी और पहलेके क्रोधके कारण सब मनमें एकत्र हो गए और उनकी स्मृतिने क्रोधको अधिक बढ़ा दिया। इसी निरीक्षण और व्यापार क्रमके ज्ञानको हम सिद्धान्तरूपमें इस प्रकार लिखते हैं—

जब हम कई बार किसीपर क्रोध कर चुके हों और फिर वही व्यक्ति वैसा ही या उससे मिलता जुलता कोई कार्य करे, जिसपर हमें पहले क्रोध आया था, तो कार्यकी अपेक्षा पूर्वक्रोधकी स्मृतिसे हमें अधिक क्रोध आ जाता है।

पाठक महाशय प्रसंगरूपसे यह भी ध्यानमें रखें कि इस प्रकारके मानसिक व्यापारोंके अध्ययनसे अथवा तत्संबंधी ज्ञानसे हमें प्रतिदिन जीवनमें कितनी सहायता मिल सकती है!

ताताका लोहेका कारखाना

[ले० अध्यापक दुर्गाप्रसाद, बी.ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

विद्युत् भवन (power house)-यह स्थान वाष्पजनकसे दक्खिन और कारखानेकी प्रयोगशालासे पूरब है। यहांपर विद्युत् पैदा की जाती है। इसी विद्युत्से शहर तथा कारखानेके समूचे चिराग जलाये तथा पंखे चलाये जाते हैं। यंत्रालय, बेलनागार तथा बारमिल्सके यंत्र सब यहींकी विद्युत्से चलते हैं। इसमें तीन (turbo-blowers) धौंकनी-पंखे हैं, जो वातघरके (blasthouse) भट्ठोंको हवा पहुंचाते हैं।

इन पंखोंके द्वारा प्रत्येक मिनटमें ३२००० वर्ग फुट हवा भट्ठोंमें पहुंचायी जाती है। हवाका दबाव १५.५ पौण्ड प्रति वर्ग इञ्च रहता है।

यह पंखें (blowers) एक मिनटमें ३००० चक्कर लगाते हैं और इनमें पूरी वायुमात्राके लिये २२५० अश्वबल, तीन चौथाईके लिये १८२० अश्वबल और आधीके लिये १७०० अश्वबलकी खपत होती है। यहां तीन (turbogenerators) विद्युत् उत्पादक हैं, जिनमेंसे हरेक १५०० अश्व-बलका है और ३००० चक्कर प्रति मिनट लगाता है।

इस भवनमें तीन वाल्ट-परिवर्तक हैं, जो विद्युद्धाराका दबाव ३००० वाल्टसे ४०० वाल्ट कर देते हैं। यहां दो मोटर-जेनेरेटर ५०० सहस्र-वाट-के सामर्थ्यके हैं। यहांके बैलरका दबाव १५.५ पौण्ड प्रतिवर्ग इञ्च रहता है।

गैसोत्पादक (gasproducer plant)—यह भाप पैदा करनेवाले यंत्रसे उत्तर है। यहां गैस तैयार होती है और इस्पातके भट्ठेमें जलती है। यह बड़े आनन्दकी बात है कि यहांके काम करने-वाले सब भारतवासी ही हैं।

बात भट्ठे या धौंकनी भट्ठे (blast furnaces)

यह गैसोत्पादकके सामने दक्खिन ओर हैं। इनकी संख्या आजकल दो है। वातभट्ठा नं.१ सन् १९११ की दूसरी दिसम्बरको और दूसरा नं. २ सन् १९१२ की २१ सितम्बरको चला था। इस कारण १९१२ के सितम्बरतक एक ही वातभट्ठेसे काम होता था। इसमें तैयार किया हुआ लोहा विदेशसे आये हुए लोहेके जोड़का होता था। अब माल आशासे अधिक तैयार होने लगा है और बहुत सा कार्य्य भारतवासियोंके द्वारा सम्पादित होने लगा है। पहले पहल वातभट्ठा जलानेमें बहुत खर्च तथा समय लगता है। जलानेकी रीति यह है कि पहले लकड़ीका ढेर सिलगाकर उसपर कोक रखा जाता है और जब चिमनी गरम हो जाती है तब चूनेका पत्थर और अधिक कोक दिया जाता है। जबतक चिमनी जलावनसे भर न जाय तबतक हवाकी झोक केवल $\frac{१}{५}$ दी जाती है। समूचा भट्ठा जलानेमें चारपांच हफते और कामके योग्य होनेमें कई महीने लग जाते हैं। लोग कहते हैं कि यहांके भट्ठे पहले पहल छः महीनेमें काम लायक हुए थे। एक भट्ठा प्रायः पांच छः बरस चलता है और बाज़ इससे भी ज्यादा दिनों तक चल जाते हैं।

इन भट्ठोंमें निरा लोहेका पत्थर ही नहीं गरम किया जाता, वरन् मट्टी, चूना और जलावनके साथ मिलाकर गरम किया जाता है। चूना या बालू लोहेके पत्थरकी प्रकृतिके अनुसार दी जाती है। यदि इसमें सिलकन अथवा मट्टी मिली हो तो चूना ज्यादा देते हैं और यदि चूना ज्यादा हुआ तो मट्टी मिलाते हैं। इन पदार्थों-के मिलानेका अभिप्राय यह होता है कि लोहेके पत्थर, रेत और चूनेकी इतनी पर्याप्त मात्रा हो जाय कि पत्थर आसानीसे गल जाय और मैल रेत तथा चूनेके साथ मिलकर, द्रव हो जाय। मैल-में खटिक तथा अलुमुनियमके सिकतेत रहते हैं। यदि चूना कम हुआ तो लोहओषिद मैलमें चला जाता है, क्योंकि यह सिलकनके साथ नहीं मिलता और यदि चूना ज्यादा हुआ तो भट्ठेका

(lining) भीतरका पलस्तर या टीप खराब हो जाती है। इस कारण चूना कमोवेश होनेसे दोनों प्रकार हानिकारक है।

विद्युत्घरके पूरबमें एक बड़ा पानीका हौज़ है, जो खम्भोंके ऊपर रखा हुआ है। इससे पूरब वातभट्ठोंके चार बड़े बड़े चूल्हे (hot blast stoves) हैं, जो भट्ठेमें आनेवाली हवाको गरम करते हैं। इनकी ऊँचाई ८० फुट और व्यास २० फुट है। इससे पूरब वातभट्ठा है। इससे और पूरब लौह-डिम्ब ढ़ालनेके लिये स्थान है और इससे पूरब दूसरा वातभट्ठा है। इन भट्ठोंकी ऊँचाई ७७ फुट और व्यास ११ फुटसे २० फुट तक है। हरेकके तीन प्रधान भाग हैं। पहला भाग कुण्ड (हर्थ अथवा क्रुसिबिल) कहलाता है। यहांपर लोहा और मैल अलग अलग हो जाते हैं। दूसरा भाग चिमनी है। इसके दो अंग हैं, नीचेका अंश (belly) पेट और ऊपरका अंश (body) धड़ कहलाता है। चिमनी ७५ फुट ऊँची है। पेटके पासका व्यास २० फुट है और शरीरके ऊपर गलेके पासका व्यास १६ फुट है और (hearth) कुण्डके पास ११ फुट है। चूल्हेकी दीवारमें कई छेद होते हैं, जिनसे गला हुआ लोहा निकाला जाता है और मैल दूसरे छेद अथवा उसी छेदके ऊपरी भागसे निकलता है, क्योंकि मैल हलका होता है और लोहेके ऊपर उतराता रहता है। कोयलेको जलानेके लिये ठण्डी हवा विद्युत्घरसे आती है और चूल्हेमें गरम होकर (Tuyeres) ट्विवयर अर्थात् छोटे छोटे पतले नलोंके द्वारा भट्ठे में पहुंचायी जाती है। ऐसा करनेसे ३० प्रतिशत जलावन कम लगता है। एक टन लोहा
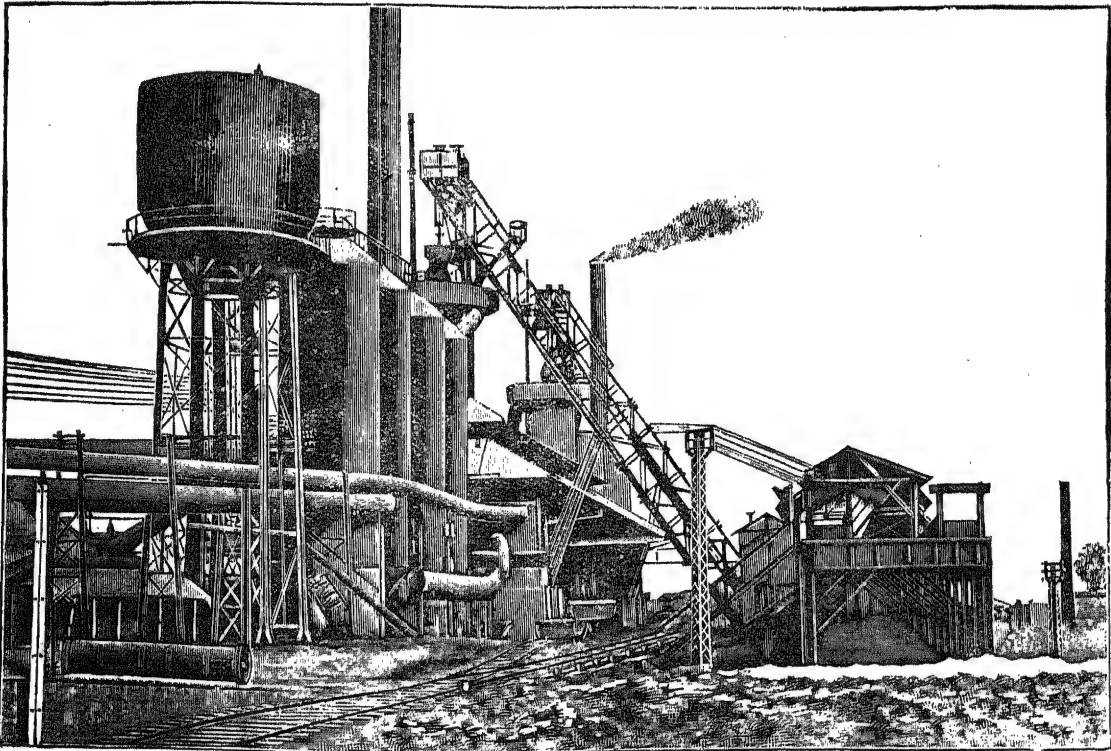
चित्र ६—ताताके लोहेके कारखानेका वात भट्ठा।

तैयार करनेके लिये एक टन कोक, आधा टन चूना और पांच टन गरम हवा लगती है। इस प्रकार कमसे कम २०० टन ढलवां लोहा प्रतिदिन तैयार होता है। इसलिये दोनों भट्टोंसे हर महीने लगभग बारह तेरह हजार टन लोहा बनता है, जिसमें से आठ दस हजार टन तक हर महीने कारखानेमें ही खर्च होता है। इस्पात घर और ढलाई घरमें खर्च होनेके बाद लौह डिम्ब (pig irons) बेच दिये जाते हैं। यहांसे (pig irons) ढलवां लोहा ब्रह्मा, स्ट्रेट सेटलमेन्ट, जीलैण्ड, लंका, जावा, चीन, जापान, मनचूरिया, औस्ट्रेलिया तथा अमेरिकाके युनाइटेडस्टेट्समें भेजा जाता है। लोहेके मैलका भी उपयोग किया जाता है। इसमें चूना मिलाकर ईंटें बनायी जाती हैं और लाल लाल ईंटें जो हमारे देशमें बनायी जाती हैं उनसे आधे खर्चमें यह मैलकी ईंटें तैयार होती हैं।

(raw materials) कच्चे पदार्थ, जैसे लोहेका पत्थर डोलोमैट, कोक इत्यादि रेलगाड़ियोंमें आते हैं और भट्टेसे दक्खिन ओर एक स्थानपर एकत्रित किये जाते हैं। इस स्थानको खाना-गोदाम (stock bins and trestles) कहते हैं। यहांपर (trucks) ठेलोंके भरनेके लिए लोहेके खाने बने हैं, जिनमें छः कोकके लिए, दो डोलोमैटकेलिये और दस लोहेके पत्थरके लिये हैं। खानेके नीचे ठेला आकर ठहर जाता है और उचित परिमाणसे कच्चे पदार्थोंको लेकर स्किप (Skip) द्वारा जाकर वातभट्टेमें उन पदार्थोंको गिराता है। गिरनेके चार घण्टे पीछे ये पदार्थ गलकर तैयार हो जाते हैं। भट्टेके खराब होनेसे समय कुछ ज्यादा भी लगता है। तैयार होनेपर द्रव लोहेके गिरनेके लिये दरवाज़ा खोल दिया जाता है। बालूके करहेमें होकर या तो यह बालूकी कियारीमें गिराया जाता है अथवा डब्बोंमें भरकर खुले भट्टेमें (Open hearth furnace) लाया जाता है। जब खुले भट्टोंमें तुरन्त ही इसका व्यवहार नहीं होता तो मिक्सरमें (mixer) रख दिया जाता है और (slag) धातुका मैल हलका होनेसे द्रव धातुके ऊपर उतराने लगता है और दूसरे करहेके द्वारा डब्बोंमें गिराया जाता है, जहां बड़े बड़े ढ़ालुआं लोहेके बने पात्र रखे रहते हैं। इन सब पात्रोंको कुछ दूर ले जाकर झुका देते हैं जिससे सब मैल गिर पड़ता है। यदि द्रव धातुकी दर्कार नहीं है अथवा विलम्बसे होगी तो बालूकी कियारियोंमें उसे ढ़ाल देते हैं। इस कियारीकी लम्बाई ४२ फुट और चौड़ाई ४० फुट ४ इञ्च है। इतनेपर भी काम नहीं चलता था, इसलिये दोनों भट्टोंके बीचमें उत्तर तरफ़ एक स्थान और बनाया गया है, जिसको केश हौस एनेक्स (cash house annex)कहते हैं। यहां भी बालूकी कियारियां बनी हैं जहां डिम्ब ढ़ाले जाते हैं। द्रव लोहा बड़े बड़े डब्बोंमें ढ़ारा जाता है जिनमें लगभग ३० टन धातु अंटती है और यह धातु स्टील भट्टेके खुले भट्टे अथवा मिक्सरमें रख दी जाती है। दूसरे वातभट्टेसे सटे हुए पूरब ओर चार और वायु गरम करनेके लिये 'स्टोव्ज़' हैं।

रासायनिक क्रिया

लोहेके पत्थरमें मुख्यतः (carbonate) कर्बनेत तथा (oxides) ओषिद हैं। वनस्पतियोंके जलानेसे जो कर्बनिकाम्ल वायु तैयार होती है, उसीके और लोहेके यौगिकको लौह कर्बनेत कहते हैं। यह कर्बनेत पृथ्वीके गर्भसे हम लोगोंको मिलता है। यह मिट्टीसे मिला हुआ प्रायः कोयलेकी खानोंके निकट पाया जाता है। कर्बनेत मिट्टी तथा कोयलेसे मिला रहता है और विशेषकर गन्धक और फासफोरससे भी युक्त रहता है। इस अवस्थामें गन्धक मामूली तौरसे खटिक गंधेत (calcium sulphate) के रूपमें रहता है और स्फुर (calcium phosphate) स्फुरेतके रूपमें। कभी कभी गन्धक भी मिला रहता है पर यह स्वर्ण मक्षिकाके (iron pyrites) रूपमें रहता है। हवामें ओषजन और नत्रजन वायु प्रधान हैं। इन दोनोंमेंसे ओषजन प्राणियोंकी श्वासमें जाकर

रक्त शुद्ध करती है। यदि हवामेंसे ओषजन निकाल दी जाय और उसमें कोई प्राणी रखा जाय तो जीवित नहीं रह सकता है। इसी कारण इसको प्राणवायु भी कहते हैं। इस प्राणवायुका लोहेसे संयोग होनेसे लोहेका ओषिद बनता है। सब प्रकारके लौह-पत्थरमें ओषिद एक ही परिमाणमें नहीं पाया जाता और सबमें लोहेका अंश भी बराबर नहीं होता, जिससे उनकी कई जातियां हो जाती हैं। यहांपर प्रायः भूरा हैमैटैट (Brown hematite) आता है और मध्यप्रदेशमें एक स्थान चांदा है जहांसे (Red hematite) रेड हेमैटैट आता है। इसमें लोहेका अंश बहुत अधिक होता है।

लोहेके पत्थरको कर्बन द्विओषिद अलग करनेके लिये पकाते हैं।

४ लौ क ओ$_{३}$ + ओ$_{२}$ = २ लौ$_{२}$ ओ$_{३}$ + ४ क ओ$_{२}$

मिट्टीको अलग करनेके लिए चूना मिलाया जाता है। मिट्टीमें सिकता (सि ओ$_{२}$) और अलुमिना (अ$_{२}$ ओ$_{३}$) मिला रहता है और चूनेके साथ मिलनेसे ये दोनों मैलमें निकल जाते हैं। अब यह देखना चाहिये कि कौन कौन पदार्थ वायु भट्टेमें दिये जाते हैं और कितने तापसे कहांपर गलते हैं। पहले मैं आपको बता चुका हूं कि इस वायु-भट्टेमें दो मुख्य भाग हैं, जिनकी तुलना मनुष्यके धड़से अच्छी तरह हो सकती है। स्किप्स रूपी हाथोंसे खाद्य पदार्थ सूची और प्याले रूपी मुंहमें गिराये जाते हैं और गलेसे होकर पेटमें पहुंचनेपर तापके द्वारा गलकर हर्थ रूपी कमरके पास आकर इकट्ठे हो जाते हैं और तब ढलुआं लोहे तथा मैलके रूपमें पृथक् हो नीचेके रास्तेसे वह निकलते हैं। खाद्य पदार्थोंमें पहले कोक फिर चूना और अन्तमें लोहेका पत्थर दिया जाता है। तब एक थोक (चार्ज) पूरा होता है और इस तरहके कई थोक मिलकर एक घान (रौण्ड) होता है। दिन रातमें पांच छः घान दिये जाते हैं। गली हुई धातु जहां इकट्ठी होती है उस स्थानको (crucible) कुण्ड या क्रुसिबिल कहते हैं। इसीके पास दस बारह (tuyeres) छेद-वाले नल होते हैं, जिनसे गरम हवा भीतर जाती है। यह हवा ६००° तक गरम रहती है और कोयलेके जलनेमें सहायक होती है। लोहेका पत्थर जैसे ही भट्टेमें गिरता है, वैसे ही गलना शुरु हो जाता है। पत्थर, कोयला, इत्यादि तो ऊपरसे नीचेको उतरते हैं और उत्तप्त वायु और अन्य वायव्य ऊपरकी ओर चढ़ते हैं और इस प्रकार भट्टेके प्रत्येक भागमें दोनों धाराएं परस्पर खूब मिल घुलकर विपरीत दिशाओंमें चलती हैं।

वायुकी ओषजन भट्टेके नीचेके हिस्सेमें पहले कर्बनसे मिलकर कर्बन द्विओषिद (कओ$_{२}$) बनाती है, जो ऊंचे तापक्रमके कारण, टूटकर एकौषिद (क ओ) बनाती है। यही गैस लोहे पत्थरका 'प्याले और सूची' के नीचे उतरते ही स्वागत करती है और बिचारेकी सम्पत्ति लूट–ओषजन चुरा–स्वयम् कओ$_{२}$ में परिणत हो जाती है। इन क्रियाओंको समीकरणोंके द्वारा यों व्यक्त कर सकते हैं–

ओ$_{२}$ + क = क ओ$_{२}$

क ओ$_{२}$ + क = २ क ओ

लौ$_{२}$ ओ$_{३}$ + ३ क ओ = २ लौ + ३ क ओ$_{२}$
+ (८६५२ कलारी)
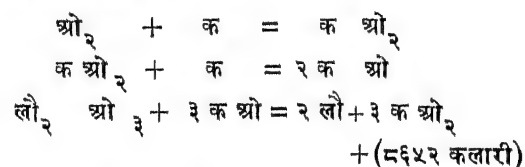
अन्तिम समीकरणमें जो ब्रेकेटमें लिखा है, उससे यह निर्दृष्ट है कि इस परिवर्तनमें ८६५२ कलारी गर्मी पैदा होती है, यानी लगभग एक सेर लोहेका पत्थर यदि लोहेमें बदला जाय तो इतनी गर्मी पैदा होगी जितनी आध सेर पानीको खौला देनेके लिए काफी होगी।

लोहा जो इस प्रकार पैदा होता है, ठोस और झावा पत्थरकी शकलका होता है। जैसे जैसे यह नीचेकी ओर चलता है, कर्बन एकौषिदसे मिलकर लौह कर्बनिल बनाता जाता है, जो और

नीचे जाकर टूट जाता है और लोहेमें कर्बनकी कुछ मात्रा छोड़ जाता है:—

लौ + ४ क ओ = लौ (क ओ)$_{४}$

लौ (क ओ)$_{४}$ = लौ + ४ क + ४ ओ

इस भांति लोहेमें कर्बनका अंश बढ़ता जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि लोहा धीरे धीरे गलने लगता है और अन्तमें गलकर कुण्ड-में इकट्ठा हो जाता है। *

अब देखिये कि लोह पत्थरके साथ मिले हुए चूनेके पत्थर और रेतका (सिकता) क्या होता है। चूनेका पत्थर चूना और कर्बनद्विओषिदमें टूट जाता है और चूना रेतके साथ मिलकर मैल बना लेता है, जो हलका होनेसे, गले हुए लोहेके ऊपर जमा हो जाता है। कुण्डके ऊपर ही हवा जानेके छेद हैं। यदि हवा द्रवित लोहेके ऊपर होकर जाती, तो लौह ओषिद फिरसे बन जाता, पर मैलकी तह लोहेकी रक्षा करती है।

कुण्डमें दो छेद होते हैं, ऊपरवालेसे मैल और नीचे वालेसे लोहा निकाल लिया जाता है। ठीक इन छेदोंके नीचे छोटी छोटी गाड़ियां लाकर खड़ी कर दी जाती हैं, जिनमें लोहा या मैल भर-कर अभीष्ट स्थान तक पहुंचा सकते हैं।

चिमनियोंसे जो गरम गैस निकला करती है, उसको उपयोगमें लानेके लिये नल बने हैं, जिनसे गैस फिर चूल्होंमें जाकर हवाको गरम करती है अथवा (boiler) वाष्पजनकमें भाप पैदा करनेके काममें आती है। देखो चित्र १० व ११
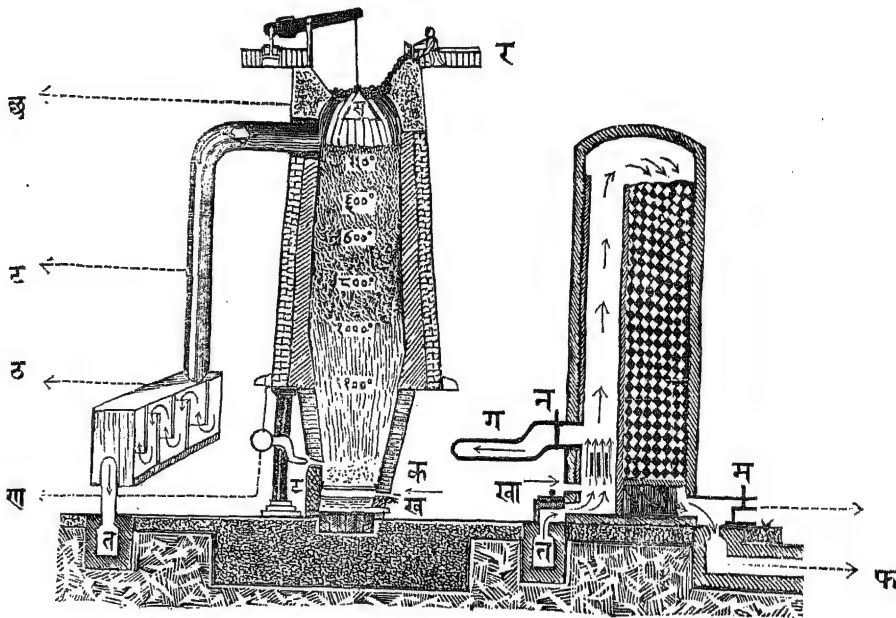
चित्र १०—वात भट्ठा। चित्र ११—कौपर का स्टोव (चूल्हा)।

छ—वातभट्ठेका गला। ट—नली जिसमें होकर भट्ठेमेंको गैस निकल कर स्टोवृज़में जाती है। ठ—छोटी छोटी कोठरियां, जिनमें गसका कूड़ा करकट रह जाता है। त—स्टोवके त स्थानसे नल द्वारा जुड़ा है, अतः भट्ठेकी गैस स्टोवमें

* शुद्ध लोहा ज्यादा गर्मीसे गलताहै, पर कर्बनमिश्रित लोहा कम गर्मीसे गलता है।

त द्वारा प्रवेश करती है ख-द्वारा वायुकी आवश्यक मात्रा, भट्टेकी गैसको जलानेको, जितनी पर्याप्त होती है उतनी, प्रवेश करती है। हवा और गैसका मिश्रण स्टोवमें जलता है और ईंटोंकी जालियोंको गरम करता है। उच्छिष्ट गैसें फ द्वारा चिमनीमें पहुंचकर बाहर निकल जाती हैं। जब यह स्टोव खूब गरम हो जाता है, तो ख, त, फ छिद्र ढिबरियोंसे बन्दकर देते हैं। न और म को खोल देते हैं। पंखों द्वारा प्रेरित ठण्डी वायु म में होकर स्टोवमें जाती है, जालियोंमें से निकलते समय खूब गरम हो जाती है और ग में होकर ण द्वारा ट्वियरमें पहुंचकर भट्टेमें प्रवेश करती है।

इसी बीचमें भट्टेकी गरम गैस दूसरे स्टोवमें जलकर उसे गरम करती रहती है। जब पहला स्टोव ठण्डा हो जाता है और दूसरा गरम हो जाता है, तो पंखों द्वारा प्रेरित वायु दूसरेमें होकर और भट्टेकी वायु पहलेमें होकर जाने लगती है। इस प्रकार बारी बारीसे स्टोव गरम और ठण्डे होकर वातभट्टेको सदा गरम वात पहुंचाते रहते हैं।

र—तक कोयला, लौह पत्थर आदि ठेलोंमें पहुंचा दिये जाते हैं और वहां उंडेल दिये जाते हैं। बोझके कारण स सूची दब जाती है और उपरोक्त पदार्थ भट्टेमें गिर जाते हैं। दबावके हटते ही स अपने स्थानपर चली जाती है। यही 'प्याला और सूची' का उपयोग है, कि भट्टा खुला नहीं रहता और मसाला भी जब चाहें तब डाल सकते हैं।

भट्टों के विविध भागोंमें जो तापक्रम रहता है चित्र १० में दिया हुआ है।

(coke ovens) कोकके भट्टे

यह स्थान हौज़के तटपर स्टौक (stock bins and trestles) से दक्खिन है। इस स्टौकके पूर्वीय छोरपर एक खोहका सा रास्ता है। दूसरी राह सीढ़ीसे, पुल पारकर, कोकके भट्टोंकी ओर जानेकी है। पुल पार करके पूरब ओर बढ़नेसे एक मकान मिलता है, जहां स्त्रियां ही देखनेमें आती हैं। यह घर स्त्रियोंके खाने पीने, आराम करने तथा रातमें विश्राम करनेके लिए कम्पनीने बनवाया है। ये सब स्त्रियां इस गृहके सामने दक्खिन ओर स्थित कोकके भट्टोंमें काम करती हैं और समय समयपर इसी घरमें आराम करती हैं। यहां पुरुषोंका आना जाना मना है और उन स्त्रियोंकी चौकसीके लिए स्त्रियां ही नियुक्त की गयी हैं। कम्पनीको लोहेकी भट्टीमें जलानेके लिये कोककी आवश्यकता हुई। इसीलिये कोक भी कम्पनी अपने कारखानेमें ही तैयार करने लगी है। यह भट्टा सन् १ ११ की १२ वीं सितम्बरको चला था। पत्थरके कोयलेको बन्द भट्टेमें तपानेसे कोयलेका अलकतरा, और कई गैस अलग हो जाती हैं। इन पदार्थोंके निकल जानेपर जो पदार्थ बच जाता है उसीको कोक कहते हैं। कोक तैयार करते समय जो गैसें अलग होती हैं उनको इकट्ठा करनेसे कई पदार्थ अमोनिया, आदि निकलते हैं।

कोक धुआं कम और गरमी ज़्यादा देता है। हिन्दुस्थानमें कोककी आमद कम होनेसे स्थानीय कम्पनीने पहले १८० भट्टे (Coppee non-recovery retort ovens) बनवाये थे। इन चूल्होंसे दिन रात गैस निकलती रहती है, परन्तु उसका कोई उपयोग नहीं किया जाता है। इनमेंसे हरएक चूल्हेमें सात टन कोयला बुकनी करके दिया जाता है, जिससे ४·७५ पौने पांच टन कोक तैयार निकलता है। ये चूल्हे करीब ३० फ़ुट लम्बे, चार फ़ुट चौड़े तथा पन्द्रह फ़ुट ऊंचे होते हैं। इनके ऊपर छत सी पटी है और कोयला देनेके लिये छतपर हरेक चूल्हेमें चारचार छेद हैं। मामूली ईंटें अधिक ताप नहीं सह सकतीं, इस कारण ये चूल्हे सिलकन मिश्रित ईंटोंसे बनाये गए हैं और चार बाटरी में विभाजित हैं। छोरोंपरकी दोनों बाटरियोंमें ४६, ४६, चूल्हे हैं और मध्यवाले दोनोंमें ४४,४४, हैं। इनमेंसे गैस निकलनेकेलिए चार चिमनियां लगी हैं अर्थात् हरेक बाटरीमें एक एक चिमनी है। हरेक चिमनी ९० अथवा ९५ फ़ुट ऊंची है। एक बाटरी आजकल कोयलेकी कमीसे बन्द है। दोसे बराबर गैस निकलती रहती है, जिससे रातमें एक प्रकारका उजाला सारे नगरपर छाया रहता है। बाकी बची हुई एक चिमनीसे

(boiler) वाष्पजनक स्थापित किया गया है। इस वाष्पजनककी भाप गौण-उत्पत्ति-भवनमें (by-product plant) जाती है। इन सब चूल्होंमें करीब ७०० टनके कोयला प्रतिदिन जलता है। इन भट्टोंमेंसे कोई भट्ट २८ अथवा ३० घण्टेमें कोक तैयार कर देते हैं और बाकी ४२ घण्टेमें, किन्तु नियमित समय ३६ घंटा है। इसलिये औसत ३१ घंटे में कोक इनमें तैयार होता है।

इन भट्टोंसे दक्खिन कोयला चूर्ण करनेका स्थान (coal crushing plant) है। यहां कोयला चूर्ण करनेके लिये दो बेलनाकार लोहेके सादा बेलन (rollers) हैं, जिनमें कोयला गिरा देनेसे चूर चूर हो जाता है और कोयलेका चूर्ण लोहेके छोटे छोटे आयताकार डब्बोंमें अपने आप भरता जाता है, जो यंत्रके द्वारा ऊपर उठते जाते हैं। कोई १५ या २० फुटके ऊपर फिर दो दांतवाले बेलन हैं, जिनमें छिटके हुए कोयलेके बड़े बड़े टुकड़े भी चूर चूर हो जाते हैं। इसके बाद वे डब्बे अपनी ही कोयलेकी बुकनीसे भर जाते हैं और बुकनीको लेकर भण्डारमें गिरा देते हैं, जो यहांसे उत्तर है। इस भण्डारका ऊपरी भाग ईंटोंसे बना है और नीचे चार दरवाजे लोहेके डब्बेसे बने हैं। इन्हीं रास्तोंसे कोयला-बुकनी ठेलोंमें भरी जाती है और यंत्र द्वारा चूल्होंतक पहुंचती है। इस भण्डारमें १००० टन बुकनी अंटती है।

इतने भट्टे होनेपर भी वातभट्टोंमें कोककी मांग बनी रही; इसलिये ६० ड्रेग-कोक-भट्टे (Drag Coke ovens) और बनाये गये किन्तु तब भी मांग पूरी नहीं हुई, तब एक नया भट्टा बनाया गया। इसमें ५० (Koppers Patent Regenerative Coke ovens)* कोपर पेटेन्ट-तापोपकारक-कोक भट्टे बने हैं, जिनमें गौण-उत्पत्ति इकट्ठा करनेसे कोलटार, गैस तथा एमोनिया गंधेत बनते हैं। इनके सब यंत्र शेफील्डसे (Sheffield) मंगाये गये हैं। इनमें प्रतिदिन ३६० टन कोयला जलता है। ये भट्टे आधुनिक वैज्ञानिक रीतिसे इस तरह बनाये गये हैं कि प्रत्येक भट्टेको अलग अलग गरम या ठंडा कर सकते हैं और इनमें ऐसी (valves) ढिबरी लगी हैं कि निकली हुई गैस पूरे तौरसे एक जगह इकट्ठी हो सकती है। इस प्रकार थोड़े खर्चसे लाभ कई गुना होता है। एक तो अच्छा कोक मिला, दूसरे अलकतरा तथा अमोनिया-जल (ammoniacal liqour) भी बहुत सहजमें मिल जाता है।

हरेक चूल्हेके साथ एक एक तापोपकारक है जो हवाको गैससे मिलनेके पूर्व ही गरम कर देता है, जिससे हवा गरम हो शीघ्र लहरने लगती है। चूल्हेकी बाटरी भी इस प्रकार बनी है कि आधे घंटेमें तापोपकारकमें हवा और गैस बदली जा सकती हैं। एक चूल्हा जिसमें ६ टन कोयला अंटता है, यंत्र द्वारा पांच मिनटमें भर दिया जाता है, और इससे पैदा हुआ कोक दूसरे यंत्र द्वारा बाहर निकाला जाता है, जिसको (ram) रैम कहते हैं। वह स्थान जहां कोक निकाला जाता है रद्दी रेलों तथा फ्लैट्स (flats) से बना है अर्थात् रेलोंको गाड़ कर प्लैट्स ऊपरसे पाट दिये गये हैं और उनके बीच बीचमें थोड़ा स्थान छुटा हुआ है, जिसके द्वारा पानी नीचे नालीमें चला जाता है। सामने ही पानीके पैप लगे हैं, जिनसे पानी बराबर जलते हुए कोकपर छिड़का जाता है। इन पानीके छींटोंसे कोकके पांच सेर चार सेर सेर या पाव पाव भरके टुकड़े हो कर गिरते जाते

* तापोपकारक (regenerator) ऐसी कोठरियां होती हैं, जिनमें ईंट, पत्थर आदि भरे रहते हैं। भट्टोंमेंसे निकली हुई गरम हवा इनमें हो कर निकलती है। थोड़ी देरमें यह खूब गरम हो जाते हैं। तब भट्ठेमेंसे निकलनेवाली हवा ऐसे दूसरे तापोपकारकमें होकर निकलने लगते हैं, और पहलेमें होकर ठण्डी हवा भट्ठेमें जाती है और इस भट्ठे तक पहुंचते पहुंचते गरम हो जाती है। इस भांति बारी बारीसे गरम होकर भट्ठेमें प्रवेश करनेवाली हवाका तापक्रम बढ़ा कर ईंधन की किफायत करते हैं। इसीसे तापोपकारक नाम पड़ा। —सं

हैं और ठंडे होनेपर कुली लोग टोकरियोंसे एक स्थानमें इकट्ठा करते हैं। कोक यंत्र द्वारा ठेलोंमें लादा जाकर वातभट्ठेके लिये रवाना किया जाता है। कोककी धूल और गर्द नीचेवाली नालीमें धोकर बहा दी जाती है, और गाड़ियोंमें लादी जाकर (elevator) उठान-यंत्रके द्वारा अलग जाकर गिरा दी जाती है। यह यंत्र बिजलीसे चलाया जाता है। यदि कोक अधपका होता है अथवा ज्यादा चूर चूर हो जाता है, तो उसका वाष्पजनकमें व्यवहार किया जाता है। यहांसे कोक चालान भी किया जाता है।

छोटी पूंजीके कारीगरोंकेलिये सहकारिता

यदि आप उस कानूनको उठाकर देखें कि जिसके आधारपर सहकारी समितियोंका (co-operaive banks) संगठन हुआ है तो आपको यह जानकर बड़ा ही अचम्भा होगा कि केवल ऋणी कृषकोंको ही बनिये, महाजनोंके उपद्रवसे बचानेके लिए सहकारिताकी प्रणाली नहीं चलाई गई है। कृषकोंके दुःख-शमनके साथ साथ थोड़ी पूंजीके कारीगरोंको भी सहायता प्रदान करना उसके उद्देशोंमें सम्मिलित है। परन्तु आजतक कृषकवर्गकी आर्थिक और सामाजिक अवस्था सुधारनेमें "सहकारिता" के सिद्धान्तका जितना प्रयोग किया गया है, उतना इस देशमें छोटे शिल्पी और श्रमजीवियोंके क्लेश और कठिनाईयोंको दूरकरनेका प्रयत्न नहीं हुआ है।

पत्र, पत्रिकाओंमें जहां तहां आप सहकारी बंकोंकी सफलताका शुभ संवाद सुना करते होंगे परन्तु खेद है कि इस सफलतासे हमारे विपद्ग्रस्त कारीगरों और छोटे व्यापारियोंकी दशामें कोई विशेष हेर फेर नहीं हुआ है।

अपने देशमें सहकारिताकी वृद्धि और प्रसारके सूचक अंकोंपर जब आप दृष्टिपात करेंगे तो क्या देखेंगे कि एक ओर कृषकोंसे सम्बन्ध रखनेवाली समितियाँ १९१३-१४ सालके अन्तमें १३८८२ थीं और इतर समितियां केवल ६८४! इसके अतिरिक्त यदि आप थोड़ी देरके लिए उन सहकारी समितियोंकी संख्याका अनुसन्धान करें जो ऋणके रूपमें नगद रुपये देकर नहीं काम करती थीं वरन् नगर वा कसबोंमें गल्लापातीको छोड़कर और और चीजोंकी खरीद बिक्री, मालकी तैयारी और बिक्री इत्यादिमें सुबिधा देती थीं अर्थात् जिनका लक्ष्य देशके उद्योग धन्धोंको उत्तेजित करना मात्र था तो आपको भारतवर्ष भरमें केवल ८२ ऐसी समितियां मिलेंगी!

यहांपर इन दोनों पक्षोंके उल्लेखसे यह कभी अभिप्राय नहीं है कि हमारे कृषकोंकी गति वैसी शोचनीय नहीं है वा उनके उद्धार करनेकी चेष्टा कुछ कम महत्व रखती है। वक्तव्य इतना है कि हम एकके दुःख-निवारणमें तत्पर होकर दूसरेकी सुधि नहीं भूलने पायें। कारीगरोंका समूह हमारे समाजका एक पृथक् अंग है और संभवतः कृषकोंके सुख और समृद्धिका उनपर कोई परोक्ष प्रभाव न पड़े। इसलिये कारीगरोंकी ओर बहुत दिनों तक उपेक्षाभावसे देखना हमारे लिये बुरा होगा।

कृषकोंके बीच सहकारी संस्थाओंके प्रसारका एक यह भी कारण हो सकता है कि पहले पहल सहकारिताका सूत्रपात विशेषकर दुर्भिक्ष-पीड़ित और ऋण-ग्रस्त कृषकोंके उद्धार निमित्त ही हुआ था। इसका दूसरा कारण यह भी सुननेमें आता है कि सरकार इस बातसे बहुत सशंक है कि भारतवासियोंको सहकारिताका उद्देश्य जबतक अच्छी तरह समझमें न आजाय, बाहरसे इस कार्यको विस्तार देना ठीक नहीं है। इससे बहुत दिनोंके लिये उन्नतिका मार्ग रुद्ध हो जानेका भय रहता है।

इस स्थलपर छोटी पूंजीके कारीगरोंके बीच ("artisans of small means" co-operative act) सहकारिताका प्रयोग न होनेकी उपरोक्त दो कठिनाईयोंपर थोड़ा विचार किया जाय तो कहना पड़ेगा कि यद्यपि दुर्भिक्ष एक ऐसी घटना है जिसके भीषण कष्ट हम लोगोंको चार पाँच सालमें कभी देखनेमें आते हैं तथा कृषकोंको ऋण कष्टसे मुक्त करनेमें अकेले सहकारितासे काम न चलेगा वरन् लगानके कानूनके (tenancy act) सुधारकी भी ज़रूरत होगी और इसमें बीसों साल लगेंगे। इधर कारीगरोंके स्थायी दुःख दारिद्रसे न केवल उन्हींका नाश हो रहा है वरन् उनके साथ शिल्पकलाके लोपसे हमारे दैनिक जीवनकी आवश्यक व्यवहारिक वस्तुएं महंगी होती जाती हैं और इस तरह प्रतिवर्ष हमें इस मदमें जितना खर्च करना चाहिये उससे अधिक खर्च होजाता है।

हम यह स्वीकार करते हैं कि सरकारी कोषमें इतना धन नहीं कि विशेष रूपसे हमारे शासक धन लगाकर उद्योग धन्धोंकी वृद्धि करें, परन्तु सरकारी निरीक्षणमें स्वयं कारीगरोंके संगठन द्वारा "संहति कार्य साधिका" के नियमपर उनके अल्प और बिखरे हुए व्यक्तिगत धन, बुद्धि और प्रबन्ध करनेकी क्षमताका अच्छा उपयोग कराया जा सकता है। पूंजीके निमित्त आजकल हमारे शिल्पी कारीगर बनिये साहूकारोंके हाथ सदाके लिये बिके रहते हैं। ४० और ५० रुपये सैकड़ा सूद देकर ऊन, रेशम, सूत और रंग इत्यादि उधार लाते हैं। जिन्दगी भर सूद चुकाते रहते हैं पर कभी उनसे निस्तार नहीं पाते। महाजनोंके त्राससे उनकी कमर ऐसी टूट जाती है कि उनसे फिर काममें पूरा परिश्रम नहीं हो सकता। जैसे तैसे निराशामें दिन काटते और अपने शिल्पको बिगाड़ डालते हैं।

माल तैयार होनेपर दूकानदार भी रुपयेकी जगह आठ आने देकर उन्हें खूब ठगते हैं। कभी कभी पहलेसे ही वह उनके ऋणी होते हैं; जो कुछ बना पाते हैं झक मारकर उन्हें सौंपना पड़ता है। उन वस्तुओंके आधे तिहाई दाम लगाकर कुछ तो ऋणमें काट लिया जाता है कुछ खानेके लिये नगद मिलता है। उससे पेट पालना ही कठिन हो जाता है, अपने औज़ारको दुरुस्त करके बढ़िया काम बनानेकी फ़िकर कौन करता है!

मिस्टर हरलेकर और देवधरने कारीगरोंकी पीठसे इन विपदोंका बोझ कुछ हलका करनेके हेत सहकारी समितियोंके द्वारा बम्बई प्रान्तमें थोड़ी बहुत सुबिधा की है। अब ज़रूरत इस बातकी है कि उसी आधारपर सार्वजनिक सभायें और व्यवसाय-कुशल उत्साही पुरुष देश भरमें कारीगरोंको सहायता प्रदान करनेकी चेष्टा करें, जैसे कि छोटे व्यवसाय वालोंको ज़रूरी जिन्स बड़े आढ़तियोंसे किफायतपर खरीदकर दे दी जायं और जब वह काम बनाकर बेच लेवें तो उनसे रुपये वसूल कर लिये जांय। जिन दिनों काम मन्दा पड़ जाता है, खाने पीने, शादी व्याह और रसमके वास्ते भी उचित सूदपर उन्हें रुपया मिल सके, कच्चा माल खरीदने या करघे और औजारकी मरम्मतके लिये आसानीसे रुपये मिल जायं। नगर वा गांवमें किसी नियत स्थानपर समितियोंकी ओरसे कारीगरोंके मालकी दूकान लगा दी जाय और यदि उनके बिकनेमें देर हो तो तबतक रुपये अधेली पेशगी खर्चकेलिये मिले और आगे काम बनानेमें कोई बाधा न पड़े, अर्थात् नया माल तैयार करनेके लिये कच्ची जिन्सकी भी कमी न हो। चमार, जुलाहे, रंगरेज़ जिल्द साज़ ठठेरे, बढ़ई, लुहार सबके व्यवसायके लिये अलग अलग समितियां बनाकर उनके निजके संगठनसे बाहरी धूर्त दलाल, तथा लोभी पैकार और गाहकोंका अत्याचार रोका जाय। फिर आशा यह है कि नियमपूर्वक और मुस्तैदीके साथ कठिनाईयोंका मुकाबला करनेपर कोई न कोई रास्ता निकल ही आता है।

—गोपालनारायणसेनसिंह

गन्नेके रससे सिरका बनाना

[ले० श्रीयुत मुखत्यारसिंह]

हमने पिछले लेखमें प्रायः सिरका बनानेके पूरे पूरे नियम लिख दिये थे तथापि अनेक महानुभावोंने पत्र द्वारा अनेक बातें और जाननेके लिये लिखा। और पाठकोंको भी संभव है इसी प्रकारके संशय हों। अतः हम इस विषयपर कुछ और विचार करना चाहते हैं। इस लेखको और पत्रोंने भी विज्ञानसे लेकर छापनेकी कृपा की है, परंतु उन्होंने यह नहीं लिखा कि यह लेख विज्ञानसे लिया गया है। ऐसा न लिखना सर्वथा अनुचित है। हम आशा करते हैं कि यह किसी कर्मचारीकी भूल होगी।

पहले इस बातको भली भांति समझ लेना उचित है कि सिरका क्या पदार्थ है और किस प्रकार बनता है। यदि यह भली भांति समझमें आजाय तो कार्य्य करनेमें कोई कठिनाई न होगी। सिरका एक आंगारिक तेज़ाब है, जिसको सिरकाम्ल (एसेटिक एसिड Acetic acid) कहते हैं। सिरकेमें प्रायः ४ प्रतिशत सिरकाम्ल रहता है अर्थात् यदि ४ भाग सिरकाम्ल है तो ९६ भाग पानी होगा। परन्तु यदि हम ४ भाग सिरकाम्ल लेकर उसमें ९६ भाग पानी मिला दें, तो उस घोलका स्वाद व्यवहारिक सिरकेके स्वादसे भिन्न होगा। इसका कारण यह है कि सिरकेमें, भले ही सिरकाम्ल ४ % भी न हो, अन्य पदार्थ, शर्करा आदि मिले रहते हैं। सिरकेमें तेज़ाबके अतिरिक्त क्या क्या पदार्थ मिले होते हैं इन बातोंकी मीमांसा करना सर्वथा अनावश्यक है। हम केवल यह बताना चाहते हैं कि सिरका किस प्रकार बनाया जा सकता है।

प्रत्येक पदार्थसे, जिसमें मिठास हो सिरका बन सकता है। संभव है उचित रीतिका अवलम्बन न करनेसे सिरका न बनकर कुछ और पदार्थ बन जाव, परंतु जगन्नियन्ताने उसमें यह शक्ति प्रदान की है कि यदि मनुष्य ठीक प्रकार काम करे तो उससे सिरका बना सके। संसारका कोई पदार्थ जिस रूपमें है, उसीमें नहीं रह सकता। इसी नियमके अनुसार यदि मीठे पदार्थमें नमी व गरमी पहुंचेगी तो वह मीठा न रह कर एक और चीज़में परिणत हो जायगा। उसका सड़ना आरंभ हो जायगा। वह धीरे धीरे मिठास नष्ट करके कुछ और बन जायगा। विज्ञानवेत्ताओंका मत है कि अनेक सूक्ष्म जंतु, जिनको जीवाणु (Bacteria or germs) कहते हैं पदार्थोंको विकृत करते रहते हैं। सड़ना केवल पदार्थोंमें इन जंतुओंका आधिक्य मात्र का नाम है। गन्नेके ऊपर जो बारीक सफ़ेद चूर्ण सा लगा रहता है इसमें यह शक्ति मौजूद है कि यदि रसको वैसे ही छोड़ दिया जाय और साधारण गरमी बनी रहे तो वह धीरे धीरे उसको सिरकेमें परिणत कर देवे। यही कारण है कि रस गांवोंमें भर कर रख दिया जाता है और वह धीरे धीरे कुछ दिनोंके पश्चात् स्वयं सिरका बन जाता है। ऐसा होनेमें बड़ी देर लगती है और यह भी संभव है कि ऋतुपरिवर्तनके कारण वह सिरका न बन कर कुछ और बन जावे और इस प्रकार सिरका बनानेवालेकी आशाओंपर पानी फिर जावे। अतः विज्ञानवेत्ताओंने इस बातकी खोज की है कि सिरका बनानेमें कौन कौन परिवर्तन हुआ करते हैं और उनको नियमपूर्वक काममें लानेके क्या उपाय हैं। इन्हीं नियमोंके अनुसार काम करनेके कारण वे इस योग्य हुए हैं कि सिरका कदापि नहीं बिगड़ने पाता।

इनका सिद्धांत है कि सिरका बननेसे पूर्व गन्नेका रस अथवा और कोई मीठा पदार्थ शराबमें परिणत होता है अर्थात् किसी मीठे पदार्थका सिरका बन सकना असंभव है जब तक कि उसको पहिले शराबमें परिणत न कर लिया जावे। अतः यदि शीघ्रतासे सिरका बनाना हो तो उस-

में थोड़ा सा शराबका लाहन डाल दो। इसके डालनेसे यदि गरमी अच्छी होगी और मौसम नम न होगा तो बहुत ही शीघ्र इसमें बुलबुले उठने लगेंगे और धीरे धीरे यह बुलबुले बहुत बढ़ जायंगे जो इस बातका प्रमाण होगा कि शराब बननेका कार्य्य ठीक हो रहा है। फिर धीरे धीरे यह बुलबुले स्वयं कम होने लगेंगे और फिर रस वैसा ही शांत दीखेगा जैसा कि वह पहिले दीख पड़ता था। जिससे यह विदित होगा कि सबका सब रस अब (शराब) मद्यसार-में तबदील हो गया है। अब यदि इस समय इस रसको जिह्वासे छूकर देखें तो मिठास बिलकुल भी न प्रतीत होगा। यदि रसको पहिले पकाकर साफ़ कर लिया जावे और उसका मैल तथा तलछट अलग कर दी जाय तथा थोड़ासा गंधसाम्ल (Suphurous acid) डाल दिया जावे तो रससे मद्यसार बनते समय कोई आपत्ति न होगी और उसके बिगड़नेकी कोई संभावना न रहेगी। अब इस प्रकार मद्यसार बन जानेके पश्चात् इसमें सिरका जो बहुत उत्तम कोटिका हो मिलाकर भली भांति चला दें, तो सिरका दहीके जामनका सा काम करेगा। जिस प्रकार दूधमें थोड़ासा दही मिला देनेसे दही बन जाता है, इसी प्रकार इस थोड़ेसे सिरके डालने-से वह मद्यसार सिरका बनना आरम्भ हो जायगा। दो बातें इस संबंधमें ध्यान रखने योग्य हैं। एक तो यह है कि बरतन इन कार्य्योंकेलिये चौड़े और उथले हों—अधिक गहरे न हों। अधिक गहरे होनेसे वायुका संचार कम होगा और कार्य्य ठीक नहीं होगा। जिस मकानमें कार्य्य किया जावे वहां वायुके आने जानेका बहुत प्रबंध उत्तम हो। उन मकानोंमें नमी न रहने पावे। गरमी ख़ासा रहे। जब कभी वर्षा होने लगे और वायुमें जलवाष्प मिले होनेसे हानि पहुंचने-की संभावना हो, तो इस मकानमें एक ओर अंगीठी जलाकर कृत्रिम गरमी पहुंचानी उचित है। यदि इन नियमोंको ध्यानमें रखा जायगा तो कार्य्य-में अवश्य सफलता होगी। यदि हम दो चार बार परीक्षण करके स्वयं देखेंगे तो जो कठिनाईयां आयेंगी उनका स्वयं ही इलाज मालूम हो जायगा। यद्यपि इस विषयपर अनेक पुस्तकें हैं, परंतु वे इस कारण हमारे लिये अधिक उपयोगी नहीं हैं कि प्रथम तो उनकी भाषा कठिन है और पारिभाषिक होनेसे समझना कठिन है और दूसरे उनमेंसे किसी पुस्तकमें भी गन्नेके रससे सिरका बनानेका हाल न मिलेगा। तथापि जो महानुभाव कोई पुस्तक अधिक जानकारीके लिये अंग्रेज़ी भाषामें पढ़ना चाहें वे Grape Vinegar by Fredric T Bioletti Bulletin No. 227 को ख़रीद कर पढ़ सकते हैं, यह पुस्तक ≡) के पैसे मनीआर्डर द्वारा United States of America, Department of Agriculture, New York को भेजनेसे मिल सकती है।

मुझे पूर्ण आशा है कि पाठकोंको अब इस विषयमें कोई आपत्ति न होगी और वे कार्य्य कर सफलता प्राप्त करेंगे।

समालोचना।

आर्यकुमार—आर्यकुमार सभा लखनऊके सम्पादक-विभाग द्वारा सम्पादित द्विमासिक पत्र। वार्षिक मूल्य १॥)

यह आर्यकुमार परिषद्का मुखपत्र है। दूसरा अङ्क हमारे सामने प्रस्तुत है। लेख सब अच्छे हैं। भाषा और भाव दोनों उच्च कोटिके हैं। महात्मा हंसराजजीका एक चित्र भी इस अंकमें दिया है। हम इस सहयोगीका स्वागत करते हुए ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि यह आर्य कुमारोंकी उन्नतिका एक सच्चा साधन साबित हो। कवर-पर सनकी जगह संवत्का प्रयोग हो तो अच्छा है। कमसे कम संवत्का वहिष्कार तो न हो।

लक्ष्मी—सम्पादक-हिन्दीके धुरन्धर विद्वान लाला भगवानदीन। प्रकाशक लक्ष्मी प्रेस, गया। वार्षिक मूल्य २)

जो दो एक लेख इसमें सम्पादक महोदयके होते हैं, वे विशेषतः विचारणीय और पठनीय होते हैं। अन्य लेख भी उत्तम शैलीके रहते हैं। मार्चके अंकमें 'माताकी गोद' 'राष्ट्रकी उत्पत्ति वा उदय' 'इतिहासके पहिलेका युग,' आदि कई अच्छे अच्छे लेख हैं।

विद्यार्थी--सम्पादक-पं० रामजीलाल शर्मा। वार्षिक मूल्य २)। हिन्दी प्रेस, प्रयागसे प्राप्य।

यह अपने ढंगका एक ही मासिक पत्र है। विद्यार्थियोंमें नव जीवनके संचार करनेका अच्छा यंत्र है।

जैनमार्तण्ड--अवैतनिक सम्पादक श्री० मिश्रीलाल सोगानी। वार्षिक मूल्य १॥)। प्रत्येक मासकी कृ० १३ को इटावेसे प्रकाशित।

लेख उपदेश प्रद रहते हैं। भाषा सरल सुबोध होती है। जैन बालहितैषिणीसभा हाथरसका मुखपत्र है। बालकोंको इसके लेखोंसे अवश्य लाभ होगा।

हिन्दी समाचार--चान्दनी चौक, देहलीसे प्रकाशित। वार्षिक मूल्य २)।

हिन्दीके गिने चुने अच्छे साप्ताहिक पत्रोंमें इसकी गणना है। राज्यधानी देहलीसे ऐसा पत्र निकलना हर्षप्रद है। शीघ्र ही इसका दैनिक संस्करण भी निकलना चाहिये। आख्यायिकाएँ भी अच्छी रहती हैं।

बालसखा--सम्पादक पं० बद्रीनाथ भट्ट, बी. ए., प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग। सचित्र मासिक पत्र वार्षिक मूल्य २॥)

बालोपयोगी पत्र है। वास्तवमें स्वनामधन्य है। वैज्ञानिक लेख भी इसमें रहते हैं। चित्र, छपनेकी सफाई और काग़ज़ बड़े बढ़िया रहते हैं।

श्वासविज्ञान अर्थात् प्राणायाम--ले० ठाकुर प्रसिद्ध नारायण सिंह, बी. ए., मूल्य ॥) कुर्री सुदौली, ज़िला रायबरेलीसे, लेखकसे प्राप्य।

यह देश सुधार ग्रंथमालाका प्रथम पुष्प है। लेखक महोदयने यह पुस्तक योगी रामचरण जी की बनाई हुई पुस्तक 'सैन्स ओफ ब्रेथ' का हिन्दी रूपान्तर है। सभी क्रियाएं लेखक महोदयकी स्वयम् परीक्षित हैं, अतएव उनकी उपयोगिताके आप प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वैज्ञानिक दृष्टिसे पुस्तकको आद्योपान्त पढ़कर कोई क्रिया ऐसी नहीं दीख पड़ती, जो नियमविरुद्ध और हानिकारक हो। उचित रीतिसे सांस लेना, स्वास्थ्यरक्षाके लिए परमावश्यक है। यदि ठीक तरहसे सांस लेना सर्वसाधारण सीख जायं तो बहुतसे रोग तो केवल ऐतिहासिक महत्वके ही रह जायं। उनसे फिर कोई पीड़ित न दिखाई पड़े। पुस्तक उपयोगी है। सबको पढ़कर लाभ उठाना चाहिये। एक बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये। जो क्रियाएँ असाधारण प्रतीत हों या जिनमें शरीरको कष्ट पहुंचे, वे बिना किसी योग्य पुरुषके परामर्श किये न करनी चाहियें। जिस पुरुषने स्वयम् उनका अभ्यास किया हो, उससे सहायता मिले तो और भी अच्छा है। चौदहवीं अध्यायमें जो बातें दी हैं, उनके सत्यासत्य निर्णयमें हम कुछ नहीं कह सकते। आवश्यकता है कि इन सब क्रियाओं और अभ्यासोंकी वैज्ञानिक रीतिसे परीक्षा की जाय।

कथा कहानी—लेखक और अनुवादक श्री० नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी. ए, प्रकाशक भीष्म एंड ब्रदर्स पटकापुर, कानपुर मूल्य ।)।

पहली दो कहानियां मनोरञ्जक हैं। भाषा भी अच्छी है। शेष कहानियां विशेषतः बच्चोंके लिये अच्छी हैं।

स्वराज्यमें शिक्षा—अनु० पं गौरी शङ्कर मिश्र, बी. ए प्रकाशक-हिन्दी बुक एजेन्सी, गोरखपुर

इस पुस्तकको अपूर्व रत्नोंकी खान कहना चाहिये। इन रत्नोंका आदर जब तक नहीं होगा, भारत अज्ञान-तिमिर-आच्छन्न रहेगा। आधुनिक शिक्षा प्रणालीसे हमारी जातिकी नींव कटी जा रही है। जो आदमी इसके फेरमें आगये, यदि उनके मन,

बुद्धि ठिकाने भी रहे जो बहुत कमके रहते हैं-तो शरीर तो किसी कामका नहीं रहता। वर्तमान प्रणालीमें विदेशी भाषाका महत्व होनेसे हमारे मन, बुद्धि, शरीर, सब भ्रष्ट हो जाते हैं।

यह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात हो सकती हैं। तिलक और गान्धीके विचारोंका प्रचार भारतके घर घरमें होना चाहिये। अनुवादकने इनका संग्रह कर बड़ा उपकार किया। भाषा यदि अधिक सरल होती, तो पुस्तककी उपयोगिता और बढ़ जाती। मूल्य ।)

किशोरावस्था—ले० अध्यापक गोपालनारायण सेन सिंह बी. ए. प्रकाशक-गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, मूल्य ॥) सजिल्दका ॥=)।

इस विषयके महत्वसे बहुत प्राचीन कालसे भारतनिवासी परिचित रहे हैं, पर समयके हेर फेरसे, जहां अन्य संस्थाएं बिगड़ीं, तहां इस सम्बन्धमें भी असावधानी होने लगी। गुरुकुलोंमें गुरुवरोंके समीप सदा रहनेसे, जो विद्यार्थियोंके आचार विचारकी देख भाल होती थी, वह आधुनिक शिक्षा प्रणालीमें सर्वथा असम्भव है।

किशोरावस्थामें पदार्पण करते ही, बालकोंमें सहसा ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि उनको संसार कुछ और ही रूपसे दीखने लगता है। वह अपनी नस नसमें एक नई जीवनशक्तिका अनुभव करने लगते हैं। उनके दिलोंमें नई आशाएं उमंगें मारने लगती हैं। उनके साहस, मानसिक तथा शारीरिक बल, उत्साह और चपलतामें सहसा वृद्धि हो जाती है। वास्तवमें यह समय उनके मानुषी जीवनके आरम्भ का होता है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि प्रायः मनुष्योंके जीवनमें यह ऐसा समय होता है, जब उनके गुण पूर्ण शुद्ध रूपमें विकसित होते हैं। इस समय बालकोंकी अच्छी सम्भालकी जाय तो उनका जन्म सफल और सार्थक हो जाता है। यदि उचित सम्भाल और देख रेख न हुई तो यह कलिका जो अभी खिलनेवाली ही थी, थोड़ी खिलकर अपने सौरभसे समीरको सुगन्धित करके कुसमयके हिम प्रपातसे सड़ने और सूखने लगती है।

अभाग्यवश भारतमें आजकल अंतिम दशा व्याप रही है। इसके अनेक कारण हैं:—

(१) ब्रह्मचर्य व्रतका भङ्ग होना।
(२) दरिद्रता।
(३) धार्मिक शिक्षा न मिलना इत्यादि।

लेखक महोदयने पुस्तक लिखकर बड़ा उपकार किया है, और सम्भवतः गुमराह विद्यार्थियोंको धर्म पथपर फेर लानेमें यह सहायक भी हो। पुस्तक परिश्रमसे लिखी गई है। भाषा बहुत अच्छी है, विशेषतः दूसरे और तीसरे खण्डोंकी।

चरित्र संगठनपर और माता, पिता, भाई, बहिन और अध्यापकोंके शीलके प्रभावपर कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता थी। आशा है कि दूसरे संस्करणमें यह कमी भी दूर हो जायगी। कहीं कहींपर बड़े जोशमें आकर लेखक महोदयने ऐसे वाक्य भी लिख दिये हैं जो कदाचित् पाठकोंको बुरे लगें और हमारी समझमें छोड़ देने चाहिये थे। पर इनसे पुस्तककी उपयोगिता किसी प्रकार कम नहीं होती। हम फिर भी इस बात-पर पाठकोंका ध्यान दिलाएंगे कि पुस्तककी बड़ी आवश्यकता थी और प्रत्येक विद्यार्थीको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

राजयक्ष्मानाशन यज्ञ विधिः—ले० तथा प्रकाशक पं० सीताराम शास्त्री कविरत्न, अध्यक्ष विष्णु औषधालय रावलपिण्डी (पञ्जाब)। मूल्य ।)।

इस पुस्तकमें वैद्यजी ने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि यक्ष्मा आदि रोगोंका इलाज यज्ञों द्वारा हो सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे यह बात असम्भव नहीं है। विज्ञान प्रयोगात्मक शास्त्र है। अतएव कोरी बातोंसे वैज्ञानिकोंको संतुष्ट करना मुश्किल है। यदि आप सिद्ध करना चाहते हैं कि विशेष सामग्रीसे हवन करके कोई विशेष रोग अच्छा किया जा सकता है, तो इसकेलिए यह आवश्यक है कि एक नहीं हज़ारों प्रयोग भारतवर्षके

विविध प्रान्तोंमें किये जायं और उनकी सफलता-की सूचना मुख्य समाचार पत्रोंमें प्रकाशित की जाय। वैद्यजी कहते हैं कि उन्होंने स्वयम् इस विधिकी आज़माइश की है। हमें विश्वास है, पर वैज्ञानिक संसारमें यह बात तभी मानी जायगी, जब सैकड़ों परीक्षाएं की जाएं और विधि ठीक निकले। वैद्यजीको चाहिये कि वैद्य सम्मेलनमें प्रस्ताव करें, हवन सामग्री पेटेन्ट करा लें और फिर वैद्यों द्वारा परीक्षा कराएं। परीक्षा ऐसे रोगियोंके साथ की जायं, जिन्हें डाक्टर भी राजयक्ष्मा रोगसे ग्रसित बतलादें। डाक्टरोंका सार्टिफिकिट इस-लिए ज़रूरी है कि उनको भी विश्वास दिलाना है।

भूमिकामें वैद्यजीने अच्छे विचार प्रकट किये हैं। पथ्य, देश, समय, जो यज्ञकेलिए बतलाए हैं, सब रोगीके हितकर हैं। इसके दूसरे संस्करणमें प्रमाण भी दे दिये जायं तो अच्छा होगा।

तिलिस्माती मुंदरी—ले० कविवर पं० श्रीधर पाठक श्रीपद्मकोट, प्रयागसे प्राप्य मूल्य ।)।

इस पुस्तकके रचयिता हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि और सुप्रख्यात विद्वान हैं। यह पुस्तक आपने एक नये स्टैलमें लिखी है। फारसी और अरबी-के अलफाज़ बड़ी खूबीके साथ इस्तेमाल किये हैं और यह दिखला दिया है कि चतुराईसे इन शब्दों-का प्रयोग करनेसे भाषा कितनी मधुर और मनो-रञ्जक हो सकती है। यह स्टैल खुसरो आदि कवियोंसे मिलता जुलता है। आजकलके उर्दूके कट्टर पक्षपाती हठधर्मीसे अरबी और फारसीके इतने शब्द बेमहल और बेमोका प्रयोग करने लगे हैं, कि भाषा केवल फारसीका बिगड़ा रूपान्तर सा दिखलाई देने लगी है। यह परिणाम केवल उनके इस ताउस्सुबका है कि किसी प्रकार उर्दू भी हिन्दीसे अलग भाषा बना दी जाय। पाठकजीका स्टैल अनुकरणीय है और हमारी रायमें राजनैतिक लेख, निबन्ध आदि इस स्टैलमें लिखे जायं तो बड़ा उपकार होगा।

कहानीका प्लाट भी मनोरञ्जक है।

धूपघड़ी

एक लेख इस विषयपर सन् १९१६ के सित-म्बर मासके अङ्कमें २६६ पृष्ठपर प्रकाशित हुआ था। उसमें एक सरल रीति घर बैठे धूप घड़ी बनानेकी दी गई थी। मुझे हर्ष है कि एक सज्जनने कुछ शङ्काएं उसपर प्रकट की हैं और मुझे इस प्रकार कुछ विशेष कहनेका अवसर दिया है। पहली शङ्काका उत्तर यह है कि जिस स्थानपर घड़ी बनाई जाती है उसी स्थानके अक्षांशके बराबर ज क घ कोण बनाना चाहिये। अक्षांश (latitude) सब स्थानोंमें एक नहीं होता और नकशा देख कर किसी स्थानका अक्षांश मालूम कर लेना चाहिये। दो चार मीलके अन्दर अक्षांशमें विशेष भेद नहीं होता। इलाहाबादका अक्षांश २५ डिगरी, २६ मिनट है और कलकत्ते-का २२ डिगरी, २३ मिनट, ४७ सेकन्ड है। किसी स्थानका अक्षांश हम स्वयम् भी निकाल सकते हैं, जिसकी रीति फिर कभी बतलायी जायगी। कोई धूपघड़ी एक ही स्थानपर काम दे सकती है। यदि दूसरी जगहका अक्षांश उतना ही है तो अवश्य वहां भी काम देगी।

दूसरी बात जिसपर शङ्का प्रकट की गई है यह है कि सब ऋतुओंमें घड़ी कैसे ठीक समय बताती है। क्या घड़ीके घन्टे जाड़ोंमें छोटे और गर्मियोंमें बड़े न होंगे? इसपर यह याद रखना चाहिये कि पृथ्वी अपने धुरेके चारों ओर सदा एकसी चालसे चक्कर लगाती है और इस कारण यदि सूर्य्य अपने स्थानपर स्थिर रहे तो धूप-घड़ीके घण्टे सदा समान ही होंगे। परन्तु सूर्य्य रोज़ थोड़ा आकाशमें पूर्वकी ओर बढ़ जाता है और इस कारण पृथ्वीको एक पूरे चक्करसे कुछ विशेष लगाना पड़ता है। इससे दिनकी लम्बाई लगभग ४ मिनट बढ़ जाती है, यानी यदि सूर्य्य स्थिर रहता तो हमारे दिन लगभग ४ मिनटके छोटे होते। यह सूर्य्यकी चाल सदा समान नहीं

Astronomy ज्योतिष]

रहती। किन्तु स्पष्ट है कि जब दिन रातमें कुछ मिनटसे अधिक अन्तर नहीं होता तब घण्टोंमें तो कोई विशेष अन्तर नहीं हो सकता अथवा धूपघड़ीके घण्टे सब दिन समान ही रहते हैं।

एक बात अवश्य जानने योग्य है कि जब सूर्य्यकी चाल सदा एकसी न रहनेके कारण हमारे दिन सदा २४ घण्टेके नहीं होते, तब नित्य कुछ सेकण्डका अन्तर होता जाता है। कभी दिन घटते रहते हैं और कभी बढ़ते रहते हैं। परन्तु हमारी घड़ियां जो कलोंसे चलती हैं सदा एक ही चालसे चलती हैं। इस कारण सूर्य्यका समय अथवा धूपघड़ीका समय कभी हमारी कलोंदार व्यवहारिक घड़ीसे पिछड़ता जाता है और कभी बढ़ता जाता है। वर्षमें चार बार दोनों समय समान हो जाते हैं। दिन प्रति दिन जो अन्तर होता है वह गणित द्वारा निकाल लिया जाता है और उसको धूपघड़ीके समयमें जोड़ने या घटाने-से हमारी व्यवहारिक घड़ीका समय निकल आता है। यह अन्तर कभी २६ मिनटसे अधिक नहीं होता। किन्तु दोनों घड़ियोंके घन्टोंकी नापमें अन्तर बहुत ही सूक्ष्म होता है। जैसे यदि किसी समय धूपघड़ीमें २२ बजते हैं और व्यवहारिक घड़ीमें २२ बजके २० मिनट हुए हैं तो इससे यह नहीं ज्ञात होता कि दोनों घड़ियोंके घण्टे ६०, ६० मिनटके न होंगे। यदि दो घड़ियोंमेंसे एककी सुई हम आगे बढ़ा दें तो दोनोंके समयमें अन्तर हो जावेगा किन्तु घण्टे समान ही रहेंगे।

सूर्य्यकी चालके एक सा न रहनेके कारणोंका यहां वर्णन करना व्यर्थ है। प्रयोजन इतना ही है कि यह मालूम हो जावे कि ऋतुओंमें दिन रातके घटने बढ़नेसे धूपघड़ीके समयमें कोई अन्तर नहीं होता और जो अन्तर होता भी है वह अन्य कारणोंसे होता है और घण्टे तो समान रहते ही हैं।

धूपघड़ीका समय व्यवहारिक समयके समान जिन चार तिथियों पर होता है वह यह हैं--२५ अप्रेल, १५ जून, ३१ अगस्त और २४ दिसम्बर। धूपघड़ी नवम्बरमें लगभग १६ मिनट तेज़ हो जाती है, फर्वरीमें लगभग उतनी पिछड़ जाती है। मईमें ३ मिनटसे कुछ कम तेज़ हो जाती है और जुलाईमें उससे कुछ अधिक पिछड़ जाता है। इस कारण धूपघड़ीसे ठीक ठीक समय मालूम करनेके लिये दिन प्रति दिन जो अन्तर होता जाता है उसको पहिलेसे गणित द्वारा मालूम करके सामने रख लेना चाहिये। परन्तु मामूली कामोंके लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं।

—हरिश्चन्द्र

तर्कविवेक

[ले० पं० सरयूप्रसाद सरयूपारीण]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

मान भी लिया जावे कि कोई अविभाज्य खण्ड है, जिसका नाम परमाणु है, यह चापनेसे चप भी न सकेगा और न अग्नि आदिके संयोगसे विभक्त हो सकेगा; तथापि दश दिशाओंके भेदकी बुद्धिसे उसके भी दश अवयवोंके भेदकी बुद्धि अव्याहत रहेगी। वह बुद्धि भ्रमात्मक नहीं कही जा सकती है, क्योंकि वह अपने विषयकी संवादिनी है। फिर उन दश अवयवोंसे अतिरिक्त और कोई भिन्न पदार्थ बूझ भी नहीं पड़ता है कि जो दश अवयवोंके नित्य संयोग सम्बन्धसे परस्पर सम्बद्ध दश अवयवोंसे अलग बुद्धिमें बैठे। मान भी लेवें कि कोई ग्यारहवां मूर्त्त पदार्थ अवयवी है तो कहिये वह कौनसी दिशामें है। उसे जो ग्यारहवीं दिशाको मध्य दिशा कल्पना करके, उस-में बतलावें तो शेष दश दिशाओंमें उसका अभाव होना चाहिये, परन्तु यह सम्भव नहीं है। क्योंकि अवयवोंके देशोंका व्यापक अवयवी माना जाता है। यदि अवयवी वैसा न माना जावे तो उसका मानना व्यर्थ होगा। काहेसे कि मध्य देशमें जो

वह माना जावे तो अपने अवयवोंके व्यवधान (ओट) के कारण अन्य अवयवीके साथ संयोगको कैसे पावेगा ? और संयोग पाये बिना अन्य अवयवीका वह अवयव आप बन नहीं सकेगा। इसको उदाहरण कपाल और धड़में घटा लो। इस प्रकारसे जब समूहात्मक एक अवयवी ही सिद्ध नहीं होता है, तब उसके अवयवकी सिद्धि कैसे हो सकती है ?

प्रत्यक्ष सिद्ध शरीरादिक भौतिक पिण्डोंकी स्थूलरूपमें प्राप्तिकी अन्यथानुपपत्तिसे जो हम अब परमाणु मानने जावें, तो शरीरादिके प्रत्यक्ष ज्ञानकी अभ्रान्तिताकी सिद्धिके लिये परमाणुको सिद्ध करने गये थे फिर अब परमाणुकी सिद्धिके लिये शरीरादिको प्रमाण मानने बैठे ! यह अन्योन्याश्रय दोष (अर्थात् एककी सिद्धिके न होनेसे दूसरेकी सिद्धि न होनी) उपस्थित हुआ, जिससे उनमेंसे किसी एककी भी सिद्धि न हुई। इसी गोलमालसे बचनेके लिये हमने हमारी सिद्धिके लिये, चेत करो, दूसरे किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं की थी। अवश्य इस अंशमें शरीरादिकी सिद्धिकी अपेक्षा हमारी सिद्धि सहज, सुगम और परम् प्रबल भी है। जो कहें शरीरादिके बिना हमको जन्मके पूर्व वा मृत्युके उत्तर हमारी प्रतीति नहीं होती है, तो इसके उत्तरमें हम कह सकते हैं कि जैसे सुषुप्तिकी अवस्थामें जागतेकी दशाकी नाईं विषयोंके ज्ञान हमको नहीं होते हैं, तथापि हमारा होना पूर्वमें सिद्ध किया गया है, तैसे ही स्थूल शरीरादिके सम्बन्धके न रहते भी हमारा होना असम्भव नहीं है। देखो, जो हम न होते तो हमारा स्थूल शरीरसे सम्बन्ध भी न होता, क्योंकि सम्बन्ध दो पदार्थोंके मध्य होता है। टुक सोचिये जिस समय प्रकाशके बिना मूर्त्तादि पदार्थोंका प्रत्यक्ष नहीं होता है, उस समय जैसे द्रष्टा वा दृश्यका अभाव मान बैठना अयुक्तियुक्त है, तैसे ही शरीरादिके बिना हमको न मानना भी अयुक्तियुक्त है।

अपरंच यदि हम अपनेको शरीरादिके ही आश्रित चैतन्य गुण गुनावन करें तो शरीरादिकी सिद्धिके सापेक्ष हम भी हो जावेंगे। सो एक प्रकारसे हम भी असिद्ध हो पड़ेंगे। परन्तु यह असम्भव बात है कि स्वप्रकाश प्रत्यक्षनिश्चायात्मक हम आप असिद्ध हों, क्योंकि सर्व व्यवहारका लोप प्रसङ्ग होगा। यदि शरीरादिको ही हम हमारे गुण गुणावन करें तो यद्यपि एक प्रकारसे हमारी इष्टापत्ति है कि हम तब भी चेतन सिद्ध बने रहें; तथापि हम स्वप्रकाश चेतन निरवयव पदार्थ हैं, हमारे गुण अन्धकार जड़ सावयव पदार्थ शरीरादि कैसे हो सकते हैं ? फिर बड़ी भारी बात तो यह है कि जब शरीरादि प्रमाणसे पहिले सिद्ध हो लें तब उनके विषयमें गुणि-गुण भावकी विवेचना की जावे। क्योंकि शरीरादि स्थूल पदार्थोंकी प्रत्यक्षताकी अन्यथानुपपत्तिके शीलसे जो परमाणु स्वीकार कर भी लिये जावें तथापि उनके परस्पर योगसे किसी नवीन पदार्थकी उत्पत्तिको तब भी स्वीकार नहीं कर सकते हैं। कारण यह है कि नहींसे हां अर्थात् शून्यसे एक होना असम्भव है। इसकी युक्ति पूर्वमें दर्शाई जा चुकी है कि अपने अभावका नाश वही प्रतियोगी (जिसका अभाव रहता है उसको उसके अभावका प्रतियोगी कहते हैं) कर सकता है, दूसरा कोई नहीं। तो जब तक प्रतियोगी आप नहीं है, तब तक उसके अभावका नाश दूसरा कौन करे? और जो प्रतियोगी है तो अभाव किसका है, जिस (अभाव) के नाशकी चर्चा यहां की जाती है ? हां, परमाणुओंकी राशिको शरीरादि कह सकते हैं, परन्तु शरीरादि परमाणुओंको राशिमात्र नहीं प्रतीयमान होते हैं। वे तो पृथक् पृथक् हम सभोंके अभिमानास्पद (जिस अनात्माको हम भ्रमसे झूठ मूठ अपना आत्मा समझते हैं) एक एक पिण्डके स्वरूपमें प्रतीत होते हैं। यों एक ओर प्रत्यक्ष सिद्ध शरीरादि पिण्डोंकी मूलमें उत्पत्तिकी असम्भावना और दूसरी ओर शरीरादिकी प्रत्यक्ष

उत्पत्ति पाये जानेसे हम सभोंकी बुद्धि कुछ कार्य नहीं देती है कि यह है तो क्या चमत्कार है ?

स्वप्नमें दृष्टि पड़ती वस्तुओंके दृष्टान्तसे जो दार्ष्टान्त शरीरादिको मिथ्या प्रतीयमान मानके असम्भावना अंशका पोषण करना चाहें तो उसमें यह कठिनता है कि स्वप्नमें वे ही वस्तुएं अनुभूत होती हैं जिनकी सजातीय (समानता रखने वाली) वस्तुओंका कभी अनुभव हुआ रहता है। जिसकी सजातीय वस्तुका पूर्वमें कभी अनुभव ज्ञान नहीं हुआ रहता है, वह वस्तु स्वप्नमें कदापि अनुभूत होनेकी नहीं है। यह नियम है। जैसे जन्मान्ध जन प्रकाशके किसी रङ्गका अनुभव कभी स्वप्नमें भी नहीं कर पाता है। नेत्रादिकी सहायताके बिना भी जो सुननेमें आता है कि किसी किसीको घट पट मठादिके रूपादिका अनुभव हो जाता है, उसमें अवश्य किसी न किसी प्रकारसे इन्द्रिय और मनो धातुका सूक्ष्मांशमें विषयसे योग होता होगा, तभी उक्तविध अनुभव होता होगा। अन्यथा उक्तविध अनुभवका होना असंभव है। यह सब ऊपर कहनेका आशय यह है कि जागतेकी दशामें अनुभूत इन्हीं सब वस्तुओंकी सत्यताके ध्यान से ही तो स्वप्नमें भासमान वस्तुओंको मिथ्या कहते हैं। फिर स्वप्नमें भासमान पदार्थ अपने ज्ञानके मूल,इन पदार्थों की असत्यताके लिये दृष्टान्त क्यों कर हो सकते हैं, क्योंकि मूलके बिना किसी वस्तुकी प्रसिद्धि (ज्ञान) नहीं होती है। यह नियम है। अतएव इन शरीरादिकोंको सर्वथा अलीक (नितान्त मिथ्या) कह बैठना भी सर्वथा साहस है। युक्तियां अनुमानकी बातें हैं। शरीरादि प्रत्यक्ष उपलब्ध हैं। प्रत्यक्षसे अनुमान दुर्बल होता है। प्रत्यक्ष उपलब्ध शरीरादिको युक्तियोंसे अलीक ठहराना प्रबल पक्ष नहीं है। हां, हमारी सिद्धिकी बलवत्ताकी अपेक्षा शरीरादिकी सिद्धिकी बलवत्ता अल्प है, इस बातका स्वीकार झकमारके करना पड़ता है, क्योंकि शरीरादिकी सिद्धिके खण्डनकी युक्तियां ऐसी नहीं हैं कि केवल उत्प्रेक्षित तर्कोंके ऊपर निर्भर रखती हों। किन्तु 'एक और एक मिलके दो होते हैं' इस प्रकारकी बातोंके तुल्य (अर्थात् गणित विद्याकी भांति) अखण्ड्य उपपत्तियों (युक्तियों) से उपपाद्य (साध्य) हैं। देखो, मिथ्या वस्तुके प्रत्यक्षके स्थलमें उक्तविध युक्तियां ही काम देती हैं। अन्यथा स्वप्नकी वस्तुको मिथ्या कैसे ठहरा सकते हैं ? परन्तु इसका खण्डन कोई किसी युक्तिसे भी नहीं कर सकता है कि जागते और स्वप्नकी दशामें नाना वस्तुओंके साक्षात्कार कर्त्ता (वे चाहे सत्य हों अथवा मिथ्या हों यह दूसरी बात है) और सुषुप्तिकी अवस्थामें भी मोहात्मक अज्ञानान्धकारके आविर्भाव कर्त्ता हम हैं। और शरीरादिके वियोगकी दशामें व्यवहाराभाव भिन्न अन्य युक्तियोंसे हम असिद्ध भी नहीं होते हैं। क्योंकि अन्धकारमें घटादिके प्रत्यक्षाभावसे सचमुच विद्यमान घटादिका अभाव असिद्ध है। हां, शरीरादि तो तादृश सिद्ध नहीं होते हैं। पर कैसे भी हो। कुछ हैं अवश्य क्योंकि यदि न होते तो अलीक आकाश पुष्पादिकी नाईं बुद्धिके विषयक भी न होते।

[असमाप्त]

विज्ञानके हितैषियोंसे प्रार्थना

विज्ञान परिषद्के कार्यकरताओंने निश्चय कर लिया है कि घाटा उठाकर भी परिषद् विज्ञानका पूर्ववत प्रकाशन और सम्पादन करती रहेगी, क्योंकि 'विज्ञान' द्वारा ही विज्ञानका प्रचार होगा और जब भारतमें वैज्ञानिक खोज और आविष्कार, पाश्चात्य देशोंकी नाई, घर घर और गली गली होने लगेंगे तब अन्वेषणकर्ताओंके लिए 'विज्ञान' वही काम करेगा, जो फिलोसोफीकल मेगज़ीन आदि पत्र इङ्गलैण्डमें कर रहे हैं।

जिस विज्ञानके बलसे बनमानुसोंकी सी असभ्य जातियां भी उन्नतिके शिखर तक पहुंच गई हैं और अपना सिक्का संसारमें जमा चुकी हैं, क्या उसी विज्ञानका, सभ्यताके जन्मदाता, विज्ञानके परिपोषक और परिपालक भारतवर्षमें, सदा निरादर होता रहेगा और उसके प्रति उदासीनता रहेगी? नहीं कदापि नहीं, हमें पूर्णाशा है कि थोड़े ही दिनोंमें भारतवर्ष फिसंर सारकी सभ्यताका केन्द्र हो जायगा! पर इसका मुख्य साधन क्या है? वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार और अनिवार्य शिक्षाका प्रसार।

अतः आप जान सकते हैं कि विज्ञान किस बड़े अभावकी पूर्ति कर रहा है! क्या आप इस पुण्यकार्यमें हाथ बटायेंगे? तो सुअवसरको हाथसे न जाने दीजिये। स्वयम् ग्राहक हूजिये, और अपने इष्ट मित्रोंको ग्राहक बनाइये।

निवेदक—मंत्री विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति।)। २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।=)। ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति॥)। ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -)। ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि।)। ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-) ७-केला—मूल्य -) ८-सुवर्णकारी-मूल्य।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

बच्चा

[ले० कप्तान कुरैशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देशभक्तो! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८$\frac{3}{4}$ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

पुस्तकका मूल्य १), विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥।=) में मिलेगी।

मंगानेका पताः—

प्रोफेसर करम नारायण,

एम. एस-सी.,

ज्योर्ज टौन, प्रयाग।

का हिन्दी-जगत् खूब स्वागत कर रहा है, क्योंकि इसके ग्रंथ सुयोग्य लेखकोंके लिखे हुए, टाइप, काग़ज़, छपाई, सफ़ाई सभी बातोंमें दर्शनीय एवं सुंदर, मनोभिराम जिल्द और चित्रोंसे विभूषित होते हैं। आइए, ॥) प्रवेश शुल्क भेजकर इसके स्थायी ग्राहक हो जाइए और १५) सैकड़ा कमीशनपर इसके सब ग्रंथ प्राप्त कीजिए।

नोट—एप्रिलके अंदर ही स्थायी ग्राहकोंमें नाम लिखाने वालोंसे प्रवेशफीके सिर्फ़ ।) लिए जायँगे।

इसमें ये ग्रंथ निकल चुके हैं—

१. हृदय-तरंग—नव्य साहित्य-सेवी पंडित दुलारेलालजी भार्गव रचित। हृदयकी भावनाओंका मनोहारी विज्ञान। यू० पी० और सी० पी० के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत। इस पुस्तकका हिंदी-संसारने इतना आदर किया है कि ७-८ महीनेमें ही इसकी दूसरी आवृत्ति निकालनी पड़ी! अवश्य पढ़िए। मूल्य सजिल्द ।=) ॥; सादी ।)

२. किशोरावस्था—हिंदीके सुयोग्य लेखक श्रीयुत गोपालनारायणजीका एकमात्र सखा; हिंदीमें अपने ढंगका पहला और अद्वितीय ग्रंथ। प्रयागके प्रसिद्ध डाक्टर रणजीतसिंह कृत भूमिका सहित। मूल्य सजिल्द ॥=) ; सादी ॥)

३. शाँजहाँ—बँगलाके ख्यातनामा नाटककार श्रीक्षीरोदप्रसाद विद्याविनोदके सुप्रसिद्ध नाटकके आधारपर सुकवि पं० रूपनारायण पांडेय रचित शिक्षाप्रद, ऐतिहासिक नाटक। बँगलामें इसकी हज़ारों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। मूल्य सजिल्द १=) सादी ॥।=)

ये ग्रंथ शीघ्र ही प्रकाशित होंगे—

४. गृह-प्रबंध—प्रो० रामदासजी गौड़, एम. ए.

५. द्रौपदी (जीवन-चरित)—पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

६. भूकंप (अपने ढंगका पहला ग्रंथ)—बा० रामचंद्र वर्मा

७. मूर्ख-मंडली (प्रहसन)—पं० रूपनारायण पांडेय

८. गृह-शिल्प—बा० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए०

९. संसार-रहस्य (उपन्यास)—ठा० प्रसिद्धनारायण सिंह, बी० ए०

१०. स्वास्थ्य-साधन—पं० दुलारेलाल भार्गव

स्फुट ग्रंथ

सुख तथा सफलता—सुप्रसिद्ध अँगरेज़ लेखक महात्मा जेम्स ऐलनकी एक बढ़िया पुस्तकका अनुवाद। अनुवादक—श्रीत्रिलोकीनाथ भार्गव, बी० ए०। इस पुस्तकको सुख तथा सफलता प्राप्त करनेका साधन समझिए। मूल्य सजिल्द ।-) सादी =)

सुघड़ चमेली—लेखक, तफ़रीह आदि पत्रोंके भूतपूर्व संपादक पंडित रामजीदास भार्गव। हिंदी एवं उर्दू-संसार भली भाँति जानता है कि आप बालोपयोगी पुस्तकें लिखनेमें कैसे पटु हैं। आप इस पुस्तकको अपनी लड़कियोंको पढ़ाइए और फिर देखिए कि वे चमेलीकी तरह कैसी सुघड़ हो जाती हैं! मूल्य =) मात्र

भगिनी-भूषण—बा० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए० लिखित। यह पुस्तक बच्चोंको पढ़ाने लायक है। इसमें छोटी छोटी कहानियोंके बहाने बच्चोंको बहुत सी शिक्षाएँ दी गई हैं। मूल्य=)

पत्रांजलि—स्त्री-पाठ्य पुस्तकोंके प्रसिद्ध लेखक श्रीसतोशचंद्र चक्रवर्तीके बँगला 'स्वामीस्त्रोर-पत्र' का हिंदी-रूपांतर। इसकी रचना पंडित कात्यायनीदत्त त्रिवेदीने की है। हमारी राय है कि प्रत्येक पढ़ी-लिखी नवविवाहिता स्त्री इस पुस्तकको अवश्य पढ़े और इसके अमृतमय उपदेशोंसे लाभ उठावे। अवश्य मंगाइए। मूल्य लगभग ।=)

पत्र-व्यवहार करनेका पता है—

श्रीत्रिलोकीनाथ भार्गव जी बी. ए.

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३८ | Reg. No. A- 708

भाग ७ | वृष । १९७५ । मई १९१८ | संख्या २

Vol. VII. | No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) | एक प्रतिका मूल्य) ।

सौर-पञ्चाङ्ग

वृष-ज्येष्ठ १९७५। मई-जून १९१८।

रविवार		५ ९ १९	१२ ज्येष्ठ वृ० १ २६	१९ ८ २	२६ ज्येष्ठ शु० १ ९
सोमवार		६ १० २०	१३ २ २७	२० ९ ३	२७ २ १०
मंगलवार		७ ११ २१	१४ ३ २८	२१ १० ४	२८ ३ ११
बुद्धवार	१ वै. शु. ५ मई १५	८ १२ २२	१५ ४ २९	२२ ११ ५	२९ ४ १२
वृहस्पतिवार	२ ६ १६	९ १३ २३	१६ ५ ३०	२३ १२ ६	३० ५ १३
शुक्रवार	३ ७ १७	१० १४ २४	१७ ६ ३१	२४ १३ ७	३१ ६ १४
शनिवार	४ ८ १८	११ १५ २५	१८ ७ जून १	२५ ३० ८	

नोट—बीचमें सौर, दाएं को अंग्रेजी और बाएं को चान्द्र तिथियां दी गई हैं।

पुस्तककी ज़रूरत

हिन्दी भाषामें सायंसकी ऐसी पुस्तककी आवश्यकता है, जिसमें भौतिक रीतिसे जल और वायुका वर्णन हो। कोई सज्जन कहींसे भेज सकते हों या पता दे सकते हों तो अच्छा कमीशन दिया जायगा।

पताः—श्रीयुत गिरधारीदास
गांव—भूमियांवाली,
पोस्ट अबोहर (ज़ि० फीरोज़पुर)

हमारे शरीरकी रचना भाग २

छपकर प्रकाशित हो गया !!

स्वास्थ्य रक्षाके नियम जाननेके लिए और संसारमें सुखमय जीवन बितानेके लिए इस पुस्तका पढ़ना परमावश्यक है।

देखिये इसकी विषय सूची और स्वयम् विचारिये कि कैसे महत्वके विषय इसमें दिये हैं:—

१-पोषण संस्थान, २-रक्तके कार्य, ३-नाड़ी मण्डल, ४-चक्षु, ५-नासिका, ६-जिह्वा, ७-कर्ण, ८-स्वर यंत्र, ९-नर जननेन्द्रियां, १०-नारी जननेन्द्रियां, ११-गर्भाधान, १२-गर्भ विज्ञान, १३-नवजात शिशु।

इस भागमें ४५४ पृष्ठ हैं। १३३ चित्र हैं। १९ चित्र हाफ टोन प्लेट हैं। १ रङ्गीन चित्र है।

मूल्य केवल ३।)—विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सभ्य और परिसभ्योंको २॥≋) में मिलेगी।

पता—मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ७ } वृष, संवत् १९७५ । मई, सन् १९१८ । { संख्या २

मंगलाचरण

जय जय प्रति-परमाणु-प्रकृत-क्रम, सृष्टि-कर्म जय
जय जय विकृति-विकास-विभव, मर्याद-मर्म जय
जय अखंड भूखंड, अखिल ब्रह्मांड-भांड जय
प्रति-परमाणु-प्रवृत्त, प्रबल—परिवर्त-कांड जय
जग-सजग-वृत्ति-अनुवृत्ति-युत, सतत सुबोध-प्रवृत्ति जय
विज्ञान-बोध-विस्तृति-विहित, विविध अबोध-निवृत्ति जय

श्रीपद्मकोट,
प्रयाग, ६-१-७५

—श्रीधर पाठक

विज्ञान परिषद् प्रयागकी अपील

जो जाति संसारमें जीवित रहकर अपने भावोंको व्यक्त करना चाहती है, वह अपनी भाषाकी ओर उपेक्षा-की दृष्टिसे देखती हुई कभी कृत्-कार्य नहीं हो सकती । इसीलिए भाषा और साहित्यकी वृद्धि, किसी जातिको प्रौढ़ता प्रदान करनेमें, बहुत बड़ा महत्व रखती है । प्रायः समझा जाता है कि हमारी प्रान्तिक भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका सर्वथा अभाव सा ही है और यही उनके शिक्षाका माध्यम न बनाये जानेका एक बहाना भी होता है । लोगों-की यह धारणा सत्य हो वा असत्य, परन्तु इस अपवादके दूर करने और जातीय वैज्ञानिक साहि-त्यके निर्माण करनेकी आवश्यकता उसी समयसे बूझ पड़ रही है जब पहले पहल मेकालेने अंग्रेज़ी-को शिक्षाका माध्यमका ठहरा दिया । यहांपर यदि माध्यम का प्रश्न न उठाया जाय तब भी स्वदेश वासियोंको विज्ञानमें रुचि दिलाने और

उद्योग धन्धोंमें उसके प्रयोगकी प्रथा चलानेका नितान्त प्रयोजन देख पड़ता है।

इन्हीं सिद्धान्तोंको लेकर कुछ लोग बहुत दिनोंसे काम करते आ रहे हैं और इस प्रकार जहां तहां अव्यवस्थित रूपसे देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य तैय्यार करनेका प्रयत्न होता आया है। राजा शिवप्रसाद, पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र, पं० सुधाकर द्विवेदी, लाला सीताराम और अन्य महानुभावोंने कई एक पुस्तकें लिखीं और विज्ञानके जटिल विषयोंपर—जैसे यंत्रशास्त्र (mechanics) चलन कलन और चल राशि कलन (differential and integral calculuses) रसायन शास्त्र—ग्रन्थ बने किन्तु सर्वसाधारणमें विज्ञानके प्रचारके लिये कोई चेष्टा न की गई। इस दिशामें पहिला व्यवस्थित कार्य सन् १९१३ में आरम्भ हुआ, जब म्योर कालेजके कतिपय प्रोफेसरोंने डा. झा. और प्रोफेसर हमीदउद्दीनकी प्रेरणासे इस परिषद्का संस्थापन किया। कालेजके भूत पूर्व प्रिंसिपेल श्रीयुत जे. जी. जेनिंग्सने इस परिषद्को कालेज भवनमें ही रहनेकी आज्ञा दे दी थी। सर्वसाधारणके सामने वैज्ञानिक व्याख्यान देते समय कालेजके यंत्रों और प्रयोगशालाको काममें लानेकी भी अनुमति उन्होंने प्रदान की थी, जिससे परिषद् अभी तक लाभ उठा रही है।

प्रथम वार्षिकोत्सवके पूर्व ही परिषद्का दुबारा संगठन आवश्यक समझा गया। इस संस्थाके सर्वप्रिय होनेका इससे बढ़कर क्या प्रमाण हो सकता है कि एक मासके भीतर ही परिषद्के लिए एक सौ सभ्य मिल गये और उनकी संख्या १२५ तक बढ़ा देनी पड़ी। दो चार जगहें खाली थीं वह भी शीघ्र ही भर गईं और हम लोगोंने एक निश्चित कार्यक्रमको लेकर बड़े उत्साहके साथ दूसरे वर्षमें पदार्पण किया।

काम

जिस साल परिषद्का जन्म हुआ इसके अधिवेशनों तथा उपसभाओंकी बैठकोंकी संख्या ३९ रही। सर्वसाधारणके समझने योग्य ६ वैज्ञानिक विषयोंपर व्याख्यान हुए। संस्कृत साहित्यमें प्रयुक्त वैज्ञानिक शब्दोंको ढूंढ़ निकालने तथा उन्हें देशी भाषाओंके उपयुक्त बनाकर चलानेके उद्देश्यसे वैज्ञानिक परिभाषापर विचार करनेकेलिये समितियां भी बनीं। परन्तु यह काम एक प्रकार असमय ही उठाया गया, क्योंकि ऐसा कहीं नहीं देखा गया कि सर्वसाधारणकी भाषामें साहित्य निर्माण करनेके पूर्व उसके शब्द गढ़े जाते हों। इसका भार लोगोंपर स्वयं छोड़ देना चाहिये। वह आप ही ऐसे शब्द ढूंढ़ लेंगे। केवल भाषाप्रवीण पंडितों और शास्त्रियोंकी शब्दोंकी काट छांटमें थोड़ी सहायता आवश्यक होगी। परन्तु उद्योग धंधोंमें व्यवहृत शब्दोंके विषयमें एक कठिनाई और पड़ेगी। वह यह है कि एक बिलकुल नया शब्द गढ़कर हम उसका प्रचार लोगोंके बीच नहीं कर सकेंगे। सबसे अच्छा ढंग तो यह होगा कि उद्योग और व्यापारके भिन्न भिन्न केन्द्रोंमें जाकर हम इस बातका पता लगावें कि खानियों तथा पुतलीघरोंमें कौनसे शब्द बोले जाते हैं। अभी यह काम कष्टसाध्य है और इसके करनेमें बहुत कुछ धन, समय और शक्ति लगानी पड़ेगी। इन सब बातोंका ध्यान करके यह उचित समझा गया कि तबतक देशी भाषामें एक पत्र ही निकाला जाय। इसपर सभ्योंसे परामर्श किया गया कि मासिक कौन सी भाषामें निकले। अधिकांशकी सम्मति हिन्दीके पक्षमें हुई। अस्तु एप्रिल १९१५ में "विज्ञान" पत्र प्रकाशित किया गया और अब वह देशी भाषाओंमें अपने ढंगका अनूठा प्रतिष्ठित पत्र हो चला है। इस विषयमें डा० ज़ियाउद्दीन अहमद, सी. आई. ई. तथा उर्दूके अन्य कार्यकर्ताओंसे सहकारिताकेलिये प्रार्थना की गई, पर कोई उत्तर न मिला। उर्दूके विद्वानोंकी इस उदासीनतापर भी हम लोगोंने हिन्दीमें वैज्ञानिक पुस्तकें लिखीं और उनका

उर्दूमें अनुवाद छपवाया है। परिषद्ने अपनी पुस्तकें ऐसी आधुनिक शैलीपर तैयार कराईं कि उनमें कई एक गवालियर और अलवर रियासतोंकी स्थानीय परीक्षाओंकी पाठ्य पुस्तकें बना दी गईं। उन्हें निखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनने भी अपनी परीक्षाओंके लिये निर्दिष्ट ग्रन्थोंमें रखा है। हम लोगोंकी एक उर्दूकी पुस्तक औरंगाबादकी परीक्षामें भी निर्दिष्ट हुई है। अभी तक आर्थिक कष्टके कारण हमलोग केवल एक दर्जन पुस्तकें निकालनेमें समर्थ हुए हैं। इन पुस्तकोंके प्रकाशनमें जो पूंजी एक बार लग जाती है वह उनके देरमें बिकनेके कारण, उन्हींमें अटक जानेके हेतु दूसरी पुस्तकोंमें नहीं लगाई जा सकती।

व्यवहारकी दृष्टिसे देखा जाय तो हमारी इन पुस्तकोंके जितने ग्राहक होने चाहिये थे नहीं हुए। तब भी हमको इस बातका संतोष है कि हमने देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंके निकालनेके प्रयोजनका संकेत कर दिया है। आशा है कि इस तरह विज्ञानका एक विशद साहित्य बन जायगा और वह बहुत थोड़े ही दिनों बाद जनताको अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

परिषद्के मुखपत्र "विज्ञान" के प्रकाशनसे एक बहुत बड़े अभावकी पूर्ति हुई है। यह इसीसे प्रत्यक्ष है कि इसकी प्रतियां प्रायः प्रत्येक देशी पुस्तकालयमें पहुंचती हैं और संयुक्त प्रान्त तथा मध्यप्रदेशके शिक्षा विभागके डाइरेक्टरोंने भी इसे विद्यालयों और पुस्तकालयोंके लिये स्वीकृत किया है। आशा है कि इसी तरह अन्य प्रान्तके शिक्षा विभाग भी परिषद्के कार्यको उत्साहित करेंगे।

"विज्ञान" में जो लेख छपते हैं वह विशेषज्ञों और प्रोफेसरोंके लिखे होते हैं। आरम्भमें लोगोंको भय था कि लेखोंके अभावसे कहीं बीचमें विज्ञान बन्द करना न पड़े पर यह धारणा मिथ्या ही निकली।

हम लोगोंके कार्यक्रममें सर्वसाधारणके समझने योग्य व्याख्यान एक विशेष अंग हैं, परन्तु उनमें खर्च भी बहुत बैठता है। प्रत्येक ऐसे व्याख्यानमें जिसके लिये "स्लाइड्स" बनवानेकी ज़रूरत होती है २०) से कम व्यय नहीं होता। विज्ञापन इत्यादिके लिये अलग ही रुपये चाहियें। पहले दो वर्षोंमें परिषद्के व्याख्यान प्रयागके अंतर्गत ही म्योर कौलेजमें हुए। परन्तु बादको इस नीतिमें परिवर्तन किया गया। फरवरी १९१५ में नार्मल-स्कूल प्रयागके छात्रोंके लिए ६ व्याख्यान दिये गये। तीन व्याख्यान १९१५के अक्तूबर और नवम्बरमें कायस्थपाठशालामें हुये। निखिल भारतवर्षीय तथा प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनोंमें भी परिषद्की ओरसे व्याख्यान कराये गये। इसके अतिरिक्त बुलन्दशहर और हरदोई, काशी और रायबरेलीमें भी व्याख्यान कराये गये।

आंतरिक संगठन

हम लोगोंको इस बातका गर्व है कि हमारी संस्थामें डा० वसु, डा० राय और डा० गणेशप्रसाद जैसे विश्वविख्यात वैज्ञानिक भी सदस्य रूपसे सम्मिलित हैं। हमारे श्रद्धेय पं. मदनमोहन मालवीय जी भी जिन्होंने शिक्षाकी उन्नतिके लिये सबसे अधिक उद्योग किया है, परिषद्के उपसभापति और सभ्य हैं। परिषद्के साधारण सभ्योंकी संख्या १२५ है जिसमें वर्तमान समयमें केवल ५ सभ्योंकी जगह खाली है। आजन्म सदस्योंकी संख्या ४ है और मान्य सभ्यो की भी ४ है।

हमारी आवश्यकताएं

परिषद्के आयका मार्ग केवल सभ्योंका चन्दा है, पर वह निश्चित नहीं कहा जा सकता। परिषद्के कामको दृढ़ और स्थायी करनेके लिये हमारी यह आवश्यकताएँ हैं:—

५०,००० रुपये एकभवनके लिए
१०,००० " एक छापेखानेके लिए
१०,०००" यंत्र और प्रयोगशालाको सामग्रीकेलिए

५,००० " वैज्ञानिक पुस्तकालयके लिए
५०००० " स्थायी कोषके लिए

योग १,२५,००० रुपये

परिषद्के साधारण व्ययके लिए जो धनकी आवश्यकता होगी वह स्थायीकोषके सूद, छापेखानेके मुनाफे और सभ्योंके वार्षिक चन्दे इत्यादिसे चल जायगा। हम लोगोंको पूरी आशा है कि परिषद्के हितैषी अब इस फन्डके इकट्ठा करनेकी उपयुक्तताको स्वीकार करेंगे और शीघ्र ही परिषद्को एक स्वतंत्र और स्थायी अवलम्ब प्रदान करेंगे।

हम लोगोंको अब यह देखना नहीं है कि परिषद् चल सकती है वा नहीं। हमारे उद्योगकी बहुत सफलता हो चुकी है, देशमें परिषद्के कार्यका आदर होने लगा है, अनेक योग्य और प्रतिभाशाली सज्जन हमारे साथ कार्य करनेके लिये तैयार हैं। इसी भावसे सर्व साधारणके सामने अब हम अपनी अपील रखते हैं और यह आशा करते हैं कि उनसे हमें उचित सहायता मिलेगी।

हमारे परिषद्के ढंगकी और वैज्ञानिक संस्थाएं पहले भी देशमें खूब फूली फली और कार्य कर चुकी हैं। कलकत्तेवाली "इन्डियन एसोसियेशन फौर दी कल्टीवेशन ऑव् सायन्स" की हालमें ही स्वर्ण जुबिली होनेवाली है। इसके पास कई लाखकी सम्पत्ति है। वह मौलिक खोजोंके लिये कई छात्रवृत्तियां भी दिया करती है। खेद इतना ही है कि वह देशी भाषाओंकेलिए कुछ नहीं कर रही है। लाहौरवाली "सुसाईटी फार दि प्रोमोशन ऑव साइंटिफिक नौलेज" १५ सालसे ऊपरकी हो चुकी, परन्तु देशी भाषाओंकी उन्नति करना उसने अपना उद्देश्य नहीं बनाया। इस प्रकार हमारी परिषद् इस क्षेत्रमें अकेली उद्देश्यकी पूर्तिकेलिए पांच सालसे अधिक प्रयत्न कर रही है और इतने ही दिनोंमें इतना वैज्ञानिक साहित्य प्रस्तुत कर लिया है जितना और कोई संस्था नहीं कर सकी है। किन्तु आर्थिक झगड़े हमारे काममें विघ्न रूप हो रहे हैं। अभीतक यह अवैतनिक कार्यकर्ताओंके बलपर तथा चन्दों और एक गवर्नमेन्ट कालेजकी उदारताके सहारे इसका निर्वाह होता आया है। परिषद्का काम दृढ़ रूपसे चलानेकेलिये एक भवनकी नितान्त आवश्यकता है, जिसमें इसका कार्यालय हो और सामान रखा जाय, जहांसे मुखपत्र विज्ञान निकाला जाय, जहां सर्वसाधारणकेलिये व्याख्यान कराये जावें तथा उन लोगोंकेलिए स्थान हो जो देशको, उद्योग धन्धोंमें अत्योपयोगी आविष्कार करके, लाभ पहुंचाएँ। यह स्पष्ट है कि एक ऐसी प्रयोगशाला भी ज़रूर होनी चाहिये जिसमें शिल्प सम्बन्धी खोज हों। एक छापाखाना भी होना चाहिये, जिसके बिना विज्ञानके प्रकाशनमें अनेकों अड़चनें होती हैं। अन्तमें विविध वैज्ञानिक विषयोंकी चुनी चुनी थोड़ी सी पुस्तकें भी हों, जिनके अवलोकनसे हमारे लेखक और अन्वेषक दोनोंको ही सुविधा प्राप्त हो। जब स्थायी कोषकी रकम इतनी हो कि उससे १८००) वार्षिक आय हो जाय तब कहीं उसके सूदसे परिषद्का कार्य संचालन हो सकता है। इस समय यदि १,२५,००० का कोष परिषद्के पास हो जायगा तो इसका काम आप ही चलने लगेगा और पबलिकसे कुछ लेनेकी ज़रूरत न होगी। पुस्तक इत्यादिकी बिक्रीसे यथेष्ट द्रव्य संचय हो जायगा और फिर क्रमसे उसकी पुष्टि होती रहेगी।

जिस धीमी गतिसे हम लोग वैज्ञानिक साहित्य तैयार कर रहे हैं उससे तो हम लोग कुछ भी न कर पायेंगे। उधर संसारमें ढेरों वैज्ञानिक साहित्य बन रहा है। इसलिए हम लोगोंको अपनी गति तेज़ करनी पड़ेगी और इस शीघ्रतासे वैज्ञानिक साहित्य रचना होगा कि दो ही चार सालमें हमारे यहां भी सभी तरहकी विज्ञानकी पुस्तकें मिलने लगें और हम इस योग्य हों कि देशमें कोई

वैज्ञानिक ग्रन्थ निकले तो साथ साथ उधर उसे अपनी भाषामें भी निकाल डालें। यह तभी संभव है जब हमारे पास प्रचुर धन हो। हम भली भांति जानते हैं कि आजकल धनकी कहां कहां और कैसे कैसे कामोंमें मांग हो रही है, और इसी लिए इस समय हम उतनी ही द्रव्यकेलिए अपील करते हैं जो हमारे कामकेलिए नितान्त आवश्यक है। नहीं तो प्रत्येक वैज्ञानिक विषयपर एक दर्जन ग्रन्थ जिससे उसकी पूरी जानकारी हो सके, छपवाना कोई मर्यादाके बाहरकी बात नहीं है, परन्तु ऐसा करनेमें प्रत्येक वैज्ञानिक विषयके पीछे अनुमान दो लाख रुपये लगेंगे और तब हमें इतना मांगना पड़ेगा कि जिसका देना देशकी सामर्थ्यके बाहर होगा।

इन्हीं कारणोंसे परिषद् अब सर्वसाधारणसे धनकेलिये प्रार्थना करती है और यह आशा है कि वह यथाशक्ति दान देकर इसके पोषक और संवर्धक होनेका यश लाभ करेंगे। आजन्म सदस्य होकर ही प्रत्येक सभ्य १५०) देवें तो १२५ सभ्योंसे परिषद्को १८७५०) वसूल हो जायँ, जिससे स्थायी कोषका सूत्रपात हो सकता है। अन्य शीर्षोंमें अलग अलग "डोनेशन" देकर शेष १,०६,०५०) जमा किये जा सकते हैं। किसी एक प्रयोजनके लिये सम्पूर्ण धन लगानेवालेका शुभ नाम उस विभागसे सम्मिलित कर अमर किया जा सकता है। उदाहरणकेलिये एक प्रयोगशालाके लिए १०,०००) का दान देनेवालेके नामसे ही प्रयोगशाला प्रसिद्ध हो सकती है। ५०००) और इससे अधिक देनेवालोंके नाम, यदि वह अपना धन किसी विशेष लक्ष्यसे न देते हों तो शिला इत्यादि स्मारकके द्वारा चिरस्मरणीय, किये जायँगे। पश्चिमी देशोंमें दान लेनेका सबसे बड़ा हक़ विद्यालयोंका समझा जाता है। हमारे यहांकी भी प्राचीन परम्परा ऐसी ही है; परिषद्की यह अपील अब सर्वसाधारणके समक्ष है। विश्वास है कि हमारे देशभाई अपनी उदारताका परिचय देंगे और हमारी प्रार्थनाको निष्फल न जाने देंगे।

रामपालसिंह
(माननीय राजा सर, के. सी. आई. ई. सभापति)

एनी बेसेंट
(पी. टी. एस., उपसभानेत्री)

सीताराम
(बी. ए., एफ. ए. यू. प्रधान मंत्री)

व्रजकिशोर प्रसाद
(रईस-दरभंगा)

गोकरणनाथ मिश्र
(माननीय पं०, एम. ए. एल-एल. बी. लखनऊ)

गणेशप्रसाद
(एम. ए., डी, एस-सी. सर रासबिहारी घोष प्रोफेसर यूनीवर्सिटी कालेज आफसायंस कलकत्ता)

मंगलाप्रसाद
(एम. ए., कलकत्ता)

पुरुषोत्तमदास टंडन
(एम. ए., एल-एल. बी, प्रयाग)

रविनंदनप्रसाद
(रायबहादुर, बी. ए., एल-एल. बी. बनारस)

राजेन्द्रसिंह
(ठाकुर, रियासत टिकड़ा)

श्रीकृष्णजोशी
(डाइरेक्टर आफ एग्रिकलचर एण्ड इण्डस्ट्रीज़ नाभा)

शिवप्रसाद गुप्त
(रईस, बनारस)
विष्णुदत्त शुक्ल
(माननीय पं०, बी. ए. सिहोरारोड)

लोहेसे इस्पात और इस्पातकी रेलोंका बनाना

[ले० अध्यापक दुर्गाप्रसाद, बी० ए०]

जहां कहीं मज़बूती और कड़ेपनकी ज़रूरत होती है, तहां स्टील व्यवहार किया जाता है। पूर्वकालमें रेलवे लैनोंके लिए लोहेकी रेलें बनायी जाती थीं, परन्तु अब वे इस्पातकी बनायी जाती हैं। इस्पात लोहेसे ज्यादा कीमती होता है, किन्तु अधिक दिन ठहरता है और काम भी अच्छा देता है। इसलिये वस्तुतः इस्पातका व्यवहार ही अधिक लाभदायक और सस्ता होता है। वातभट्ठेसे द्रव लोहा इस्पातके भट्ठेमें आते समय ठण्डा हो जाता है पर कठोर नहीं होता, यद्यपि यह बड़े बड़े डब्बोंमें आता है। पहले कह चुके हैं कि वातभट्ठेसे निकलनेपर लोहा (ladle) डब्बेमें भर लिया जाता है, जिन्हें रेल पथपर एक छोटा इंजिन खींच लाता है। लोहा लानेवाले डब्बेमें (firebricks) आतिशी ईंटें अर्थात् ताप सहन करनेवाली ईंटें भीतरकी तरफ जड़ी रहती हैं, किन्तु मैल ढोनेके ठेलोंमें नहीं रहतीं। द्रव लोहा मिक्सरमें (mixer) रखा जाता है। यह मिक्सर इसलिये कहलाता है कि इसमें कई प्रकारके लोहे मिलाये जाते हैं। प्रयोजनके अनुसार स्टील बनानेके लिये जुदे जुदे गुण रखनेवाले लोहखण्ड (scraps), लोहा तथा इस्पातके ऐसे टुकड़े जो सिवाय गलानेके और किसी कामके नहीं होते, मिलाये जाते हैं। जब इस्पात तैयार हो जाता है तो डब्बोंमें भरा जाकर ढालुआं लोहेके (moulds) चौकोर सांचेमें डाला जाता है। इस सांचेके मस्तकपर दो छोटे कानसे होते हैं जिनको (Lug) लग कहते हैं। इन सांचोंमेंसे छः फुट लम्बी तीस इंच चौड़ी और अठारह इंच मोटी सिलें निकलती हैं, जो सोखनेवाले गड्ढोंमें (soaking pits) रखी जाती हैं। इन गड्ढोंकी तीन (group) कतार हैं, जिनमेंसे प्रत्येकमें बीस बीस सिलें गरम होती हैं। इन सिलोंके उठाने धरनेका काम क्रेनसे (crane) लिया जाता है। क्रेनसे एक चेन लटकती रहती है, जिसके अन्तमें दो (pincers) चुटकी रहती हैं, जिनको कुत्ते (dogs) कहते हैं। ये कुत्ते सिलके मस्तकको पकड़ लेते हैं और ज्यों ज्यों सिलके भारका दबाव चेनपर पड़ता है, त्यों त्यों कुत्ते सिलको मज़बूतीसे पकड़ लेते हैं। अतएव छुटने तथा फिसलनेका कुछ डर नहीं रहता। क्रेन इन सिलोंको उठाकर, एकएक करके, विद्युत्से चलनेवाले ठेलोंपर रख देता है। ठेले इन्हें ब्लूमिङ्ग मिलमें पहुंचा देते हैं, जहांपर ये सिलें दबायी जानेसे ६ गज लम्बी और ८ इंच चौड़ी हो जाती हैं। इस रूप परिवर्तनके बाद इनका नाम ब्लूम (bloom) पड़ जाता है। ब्लूमिङ्ग मिलमें (blooming mill) सब तरफसे बराबर दबाव पड़नेसे सिलोंके अन्दरके हवाके बुदबुदे सब निकल जाते हैं। अब यहांसे ब्लूम (bloom) निकालकर लोहरोलरके (ironrollers) द्वारा ढकेला जाकर रफिङ्ग मिलमें (roughing mill) लाया जाता है। पहले इसके भद्दे सिरे (rough ends) काटे जाते हैं और तब दो तीन या चार टुकड़े किये जाते हैं। ये टुकड़े शियर्स-से (shears) किये जाते हैं जो (hydraulic power) जल-बलके द्वारा चलते हैं। शियर्स इतनी सुगमतासे इन मोटे लोहखण्डोंको काट देते हैं, जैसे छुरी रोटी काटती है। यहांसे ब्लूम बेलन-यंत्रमें (rolling mill) जाता है। यहांपर

कई एक नालियां (grooves) बनी रहती हैं, जो ब्लूमसे सकड़ी होती हैं। इनमें जानेसे सिलें पतली तथा लम्बी हो जाती हैं और तब एकयंत्र, जिसको (rougher) रफर कहते हैं इनको भुजाकी नाईं पकड़कर उलट देता है। रेल बनने तक ब्लूम कई नालियोंमें होकर निकलता है। पहली नालीमें चौरस होता है, दूसरीमें गारटसा बन जाता है और तीसरीमें माल तैयार हो जाता है। अथवा यों कहिये कि पहली नालीमें ब्लूम कदमें ज्यादा बढ़ जाता है। दूसरीमें रेलके पार्श्व-भाग बनते हैं और तीसरीमें ऊपर नीचेके भाग ठीक हो जाते हैं। इसके बाद माल (finishing mill) परिष्कार यंत्रालयमें जाता है। यहांपर रेल वस्तुतः रेलकेसे आकारमें प्रवेश करती है, किन्तु आकार पूर्णतया रेल जैसा नहीं होता। परिष्कार यंत्रालयकी (finishing mill) प्रत्येक नालीमें इसका आकार सुधरता जाता है और आखरी नालोमें होकर निकलनेतक यह ठीक रेल बनकर निकलता है। फिर रौलरोंके द्वारा ढकेला जाकर यह एक (circular saw) गोल आरेके पास पहुंचता है जो बिजलीसे चलता है। यह आरा इसके नोकीले छोरको काटकर लम्बाई उचित परिमाणकी कर देता है और एक छोटा टुकड़ा यहांसे जांचके लिये प्रयोगशालामें भेज दिया जाता है। लैनोंपर जितनी लम्बाईकी रेलें बिछायी जाती हैं, उनसे इस रेलकी लम्बाई कुछ ज्यादा होती है। रेल अभीतक गरम रहती है। यदि यह इस समय उतनी ही लम्बाईकी काटी जाय, जितनी बिछानेके समय रहनी है, तो ठण्डी होनेपर छोटी हो जायगी।

लोहा तथा इस्पात गरमी पानेसे फैलते हैं और ठण्ड पानेसे सिकुड़ते हैं। इसका प्रमाण आप रेलपथपर देख सकते हैं। रेल बिछानेके समय दो रेलोंके छोर सटाकर नहीं रखे जाते। दो रेलोंके बीचमें थोड़ी जगह छोड़ दी जाती है। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो गरमीके दिनोंमें रेलोंके फैलनेसे उनमेंसे बहुतसी अपने स्थानोंसे हट जायेंगी, जिससे गाड़ियोंके उलटनेकी शंका बराबर बनी रहेगी।

इसके बाद रेल हाटबेड बिल्डिङ्ग (hot bed building) में जाती हैं, जहां ये पड़ी रहती हैं और कुछ देरमें ठण्डी हो जाती हैं। तब दो और काम होते हैं। एक तो रेल सीधी की जाती है। दूसरे उसके प्रत्येक छोरपर दो दो छेद किये जाते हैं। रेलोंको सीधा इसलिये करना होता है कि ठण्डी होनेसे वे कुछ टेढ़ी हो जाती हैं। दूसरे रौलरोंपरसे आनेमें भी इधर उधर उछलनेसे टेढ़ी हो जाती हैं। इनको सीधा करनेके यंत्र में (roll turning mill) धीरे धीरे दबाकर सीधा कर देते हैं और दोनों छोर खरादकर चिकने कर दिये जाते हैं।

अन्तमें वैद्युत् बर्मेसे (electric drill) रेलके हरेक छोरमें दो दो छेद कर देते हैं। तब रेलोंको (inspection benches) निरीक्षण बेञ्चपर रख छोड़ते हैं, जहांसे रेलवे कम्पनियोंके इन्स-पेक्टर लोग जांच कर चालान करते हैं।

रेलोंका वर्णन

रेलकी लैनोंपर जाकर ज़रा किसी दिन ध्या-नसे देखिये कि रेलें कैसे जुड़ी रहती हैं। नीचे लोहे या काठके स्लीपर रहते हैं। इन स्लीपरोंमें गद्दे (chair) रहते हैं, जिनपर रेल बैठायी जाती हैं। रेलके निचले हिस्से जो गद्देपर रहते हैं चपटे होते हैं। उन्हें झालर (flanges) कहते हैं। झालरके बीचसे सीधा उठा हुआ लम्बरूप एक भाग रहता है जिसे वेब (web) कहते हैं। इसके शिखरपर जो भाग होता है उसे मुकुट (crown) अथवा सिर (head) कहते हैं। इसी क्रौन या मुकुटपर (crown) होकर गाड़ीके पहिये चलते हैं। इस प्रकारकी रेलको फ्री हेडरेल अर्थात् एक मुखीरेल (free head rail) कहते हैं। कहीं कहीं डबलक्रौन रेल अर्थात् द्विमुखी रेल (double crown rail) व्यवहार की

जाती है। इनमें निचले भागका आकार भी ठीक क्रौनका (crown) सा होता है। जब ऊपरका मुकुट या क्रौन गाड़ियोंके चलनेसे घिस जाता है तब रेलको उलट कर नीचेका भाग ऊपर कर देते हैं। इससे नयी रेलोंकी दरकार नहीं होती। एक और प्रकारकी रेल बुलहेडरेल (bull head rail) कहलाती है। आपने रेल पथोंपर देखा होगा कि ये रेलें गद्देपर मज़बूतीके साथ लकड़ीके टुकड़ों-पर जिनको की (keys) कहते हैं जड़ी रहती हैं। दो रेलोंको जोड़नेकेलिए फिशप्लेटका (fish plates) प्रयोग किया जाता है। रेलके वेबके (web) प्रत्येक छोरपर दो छेद होते हैं। प्रत्येक फिश-प्लेट-में चार चार छेद होते हैं और ये चारों छेद दोनों रेलोंके चार छेदोंपर आ जाते हैं। फिशप्लेट तथा वेबोंके छेदोंमें होकर बोल्ट (bolt) डालते हैं और तब बाहर नट (nuts) कस देते हैं। रेल सब लम्बाईसे नहीं बेची जातीं किन्तु गज पीछे वजनके अनुसार बेची जाती हैं।

पहाड़ी प्रदेशके डंगरियोंके कर्तब

एक अवैज्ञानिक घटना

[ले०—पं० रुद्रदत्त भट्ट]

पाठक इस शीर्षकको देखकर घबड़ा न जाइये। मैं आपके सन्मुख आज एक ऐसी प्रथाका वृत्तान्त उपस्थित करूंगा जो मुझको अवैज्ञानिक प्रतीत होती है अथवा जिसका समाधान मैं अपने वैज्ञानिक ज्ञानसे नहीं कर सका। यदि आप उसका कुछ समाधान कर सकें तो मैं आपका सदा कृतज्ञ रहूंगा। इसी तात्पर्यसे मैं आपके सन्मुख उपस्थित भी हुआ हूं। घटना कल्पित नहीं वरन् अपने आंखों देखी है और एक ही बार नहीं वरन् बहुधा इस ओर हुआ करती है। अतः आपमेंसे उन पाठकोंको जो ऐसी घटनाओंको कपोलकल्पित समझें मैं दिखानेकी भी प्रतिज्ञा करता हूं। साथ ही साथ मैं यह भी कह देना उचित समझता हूं कि घटनामें भाग लेनेवाले अथवा यों कहिये कि घटना-के पात्र कोई भानुमतीका तमाशा करनेवाले अथवा जादूगर नहीं होते, वरन् ग्रामीण सरल कृषक होते हैं।

हमारे कुमायूंप्रान्तमें जब कभी दुर्भाग्यवश महामारी अथवा हैज़ाका प्रकोप होता है तो प्रत्येक गांवके नरनारी मिलकर कुछ धन एकत्रित करते हैं और पूजा करनेका आयोजन करते हैं। इसको वे लोग जागर कहते हैं और पूजा करनेको जागर लगाना कहते हैं। ऐसे जागर और समय भी लगाये जाते हैं पर बहुधा ऐसे ही कुसमय अधिक लगाये जाते हैं। प्रत्येक गांवमें अलग जागर लगाया जाता है। गांवके निकट किसी मन्दिरमें पहिले एक धूनी लगाई जाती है, जो दिनरात पूजा समाप्त होनेतक प्रज्वलित रहती है। पूजा कभी ११ दिनतक होती है और कभी २२ दिनतक, जिसको बैसी कहते हैं। प्रत्येक गांवका अलग देवता होता है, पर विशेषतः शैम, हरु, गोला वा सूर पीरु इन चार देवताओंका आवाहन करते हैं। गांवके बालक वृद्ध नर नारी सांझको भोजन करनेके उपरान्त देवालयमें आकर जमा होते हैं। उपरोक्त देवता किसी मनुष्यके शरीरमें पैठकर उसके द्वारा बातें करता है। जिस मनुष्यके शरीरमें इस प्रकार देवता प्रवेश करता है, उसको देवताका डंगरिया कहते हैं, जैसे यदि किसी मनुष्यके शरीरमें शैम देवता प्रवेश करता है, तो उसको शैमका डंगरिया कहते हैं। इसी प्रकार दूसरे देवताओंके भी डंगरिये होते हैं। पहिले गांवका ढोली, जिसका काम व्याह उपनयनादिमें ढोल बजानेका रहता है, आकर शैम देवताकी आराधना करता है। कुछ ही समय पश्चात् शैमके डंगरियेका शरीर कांपने लगता है और वह कांपते कांपते उठकर धूनीके चारों ओर नाचने लगता है। उसके नाचते ही ढोल थाली इत्यादि बजने लगती हैं और इनके कोलाहल-

Anthropology मनुष्य विज्ञान]

के साथ ही साथ डंगरियेका नाचना भी बढ़ता जाता है। नाचते नाचते वह नाकसे शब्द करके और डंगरियोंको उत्तेजना देता है। उससे और डंगरिये भी नाचने लगते हैं। कुछ समय तक धूनीके चारों ओर एक प्रकारका शिवताण्डव सा होता है। फिर देवताओंका खाना प्रारम्भ होता है। पहिले भंगकी मज़बूत रस्सियोंको पकड़कर उसके दूसरे छोरसे एक डंगरिया दूसरेकी नंगी पीठपर अपनी शक्ति भर मारता है और नृत्य उसी प्रकार जारी रहता है। रस्सियोंकी चोटकी आवाज़से ऐसा प्रतीत होता है कि अब ही पीठसे रक्त छलछला उठेगा पर चोट और कुछ हानि नहीं पहुंचाती, एक दूसरी-के ऊपर तड़ातड़ पड़ती रहती हैं। जब इससे डंगरिये बहुत ही थक जाते हैं तब भभकती हुई धूनीसे लोहेके बड़े बड़े चिमटे, अग्निके समान लाल किये हुए, निकाले जाते हैं। उनको थाम कर डंगरिये अपने शरीरमें ऊपरसे नीचे तक छुवाते हुवे घुमाते हैं। लाल चिमटोंको शरीरपर घुमानेसे चमड़ा झुलस जाता है और कुछ बाल जलनेकी सी दुर्गन्ध भी आने लगती है। कुछ डंगरिये, विशेषकर शैम व हरुके, लाल लोहेके डन्डोंको मुंहके भीतर रख लेते हैं और चार पांच मिनट तक हाथ धधकती हुई धूनीके भीतर डाले रहते हैं। इसके पश्चात् दर्शकोंमेंसे, जो कुछ चाहते हैं, पूछते हैं और डंगरिये उसका उत्तर देते हैं। कोई पूछता है कि मेरे लड़का कब होगा, कोई अपने रोग अच्छे होनेकी बात पूछता है, कोई अपनी खोई हुई वस्तुके बारेमें पूछता है। डंगरिये अपने देवताओंकी ओर से, जिनपर पूछने-वालोंका गहरा विश्वास रहता है, उनका उत्तर देते हैं। इसके पश्चात् शरीरका कांपना बन्द हो जाता है और देवता डंगरियोंका शरीर छोड़ देते हैं। लाल उत्तप्त चिमटोंके स्पर्शसे और इन्च भर मोटी रस्सियोंकी चोटसे भी इनके शरीरों-पर निशानतक नहीं होता। शैम सब देवताओं-का गुरु माना जाता है और डंगरिये कहते हैं कि जब तक देवता उनके शरीरमें प्रवेश किये रहते हैं तब तक आग, पानी, रस्सी उनके शरीरपर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती। यदि भभकती हुई अग्निमें तुरन्त हाथ डालकर निकाला जाता तो यह समझा जा सकता था कि पहलेसे हाथ तेल या पानीमें डुबो लेते होंगे, पर पांच मिनटतक आगमें हाथ डाले रहना और लाल उत्तप्त लोहे-को जीभसे चाट देना अक्लको हैरान कर देता है। क्या विज्ञानके कोई पाठक इसपर विचार कर कुछ निर्णय करेंगे? *

विद्युत्धाराके गुण

[ले०—प्रोफ़ेसर सालिगराम भार्गव, एम. एस-सी.]

बिजलीकी धारा किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है—इस विषयसे हमारे पाठक परिचित हो चुके हैं। बाटरी और डैनमो दोनोंपर विज्ञानमें पहले लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आज केवल यह बतानेका प्रयत्न करेंगे कि विद्युत् धारा क्या होती है। प्रत्येक वस्तु अपने गुणोंसे जानी जाती है। इसीलिए विद्युत् धाराके गुण जानने आवश्यक हैं।

(१) चुम्बकीय गुण—किसी दिशासूचकके चुम्बकके ऊपर और नीचे एक तार इस प्रकार लगाओ जैसा चित्र १ में दिखलाया है। चुम्बक चुम्बकीय याम्योत्तरमें ठहरेगा। अब दिशा सूचकको इतना घुमाओ कि तारका आयताकार और चुम्बक समानान्तर हो जायं अर्थात्

* ऐसी घटनाओंका अन्वेषण भी परमावश्यक है। यदि यह भी मान लिया जाय कि डंगरिये अपने शरीरकी रक्षाका उपाय पहलेसे कर लेते हैं, तो भी उन उपायोंका ढूंढ़ निकालना कम महत्वका काम नहीं है। हमने इस लेखको यहांपर इसी लिए स्थान दिया है कि विविध प्रान्तोंके लोकमतका ज्ञान एकत्रित हो जाय। यह भी (anthropology) मनुष्य विज्ञान-का एक अङ्ग है।—सं०

तार भी चुम्बकीय याम्योत्तरमें आ जाय। अब बाटरीका धनात्मक सिरा चुम्बकके ऊपरके तार-से और ऋणात्मक सिरा नीचेके तारसे जोड़ दें तो सम्बन्ध करते ही चुम्बक अपने स्थानसे हट

चित्र १

जावेगा। उसका उत्तरी सिरा पच्छिमकी ओर और दक्षिणी सिरा पूरबकी ओर विचलित होगा। यदि बाटरीके सिरोंको बदल देवें अर्थात् धनात्मक सिरेको नीचेके तारसे और ऋणात्मक सिरेको ऊपरवाले तारसे जोड़ दें तो चुम्बकका विचलन उलटा होगा। अर्थात् उत्तरी सिरा पूरबकी ओर और दक्षिणी सिरा पच्छिमकी ओर हटेगा। जब धारा ऊपरवाले तारमें होती हुई नीचेके तारसे लौटती है तो चुम्बकका उत्तरी सिरा पश्चिमकी ओर और दक्षिणी सिरा पूरबकी ओर हटता है और जब धारा नीचेके तारमेंसे होती हुई ऊपरके तारसे लौटती है तो चुम्बकका विच-लन बदल जाता है। इस प्रयोगसे एम्पियरने धाराकी दिशा और चुम्बकके विचलनके सम्बन्ध-में यह नियम निकालाः—

"मान लो कि आप सदा चुम्बककी ओर देखते हुए धाराके साथ इस तरह तैर रहे हैं कि धारा आप-के पैरोंमें होकर शरीरमें प्रवेश करती है और सिर-से निकल जाती है तो चुम्बकका उत्तरी सिरा सदा आपकी बाईं ओर हटेगा।" ऊपरके प्रयोगमें ऊपर-के तारमें आप इस तरह तैरते होंगे कि आपके पैर दक्षिणकी ओर और सिर उत्तरकी ओर होगा और आप पृथवीकी ओर (क्योंकि चुम्बक नीचे है) देखते होंगे। आपका बायां हाथ पश्चिमकी ओर होगा, चुम्बकका सिरा भी उसी ओर हटा। नीचेके तारमें आप इस तरह तैरते होंगे कि आपके पैर उत्तरकी ओर और सिर दक्षिण-की ओर होगा और आप ऊपरकी ओर देखते होंगे (क्योंकि चुम्बक तारके ऊपर है और आपको चुम्बककी ओर देखना चाहिये) आपका बायां हाथ पश्चिमकी ओर होगा, चुम्बकका उत्तरी सिरा भी इसी ओर हटा।

यदि यंत्र पलटकर रखा जावे, जिससे तारके छोर उत्तरको हो जावें और धारा ऊपरके तारमें उत्तरसे दक्षिणकी ओर और नीचेके तारमें दक्षिणसे उत्तरकी ओर जावे तो चुम्बकका विचलन बदल जावेगा। यह बात भी ऊपर दिये हुए नियमसे जांची जा सकती है।

धारा चाहे जिस प्रकारके चक्करमेंसे जाती हो एम्पियरके नियमकी सहायतासे उस चक्करके पास रखे हुए चुम्बकके विचलनकी दिशा मालूम की जा सकती है।

तारमें होकर धारा बहनेसे चुम्बकपर असर पड़ता है। किंतु चुम्बकपर असर नहीं पड़ सकता जब तककि चुम्बकीय क्षेत्र न हो। इससे यही नती-जा निकला कि तारमें होकर धारा बहनेसे तारको चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। यदि चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है तो शक्तिको रेखाओंका आकार किस प्रकारका होता है? इनके आकार और अस्तित्वका पता नीचे दिये हुए प्रयोगसे चल जावेगा।

एक तांबे या पीतलका मोटा तार लेकर और एक दफ्तीमें तारकी मोटाईकी बराबर छेद करके

तारको उसमें डाल दो । देखो चित्र २ । तारके दोनों छोर किसी बाटरीसे जोड़ दो । धारा बहने लगेगी । अब यदि लोहेके तारके छोटे छोटे टुकड़े दफ़्तीपर फैला दिये जावें तो लौह कण शक्तिको रेखाओंका आकार बना लेंगे । देखनेमें यह आवेगा कि टुकड़ोंने तारके चारों ओर गोल चक्कर बना लिये हैं और उन सबके केन्द्र तारकी अक्षपर हैं अर्थात् शक्तिकी रेखाएँ गोलाकार और सकेंद्रिक होती हैं ।

(२) गरमी उत्पन्न करनेका गुण—दूसरा गुण धारा का यह है कि जिस तारमें होकर धारा बहती है वह तार गरम हो जाता है । इस गुणके प्रत्यक्ष उदाहरण बिजलीके लम्प हैं । इन लम्पोंके भीतर किसी धातुका (साधारणतः टंग्स्टन) तार होता है जो बिजलीकी धाराके प्रवाहसे उत्तप्त होकर प्रकाश देने लगता है ।
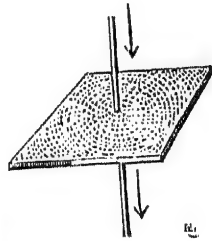
चित्र २

(३) रासायनिक विश्लेषण—एक कांच या मिट्टी-की मोटी नली लो । इसका एक सिरा काग और चपड़ा लगाकर बंद कर दो । कागमें दो छेद कर के प्लाटिनमके छोटे छोटे दो तार उन छेदोंमें पिरो दो । तारोंके जो सिरे नलीके भीतर हों उनपर प्लाटिनमके पत्र जड़ देने चाहियें । अब इस प्यालेमें गंधकका तेज़ाब मिला हुआ पानी डाल दो । इन तारोंसे किसी बाटरीका सम्बन्ध कर दो । धारा तारों और गंधकके घोलमें होकर बहने लगेगी । तारोंसे गैसके बुलबुले उठते हुए दिखलाई देंगे । यदि धाराका आना बन्द कर दें तो गैसका निकलना बंद हो जावेगा । फिर जब धारा आने लगेगी, गैस पैदा होने लगेगी । अर्थात् जब जब धारा बहेगी बुलबुले उठेंगे । धाराका बहना बंद करनेसे बुलबुलोंका उठना बंद हो जावेगा । इससे यह स्पष्ट है कि बुलबुलों का उठना धाराके प्रवाहपर निर्भर है । यदि तेज़ाब मिश्रित पानीसे भरी हुई दो परख नलियां (जो एक तरफ बंद हों) इस प्रकार इन पतरोंपर रख दी जावें कि उनके खुले सिरे पानीके नीचे हों (जैसे भारमापकका सिरा पारेके नीचे रहता है) और पतरे
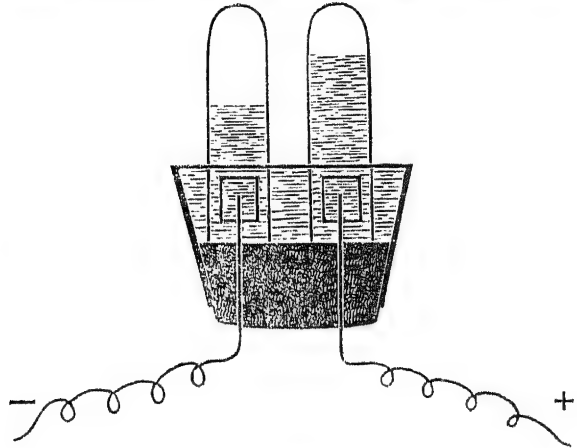
चित्र ३

नलियोंके अंदर हों तो जैसे जैसे गैस निकलेंगी नलियोंमें ऊपर चढ़ती जायंगी और पानी नीचे गिरता जावेगा । यह गैस जमा करनेकी साधारण रीति है, जो विज्ञानके पाठकोंको कई बार बतलाई जा चुकी है । थोड़े ही समयमें देखेंगे कि एक नलीकी गैसका आयतन दूसरी नलीकी गैससे अधिक है और नापनेपर यह साबित होगा कि एकका दूसरीसे दुगना है । जांचनेसे मालूम होगा कि एक गैस उज्जन है और दूसरी ओषजन है। उज्जन उस पतरेपर निकली जो बाटरीके ऋणात्मक सिरेसे जुड़ा हुआ है और ओषजन दूसरे पतरेपर निकली । उज्जनका आयतन ओषजनके आयतनसे दुगना है । जब कभी तेजाब मिले हुए पानीमें बिजलीकी धाराका प्रवाह होगा यही दो गैस निकलेंगी और इनके आयतनमें यही सम्बन्ध मिलेगा । यदि ओषजनके आयतनका दुगना उज्जन-का आयतन लेकर दोनोंको किसी प्रकार मिला दें तो पानी बन जावेगा । इस प्रयोगसे यही नतीजा निकला कि बिजलीकी धारासे पानीका विश्ले-

षण हो गया। जिन दो गैसोंके मिलनेसे पानी बनता है वही दोनों गैसें तेज़ाब मिले हुए पानीमें धारा बहानेसे मिल जाती हैं। पानीमें तेजाब मिलानेकी आवश्यकता इस कारणसे है कि शुद्ध पानीमें होकर धारा नहीं बह सकती है। तेजाब मिलानेसे धारा बहने लगती है। केवल पानी ही नहीं, किन्तु किसी भी संयुक्त पदार्थमें धारा बहानेसे उसका विश्लेषण किया जा सकता है। पिघले हुए नमकमें धारा बहानेसे (sodium) सोडियम और (chlorine) हरिन, जिन दो मौलिकोंके मिलनेसे नमक बनता है, अलग अलग मिल सकते हैं।

बाटरीसे सोना चांदी चढ़ाना भी इसी बातका प्रमाण है।

अंगूरकी खेती

[ले० श्रीयुत बद्रीनारायण जोषी]

अंगूर भारतके उत्तम फलोंमेंसे एक है। यह तो ठीक नहीं मालूम कि कबसे यह भारतवासियोंको अपने अमृतमय स्वादसे स्वर्गीय आनन्द देता रहा है, परन्तु निघन्टुमें इसके गुणोंका वर्णन पाये जानेसे मालूम होता है कि भारतमें इसका प्रचार बहुत बरसोंसे है।

यदि कुछ सावधानी तथा धैर्यसे परिश्रम किया जाय तो इसकी खेती बहुत ही सुगम और लाभदायक हो सकती है।

भूमि

अंगूरके लिये ऐसी धरती होनी चाहिये जिसपर जल न जमा होता हो। इसके लिये सबसे उत्तम वही भूमि है, जिसमें कि सुगमतासे सिंचाई हो सकती हो और जड़ोंके पास पानी भी न जमा होता हो। यदि धरती अच्छी नहीं है और अंगूर लगानेकी पूरी इच्छा है तो कहींसे अच्छी

Agriculture कृषिशास्त्र]

मट्टी लाकर (किसी तालाबकी तहमें जमी हुई मट्टी इसके लिये उपयुक्त होगी) उसमें मिलानी चाहिये।

काश्त करनेकी विधि

गरमीकी ऋतुमें, दो या तीन बार हल चलाकर, धरतीको चौरस करनेके बाद, तीन फुट गहरा गड्ढा खोदना चाहिये। फिर निकाली हुई मिट्टीको १५ या २० दिन तक धूपमें सुखाकर और ४ भाग सड़ा हुआ गोबरका खाद, एक भाग चूना, एक भाग राख व दो भाग हड्डीका चूरा उसमें मिलाकर, गड्ढेको ६ इंच खाली छोड़ भर देना चाहिये। जब तीन चार बार जल बरस जावे तो गमलोंमेंसे लेकर अंगूरकी बेलोंको इन गड्ढोंमें लगा देना चाहिये। ध्यान इस बातका रहे कि बेलोंकी पेड़ी बहुत नीचे न गड़ने पावे, क्योंकि यदि पेड़ी बहुत नीचे गड़ जायगी तो संभव है कि बेल घास फूस व कीड़ोंसे नुकसान उठाकर नष्ट हो जावे।

गमलोंमें लगानेकी विधि

पहली विधि—कातिक (नवम्बर) या अगहनमें (दिसम्बर) पुरानी बेलोंसे कलमें काटकर लगानेसे उनमें बहुतसी जड़ें पैदा हो जाती हैं। इन्हीं जड़ पकड़ी हुई कलमोंको सावधानीसे उठाकर अच्छी मट्टीसे भरे हुए गमलोंमें लगानेसे आनेवाली बरसात तक लगाने लायक बेलें तैयार हो जाती हैं। कलमें ६ इंच लम्बी हों और उनमें तीन या चार आंखें हों।

दूसरी विधि—इसकी काश्त दाब लगानेसे भी होती है—अर्थात् बेलके नीचेकी डगालियां ६ इंच मिट्टी खोदकर दाब देनेसे जड़ें पकड़ लेती हैं। इन्हीं जड़ पकड़ी हुई दाबोंको सावधानीसे असली बेलोंसे काटनेपर दूसरी बरसात आने तक मुस्तकिल जगहपर लगाने लायक बेलें तैयार हो जाती हैं।

तीसरी विधि—इसकी आँखें लगानेसे भी बेलें तैयार होती हैं। आँख पुरानी बेलसे दृढ़ लकड़ीके

लेनी चाहिये। आँखके ऊपर और नीचे दो दो इंच जगह छोड़कर टुकड़े काटने चाहियें। आँखके नीचे एक तिहाई लकड़ीका भाग छीलकर, लकड़ी छोटे गमलेमें इस प्रकार रखनी चाहिये कि आँख ऊपर रहे। लकड़ीपर आधा इंच मिट्टी डाल प्रतिदिन जलसे गमलेकी मिट्टी गीली रखनी चाहिये। जब आँखमें अंकुर फूटने लगे, जल देनेकी अधिक चिन्ता करनी चाहियें। इन लकड़ियोंमें जब जड़ें आने लगें तब इनको बड़े गमलोंमें पलट देना चाहिये, जिससे जड़ोंको फैलनेके लिये अधिक स्थान मिले।

अंगूरकी बेल कमानदार जाली अथवा मंढेपर चढ़ानेसे अच्छी बढ़ती है। इस कमानके दोनों तरफ तीन तीन फुटके फासलेपर बेलें लगानी चाहियें। बेलका केवल एक ही अंकुर बढ़ने देना चाहिये और उसको भी एक ऋतुके समाप्त होनेपर चार या पांच फुट रखकर बाकी दिसम्बर या जनवरीमें छांट डालना चाहिये। दूसरी ऋतुमें, केवल ऊपर बढ़ते अंकुरको बढ़ने देकर, इधर उधरकी डगालियां २ या ३ फुटसे ज़्यादा न बढ़ने देनी चाहियें। इन डगालियोंमें इस ऋतुमें कुछ अंगूरके गुच्छे लगेंगे परन्तु प्रत्येक डगालीपर एकसे अधिक गुच्छा न रखना चाहिये और ऊपर बढ़ती डगालीको फल न लगने देना चाहिये, क्योंकि इस डगालीकी बाढ़ बेरोक होनेमें ही लाभ है। दूसरे वर्ष काट छांटके समय गत वर्षकी बाढ़ जिस स्थानसे प्रारंभ हुई वहांसे ४ फुट छोड़ ऊपरकी डाली काट देनी चाहियें। इधर उधर भी एक या दो डगाली रख बाकी सबको काट देनां उचित है। प्रधान बेलकी काट छांट जाली तक पहुंचने तक भविष्यमें भी इसी प्रकार करना ठीक है।

कई स्थानोंमें इसकी दो फसलें होती हैं। जिन बेलोंकी काट छांट नवम्बरमें हो जाती है उनके फल मईमें पक जाते हैं। एक मास आराम देकर फिर उनकी काट छांट करते हैं और खाद देते हैं। परिणाम यह होता है कि जूनसे फिर बाढ़ शुरू होती है और अक्तूबरमें फल पक जाते हैं। यदि पूरा और अच्छा खाद न दे सकें तो उस अवस्थामें एक फसल उतारना ही उत्तम है, क्योंकि दो फसलोंसे बेल भी कमज़ोर हो जाती है।

जनवरीके मध्य वा अन्तसे बेलोंकी बाढ़ आरंभ होनी चाहिये, जिससे गुच्छे बरसातके पूर्व ही पक जायं। बेलोंकी बाढ़ करनेके पहले दिसम्बरमें किसी भी समय बेलके चारों ओरकी भूमि जड़तक खोदकर, जड़ोंको धूप व हवा खिला, जनवरीके मध्य वा अन्त तक बेलोंको काट छांटकर उस निकाली हुई मिट्टीके स्थानमें नीचे दिये हुए खादोंमेंसे कोई सा दे देना चाहियेः—

(१) २ भाग बकरीकी मींगनीका खाद, २ भाग सड़े गोबरका खाद, एक भाग चूना, २ भाग हड्डीका चूर।

(२) दो सेर रुधिर और एक टोकरी सड़े गोबरका खाद।

(३) चिमगादड़की विष्टा (excreta of bat) और बकरीकी मींगनीका खाद।

(४) अथवा सड़े गोबरका खाद, आधपाव सोडानत्रेत (nitrate of soda), आधपाव पोटाश गंधेत (sulphate of potash), पावभर सुपरफासफेट।

उपरोक्त चारोंमेंसे कोई सा खाद देनेके १५ दिन बादसे बेलोंकी भरपूर बाढ़के लिये खूब सिचाई करनी चाहिये। बेल जब अधिक जोरमें हो तब सप्ताहमें दो बार जल देना चाहिये। इधर उधरकी डगालीमें जब एक या दो अच्छे गुच्छे लग जायं तब उनके सिरोंको तोड़ डालना चाहिये, जिससे बेलकी बाढ़ कम हो जाय और जड़ों द्वारा खेंचे हुए खाद्य पदार्थ फलोंकी वृद्धिमें काम आवें। अंगूर जब छोटे हों तब उनको बिरल (पतले) कर देना ठीक है क्योंकि इससे फल को बढ़नेके लिये मौका मिलता है।

अंगूरकी बेलके रोग

बेल ऐसे स्थानपर लगानी चाहिये जहां उसपर छाया न पड़े। सबसे खराब बीमारी गेरूकी (mildew) होती है, इससे पत्तियों व डंडियोंपर सफेद चूरा फैल जाता है और परिणाम यह होता है कि सब फसल मारी जाती है। इसका इलाज यह है कि गंधककी बुकनी रोगग्रसित भागपर डालें। पर यदि रोग बहुत बढ़ गया हो तो बेलको जड़ तक काट छांट कर जला देना उचित है। छांटे हुए भागमें फिर अंकुर लगने लगेंगे। गीली और गरम हवामें यह बीमारी अधिक होती है। सूखी हवामें रुकी रहती है। जोरकी जल वर्षा भी इस रोगको धो डालती है।

कीड़ोंमें लाल मकड़ी इसको बहुत हानि कारक होती है। आधसेर गंधक और एक सेर चूना, एक पीपे पानीमें उबालकर छिड़कनेसे इन कीड़ोंका नाश होता है। छोटे बड़े प्राणी व पक्षी पकते फलोंको हानि पहुंचाते हैं। अतः उनसे बचानेके उपाय करते रहना भी उचित है।

प्रशान्त महासागरमें।

"धन्य हो जगदीश ! धन्य हो !! इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारा ही प्रताप-सूर्य्य तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रहा है। पृथ्वी आकाश, सूर्य्य, चन्द्र और तारागण तुम्हारे ही ऐश्वर्य्यकी डोरमें बंधे हुए हैं और संसारके हितके लिये अपने धन प्राणको अर्पण कर रहे हैं। वायुकी गति-विधि तुम्हारी ही कृपापर निर्भर है। अग्निमें तुम्हारा ही तेज विद्यमान है। सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और प्रलयकर्त्ता तुम ही हो। निमेषमात्रमें राईसे पर्वत और पर्वतसे राई करते हो। रङ्कको राजा और राजाको रङ्क बना देना यह तुम्हारे बायें हाथका खेल है। जिसे तुमने कृपा कटाक्षसे अवलोकन करनेकी कृपाकी उसे अनायास ही सब सिद्धियां प्राप्त हो गईं। परम-पिता तुम ही हो। दया करो, दया करो। दाहिने बायें, ऊपर नीचे, आगे पीछे जहां देखते हैं तुम्हीं तुम दिखाई देते हो। दयामय दया करो, कृपामय कृपा करो। शरण दो, अशरण शरण कहलाते हो। रक्षा करो, दीन रक्षक तुम्हारा नाम है। याचक हूं' तुम्हारे द्वारपर आया हूं, सुदामाकी नाईं मुझे भी अयाचक करो। धनकी इच्छा नहीं, ऐश्वर्य्यकी इच्छा नहीं, सांसारिक सुखोंकी इच्छा नहीं। बस एक ही इच्छा है। दया निधे ! मेरी इस इच्छाको पूरी करो। केवल यही एक, और नहीं। तुम्हारे रत्न भाण्डारका केवल एक ही रत्न। बोलो क्या कहते हो, तुम्हारे जैसे दानशीलके द्वारतक पहुंचा हूं। बस, बस अब दे ही दो ! अपने चरण कमलों—"इतना कहते कहते रमाकान्तका गला भर आया। नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी वृष्टि होने लगी। अपने आराध्य देव श्रीकृष्णचन्द्रके प्रेममें इतना निमग्न हो गया कि तन मनकी सुधि जाती रही। धरती माताकी गोदमें अपना सिर रख भगवद् प्रेमके अथाह समुद्रमें डुबकियां लेने लगा। आज रमाकान्तको मनुष्य जन्मका फल मिल गया। उसकी चिर वांछित अभिलाषा पूरी हो गई। उसकी सच्ची प्रार्थना आज स्वीकृत हो गई। आज उसकी मांगी हुई भिक्षा मिल गई। इस भिक्षाने उसे अद्वितीय धनदकी पदवी दे दी। शिर उठाकर सामनेकी श्रीकृष्णकी मूर्ति पर दृष्टि डालते ही उसका हृदय कमल विकसित हो उठा। मानो श्रीकृष्ण भगवाननने मुस्कराकर कोमल और मधुर शब्दोंमें कहा, "रमा ! आज मैंने तेरी मनोकामना पूरी की। आजसे तू मेरा और मैं तेरा हुआ।" रमाकान्तके आनन्दका आज ठिकाना नहीं। इस आनन्दका तो वही कुछ अन्दाजा कर सकता है जिसने अपनेको कभी कृष्ण भक्तिके रङ्गमें रङ्गनेका सौभाग्य प्राप्त किया हो।

आज इस आनन्दके कारण रमाकान्तको पूरे दो घण्टेसे अधिक लग गये। पूजागृहसे निकलते-

ही सामनेवाले बड़े कमरेकी लटकती हुई घड़ीने टन टन सात बजा दिये। अभी रमाकान्तको बड़े कमरेमें आये हुए दो मिनट भी नहीं हुए थे कि ब्रह्मदेवने आकर कहा—"कप्तान साहब! गिरिजा से उत्तर-पूर्व कोई तीन मीलकी दूरीपर एक जहाज डूब रहा है।"

रमा०—गिरिजा इस समय किस स्थान-पर है।

ब्रह्म०—भारतसमुद्रमें।

भारत शब्दने रमाकान्तके चेहरेका रङ्ग बदल दिया। नहीं जानते कि इस शब्दका प्रभाव उसके हृदयपर कैसा पड़ा। यह भी नहीं जानते कि इस शब्दसे और रमाकान्तसे कुछ सम्बन्ध है या नहीं। यदि है तो कैसा और नहीं तो क्यों नहीं। रमाकान्तने ठण्डी सांस भरकर कहा—"आप गिरिजाको उसी ओर ले चलनेका उद्योग कीजिये। मैं अभी आता हूं।"

ब्रह्मदेवने ऊपर जाकर रमाकान्तकी आज्ञानुसार गिरिजाका रुख उसी ओरको किया। रमाकान्त ठीक उसी समय पहुंचा जब गिरिजा उक्त स्थानपर पहुंच चुकी थी। रमाकान्तने दो डोंगियोंको दौड़ाकर निकटके दो डूबते हुए मनुष्योंके बचानेकी आज्ञा दी। गिरिजासे कोई तीस गज़की दूरीपर एक काली वस्तु समुद्रकी लहरोंमें कभी नीचे और कभी ऊपर होती हुई दिखाई दी। रमाकान्तने दो और डोंगियोंको खोलनेकी आज्ञा दी। समुद्रकी लहरोंका ज़ोर पहलेकी अपेक्षा कुछ कम तो अवश्य हो गया था, परन्तु इतना कम नहीं हुआ था कि डोंगियां इच्छानुसार काम कर सकें। एक डोंगी इस वस्तुसे कोई दस गज़के अन्तरपर पहुंच गई। इतनेमें ही दूसरी ओरसे एक भीमकाय ग्राह बड़ी शीघ्रतासे उसी वस्तुकी ओर झपटता हुआ दिखाई दिया। ग्राहको देखते ही मारे भयके डोंगीवालोंके होश उड़ गये। वह काली वस्तु जो अबतक निर्जीव जान पड़ती थी अब सजीव होकर एक युवकके कपालके रूपमें परिणत हो गई। युवकने ग्राहको अति निकट पा धीरेसे सिर ऊपरकर, भालेका एक ऐसा हाथ मारा कि उसके लगते ही ग्राहका सिर जलके भीतर हो गया। इस आश्चर्य्य जनक घटनाको देख डोंगी तथा जहाज़वाले बड़े चकित हो गये। निशाना भी ठीक लक्ष्य स्थानपर ही बैठा था। यद्यपि इस आघातसे ग्राहकी एक आंख फूट गई तथापि अभी युवकके प्राण रक्षाकी आशा नहीं की जा सकती थी, क्योंकि ग्राह युवककी ओर बढ़ता ही जाता था। परन्तु वाहरी हिम्मत। ज्यों ज्यों ग्राह युवककी ओर बढ़ता जाता था त्यों त्यों युवक भालेको उसकी आंखमें घुसाता ही जाता था। कुछ देरके बाद ग्राहने भालेको लिये हुए डुबकी लगाई। युवक भी भालेकी मूठ पकड़े हुए डूबा फिर दोनों दूसरे ही क्षण जलके ऊपर हुए। इस समय भी भाला ग्राहकी आंखमें ही था। इस बार युवकने बड़ी फुर्त्तीसे भालेको खींचा और ग्राहकी दूसरी आंखमें घुसा दिया। यह देख एक डोंगीवालेने निकट पहुंच कर युवकको ऊपर खींच लिया। दूसरी डोंगीवालेने अधमरे ग्राहको बड़े बड़े भालोंसे छेद डाला। पहली डोंगी बड़ी तेज़ीसे जहाज़की ओर रवाना हुई। जहाज़में पहुंचकर रमाकान्तकी आज्ञानुसार मूर्छित युवक बड़े कमरेमें पड़े हुए एक पलंगपर सुला दिया गया।

अधिक परिश्रमके कारण शरीर और मन दोनों ही शिथिल हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें सोना ही अधिक लाभ दायक हुआ करता है। हमारे युवककी भी ठीक ऐसी ही दशा थी। कोई एक घण्टेके बाद चैतन्यता लाभ कर चारों ओर देखकर एकाएक बोल उठा—"ऐं! मैं कहां हूं।"

रमा०—गिरिजाकी गोदमें।

युव०—गिरिजाकी गोदमें?

रमा०—हां गिरिजाकी गोदमें।

युव०—आपका नाम क्या है?

रमा०—मेरा नाम रमाकान्त है।

"गिरिजाकी गोदमें" और "मेरा नाम रमा-

कान्त है" इन उत्तरोंको सुनकर युवक कुछ चकित हो गया, परन्तु फिर रमाकान्तकी ओर देखकर पूछा—"हम लोग जलमें हैं वा स्थल में"।

रमा०—जल में।

युव०—इस जल भागका क्या नाम है?

रमा०—भारत महासागर।

भारतका नाम सुनते ही युवकका चेहरा तमतमा उठा। अंग प्रत्यङ्गसे प्रसन्नता झलकने लगी। मानों भारत शब्दने संजीवनी प्रदान की। पलंगपर उठकर बैठ गया। फिर न जाने क्या सोचकर लेट रहा। वह क्षणिक प्रसन्नता, जिसे भारत शब्दने प्रदान करनेकी कृपा की थी, जाती रही। अब कुछ और ही विचार उत्पन्न होने लगे। क्यों न विचार उत्पन्न हों? दूधका जला मठा फूंककर पीता है। न जाने बिचारे युवकने कितनी बार धोखा खाया था। इस बार भी उसे धोखा खानेका सन्देह बना ही रहा। थोड़ी देर तक चुप रहकर युवकने फिर पूछा-"मैं अकेला ही हूं या मेरे साथियोंमेंसे कोई और भी बचा है।"

रमा०—तुम्हारी ही अवस्थाके दो मनुष्य और बचाये जा सके हैं।

युव०—क्या मैं उनको देख सकता हूं।

रमा०—अवश्य, क्या उनसे तुम्हारा परिचय है।

युवकने ठण्डी सांस भरकर कहा—"बिना देखे तो मैं कुछ कह नहीं सकता। परन्तु मुझे विश्वास है कि वे दोनों मेरे—" इतना कहते कहते युवकके नेत्रोंसे अश्रुधारा निकल पड़ी। थोड़ी देरके बाद कहने लगा-" जिस समय जहाज़ डूबने लगा था हम तीनों एक लकड़ीके तख्तेके सहारे तैरने लगे थे, परन्तु तख्ता इतना हलका था कि हम लोगोंके भारसे डूबने लगा। यह देख मैं तख़्तेसे अलग हो गया और खाली हाथ तैरने लगा। तख़्ता छोड़नेका एक कारण यह भी हुआ कि मैंने एक ग्राहको अपनी ओर बड़ी शीघ्रतासे आते हुए देख लिया। मैं नहीं कह सकता कि मेरे साथियोंने उसे देखा या नहीं। यह भी नहीं जानता कि वे तख़्तेको पकड़े हुए पानीके बहावके साथ किधर गये। कुछ देर तक तो मैं जलमें डूबडूब कर और तैर तैर कर अपनी प्राणरक्षा करता रहा और एक भालेसे, जो सौभाग्यवश मुझे तख़्ता छोड़ते ही जलमें बहता हुआ मिल गया था, समय समयपर उसे घायल भी करता रहा। अन्तिम वार मैंने ठीक उसी समय किया जब आप लोग उस स्थानपर पहुंच चुके थे। इसके पश्चात्की सब बातें आपको मालूम ही हैं। हां, यदि दोनों मनुष्य वास्तवमें वही मेरे दोनों मित्र बलबीर और विश्वनाथ हैं तो मैं कह सकता हूं कि ऐसे भीषण समयमें भी मैं संसारमें सबसे सुखी हूं।

सत्य है संसारमें जिस मनुष्यको एक भी सच्चे मित्रके मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसका जीवन सफल है और निस्सन्देह उसे संसारके सभी अलभ्य सुख प्राप्त हैं। परन्तु सच्चे मित्र मिलते कहां हैं। सच्चे मित्रोंका मिलना तो आजकल उतना ही कठिन हो रहा है जितना निराकार ब्रह्मका दर्शन।

युवककी बातोंके समाप्त होते ही ब्रह्मदेव फिर आ पहुंचा और रमाकान्तसे कहने लगा कि मीठा जल बहुत थोड़ा रह गया है और हम लोग स्थलभागके निकट पहुंच चुके हैं। यदि आज्ञा हो तो यहांसे जल भर लिया जाय। कुछ सोचकर रमाकान्तने कहा कि हां यहां दो चार दिन तक ठहरना ज़रूरी है।

रमाकान्तका इशारा पा ब्रह्मदेव चला गया और रमाकान्तने युवकसे पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है"।

युव०—मदन मोहन।

रमा०—और तुम्हारे साथियोंका नाम बलवीर और विश्वनाथ है?

युव०—जी हां।

रमा०—अब तुम्हारा चित्त कैसा है ?

युव०—बहुत अच्छा।

रमा०—कहीं चोट तो नहीं आई है।

युव०—जी नहीं।

रमा०—तुम अपने साथियोंसे अभी मिलना चाहते हो ?

युव०—(उठकर) जी हां।

रमाकान्तने एक मनुष्यको बुलाकर मदन मोहनको अपने साथियोंसे मिलनेके लिये भेज दिया। मदनमोहन उस मनुष्यके साथ ठीक उसी समय पहुंचा जब बलबीर और विश्वनाथ उसी-के सम्बन्धकी कुछ बातें कर रहे थे। मदनमोहन-को देखकर वे उठ खड़े हुए और एक दूसरेसे चिमट गये। जितनी प्रसन्नता इस समय इन मित्रोंको प्राप्त हुई उसका अनुभव अनुभवी पाठक स्वयं कर लें, क्योंकि इस लेखनीमें यह शक्ति नहीं कि उस प्रसन्नताके शतांशका भी भाव प्रकट कर सके। कुछ देरके बाद मदनमोहनने कहा कि परमात्माकी असीम कृपासे एक बार हम लोग फिर मिले। कोट कोट धन्यवाद है उस परमपिताको जिसने आज हम लोगोंको मिलानेकी कृपा की है। मदनमोहन परमात्माको धन्यवाद दे ही रहा था कि एक मनुष्य कुछ खाने-की चीज़ें और जलका एक पात्र लेकर पहुंचा। थाल और जल नीचे रखकर उसने कहा— "आप लोग भोजन करके थोड़ी देर तक आराम करलें। अभी एक बजा है। ठीक तीन बजे आप लोगोंको कप्तान साहबने बुलाया है।" इतना कहकर वह मनुष्य चला गया। यह तीनों मित्र भोजनो-परान्त कुछ देर तक आराम करके ठीक तीन बजे कप्तानके कमरेमें पहुंचे।

रमा०—मैं तुम तीनोंको देखकर बहुत ही प्रसन्न हूं। समय पाकर मैं तुम्हारी इस आश्चर्य्य जनक कहानीको भी सुनूंगा। उसी समय तुम लोगोंका विशेष परिचय भी मालूम होगा। इस समय मैं इस द्वीपके सामनेवाली पहाड़ीपर सैर करने जा रहा हूं। यदि तुम लोग चाहो तो चल सकते हो।

तीनों—हम लोग बड़ी प्रसन्नतासे चलनेको तैय्यार हैं।

रमाकान्तकी आज्ञानुसार डोंगियां खोली गईं और मदनमोहन बलवीर और विश्वनाथ को साथ ले रमाकान्त किनारे पहुंच गया। कोई डेढ मील ऊंची पहाड़ीपर चढ़नेपर सामने खुला हुआ मैदान मिला। मैदान और इस पहाड़ीके बीचमें लम्बे लम्बे वृक्षोंका एक घना जङ्गल था। पूरे एक घण्टेके सफ़रके बाद जङ्गलके निकट बहती हुई एक नदीके किनारे पहुंचे।

नदीका जल इतना साफ़ था कि जलके भी-तरकी बहुत गहराईतककी ज़मीन दिखाई देती थी। किनारेपर कहीं कहीं पत्थरके बड़े बड़े और चिकने टुकड़े पड़े थे। कप्तानने कहा-"इस स्थान-का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। यद्यपि मैंने संसार-के कोने कोनेको छान मारा तो भी ऐसा दृश्य मुझे कहीं देखनेको नहीं मिला। कई बार मैं इस स्थानपर आ चुका हूं, परन्तु जब मैं आता हूं तो मेरा चित्त यहांसे हटनेको नहीं चाहता"।

मद०—वास्तवमें है भी यह ऐसा ही स्थान। कुछ देर तक यहां बैठकर इस दृश्यका आनन्द लेना चाहिये।

"अच्छी बात है"—इतना कहकर रमाकान्त निकटके शिलाखण्डपर बैठ गया। रमाकान्त-के बैठते ही यह तीनों युवक भी बैठ गये। कुछ देर तक सबके सब टकटकी बांधे इस अनुपम बनकी शोभाको देखते रहे। न जाने इस दृश्य-को देखते देखते रमाकान्त क्या सोचने लगा। यकायक उसके मुंहसे निकल पड़ा-"धन्य हो जगदीश। मानव संसारसे विरक्त, सांसारिक सुखोंको धूलके समान समझनेवाले, राज्य-सुख तकको लात मारनेवाले, मणिमाणिक्यको ठीकरी-के समान समझनेवाले, स्त्री पुत्र, बन्धु, बान्धवों को त्याग नेवाले विरागियोंको फँसानेके लिये तुमने

इस शून्य स्थानमें भी इस स्वर्गीय दृश्यरूपी जालको बिछा रखा है।" इतना कहकर रमाकान्त उठ खड़ा हुआ। रमाकान्तके उठते ही मदनमोहन बलबीर और विश्वनाथ भी उठ खड़े हुए और सबके सब जहाजकी ओर लौटे। सूर्य्य भगवान अस्त हो चुके थे और चन्द्रमाकी ज्योति इस क्षुद्र पहाड़ी मैदान-में प्रसारित हो रही थी। ऐसे समयपर यह लोग समुद्रसे कोई एक मीलके अन्तरपर एक बड़े वृक्षके नीचे पहुंच गये। रमाकान्त आगे बढ़ा और मदन-मोहन बलबीर और विश्वनाथ एकही पंक्तिमें उसके पीछे थे। रमाकान्त आगे बढ़ा ही चाहता था कि पीछेसे बादलके गरजनेका बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ। साथ ही साथ आगेकी ओर कोई चार गज़के अन्तरपर धड़ाकेकी आवाज़ हुई। दूसरेही क्षण पीछेकी ओर फिर आवाज़ हुई। चारों ओर अन्धेरा छा गया। रमाकान्तने घबराकर जो पीछेकी ओर हाथ बढ़ाया तो मदनमोहन बलबीर और विश्वनाथका कहीं पता नहीं था।

[शेष फिर]

ताताका लोहेका कारखाना

[ले० अध्यापक दुर्गाप्रसाद, बी. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

कोक भट्ठोंसे गसादि पदार्थोंका बनाना

प्रत्येक कोक भट्ठेके ऊपरके भागमें एक नली लगी हुई है, जो थोड़ी दूर तक सीधी ऊपरतक जाकर एक बड़े पड़े हुए नलमें मिल जाती है। इन नलियोंको ऊर्ध्वगामी नली (ascension pipe) कहते हैं और उस नलको जिसमें यह नलियां जा मिलती हैं हैड्रोलिक मेन (hydraulic main) कहते हैं। ऊर्ध्वगामी नलि-योंका ऊपरी छोर हैड्रोलिक मेनमें भरे हुए जल-में डूबा रहता है। इससे यह लाभ होता है कि

Inbustrial chemistry औद्योगिक रसायन]

कोकभट्ठोंसे आनेवाली गैस तो पानीमें होकर निकल आती है, पर कभी उलटकर भट्ठेमें वा-पिस नहीं जाती। दूसरे किसी भी भट्ठेका सम्ब-न्ध जब चाहें तोड़ सकते हैं, क्योंकि ऊर्ध्वगामी नलियां पानीमें डूबी रहती हैं। उनको कोक भट्ठे-से अलग करनेमें बाकी समस्त यंत्रोंके कार्यमें बाधा नहीं पड़ती। हैड्रौलिक मेनमें ढिबरियां भी लगी हैं, जो किसी भट्ठेका सम्बन्ध हैड्रो-लिक मेनसे टोड़ते समय काम आती हैं। जब जब कोक भट्ठोंमें कोयला देना होता है या उन-की मरम्मत बगैरा करनी पड़ती है, तो इन्हीं ढिबरियोंको बन्द कर देते हैं।

ऊर्ध्वगामी नलियोंसे गैसें आकर हैड्रोलिक मेनके जलमें होकर निकलती हैं। अतएव कुछ ठंडक पाकर, उनमें जो द्रवोंकी भाप रहती हैं, द्रव रूपमें परिणत हो जाती हैं। यहांसे गैसें एक बड़ी लम्बी नलिकामें होकर निकलती हैं, जिसको कंडेन्सर (भभका) कहते हैं। नलीके लम्बे होनेका यही अभिप्राय है कि टार तथा अमोनिया-जल ठंडे होकर द्रव बन जायं और यहांसे जा-कर टार-कूपमें (tar well) इकट्ठे हो जायं। भभकेमें होकर गैस शुद्धिकारकोंमें (purifiers) जाती है, जहां उसमेंकी उज्जन गन्धिद (H_2S) अलग हो जाती है और तत्पश्चात् शुद्ध कोल-गैस गैस—भाण्ड में (gas-holder) जमा हो जाती है। आवश्यकतानुसार यहांसे ही गैस जाकर भिन्न भिन्न स्थानोंमें जलती है।

टार और अमोनिया

टार कूपमें जो द्रव इकट्ठा होता है, वह दो तहोंमें विभक्त हो जाता है। नीचे काला अलक-तरा (टार) भारी होनेसे बैठ जाता है। हलका अमोनिया-जल टारके ऊपर उतराने लगता है। यहांसे ही टार नीचेसे खींचकर टार-कुण्डमें (storage reservoir) भेज दी जाती है। इस कुण्ड में १५० टन (४२०० मन) टार अंटती है।

टार-कूपसे अमोनिया-जल अमोनिया-देगमें (ammonia still) जाता है, जहां भापद्वारा गरम किया जाता है और गंधकाम्लसे मिल कर अमोनिया गंधेत बना लेता है, जो खादके काम आता है।

गंधकका तेज़ाब बनानेका कार्यालय (Sulphuric acid plant)—

यह स्थान अमोनिया गंधेत बनानेके स्थानसे दक्खिन है। यहांपर गंधकाम्ल, गंधक (brimstone) जलाकर और इस प्रकार पैदा हुए गंधक द्विओषिदकी क्रिया नत्रिक अम्ल या नत्रजन एकौषिद, हवा और पानीसे कराकर बनाया जाता है। प्रत्येक घंटेमें डेढ़ मन गंधक और $1\frac{1}{8}$ सेर शोरा खर्च होता है।

कारखानेके बढ़ानेपर विचार करनेका दफतर (Greater extension department)—गंधकके तेज़ाब घरसे पूरब है।

तुला पुल (wieghing bridges) · कारखानेसे बहुत दूर पूरब दक्खिन और कालीमाटीकेरास्तेमें मालके तोलनेका पुल है, जहां मालसे भरी हुई गाड़ियां तोली जाती हैं।

यहां यह बतलानेको कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि भारत सरकारने इस कम्पनीके साथ कितनी रियायतें की थीं, क्योंकि विना सहायताके कम्पनीका चलना मुश्किल था। तो भी इतना बतला देना काफी होगा कि आरम्भमें भारत सरकारने प्रतिवर्ष ५६०००० मन इस्पातकी रेल्स लेकर बने हुए मालकी खपतकेलिए पूरी सहायता दी थी। परन्तु क्रमशः मालकी मांग इतनी बढ़ी कि अब जितने आर्डर आये हुए हैं, वह कई वर्षोंमें पूरे होंगे।

विक्री

१९१२ की ३० वीं जून तक ११२०००० मन (pig iron) लौहडिम्ब बिक चुके थे और उसी वर्षकी पहली अक्तूबर तक २८००८४० तक संख्या पहुंच चुकी थी। इसके अतिरिक्त इस्पात तथा ढलाईके कारखानेमें १७१३६० मन लोहडिम्बका व्यवहार किया गया था। उसी सालकी ३० वीं जून तक इस्पात (structural steel) की बिक्री १८४८० मन थी और पहली अक्तूबरतक ६४४०० मन थी। यहांसे माल पहले ब्रह्मा, स्ट्रेटसेट्लमेंन्ट, लंका, जावा, चीन, जापान, मनचुरिया, औस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैन्ड तथा अमेरिकाके संयुक्त प्रदेशको भेजा जाता था, किन्तु सं० १९१४ से स्काटलैण्ड इटली तथा फिलीपाइन द्वीपको भी जाने लगा है। रेल तथा फिश-प्लेट भारतवर्षके निम्न लिखित कम्पनियोंको दिये जाते हैं—ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलवे, बङ्गाल नागपुर रेलवे, नार्थवेस्टर्न रेलवे, ईस्टर्न बङ्गाल स्टेट रेलवे, आसाम बङ्गाल रेलवे, इत्यादि।

रिपोर्टोंकी आलोचना

अब मैं आप लोगोंका ध्यान कम्पनीकी रिपोर्ट-की ओर आकर्षित करता हूं। यद्यपि इसके सब वर्षोंकी रिपोर्ट मुझे प्राप्त नहीं हुई हैं, तथापि जो प्राप्त हुई हैं उनसे ही कुछ बातें आपके सामने पेश करूंगा, जिससे आपको इस कारखानेका महत्व मालूम हो जायगा। इससे यह भी मालूम होगा कि यहां कितने मनुष्य काम करते हैं तथा किन किन पदार्थोंका खर्च किस परिमाणमें होता है।

आपको यहां यह बतला देना उचित समझता हूं कि यह वृहत् कारखाना केवल दश पांच वर्षोंके प्रयत्न तथा परिश्रमका फल नहीं है, वरन् श्रीयुत् जमसेत जी नसरवान जी ताताने १९३२ वि०से इस कामके अन्वेषकोंको भिन्न भिन्न प्रांतों, शहरों, गांवों और जंगलोंमें भेजा और तरह तरहकी बातें मालूम कीं। परन्तु अभाग्यवश उनके जीवनकालमें इसका आरम्भ नहीं हो सका। १९६२ वि०में यह कम्पनी दो करोड़ इकतीस लाख पिचहत्तर हज़ार-की पूंजीसे खुली। इतनी लागत लगाकर एक नूतन कारखाना खोलना एक मनुष्यकेलिये अत्यन्त साहसका काम था, इसलिये कम्पनीने बहुतसे

हिस्सेदार बना लिये। इसमें तीन प्रकारके हिस्से हैं, पहला (ordinary) साधारण हिस्सा दस रुपये का है। ऐसे हिस्सेदार दो लाख हैं और उनसे १½ करोड़ रुपया मिला। दूसरा हिस्सा १४०) रुपयेका छः रुपये सैकड़ेकी दरका है। इसमें ५०,००० चास हजार (preferential) रिआयती हिस्से हैं, जिनसे ७५ लाख रुपया जमा हुआ है। तीसरा हिस्सा (deferred) ३०) तीस रूपयेका है। ऐसे २२,५०० हिस्सेदार हैं। इनसे ६ लाख ७५ हजार रुपया संचित हुआ।

अब इस कार्य्यालयके मुनाफ़ेकी ओर ज़रा ध्यान दौड़ाइये। सं० १९६९-७० वि० की रिपोर्टसे मालूम होता है कि १९६९ में कम्पनीको २५१५७५ रुपया मुनाफा हुआ। सन् १९७० वि०में ८ लाख ५६ हजार और १९७१ वि० में २३ लाख मुनाफा हुआ था। १९७२ में २४ लाख ८३ हजार, ८८ रुपया हुआ और पहले वर्षोंकी बचती लगाकर २४९५-७६० रुपया हुआ था। इस बचतीसे ७,३३,६७९ रुपया मशीन आदिकी छीजन, मरम्मत, फरनीचर तथा फुटकर खर्चमें डाला गया था। और शेष १८३२०८२ रुपयेमेंसे डाइरेक्टरोंकी सम्मतिके अनुसार छः रुपये सैकड़ेके हिसाबसे ४३६००० रिआयती हिस्सेदारोंको मुनाफा दिया गया। ७५ रुपयेके हिस्सेदारोंको आठ रुपये सैकड़ा और ३० रुपयेवालोंको सैकड़ा पीछे २५ रुपयेके हिसाबसे मुनाफेमें १२९२३८३ रु० दिया गया था। बाकी ३१०९७ रुपया जमा रहा। गत वर्ष कोई १९ लाख-के लगभग मुनाफा हुआ था।

मज़दूर—१९५८-५९ वि० की वार्षिक रिपोर्टसे मालूम होता है कि १९५९ में ६३०० मनुष्य काम करते थे। किन्तु अगली सालकी रिपोर्ट देखनेसे मालूम होता है कि १९६० वि० में प्रतिदिन लगभग नौ हज़ार आदमी और औरतें काम करती थीं, जिनमें १३५ यूरोपियन अङ्गीकार पत्रके द्वारा (European covenanted hands) लाये गये थे और स्थानीय यूरोपियन कर्म्मचारियोंकी संख्या ५० थी। इनके अतिरिक्त और सब भारतवासी थे।

साकचीमें काम करनेवालोंके अतिरिक्त कम्पनी मनुष्योंको अन्य स्थानोंमें काम देती है। गुरुमासिनीमें २२००, मानपोसमें १९००, चोटिडिह और भेलाटांडमें १००० मनुष्य काम करते थे।

१९७२-७३ की रिपोर्टसे मालूम होता है कि ११,००० मनुष्य साकचीमें काम करते थे और इसके सिवाय ६००० मजदूर कोयला, लोहा, तथा डोलोमैटकी खदानोंमें काम करते थे। इस साल इनकी संख्या और भी अधिक है, क्योंकि कई नये विभाग खोले गये हैं।

आतिशी ईंटें (fire-bricks)—मैं पहले कह चुका हूं कि बहुतसी ईंटें विदेशसे आती हैं। १९७०-७१ वि० की रिपोर्टसे मालूम होता है कि लगभग १५ लाख ईंटें यूरोपसे मंगाई गई थीं। ईंटोंके आनेमें बहुत खर्च पड़ता था, इसलिये यहां-की ईंटोंका प्रयोग करनेकेलिये हर प्रकारके प्रयत्न किये जा रहे हैं। जापानसे आनेमें खर्चा कम पड़ता है, इसलिये वहींसे सिलिकन मिश्रित ईंटें मंगायी जाती हैं। आजकल वातभट्ठेके मैलसे चूना मिलाकर ईंटें बनायी जाती हैं, जिनका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूं। (open hearth furnaces) इस्पातके खुले भट्ठेसे निकले हुए मैलकी मैदाका खेतमें खादकी नाई प्रयोग करनेका प्रयत्न हो रहा है।

पत्थरका कोयला १९७०-७१ वि० की रिपोर्टसे पता चलता है कि भेलाटांडकी खदानसे ४४,५०० टन कोयला निकाला गया था, जिसमें ४,२७० टन कारखानेमें खरच हुआ और बाकी बेच दिया गया। इस खदानसे महीनेमें अधिकसे अधिक ५,२९० टन कोयला निकलता था और औसतसे प्रतिमास ३७०० टन निकलता था। मलकेरा—चोटिडिह-की खदानसे आनेवाले कोयलेके सिवाय ३७०१०० टन कोयला दूसरे स्थानोंसे मंगाया गया था। उसी साल (coke ovens) कोककी भट्टियोंमें

२१०,१० टन कोयला जला था, गैसोत्पादकमें (gas producer) ६४,५२० टन और बैलर तथा इञ्जनोंमें २४,४०० टन कोयला जला था।

लोह पत्थर (Iron ores)—गुरुमासिनीकी खदानसे २५५.४० टन लोहेका पत्थर आया था, जिसमेंसे २३६५२१ टन वातभट्टा और स्टील वर्क्समें खर्च हुआ था और बाकी १८८१९ टन भण्डारमें रख दिया गया था। इसी खदानसे ४२५० टन पत्थर बेच दिया गया था। (Lohra mines) लोहराकी खदानसे १७४२० टन पत्थर आया था, जिसमेंसे ७१७० टन स्टील वर्क्समें खर्च हुआ, शेष भण्डारमें रख दिया गया।

डोलोमैट (Dolomite)—पानपोसकी खदानसे ९८,४४० टन चालान हुआ, उसमें ९७,९५० टन साकची आया। ८७,४७०टन कारखानेमें खर्च हुआ और १०,४८० टन भण्डारमें रखा गया।

चूनेका पत्थर(Limestone)—जुकेहीकी खदान बन्द रहनेसे कटनीसे चूनेका पत्थर आया था। यहांसे माल आनेमें भाड़ा बहुत कम लगा। उस साल कारखानेमें ८०५० टन चूनेका पत्थर खर्च हुआ।

मंगनीज़ (Manganese)—बालाघाटसे ९९२० टन मंगनीज़का पत्थर आया था, जिसमेंसे ६९०० टन खर्च हुआ था—बाकी जमा रखा गया।

पहले गुरुमासिनी गाड़ी नहीं जाती थी किन्तु जब कम्पनीको लोहेका पत्थर वहां मिला तो बी. एन. रेलवेने कालीमाटीसे वहांतक एक ब्रैंच लैन खोल दी है। इसीलिये स्थानीय कम्पनीने अपनी एक खास साइडिंग तथा यार्ड ट्रैफिकके लिये कालीमाटी स्टेशनपर बना रखा है, जहांसे माल कम्पनीकी गाड़ियों द्वारा कारखानेमें लाया जाता है। कारखानेके भीतर ही भीतर सब जगह रेलवे लैन बनी हुई है, जिसकी लम्बाई करीब १५ मीलके है और हरेक विभाग रेल तथा साइडिंगसे जोड़ दिया गया है।

१९७३ वि० में कम्पनीके पास छः बड़े बड़े रेलके इञ्जन थे, जिनमेंसे पांच १४१४ अश्वबलके थे। कम्पनीके पास ४० स्टील वैगन्स, २ अमेरिकन और ४ अंग्रेज़ी क्रेन और बहुतसे लेडल तथा ट्रक्स हैं।

[असमाप्त]

गंधकाम्ल

[ले०—प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम० ए०]

संवत १८७४ में अर्थात् ठीक सौ बरस पहले सर हंफ्री डेवीने गंधकाम्लको प्लाटिनमकी रीतिसे बनानेकी प्रथा निकाली। गंधकद्विओषिद जो गंधकके साधारणतः जलनेसे बनता है ओषजनके साथ साथ जब एक ऐसी नलीसे होकर निकलता है, जिसमें प्लाटिनम-विकीरित-अस्बेस्टस नामक पारस आंचसे तप रहा हो, तो द्विओषिदके अणुओंसे एक एक परमाणु ओषजनका और मिलता जाता है जिससे गंधक त्रिओषिद बनकर नलीकी दूसरी ओरसे निकलता है। यह त्रिओषिद जलसे इतना शीघ्र मिलता है और इतना प्यासा होता है कि यदि द्विओषिद और ओषजन विशेष रीतिसे सुखायी न गयी हों तो उनकी नमीसे ही मिलकर तुरन्त गंधकाम्ल बन जाता है।

$$\text{ग ओ}_2 + \text{ओ} = \text{ग ओ}_3$$

$$\text{ग ओ}_3 + \text{उ}_2 \text{ ओ} = \text{उ}_2 \text{ ग ओ}_4$$

(जल) (गंधकाम्ल)

प्लाटिनम नामक धातुका लवण जलमें घुलाकर उसी घोलमें अस्बेस्टस नामकी खनिज रुईको भिगोकर निकाल लेते हैं। अत्यन्त तीव्र आंचमें इसे ताव देनेसे इसके रेशोंपर प्लाटिनम धातुके परमाणु अत्यन्त विकीरित दशामें रह जाते हैं और हरिण गैस उड़ जाती है। प्लाटिनमकी अत्यन्त विकीरित दशा होनेसे उसके परमाणुके तल

[Industrial chemistry औद्योगिक रसायन]

कुछ ऐसी विचित्र क्रिया करते हैं कि द्विओषिद्को ओषजनके एक और परमाणुसे युक्त करके त्रिओषिद बना देते हैं। इस क्रियाका रहस्य अभीतक वैज्ञानिकोंपर पूर्णतया नहीं खुला है। इस विचित्र क्रियाको स्पर्श-क्रिया कहते हैं और प्लाटिनम विकीरित-अस्बेस्टसको पारस कहते हैं। उपर्युक्त प्रक्रियामें यह देखा गया कि वायुके ओषजनके साथ ही नत्रजनके रहनेसे अधिकांश द्विओषिद ज्योंका त्यों बाहर निकल जाता है। इसी कठिनाईसे गंधकाम्ल बनानेमें बहुत कालतक इस रीतिका प्रयोग नहीं हुआ। जब संवत १ ८८ में फिलिप्सने इस रीतिको गंधकाम्ल बनानेमें बर्ता तो मालूम हुआ कि सफलता तभी होगी जब इस रीतिमें अनेक संशोधनोंका समावेश होगा।

पहले तो गैसोंको बिलकुल सुखा लेना आवश्यक है और राख मिट्टी आदि भी गैसोंमें मिलकर न जायँ। गंधक पैरैटी आदि जहां जलाते हैं वहांसे जो गैस भीतर प्रवेश करती है उसमें ६ प्रति सैकड़ा आवश्यकतासे अधिक ओषजन होता है। क्नीट्श नामक जर्म्मनने, जो अब इसी रीतिसे बना रहा है, यह देखा कि आवश्यकतासे अधिक हवा वा ओषजन जाने देनेमें कोई सुभीता नहीं है। उसने जो रीति निकाली उसमें पैरैटी-भट्टोंमेंसे निकलती हुई गैसोंको बहुत लम्बी नलियोंमें प्रवेश कराया जिसमें राख और धूल बिलकुल बैठ जायं। अन्ततः गन्धकाम्लमेंसे ही प्रवेश कराकर उसने उन गैसोंको सुखा डाला। इस सूखी गैसको पारसमेंसे स्पर्श करते हुए प्रवेश करानेसे द्विओषिदका त्रिओषिद बड़ी सफलतासे बनने लगा। परन्तु पारसकी शक्ति बड़े वेगसे घटने लगी। ठंडा करने अथवा गन्धकाम्लसे धोने छाननेसे भी कोई लाभ न हुआ। इसपर अनेक प्रयोग किये गये , जिनसे यह पता चला कि संखिया, पारा और स्फुरके विषोंसे पारसकी मृत्यु हो जाती है। फिर कामका न रहता है और न फिर जीवित किया जा सकता है। सुरमामूल, बिसमत, सीसा, लोहा और जस्तेसे भी क्रियावरोध हो जाता है, क्योंकि गैसोंके साथ यह धातु भी चली जायँ तो पारससे मिलकर उसे ऐसा ढक लेती हैं कि गैसोंकी पारससे भेट ही नहीं होती। कुछ हो सबसे अधिक हानिकर विष संखिया है, जिसका प्लाटिनमकी मात्राका १-२ प्रति सैकड़ा भी मौजूद रहना उसे नष्ट कर देता है और फिर उसे नीरोग करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। पर संखिया पैरैटिसके भट्ठोंसे आता ही है, क्योंकि यह गन्धक और पैरैटिसमें अवश्य थोड़ा बहुत मिला रहता है। इन सब वस्तुओंसे गैसोंकी सफ़ाई हो भी गयी तो अन्तमें गन्धकाम्लका, ज़रा ज़रा सा, सूक्ष्मरूपसे फैला हुआ , कुहरा फिर भी अन्तमें रह ही जाता है।

इन कठिनाइयोंके बचनेसे उपाय

इन कठिनाइयोंसे बचनेके लिए एक बहुत लम्बी ऊंची नलीके द्वारा गैसोंको ले जाने लगे। उस नलीसे सीसेकी एक नलिकावलीसे सम्बन्ध है जिसमेंसे होते हुए भट्ठोंकी गरम गैसें ठंडी होकर १००° श की हो जाती हैं। सीसेकी नलिकावलीसे गैसोंको शोध यंत्रोंमें होकर जाना पड़ता है, जिनमें भट्टी तथा मार्गमें निर्मित् गन्धकाम्ल रह जाता था। इन शोधकोंसे निकलकर गैसोंको बड़े तीव्र गन्धकाम्लपरसे जाना पड़ता है। तीव्र गन्धकाम्ल जलका इतना प्यासा होता है कि गैसोंको सुखा डालता है। यह सूखी गैसें अब प्रत्यक्ष और रासायनिक रीतियोंसे जांची जाती हैं; जब खरी ठहरती हैं तब पारस नलोंमें प्रवेश करने पाती हैं ।

प्रत्यक्ष जांचमें कई फुट लम्बी नलिकामेंसे गैसोंका एक स्तर देखते हैं कि धूल और कुहराका एकदम अभाव है या नहीं। तनिक भी धूल और कुहरेका होना गैसोंको अयोग्य कर देता है। रासायनिक जांचमें गैसोंकी धारा २४ या अधिक घंटोंतक जलमें प्रवेश कराकर अन्तमें जलकी परीक्षा मार्शकी विधिसे, संखियाके लिए, की जाती है। यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि भट्टों-

से चलकर मार्गमें लोहेकी नलियोंके भीतर ही गैसोंसे छूटकर गंधकाम्ल न जम जाय, क्योंकि लोहेको खा जानेके सिवाय लोहेकी क्रियासे गंध-काम्लसे मुक्त उज्जन संखियासे मिलकर एक गैस बनाता है, जो गैसोंमें मिलकर पारसको तुरन्त नष्ट कर देती है।

पैरैटिसके भट्ठोंमें कुछ न कुछ गंधक रहता ही है, जो साधारणतः गैसोंके साथ उड़ ही जाता है। इस गंधकमें भी संखियाका होना अधिक संभव है। इसलिए इसे भी दूर करना उचित है। परीक्षासे मालूम हुआ कि भट्ठोंमें जलकी भाफका वेगसे प्रवेश करा देनेसे गन्धक-के जल जानेमें सहायता मिलती है। साथ ही यदि कुछ गन्धकाम्ल मौजूद हुआ तो वह भी वहीं बैठ जाता है। इस प्रकार ठंडा करनेकी नलिकाओंमें खट्टी नहीं जमने पाती।

इन बातोंपर व्यवहारोंमें ध्यान देनेसे पारस-वाली रीतिसे गंधकाम्ल बनानेके लिए आवश्यक गैसोंका मिश्रण बड़ी मात्रामें तैयार हो सकता है, जो हानिकारक और विषैली वस्तुओंसे शुद्ध होता है।

आंचकी जांच

जब गंधक द्विओषिद ओषजनसे मिलकर गंधक त्रिओषिद बनाता है, इस क्रियामें ताप वहिष्कृत होता है।

गओ₂ + ओ = गओ₃ + ३२.२ कलारी

कलारी तापकी मात्राकी इकाई है। अर्थात् इस क्रियामें प्रत्येक अणु त्रिओषिदके बननेमें ३२.२ कलारी ताप बाहर निकलता है। इससे स्पष्ट है कि जब वह संयोग होता होगा पहलेकी अपेक्षा उस कार्य-क्षेत्रकी गरमी बढ़ जाती होगी। आंच तेज़ हो जाती होगी। साथ ही पारसकी क्रियाके समय द्विओषिदादि मिश्रणका पर्य्याप्त रीतिसे गरम रहना भी आवश्यक है। नहीं तो पारसकी क्रिया होगी ही नहीं। और क्रिया हो जानेपर वहिष्कृत ताप इतना प्रचंड हो सकता है कि समस्त कार्य्य-क्षेत्र आंचसे लाल हो जाय और तापके अत्याधि-क्यसे त्रिओषिद बनकर भी फिर फट कर द्विओ-षिद हो जाय, अर्थात् इस प्रकार

गओ₂ + ओ ⇌ गओ₃
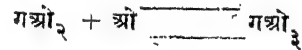
प्रतिकूल क्रिया भी होने लगे। त्रिओषिद ऊंचे तापमें, तेज़ आंचमें, टूटकर फिर द्विओषिद और ओषजनमें परिणत हो जाया करता है। साथ ही गंधकके यौगिकोंसे यंत्रके लोहेके हिस्से गल जाते हैं। सफलताकी दृष्टिसे इस आंचको मर्य्यादाके भीतर रखना अत्यावश्यक है। पुराने कारखानेमें ठंडी हवाकी धारासे इस आगकी गरमी बहुत बढ़-ने नहीं देते थे। परन्तु अब अलगसे ठंडी हवाका प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। अब वह गैसें जो भट्टीसे ही उठती हैं, ठंडा करनेका काम देती हैं और स्वयं इतनी गरम हो जाती हैं कि द्विओषिद बनानेके लिए गैस मिश्रणको अधिक गरम नहीं करना पड़ता। इस उद्देश्यसे पारस भरे पांच नल पासपास लगे होते हैं और इन नलोंके तंग घरमें बीचबीचमें आरपार परदे इसलिए लगे होते हैं कि जहांतक हो सके ठंडी गैसें नलों-को छूती और ठंडा करती हुई निकलें। गैसोंको इस तरह घूमघूमकर नलोंको ठंडा करना पड़ता।

पाठकोंको याद होगा कि गैसोंका मिश्रण जांचके लिए २४ घंटेसे अधिक रुका रहता है। इस बीचमें ठंडा भी हो चुका रहता है। अतः गरम करके ही इसे पारस नलीमें प्रवेश कराना इष्ट है। यह गरमी पारस नलीके द्वारा ही उनको पहुंचायी जाती है और पहलेकी क्रियाओंसे पारस नल गरम रहते ही हैं। इस तरह यह क्रिया निरन्तर एक चक्रमें हुआ करती है।

दिये हुए चित्रमें प या पारससे भरे नल हैं, जो ग नामक संकीर्ण यंत्रगृहमें लगे हुए हैं। प परदोंके द्वारा इनके चारों ओर चक्कर लगाकर गैसोंको घूमना पड़ता है, प्रवेश अ द्वारसे होता

है। पारस नलोंमें जानेके पहले गैसोंका भली भांति मिल जाना अत्यावश्यक है, जिसमें गरमीकी दशा सर्वत्र समान रहे। मिश्रण यंत्र म ढकना ड में लगा हुआ है। इसके पचपेचको राहमें दोनों ओरसे गैसोंके आनेसे मिश्रण पूरा होता है। गैसधाराके वेग और आंचकी जांचके लिए वेगमापक और तापमापक यंत्र भी ढकनोंके भीतर और अन्य स्थानोंमें भी लगे होते हैं,
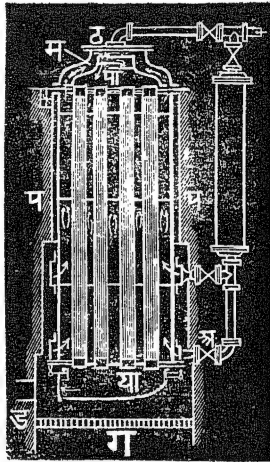
चित्र ४

जिनसे बराबर आंच और वेगका पता लगता रहता है। गैसकी भी जांच होती रहती है कि कार्य्य यथेष्ट रीतिपर हो रहा है वा नहीं।

पहले गैसकी लौ वाली आंचसे इस यंत्र भागको इतना गरम करते हैं कि ऊपरी ढकनेके तापमापकमें ३००° श पारा चढ़ जाता है। अब गैस बुझा देते हैं और गैसकी पूर्णधारा अ में प्रवेश करती है। पहले ढकना ड के भीतरकी आंच बढ़ती है। जब क्रियाके योग्य आंच हो जाती है यंत्रके ऊपरी भागका चोर ढकना खोल दिया जाता है कि गैसोंका एक भाग तुरन्त पारसनलोंमें प्रवेश करे। इन नलोंसे बाहर निकलनेवाली गैसोंकी परीक्षा की जाती है कि द्विओषिद कितना बचा। इससे सफलताका पता लगता रहता है। समस्त गैसधाराके दो तिहाई भागके लगभग अ मार्गसे ग यंत्रगृहमें प्रवेश करता और पारस नलोंके चारों ओर फैल जाता है और एक तिहाई सीधे ऊपरवाले ढ ढकनेमें पहुंचता है। मिश्रण यंत्रसे तापक्रम समान हो जाता है। इस समय लगभग ३८०° श के होता है। नीचेवाले ढकनेमें २३४° श के लगभग होता है। कारखानेकी एक वास्तविक क्रियामें, जिनसे ऊपरके सभी उदाहरण लिए गये हैं, द्विओषिद्का ९६ से ९८ प्रति सैकड़ेके लगभग परिवर्तन हुआ, जिसमें प्रति नल ४५ सेरके लगभग त्रिओषिद २४ घंटेमें बना। इसमें पांच पारस नल थे। अतः २४ घंटे में सवा दो सौ मन त्रिओषिद, वा पौने तीनसैमनसे अधिक गंधकाम्ल बना।

पारसनलके भरनेकी विधि भी ऐसी है कि यथाशक्ति गैसोंकी गति न रुके परन्तु पारससे स्पर्श भी अधिकसे अधिक हो। नलके भीतर बीचोंबीच एक लोहदंड रखते हैं। नीचेसे आरंभ करते हुए पहले इस दंडमें एक छोटीसी नली पहना दी जाती है। उसपर एक गोल छलनी रखी जाती है। इस गोल छलनीपर फिर एक छोटी नली दंडमें पहना कर, चारों ओर पारस पदार्थ भरकर, ऊपरसे फिर एक छोटीनली दंडमें पहनाकर रखते हैं। पूर्ववत् पारस पदार्थ भरकर फिर पहलेकी नाईं नली और छलनी रखते हैं। इसी प्रकार पारसनलको पूरा कर देते हैं।

अस्बेस्टस और प्लाटिनम दोनों ही व्ययसाध्य वस्तुएँ हैं। प्लाटिनम विना यह काम होना ही असंभव है। प्लाटिनम युद्धके आरंभमें ३२) तोलेके भाव था। युद्ध छिड़नेके पीछे ४८) तोलेतक भाव चढ़ा। फिर तो प्लाटिनमकी बिक्री ही रुक गयी। परन्तु प्लाटिनमकी मात्रा जो इस काममें आती है बहुत नहीं है।

अस्बेस्टसकी जगह भारियम गन्धेतका छिद्रमय कोष इस प्रकार बना सकते हैं। भारियम हरिद और अमोनियम गंधेतका घना मिश्रण अस्बेस्टसकी नाईं भरकर आंच देनेसे अमोनियम हरिद वायु रूपमें उड़ जाता है और भारियम गन्धेत बहुत छिद्रमय दशामें जमा रह जाता है। समीकरण यों है—

$$\text{भाह}_2 + (\text{अम})_2\,\text{गओ}_4 = \text{भागओ}_4 + 2\,(\text{अम})\,\text{ह}$$
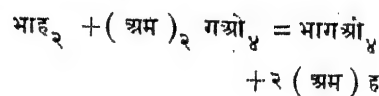
एक और भी किफ़ायत हो सकती है, यदि त्रिओषिदीकरण क्रिया दो बारमें की जाय। साधारणतः १०० भाग प्लाटिनम एक बारमें ६७ प्रति सैकड़ा [यदि हिसाबसे १०० निकलना उचित है] त्रिओषिद निकालता है। परन्तु १५ भाग प्लाटिनम ८० प्रतिसैकड़ा निकाल सकता है। यदि यह ८० प्रतिसैकड़ा जलशोषण द्वारा निकाल लिया जाय तो शेष २० प्रतिशतसे दूसरी बार वही क्रिया हो सकती है। यों $८० + \frac{२० \times ८०}{१००}$ अर्थात् ६६ प्रतिशत त्रिओषिद बन जायगा।

पारस पदार्थ अशुद्धियोंके कारण शक्तिहीन हो जाता है। इसकी शक्तिको पुनर्जागृत करनेके लिए लवणाम्ल वायुको अर्थात् उज्जनहरिदको किसी उदासीन कर्म्मण्यता हीन वायु जैसे नत्रजनके साथ बराबर तबतक प्रवेश कराते रहते हैं जबतक सब अशुद्धियां दूर न हो जायं और पारसमें फिर शक्ति न आ जाय।

त्रिओषिदका जलशोषण वा गंधकाम्लका बनाना उतना आसान नहीं है, जितना ऊपरसे मालूम होता है। जल वा हलके गंधकाम्लमें त्रिओषिदका बिलकुल घुला डालना अत्यन्त कठिन काम है। एक सेर त्रिओषिद जब पानीमें घुलता है ५०० कलारी ताप वहिष्कृत होता है। और साधारण हलके गंधकाम्लमें घुलानेसे [66 °Be] ३०० कलारी निकलता है। इतनी गरमीसे घुलनेमें क्या उपद्रव होता है यह देखनेकी ही बात है। इसीलिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि त्रिओषिद ६७–६८ प्रतिशत तेज़ गंधकाम्लमें घुलाया जाय। इतने तेज़ गंधकाम्लमें बड़ी जल्दी और बिना उपद्रवके घुल जाता है। परन्तु अधिक तेज़ीमें भी सुभीता नहीं है। अतः एक ही बर्त्तनमें यह क्रिया यों हो सकती है कि एक ओरसे तो त्रिओषिद आकर घुलता रहे और दूसरी ओरसे हलका गंधकाम्ल भी बहकर उसी पात्रमें आता रहे, जिससे त्रिओषिद सोखनेवाले गंधकाम्लकी तेजी निरन्तर ६७–६८ प्रतिशतकी बनी रहे।

दोनों रीतियोंकी तुलना करनेसे यह प्रकट होता है कि यदि कारखानेका उद्देश्य केवल शुद्ध गंधकाम्ल बनानेका है तो पारसवाली विधि अधिक किफायतकी पड़ेगी। परन्तु इसमें प्लाटिनमका प्रयोग अनिवार्य्य है और प्लाटिनम पारस ही ठहरा। आजकल लड़ाईके दिनोंमें सोनेके चौगुने भावपर भी नहीं मिलता। ऐसी दशामें सीसा घरवाली रीतिका ही अनुसरण संभव है। सीसाघरवाली रीतिसे हमारे देशमें कई जगह गंधकाम्ल बनता है। इसका वर्णन किसी और लेखमें किया जायगा।

वायमंडलमें गंधकाम्ल

यह बात भी जानने योग्य है कि पत्थरका कोयला जलानेसे एक अच्छी मात्रा गंधकाम्लकी बनकर उड़ जाती है। पत्थरके कोयलेमें थोड़ा बहुत पैरैटिस और तदर्थ गन्धक होता ही है। जहां कहीं यह जलाया जाता है, साधारण घरोंमें हो, कारखानोंमें हो, अथवा अंजनोंमें, गन्धक जलकर द्विओषिद और उसके ओषिदीकरणसे त्रिओषिद बनता ही है और वायुके जलसे गन्धकाम्ल हो जाता है। हिसाबसे मालूम हुआ है कि ढाई मन पत्थरके कोयलेसे ३ सेरसे अधिक गंधकाम्ल व्यर्थ ही उड़ जाता है। भारतवर्षमें पत्थरके कोयलेका उतना प्रचार नहीं है जितना इङ्गलैण्डमें। हिसाबसे मालूम हुआ है कि कोयलेसे विनिर्गत गन्धकाम्ल महाब्रिटेनमें पन्द्रह करोड़ साठ लाख मनसे अधिक प्रतिवर्ष हवामें उड़ जाता है। इस मात्राका समझना भी कठिन ही है। १ घन गज़ गन्धकाम्ल लगभग ३८·१५ मनके होता है। उपर्य्युक्त मात्रासे ८ गज़ चौड़ी दो गज़ गहरी नहर ११५ मीलकी दूरीतक लबालब भरी जासकती है। जितना गन्धकाम्ल कारखानोंमें बनाया जाता है कुल मिलाकर इस भयानक मात्राका दो तिहाई अंश होता है। बहुत दिन हुए डा० अंगस स्मिथने यह हानि भली भांति दिखायी

और यह भी समझाया कि इस गन्धकाम्लकी जल-के साथ वर्षा होनेसे शहरोंकी बड़ी बड़ी इमारतें कितनी जल्दी गलती जा रही हैं, परन्तु ब्रिटेन-वालोंने आजतक इस हानिपर ध्यान नहीं दिया है।

कुछ वृक्षोंकी चर्चा

[ले०—श्रीयुत लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव]

वृक्षोंसे संसारका बड़ा भारी उपकार होता है। यदि वृक्ष न होते तो मनुष्यों, पशुओं और संसारके समस्त प्राणियोंका जीवन निर्वाह होना बहुत कठिन हो जाता। वृक्षोंसे मनुष्यों और पशुओं दोनोंकी ही उदरपूर्त्ति होती है। अन्तर केवल इतना है कि पशुओंके लिए वृक्षोंके रूपान्तरोंकी आवश्यकता कम होती है और मनुष्योंकेलिये अधिक। पशुगण घास जैसे वृक्षोंको कच्चा ही खा जाते हैं और मनुष्य उनके रूपान्तरोंसे अनेक पदार्थ तय्यार करते और प्रयोगमें लाते हैं। पशुओंकी तरह वृक्षोंमें भी जान है। वे स्थान नहीं बदलते हैं। पेट न होते हुए भी उन्हें भोजनकी आवश्यकता होती है। पशु प्राणियोंकी तरह इनके जीवित रहनेकेलिए भी जीवनकी प्रायः सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनी पड़ती है। बीजकेलिये अच्छी खादकी उसी तरह अधिक मात्रामें होनेकी आवश्यकता है जैसे बच्चोंके-लिये अच्छे अच्छे भोज्य पदार्थोंकी। पशुओंके और वृक्षोंके भोजन और भोजन-विधिमें बहुत अन्तर है। पशु घास और अन्न जैसे पृथ्वी तलपर उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंको खाकर जीवन निर्वाह करते हैं। परन्तु वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा पृथ्वीसे खाद्य वस्तुओंको ग्रहण करते हैं और वायुमें मिली हुई कर्बनद्विओषिदको पत्तियोंसे चूसते हैं। जिस स्थानमें वृक्षोंके खाद्य वस्तुओंकी अधिकता होती है उस स्थानके वृक्ष हरे भरे और हृष्ट पुष्ट होते हैं। परन्तु जिस स्थानमें खाद्य वस्तुओंकी न्यूनता होती है उस स्थानके वृक्ष दुर्बल और सूखे हुए दिखाई देते हैं। बहुतसे वृक्षोंकी पत्तियां लम्बी और पतली होती हैं और बहुतोंकी कितनी हो छोटी छोटी पत्तियोंसे जुड़कर गोल हो जाती हैं। बहुतसे वृक्ष ऐसे हैं जिनकी पत्तियां खुरदरी होती हैं। और बहुतसे ऐसे हैं जिनकी पत्तियां चिकनी होती हैं। बहुतसे वृक्ष ऐसे भी हैं जिनकी पत्तियां दन्दानेदार होती हैं। कभी कभी ऐसा भी देखनेमें आता है कि बहुतसे वृक्षोंकी नर्म नर्म डालियोंके नीचेवाली पत्तियां जो ऊपरवाली पत्तियोंसे ढकी सी होती हैं, ऊपरवाली पत्तियों-की अपेक्षा उनके किनारे अधिक खुरदरे होते हैं। इसका कारण यह है कि ऊपरवाली पत्तियां खुली हवामें रहती हैं और नीचेवाली पत्तियोंकी अपेक्षा वायुमें मिली हुई कर्बनद्विओषिद गैसको सुगमता और अधिकतासे चूसती हैं। जल-वृक्षोंकी पत्ति-योंके किनारे भी अधिक खुरदरे होते हैं। इसका कारण यह है कि यह भी जलमें मिले हुए कर्बन-द्विओषिदको पान करती हैं। ह्वाइट बटरकप (white buttercup) एक जल-वृक्ष है। इसकी पत्तियां दो प्रकार की होती हैं। जो पत्तियां जलमें डूबी रहती हैं वह तो धागेके समान लम्बी और पतली होती हैं, परन्तु जो जलके ऊपर फैली रहती हैं वह सामान्य आकृतिकी होती हैं।

कितने ही वृक्ष ऐसे हैं जो दूसरे वृक्षों और दीवारोंकी सहायतासे वायुमण्डलमें फैलते हैं। इस कोटिके वृक्षोंकी जड़ें भूमिमें अधिक गहराईतक नहीं पहुंचतीं और इसी कारण इनको जड़ों द्वारा यथेष्ट भोजन प्राप्त नहीं होता। अधिकतर वायु मिश्रित आहारके ही भरोसे यह जीते हैं। मोसेस, लिचेन्स और फङ्गी (mosses lichens and fungi) कोटिके वृक्षोंकी जीवन लीला तो बड़ी ही अपूर्व है। इनका पृथ्वीसे कुछ सम्बन्ध ही नहीं होता, किसी वृक्षके सहारे चढ़ते

चले जाते हैं यहां तक कि उसके सिरपर चारों ओरसे फैल जाते हैं और केवल वायुमिश्रित भोज्य सामग्रीपर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। मिस्लटो (mistletoe) नाम की एक बेल यूरोप देशमें अधिक होती है। बड़े दिनके आनन्दमें यूरोपनिवासी नरनारी इससे अपने कमरोंको सजाते हैं। इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि कोई पक्षी इसका बीज अपनी चोंचमें लेकर किसी सेब या बलूतकी शाखा-पर जा बैठता है और वहीं इसे छोड़ देता है। बीज शाखाओं द्वारा पलते पलते फूट निकलता है और धीरे धीरे सहायक वृक्षपर बेलके रूपमें खड़ा हो जाता है। इसकी पत्तियां गहरे हरे रङ्ग-की और फल श्वेत वर्णके होते हैं। मिस्लटो (mistletoe) की कोटिके वृक्ष विशेषकर अपने ही उद्योगसे अपना पेट भर लेते हैं। ? परन्तु बहुतसे ऐसे भी वृक्ष हैं जो दूसरे सहायक वृक्षों की ही दानशीलताके सहारे अपनी प्राण रक्षा करते हैं। यदि सहायक वृक्ष निर्दयताका आश्रय ग्रहण करलें तो इन बिचारे भिखमंगोंके प्राण मृत्युके आनेसे पहले ही कूंच कर जांय।

इस कोटिके वृक्षोंमें वायुमण्डलसे भोज्य पदार्थोंके ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं होती। अपने सहायक वृक्षकी शाखाओंमें घुस पड़ते हैं और उनके चिर सञ्चित अमूल्य खाद्यके भोक्ता बन बैठते हैं।

भारत महासागरके टापुओंमें लम्बे लम्बे और दूर तक फैले हुए जो वृक्ष दिखाई देते हैं वह सब (Benzoin tree) लोबानके वृक्ष हैं। जब यह वृक्ष छः वर्षका हो जाता है तो लोबान निकालना आरंभ करते हैं। वृक्षकी छालको कुल्हाड़ियोंसे थोड़ी थोड़ी दूरपर काट देते हैं। इन्हीं कटे हुए स्थानोंसे लारके समान पानी जैसी पतली चीज़ निकलती है। सूख जानेपर इसे छुरीसे छुड़ा लेते हैं। दश या बारह वर्षकी अवस्थातक बराबर लोबान निकलता रहता है। एक वृक्षसे एक वर्षमें कोई तीन पौण्डकी तोलका लोबान निकलता है। पहले तीन वर्षोंका निकाला हुआ लोबान सबसे क़ीमती होता है। इसे 'हेड बेनजोइन' (Head Benzoin) अर्थात् प्रथम श्रेणीका लोबान कहते हैं। दूसरे तीन वर्षोंका निकाला हुआ पहलेकी अपेक्षा कुछ मैला होता है। इसे बेली बेनजोइन' (Belly Benzoin) अर्थात् द्वितीय श्रेणीका लोबान कहते हैं। तृतीय श्रेणीका लोबान वृक्षके कट जानेपर निकलता है। इसे 'फुट बेनजोइन' (Foot Benzoin) कहते हैं। यह काले रङ्गका होता है और बहुत थोड़ा निक-लता है। श्याम देशका लोबान सबसे अच्छा समझा जाता है। यह दो प्रकारका होता है। पहले प्रकारका बादामके छिलकेके अग्रभागकी तरह चौड़ा और गोल होता है। इसे 'टियर बेन-जोइन (Tear Benzoin) अर्थात् अश्रु लोबान कहते हैं। दूसरे प्रकारका इन्हीं बूंदोंके आपसमें मिलकर बड़े बड़े गोल टुकड़े हो जानेसे बनता है। इसे 'लम्प बेन जोइन' (Lump Benzoin) अर्थात् खण्ड लोबान कहते हैं। अश्रुलोबान पीला तथा लाल-भूरे रङ्गका होता है। खण्ड लोबान कुछ मटीले रङ्गका होता है। इस द्वीपके लोबानमें श्याम देशवाले लोबानकी तरह सुगन्धि नहीं होती। श्याम देशके लोबानको किसी दूसरे देश-में जाकर बिकनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसका कारण यह है कि रूस देशके ग्रीक चर्च के धर्मावलम्बी यहीं दूने चौगुने दाम देकर खरीद लेते हैं। इस द्वीपका लोबान भूरे रङ्गका होता है और बड़ी बड़ी बूंदोंसे जुड़ कर बना रहता है। इसका आकार चौकोर होता है। इसमें बहुतसी गन्दी वस्तुएं मिली रहती हैं। कभी कभी लकड़ी-के छोटे छोटे टुकड़े चिपके हुये दिखाई देते हैं। लोबानमें प्रायः तीन प्रकारके द्रव पदार्थ मिले रहते हैं। साधारणतः तोलके प्रति सैकड़ा बारह से अठारह भाग तक लोबानाम्ल (Benzoic acid) मिला रहता है। सिनामिक एसिड (cinnamic-

acid) का अंश भी सम्भवतः इतना ही मिला रहता है। एक और भी मैले प्रकारका द्रव इसमें सम्मिलित रहता है ; परन्तु इसकी मात्रा बहुत कम होती है। कभी कभी इसमें सिलारस (Storax) के सुगन्धित तेलकी भी कुछ मात्रा मिली रहती है। इस द्वीपसे प्रति वर्ष कोई अट्ठाइस हज़ार मन लोबान बाहर भेजा जाता है। लोबान विशेषकर धर्म सम्बन्धी कार्योंमें खर्च होता है। सीनेकी बीमारियोंकी प्रायः सभी दवाओंमें इसका कुछ न कुछ अंश अवश्य मिलाया जाता है। नर्म और पके हुए फोड़ोंपर और बड़े बड़े जख्मों के भरनेके लिये इसे और दवाओंके साथ मिला कर लगाते हैं। इसमें मांस और चर्बीकी सड़न रोकनेकी आश्चर्यजनक शक्ति है।

न जाने परमात्माने इस संसारमें कैसे कैसे अजायबात पैदा किये हैं। उनकी रचना बड़ी विचित्र है। इस सृष्टिके अणुमात्रका भी पूरा पूरा हाल जान लेना मानव-शक्तिके बाहर है। कितने ही वृक्ष ऐसे भी हैं जो केवल कीड़े मकोड़ों तथा पशुओंका मांस भक्षण करके जीते हैं। मांसाहारी कोटिके वृक्षोंमें पिचर प्लैन्ट (Pitcherplant) ब्लैडर वर्ट (Bladderwort) बटर वर्ट (Butterwort) और सनडिउ (Sundew) बड़े नामी वृक्ष हैं। ब्लैडरवर्ट (Bladderwort) यूरोप महादेशके दलदली सरोवरोंमें उगता है। इसके शरीरका अधिक भाग सदा जलसे ढका रहता है। गर्मीके दिनोंमें जिस समय इसमें कलियां आती हैं भली भांति दिखाई देने लगता है। इसमें जड़ें नहीं होतीं केवल लम्बी और पतली पतली शाखाएँ होतीं हैं। शाखाओंमें तागेके समान पतली और लम्बी पत्तियां होती हैं। इन पत्तियोंमें छोटी छोटी और पतली कितनी ही थैलियां होती हैं। हर एक थैलीके सिरेपर एक छोटा छेद होता है। छेदके मुंहपर पतले पतले बालोंकी झालर लगी होती है। पर झालर भीतरकी ओर होती है और जलकी गति बिधिके साथ भीतरकी ओर नीचे ऊपर हुआ करती है। कितने ही छोटे छोटे जीव तमाशा देखनेके लिये छिद्र द्वारपर पहुंच जाते हैं और कौतुकवश भीतर कूद पड़ते हैं। कुछ देरके बाद घबराकर हाथ पैर पीटते पीटते मर जाते हैं।

बटरवर्ट (butterwort) भी ठीक इसी तरह कीड़ोंको फंसाता है। यह जङ्गली दलदलोंमें उगता है। इसकी पत्तियां चपचपी लसदार और हलके नीले रङ्गकी होती हैं। फल लालरङ्गका होताहै। छोटे छोटे कीड़े रेंगते रेंगते इन पत्तियोंतक पहुंच जाते हैं और इनकी लसमें फंसकर छटपटाने लगते हैं। परन्तु ज्यों ज्यों ये छटपटाते हैं त्यों त्यों पत्तियां सिकुड़ती जाती हैं। यहांतक कि सिकुड़ कर एक छोटेसे गेंदके आकारकी हो जाती हैं। बेचारे कीड़े इनके भीतर घबराकर प्राण त्याग कर देते हैं। जब इनके शरीरका रस पत्तियां चूस लेती हैं तो फिर नये शिकारकी ताकमें खुल जाती हैं।

सनडिउ (sundew) भी दलदली स्थानोंमें पैदा होता है। इसकी पत्तियां हलके लाल रङ्गकी होती हैं। इन पत्तियोंके ऊपर बहुतसे बाल होते हैं। बालोंके सिरोंपर ओसकी बूंदकी तरह कोई वस्तु होती है। इसी बूंदके कारण इस वृक्षको 'सनडिउ' कहते हैं। छोटे छोटे कीड़े जब इस बूंद तक पहुंचते हैं तो इसीमें चिपक जाते हैं। इनके चिपकते ही बाल चारों ओरसे उठकर इन्हें घेर लेते हैं और कीड़ोंका प्राण हरण कर, उनके शरीरका रस चूस, फिर ज्योंके त्यों हो जाते हैं।

२—तेल कहांसे और कैसे निकलता है ?

[ले० श्री धीरेन्द्रनाथ सिंह, एम. एस-सी.]

वानस्पतिक तेल पेड़ोंके बीज जैसे सरसों, मींगी जैसे बादाम, छाल जैसे जावित्रीसे निकाले जाते हैं। जान्तविक तेल या चर्बीभी रासायनिक दृष्टिसे तेल ही है और जन्तुओंके कलेजे, दिमाग, मज्जा, तथा शरीरके विविध भागोंसे तैय्यार की जाती है। जन्तुओंके शरीरोंसे स्नेह, दूध पसीने तथा मलके साथ भी, निकलते रहते हैं। मलका तेल आजकल प्रायः साबुन बनानेमें काम आता है और सभ्य समाजके मुखारविन्द तक पहुंच जाता है। तेल निकालनेके उपरान्त जो कुछ बचता है खादकी टिकियोंके रूपमें बेच दिया जाता है। मट्टीका तेल धरतीमेंसे निकलता है और नित्यके जीवनमें बहुतसे कामोंमें आता है।

यहांपर हम केवल वानस्पतिक और जान्तविक तेलोंके बनानेकी विधिपर विचार करेंगे।

हमारे देशमें बीज और मींगीका तेल प्रायः कोल्हूमें पेरकर निकालते हैं, परन्तु इस तरह तेल निकालनेसे बहुत कुछ तेल खलीमें ही रह जाता है। पाश्चात्य देशोंमें तेल दो तरहसे निकाला जाता है—(१) नये प्रकारके कोल्हुओंमें पेरकर या (२) रासायनिक पदार्थों या रसोंकी घोलनशक्तिके (घुलानेकी शक्ति) उपयोगसे।

देसी कोल्हू

कोल्हूके दो मुख्य अंग होते हैं। निचले भागको कोल्हू और ऊपरके भागको जाट कहते हैं। जाट ऊखल या कोल्हूमें ठसकर नहीं बैठता; किन्तु उन दोनोंके बीचमें कुछ स्थान रहता है, जिसमें बीज या मींगी डालकर पेरी जा सकती है। जाट मनुष्य या बैल द्वारा घुमाया जाता है। यह सीधा नहीं लगा रहता वरन् एक ओरको झुका रहता है, अतएव जब वह घूमता है तो सरसों

[Industrial Chemistry औद्योगिक रसायन]

आदि पदार्थ दबते हैं। पहले ढाई पावके अन्दाज़ सरसों छोड़ते हैं और निचले छेदको कपड़ेसे बन्द कर देते हैं। जब सरसों दबकर भीतरसे छेदको बन्द कर लेती है, तब कपड़ा निकाल लेते हैं और ढाई पाव सरसों फिर छोड़ देते हैं। छेदके नीचे ही एक घड़ा रख देते हैं जिसके मुंहपर एक डलिया रखी रहती है। इस डलियाको भौंकी कहते हैं। जो कुछ सरसों छेद द्वारा निकल आती है, वह भौंकीमें रह जाती है; तेल छनकर घड़ेमें भर जाता है।

स्पष्ट है कि इस तरह न तो सरसोंपर काफी दबाव ही पड़ता है और न पूरा तेल ही निकलता है। प्रायः सौ पीछे २० हिस्से तेल खलीमें ही रह जाता है।

बिदेसी कोल्हू

पाश्चात्य देशोंमें भी तेल दबाव द्वारा निकाला जाता है, पर उनके कोल्हू और ढंगके होते हैं। दो प्रकारके कोल्हुओंका आजकल प्रयोग किया जाता है:—

(१) एंगलो-अमेरिकन कोल्हू या पट्टा कोल्हू (anglo-american plate presses)
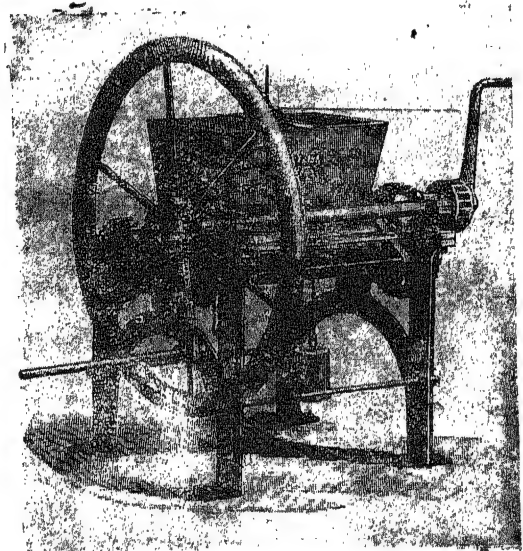
चित्र ५—बीज कुचलनेकी मशीन

(२) ऊखल कोल्हू (cage or cylinder presses) तेल निकालना

तेल निकालनेके लिए चार भिन्न भिन्न क्रियाएँ की जाती हैः—

(१) तेलिया पदार्थ पहले मशीनों द्वारा कुचला या पीस लिया जाता है। ऐसा करनेसे उसमेंकी छोटी छोटी तेलकी थैलियां टूट या फट जाती हैं। [देखो चित्र १]

(२) पिसा हुआ बीज गरम करते हैं, जिससे तेलके बह निकलनेमें आसानी होती है और एलब्यूमन भी अनुघुल हो जाता है।

(३) तदुपरान्त चूर्णको धीरे धीरे दबाते हैं, जिससे कोल्हुओंके लिए उपयुक्त रूपकी टिकया बन जाती हैं।

(४) अन्तमें उपरोक्त दो भांतिके कोल्हुओंमें-से किसीमें पेरकर तेल निकाल लेते हैं।

(१) एंग्लो--अमेरिकन कोल्हू या पट्टीकोल्हू

टिकियोंको कपड़ोंके थेलोंमें लपेट लपेट कर
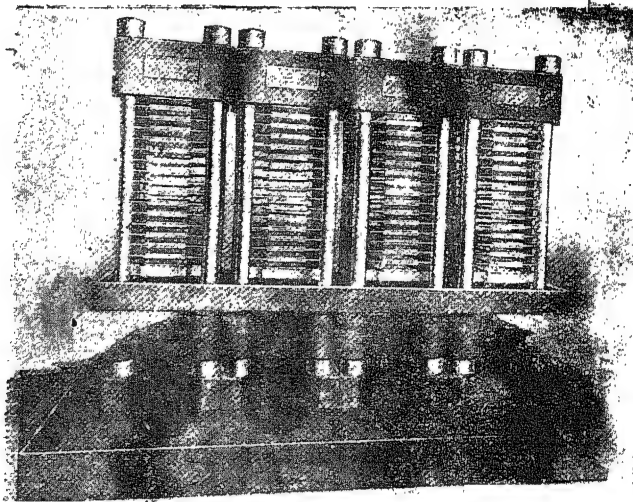
चित्र ६—एंग्लो अमेरिकन या पट्टी कोल्हू; चारवाटरी और तेल बहनेकी नाली।

पट्टियोंके बीचमें दे देते हैं। चित्र ६ से ज्ञात होगा कि ऐसी बहुतसी पट्टियां एक कोल्हूमें होती हैं। ऊपरकी पट्टीको नीचेकी ओर दबा कर या नीचे-वालीको ऊपरकी ओर उठाकर टिकयापर दबाव डाला जाता है। तेल निकलकर बहने लगता है और मशीनके नीचे कुन्डोंमें जमा होता रहता है।

(२) ऊखल कोल्हू [cage or cylinder presses]

बीजोंकी टिकियोंको बेलनाकार गोल पीपेोंमें भर देते हैं और ऊपरसे दबाव डालते हैं। पापेोंमें बहुत बारीक छेद रहते हैं, जिनमेंसे तेल तो बहुत सुगमतासे निकल आता है, पर बीज या खली नहीं निकलती।

उपरोक्त दो प्रकारके कोल्हुओंमें अन्तिम कोल्हू अच्छा माना जाता है। इसके कारण नीचे दिये जाते हैंः—

(१) दबाव बहुत दिया जा सकता है, अतः एक बारके दबानेसे ही सब तेल निकल आता है।

(२) कपड़ों या थेलोंके किनारोंमेंसे, पहले प्रकारके कोल्हुओंमें जैसा होता है, खली या बीज नहीं निकल आते

तेल निकालनेकी रासायनिक विधि

तेल कई (Organic liquids) आंगारिक द्रवोंमें घुलाये जा सकते हैं, जैसेः—

(Carbon-di-sulphide) कर्बन द्विगन्धिद, (Petroleum-ether) पेट्रोलियम ईथर, (Benzene) बेंज़ीन, (Carbon-tetra-chlorides) कर्बन चतुर्हरिद, (Chloroform) क्लोरो फोर्म, (Ether) ईथर, इत्यादिमें।

परन्तु यह याद रखना चाहिये कि केवल चार घोलकोंका ही व्यवहार होता है, क्योंकि अन्तिम दो बहुत महंगे होते हैं। इन घोलकोंका

कुछ वृत्तान्त इस लेखके अन्तमें दिया गया है। घोलकोंके प्रयोगसे तेल निकालनेकी दो विधि प्रचलित हैं, जिन्हें गरम और ठंडी विधि कहते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता हैः—

ठण्डी विधि

कुचले हुए बीज, गरम करके, ऐसे पीपोंमें रख दिये जाते हैं, जिनकी आकृति और बनावट चित्र ७ में दिखलायी गयी है। प्रायः ऐसे छः पीपे एक पंक्तिमें रहते हैं। इनके नीचेके भागमें क, ख टोंटी लगी होती हैं। इन्हींसे कुछ ऊपर ग एक छेददार तवा सा होता है। कर्बन द्विगन्धिद ख द्वारा इस पीपेमें प्रवेश करता है और ग के छिद्रोंमें होकर ऊपरकी ओर चढ़ने लगता है। ग पर ही बीज रखे जाते हैं, अतएव जैसे जैसे यह
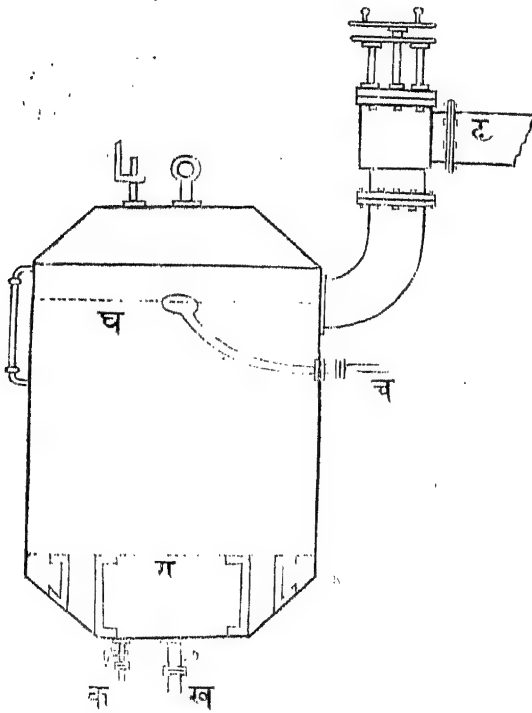
चित्र ७—ठंडी विधिद्वारा तेल निकालनेका यंत्र

ऊपरकी ओर चढ़ता है बीजोंका तेल घुला लेता है। जब द्विगंधिद, घ तक चढ़ जाता है, तो उसके छेदोंमें होकर ऊपरकी तरफ़ निकल जाता है। घ भी ग का सा छेददार तवा है और बीजोंका चूर्ण घ तक भरा रहता है। घ के ऊपर एक छोटी चलनी है, जो एक नल च के मुंहपर जड़ी है,कर्बन द्विगंधिद इसी चलनीमेंसे छन छन कर च के द्वारा दूसरे पीपेमें चला जाता है। वहांसे तीसरे में, तीसरेसे चौथेमें, इसी भांति छहों पीपोंमें, नीचेसे प्रवेश करके बीजोंका तेल घुलाकर ऊपरकी चलनीमेंसे छनकर, निकल जाता है।

इस प्रकार घोलक क्रमसे सब पीपोंमें नीचेसे आता है और थोड़ी देर रहकर ऊपरसे निकल जाता है। जब छठवें पीपेसे निकलता है, तो प्रायः ५० प्रतिशत तेल उसमें घुला होता है। अन्तमें पीपोंमें क नल द्वारा भाप आने लगती है। जो कर्बनद्विगंधिद बीजोंमें रह जाता है, वह गरम होकर और भापके साथ उड़कर द द्वारा निकल जाता है और लम्बी लम्बी नलियोंमें ठंडा हो कर फिर द्रव रूपमें जम जाता है। यह द्विगंधिद फिर काम आ सकता है।

जो द्विगन्धिद तेलको घुलाकर अंतिम पीपेसे प्राप्त होता है, वह एक और पीपेमें रखा जाता है और भाप-कुण्डली* द्वारा गरम किया जाता है। द्विगंधिद तो वाष्पमें परिणत होकर दूसरे बर्तनमें चला जाता है, और तेल उसी पीपेमें रह जाता है। अन्तमें भाप तेलमें होकर भी निकाली

*जब किसी द्रव पदार्थको १००°श तक गरम करना होता है, तब उसमें कुण्डलीके आकारकी एक नली डुबो देते हैं। इस नलीमें होकर जलकी भाप लगा तार निकला करती है। नलीका तापक्रम १००° हो जाता है और द्रव भी थोड़ी देरमें इस नलीकी गर्मीसे गरम हो जाता है और उसका ताप क्रम भी १००°श से कुछ कम हो जाता है। ऐसी नलीको भाप कुण्डली कहते हैं। इसके उपयोगसे द्रवमें पानी नहीं मिलने पाता और न द्रवका तापक्रम ही १००° से ऊपर जाता है। [अगले पृष्ठपर देखो]

जाती है, जिससे तेलमें जो कुछ द्विगंधिदका अंश रहता है वह भी निकल जाता है। †

गरम विधि

जिस यंत्रका इस विधिमें प्रयोग होता है वह चित्र ८ में दिखलाया गया है। जिस पदार्थमेंसे तेल या चर्बी निकालनी होती है (जैसे हड्डियां) वह अ,अ, पीपोंमें जालीदार तख्तों त,त पर रख दिया जाता है। इन पीपोंके निचले हिस्से च, च जब चाहें तब, भाप-कुण्डलियों (भ,भ,) द्वारा गरम किये जा सकते हैं। भापभी प,प, द्वारा अ,अ, के निचले हिस्सेमें प्रवेश कर सकती है।

पहले बेंज़ीन क, कुण्डमें भाप—कुण्डली द्वारा
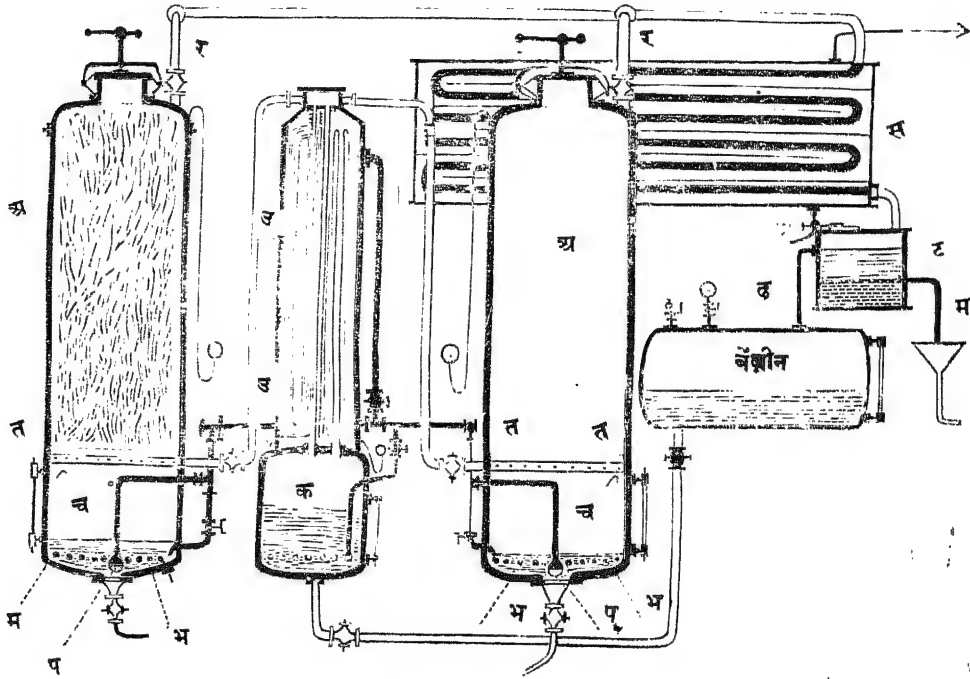
चित्र ८—गरम विधि द्वारा तेल निकालनेका यंत्र

गरम की जाती है। उसकी भाप ड,ड, भागमें उत्तस-भाप-कुन्डली द्वारा १३०° श तक गरम होकर न,न, नलियोंके बारीक छेदोंमें होकर अ,अ, में आ निकलती है और ऊपरकी ओर हड्डियोंमें घुसकर चर्बीको घुलाने लगती है। बेंज़ीनकी कुछ भाप तो चर्बीको घुलाकर ठण्डी हो कर द्रव बन जाती है और च,च, में इकट्ठी होने लगती है। च,च, में बेंज़ीन बराबर खौलती रहती है और बहुत मात्रामें इकट्ठी नहीं होने पाती। शेष भाप र,र, द्वारा बाहर निकल जाती है और स नलियोंमें पहुंच कर, जलकी ठण्डक पाकर द्रवति हो जाती है

†उपरोक्त भाप-कुण्डलीमें या अन्य किसी नलीमें लगी हुई किसी टोंटीके खोलनेसे भाप तेलमें होकर निकलने लगती है। यहांपर तेलमें, भापके ठण्डे होनेसे, पानी अवश्य मिल जायगा, पर पहलेकी अपेक्षा, जब भाप-कुण्डलीमें होकर जानेवाली भाप ही तेलको गरम कर रही थी, तापक्रम अधिक होगा। दूसरे जब भाप तेलमें होकर निकलेगी तो तेलमें खलबली पैदा कर देगी, जिसके कारण तेलका प्रत्येक अंश खूब गरम हो जायगा और कर्बन द्विगंधिदका लेश मात्र भी न बचेगा। किसी नैका (निगाली) एक छोर पानीमें डुबोकर दूसरे सिरेसे धीरे धीरे फूंकिये, देखिये फिर पानीमें भी ऐसी ही खलबली मचेगी, इस प्रयोगसे उपरोक्त कथनका सपष्ट ज्ञान हो जायगा।

और ट टंकीमें जमा हो जाती है। जो पानी हड्डियों-मेंसे निकलता है, वह भी स में आकर ठण्डा होकर ट में जमा होता है। अतएव पानी नीचे और बेंज़ीन ऊपर इस प्रकार दो तहें बन जाती हैं। ऊपरकी हलकी बेंज़ीन ढ, द्वारा क में पहुंच जाती है और जल म द्वारा बाहर निकल जाता है।

पाठकोंको स्मरण रहे कि बेंज़ीन ८०° श पर खौलने लगती है, अतएव इसकी भापका तापक्रम भी ८०°श ही होता है। इस तापक्रमपर हड्डियोंका पानी नहीं निकलता। इसीसे बेंज़ीनकी भापको उ,उ, में उत्तप्त-जल-भापसे उत्तप्त करके तापक्रम १२०° या १३०° श कर देते हैं। जब हड्डियोंमेंका सब जल निकल चुकता है और स, में आना बन्द हो जाता है, तब यह समझ लिया जाता है कि हड्डियोंकी सब चर्बी भी घुलकर च,च, में जमा हो चुकी है। उस समय बेंज़ीन का च,च, में आना बन्द कर दिया जाता है और प,प, द्वारा जलकी भाप च,व, में छोड़ी जाती है। यह चर्बी या तेलमेंकी बेंज़ीन भापमें परिणत करके उड़ा देती है। हड्डियोंमें भी जो अंश बेंज़ीनका बच रहता है, वह भी उड़कर, स में पहुंच, ठण्डक पा, जम जाता है।

अन्तमें च,च, से चर्बी या तेल निकाल लिया जाता है।

जो तेल घोलकोंकी सहायतासे निकाला जाता है वह खानेके काममें नहीं आता, क्योंकि इस तेलमें यदि लेशमात्र भी घोलक रह जायगा तो तेल विषैला हो जायगा। अधिकतर तैल-युक्त पदार्थोंसे पहिले दबाकर तेल निकालते हैं और फिर बचा हुआ तेल घोलकोंकी सहायतासे निकाल लेते हैं। ऐसा करनेसे खलीमें तेल बिलकुल नहीं रहता। पेरकर निकाला हुआ तेल खाने पीनेके काममें आता है और दूसरी तरहसे निकाला हुआ तेल साबुन बनानेमें काम आता है।

जानवरोंमेंसे चर्बी निकालना सरल होता है। जिन हिस्सोंमेंसे चर्बी निकालनी होती है उनके मशीनके द्वारा छोटे छोटे टुकड़े कर लेते हैं और उन-को थोड़ेसे पानीसे भिगोकर ३ या ४ रोज़तक सड़ा लेते हैं। बादको गरम करनेसे तेल आप हो बह आता है। इस तरहसे सड़ाकर निकले हुए तेल और चर्बीको खानेके काममें कम लाते हैं। खानेके लिये ऐसे हिस्सोंको, जिनमें बहुत अधिक चर्बी होती है और मांससे बिलकुल अलग कर ली जा सकती है, लेते हैं और चर्बी गलाकर अलहदा कर लेते हैं और अन्तमें ठण्डी कर जमा लेते हैं।

घोलकोंके कुछ भौतिक गुण

घोलकोंके भौतिक गुण भी जानना आवश्यक है, क्योंकि जिस पदार्थका प्रयोग करना पड़े उसके भौतिक गुण जाने बिना कभी कभी बड़ी हानि उठानी पड़ती है। रासायनिक गुण भी जान-ना बड़ा ज़रूरी है, पर तेल निकालनेमें घोलकोंके भौतिक गुणोंसे ही काम पड़ता है।

(१) कर्बन द्विगन्धिद कग$_2$ (Carbon di-sulphide CS_2)—यह एक तरल पदार्थ है, ४६° श पर खौलता है। यह पानीसे १.२६ गुना भारी होता है और बड़ी जल्दी आग ले जाता है। बाज़ारू कर्बन द्विगंधिदमें सड़े हुए अण्डोंकी सी दुर्गंध आती रहती है, पर शुद्ध कर्बन द्विगंधिद-में एक प्रकारकी मीठी गंध होती है। यदि बाज़ारू कर्बन द्विगंधिद सोडेके साथ गरम करके और
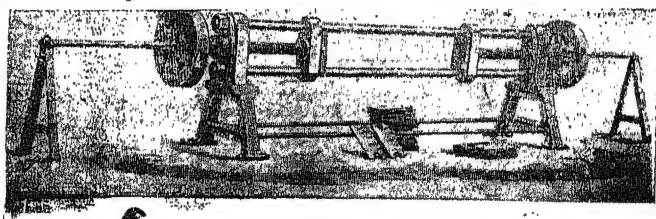
चित्र ६—रेंडीका तेल निकालनेका कोल्हू।
इससे दो घण्टेमें दो मन बीज का तेल निकल आता है। इसका मूल्य ३५०) है। बर्नएण्ड कम्पनी कलकत्ता से प्राप्य।

किसी वानस्पतिक तेलके साथ मिलाकर भभकेमें गरम किया जाय तो शुद्ध कर्बन द्विग-न्धिद पहले उतर आयगा।

(२) पेट्रोलियम ईथर—पृथ्वीसे निकलने-वाले मिट्टीके तेलके उस अंशको कहते हैं जो ८०° श और १२०° श के बीचमें भभकेमें उतरता है। स्पष्ट है कि इसमें ८०° श से १२०° श तकके उबालविन्दुकी चीज़ें मिली होती हैं। यह यौगिक नहीं है, बल्कि कई यौगि-कोंका मिश्रण है। कर्बन द्विगन्धिदसे यह सस्ता भी मिलता है और इसमें जल उठनेका खटका भी कम होता है, परन्तु तेलका यह इतना अच्छा घोलक नहीं है, जैसा कर्बन द्विगन्धिद होता है। तो भी दामके ख़्यालसे इसीका व्यवहार बढ़ता जाता है।

(३) बेंज़ीन ($क_६ उ_६$)–यह भी एक द्रव, जिसका उबाल बिन्दु ८०·५° श और घनत्व ·८७४

चित्र १०–बिनोला, अलसी, आदिका तेल निकालनेका यंत्र। मूल्य ७७०) "बर्नएण्ड कम्पनी कलकत्तासे" प्राप्य।

है। यह भी सहजमें ही आग ले जाती है। अधिक मूल्यवान होनेके कारण और केवल जर्मनीमें पाये जानेके कारण इसका व्यवहार केवल कुछ कीमती तेलोंके निकालनेमें होता है।

(४) कर्बन चतुर्हरिद ($कह_४$)–इसका उबाल-विन्दु ७६·५° श है। इसका घनत्व १·५८२ है। हड्डी और चर्बीमेंसे तेल इसीमें घुलाकर निका-लते हैं, पर इससे निकाले गये तेलमें इसकी बू रह जाती है। यह बू तेलमें होकर पानीकी भाप निकालनेसे दूर की जा सकती है।

(५) क्लोरोफार्म ($उक ह_३$) का रंग पानीका सा और इसका घनत्व १·५२५ होता है। इसका उबाल विन्दु ६१° से ६२° श होता है। इसमें आग नहीं लगती, पर बहुमूल्य होनेके कारण इसका भी व्यवहार बहुत कम होता है।

(६) ईथरका रंग पानीकासा; घनत्व ·७३१ और उबालविन्दु ३४·६° होता है। यह बहुत सहजमें जल सकता है। यह भी महंगा होता है। पानी और तेलके मिश्रणमेंसे, तेल अलग करने-में इसका व्यवहार किया जाता है।

बच्चोंके रोग

१—ज्वर

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद, भार्गव]

सच तो यह है कि ज्वर कोई रोग नहीं है, बल्कि उन उपायोंका परिणाम है, जो शरीर स्वास्थ्यरक्षाके प्राकृतिक साधनोंकी त्रुटियोंकी पूर्त्तिकेलिए करता है।

साधारण ज्वर तीन दिनके भीतर जाता रहता है। इस रोगके कारण जल वायुका सहसा परि-वर्तन, ठण्ड या गर्मीका लगना, आदि हैं। इसके लक्षण यह हैं—कपकपी मालूम हो, फिर गर्मी लगे, प्यास ज़्यादा हो, नाड़ी तेज़ हो, सरमें दर्द

Medicine वय क]

हो और हाथ पैर टूटते हों। इसकेलिए केवल एकोनैट का सेवन ही लाभकारी है।

यदि गलेमें खुरखुराहट और सिरमें और हाथ पैरोंमें दर्द हो तो दो दो घंटेके पीछे बैलेडोना देना चाहिये।

ब्राइनिया उस समय देना चाहिये जब कि सिर और हाथ पैरमें बहुत दर्द हो, कब्ज़ हो, नाभीके पास दर्द हो, रोगी बर्राता हो, प्यास अधिक हो और सर्दीके साथ बदन जलता हो, छातीमें दर्द हो, खांसी हो, और सांस लेनेमें तकलीफ़ होती हो।

दो दो घंटेके अन्तरपर इस औषधका और एकोनैटका सेवन कराना चाहिये।

इस प्रकारका ज्वर बच्चोंसे लेकर बुड्ढों तकको होता है और इसी कारण हमने यहां यह वर्णन किया है। अब हम सिर्फ़ उस ज्वरके विषयमें लिखते हैं, जो केवल बच्चोंको दूसरे वर्षसे लेकर पांच साल तककी उम्रमें होता है और जिसको स्कारलेटफीवर या स्कारलेटीना कहते हैं। यह ज्वर प्रायः रुधिरके दूषित होनेके कारण होता है। कभी कभी यह एक वर्षसे कम उम्रके बच्चोंको भी होता है, पर प्रायः दो वर्षसे बड़े और पांच वर्षसे छोटे बच्चोंको सताया करता है।

पांचवें और दसवें वर्षके बीचमें, यद्यपि यह बच्चोंको होता है, पर अधिक हानिकारक नहीं होता। यह ज्वर तीन प्रकारका होता है।

१—एक प्रकारके ज्वरमें लालदाने निकल आते हैं, गलेमें सुर्खी हो जाती है, परन्तु फलक आदि नहीं पड़ते। थोड़ा ज्वर रहता है।

२—दूसरी प्रकारको स्कारलेटीना ऐंगीनोसा कहते हैं और इसमें गलेमें ख़राश और गर्दनमें राद पड़ने लगती है और बुख़ार तेज़ होता है।

३—तीसरी प्रकारको स्कारलेटीना मैलिगना कहते हैं और इसमें दाने पूरे नहीं निकलते। कभी कभी तो दिखाई भी नहीं पड़ते या कभी निकलते हैं और गुप्त हो जाते हैं। दाने हल्के लाल रंगके कालापनलिये हुये निकलते हैं, गला काला पड़ जाता है। जीभ भूरी पड़ जाती है, नाकमें ज़ख्म पड़ जाते हैं, बहुत ज़ोरका बुख़ार होता है, दिमाग़में तकलीफ़ होती है, धीरे धीरे बर्राता है और बहुत हो कमज़ोरी आजाती है। इस प्रकारका ज्वर बड़ा भयानक होता है और उड़कर और बच्चोंको भी लग जाता है।

प्रायः यह रोग वहीं हुआ करता है, जहां मैली कुचैली नालियां होती हैं और बस्ती गुनजान होती है। यदि इसका इलाज सावधानीसे नहीं किया जाता तो रोगीकी मृत्यु हो जाती है। इस बीमारीके चिह्न नीचे दिये जाते हैं—

बुख़ार आनेके चार पांच दिन बाद गलेमें खुरखुराहट होती है। कपकपी लगती है। बदन गरम रहता है। सिरके सामनेके हिस्सेमें दर्द रहता है, उबकाई आती है, कभी कभी कै भी होती हैं, नाड़ी धीमी चलती है और ज़्यादा प्यास लगती है। कभी कभी नाड़ीकी चाल प्रति मिनट १४० तक हो जाती है। दो या तीन दिन बाद छाती, गर्दन, मुंह, जोड़ और अन्य अङ्गोंपर यहां तक कि तमाम बदनपर दाने निकल पड़ते हैं और देखनेमें, चमकदार लाली लिये होते हैं। अगर इन दानोंको दबाया जाय तो रंगत नहीं दिखाई देती, लेकिन फिर छोड़ देनेपर दिखाई देने लगती है। ये दाने धीरे धीरे मिटते जाते हैं और ५ दिनसे लेकर ९ दिन तक सबके सब मिट जाते हैं। जीभके ऊपर सफ़ेद भूरे रंगका मैल जम जाता है, लेकिन छोर और किनारे लाल रहते हैं। गलेकी खुरखुराहट बढ़ जाती है, बुख़ार कम हो जाता है, सुर्खी जाती रहती है, पसीना आने लगता है, कभी कभी नाकसे खून निकलने लगता है और दानोंकी खाल उतरने लगती है।

एकोनैट और बैलेडोना दो दो घंटेके अन्तरसे आरम्भमें देनी चाहिये। इससे बुख़ार, प्यास, बदनकी गर्मी और ख़ुश्की और दानोंका निकलना रुक जायगा। अगर तमाम बदनमें बेचैनी मालूम हो, दाने पूरे तौरपर न निकले हों और जलन होती हो तो जैलसिमियम देना चाहिये। अगर दिमाग़में दर्द, कै, नाड़ीमें तेज़ी मालूम हो तो बैलेडोना और विरेट्रम-विरीडी दो दो घंटेके अन्तरसे देनी चाहिये। अगर गलेमें खुरखुराहट हो, निगलनेमें तकलीफ़ होती हो, मुंहमें ज़ख्म हो, राद ज़्यादा बहती हो और नाकसे चरपरा पानी निकलता हो तो मरक्यूरियस देना चाहिये। यदि बहुत प्यास लगती हो, ठंडा पसीना निकलता हो, नाड़ी धीमी चलती हो, थकावट, दस्त, और जलंधरकी शिकायत हो तो आरसेनिकम देना चाहिये। जब मर्ज़ कमीपर हो और जाता रहे तो एक, दो खुराक सलफर की देनी चाहिये, क्योंकि इससे दूसरे और मर्ज़ नहीं होने पाते। इस स्थानपर उन रोगोंका भी कुछ वृत्तान्त दे देना उचित है, जो इसके बाद प्रायः हुआ करते हैं।

(१) गलेमें गिलटियोंका सूज आना—इसमें हैपर सल्फ, कैलकेरिया, या शिलेशिया का प्रयोग करना चाहिये।

(२) बहिरापन—इसमें औरम, पलसेटिला, या बैलेडोना देना चाहिये।

(३) जलंधर—इसमें पेशाब मैला और कम होता है और गर्म करनेसे गाढ़ा पड़ जाता है। स्कारलेटीनाका ख़तरनाक असर तब होता है जब बुख़ार छूटनेके १२ या १५ दिन पीछे ही यह ख़राबी पैदा हो जाती है। इसमें गर्म पानीसे नहाना लाभदायक है। पीनेकी दवा नीचे लिखी जाती हैं। एपिस, हिलीबोरसनिग, एपोसिनमकैन, डिजीटेलिस और आइनिया।

मरीजको अलग हवादार कमरेमें रखना चाहिये। इस कमरेमें ज़्यादा सामान न हो। अगर गर्मीके दिन न हों तो कोयले सुलगा कर कमरेमें आग रखी जाय और कोंडीज फ्लुइड और कार्बोलिक एसिड (Condy's fluid or Carbolic acid) खूब इस्तेमाल करनी चाहिये। गुन गुने पानीसे बदनको पोंछनेसे बेचैनी और गर्मी, बर्राना, नाड़ीकी चाल कम होती है और नींद आ जाती है। अगर गलेमें ख़राश हो तो गर्म पानीका भपारा लिया जाय और एक गीला कपड़ा गर्दनके पीछे और सिरके ऊपर इस तौरपर बांधा जाय कि कानके पीछेकी गिलटियां ढक जायँ। जब मर्ज़ जाता रहे तो गर्म कपड़े पहिनकर साफ़ हवामें नदी या समुद्रके किनारे टहलना चाहिये। खानेके लिये जब तक बुख़ार रहे दूध और सोडा-वाटर, दलिया, बिस्कुट, अंगूर, नारंगी वग़ैरा दी जायं। पीनेकेलिये ठंडा पानी, बार्लीका पानी और हल्का लेमनेड दिया जाय। लेकिन जब बुख़ार कम हो जाय तो दूध और हल्का खाना देना चाहिये। जब तक स्कारलेटीनाका असर रहे बैलेडोना लड़कोंको सुबह और शाम एक एक बूंद देना चाहिये। टिन्चर बैलेडोना देना ज्यादा अच्छा है या १x दे दिया जाय।

नोट—हर मनुष्यके बदनकी गर्मी ९८·४° रहती है। इससे अधिक गर्मी हो आनेको बुख़ार कहते हैं। १००°फा० तक बुख़ारकी गर्मी मामूली समझी जाती है। जब १००°फा० से बढ़कर १०४°फा० तक पहुंचे तो खराबीकी हालत मानी जाती है, हालां कि १०६°फा० तक बुख़ार होनेके बाद भी रोगी अच्छे हो गये हैं।

विज्ञानके पंचानंद ❀

[ले०—श्रीयुत 'नवीनानंद' शर्म्मा]

आहक अनुग्राहक महाशयो ! आज आपका विनोद करनेकेलिए न मालूम कितने हिंदीके पत्र भांडोंकी नक़ल करेंगे। जिधर देखिये उधर होलीके अवसर-पर लंबी लंबी नाक निकाले, पत्रसंपादकोंके पंचानंद मुंह सिकोड़कर, गाल फुलाकर, भौंहें तानकर, मूछें बढ़ाकर, सिर घुटाकर, अनेक अनेक सूरतें बनाकर, आपको एक बार हंसा देनेका प्रयत्न करेंगे। पर बिचारा विज्ञान क्या करे। आप समझते होंगे कि वह आपका दिमाग़ बेकाम करने भरको है। पर पाठको, कहीं धोखेसे ऐसी भूल न कर बैठियेगा। विज्ञानके पंचानंद इतने भरे पड़े हैं कि आप उनके कबीर सुनते सुनते घबड़ा उठेंगे। सच पूछिये तो विज्ञान सभी जीवोंको पंचानंद ही मानता है। जो पांच आनंद उठा सकें, जिनके पांच इंद्रियां हैं, वही सब पंचानंद हैं। इस दृष्टिसे तो हमारे सहयोगियोंके पंचानंदोंके दलमें बहुतसे घोड़े, गदहे, सुअर और बंदर आन मिलेंगे। उन्हें इनकी चपत, और दुलत्तियोंसे सावधान रहना पड़ेगा। इसपर हमारे सहयोगी कह बैठेंगे कि हमारे पंचानंद तो सीधे चलनेवाले हैं। यदि ऐसी बात है तो कृपा करके ज़रा शिम्पैंज़ी, गोरिला और अन्य प्रकारके बनमानुसोंसे इनकी सूरत मिलाइये। उनके हाव भावोंको देखकर आप एक नहीं हज़ार बार हंस हंस कर लोट पड़ेंगे। प्रकृतिके पंचानंदोंके सामने हमारे सहयोगियोंके पंचानंद मारे शरमके लंहगा ओढ़ना धारण करके घूमेंगे। अमेरिकाके नीग्रो तथा ताम्रवर्ण निवासी, शीत प्रदेशोंके रहनेवाले इसकीमो, अपने ही देशके भील संथाल और थारू तो मनुष्य जातिके ही हैं, आएँ कोई पंचानंद इनका सामना तो करें।

संभवतः अभी हमारे सहयोगी विज्ञानके पंचानंदसे हार स्वीकार नहीं करेंगे। वे कहेंगे कि हम तो सभ्य-समाजकी शिक्षित जनताका भी रूप बिगाड़ डालते हैं, तुम्हारे पंचानंद तो जङ्गलमेंसे पकड़ पकड़कर लाये गये हैं। विज्ञान ऐसे संपादकों और सज्जनोंसे अनुरोध करता है कि यदि उनके पास कोई गोल चमकती हुई टैम-पीस या लोटा हो तो उसकी गोलाईको कभी लंबी, कभी चौड़ी, कभी इधर और कभी उधर रख अपने ही स्वरूपका दर्शन कर लें। उठिये महाशय इस प्रकारसे अपना रूप एक बार देख तो लीजिये। आपसे फिर भी कहूंगा—"अवसि देखिये देखन जोगू। बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू।"

देखिये ! देखिये ! हमारे पाठकोंमेंसे जिनके दांत अनारके दानोंकी तरह हैं उनकी अब क्या दशा हो गयी है। वाह अब वे कैसे बढ़िया दीखते हैं, शायद शूर्पनखा और ताड़काके भी दांत ऐसे सुहावने न होंगे ! और वह सुवासित केश-पाश तो घास फूसकी झाड़ियोंसे भी अधिक सुंदर मालूम होते हैं। वाह ! मुंह कैसा ? कभी आड़े पड़े हुए अंडेकी तरह गोल गोल और कभी खड़े हुए अंडेकी तरह पर गोल ! गाल कभी फूलकर कुप्पे बन जाते हैं और कभी फुटबालके ब्लैडरकी तरह पिचक जाते हैं। आंखें कभी कभी तो गज़ों लंबी हो जाती हैं और कभी इतनी छोटी कि हाथी भी आपको देखकर हंस पड़े। नाकका कहना ही क्या है। वह तो मुंहपर आकर ऐसी अटक जाती है मानों कहींसे बड़ा भारी छप्पर खिसक पड़ा। आप चाहे कितने ही सुंदर क्यों न हों इस भेषकी एक तसवीर अपनी प्रिय-

* यह लेख मीनके अङ्कमें प्रकाशित होना चाहिये था, पर प्रेसकी गलतीसे कम्पोज़ ही न हुआ। खैर, अच्छा ही हुआ। हमें हर्ष है कि पं० नवीनानन्दजीके एक पूंछ और लग गई। आप इस वर्ष एम. ए. भी हो गये। अतएव द्वि पुच्छ भारी नवीनानन्दजीको बधाई देते हैं।-सं

[General साधारण]

तमाके पास अवश्य भिजवा दीजिये। फिर देखिये उसकी कितनी ख़ातिर होती है।

हां! ऊपर दी हुई तुलसीदासकी चौपाई उलट गयी। पर यदि एक नये खूब पालिश किये हुए प्यालेके भीतर आप अपने स्वरूपका दर्शन करेंगे तो आप कई जगह खुद ही उलटे दिखलायी पड़ेंगे। अब सच बतलाइये कि आपके पंचानंद क्या आपसे किसी अंशमें भी बढ़े चढ़े हैं।

आप अपने पंचानंद रोशनाईकी लकीरें खींच खींचकर बनाते हैं। प्रकृति अपने पंचानंद रोशनीकी लकीरें खींच खींचकर बनाती है। आपमेंसे जो स्वयं ही प्रकृतिके भंडारसे तो पंचानंद बन कर नहीं आये पर उससे बाज़ी लगानेको मुंह सिकोड़, आंख फोड़, दांत तोड़, लंबे लेट पंचानंद बन गये हैं उनसे समता देनेकेलिए प्रकृतिमें शिम्पैंज़ी, गोरिला और बंदर मौजूद हैं।

फिर विज्ञानकी दृष्टिसे तो मनुष्य मात्र ही पंचानंद हैं, क्या हम और क्या आप! इन पंचानंदोंके झरोखे हैं, खिड़कियां हैं, कल हैं कारखाने हैं, यह व्यवसाय करते हैं, इनके रोज़गार होता है, इनके खेती होती है। कहां? शरीरके भीतर ही, बाहर न समझ बैठियेगा। विज्ञानमें पंचानंदोंकी कहानी बड़ी ही लुभावनी है। और पत्रोंके पंचानंद तो कभी कभी अपनी कहानी सुनाकर ही थक जाते हैं, पर प्रकृतिके पंचानंद करोड़ों बरसतक लाख लाख मुंहसे भी अपनी कथा सुनाकर पूरी नहीं कर सकते। कहिये क्या आप उनकी कुछ कथा सुनना चाहते हैं? यदि ऐसा है तो विज्ञानके अगले अंकोंकी प्रतीक्षा बड़े चावसे कीजियेगा। बाबू रामदास गौड़ने एक पंचानंदको अपनी कथा इसी साल सुनानेको फांसा था, पर वे हाथसे निकल गये। अब आशा है कि शिक्षित लोकारण्यका कोई बनमानुस पंचानंद पकड़ आयेगा। यदि ऐसा न हुआ तो भी नवीनानंद ही फिर अपना ख़ज़ाना खोल देंगे।

अच्छा, यह तो हमारे पंचानंदका परिचय हुआ। आपकी इच्छा हो तो उनके कुछ कबीर भी सुन लीजिये। श्री नवीनानंद इन कबीरोंको पद्यमें भी सुना सकते हैं, पर अपने पाठकोंको टिप्पणी सहित इन कबीरोंका भावार्थ गद्यमें देना ही उन्हें उचित प्रतीत होता है।

अच्छा, तो सुनिये।

(१)

हवासे बातें करनेवाले, सिर ऊंचा कर चलनेवाले, पुच्छ-धारियोंके मुकुट-मणि, हे जीवश्रेष्ठ आप मेरा कबीर सुनिये। जब कभी आप अपने भाइयोंकी हंसी उड़ाते हैं तो आप उनको जानवरोंकी उपाधि देते हैं। दो मित्रोंके प्रेमकी हंसी उड़ानी होती है तब आप कह बैठते हैं कि अमुक अमुककी दुममें घुसे जाते हैं, अमुककी दुम निकल आयी इत्यादि। पर सच तो कहिये क्या आपके दुम न थी? प्रकृतिने अपनी झाड़ूसे आपकी दुम झाड़ दी, पर इससे दुमदारोंकी श्रेणीसे अलग नहीं हुए हैं। अतः हे पुच्छ-धारी मनुष्य देव, आप दूसरोंकी पूंछकी हंसी न उड़ाया कीजिये। यदि आपको इस बातका विश्वास न हो तो आपके समान ही पुच्छधारी प्रोफ़ेसर करमनारायणका 'विकाशवाद' पढ़ लीजिये।

(२)

अधरमें उलटे लटकनेवाले जीवराज जब आप किसीके उत्पातका वर्णन करते हैं तब चट यह कह बैठते हैं कि वह तो "सरके बल चलता है," पर सच कहिये आप सरके बल नहीं चलते तो किसके बल चलते हैं, कहिये तो आपका सर उड़ा दिया जाय। पर आप शायद सरके बल चलनेसे उल्टा चलनेका अर्थ निकालते हैं। यदि ऐसा ही है तो क्या आपका सिर ऊपर और पैर नीचे हैं? यह भ्रम आपको किसने दिलाया है। विज्ञानके पंचानंदी वैज्ञानिकोंका मत है कि आप उल्टे ही उल्टे चलते हैं। आपके नेत्रकी रचना ही ऐसी है जो

उलटेको सीधा बना देते है। अध्यापक महेश-चरणजीने नेत्र रचनापर एक लेख भेजनेका बचन दिया था। यदि वह लेख आजाता तो आप इस बातको भली भांति समझ जाते। अब भी आशा है कि "प्रकाश" पर लेख देनेवाले होलीके कन्हैया हमारे ब्रजराजजी अपने उलटे चलनेका प्रमाण आप लोगोंको शीघ्र ही देंगे।

(३)

हे पंडितराज, हे फलाहारी आप सौ सौ हत्या करके गङ्गा नहाने जाते हैं। आप जीवहत्या तो करते ही हैं, पर नरहत्याका पाप भी आपके सर है। हे महाराज, विज्ञानके पंचानंदी कबीरदासका यह वाक्य है कि "जीवहि जीव अधारा" की जगहपर 'मनुजहि मनुज अधारा' कहना अधिक अच्छा होगा। आप जो आज पंचानंदी खेल रच रहे हैं वह मनुष्यका मांस खा कर। शायद आप पूछेंगे कि यह मनुष्यका मांस आता कहांसे है? यह आपके ही शरीरसे आता है। बेचारा पाचन यंत्र जब रस बनाकर मनुष्य तंतुओं-की रचना करता है तो आप उन्हींका भोजन कर-के बड़े बड़े पोथे लिख डालते हैं और न मालूम कितनी ज़मीन खोदकर अलग कर देते हैं।

इस नराहारका आनंद नवीनानंदको बहुत मालूम है। यदि आपको पंचानंदकी कहानी सुना-येंगे तो आपको इसका पता लगेगा। पं० श्रीनवीना-नंद जी कहते हैं कि हम अपनी कहानी तब तक न सुनायेंगे जब तक हमारे श्रोताओंकी संख्या दुगनी न हो जायेगी। इस समय यह विचार आते ही कि विज्ञानके पंचानंदका परिचय बहुत ही थोड़े सज्जन पायेंगे उनका मन थोड़ा हो गया। अतः श्रीनवीनानंदजी अब आगे कुछ नहीं लिख सकते। यदि आप आगामी वर्ष उनका अच्छा स्वागत करेंगे तो वह अपने कबीरोंका पोथा फिर खोल देंगे। होलीमें बढ़िया बढ़िया मिठाइयां बनती हैं, यदि आप पं० नवीनानंदजीको उनमेंसे पेट भर भोग लगाने दीजियेगा तो श्यामा ग्वालिनके प्रेमी एक दूसरे चौबेजीका चिट्ठा कलकत्तेसे न सही तो प्रयागसे ही तैयार हो जायगा।

कड़ाहीमें घी क्यों जलने लगा ?

[ले० —अध्यापक महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी. एस.-सी., एल. टी., विशारद]

"दादा! दादा!! वह देखो, रसोईमें तो आग लग गयी। माताजीने तरकारी धोकर कड़ाहीमें ज्योंही छोड़ी त्योंही उसमें बड़ी ऊंची लौ उठी। अच्छा हुआ कि रसोई घर फूससे नहीं छाया हुआ था नहीं तो सारा घर भस्म हो जाता"। यह बातें मुन्नीने अपने भाई गंगूसे कहीं। गंगू इस साल एफ़. ए. की परीक्षा दे आया था और गरमीकी छुट्टियोंमें अपने घरपर ही रहता था।

गंगूने अपनी बहन मुन्नीको जिसकी अवस्था दस वर्षकी थी, अचम्भेमें पड़ी हुई देखकर मनमें सोचा कि लौके उठनेका कारण बतलाना बड़ा ज़रूरी मालूम होता है परन्तु ऐसे कठिन विषय-को छोटीसी लड़कीको समझाना सहज नहीं है। इसलिये पहले तो उसके मनमें आयी कि यह कहकर टाल देना चाहिये कि अभी इसके समझने-की तुझमें बुद्धि नहीं है। परन्तु फिर यह विचार आया कि यही अवसर है जब कठिनसे कठिन विषय भी समझनेवाला दत्तचित्त होकर सुनता है, इसलिए उसने कहा—

"मुन्नी, क्या तुम बतला सकती हो कि लौ इतनी ऊंची क्यों उठी?"

मुन्नी—इसका कारण तो नहीं बतला सकती। हां, एक दिन और भी ऐसी ही घटना हुई तब मैंने माताजीसे पूंछा था। उन्होंने यही उत्तर दिया कि

जब तेल या घी कड़ाही या तवेमें बहुत देर तक पड़ा रहता है और आंच बहुत तेज़ हो जाती है तब ज़रासा पानी पड़नेसे अथवा पानीमें धोयी हुई कोई चीज़ छोड़नेसे ऐसी ही लौ उठती है। इसीलिए रोटी बनाते समय सावधान रहना चाहिए और बहुत देखते रहना चाहिए कि तेल या घी तेज आंचमें देर तक कड़ाहीमें ही न पड़ा रहे बल्कि जैसे पक जाय तैसे ही छौंक देना चाहिए और अगर कभी भूलसे आंच अधिक हो जाय और कड़ाही बहुत तप जाय तो ऐसी भीगी हुई चीज़ न छोड़नी चाहिए जिसमेंसे पानी टपककर घीमें अलग गिर पड़े और चीज़ छोड़नेके पहले जलती लकड़ी चूल्हेमेंसे बाहर निकाल लेनी चाहिये। इसका ध्यान न रखनेसे फूसके घरमें आग लग जाती है और असावधानीसे यदि कहीं धोतीमें लौ लग गयी तो जल जानेका भी डर रहता है। ऐसी घटनाएं बहुत बार हो भी चुकी हैं और बहुतसी स्त्रियां बिचारी बेमौत मर चुकी हैं।

गंगू-हां, इसकी एक एक बात ठीक है।

परन्तु मुन्नीको इससे सन्तोष नहीं हुआ था। इसलिए उसने पूछा—"पानीके पड़ते ही घी क्यों जलने लगता है? जब कोई सूखी चीज़ अथवा ऐसी गीली चीज़ जिससे पानी अलग नहीं हो जाता, जैसे पूड़ी जलेबी वग़ैरह, घीमें छोड़ी जाती है तब तो घी नहीं बल उठता।"

गंगू—इसका कारण अच्छी तरह समझानेके लिए बहुतसा समय चाहिए, क्योंकि तुम एक एक बातको अच्छी तरह समझना चाहती हो, परन्तु उन नियमोंको जानती नहीं हो जिनकी मददसे थोड़ी ही देरमें सब बातें मालूम हो जायं। इसलिए अगर तुम घंटा दो घंटा धीरज धरकर बात करो तो मैं इसका कारण बतला सकता हूं।

मुन्नी- आज रामनवमीकी छुट्टी है इसलिए मुझे पाठशाला तो जाना नहीं है। घरके सभी लोग नहा धो चुके हैं और आपसे रामायणके उस अंशको सुन ही चुके हैं जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रके जीवनचरितका संक्षिप्त वर्णन आ गया है। इसलिये मुझे यह भी चिन्ता नहीं है कि आपकी बात जल्दी खतम हो जाय। फिर घंटे दो घण्टे ही क्यों अगर ज़रूरत पड़ेगी तो मैं और समय भी दे सकूंगी।

गंगू—अच्छा कड़वे तेलका दिया और दियासलाईकी डिब्बी ले आओ और दिया जला दो। मुन्नी, भला तुम बतला सकती हो कि बत्ती क्या क्या काम करती है?

मुन्नी—इसका बतलाना भी कुछ कठिन है? बत्ती तेल खींच खींचकर लौके पास ले आती है और जब तेल सिरेपर आ जाता है बलने लगता है।

गंगू—क्या तेल बलते समय भी तेल ही बना रहता है?

मुन्नी—इसमें तो कोई सन्देह कर ही नहीं सकता।

"बस यहां तुम भूल करती हो"—ऐसा कहते हुए गंगूने दिया झटसे बुझा दिया और मुन्नीसे पूछा—'अब दुर्गन्धि किस चीज़की फैल रही है, तेलकी?"

मुन्नी—हां।

गंगू—भला तेलमें भी ऐसी दुर्गन्धि होती है? यह तो है तेलकी भापकी। जब तेल खिंचकर बत्तीके सिरेपर आता है तो गरमी पाकर भापमें बदल जाता है जो बलते समय लौके रूपमें दिखाई पड़ती है। लौके नीचे बत्तीके सिरेके पास जो काला अंश चन्द्रमाकी कालिमाकी नाईं दिखाई पड़ता है वह तेलकी भाप है, जो ऊपर उठकर हवाके संयोगसे बलती रहती है और रोशनी और गरमी देती रहती है। इस काले भागमें उतनी गरमी नहीं रहती, जितनी प्रज्वलित भागमें। प्रज्वलित भागके ऊपर गर्मी सबसे अधिक होती है। ऐसे कहते हुए गंगूने दियासलाईकी नोक झटसे इसी काले हिस्सेमें घुसेड़ ही तो दी।

मुन्नोको देखकर बड़ा अचम्भा हुआ कि दियासलाईका मसाला लौके बीचमें होते हुए भी नहीं बला, परन्तु लकड़ी जो लौके किनारे थी काली पड़ गयी। देखो चित्र १२ (ख)

गंगू—एक पतली नली ले आओ तो और तमाशा दिखाऊँ। मुन्नी गयी और इधर उधर कुछ देरतक नली ढूंढ़ती रही, परन्तु नली कहीं न मिली। तब गंगूने कहा—'आओ चित्र ही खींचकर समझा दूं'।
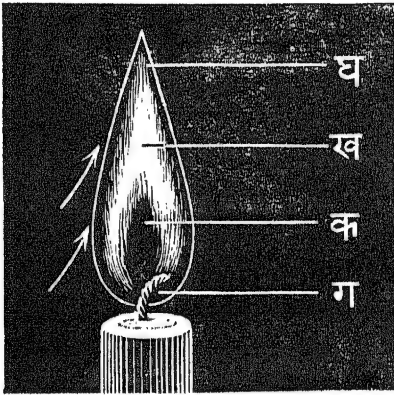
चित्र ११

गंगू— लौ चाहे लकड़ी, कोयला, मोम जैसे ठोस पदार्थकी हो, चाहे घी, तेल, मद्यसार, पेट्रोल जैसे द्रवकी, सबमें पहले पहल भाप बनती है, जो हवाके संयोगसे बलती है और यही भाप बलती हुई जहां तक ऊपर उठती है वहां तक लौ दिखाई पड़ती है। एक मोमबत्ती जलाकर यह बातें बड़ी आसानीसे समझायी जा सकती हैं। देखो मोमबत्तीकी लौमें चार भाग होते हैं (चित्र ११) बीचका भाग कुछ काला होता है। चित्र ११ में इस भागका नाम रखा गया है 'क'। अगर किसी पतली नलीका एक सिरा इस भागमें घुसेड़ दिया जाय जैसा कि चित्र १२ में दिखलाया गया है और उसके दूसरे सिरेपर बलती हुई दियासलाई लायी जाय तो वहांसे निकलती हुई भाप बलने लगेगी और एक दूसरी लौ दिखाई देने लगेगी (चित्र १२)। इसी भागमें बे बली हुई भाप रहती है, जिससे सिद्ध होता है कि पिघला हुआ मोम
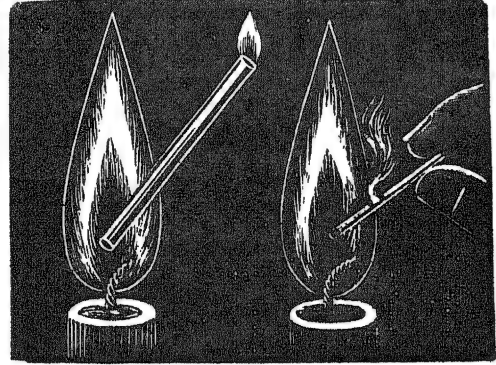
चित्र १२ क ख

भापमें बदल जाता है और तब जलता है। इसीको घेरे हुए चारों ओर प्रज्वलित भाग है, जहां भाप हवाके संयोगसे बलती है। चित्र ११ में इस भागका नाम रखा गया है ख। यदि कोई ठंडी कटोरी इस भागमें लायी जाय तो कारिख जम जाती है, क्योंकि जो कोयला (carbon) ऊंचे तापक्रमपर प्रज्वलित है ठंडा होनेपर काला हो जाता है। लौके नीचेका भाग बत्तीके पास कुछ कुछ नीला दिखाई पड़ता है। यहां बड़ी तेजीसे भाप जल रही है (चित्र ११, ग)। प्रज्वलित भागके चारों ओर एक पतला भाग है जो प्रायः दिखाई नहीं पड़ता। प्रज्वलित भागमें काफी ओषजन न मिलनेसे जो भाप या कर्बन बे जला रह जाता है वह ऊपर उठकर पूरी तरह बल जाता है, इसी कारण इस भागमें गरमी अधिक होती है (चित्र ११, घ)।

मोम बलनेके पहले भापमें बदल जाता है। इसकी परीक्षा दूसरी तरह भी की जा सकती है। बलती हुई मोमबत्ती बुझा दो और उठते हुए धुएंके पास बलती हुई दियासलाई झटसे ले जाओ तो 'भक' की आवाज़ होगी और बत्ती जल उठेगी, यद्यपि बत्ती दियासलाईकी लौसे नहीं छू गयी। मोमबत्ती बुझाते ही बलती हुई दियासलाई पास ले जानी चाहिए। देर हो जानेमें गर्माहट निकल

जायगी, भापका उठना बंद हो जायगा और भक—की आवाज़ नहीं होगी। उठती हुई भाप आंच पाकर जब बलने लगती है तभी 'भक' की आवाज़ निकलती है।

मुन्नी खैर, तेल और घीमें भापका बनना सम्भव है, परन्तु लकड़ी और कोयलेके जलनेमें भाप कहां बनती है?

गंगू—जब इतना समझ गयी हो तो आगेका समझना कुछ कठिन नहीं है। तुमने यह तो देखा ही होगा कि लकड़ी जब चूल्हेमें जलायी जाती है तब कभी कभी फरफराती है, जिसको स्त्रियां अशगुन समझती हैं और कहती हैं कि कोई चुगली कर रहा है या बुरा मना रहा है। परन्तु असलमें बात यह है कि जब कभी लकड़ीके भीतर बलनेवाली भाप इतनी बन जाती है कि कुछ बिना बले हुए किसी छेदसे बाहर निकलने लगती है तो बाहरकी आंचसे बलने लग जाती है, जिससे फरफराने और भकभकानेकी आवाज़ निकलती है। कभी कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि गीली लकड़ीका एक सिरा चूल्हेमें जलता रहता है और दूसरे सिरेसे जो चूल्हेके बाहर रहता है चुरता हुआ रंगीन पानी और धुआं निकलता है। यदि इस धुएंके पास बलती हुई लकड़ी या दियासलाई ले जायी जाय तो उसमें लौ उठने लगती है। इसकी परीक्षा कोई भी बड़ी आसानीसे कर सकता है। यदि सिरकी, पयाल अथवा ऐसी किसी घासके डंठलका एक सिरा आगमें रखा जाय तो उसके बलनेपर छेदसे भाप निकलने लगती है जो जलानेपर फरफराती हुई जलती है। जाड़ेके दिनोंमें जब देहातमें लोग घास फूस इकट्ठा करके 'तपता' तापते हैं तब ऐसे प्रयोग सैकड़ों बार किये जा सकते हैं।

मुन्नी—अच्छा यह तो मैं समझ गयी कि तेल, घी, मोम, लकड़ी बलनेके पहले भाप हो जाती हैं, परन्तु इन सब उदाहरणोंसे उस घटनाके रहस्यका पता न चला जिसपर यह बात उठी।

गंगू—उस घटनामें भी मुख्य बात यही है कि भापके बलनेसे लौ दिखाई पड़ती है।

मुन्नी—उस घटनामें बड़ी विचित्र बात तो यह है कि पानी पड़नेपर भाप एकबारगी बनती और बल उठती है। आग वाग लगानेकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

गंगू—यह तुम्हारी भूल है आगके बिना भाप कैसे बन सकती है? हां, यह कहो तो मान भी लिया जाय कि पानी पड़नेपर भापके बननेमें सहायता पहुंचती है और वह जल्दी जल्दी उठने लगती है। जिस समय तेल या घी तप जाता है कुछ न कुछ भाप बनने लग जाती है। पानी पड़नेसे पानीकी भाप भी तुरन्त ही बनने लगती है, जिसके मेलसे तेल या घीवाली भाप भी जल्दी जल्दी उठने लगती है और कुछ ऊपर उठकर तेज़ आंचके कारण भकसे बल उठती है। बस कड़ाहीमें घीके बल उठनेका यही कारण है।

मुन्नी—पानीकी भापके साथ तेलकी भाप जल्दी जल्दी क्यों उठने लगती है?

गंगू—यह दूसरा ही विषय है जिसको प्रयोग दिखाकर समझानेमें उतना ही समय लगेगा जितना आज लगा है। इसलिए किसी और दिन इसपर बात चीत चलाना। इसके बारेमें आज केवल इतना ही कहना बस होगा कि द्रवोंके उबलने और उनसे भापके बननेमें वायुमण्डलके दबावका बड़ा प्रभाव पड़ता है। यहांतक कि द्रवसे उठती हुई भापका दबाव जब तक वायुमण्डलके दबावके बराबर नहीं होता तब तक द्रव उबलता ही नहीं है। यदि हवाका दबाव कम कर दिया जाय या हो जाय तो थोड़ी ही आंचमें द्रव उबलने लगता है और दबावके बढ़ जानेसे आंच लगाते जाओ चीज़ जल्दी उबलती ही नहीं। इसी कारण जब दो द्रव एक साथ उबाले जाते हैं तो देरमें उबलनेवाला द्रव भी जल्दी उबलनेवाले द्रवके साथ होनेसे जल्दी उबलने लग जाता है।

बीज।

[ले०—अध्यापक भास्कर बीरेश्वर जोषी, कृषि विशारद]

किसी पिछले लेखमें मैंने बतलाया है कि बीज पेड़ोंकी सन्तान हैं। पेड़ अपनी संतानकी संसार-यात्रा सुखकर करनेके लिए जो जो उपाय रचते हैं उनका भी कुछ वर्णन कर चुका हूं। इस लेखमें बीजोंका स्वरूप, उनकी अन्तर्वाह्य रचना, उनका काम और उनकी काम करनेकी शैली इत्यादि बातोंपर कुछ लिखनेका स्वल्प प्रयत्न करूंगा।

वैज्ञानिक परिभाषामें बीज फलीभूत (fertilised) बीजाण्ड (ovule) कहलाता है। यह परिभाषा साधारण लोगोंके लिये अगड़बंब और अप्रस्तुत सी जान पड़ती है, परंतु कभी कभी इसीका अवलंब करना ही शुद्ध और श्रेय मार्ग जान पड़ता है। आम और गोही, बेर और गुठली, अचार और चिरोंजी, बिही और बिहीके बीज इत्यादि सरल सरल फलों और बीजोंका जब तक व्यवहार करते हैं तबतक इस कठिन परिभाषाकी आवश्यकता नहीं जचती परंतु वनस्पति-सागरमें थोड़ी दूर जानेपर इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

बीज वनस्पतियोंकी संतान हैं। सब रत्नोंमें संतानरत्न अमूल्य है। ऐसे अमूल्य रत्नोंको भला कोई उघाड़े रखता है? वनस्पतियां भी अपने संतान-रत्नोंको संदूकमें बंद रखती हैं। इस संदूकको लोग फल कहते हैं। उपरोक्त उदाहरणोंमें फल और बीज परखनेमें कोई कठिनाई नहीं है, परंतु कभी कभी कठिनाई भी उपस्थित होती है, जैसे मक्का, धान, गेहूं, धनिया, अजवायन, ममरी, तुलसी, सूरज मुखी, अंजीर इत्यादिमें। इनमें फल कौन और बीज कौन यह कहना सरल नहीं है। यथार्थमें ये फल और बीज दोनों हैं। आम, बेर, अचार इत्यादिके समान इनमें फलकी संदूक अलग नहीं है; बीजसे ही चिपकी है, इसलिये भ्रम पड़ता है। अंजीर, गूलर, बड़ (बरगद) इत्यादिमें और ही कुछ घटना होती है। इसलिए भ्रम होता है। इनमें पुष्पदण्ड फूलता है और इसीको गूदा समझकर खाते हैं। फूलसे फल पैदा होता है-यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। अब सोचिये कि गूलर और पीपलमें तो फूल होते ही नहीं। इनमें तो पहिलेसे ही फल पैदा होते हैं। इन पेड़ोंमें या तो फूल होते ही नहीं, बिना फूलही फल पैदा होते हैं, या इनके फूल देवता-प्रिय होनेके कारण देव-दूत इन्हें खिलते ही ले जाते हैं जैसा कि साधारण लोगोंकी श्रद्धा है। यथार्थमें जिसे लोग गूलरका फल कहते हैं वह फल नहीं किंतु डंठल है। यह डंठल अंतर्गोल है और इसके भीतर फूल लगे रहते हैं। गूलरको काट कर सूक्ष्म दर्शकसे देखनेसे ये साफ नजर आते हैं और लोगोंका विश्वास नितान्त भ्रामक प्रतीत होता है। फूलसे फल पैदा होते हैं। गूलरमें भीतर फूल रहते हैं और उन्हींसे फल पैदा होते हैं, परंतु इन फलोंको लोग बीज बोलते हैं। यथार्थमें धान, गेहूं, धनिया आदिके समान गूलरके फल और बीज एक ही होते हैं। डंठल गूदेदार (नरम) होनेसे भ्रम होता है। जो भिलवाँ फल समझकर खाते हैं वह भिलवाँ फल नहीं किंतु फूला हुआ डंठल है और जिसको भिलवाँका बीज कहते हैं वह बीज ही नहीं किन्तु फल भी है। इसी प्रकार काजूका भी हाल होता है। भ्रममें डालनेवाले कितने ही फल होते हैं। इसलिए फल और बीजमें भेद करना और उनकी परिभाषा बतलाना केवल वैज्ञानिक दृष्टिसे ही नहीं किंतु व्यावहारिक दृष्टिसे भी उचित जान पड़ता है।

साधारणतः जैसे संदूक और संदूकमें रखा हुआ खजाना दो भिन्न पदार्थ हैं, उसी प्रकार फल और फलमें रखे हुए बीज दो भिन्न पदार्थ हैं। जब फलकी दीवार बीजसे चिपक जाती है तब संदेह

Botany वनस्पतिशास्त्र]

होता है। ऐसी हालतमें यदि बीज-के ऊपर उसके स्वाभाविक दो आवरणोंसे अधिक ढक्कन पाये जायें तो समझना कि वह बीज ही नहीं किंतु फल भी है। गेहूं या मक्काको फुलाकर देखो तो उनमेंसे कितने ही छिलके (छीलन, चोकर) निकल आते हैं, अर्थात् ये केवल बीज ही नहीं किन्तु फल भी हैं। दूसरी पहिचान यह है कि बीजके सिरेपर स्त्री केसर नलिका (style) का कुछ न कुछ निशान ज़रूर पाया जाता है। जैसे सेम, बटरा आदि फलियोंकी नोक पर; तथा बिही, अनार, ककड़ी आदि फलोंकी नोक-पर। तीसरी पहिचान यह है कि फलोंके पेंदेमें अथवा सिरेपर बहिर्वास, बहिराच्छादन (calyx) या उसका कुछ अवशेष पाया जाता है, जैसे भटा, मिरचा, आम, लभेरा (लसेला), टिपारी इत्यादि-की पेंदीमें बहिराच्छादन या उसके अवशेष पाये जाते हैं; तथा नासपाती, केला, बिही, अंगूर इत्यादिके छोरपर बहिराच्छादनके निशान पाये जाते हैं। इन तीनों चिह्नोंका उपयोग करके कोई भी मनुष्य फल या बीजका निश्चय कर सकता है।
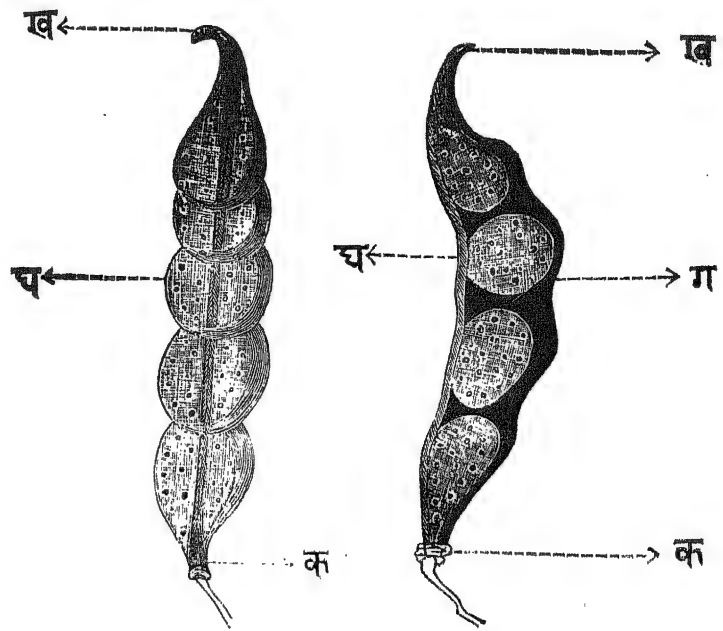
सेमकी फली सामनेसे सेमकी फली बगलसे

चित्र १३

बीजका वर्णन करनेके पहिले उस संदूकका, जिसमें वह रखा जाता है-अर्थात् फलका, थोड़ा सा भेद जानना अनुचित न होगा। ऐसा समझकर फलकी रचनाकी केवल रूप-रेखा अति संक्षेपमें बतलाता हूं। उनका सविस्तार वर्णन कहीं अन्यत्र किया जायगा। भिन्न भिन्न दृष्टिसे फलोंके कई भेद माने गये हैं:—जैसे एक चश्मे वा कोठरी (cell) वाले, अनेक चश्मे कोठरो) वाले, एक बीज वाले, अनेक बीजवाले, सूखे, गूदेदार, चटखने अथवा फटनेवाले, न फटनेवाले, अधस्थ (inferior) ऊर्ध्वस्थ (superior), सादे, संयुक्त, एक फूलसे पैदा होनेवाले, अनेक फूलोंसे पैदा होनेवाले। इत्यादि। परीक्षार्थ एक सादा एकचश्मेवाला फल जैसे सेमकी फली लो। (देखो चित्र १)

फलीकी पेंदीमें क बहिराच्छादनका अवशेष दीखता है। छोरपर जो नोक ख दीखती है वह स्त्री केसर नलिका का (style) अवशेष है। फली-में दो किनारे ग, घ हैं। गौरसे देखोगे तो ग कि-नारा पतला और घ किनारा चौड़ा दीखेगा। ग किनारकी इकहरी अथवा पार्श्वसीवन (Dorsal suture) है और घ किनारकी दोहरी अथवा पुरः सीवन (ventral suture) है, क्योंकि इसी प्रकार फलीका पिछला और अगला भाग माना जाता है। अब फलीको पार्श्व सीवन (ग) से चीरो और उसका पल्ला लौटाओ। देखो (चित्र १४). दोहरी (पुरः) सीवनके पास फलीमें पेंदीसे छोर

तक पड़ा हुआ ट एक सफेद धागा दिखता है। इसको नाल (placenta) कहते हैं। इसमें फलोंकी

चित्र १४

रस-वाहिनियां रहती हैं और बाजूमें जहां जहां बीज लगे हैं वहां कुछ रस वाहिनियां अलग होकर बीजोंमें चली जाती हैं। ये बीजोंको रस पहुंचाकर पालती और पुष्ट करती हैं। ट नालमें बीज लगे हैं। हर एक बीज एक छोटे धागे ड से नालमें जुड़ा है। इसको नाल-तन्तु (funicle) कहते हैं। रसवाहिनियां नाल तन्तु द्वारा बीजमें प्रवेश करती हैं। किसी किसीका नालतंतु लंबा होता है, जैसे शिरीष (चित्र १५), पीला चंपा इत्यादि का। किसी किसीका बिलकुल छोटा जैसे मटर, आम, बेर इत्यादि का। जिन बीजोंमें नालतंतु होता है, चाहे वह लंबा हो वा छोटा हो, उनको सनाल-बीज कहते हैं और जिन बीजोंमें नाल-तंतु नहीं होता उनको निर्नाल कहते हैं।
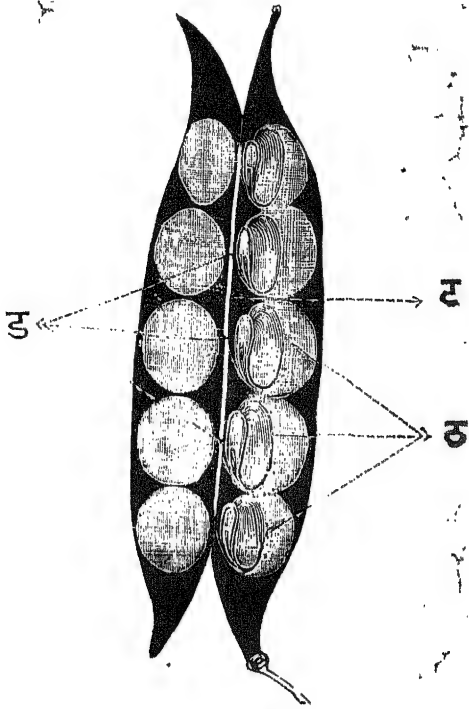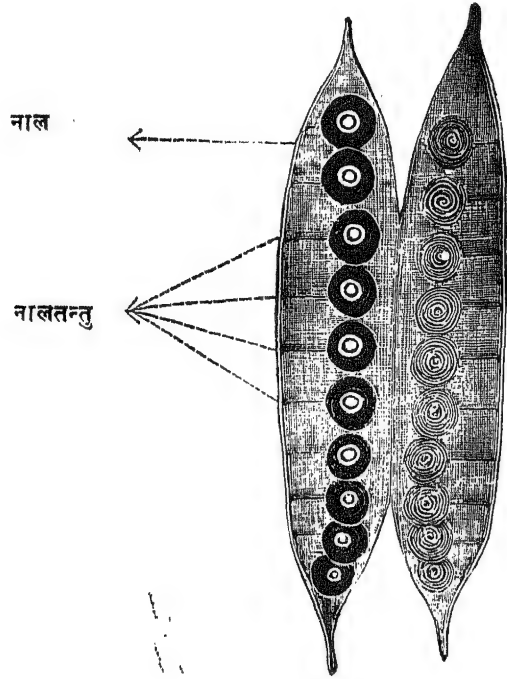
चित्र १५

अब सेमका एक बीज नालसे अलग करो (चित्र १६)। जहां नाल जुड़ी थी वहां एक लम्बा

चित्र १६

सफ़ेद दाग दीखता है (१)। इसको नाभि या टुंडी (hilum) कहते हैं। नाभिकी बगलमें जिस तरफ छोड़ी हुई रीढ़सी दिखती है-एक सूक्ष्म सूराख पाया जाता है उसे बीजरंध्र (micropyle) कहते हैं। कोई फूला हुआ बीज लो और उसे धीरेसे दबाओ तो छेदमेंसे पानीकी बूंद निकलेगी। बीज-

रंध्रके निर्णय करनेकी एक और विधि यह है कि बीजावरणोंको नाभिका भाग बचाकर धीरेसे निकालो और उजियालेकी तरफ रखकर देखो तो नाभिके पास सूराख दीखेगा। बस यही बीज-रंध्र है, इसी छेदके द्वारा परागकी नली (pollen-tube) बीजाण्डमें प्रविष्ट होकर बीजांडका बीजमें परिवर्तन करती है; और इसी रास्तेसे जमते हुए बीजका मूलांकुर बाहर आता है।

भाषाविज्ञान

[नोट—पत्र प्रेरकोंके विचारका उत्तरदाता सम्पादक नहीं है]

विद्वद्कुल शिरोमणि श्रीयुत " विज्ञान " सम्पादक महोदयेषु

महाशय,

इन दिनों हिन्दी भाषाके प्रधान प्रधान लेखक प्रतिष्ठित, तथा बी. ए. , एम.ए. आदि उपाधिधारी तक हिन्दीके भाग्य विधाता उन्नायकोंके लेखोंमें कुछ ऐसे विचित्र प्रयोग देखनेमें आते हैं, जिन्हें देख हम जैसे अल्पज्ञोंकी बुद्धि भ्रमजालमें जा फँसती है और कुछ भी यथार्थ निर्णय करनेमें असमर्थ हो जाती है। कारण यह कि भारतके ऐसे ऐसे सुप्रसिद्ध विद्वानोंमें परिगणित प्रथम श्रेणीके लेखकोंसे और ग्रन्थकारोंसे भूल होती है। कहनेका साहस तो दुस्साहस और धृष्टता ही कहावेगी, परन्तु प्राचीन अनेकों उदाहरणोंके अवलोकन तथा वर्तमान सार्वजनिक सर्व सम्मत प्रयोगोंसे सर्वथा विरुद्ध और अपरिचित होनेके कारण कानोंमें खटकते अवश्य हैं और चित्तका समाधान भी कुछ नहीं होता। इसलिये "विज्ञान" पत्रकी शरणमें उपस्थित हो शंकाकी निवृत्ति करना ही मैंने अन्तको उचित समझा है। आशा है कि आप और आपके बहुज्ञ पाठकोंमें से कोई महाशय नीचे लिखी शंकाओंका समाधान कर हिन्दी भाषाकी रक्षा और उन्नतिका पुण्य सञ्चय करनेके साथ ही मुझ सरीखे अल्पज्ञोंके धन्यवादके पात्र बननेमें भी विलम्ब न करेंगे।

मिश्रबन्धु विनोद तृतीय भागके ११०१ पृष्ठपर लिखा है। "ठाकुरके पुत्र धनीराम हुए जो देवकीनंदनके पुत्र जानकीप्रसादके कवि थे और जिन्होंने उन्हींके यहां रामचन्द्रिका तथा रामायणके तिलक एवं रामाश्वमेध तथा काव्य प्रकाशके उल्था बनाये"। इस वाक्यांशमें 'बनाये' क्रिया कर्मवाच्यकी ही मानी जायगी, क्योंकि 'जिन्होंने' ही इस क्रियाका कर्ता है। उल्था शब्दका सम्बन्ध भी काव्य प्रकाशसे ही दीखता है। यहां शंका यह उठती है कि "काव्य प्रकाशके" इस पदमें "के" बहुबचनसे सम्बन्ध रखनेवाला पुल्लिङ्ग प्रत्यय है, परन्तु जिससे इसका सम्बन्ध है वह 'उल्था' शब्द पुल्लिङ्ग एकबचनान्त ही प्रयुक्त हुआ है। सुतरां इस एक बचनान्त 'उल्था' शब्दके सम्बन्धमें 'काव्य प्रकाशके' यह प्रयोग कानोंमें खटकता अवश्य है। हिन्दीमें संस्कृत और अरबी फारसीके आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द तो बहुतसे ऐसे प्रचलित हैं कि जिनका प्रथमा विभक्तिके बहुबचनका रूप भी एकबचनका सा ही होता है। जैसे पिता, भ्राता, जामाता, खुदा, मुल्ला आदि। परन्तु उल्था शब्द मैं जहां तक समझता हूं ठेठ हिन्दी शब्द ही है। अरबी फारसी वा संस्कृत तत्सम शब्दों का सा रूप इसका कैसे हो सकता है? सिवाय इसके "जानकीप्रसादके कवि थे" वाक्यांशका अर्थ भी कुछ समझमें नहीं बैठता।

विज्ञानके अनेक लेखोंमें भी इसी प्रकारके अद्भुत प्रयोग देखे गये हैं। उदाहरणोंके बाहुल्यकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

कुछ दिनोंसे लोहाकी, कलकत्तामें, लड़काका, चनावाला, दानादार आदिके ढंगके प्रयोग भी लेखोंमें बहुधा प्रयुक्त होते हैं। परन्तु इस प्रकारके नये प्रयोग भी कानोंमें खटकते अटकते हुए शंका उपजाते हैं। कारण यह कि कलकत्तेमें, छपरेमें

इत्यादि और थानेदार दानेदार पटेबाज़ लच्छेदार मज़ेदार कल्लेदार मुलम्मेसाजी धोखेबाजी, सुरमेदानी, पल्लेदारी, चट्टेबाजी मोहल्लेदार, कोड़ेवाला, घोड़ेवाला, चनेवाला, गोटेवाला, आदि अनेकों ही शब्द सर्वसाधारण हिन्दी बोलनेवालोंमें प्रचलित हैं। क्या इन प्रचलित प्रयोगोंको अशुद्ध मानना उचित है और इनके बदले दानादार थानादारा पटाबाज मजादार मोहल्लादार, सुरमादानी, आदिका लिखना अबसे शुद्ध प्रयोग माना जायगा। कृपाकर इन शंकाओंको शीघ्र अपने बहुमूल्य पत्र द्वारा दूर कीजिये, क्योंकि मैं इस प्रकारको बहुत सी शंकाओंका समाधान करानेको समुत्सुक हो रहा हूं। किमधिकं विज्ञेषु।

भवदीय—

रामप्रसाद पांडे (मध्यमाका परीक्षार्थी)

नंदनसाहुकी गली—काशी

हिसाब

अक्तूबर १९१७

जमा

बाकी १ अक्तूबर १९१७ बैंकमें		७१२॥=)॥।२
हाथमें	...	)॥२
चन्देका रुपया	... ...	७७॥≡)॥२
उर्दू पुस्तकोंकी बिक्री	...	१॥=)
हिन्दी पुस्तकोंकी बिक्री	...	२२)।
	योग	८१४।−)।२

ख़र्च

दफ़्तरका खर्च	... ...	१२॥)
डाकका खर्च	.. ...	८−)॥
मुतफ़र्रक	... ...	२॥।)
विज्ञानको उधार दिये	...	२५०)
डाकखानेके कैश सार्टीफिकट रसीद		४०९॥)
		७२२॥।−)॥

बाकी बैंकमें	१३=)॥।२	९१।≡)॥।२
हाथमें	७८।−)	
		८१४।−)।२

नवम्बर १९१७

जमा

बाकी	... ...	९१।≡)॥।२
चन्दा	... ...	५३)
दान	... ...	१५)
हिन्दी पुस्तकोंकी बिक्री	...	२७।=)॥
		१८७॥।=)।२

ख़र्च

दफ़्तरका खर्च	... ...	१९॥=)॥
डाकका खर्च	... ...	२२।≡)॥
पुस्तकें	... ...	१२)
नोटिसोंकी छपाई	... ...	२३=)
मुतफर्रक	... ..	२≡)।
पुरानी फाइल विज्ञानकी खरीदी	...	३)
		८१।≡)।

बाकी बंकमें	१३=)॥।२	१०५।≡)२
हाथमें	९२।)।	
		१८७॥।=)।२

दिसम्बर १९१७

जमा

बाकी	... ...	१०५।≡)२
चन्दा	... ...	७९−)
उर्दूकी पुस्तकें	... ...	॥)
हिन्दीकी पुस्तकें	... ...	३२)॥
		२१७)॥

खर्च

दफ़्तरका खर्च	... ...	९॥।)
डाकका खर्च	... ...	२)
मुतफर्रक	... ...	९॥=)
स्लाइड	... ...	१०)
		३१।=)

बाकी बंकमें	१३=)|||२	१८५||=)|२
हाथमें	१७२|≡)||	
		२१७)|२

जनवरी १९१८

जमा

बाकी	१८५||=)|२
चन्दा	४६)
उर्दूकी पुस्तकोंकी बिक्री ...	१|||≡)
हिन्दीकी पुस्तकोंकी बिक्री ...	५३|||-)||
	२८७|=)|||२
दफ़्तरका खर्च	१५)
डाकका खर्च	५≡)
नोटिसोंकी छपाई इत्यादि ...	१||=)
मुतफर्रक	≡)||
	२२)||

बाकी बंकमें	११३=)|||२	२६५|=)|२
हाथमें	१५२≡)||	
		२८७|=)|||२

फरवरी १९१८

जमा

बाकी	२६५|=)|२
चन्दा	३२७≡)
उर्दूकी पुस्तकोंकी बिक्री ...	-)
हिन्दीकी पुस्तकोंकी बिक्री ...	१२८|=)||
	७२१)|||२

खर्च

दफ़्तरका खर्च	७)
डाकका खर्च	४)
व्याख्यानके नोटिस इत्यादि ...	२|)
मुतफर्रक	१-)
सभ्योंकी ओरसे विज्ञानका चंदा ...	१०५)
	११९-)

बाकी बंकमें	३६३=)|||२	६०१||≡)|||
हाथमें	२३८||-)	
		७२१)|||२

मार्च १९१८

जमा

बाकी	६०१||≡)|||२
चन्दा	१२४≡)
उर्दू पुस्तकोंकी बिक्री ...	||)
हिन्दी पुस्तकोंकी बिक्री ...	४६)
	७८५|=)|||२

खर्च

दफ़्तरका खर्च	२२)
डाकका खर्च	७)
मुतफर्रक	५||-)
डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, हमारे शरीरकी रचनाकी बिक्री ...	५४)
श्री करमनारायण, 'बच्चा' की बिक्री	८)
	९६||-)

बाकी बंकमें	६४३=)|||२	६८८|||-)|||२
हाथमें	४५||≡)	
		७८५|=)|||२

बच्चा

[ले० कप्तान कुरैशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देशभक्तो! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८¾ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

अनुवादकको पंजाब के छोटे लाट ने १००) इनाम दिया है।

पुस्तकका मूल्य १), विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥।=) में मिलेगी।

मंगानेका पताः—

प्रोफेसर करम नारायण,

एम. एस-सी.,

ज्योर्ज टौन, प्रयाग।

विज्ञापन छपाईके नियम।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास	...	...	५)
प्रति पृष्ठ २ कालम	...	...	४)
१ ,,	...	...	२।)
आधा ,,	...	...	१।)
आधे कालमसे कमका	...	...	१)

२—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा। जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें।

३—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालेको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा।

५—विज्ञापन बँटाईकी दर क्रोड़पत्र देखकर बतायी जायगी।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषत्,
प्रयाग।

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला-महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग १—ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग २—ले० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३—**मिफताह-उल-फ़नून**—अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४—**ताप**—ले० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५—**हरारत** [तापका उर्दू अनुवाद]—अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला—प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० सालिग्राम वर्मा, ... -)

७—**केला**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

८—**सुवर्णकारी**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९—**चुम्बक**—ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—ले० वसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी., विशारद ... ... ।=)

११—**क्षयरोग** ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी., एम. बी. बी. एस ... -)

१२—**दियासलाई और फास्फोरस**—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. -)

परिषद्से प्राप्य अन्य पुस्तकें

१—बचा ... ... ||=)

२—मारीभ्रम ... ... ।)

३—हमारे शरीर की रचना भाग १ २।)

मंगानेका पता—मंत्री, विज्ञान परिषद, प्रयाग।

'ब्राह्मण-समाचार'

इस पत्रमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक विषयोंपर गवेषणापूर्वक विवेचन किया जाता है। धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा जातीय विषयोंपर धुरन्धर लेखकोंके लेख और सुकवियोंकी मनोहर, चटकीली कवितायें रहा करती हैं। इसमें युद्धके टटके तार जानने योग्य संसार समाचार शीघ्रसे शीघ्र छपते हैं। फलतः इस एक ही अख़बारके पढ़नेसे आप जगतके सारे समाचारोंसे जानकार होजायंगे। इतनेपर भी अच्छे बढ़िया काग़ज़पर।

'प्रतापके साइज़में'

प्रति सोमवारको नवीन कलेवर धारण कर ग्राहकोंका मनोरञ्जन करता है। वार्षिक मूल्य भी और

साप्ताहिकोंसे कम

सिर्फ २॥) है। आशा है आप इसके ग्राहक हो, हमें लोकमत-विस्तार, हिन्दी प्रचार और जातीय-उत्थानमें साहाय्य प्रदान करेंगे। नमूना मंगा कर देखिये।

पता—मैनेजर, 'ब्राह्मण-समाचार',
जगाधरी, पंजाब।

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग—दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़—गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ।॥). ४-संकरीकरण अर्थात पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-) ७-केला—मूल्य -) ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, नरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जारहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

यह दवा बालकोंको सब प्रकारके रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है। क़ीमत फ़ी शीशी ॥।)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—
सुख-संचारक कंपनी मथुरा

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषत्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ३९ | Reg. No. A-708

भाग ७ | मिथुन १९७५ जून १९१८ | संख्या ३

Vol. VII. | No. 3

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक-गोपालस्वरूप भार्गव

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

एक प्रतिका मूल्य ।)

सौर-पञ्चाङ्ग

वृष-ज्येष्ठ १९७५ । मई-जून १९१८ ।

रविवार		२ ७ १६	९ १४ २३	१६ ६ ३०	२३ १४ ७	३० ६ १४
सोमवार		३ ८ १७	१० १५ २४	१७ ८ जु० १	२४ ३० ८	३१ ७ १५
मंगलवार		४ ९ १८	११ अ० कृ० १ २५	१८ ९ २	२५ अ० शु० १ ९	३२ ९ १६
बुद्धवार		५ १० १९	१२ २ २६	१९ १० ३	२६ २ १०	
बृहस्पतिवार		६ ११ २०	१३ ३ २७	२० ११ ४	२७ ३ ११	
शुक्रवार		७ १२ २१	१४ ४ २८	२१ १२ ५	२८ ४ १२	
शनिवार	१ जे०शु० ७ जून १५	८ १३ २२	१५ ५ २९	२२ १३ ६	२९ ५ १३	

नोट—बीचमें सौर, दाएं को अंग्रेजी और बाएं को चान्द्र तिथियां दी गई हैं।

हमारे शरीरकी रचना भाग २

छपकर प्रकाशित हो गया !!

स्वास्थ्य रक्षाके नियम जाननेके लिए और संसारमें सुखमय जीवन बितानेके लिए इस पुस्तका पढ़ना परमावश्यक है।

देखिये इसकी विषय सूची और स्वयम् विचारिये कि कैसे महत्वके विषय इसमें दिये हैं:—

१-पोषण संस्थान, २-रक्तके कार्य, ३-नाड़ी मण्डल, ४-चक्षु, ५-नासिका, ६-जिह्वा, ७-कर्ण, ८-स्वर यंत्र, ९-नर जननेन्द्रियां, १०-नारी जननेन्द्रियां, ११-गर्भाधान, १२-गर्भ विज्ञान, १३-नवजात शिशु।

इस भागमें ४५४ पृष्ठ हैं। १३३ चित्र हैं। १९ चित्र हाफ टोन प्लेट हैं। १ रङ्गीन चित्र है।

मूल्य केवल ३।)—विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सभ्य और परिसभ्योंको २॥।≡) में मिलेगी।

पता—मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग।

पुस्तककी ज़रूरत

हिन्दी भाषामें सायंसकी ऐसी पुस्तककी आवश्यकता है, जिसमें भौतिक रीतिसे जल और वायुका वर्णन हो। कोई सज्जन कहींसे भेज सकते हों या पता दे सकते हों तो अच्छा कमीशन दिया जायगा।

पताः—श्रीयुत गिरधारीदास
गांव—झूमियांवाली,
पोस्ट अबोहर (ज़ि० फीरोज़पुर)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ७ } मिथुन, संवत् १९७५। जून, सन् १९१८। { संख्या ३

मंगलाचरण।

अहो विश्व, विज्ञान-बेलि अज्ञन उर बोवहु
अहो अज्ञ, अज्ञान-मैल अन्तर मलि धोवहु
सुमति-सिन्धु-जल मध्य कुमति-छल-छन्द डुबोवहु
सुचि, सुबोध, सत-संग, सुरुचि-रस-रंग समोवहु
तौ होवहु सब सबकों सुखद, सोवहु सुखित सुछन्द-तर
मन्दार-ओक, दिवि-लोक महँ ज्यों वृन्दारक-वृन्दवर

श्रीपद्म कोट, प्रयाग, १८-४-१८ } —श्रीधर पाठक।

प्राचीन भारतमें रसायन विज्ञानकी खोज*

[ले०—विज्ञानाचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय, डी. एस-सी.]

अब मैं रसार्णवके उस अध्यायके कुछ अंशोंको आपको पढ़कर सुनाऊंगा, जिसमें रासायनिक उपकरणों, अग्निशिखाओंके रंगों तथा खनिजोंसे धातुओंके निकालनेकी विधियोंका वर्णन है। यह बतलानेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं मालूम होती कि तन्त्र ग्रन्थोंमें शिव और पार्वतीके सम्वादरूपमें सब बातें बतलायी गयी हैं।

उपकरणों और कई प्रकारकी लौके रंगोंके सम्बन्धमें

"श्री भैरवने कहा—रसायनी क्रियाओंको आरम्भ करनेके पहले रसों, उपरसों, धातुओं, कपड़ेके एक टुकड़े, बिडं (एक प्रकारका नमक)

* विज्ञान भाग ७ अङ्क १ पृष्ठ १ से सम्मिलित
Chemistry रसायन शास्त्र]

धौंकनी, लोहेके हथियार, पत्थरके खरल और घोंटने (इमाम दस्ते), कोष्ठी नामक यन्त्र, फुकनी (mouth blowpipe), गोबर, ईंधन, कई प्रकारके मिट्टी और लोहेके उपकरण जैसे घरिया इत्यादि, चिमटे, मिट्टी और लोहेके पात्र, तुला और बांट, बांस और लोहेकी नलियां, बसा (fats), अम्ल, (acids) लवणों, क्षारों और विषोंको एकत्र कर लेना चाहिये।"[१]

उपकरणोंका माहात्म्य

"पारेके रञ्जनेमें और उसके कुश्ता बनानेमें उपकरणोंसे बड़ी सहायता मिलती है। जड़ी बूटियों और ओषधियोंके बिना ही केवल उपकरणोंसे पारा मारा जा सकता है। इसलिए चतुर वही है जो उपकरणोंके प्रभावको तुच्छ न समझे।"[२]

मूषा यन्त्र (crucible)

"काली, लाल, पीली और श्वेत मिट्टी, धानकी जली हुई भूसी, काजल, बांबीकी मट्टी, बकरे और घोड़ेकी अच्छी तरह जली हुई लीद, लोहकिट्ट (लोहका मुर्चा)"। इन सब वस्तुओंको विविध परिमाणमें लेकर भांति भांतिके मूषायंत्र और बकयन्त्र (crucible and retort) बनावे।"[३]

लौके रंग

"ताम्बेकी लौ नीली होती है......, रांगेकी लौ कपोतवर्णकी होती है, सीसेकी लौ कुछ कुछ पीली होती है......लोहेकी लौ कुछ कुछ भूरी (tawny) होती है......सस्यक (peacock-ore) की लौ लाल होती है।"[४]

शुद्ध धातुकी परख

"घरियामें धातु पिघलानेपर यदि उसमेंसे न तो चिनगारियां निकलें न बुलबुले, न वह फद्फदाय, न उसमेंसे कोई शब्द निकले और न उसके तलपर कोई धारी पड़ी हुई देखी जाय, वरन् मणिकी तरह निश्चल रहे तो उसे शुद्ध धातु समझना चाहिये।"[५]

माक्षिका से (pyrites) ताम्बा निकालना

"माक्षिकाको मधु, अरण्ड (Vicinus communis) के तेल, गोमूत्र, घृत, केले, (musa sapientum) की कन्दके काथमें कई बार अलग अलग भावना देकर घरियामें तपानेसे ताम्ररूप सार (तत्व) निकलता है।"[६]

१—रसोपरसलोहानि वसनं काञ्जिकं विड़म्।
धमनी लोहयन्त्राणि खल्व पाषाण मर्दकम्॥
कोष्ठिका वक्रनालं च गोमयं सारमिन्धनम्।
मृण्मयानि च यन्त्राणि मुसलीलूखलानि च॥
संड़सी आदर्शदेशं मृत् पात्रायः करोटकम्।
प्रति मानानि च तुला छेदनानि कषोत्पलम्॥
वंशनाली लोह नाली मूषा मार्गास्तथौषधी।
स्नेहाम्ल लवणक्षार विषाण्युपविषाणि च।
एवं संगृह्य संभारं कर्म्मयोगं समाचरेत्॥

२—जारणे सारणे चैव रस राजस्य रञ्जने।
यन्त्रमेव परम् कर्म यन्त्रविद्यामहाबला॥
ओषधिरहितश्चायं हठाद् यन्त्रेण वध्यते।
तस्माद् यन्त्र बलं चैकं न विलंध्यं विजानता॥

३—कृष्णा रक्ता च पीता च शुक्लवर्णा च मृत्तिका।
* * * *
दग्ध धान्य तुषोपेता मृत्तिका ....।
गौरा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा वल्मीक मृत्तिका।
अजाश्वानां मलं दग्ध दग्धा मृत् कृष्णतां गता॥

४—आवर्तमाने कनके पीता तारे सिता शुभा।
शुल्वे नीलनिभा तीक्ष्णे कृष्णवर्णा सुरेश्वरि॥
वङ्गे ज्वाला कपोता च नागे मलिन धूमता।
शैले तु धूसरा देवि आयसे कपिल प्रभा॥
अयस्कान्ते धूम्रवर्णा सस्यके लोहिता भवेत्।
वज्रे नाना विधा ज्वाला सस्यके पाण्डुर प्रभा॥

५—न विस्फु लिङ्गा न च बुबुदाश्च यदा न रेखा-पटलं न शब्दः।
मूषा गतं रत्न समं स्थिरं च तदा विशुद्धं प्रवदन्ति लोहम्॥

६—क्षौद्र गन्धर्व तैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च।
कदली कन्दसारेण भावितं माक्षिकं मुहुः।
मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्वं शुल्वनिभं मृदुः॥

(calamine) रसकसे जस्ता निकालना

"रसकको ऊन, लाख, हर्र (T. chebula) और सुहागेमें मिलाकर बंद घरियामें तपानेसे रांगेकी रंगतकी एक धातु निकलती है—इसमें कोई सन्देह नहीं है"[७]

अब मैं रसरत्न समुच्चय अर्थात् पारा और अन्य धातुओंके रत्नोंके संग्रह नामकी पुस्तकसे दो एक उद्धरण दूंगा। ग्रन्थ-कर्त्ताने शिष्यके विद्या प्रवेश तथा रसायन शालाके सम्बन्धमें यों लिखा है—

शिष्यका विद्याप्रवेश

"शिक्षकको बुद्धिमान, अनुभवी, रसायनी क्रियाओंमें दक्ष, शिव और उनकी अर्द्धाङ्गी पार्वतीमें श्रद्धा विश्वास रखनेवाला, धीर और गम्भीर होना चाहिये। शिष्यको अपने गुरूका भक्त, सदाचारी, सच्चा, परिश्रमी, आज्ञाकारी, निरभिमानी, निष्कपट और दृढ़ विश्वासका होना चाहिये।

'रासायनिक क्रियाएं ऐसे राजाके आश्रयमें करनी चाहियें जिसमें ईश्वरका भय हो, जो शिव और पार्वतीका भक्त हो और जिसके राज्यमें अराजकता न हो। रसायनशाला जो विस्तृत हो, जिसमें चार द्वार हों और जो देवी देवताओंकी मूर्तियोंसे सुसज्जित हो, वनके मध्यमें स्थापित करनी चाहिये।

"सोनेका वर्क तोलमें तीन निष्क लेकर नौ निष्क पारदमें अम्लोंके साथ तीन घन्टे तक घोटो, इसका शिवलिंग बनाकर विधिपूर्वक पूजा करो। पारद लिंगके दर्शनमात्रसे सहस्र ब्राह्मणकी हत्या और दस सहस्र गोवधके पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

"यह पारदविज्ञान शिवजीने स्वयम् मनुष्यको सिखलाया था। गुरूको चाहिये कि शास्त्रोक्त विधिपूर्वक शिष्यको आंखें बन्द करके इसकी शिक्षा दे।

"यह पारदविज्ञान अच्छी तरह गुप्त रखना चाहिये......भेद खुल जानेपर इसका प्रभाव जाता रहता है।"[८]

७—ऊर्णा लाक्षा तथा पथ्या भूलता भूम संयुतः
मूक मूषा गतो ध्मातष्टकणेन समन्वितः॥
सत्वं कुटिल संकाशं मुञ्चत्यत्र न संशयः।

८—षष्ठो ऽध्यायः—शिष्योपनयनम्
आचार्यो ज्ञानवान् दक्षो रसशास्त्रविशारदः।
मन्त्रसिद्धो महाधीरो निश्चलः शिववत्सलः॥
देवीभक्तः सदाधीरो देवतायागतत्परः।
सर्वाम्नाय विशेषज्ञः कुशलो रसकर्म्मणि॥
एवं लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत्।
गुरु भक्ताः सदाचाराः सत्यवन्तो दृढव्रताः॥
निरालस्याः स्वधर्मज्ञाः सदाज्ञापरिपालकाः।
दम्भमात्सर्य्यं निर्मुक्ताः कुलाचारेषु दीक्षिताः॥
अत्यन्त साधकाः शान्ता मन्त्राराधनतत्पराः।
इत्येव लक्षणै र्युक्ताः शिष्याः स्युः कार्यं सिद्धये॥
आतङ्क रहिते देशे धर्मं राज्ये मनोरमे।
उमा महेश्वरोपेते समृद्धे नगरे शुभे॥
कर्तव्यं साधनंतत्र रसराजस्य धीमता।
अत्यन्तोपवने रम्ये चतुर्द्वारोपशोभते॥
तत्रशाला प्रकर्त्तव्या सुविस्तीर्णा मनोरमा।
सम्यग्वातायनोपेता दिव्य चित्रैं विचित्रिता॥
निष्क त्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नव निष्ककम्।
अम्लेन मर्दयेद् यामं तेन लिङ्गं तुकारयेत्॥
तल्लिङ्गं पूजयेत् तत्र सुशुभैरुपचारकैः॥
लिङ्ग कोटि सहस्रस्य यत् फलं सम्यगर्चनात्।
तत् फलं कोटि गुणितं रसलिङ्गार्चनाद् भवत्॥
ब्रह्महत्या सहस्राणि त्रिगो हत्या युतानिच।
तत् क्षणाद् विलयं यान्ति रस लिङ्गस्य दर्शनात्।
रस विद्या शिवेनोक्ता दातव्या साधकायवै।
यथोक्तेन विधानेन गुरुणा मुदितात्मना।
कोष्ठी मूषा वङ्कनाली तुषाङ्गारव नोपलाः
भस्त्रिका दण्डिकानेकाः शिलाखल्वान्युलूखलम्॥

रस विद्या दृढं गोप्या मातुर्गुह्यमिव ध्रुवम्।
भवेद् वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशनात्॥

रसायनशाला

"रसायनशाला ऐसे स्थानमें स्थापित करनी चाहिए, जहां जड़ी बूटियां और कूएं बहुतायतसे हों...... । इसे विविध उपकरणोंसे सुसज्जित करना चाहिये । पारदका शिवलिंग पूर्वमें स्थापित करे, भट्टियोंको पूर्व-दक्षिणमें (अग्निकोण) सजावे और हथियारोंको दक्षिण-पच्छिम में (नैर्ऋत्यकोण) लगा दे...... । धातुओंका सार निकालनेके लिए कोष्ठीयन्त्र जलपात्र, धौंकनी, खरल घोंटना, ऊखल-मूसल, कई प्रकारकी मोटी महीन चलनी, घरिया बनानेके लिए मिट्टी, लकड़ीका कोयला, सूखे कंडे, कांचके मूषायंत्र, मिट्टी और लोहा, शंखों और कड़ाहोंको भी एकत्र कर रखना चाहिए ।

"जो सच्चे हैं, निर्लोभी हैं, देव ब्राह्मणोंके भक्त हैं, संयमी हैं, उचित आहार और विहार करने वाले हैं, उन्हींको रसायनी क्रियाएं करनेके लिए नियुक्त करना चाहिए ।"९

चरक सुश्रुत और वाग्भटकी शुद्ध आयुर्वैदिक पद्धतिके अनुसार जिन जड़ी बूटियों और काष्ठादिक ओषधियोंका पहले चलन था उनको पारद तथा रसक्रियाकी ओषधियोंने यकबारगी हटा तो नहीं दिया परन्तु उनके साथ साथ इनका प्रयोग भी धीरे धीरे होने लगा । ११ वीं शताब्दीमें ही सुश्रुतके प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्तने अपने स्वरचित प्रसिद्ध ग्रन्थ चक्रपाणिदत्तमें पारदसे बनी हुई ओषधियोंकी ही प्रशंसा नहीं की है वरन् उनको पहले पहल व्यवहारमें लानेके लिए अपनी भी प्रशंसा की है । सच्ची बात तो यह है कि १२ वीं शताब्दीमें धातुओं और उपधातुओंकी बनी हुई ओषधियोंका प्रचार बड़ी शीघ्रतासे हो गया और इसी कारण इस कालमें रसायनशालाके अध्ययनमें अच्छा प्रोत्साहन मिला । इस कालके रसायन तन्त्रोंसे मैं जितना चाहूं उतना उद्धरण दे सकता हूं, क्योंकि इनमें इधर उधर छिटका हुआ अथाह भण्डार भरा हुआ है, परन्तु आप सुनते सुनते थक जायंगे और आपका धीरज छूट जायगा । मुझे विश्वास है कि मैंने आप लोगोंको अच्छी तरह दिखला दिया है कि जिस विज्ञानकी शाखाकी खोजमें मैंने अपना सारा जीवन बिता दिया है उसका अनुशीलन हमारे प्राचीन भारतमें किस उत्साहके साथ होता था । यह वक्तृता समाप्त करनेके पहले मैं बेकनके उन शब्दोंको कह देना उचित समझता हूं जिनसे बढ़कर मेरे पास प्रशंसाके लिए शब्द ही नहीं है—

'अब हमको प्रत्यक्ष दीख रहा है कि बुद्धि और ज्ञानके स्मारक बल और हाथोंके स्मारकसे कितने दृढ और स्थायी होते हैं । क्या आप नहीं जानते कि होमरकी कविता बिना किसी अक्षर या पदकी कमीके ढाई सहस्र वर्षसे चली आ

९—सप्तमोध्यायः—रसशाला

रसशालां प्रकुर्वीत सर्व बाधा विवर्जिताम् ।
सर्वौषधमये देशे रम्य कूप समन्विते ॥
नानोपकरणोपेतां प्राकारेण सुशोभितां ।
शालायाः पूर्व दिग्भागे स्थापयेद् रसभैरवं ॥
वह्नि कर्म्माणि चाग्नेये याम्ये पाषाण कर्म्म च ।
नैऋत्ये शस्त्रकर्म्माणि वारुणे चालनादिकम् ॥
शोषणं वायु कोणे च बेध कर्मोत्तरे तथा ।
स्थापनं सिद्ध वस्तूनां प्रकुर्यादीशकोणके ॥
पदार्थ संग्रहः कार्य्यो रस साधन हेतुकः ।
सत्व पातन कोष्ठीं च सुरा कोष्ठीं सुशो भनां ॥
भूमि कोष्ठीं चलत् कोष्ठीं जल द्रोणी रनेकशः ।
भस्त्रिका युगलं तद्वन्नलिके वंश लोहयोः ॥

*   *   *   *

करणानि विचित्राणि द्रव्याण्यपि समाहरेत् ।
कण्डनीं पेषणीं खल्वान द्रोणी रूपांश्चवर्तुलान् ॥
सूक्ष्म च्छिद्र सहस्राढ्यां द्रव्य गालन हेतवे ।
चालनीं च कटत्राणि............... ॥
मूषामृत् तुषकार्पास वनोपलकविष्टकम् ।
काचमाचाया मृद् वराटानां कूपिकाचषकानिच ॥
निर्लोभाः सत्य वक्तारो देव ब्राह्मण पूजकाः ।
यमिनः पथ्य भोक्तारो योजनीया रसायने ॥

रही है जबकि इसी समयमें असंख्यों राजप्रासाद, मन्दिर, गढ़ (किले) और नगर धूलमें ऐसे मिल गये कि उनके चिह्न तक नहीं दिखाई पड़ते हैं ? यह सम्भव नहीं है कि साइरस, सिकंदर और सीज़रकी असली तसवीरें या मूर्तियां मिलें। इनका तो कहना ही नहीं, बहुत ही पासके समयके बड़े बड़े महाराजों और महापुरुषोंकी मूर्तियां भी असली नहीं मिल सकतीं, क्योंकि प्रथम मूर्तियां स्थायी हो नहीं सकतीं और उनके प्रतिरूपोंमें सच्चाई रह नहीं जाती। परन्तु मनुष्यकी बुद्धि और ज्ञानके प्रतिरूप ऐसी पुस्तकोंमें बचे रह सकते हैं, जो कालकी करालतासे मुक्त हो सकती हैं और जिनकी देखरेख तथा मरम्मत सदैव की जा सकती है।"

इस प्रकार सात आठ अथवा दस शताब्दियोंके बीत जानेपर भी गोविन्द, सोमदेव, नागार्जुन रामचन्द्र, स्वच्छन्द, भैरव और अन्य महापुरुष धूल धूसरित अलमारियों, कृमिभक्षित ग्रन्थों तथा हस्तलेखोंके द्वारा नवीन भारतको यह घोषणा सुना रहे हैं कि जिस विज्ञानको प्राणोंके समान प्यारा समझ कर पढ़ना पढ़ाना प्राचीनोंका कर्त्तव्य था उसका त्याग कर देना किसी प्रकार उचित नहीं है। मेरे आसपास मद्रासके होनहार नवयुवक उपस्थित हैं, इसलिए मैं उन्हीं शब्दोंमें उनसे अपील करना चाहता हूं जिन्हें रसायनाचार्य नागार्जुनने अपने ही मुखसे एक सहस्र वर्ष पहले कहा था—

"हे देवि, मैंने तेरे मन्दिरमें बारह वर्षतक आराधना की है। यदि तू इससे प्रसन्न है तो मुझे यह बर दे कि मैं रसायनकी दुर्लभ विद्याका ज्ञानी हो जाऊं।"

इसपर आप स्वयम् विचार करें कि यदि इतने पुराने समयमें इस विज्ञानकी बारीकियोंका पूरा विद्वान बननेके लिए कमसे कम बारह वर्षके अध्ययनकी आवश्यकता समझी जाती थी तो इस कालमें इसकी पूरी जानकारी करनेके लिए कितने वर्षके अध्यवसायकी आवश्यकता है।' रसायन विज्ञान अन्य वैज्ञानिक शाखाओंसे श्रेष्ठ है और आजकल यही राष्ट्रोंका भाग्यविधाता है। इसीके अनवरत अध्ययनसे जर्मनीने विश्वराजनीतिमें स्पृहणीय प्रधानता प्राप्त की है। किसी विद्याके अध्ययनमें दो उद्देश हो सकते हैं। एक है ज्ञान प्राप्ति और उसके प्रकाशमें अपनेको सुधारना और दूसरा है उससे अपना मतलब साधना और दूसरेको कष्ट पहुँचाना। विज्ञानके सच्चे जिज्ञासुको जिस समय प्रकृतिके गुप्त रहस्योंका पता लगता है उस समय उसे जो आनन्द प्राप्त होता है उसका प्रकट करना लेखनी और वाणीकी शक्तिसे बाहर है। मेरी प्रबल इच्छा है कि यह घोषणा करनेके लिए एक क्षणके लिए मुझमें मिल्टन जैसी वाक्शक्ति हो जाती कि हम लोग उस राष्ट्रकी सन्तान हैं जो आलसी और मन्द नहीं थे, जो तीक्ष्णबुद्धि रखते थे और चतुर थे, आविष्कार करनेमें दक्ष, शास्त्रार्थमें मर्मविद् और युक्तियुक्त थे और जहांतक मनुष्य ऊपर चढ़ सकता है वहांतक पहुँच चुके थे। यही कारण है कि गम्भीरसे गम्भीर विज्ञानके जिज्ञासु इतने प्राचीन और इतने प्रसिद्ध हो गये हैं कि विचारवान लेखकोंको यह मानना पड़ा है कि पैथागोरसके सम्प्रदायने भी इसी देशके प्राचीन दर्शनशास्त्रसे बहुतसे भाव ग्रहण किये हैं।

भगवानका इसमें कुछ गूढ़ उद्देश है कि उसने हमारी ही भूमिमें बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, शङ्कराचार्य, रामानुज, नागार्जुन और यशोधर बराहमिहिर और भास्कर ही नहीं वरन् राममोहनराय केशवचन्द्र और विवेकानन्दको उत्पन्न किया। इस पीढ़ीके नवयुवक वृन्द ! मुझे पूरा भरोसा है कि तुम लोग अपने कर्तव्यपालनमें पीछे नहीं हटोगे। जिस तरह प्राचीन उन्नतिके समय हमारी भारतमाताका सिर ऊंचा था

और अन्य राष्ट्रोंमें इसको आदरणीय स्थान मिलता था उसी प्रकार भविष्यमें होनेके लिए तुम्हारे ही पुरुषार्थ और कर्तव्यशीलताका सहारा है।

शरीरके रासायनिक उपादान

[ले०—डा० बी. के मित्र, एल. एम. एस.]

हमारा शरीर किन चीज़ोंसे बना हुआ है, इसके जाननेकी इच्छा हर एक मनुष्यको होती है। इस विषयको ठीक ठीक समझनेके लिये उच्च कोटिका रासायनिक ज्ञान होना चाहिये, पर मैं प्रयत्न करूंगा कि साधारण लोग भी इस विषयको थोड़ा बहुत समझ लें।

पाठको, यह तो आप जानते ही होंगे कि हमारा शरीर भी उन्हीं पदार्थोंसे बना है जो हम अपनी चारों ओर देखते हैं, जैसे पृथ्वी, जल, वायु आदि। मांके पेटसे जब बच्चा जन्म लेता है तो उसका भार लगभग दो सेरके होता है, परन्तु जवानीमें जाकर वह प्रति दिन बढ़ता हुआ डेढ़ वा दो मनका हो जाता है। यह भार कहांसे आता है? मांके दूध वा और खान पानकी चीज़ोंसे। अतएव प्रकट है कि दूधके अन्दर वह सब उपादान मौजूद हैं जो कि हमारे शरीरको बनाते हैं।

दूधको लीजिये और कड़ाहीमें डालकर गर्म कीजिये। थोड़ा थोड़ा करके उसका पानी मरता जायगा, यहां तक कि आपको एक डला खोएका मिल जायगा, जो ठोस होगा।

अब देखना चाहिये कि खोएमें क्या क्या चीज़ें हैं? उसका एक टुकड़ा करछेपर रखकर ख़ूब तेज़ आंचपर रख दीजिये। देखिये वह काला पड़ जाता है और उसमेंसे एक प्रकारकी दुर्गन्धवाली वायु भी निकलती है, जिसका कि आपमेंसे किसी किसीने चितापर जलते हुये नरदेहमें भी

Medicine वैद्यक]

अनुभव किया होगा। यह दूधका मांस जातीय पदार्थ है, जिसको पनीर कहते हैं। इसके अतिरिक्त खोएमें चिकनाई और शर्करा भी होती हैं, जिनको आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इनके अतिरिक्त खोएके अन्दर कुछ लवण भी रहते हैं, जैसा कि एक प्रयोग द्वारा आगे दिखाया जायगा।

पानीको एक और रीतिसे भी दूधमेंसे अलग कर सकते हैं। थोड़ा सा दूध लीजिये और उसमें नीबू निचोड़ दीजिये। देखियेगा कि दूध फट कर गुट्ठल (पनीर) बन जाता है। यह अधिकतर उसका मांस जातीय पदार्थ है, पर उसमें दूधकी चिकनाई (घी) भी सम्मिलित रहती है। दूधका यही पनीर शिशुके शरीरमें मांसपेशी तथा अन्य धातुओंको बनाता है। इस पदार्थमें नत्रजन होनेके कारण यह जलते समय मांसकी तरह दुर्गन्ध देता है।

दूधका एक और उपादान भी है जिसके बनानेकी रीति साधारण तौरपर सब लोग जानते हैं। यह पनीरसे भिन्न पदार्थ है और न केवल सुगमतासे जलता है बल्कि जलनेमें उस प्रकारकी दुर्गन्धि नहीं पैदा करता। इसका कारण यह है कि इसमें नत्रजन नहीं होती है, जो कि पनीरमें मौजूद है। यह मनुष्य शरीरमें भी धीरे धीरे जलकर उत्ताप पैदा करता है और मांस पेशियोंकी क्रियामें ईंधनकी तरह काम आता है। शरीरके अन्दर इस प्रकारका पदार्थ 'चरबी' मेदरूपसे सञ्चित रहती है।

उपर्युक्त रीतिसे पनीर बनानेमें जो दूधकी लस्सी बच जाती है अगर आप उसको धीरे धीरे गर्म करके उसका पानी उड़ा दें तो कड़ाहीके तलेपर एक शक्कर जैसी चीज़ जमी मिलेगी। इसीसे दूध वा खोआ मीठा मालूम होता है। यह शक्कर यद्यपि गन्नेकी शक्करसे भिन्न है तथापि उसी प्रकारकी चीज़ है।

मनुष्य शरीरमें रक्तके अन्दर एक प्रकारकी (अंगूरी) शर्करा होती है जो कि हमारी मांस-

पेशियोंमें पहुंचकर उनको चलानेमें ईंधनकी तरह खर्च हो जाती है। यह अंगूरी शक्कर शरीरके अन्दर दुग्ध शर्करा या गन्नेकी खांड तथा मण्डजातीय पदार्थोंसे, जो हम खाते हैं, पैदा होती है। अतएव रासायनिक दृष्टिसे चावल आदिका मण्ड और शक्कर एक ही जातिके पदार्थ हैं। इनमें भी नत्रजन नहीं होती, इसलिये जलनेमें गन्ध नहीं देते।

उपर्युक्त ठोस चीज़ोंके (पनीर, घी, शक्कर) अतिरिक्त दूधमें थोड़ा सा लवण जातीय पदार्थ भी होता है। यदि आप खोएके डलेको धौंकनीसे हवा पहुंचाते हुये खुली कुठालीमें रखकर फूंकें तो उसका आङ्गारिक भाग जल जलाकर अन्तमें एक राखका सा पदार्थ बचेगा। यह दूधका अनाङ्गारिक लवण भाग है। इसमें अधिकतर चूना, सोड़ा आदि पार्थिव पदार्थोंके लवण हैं। यह मनुष्य शरीरमें हड्डी तथा अन्य धातुओंमें पाये जाते हैं।

दूधके इस स्थूल रासायनिक विश्लेषणके बाद अब हम मनुष्यशरीरके बारेमें दो चार बात कह कर इस निबन्धको समाप्त करेंगे। मनुष्यशरीरमें भी उपर्युक्त सभी पदार्थ पाये जाते हैं। शायद आपको सुनकर आश्चर्य हो कि हमारे ठोस शरीरमें भी प्रायः रुपयेमें दस आने भर जल है। बाकी छः आनेके अन्दर क़रीब तीन आने भर पार्थिव लवण हैं। अर्थात् यदि किसी मनुष्यका भार १५० पौंड हो तो उसके शरीरके भिन्न भिन्न उपादान लगभग निम्नलिखित सूचीमें दिखाये हुये अनुपातसे होंगे—

अनाङ्गारिक	आङ्गारिक
जल......९० पौन्ड	नत्रजनीय (मांसादि) ३० पौंड
लवणादि १० ,,	अनत्रजनीय (मेद) २० ,,
जोड़ १०० ,,	जोड़ ५० ,,

कुल जोड़ १५० पौंड।

'आओ खेल खेलें'

[ले०—अध्यापक मनोहरलाल, एम० ए०]

राम और कृष्ण सहोदर भाई हैं। कृष्णकी उम्र बारह या तेरह वर्षकी होगी। वह मथुराकी किशोरीरवन पाठशालाकी सातवीं कक्षामें पढ़ता है। स्कूलकी छुट्टी हो जानेसे वह अपने घर आया है और अपने भाई रामके लिए, जो केवल पांच वर्षका है, कई प्रकारके खिलौने और चित्रोंकी पुस्तकें लाया है। बड़े शहरमें रहनेसे कृष्ण कुछ पहलेसे अधिक चतुर और बाचाल हो गया है और जब मौका मिलता है अपने गांव, बहादरपुरके, लड़कोंपर रोब गांठनेका प्रयत्न किया करता है।

गत मासकी (अप्रेल) चौदहवीं तारीखको वह अपने हमजोलियोंके घरोंपर पहुंचा और उनको नये सम्वत्‌की बधाई देने लगा। वे बेचारे बड़े घबड़ाये कि उस दिन कैसा वर्षारम्भ हुआ। एक वर्षका आरम्भ तो पहली जनवरीको हुआ, दूसरे वर्षका आरम्भ तीन दिन पहिले हो चुका था, फिर वह तीसरा वर्षारम्भ कैसा? उसके हमजोली बड़े चकराये और अपने माता पिताओंसे जा जाकर पूछने लगे कि कृष्ण कोरी ठठोली ही करता है अथवा उसके कथनमें सत्यता भी है। गांवके आदमी भोले होते ही हैं, बिचारे बड़े घबड़ाये पर उत्तर क्या देते। इधर उनका पुराना विश्वास, उधर मथुरापुरीसे पढ़कर आये हुए मिडिल किलासके एक लड़केका कथन। किसे सच मानें, किसे झूंठ। उनमेंसे कुछ आदमियोंने आकर कृष्णसे प्रश्न कर ही डाला और उससे अपने कथनका प्रमाण देनेको कहा। उसने भी झट साहित्य सम्मेलनकी विवरण पत्रिका, विज्ञानका मेषका अङ्क और ज्ञानमण्डलका लटकाङ्क ला दिखला दिये। इतनेमें एक ज्योतिषी भी वहां आ

पहुंचे। यह गांवमें एक ही ज्योतिषी थे, संस्कृत जानते थे, पूजा पाठ कराया करते थे। उन्होंने यह सब हाल जान साहित्य सम्मेलनको खोटी खरी सुनाई और कृष्णको भी डांट बतलाई, जो बिचारा अपने संगी साथियोंको ले क्रोध-मूर्तिसे जान बचा, भागा। आइये हम भी इनके पीछे पीछे चलें और इनके खेल देखें।

यह मित्रमण्डली दौड़ती दौड़ती एक आमों-के बागमें पहुंची। आमोंमें बौर आ रहे थे। उनकी सौरभसे समीर सुगन्धित हो, इठला इठला कर, चल रही थी। उसकी यह मद भरी चाल मुर्दा दिलोंमें जान फूंक देती है, फिर इन बालकोंका कहना ही क्या था। खूब धूमधाम करने और खेलने लगे।

जब खेलते खेलते थक गये कृष्णने सबको, एक जगह जमाकर कच्चे आम, जो पहिलेसे ही इकट्ठे कर लिये थे, बांट दिये और सब नमक लगा लगा खाने लगे। इसी बीचमें कृष्णने अपनी योग्यताका परिचय देना आरम्भ किया।

कृष्ण--मोहन! देखो हम तुम्हारे मनकी बात बता सकते हैं।

मोहन--अजी बस बता चुके। किसी औरको बहकाना।

कृष्ण--अच्छा, सुनो, अपने मनमें कोई संख्या ले लो।

मोहन--अच्छा लेली।

कृष्ण--उसका तिगुना करो।

मोहन--कर लिया।

कृष्ण--बतलाओ कि गुणनफल (तिगुनी संख्या) सम है या विषम?

मोहन--सम, विषम और गुणनफल क्या होता है?

कृष्ण-दो या अधिक संख्याओंको गुणा करनेसे जो संख्या मिलती है गुणनफल कहलाती है। दो और तीनका गुणा किया, मिला छः, तो छः दो और तीनका गुणनफल हुआ। सात, नौ, पांच आदि संख्याएं, जिनमें दोका पूरा भाग नहीं जाता, विषम कहलाती हैं और जिनमें दोका पूरा भाग चला जाता है वह सम कहलाती हैं।

मोहन--तो मेरी संख्या विषम है।

कृष्ण--अच्छा, तो उसमें एक जोड़कर दोका भाग दे दो, अर्थात् आधा कर दो।

मोहन--फिर क्या करें?

कृष्ण--अब जो आधा आया, उसका तिगुना करो।

मोहन--अब पीछा भी छोड़ोगे कि नहीं?

कृष्ण--अच्छा इस तिगुनेमें नौका भाग दे दो और जो संख्या आवे वह हमको बता दो।

मोहन--पांच आये।

कृष्ण--तो तुम्हारी संख्या ग्यारह थी।

मोहनको बड़ा अचम्भा हुआ। वह कहने लगा कि अबकी मैं कोई सम संख्या लूंगा। तब तुम्हारी दाल न गलेगी।

कृष्ण--तबतो और भी आसानी होगी। तुम अब लेकर भी देख लो।

मोहन--संख्या ले ली।

कृष्ण--पहले जितनी बातोंका उत्तर दिया, अब फिर दे दो, केवल स्मरण रखो कि तिगुना करनेके बाद एक मत जोड़ना।

मोहन--नहीं, तुम्हीं बताते जाओ।

कृष्ण--अच्छा संख्याका तिगुना करो, तिगुने-का आधा करो। इस आधेका तिगुना करो और नौसे भाग देकर जो संख्या आवे बताओ।

मोहन--छः आये।

कृष्ण--तो तुम्हारी संख्या बारह थी।

राम जो अबतक चुपचाप खड़ा था, बोल उठा--"वाह भइया, मैं तुम्हारी चाल समझगया। तिगुनेका आधा ड्योढ़ा हुआ, उसका तिगुना साढ़ेचार गुना हुआ। साढ़ेचारमें नौका भाग

देनेसे संख्याका आधा आया, जो तुमने पूछ लिया। उसीका दुगना करके बतला देते हो।"

कृष्ण—तुम खूब समझे, शाबाश। पहले उदाहरणमें क्या किया था वह भी तो बताओ।

अब राम बड़ा सिट पिटाया। उसकी अकल काम ही न देती थी। तब कृष्णने यों समझाया—

"विषम संख्या भी तो किसी सम संख्यासे एक कम या एक अधिक होती है। तो जो व्यवहार तुम सम संख्याके साथ करते हो वही विषम संख्याके साथ करो तो जो कुछ अन्तर पड़ेगा वह केवल १ की वजहसे पड़ेगा। मान लो कि विषम संख्या जो तुमने ली ११ थी। इसका तिगुना ३३ हुआ। इसका आधा नहीं कर सकते, इसीसे एक जोड़ना पड़ा। ३४ का आधा हुआ १७। १७ का ३ गुना हुआ ५१, जिसमें भाग देनेसे ५ भजनफल और ६ शेष बचेंगे। पांचका दुगना दस हुआ, उसमें एक जोड़ा तो ग्यारह हो गये।

मोहन—हां, अब मेरी समझमें आया। एकका तिगुना तीन होगा, एक जोड़नेसे चार आयेंगे, चारका आधा दो दोका तिगुना छः और छःमें नौका भाग ही न जायगा। इसीसे विषम संख्याके पहलीकी सम संख्या ज्ञात हो जायगी।

कृष्ण—मोहन तुम भी तो बीजगणित पढ़ते हो। देखो प्रत्येक संख्या—चाहे वह सम हो या विषम—इस रूपकी होगी २क या २क + १। इनमें-से प्रत्येकके साथ उपरोक्त व्यवहार करनेसे अज्ञात संख्या मालूम हो जायगी।

(१) २ क × ३ = ६ क
६ क ÷ २ = ३ क
३ क × ३ = ९ क
९ क ÷ ९ = क
अज्ञात संख्या २ क है।

(२) (२ क + १) × ३ = ६ क + ३
(६ क + ३ + १) ÷ २ = ३ क + २
(३ क + २) × ३ = ९ क + ६
(९ क + ६) ÷ ९ = क + $\frac{२}{३}$
अज्ञात संख्या २ क + १ है।

कृष्ण—इसी प्रकार किसीकी सोची हुई संख्या कई अन्य रीतियोंसे बतलाई जा सकती है। उनको भी मैं तुम्हें बतलाये देता हूं।

जिस व्यक्तिने संख्या ली है उससे यह क्रियाएं कराओ।

(१) संख्याको ५ से गुणा कराओ।

(२) गुणनफलमें ६ जुड़वाओ।

(३) योगफलको अर्थात् जो आवे उसे ४ से गुणा कराओ।

(४) गुणनफलमें ९ जुड़वाओ।

(५) योगफलको ५ से गुणा कराओ।

और गुणन फल पूछलो।

गुणनफलमेंसे १६५ घटाकर, १०० का भाग दो, भजनफल ही निर्दिष्ट संख्या होगी।

मोहन—इसका क्या सिद्धान्त है?

कृष्ण—देखो तुमने संख्याको कै गुना करा दिया और उसमें कितना जुड़वा दिया?

मोहन—५ गुना, फिर ४ गुना, और अन्तमें ५ गुना—अर्थात् १०० गुना।

कृष्ण—उसमें जोड़ा कितना?

मोहन—६ जोड़कर ४ गुना किया। हुए २४। ९ जोड़े आये ३३, ५ गुना किया, आये १६५।

कृष्ण—अच्छा ठीक है। यदि क संख्या मान लें तो संख्या लेनेवाला व्यक्ति यह क्रियाएं करेगा—

(१) क × ५ = ५ क; (२) ५ क + ६
(३) (५ क + ६) × ४ = २० क + २४
(४) २० क + २४ + ९ = २० क + ३३
(५) (२० क + ३३) × ५ = १०० क + १६५

यह अन्तिम संख्या वह तुम्हें बतला देगा। इसमेंसे १६५ घटानेपर १०० क बचे, जिसमें १०० का भाग देकर क जान लोगे।

मोहन—हां, ठीक है।

कृष्ण—अब तीसरी विधि सुनो।

पहले तुम कोई छोटी छोटी चार सख्याएँ लेकर काग़ज़पर लिख लो। मान लो कि तुमने ६, ३, १०, ५, संख्याएँ ली हैं। अब जिस व्यक्तिने संख्या चुनी है उससे यह क्रियाएँ करनेको कहोः—

(१) अपनी संख्या ६ से गुणा करो।
(२) गुणनफलमें ३ का भाग दो।
(३) भजनफलको १० से गुणा करो।
(४) गुणनफलमें ५ का भाग दो।
(५) भजनफलमें अपनी संख्याका भाग दो।
(६) भजनफलमें अपनी संख्या जोड़ दो और योगफल बतला दो।

अन्तिम संख्यामें से $\frac{६ \times १०}{३ \times ५}$ अर्थात् ४ घटा दो, असली संख्या मालूम हो जायगी। यहां ६, ३, १०, ५ की जगह कोई भी संख्याएँ ली जा सकती हैं। मान लो कि तुमने त, थ, ध, न चार संख्याएं लीं और दूसरे व्यक्तिने क संख्या ली, तो उपरोक्त क्रियाओंका परिणाम यह होगा।

(१) $क \times त$ (२) $\frac{क \times त}{थ}$ (३) $\frac{क \times त \times ध}{थ}$ (४) $\frac{क \times त \times ध}{थ \times न}$ (५) $क \times \frac{त \times ध}{थ \times न} \times \frac{१}{क} = \frac{त \times ध}{थ \times न}$

(६) $\frac{त \times ध}{थ \times न} + क$

इस संख्याके जाननेपर $\frac{त \times ध}{थ \times न}$ घटानेसे क मालूम हो जाता है।

मोहन—कोई और भी विधि है या सब खतम हो चुकीं।

यह बातें हो ही रही थीं कि गांवके स्कूलके हेडमास्टर-श्री गोपालदासजी भी वहां सैर करते हुए आ पहुंचे। वे बच्चोंको बहुत प्यार किया करते थे। अतएव इन विद्यार्थियोंको देखकर इनके पास आकर पूछा, "मोहन तुम लोग क्या खेल खेल रहे हो।"

मोहनने उठकर मास्टर साहबको नमस्कार किया और कहा—"कृष्ण हम लोगोंको कुछ गणितके खेल बतला रहा था।"

मास्टर—क्या खेल तुमने सीखे ?

मोहनने तीनों तरकीबें मास्टर साहबको बतलाईं। मास्टर साहिब बड़े प्रसन्न हो कर बोले—

"अच्छा, देखो हम भी तुम्हें एक खेल बतलाते हैं। तुम कोई संख्या ले लो, उसमें जोड़ आदि क्रियाएँ तुम करते जाओ और उनका जवाब हम बताते जायेंगे। कोई संख्या मनमें सोच लो।"

मास्टर—संख्याको ६ से गुणा करो और गुणनफलमें १२ जोड़ दो।

मोहन—जी, जोड़ लिया।

मास्टर—योग फलमें ४ का भाग दो।

मोहन—भाग दे लिया।

मास्टर—अच्छा अब अपनी संख्याका ड्योढ़ा करके भजनफलमेंसे घटा दो।

मोहन—घटा लिया।

मास्टर—तुम्हारे पास केवल ३ बचे।

मोहनको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब मास्टरने समझाया कि तर्कीब यह है कि असली संख्याको बीचमें उड़ा देते हैं और अन्त्य क्रियामें अपनी बतलाई हुई संख्याओंको रहने देते हैं। मान लो कि तुमने क संख्या ली। इसका ६ गुना $= ६क$ जिसमें १२ जोड़कर ४ का भाग देनेसे आया $\frac{६क + १२}{४}$ इसमें से असली संख्याका ड्योढ़ा $\frac{६क}{४}$ घटाने से बचा $\frac{१२}{४}$ अर्थात् ३। ६, १२, और ४ की जगह जो संख्याएँ चाहो ले सकते हो। मान लो कि त, थ, द, संख्याएँ लीं, तो विविध क्रियाओंके फल यह होंगेः—

$$\frac{तक + थ}{द} - \frac{त}{द}क = \frac{थ}{द}$$

यहां थ, द, तुम्हारी जानी हुई संख्याएँ हैं। इसीसे $\frac{थ}{द}$ भी जान लोगे।

कृष्ण—मास्टर साहिब यह तो बहुत अच्छी तरकीब है, कोई ऐसाही प्रश्न और बतलाइये।

मास्टर—अच्छा, एक खेल और बताते हैं। मोहन, तुम कुछ गोलियां ले लो। कृष्ण, तुम मोहनसे दसगुनी गोली लो।

कृष्ण—हम दोनोंने ले लीं।

मास्टर—मोहन, तुम सात गोली कृष्णको दे दो।

मोहन—मास्टर साहिब, दे दीं।

मास्टर—कृष्ण, अब जितनी गोलियां मोहनके पास हैं, उनसे पंचगुनी गोलियां उसे दे दो।

कृष्ण—जी, दे दीं।

मास्टर—तो तुम्हारे पास ४२ गोलियां बचीं।

कृष्ण—जी, आपने तो बिल्कुल ठीक बतला दिया। अब कृपाकर इसका गणित समझाइये।

मास्टर—हमने तुमको मोहनसे ५ गुनी गोलियां लेनेको कहा था और मोहनसे भी तुम्हें ७ गोलियां दिलवा दीं। इस तरह, असली संख्या (क) से सात ऊपर पंचगुनी तुम्हारे पास पहुंची और मोहनके पास उससे ७ कम रह गईं। अर्थात् तुम्हारे पास तो ५क+७ पहुंचीं और मोहनके पास रहीं क-७। फिर तुमसे यह कहा कि मोहनके पास जितनी गोलियां हैं उनसे पंचगुनी मोहनको दो।

ऐसा करनेमें तुमने ५ गुनी संख्यासे ३५ कम गोलियां मोहनको दीं। पर तुम्हारे पास थीं संख्याकी पंचगुनीसे ७ अधिक। इसलिए तुम्हारे पास बचीं ३५+७=४२। या यों समझो कि तुमने मोहनको दीं ५(क-७), इसलिए तुम्हारे पास बचीं (५ क + ७) - ५ (क - ७)

=७ (५ + १)=४२

जो दो संख्याएं हमने तुम्हें बतलाईं उनकी जगह और भी संख्याएं ले सकते हैं। मान लो ५ की जगह त और ७ की जगह थ लिया।

तो तुमने लीं तक, मोहनने तुम्हें दीं थ, तुम्हारे पास हुईं कत+थ, मोहनके पास रहीं क-थ। तुमने मोहन को दीं त (क - थ), तुम्हारे पास बचीं—

(तक+थ) - त (क-थ) = थ(१+त)

कृष्ण—मास्टर साहिब बात समझमें आ गई। अब कुछ और बतलाइये।

मास्टर—चलो घर चलें फिर कभी बतलायेंगे।

फोटो ज़िंकोग्राफ़ी अर्थात् छायाचित्रण द्वारा छापे या ठप्पे (ब्लाक) बनाना*

[ले०—श्रीयुत श्री रामजीवन त्रिपाठी, फोटोआर्टिस्ट]

इस लेखके पढ़नेवाले, हमें आशा है कि, आलोक चित्रणकी साधारण क्रियाओं और उपादानोंसे परिचित होंगे। उनका अनुभव होगा कि नेगेटिव तैय्यार करनेके उपरान्त पी. ओ. पी. पर चित्र छापनेमें कितना समय और द्रव्य नष्ट होता है। यदि किसी चित्रकी पांच सात हज़ार प्रतियोंकी आवश्यकता हुई तो पी. ओ. पी. पर छापते छापते मनुष्य हैरान हो जाय। अतएव बहुत दिनोंसे इस बातका प्रयत्न होता रहा कि किसी प्रकार आलोक-चित्रणकी विधिसे ही छापे या ठप्पे तैय्यार होने लगें। काठ या सीसेके ठप्पे बनाना बहुत दिनोंसे प्रचलित है, पर उनके बनानेमें समय बहुत लगता है और वह सफ़ाई नहीं आती जो छाया-चित्रोंमें होती है। अतएव हम यहांपर छायाचित्रण द्वारा छापे बनानेकी एक विधिका उल्लेख करते हैं।

नेगेटिव तैय्यार करना

जिस चित्रका ब्लाक बनाना हो, उसे ऐसी जगह लटकाओ या रखो कि जहां न ज़्यादा प्रकाश पड़ता हो और न प्रकाशकी कमी ही हो। इसके बाद (Ilford process plate) इलफर्ड

---

* इस लेखमें केवल एक पुरानी विधिका वर्णन है, पर यह विधि बहुत सरल है और नये सीखनेवालोंके कामकी है। हमें आशा है कि लेखक महोदय फिर एक विस्तृत लेख नई विधियोंपर देंगे।—सं०

कम्पनीकी बनाई हुई प्लेट लेकर स्लाइडमें रखकर एक्सपोज़ करके उसका स्पष्टीकरण और स्थायीकरण (developing and fixing) कर लो।

यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि नेगेटिव लेते समय प्लेटके सामने जालीका (screen) प्रयोग करना पड़ता है। यह जाली कांच-पट-पर हीरेकी कनीसे खोदी जाती है और बनी बनाई बाज़ारमें मिल सकती है। यह बहुत कीमती होती है। जालीकी एक इञ्च लम्बाईमें जितनी अधिक लकीरें खुदी होती हैं, उतना ही अच्छा ब्लाक बनता है। साथ ही उसका मूल्य भी अधिक बढ़ जाता है, पर एक जाली, यदि टूट न जाय तो, सदा काम देती रहेगी।

पहले ज़मानेमें जब यह जालियां न मिलती थीं तो मलमल किमख़्वाब आदि कपड़ोंकी जालियोंका प्रयोग किया करते थे।

जालीके रखनेके लिए एक विशेष प्रकारके 'प्लेट एण्ड स्क्रीन होलडरका प्रयोग किया जाता है। इस यन्त्रकी सहायतासे डार्कस्लाइड लगानेके बाद भी प्लेट और स्क्रीनके बीचका अन्तर घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

ज़िंक प्लेट तैय्यार करना

प्रथम अभ्यासके लिये $\frac{१}{४}$ साइज़की समतल, चौरस मज़बूत जस्ते या तांबेकी प्लेट छांट लो। यदि उसमें खुरदरापन हो तो उसके सिरेपर एक चौकोर लकड़ीकी पटिया रखकर लोहेके हथौड़ेसे पीटो और तब किसी मेज़पर रखकर कांच लगे काग़ज़से (emery paper) रगड़ो। * जब प्लेटपर अच्छी पालिश हो जाय और उसकी सतह चिकनी और चमकदार दिखलाई पड़े तब दो तीन मिनिटतक एक भागमें १५ भाग पानी मिले हुये गंधकाम्लमें (diluted sulphuric acid 1 in 15) या एक भागमें २० भाग पानी मिले हुये शोरेके तेज़ाबमें (diluted nitric acid 1 in 20) डोब देकर साफ़ कर लो।

प्लेटको सेंसिटाइज़ करना

एक ऐसे अँधेरे कमरेमें (dark room) जिसमें रोशनी बिलकुल न आती हो और इतना अन्धकार हो कि हाथको हाथ न दिखाई दे एक लाल रोशनीका लेम्प red lamp जलाओ और उसकी रोशनीमें एक गहरे लाल या गहरे नीले रंगकी कांचकी ढक्कनदार बोतलमें निम्न लिखित मसाला तैय्यार करो।

सेंसेटाइज़ करनेका घोल* (Sensitising solution)

बिट्युमन पौडर (Bitumen powder)	१ औंस
स्पिरिट रेक्टिफाइड (Rectified spirit)	१ औंस
क्लोरोफार्म (pure chloroform)	२ औंस

दोनों द्रवोंमें बिट्युमन पौडर घुलानेकेलिये शीशीको खूब हिलाओ और तैय्यार हो जानेपर अंधेरेमें ही रख छोड़ो। मगर इसके साथ ही यह ध्यान रखना चाहिये कि क्लोरोफार्म एक भयानक वस्तु है, जिसको बहुत ही होशियारीके साथ काममें लाना चाहिये। इसमें ऐसी उग्र गन्ध है कि नाकमें जानेसे सरमें दर्द और बहुत सूंघनेपर बेहोशी पैदा करता है। इसकी शीशीको भी सूखी और ठंडी जगहमें रखना चाहिये। यह सब करनेके उपरान्त तैय्यार की हुई जस्ते या

* ध्यान रहे सदा एकही तरफ दाएँसे बाएँ या बाएँ से दाएँको रगड़ना चाहिये। दोनों तरफ या चारों तरफ रगड़नेसे भद्दी लकीरें पड़ जायंगी और सुधरनेकी अपेक्षा बिगड़नेकी अधिक सम्भावना रहेगी।—लेखक

*रेकटीफाइड स्पिरिटको जगह रेकटीफाइड बेंज़ीनका प्रयोग करना अच्छा है। घोलकोंके ४४० भागमें ३० भाग बिट्युमन डालना चाहिये। प्रायः केवल बेंज़ोलका प्रयोग किया जाता है, पर कभी कभी २ भाग क्लोरोफार्म और ३ भाग बेंज़ोलका भी प्रयोग करते हैं। क्लोरोफार्म में एक बड़ी त्रुटि है कि बहुत जल्दी उड़ता है, यद्यपि वह बड़ा अच्छा घोलक है। लेवेण्डर (oil of lavender) की दो चार बूंद घोलमें इसीलिए मिला देना उचित है कि क्लोरोफार्म या बेंज़ोल जल्दीसे उड़कर मसालेके स्तरको चटखना न करदें। वेनिस टर्पेंटीनकी बहुत थोड़ी मात्रा घोलमें मिला देनेसे नेगेटिवका मसालेदार जस्तेसे चिपक जानेका भय नहीं रहता—सं०

तांबेकी प्लेटको बाएँ हाथसे पकड़ो और दाहिने हाथसे उसके बीचोंबीच इस ढंगसे सोल्युशन डालो कि वह एक साथ सब जगह फैल जाय! नीचे एक साफ़ रकाबी रख छोड़नी चाहिये, जिससे नीचे गिरा हुआ सोल्युशन पुनः शीशीमें डाल सकें। प्लेटपर गिरते ही फ़ौरन उसको हिलाना चाहिये, इससे वह बराबर सब जगह फैल जायगा। इस कामके लिये पहिले उत्तम अभ्यासका होना आवश्यक है। जो लोग वेट-प्लेट-फ़ोटोग्राफी (wet plate photography) जानते हैं या जिन्होंने कभी नेगेटिवपर वार्निश किया है, वे उसको भली प्रकार कर सकेंगे। नहीं तो पहिले एक साफ़ कांचपर गाढ़ा तेल डाल डाल कर अभ्यास कर लेना चाहिये। ऐसा करनेसे समय भी कम लगेगा और सोल्युशन भी खराब न होगा।

बड़े बड़े कारखानोंमें तो इस कामके लिये एक ह्विरलर (whirler) नामक यंत्रका प्रयोग किया जाता है। मगर जो लोग कम काम करते हैं उनके लिये अपने हाथसे ही काम करना अच्छा है। जब प्लेटपर सोल्युशन अच्छी तरह फैल जाय, तब इसको वहीं रेकपर (rack) सूखनेके लिये रख देना चाहिये।

सूखनेके बाद एक छापनेके चौखटेमें (printing frame) प्रोसेस प्लेटपर बना हुआ नेगेटिव रखो और ऊपर उस मसालेदार जस्तेके प्लेटको (sensitized zinc plate) इस तरह रखो कि दोनोंकी फिल्म अर्थात् झिल्ली (film) आपसमें मिल जायं, जैसे कि पी. ओ. पी. को रखते हैं। अब इसको छायामें छपनेके लिये रख देना चाहिये। यदि सूर्य स्वच्छ होगा तो दो घंटेके अंदर छपकर तैय्यार हो जायगा।

जस्तेका स्पष्टीकरण (developnig)

प्रिंटिंग समाप्त होनेके अनन्तर चौखटेको डार्करूममें ले जाकर उससे प्लेट निकाल कर एक साफ़ रकाबीमें रख देनी चाहिये। अब तक इस पर तस्वीर साफ़ साफ़ दिखाई न देती होगी। अब इसपर शुद्ध तारपीनका तेल (turpentine pure) डाल देना चाहिये।

मसालेकी तहका वह अंश जिसपर प्रकाशकी क्रिया नहीं हुई है तारपीनमें घुलकर बह जायगा और अब छपा हुआ चित्र साफ़ साफ़ दिखाई देने लगेगा। जब चित्रके समस्त अङ्ग साफ़ दिखाई देने लगें तब स्वच्छ पानीसे ख़ूब धोकर सुखा देना चाहिये। अब यह तपानेके लिये तैय्यार है, जिसको (fix) डाट रखना या स्थायी करना कहते हैं। इसमें विशेष दिक़्क़त नहीं है। फ़िक्सिंगके लिये यह प्रज्वलित अग्निके ऊपर मुँह करके थामी जाती है, और जब प्लेटके ऊपरका चित्र (image) कुछ काला और सुनहला दिखाई देने लगता है हटाकर ठंडी कर ली जाती है।*

एचिंग अर्थात् (etching) तेज़ाब-खुदाई

एक काठकी रकाबीमें गला हुआ मोम या पैरेफिन भर दो और बनाया हुआ ज़िंक प्लेट इस तरह जमा दो कि उसकी नीचेकी तह मोममें घुस जाय पर चित्रके ऊपर मोम न आने पावे। अब एक हिस्सा शोरेके तेज़ाबमें १२ हिस्सा पानी मिला (solution of nitric acid 1 in 12) इसपर डाल कर हिलाते जाओ, जब तक कि प्लेटपर पूर्णरूपसे एचिंग न हो जाय। तेज़ाबका सोल्युशन स्तर-रहित भागोंको खा जायगा और उनकी जगह गड्ढे (depression) पड़ जायंगे। जिस स्थानमें सेंसेटाइज़िंग सोल्युशनकी तह रहेगी, उस स्थानपर एसिडका प्रभाव नहीं हो सकता, इसलिए वह भाग जैसेका तैसा रहेगा। यदि गहरे एचिंगकी आवश्यकता हो तो ज़िंक प्लेटपर पहिले लिथोग्राफ़ अर्थात् छापेकी स्याही (lithograph-

* धूपमें रखनेसे ही काम चल जायगा। साधारणतया प्लेटको पोंछकर सुखाना भर काफी है। सं०

ic ink) फेर कर ऊपर खून ख़राबेका* (dragon's blood) बुकनी बुरकाकर पहिलेकी तरह आगपर रखना चाहिये। इस प्रकार प्लेटमें एसिडकी क्रियाको रोकनेकी विशेष शक्ति आजायगी और इससे एचिंग भी पूर्वापेक्षा उत्तम होगा। परन्तु प्लेटको तेज़ाबमें रखनेके पूर्व उसकी पीठ और बगलोंपर गला हुआ मोम या पैरेफिन अवश्य लगा देना चाहिये, नहीं तो उसकी पीठ एसिडके प्रभावसे निर्बल हो जायगी।

प्लेटका एच करना बिजलीकी बाटरियों (electric batteries) द्वारा भी होता है, और अच्छा होता है, पर यह तभी करना चाहिये जब एक साथ बहुतसे प्लेटोंपर करनेकी आवश्यकता हो। थोड़े प्लेटोंके लिये बाटरियां बनानेका व्यर्थ झंझट करनेसे कुछ फ़ायदा नहीं। अस्तु, अब यह प्रेसमें देने योग्य हो गया है, क्योंकि एसिडकी क्रियासे प्लेटकी सतहपर छोटे छोटे गड्ढे पड़ गये हैं और अब इसपर प्रेसका इंक रोलर (ink roller) फेरा जायगा तो इनमें स्याही न भरने पावेगी और इसीलिए वे प्रकाशके प्रभावसे काग़ज़में सफ़ेद दीख पड़ेंगे।

* दुःखकी बात है कि हम पारिभाषिक शब्दोंसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। बहुतसे ऐसे आवश्यक पदार्थ हैं जो बाज़ारोंमें बलिक मामूली गाँवोंमें भी मिल सकते हैं, पर हम उनका देसी नाम नहीं जानते-इसलिए लाचार होकर हमें अंग्रेज़ी दवाखानोंसे बहुत ज़्यादा कीमत देकर ख़रीदना पड़ते हैं। आज कल इस विषयपर पुस्तकें लिखनेवाले भी एक बड़ी भारी गलती कर रहे हैं, वे नहीं जानते कि उनपर बड़ा भारी दायित्व है, उनको चाहिये कि इस विषयकी पूरी खोज़ करें। एक प्रसिद्ध लेखकने Dragon's blood का अनुवाद किया है, "छिपकलीका ख़ून" जो बिलकुल ग़लत है। यह एक प्रसिद्ध चीज़ है, जो प्रायः मामूलीसे मामूली गांव में 'ख़ून ख़राबेके' नामसे बिकती है। यह रंग और वार्निशके काम बहुत आती है। इस तरह ग़लत शब्द रचनासे वैज्ञानिक संसारमें क्या अंधेर नहीं मच सकता! भला सोचिये तो एक वार्निश बनानेका शौकीन कितनी छिपकलियां मारता फिरेगा और इसमें कहां तक कृतकार्य हो सकेगा? इससे तो यही उत्तम हो कि ऐसी ऊटपटांग शब्द रचना करनेकी अपेक्षा शब्द ज्योंके त्यों अंग्रज़ीमें ही रख दिये जाएं।—लेखक

दूधमें विकार पैदा करनेवाले जीवाणु और उनके दूर करनेकी विधि

[ले०—श्रीयुत राधानाथ टण्डन, बी. एस. सी.]

बैक्टीरिया (Bacteria) सम्बन्धी एतिहासिक बातें

पिछले पच्चीस वर्षोंमें घुआजातिके (बैक्टीरिया) जीवाणुओंके विज्ञानमें जैसी वृद्धि हुई है ऐसी कदाचित् ही विज्ञानके और किसी क्षेत्रमें हुई हो। इन पच्चीस वर्षोंमें हमारे बड़े बड़े विज्ञानवेत्ताओंने बैक्टीरियाके विज्ञानकी ऐसी उन्नति की कि फेनक्रिया (खमीर) और स्पर्शसंचारी रोग सम्बन्धी सिद्धान्तोंमें एक अद्भुत परिवर्तन हो गया। कुछ काल पहले लोगोंका विश्वास था कि द्रवमें फेन या खमीरका उठना और रोगोंका पौधों, भाजियों, द्रवों आदिमें शीघ्र फैल जाना रासायनिक क्रियापर ही निर्भर है अर्थात् रासायनिक क्रिया ही इनकी मूलकारण समझी जाती थी। पर पासचर (Pasteur) कोह (Koh) आदि वैज्ञानिकोंने अपने अन्वेषणों द्वारा यह बात अच्छी तरह प्रमाणित कर दी है कि रोग और फेनक्रियाके मूल कारण बहुत छोटे छोटे अणुवीक्षणीय जीवाणु हैं। यह नया सिद्धान्त दधिमथन सम्बन्धी बातोंके विषयमें तो बड़े ही महत्वका है, क्योंकि तरह तरहकी फेनक्रियाएं और परिवर्तन जो हम दूध दही आदिमें पाते हैं वह कई प्रकारके अणुवीक्षणीय जीवाणुओंके द्वारा ही होते हैं।

उन जीवाणुओंके बारेमें कुछ लिखनेके पहले जिनके द्वारा दूधमें तरह तरहकी क्रियाएं होती हैं, हम जीवाणुओंकी बनावटपर कुछ लिखना आवश्यक समझते हैं। अणुवीक्षणीय जीवोंमें तो

Industrial Bacteriology औद्योगिक कीटाणु शास्त्र]

यों कई वर्ग हैं पर बैक्टीरिया वर्ग ही सबसे बड़ा और विशेष महत्वका है। पहले बैक्टीरिया (bacteria) को वैज्ञानिक जन्तुओंका एक विशेष प्रकार समझते थे पर आधुनिक वैज्ञानिकोंने प्रयोगों और अन्वेषणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि यह वास्तवमें वनस्पति वर्गके हैं। अतः आधुनिक वैज्ञानिक अब इन्हें अणुवीक्षणीय पौधे कहते हैं। यह एक कोषीय होते हैं। यों तो एक कोषीय पौधे और भी हैं, पर सबमें छोटे यही हैं।

सबसे पहले बैक्टीरियाका अस्तित्व २०० वर्ष पहले हालैंड के (Holland) एक नगरमें एक साधारण मनुष्यने सिद्ध किया। उस समयके वैज्ञानिक इस कथनसे बहुत ही चकित हुए, पर उसने सूक्ष्मदर्शक द्वारा दिखला दिया कि सड़ते हुए द्रव, राल और मूत्रआदिमें भी जीवाणु पाये जाते हैं। जीवाणुओंको अलग कर उनकी वृद्धि करनेके साधन उस समय नहीं मालूम थे, इसलिए लोग इसके स्वभावसे अपरिचित थे और इन्हें केवल छोटे छोटे जन्तु समझते थे। १८८७ वि० तक बैक्टीरियाविज्ञानमें कदाचित ही कोई वृद्धि हुई हो, पर उस वर्ष रेनवर्ग (Reimwurg) नामी एक वैज्ञानिकने अच्छे अच्छे अणुवीक्षणों द्वारा बैक्टीरियाकी जांच की पर उनकी वृद्धि करनेके साधन ज्ञात न होनेके कारण उसको भी ठीक हालका पता न चला और उसने इनको इंफ्यूसोरिया (infusoria) वर्गमें रक्खा। कुछ वर्षों बाद फर्डिनेन्डकोहन (Ferdinand kohn) ने इस विषयपर जांच शुरूकी। परीक्षासे एक नई बात मालूम हुई। उसने यह दिखलाया कि बैक्टीरिया वास्तवमें एककोषीय पौधे हैं जिनकी बनावट बिलकुल पौधोंके कोषोंकी तरह है। इनकी वृद्धि और फटन (fission) द्वारा उत्पत्ति भी बिलकुल पौधोंके कोषोंकी तरह होती है। उसके कथनानुसार यह जीवाणु अलगा (algae) वर्गसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं, पर सबसे बड़ा काम इस विषयमें पासचर (Pasteur) नामी वैज्ञानिकने ही किया। उसने इन जीवाणुओंके स्वभावकी परीक्षा करनेकी नई नई तर्कीबें निकालीं।

यह जीवाणु कहांसे आये ?

१८वीं शताब्दीके आरम्भमें इस प्रश्नपर बड़ा वाद-विवाद हुआ। कुछ वैज्ञानिकोंकी तो धारणा थी कि बैक्टीरिया मांसजातीय पदार्थोंके सड़नेसे पैदा हो जाते हैं। परन्तु कुछ यह कहते थे कि बैक्टीरिया स्वजातियोंसे ही पैदा होते हैं। पहला सिद्धान्त स्वयं उत्पत्तिका (spontaneous generation) है और दूसरा (life from life) 'जीवसे जीवकी उत्पत्तिका' है। १८३१ वि० में नीढ़मने (Needham) बलपूर्वक पहले सिद्धान्तका समर्थन किया। उसका विश्वास था कि सब सूक्ष्मजीव द्रव उबालनेपर मरजाते हैं। उसने एक तरहका शोरवा तैय्यार किया और सड़ानेके लिए उसे कुछ दिन रख छोड़ा। उसने देखा कि शोरवा ज्यों ज्यों सड़ता गया उसमें अगणित बैक्टीरिया पैदा होते गये। तीन वर्ष पीछे स्पेलैनज़नी (Spallanzane) वैज्ञानिकने प्रयोग द्वारा यह बतलाया कि केवल एक बारके उबालनेसे अधिकतर जीवाणु वैसेके वैसे ही बने रहते हैं, क्योंकि उनको उतनी गर्मी नहीं पहुंचती जितनी उनके मार डालनेके लिए पर्याप्त है। दूध, शोरवा आदिको बिगड़ने न देनेके लिए कई बार देर तक उबालनेके अतिरिक्त हवासे बचानेकी भी आवश्यकता है। इसपर भी वाद विवाद होता रहा। अन्तमें पासचर (Pasteur) ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि बैक्टीरिया हवामें सदा विचरते रहते हैं और इसी हवासे जीवाणु चीज़ोंमें पहुंचकर सड़ाव पैदा कर देते हैं। लोहू, दूध, पेशाब आदिमें जो गन्ध सड़ावसे पैदा हो जाती है वह हवामें विचरते हुए बैक्टीरियासे ही होती है। लोहू, दूध आदिको एक सी ही दशामें रखना असम्भव नहीं। यदि उनको शुद्ध, बैक्टीरिया रहित बर्तनोंमें रखा जाय और हवाके बैक्टीरिया उसमें किसी तरह न जाने पायें तो वह वैसेके वैसे, शुद्धावस्थामें, बहुत दिनों तक

बने रह सकते हैं। यदि स्वयं उत्पत्तिका (Spontaneous generation) सिद्धान्त सही है तो हानिकारक बैक्टीरियासे पदार्थोंकी रक्षा करनेके जो साधन बतलाये हैं, वे सब झूठे और अनुपयोगी ठहरने चाहियें, क्योंकि इस सिद्धान्तके अनुसार तो बैक्टीरिया फिर आपसे आप पैदा हो जाने चाहियें। अस्तु मानना पड़ता है कि यह सिद्धान्त मिथ्या है। बैक्टीरिया वहीं होंगे जहां बैक्टीरिया या उनके बीज पहलेसे होंगे। बीजोंको नष्ट करना बैक्टीरियाका मूल जड़से नाश करना है। संसारमें छोटेसे बड़े तक ऐसा कोई पौधा नहीं जो जड़ पदार्थसे पैदा होता हो और जो बीजसे या पौधेसे न पैदा होता हो, अतएव हम यह माननेके लिए बाधित हैं कि जीवकी उत्पत्ति जीवसे ही होती है।
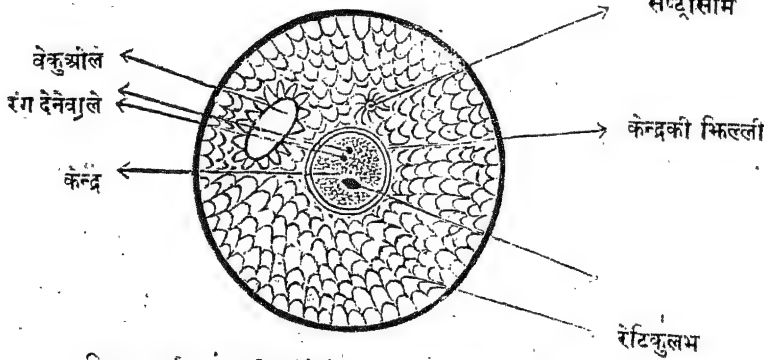
चित्र १—तीव्र अणुवीक्षणसे देखा गया बैक्टीरियाका चित्र

बैक्टीरियाके भीतरी भागको जीवाद्यम (protoplasm) कहते हैं। यह जीवाद्यम एक महीन झिल्लीसे घिरा होता है। जीवाद्यममें कहीं कहीं जैसा कि ऊपरके चित्रसे ज्ञात होगा छोटे छोटे गड्ढे होते हैं जिनको वैकुओलस (vacuoles) कहते हैं। इनमें एक तरहका रस भरा होता है। यह गड्ढे तीव्र अणुवीक्षणसे ही दिखाई दे सकते हैं। जीवाद्यमके बीचमें एक धब्बासा भी दिखाई देता है, जिसे केन्द्र (Nucleus) कहते हैं। यह केन्द्र इसी जीवाद्यमका मुख्य अंश है। ऐसी ही बनावट पौधों और जन्तुओंके कोषोंकी भी होती है। इसीसे इसको एककोषीय जीव कहते हैं। पौधोंके कोषों और बैक्टीरियाके कोषोंमें एक विशेष अन्तर यह है कि बैक्टीरियाके कोषमें हरित राग (chlorophyl) नहीं होता, यद्यपि इनकी गणना भी पौधोंमें ही है। यह कई परिमाणके होते हैं।

उत्पत्ति

और जीवोंकी तरह बैक्टीरियामें भी उत्पत्ति होती है। यह उत्पत्ति इसमें फटन द्वारा होती है अर्थात् जीवाणु दो भागमें फट जाता है और हर एक भाग बैक्टीरिया होकर पैतृक बैक्टीरियाकी तरह स्वयम् दो भागोंमें फट जाता है। इसी तरह उत्पत्ति सीढ़ी दर सीढ़ी बड़े वेगके साथ होती चली जाती है। उत्पत्तिका वेग बैक्टीरियाके समीपवर्ती पदार्थोंपर निर्भर है। तापक्रम, आबहवा और भोजन यह तीन उत्पत्तिके मुख्य कारण हैं। जब तापक्रम ठीक होगा तो उत्पत्ति बड़े वेगसे होगी। बहुत कम या अधिक तापक्रमपर उत्पत्तिका वेग घट जाता है, इसी तरह जब तक द्रवमें भोजन अधिक रहता है तभी तक फटनका क्रम बड़े वेगसे चलता रहता है। भोजन क्रमशः घटनेसे उत्पत्तिका वेग भी धीरे धीरे घट जाता है। बैक्टीरियाकी कुछ जातियोंमें फटन नहीं होती। कुछ बैक्टीरियामें उत्पत्ति दानों या बीज द्वारा होती है। यह दाने प्रतिकूल अवस्थामें भी जीवित रह सकते हैं। अनुकूल अवस्थाके लौटनेपर इन दोनोंसे फिर बैक्टीरियाकी उत्पत्ति होती है। *

बैक्टीरिया कहां पाये जाते हैं?

संसारमें जहां जहां मनुष्य तथा अन्य प्राणी पाये जाते हैं तहां तहां बैक्टीरिया भी मिलते हैं।

---

* देखो विज्ञान भाग ४ पृष्ठ १६६

पृथ्वीतलपर और जलमें यह बहुत होते हैं। हवा तो इनका घर ही है। पृथ्वीकी ऊपरी तहपर अगणित बैक्टीरिया होते हैं। एक ग्रेन मट्टीमें हज़ारोंकी संख्यामें बैक्टीरिया विद्यमान रहते हैं। भीतरी तहमें उनकी तादाद घटती चली गई है यहां तक कि १०-२० फुट नीचे पृथ्वी बैक्टीरिया रहित है। बहुत गहराईसे निकले हुए चशमोंमें बैक्टीरिया नहीं होते, पर वायुका दर्शन करते ही बैक्टीरिया जलमें आने लगते हैं। नदी, झील, समुद्र आदिमें भी बैक्टीरिया पाये जाते हैं। ३ या ४ बूंद साफ पीनेके पानीमें ७०० या ८०० बैक्टीरिया पाये गये हैं, फिर पाठक समझ सकते हैं कि ग्लास भर पानीके साथ कितने बैक्टीरिया हम पी जाते हैं, अलबर्ट बेल (Albert Bell) के प्रयोगानुसार एक घनशतांशमीटर (1. cc) जलमें कमसे कम १३० बैक्टीरिया प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

वायुमें जीवाणुओंकी गणनाका कोई प्रमाण नहीं है। उन जगहोंमें जहां बस्ती बहुत ही कम है एक घनगज़में साधारणतया १०० से भी कम बैक्टीरिया मिलेंगे, पर घनी बस्तियोंमें गर्दके उड़नेपर जैसा, बहुधा कमरे मकान आदिमें झाड़ू देनेसे हो जाता है, कमसे कम ४००,००० बैक्टीरिया एक घन फुटमें मिलेंगे।

पेरिस (Paris) की गलियोंमें एक घनगज़ वायुमें लगभग ४००० बैक्टीरिया पाये गये हैं और बर्न (Bern) में लगभग ७०० के। १३००० फुटकी उंचाईपर वायु बिलकुल निर्मल और बैक्टीरिया रहित है।

बैक्टीरियापर वाह्य उपकरणोंका प्रभाव

और जीवोंकी नाई बैक्टीरियापर भी गर्मी और सर्दीका प्रभाव पड़ता है, पर इनमें सहनशक्ति इतनी अधिक होता है कि बीजोंकी सूरतमें बरसों तक जीवित रह सकते हैं। १३०° श के तापक्रमपर भी इनके बीज १ घंटे जीवित रह सकते हैं। अब पाठकगण सोचें कि हमारे प्रति दिनके खाने पीनेके पदार्थोंको बैक्टीरिया रहित करनेकेलिए कितने अधिक ताप देनेकी आवश्यकता है। दूधको एक बार उबाल लेनेसे क्या हो सकता है। जब तक अच्छी तरह देर तक गरमी न पहुंचाई जाय, सब बैक्टीरिया नहीं मर सकते। यदि किसी पदार्थको बैक्टीरिया रहित करना है तो उसको आध घंटेतक कमसे कम १६०°-१८०° श तापक्रमपर रखनेकी आवश्यकता है। पानीकी भापकी गर्मीका प्रभाव अधिक होता है। बीज रहित बैक्टीरिया अधिकतर ६०°-७०° श के तापक्रमपर मर जाते हैं। बहुतसे बीज केवल उबालनेसे ही मर जाते हैं, पर कुछ जातियां ऐसी हैं कि ११०°-११५° श के तापक्रमपर भी कुछ देर तक जीवित रहती हैं।

ठंड खानेमें तो यह जीवाणु बड़े ही पक्के हैं। अधिक तर बैक्टीरिया बीजकी सूरतमें-१३° श- के तापक्रमपर भी २० घंटे जीते रहते हैं।

प्रकाश, विशेष कर सूर्यके प्रकाशका प्रभाव बैक्टीरिया पर बहुत कम पड़ता है। (?)

वायुके अधिकसे अधिक भारको भी यह जीवाणु आसानीसे सह सकते हैं। सरटीज़के (Certes) अन्वेषणके अनुसार कुछ वैसली (Bacilli) जातिके बैक्टीरिया ६०० वायुके भारको भी सह सकते हैं।

[असमाप्त]

बच्चोंके रोग

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

२—खांसी

मामूली तौरपर खांसी फेफड़े और गलेकी बीमारियोंकी एक निशानी है, परन्तु आंतोंमें किसी ख़राबीके हो जानेसे या हवाकी नलीमें थोड़ी भी खराश पैदा हो जानेसे भी हो जाती है। यही नहीं बल्कि बच्चोंके दांत निकलते वक्त, कब्ज़ होनेपर, पेटमें कीड़े पड़ जानेसे या

Homeopathy होमियो पैथी]

कीड़ोंके जल्दी बढ़नेसे भी खांसी हो जाती है। खांसीके और भी कई कारण हो सकते हैं, पर उसके सब भेद और उनके इलाज इस जगह नहीं लिखे जा सकते। अतएव ख़ास ख़ास दवाएँ नीचे लिखी जाती हैं। खांसीके साथ अगर बुख़ार हो तो हल्का खाना कई बार करके दिया जाय और इलाज करते वक्त फेफड़ेकी बीमारियां, प्ल्यूरेसी, ब्रौंकाइटिस, क्रूप आदिमें जो दवाइयां लिखी गई हैं उनको भी चिन्हानुसार देख लेना चाहिये।

एकोनाइट—जब खांसी खुश्क, देर तक रहनेवाली, और गलेमें खुरखुराहट पैदा करनेवाली हो और बुख़ारके साथ आती हो।

बैलेडोना—गलेमें खुरखुराहट हो, टपकेके साथ खुश्क खाँसी हो, रातको ज़्यादा हो जाती हो और खांसते खांसते मुंह तमतमा जाय और पेटमें बल पड़ जायं।

एन्टिम-टार्ट—जब कफ़ गलेमें बोले, सांय सांयकी आवाज़ आवे और न निकल सके, सोनेमें चैन न पड़े।

आईपीकैक—जब खांसते खांसते कै हो जाय, दम घुटने लगे, और मूर्छा आ जाय।

ब्राइनिया—जब छातीमें खांसनेसे दर्द हो, और खखारके साथ खूनकी रंगत या पीली रंगत निकले।

फासफोरस—जब छातीकी हड्डीमें खांसनेसे दर्द हो और मैला मुर्चा सा कफ़ निकले।

ड्रोसीरा—जब खांसते खांसते ऐंठन होने लगे।

स्पौन्जिया—जब सूखी और सख़्त खांसी हो, जिसे "कूकर खांसी" कहते हैं।

सिना—जब पेटमें केंचुए पड़नेकी वजहसे खांसी आती हो।

इसके अलावा ब्रौसिमस, हीपरसल्फ, सेम्ब्यूकस, विरेट्रम, मरक्यूरियस, आयोडीन आदि दवा भी दे सकते हैं।

३—खसरा (chicken pox)

यह बीमारी सिर्फ़ बच्चोंको होती है। इसमें जोखिम बहुत कम होता है। यह चेचकसे मिलती जुलती होती है। फ़र्क़ इतना ही है कि यह जल्द जाती रहती है और यद्यपि चेचकमें चेहरा नहीं बचता लेकिन खसरेमें थोड़े बहुत दाने मुंहपर निकलते हैं और ज्यादा तर सिर, गर्दन, मुड्ढे, छाती आदिपर ही निकलते हैं। खसरा निकलनेके पहिले बुखार आता है, जो बहुत कम २४ घंटेसे ज़्यादा रहता है। सिरका दर्द भी हलका होता है, हालां कि चेचकमें कमरमें दर्द और सिरमें दौड़ता हुआ दर्द होता है। फफोले भी इसके चेचकसे नहीं मिलते। इसमें बेचैनी, नींदका न आना, बर्राना, स्वप्न देखना आदि चिन्ह मिलें तो ३, ४ खुराक दो दो या तीन तीन घंटे बाद कौफ़िया ३x की देनी चाहियें और अगर ऐंठन, जैसी कि दाँत निकलते वक्त होती है, मालूम हो तो बैलेडोना और इगनेशिया एक दूसरेके एक एक घंटे बाद कमसे कम हरेककी दो खुराक देनी चाहियें। पलसैटिला इस मर्ज़की खास दवा है और इसके देनेसे बहुत कमी हो जाती है। दो दो या तीन तीन घंटे बाद एक बूंद या एक बड़ी गोली एक खुराक़में देनी चाहिये। मरीज़को नर्म, बिना मसालेका और जिसमें गोश्त आदि न हों ऐसा खाना देना चाहिये।

एन्टिमटार्ट खसरा निकलते समय और मरक्यूरियस जब दानोंमें पानी आ जाय दो दो घंटे बाद देनेसे बहुत फ़ायदा होता है।

४—चेचक

इसको अंग्रेज़ीमें स्मौलपौक्स और वैरिओला कहते हैं। वैरिओलाका अर्थ बदलनेवाला है यानी यह मर्ज़ ४ सूरतें बदलता है। इसकी पहली अवस्थाको ज्वरावस्था (febrile stage), दूसरी सूरतको दर्शनकी (eruptive stage) अवस्था, तीसरीको भरनेकी अवस्था (suppurative stage)

और चौथीको ढलनेकी अवस्था (stage of desiccation) कहते हैं।

यह एक भयानक छूतकी बीमारी है जो सबसे पहिले मिश्र और अरबमें छठी सदीमें हुई थी और जहांसे शहरों और देहातोंमें फैलकर इसने हज़ारों और लाखों घर बरबाद कर दिये थे। जब १५७४ वि० में इस मर्ज़ने विलायतमें करीब ४००००० आदमी नष्ट कर दिये तो बड़ी हलचल मची और गुदनेका तरीक़ा निकाला गया, पर तो भी ४५००० आदमी प्रति वर्ष इस बीमारीसे मरते थे। अन्तमें १८५५ वि० में डाक्टर जेनरने काऊ-पौक्स (Cow-Pox) निकाला, जिससे बड़ा उपकार हुआ। अब तक इसका प्रचार बराबर जारी रहा है और सब सभ्य देशोंमें टीका प्रचलित है।

डाक्टर जेनरकी यह राय है कि यदि आदमी हर दसवें या पन्द्रहवें वर्ष काऊ-पौक्सका टीका लगवाले तो उसे यह बीमारी कभी न होगी, लेकिन हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है कि जो एक बार भी टीका लगवा लेता है उसको पहले तो चेचक निकलती नहीं और यदि निकलती है तो हलकी निकलती है।

हमने ऊपर लिखा है कि इस बीमारीकी चार अवस्थाएं हैं। अब उन औषधोंका वर्णन करेंगे जो भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें दी जाती हैं।

(१) ज्वरावस्था—इसमें बुख़ार होता है। एकोनाइट देना चाहिये। एकोनाइटका एक बूंद या एक बड़ी गोली दिनमें तीन बार देनी चाहिये। एकोनाइटके बाद बैलेडोना उस वक्त देनी चाहिये जब सिरमें दर्द हो। अगर नींद न आती हो तो ओपियम दे सकते हैं। अगर बुख़ार बहुत ज़्यादा हो तो एकोनाइटके बाद ब्राइनिया या रसटोक्स देना उचित है। अगर उबकाई आती हो और कै होती हो तो स्टिबियम् एक या दो खुराक दे देना चाहिये।

(२) दर्शनकी अवस्था—इसमें दाने निकल आते हैं। स्ट्रामोनियमकी तीन चार खुराक दो दो या तीन तीन घंटे बाद देनेसे यह फायदा होगा कि दाने जल्दी और कम तकलीफ़के साथ निकल आयेंगे, लेकिन अगर खांसी भी हो तो दो दो घंटे बाद स्टिबियम और स्ट्रामोनियम देना चाहिये।

(३) भरनेकी अवस्था—इसमें दानोंमें पानी भरता है। अगर आंख, नाक और गलेमें तकलीफ़ हो, राल ज़्यादा बहती हो और हलका बुखार भी हो तो तीन तीन घंटे बाद मरक्यूरियस देना चाहिये। अगर दानोंमें कालापन आ जाय और बुखार ख़तरेका हो जाय तो ओपियम और म्यूरेटिक एसिड देनी चाहिये। अगर दस्त होते हों तो चाइना देना चाहिये और अगर दानोंके इधर उधर चमक मालूम हो और जलन और प्यास व सुस्ती, थकावटके साथ ज़्यादा मालूम हो तो रसटौक्स और आरसेनिक दो दो घंटे बाद दिया जाय।

(४) ढलनेकी अवस्था—इसमें दाने सूखने लगते हैं। सुबह और शाम तीन चार दिन तक सल्फर देना चाहिये और कुनकुने पानीसे बदनको अंगोछ देना चाहिये। इस मर्ज़में कमरा साफ़ हवादार और गर्म रखनेकी ज़रूरत है। कमरेमें ज़्यादा रोशनी न हो, कोई खुशबूदार चीज़ न हो। और यह ख़याल रखा जाय कि जब तक दाने ढल न जायँ मरीज़ उन्हें नोच न डाले। खाना हलका दिया जाय, मसालेदार न हो, और मांसकी कोई चीज़ न दी जाय।

दीर्घ-जीवन-प्राप्तिके उपाय

[ले०—अध्यापक सालिग्राम वर्मा]

बहुत प्राचीन कालसे मनुष्यमात्रकी यह बड़ी प्रबल इच्छा रही है कि वह दीर्घ जीवी होकर बहुत समय तक सांसारिक सुखोंका अनुभव करे, परन्तु सहस्रों यत्न प्रयत्न करनेपर भी वह अपनी इच्छानुकूल इन्द्रियोंको इतना बलवान नहीं रख सका है कि सब प्रकारके भोग विलासका

आनन्द लेता रहे। हमारे यहां पुराणोंमें बहुतसे ऋषियों और राजाओंकी कथाएँ मौजूद हैं, जिन्होंने दीर्घजीवी होनेके लिये अनेक यज्ञ और बड़ी कठिन तपस्या की थी। प्रत्येक हिन्दू नित्य संध्यामें सूर्यभगवानकी प्रार्थना करते हुए कहता है—"जिजीविषेत् शतं समाः"। मनुने मनुष्यकी आयु प्रायः १०० वर्षके लगभग मानी है, परन्तु अर्वाचीन समयमें बहुत ही कम भारतवासी इस आयु तक पहुंचते हैं। इस आयु-क्षीणता तथा असामयिक मृत्युके बहुतसे कारण हैं। हम प्रस्तुत लेखमें दीर्घजीवी होनेकी आधुनिक वैज्ञानिक रीतियों और नियमोंका उल्लेख किया चाहते हैं।

पौराणिक गाथाओंके पढ़नेसे विदित होता है कि इस देशमें भी किसी समय सहस्रों मनुष्य अमृत और पारसकी खोजमें लगे हुए थे। हमारे देशकी रासायनिक उन्नतिके इतिहासका यह समय यूरोप देशके मध्यकालसे समानता रखता है, क्योंकि इन देशोंमें भी उस समय रासायनिक (Alchemist) अमृत (Essence of Life) और पारस पत्थरकी (philosopher's stone) प्राप्तिकी धुनमें लगे हुए थे। इनकी इसी खोजका फल स्वरूप आधुनिक रसायन-शास्त्र है। हमारे देशमें इस विचारका जन्म सबसे प्रथम होनेपर भी, यहां इस शास्त्रकी ऐसी चमत्कारपूर्ण और कौतूहलोत्पादक उन्नति न होनेके कारण हैं, इस देशकी राजनैतिक और आर्थिक परस्थिति। परन्तु दीर्घजीवन प्राप्त करनेकी खोजमें यह देश हमेशासे कोशिश करता रहा है और इस देशके महात्माओंने इसकी प्राप्तिके लिए जो जो साधन और नियम अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किये हैं वे आज भी सारे संसारको मान्य और परमावश्यक जान पड़ते हैं।

यूरोप और अमेरिका प्रभृत देशोंमें तो अकसर ऐसे मनुष्योंका वृत्तान्त सुननेमें आता है जो शतवर्षी होनेपर भी अपनी इन्द्रियोंको भली प्रकार काममें ला सकते हैं, परन्तु हमारे देशमें पहिले तो बहुत ही कम मनुष्योंको यह सौभाग्य प्राप्त होता है और फिर इनमेंसे भी विरले ही ऐसे होते हैं जो इस अवस्थातक पहुंचकर अपनी भूतेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंको बलवती बनाये रख सकें। यूरोप देशमें इस समय तक सबसे अधिक आयु प्राप्त करनेवाला मनुष्य (Kentegeru) केन्तीगरू था। यह ग्लासगो नगरके बड़े गिरजाघरका नींव डालनेवाला अपने समयका बड़ा विख्यात पादरी था। ५ जनवरी सन् १६०० को १८५ वर्षके लगभग आयु पाकर इस पवित्र आत्माने स्वर्गारोहण किया। आङ्गल विश्वकोष (Encyclopædia Brittanica) में अनेक शतवर्षी पुरुषोंके नाम मौजूद हैं और आज दिन भी बहुतसे ऐसे पुरुष संसारमें हैं, पर हम तो यह बात जानना चाहते हैं कि इन मनुष्योंने किस विशेष कारणसे इतनी अधिक आयु प्राप्त की। हमारे जीवनकी वास्तविक अवधि क्या है? क्या इन मनुष्योंने अपेक्षतः अधिक जीवन लाभ किया, या अन्य मनुष्य इस संसारमें अपना वास्तविक जीवन पूरा करनेके पहले ही (असामयिक मृत्युसे) कालकवलित हो जाते हैं? क्या संसारमें प्रत्येक प्राणीकी प्रारब्ध उसे कालके मुंहतक ले जानेमें समर्थ होती है या कोई ऐसा ईश्वरीय नियम है जिसके अनुसार कोई मनुष्य नियमित आयुसे अधिक नहीं पा सकता है? और यदि ऐसा है तो नियमित आयु कितनी है? इन प्रश्नोंका उत्तर देनेमें सबसे पहिला विचारणीय विषय यह है कि मनुष्यकी सृष्टि किस प्रकार हुई? क्या मनुष्यका जन्म संसारमें अकस्मात ही हुआ है, अथवा क्रमिक विकासके सिद्धान्तानुसार बिना पूंछके बन्दर (anthrapoid apes) ही उसके पूर्वज हैं?

इन विवादग्रस्त प्रश्नोंकी उलझनमें न पड़कर हम इस दीर्घजीवनके विषयकी दूसरी प्रकारसे विवेचना करेंगे। यह बात तो सभी मानते हैं कि बुढ़ापा और रोग इस सांसारिक जीवनके सबसे

बड़े शत्रु हैं और दोनोंका परिणाम मृत्यु है। अतः हम पहिले यही जानना चाहते हैं कि मृत्यु क्या है और इस संसारके अनेक जीवधारियोंपर मृत्युका कैसा प्रभाव पड़ता है ? विकाश सिद्धान्तके अनुसार हम सबसे पहिले उन क्षुद्र योनिजोंका वर्णन करना चाहते हैं जिनके शरीर और इन्द्रियोंकी बनावट बहुत ही सरल तथा सूक्ष्म होती है। इन्हें (unicellular organisms) एककोषीय योनिज कहते हैं। जन्तु संसारमें ही नहीं वरन् वानस्पतिक संसारमें भी ऐसे योनिज पाये जाते हैं, जिन्हें जीवाणु (microbes) कहते हैं। इन सूक्ष्म जीवोंका आकार प्रकार बड़ा सरल और विभिन्न है। कुछ विन्दुके आकारके होते हैं और विन्दवाकार (micrococci) कहलाते हैं। दूसरे छड़ीकी भांति लांबे होते है, इन्हें (bacilli) कहते हैं, तीसरे प्रकारके कर्षण्याकार कहलाते हैं। इनकी रहन सहन कार्य्यक्रम और वंशोत्पत्ति आदिकी क्रियाएँ बहुत ही विभिन्न और आश्चर्य्यजनक हैं।

जो जीव लाहनमें मौजूद होते हैं इन्हें फेनकार या किण्वकार (enzymes) कहते हैं, और इन्हींके मौजूद रहनेसे दूध जम कर दही हो जाता है, शकरसे सिरका तैयार होता है, फलोंमें मिठास आ जाता है और मांस आदि पदार्थ गलते हैं। यह एक प्रकारकी रासायनिक क्रियाका परिणाम है जिसे किण्वक्रिया या फेनक्रिया (fermentation) कहते हैं! (Pasteur) पाश्चर महाशयने इस विषयमें बहुत कुछ खोज की थी और उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा यह बात सिद्ध कर दिखाई कि (fermentation) किण्वक्रिया या फेनक्रिया एक प्रकारकी ऐसी रसायनिक क्रिया है जिसमें इन सूक्ष्म जीवोंके कारण जड़ पदार्थ टूट या फट जाते हैं और उनसे नये नये पदार्थ बन जाते हैं। इस जातिके कुछ जीव विना वायुके जीवित रह सकते हैं और बहुतसे यौगिक पदार्थोंको सरल पदार्थोंमें विभक्त कर देते हैं।

दूधकी विश्लेषण क्रियासे (Analysis) रसायन शास्त्र वेत्ताओंने निश्चय किया है कि साधारण गायके सौ भाग दूधमें निम्न लिखित पदार्थ रहते हैं।

जल	...	८६.९० भाग
प्रोटीड	...	४.७० "
वसा	...	३.५० "
कर्बोज	...	४.२० "
लवण	...	०.७० "

इससे विदित होता है कि जलके अतिरिक्त, ४ द्रव्य और दूधमें मौजूद हैं। दूधके जमनेमें दूधमेंकी शकर छाछाम्लमें (Lactic Acid) परिवर्तित होती है, परन्तु सबकी सब शकरका परिवर्तन नहीं होने पाता, क्योंकि यह क्रिया थोड़ी देरमें बन्द हो जाती है। इसका कारण यह नहीं है कि बूरेकी कमी हो अथवा उष्णता आदि कोई अन्य भौतिक कारण इस क्रियाका बाधक हो, वरन् जांच करनेसे मालूम हुआ है कि जो अम्ल बनता है वह स्वयम् इस क्रियाको रोक देता है, क्योंकि यदि किसी क्षारको इस अम्लके शिथलीकरणके लिये इस समय दूधमें मिला दिया जाय तो यह क्रिया फिर शुरू हो जायगी। प्रायः इस प्रकारकी हरेक क्रियामें यही बात देखनेको मिलती है कि उस क्रिया द्वारा पैदा किये हुए पदार्थकी एक निश्चित मात्रा बन चुकनेपर क्रिया स्वयम् बन्द हो जाती है। वास्तवमें क्रियाके मुख्य कर्ता योनिज एक प्रकारके नशेमें जड़वत हो जाते हैं और इस अचेतनता, बेहोशी अथवा मृत्युका कारण इन्हींका सम्पादित द्रव्य होता है। यह बात अब पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है और सभी वैज्ञानिक इस विषयमें सहमत हैं। एक बात और विशेष उल्लेखनीय है कि यह जीव हरितराग (chlorophyl) रहित अत्यन्त सूक्ष्म पौधे हैं।

डिकोण्डोले (A. De Condolle) महाशयने इस विषयकी बहुत खोज की है और उन्होंने अनेक प्रयोगोंद्वारा सिद्ध किया है कि वृद्ध होनेसे वृक्षों-

की मृत्यु नहीं होती है तथा उनका नाश स्वाभाविक मृत्यु नहीं कही जा सकती, क्योंकि यदि इनका बीज उत्पन्न करना रोक दिया जाय तो यह सदा हरे भरे रह सकते हैं! इसलिये पुष्पोंमें बीज पड़नेके पूर्व ही उन्हें काट देनेसे अनेक वृक्षोंको दीर्घजीवी कर देना अब प्रमाणित हो चुका है। इस सिद्धान्तके प्रत्यक्ष उदाहरण हमें नित्यप्रति दृष्टिगोचर होते हैं। प्रायः बहुतसे लोग जानते होंगे कि बागोंके माली घासमें फूल आनेके पूर्व ही उसे काट देते हैं और इस प्रकार यह घास बरसों तक हरी रहती है। फूलदार वृक्ष भी बारहमासी होनेसे और हर साल फल देनेसे थोड़े ही बरसोंमें निकम्मे हो जाते हैं; परन्तु यदि इन्हीं वृक्षोंमें दो या तीन वर्ष बाद फल लगते रहें तो यह बहुत दिनों तक फलते फूलते रहते हैं। इन बातोंको जानकर (Professor Metchnikoff) प्रोफेसर मैचनीकोफ़ महोदयका विचार है कि वृक्षोंकी स्वाभाविक मृत्यु बीज उत्पन्न होनेपर एक प्रकारका विष बन जानेसे होती है। इन बीजोंके पकते समय वृक्षोंके शरीरमें कई प्रकारके विषैले पदार्थोंका संग्रह होने लगता है, जो उनकी शक्तिको क्षीण करके (फलने फूलनेमें प्रति वर्ष कमी होते होते अन्तमें फलना फूलना बिलकुल बंद हो जाता है और फिर वृक्ष मृतप्राय हो जाता है) धीरे धीरे उनका नाश कर देते हैं। अस्तु उपरोक्त विवेचनासे प्रमाणित होता है कि वानस्पतिक संसारमें स्वाभाविक मृत्यु कोई वस्तु नहीं है वरन् इस संसारके प्राणी अपने ही कृत्यों द्वारा संगठित द्रव्योंसे मृत्युको प्राप्त होते हैं।

पाशविक संसारमें मृत्युकी आवश्यकतापर विचार करनेसे पता लगता है कि कई प्रकारके जीवोंकी मृत्यु स्वाभाविक रीतिसे होती है। (pilidium) पिलडिम नामक जीवोंमें जन्म लेनेके समय माताका पेट फाड़ कर बच्चे पैदा हुआ करते हैं। इसलिये मा तुरन्त ही मर जाती है। जनश्रुतिसे प्रकट होता है कि बिच्छू पैदा होते ही अपनी माको डंक मारकर मार डालता है। (monstrilla) मौन्सट्रिला आदिक जीवोंमें पाचकेन्द्रिय न होनेके कारण ही इनकी मृत्यु हो जाती है। अतः उपरोक्त जीवोंकी मृत्युका कारण उनके शरीरमें किसी एक इन्द्रियकी हीनता अथवा उसकी बनावटमें किसी प्रकारकी न्यूनता है।

इनफूसोरिया (infusoria) इत्यादि एककोषमय जीवों (unicellular organism) का विचार करनेपर विदित हुआ है कि इन जीवोंको किसी जगहसे काटकर दो भाग कर देनेपर भी इनमें जीवन शक्ति मौजूद रहती है और यह दोनों भाग सजीव होकर दो जीवोंकी भांति रहने लगते हैं। इसी प्रकार विच्छिन्न होकर यह जीव बहुत ही थोड़े समयमें सहस्रों और लाखोंकी संख्यामें उत्पन्न हो जाते हैं। यह जीव प्रायः वनस्पति आदि खाते हैं और गंदे तालाबोंके पानी तथा छोटे छोटे गड्ढोंमें बहुतायतसे मिलते हैं। (Professor Ray Lankaster) रेलेङ्कस्टर, गेडे (Geddes) और (Weissmann) वीसमान इत्यादि महानुभावोंने इन जीवोंकी विस्तृत परीक्षा करनेके पश्चात् यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि यह जीव अमर होते हैं। अन्य प्राणिशास्त्र विशारदोंने भी प्रयोगों द्वारा इसे सिद्ध कर दिखलाया है और आज दिन सारे सभ्य संसारमें यह सिद्धान्त सत्य माना जाता है।

परन्तु इन योनिजोंसे उच्च कोटिके जीवोंमें कुछ ऐसे भी मौजूद हैं जिनकी स्वाभाविक मृत्यु होती ही नहीं। इनमें (annelids) गैंसे इत्यादिक गिनाये जा सकते हैं। इनकी शक्तिका (किसी प्रकारसे) विनाश होकर नाश नहीं होता है, वरन् इनकी मृत्यु किसी अकस्मातिक आघात द्वारा हुआ करती है। इसी प्रकारकी बहुतसी साक्षी देखकर नेइगाली (Naegali) नामक जर्म्मन प्राणिशास्त्रवेत्ताने तो यहांतक लिख दिया है कि प्रकृतिमें स्वाभाविक मृत्यु होना अस्वाभाविक है। परन्तु इस हद तक पहुंचनेके लिये अभी बड़े

परिश्रम और खोजकी आवश्यकता है। इतना ते अवश्य है कि हमारे शरीरमें भी आत्माको छोड़ कर (eggs or spermatozoa) वीर्याणु अवश्य ही नित्य हैं। परन्तु इससे हम यह नहीं कह सकते कि हमारे शरीरके सभी भाग नित्य हैं।

अब यदि हम स्तनपायी जीवोंकी आयुकी तुलना पक्षियों और मछलियां इत्यादि छोटे छोटे जीवोंकी आयुसे करें तो हमें प्रतीत होता है कि यह जीव मछलियां इत्यादिसे अधिक दीर्घजीवी नहीं होते हैं, क्योंकि प्रायः बहुतसे लोगोंको यह बात मालूम है कि मछलियां कई सैा वर्षतक जीवित रहती हैं। कछुए इनसे भी अधिक और सर्प इत्यादिक रेंगनेवाले जीव ते हजारों वर्षतक जीवित रहते सुने गये हैं। घोड़े, गायें, भेड़ें, कुत्ते और अन्य चौपाये दीर्घजीवी नहीं होते और न चूहे, गिलहरियों और घूसोंको ही यह सौभाग्य प्राप्त है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस भेदका क्या कारण है? तथा इन जीवोंकी आयु भिन्न भिन्न क्यों रखी गई हैं। इन प्रश्नोंपर विचार भी बहुत किया गया है। (Buffon) बफ्फन महाशयका विचार है कि जीवनके विस्तार और शारीरिक संगठनमें एक विशेष प्रकारका संबंध है। उदाहरणार्थ यदि घोड़ेके जीवनका विस्तार उसके शारीरिक वृद्धिके कालसे ६ गुना है तो हर पशु या पक्षीके लिये यही अनुमान उपयुक्त नहीं है वरन् प्रत्येक जीवके लिये एक अलग ही नियम होगा। अतः यह नियम सर्वव्यापी नहीं है, और इसमें एक दोष यह भी मौजूद है कि हर जीवकी शारीरिक वृद्धिका समय प्रत्येक विज्ञानवेत्ताने भिन्न भिन्न माना है, जैसे बहुतोंका कहना है कि २० वर्षके पश्चात् मनुष्योंमें शारीरिक वृद्धि नहीं होती है, परन्तु बहुतोंने इस अवधिको न्यूनाधिक भी माना है।

वीसमान (Weissmann) महाशयका यह विचार है कि जो जीव बहुत शीघ्र सन्तानोत्पत्ति करते हैं वे अल्पजीवी हुआ करते हैं। इसके प्रमाणमें चूहे, मक्खी इत्यादिक जीवोंका उदाहरण दिया जाता है; परन्तु तोतों और बतखोंमें यही गुण होनेपर भी इनकी आयु अधिक होती है। (Monstalet) मोंसटेले प्रभृत सज्जनोंका विश्वास है कि भोज्य पदार्थोंका भी दीर्घजीवनसे बड़ा घनिष्ठ संबंध है। अतः शाकाहारी जीवोंकी आयु मांसाहारी जीवोंसे अधिक होनी चाहिये। हाथी और रीछकी आयु बहुत होती है,परन्तु मांसाहारी जीवोंमें उल्लू और गिद्ध इत्यादि बहुत दिनों तक जीवित देखे गये हैं। अतः इस भेदका कारण हमें और कहीं खोजना चाहिये।

स्वर्गीय महात्मा मेचनीकोफने अपने अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध किया है कि जीवनविस्तारके इस भेदका कारण है एक विशेष अङ्गकी विभिन्नता। इस अङ्गका नाम (large intestine) वृहदंत्र या बड़ी आंत है। मछलियोंमें यह अंग पाचकेन्द्रियका अनावश्यक भाग कहा जा सकता है। मेंढ़कोंमें यह कुछ आवश्यक ज़रूर है। बहुतसे रेंगनेवाले जीवोंमें यह खूब बड़ी होती है और अन्य पृष्ठास्थि जीवोंमें इसकी अधिक वृद्धि देखी गई है। इस अवयवका पाचन क्रियामें कोई काम नहीं पड़ता है, इसमें तो भोज्य पदार्थोंका निकृष्ट भाग जमा होता रहता है। इस मल आदिके अधिक जमा हो जानेसे इसमें बहुतसे क्षुद्र जीव उत्पन्न हो जाते हैं और यह सड़ायन उत्पन्न कर देते हैं, जिससे शरीरके अन्य अङ्गोंको बड़ी हानि पहुंचती है। जितने अधिक समय तक यह मल जमा होता रहेगा उतना ही अधिक हानिकारक भी होगा। स्टोलमान (Stohlmann) और वीस्के (Weiske) ने यह निश्चित किया है कि भेड़के पेटमें एक सप्ताह तक किसी विशेष भोजनका मल जमा रहता है। (Ellenberger) एलिनवर्गर महाशयका कहना है कि घोड़ेके पेटमें ४ दिन तक मल मौजूद रहता है, परन्तु पक्षियोंके विषयमें यह बात सर्वथा सत्य नहीं है, क्योंकि

शाकाहारी खरगोशकी बृहदंत्र चीरकर देखनेसे पता चला कि उसमें मल मौजूद था और सड़ रहा था परन्तु मांसाहारी गिद्ध की अन्तड़ीमें इस सड़ायनका नाम भी नहीं था। अतः इस कहनेमें अत्युक्तिका दोष नहीं होगा कि गिद्ध और तोता इत्यादिक पत्तियोंकी बृहदंत्रमें सड़ा हुआ मल मौजूद न रहनेसे ही इनकी आयु अधिक होती है। अतः दीर्घ-जीवनकी प्राप्तिके विषयमें बड़ी आंतमें पचे हुये भोजनके सड़ जानेसे उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म जीव (intestinal flora) बड़ा महत्व रखते हैं।

इस विवेचना द्वारा इन विज्ञानवेत्ताओंने यह सिद्ध कर दिखलाया कि शारीरिक संगठन और बृहदंत्रके होने न होने, या न्यूनाधिक होनेके भेद-पर जीवनकालकी कमी या वृद्धि निर्भर है। बृहदंत्रके सड़े हुए पदार्थोंसे बेंज़ीनके यौगिक, फीनोल, अमोनिया, घृताम्ल (phenol, ammonia, butyric acid) इत्यादि विषैले पदार्थ बन जाते हैं और इनका विष सारे शरीरमें फैल जाता है। वह बात तो सभी लोग जानते हैं कि पाचनदोष-से ही उज्जन द्विगंधिद (H_2S) इत्यादिक गंदी वायु पेटमेंसे निकलती हैं और इसका कारण यही (intestinal flora) होते हैं। इस विषयमें एक तर्क यह हो सकती है कि बृहदंत्रसे यह सड़े हुए पदार्थ पुनः इन्द्रियोंमें प्रवेश नहीं कर सकते हैं और इसीलिये विषैले पदार्थोंसे रक्त प्रवाह दूषित नहीं होता। परन्तु वैज्ञानिकोंने इस-का भी उत्तर ढूंढ लिया है। बृहदंत्रकी झिल्ली बहुत पतली होती है। इसके आस पास ज़रासे धमाकेसे ही इसमें घाव या छिद्र हो जाते हैं और इन छिद्रोंमें होकर यह कीटाणु तथा अन्य विषैले पदार्थ प्रवेश पा जाते हैं। (Dr Zeiger) डा० ज़ीजर-ने एक प्रयोग द्वारा यह सिद्धकर दिखलाया है कि इन्हीं विषैले पदार्थोंके कारण शरीर कृश हो जाताहै और अन्तमें बुढ़ापेके कारण हो कर, मृत्युके कारण बन जाते हैं। यह प्रयोग इस प्रकार किया जा सकता है। $\frac{१}{१०००}$ ग्राम एड्रेनेलीन (Adrenaline) को, नमक (Nacl) के समांशिक घोलमें मिला कर किसी बिल्लीके मस्तिष्कमें त्वचा भेद (inject) कर दो। इसके एक या दो ही मिनट पश्चात् बिल्ली-को निद्रा आनी शुरू होगी और वह आध या पौन घण्टेतक घोर निद्रामें सोती रहेगी। एड्रे-नेलीन मानुषिक शरीरकी एक प्रकारका अनाव-श्यक गौण-उत्पत्ति (external waste product) है और यह बिल्लीके मस्तिष्कमें पहुंचकर एक प्रकारकी निद्रा लानेवाला अम्ल बना देती है। इस प्रयोग द्वारा यह स्पष्ट है कि थक जानेसे म-स्तिष्कमें लीनियोमेन्स (leneomaines) नामक पदार्थ बन जाते हैं और निद्रा आ जानेसे यह नष्ट हो जाते हैं। अतः निद्रा एक प्रकारके (auto-intoxication) स्वाभाविक मदका नाम है जो शरीर द्वारा पैदा किये हुए पदार्थोंसे उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण बहुतसे वैज्ञानिकोंका वि-चार है (और यह विचार सभ्य संसारमें हज़ारों वर्षसे उपस्थित है) कि निद्रा और मृत्युमें भेद केवल इतना ही है कि मृत्युके पश्चात् पुनर्जीवन प्राप्त नहीं होता। अतः इन दोनों क्रियाओंमें मात्रा-की ही न्यूनाधिकता है।

वीकार्ट (Weichardt) महाशयने बहुतसे प्रयोगों द्वारा यह सिद्धान्त निश्चित किया कि "प्रत्येक जीवधारीके शरीरमें विषैले पदार्थोंके विनाशक द्रव्य उत्पन्न करनेकी शक्ति मौजूद है"। आपने यह सिद्धान्त उस समय निश्चित किया था जब आप थकावट तथा थकावटसे उत्पन्न होनेवाले अन्य प्रभावोंको हरनेवाले किसी पदार्थ-के बनानेकी धुनमें लगे हुये थे। आपने विचार किया कि थोड़ा थोड़ा विष खानेसे मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती है, प्रत्युत वह बलिष्ठ और हृष्ट पुष्ट होता जाता है, और अन्तमें विषकी उस मात्रासे ऐसे आदमीको कोई हानि नहीं पहुंचती है जिस-से अन्य साधारण मनुष्योंकी मृत्यु हो जाती है।

इसका कारण यही हो सकता है कि उसके शरीर-में शनैः शनैः ऐसे विषनाशक पदार्थ उत्पन्न होते जाते हैं जिनके कारण विषोंका प्रभाव उसपर नहीं पड़ने पाता। आपके इसी सिद्धान्तसे (Serum Therapy)* सीरम चिकित्साका प्रादुर्भाव हुआ है। अतः आपका विचार है कि दीर्घजीवन लाभ करनेके लिये इन अंत्रस्थ जीवाणुओं (Intestinal-flora) की वृद्धिको रोकने, तथा उत्पन्न हुये कीटाणुओंके विनाश करनेका प्रयत्न परमावश्यक है। वृहदंत्र में जहां तक संभव हो मल आदिको सड़नेसे रोकना चाहिये और इसे बहुत शुद्ध रखना चाहिये। इस स्थानपर पाठकोंको यह भी बतला देना अलम होगा कि हमारे देशमें भी बहुत सी योगकी क्रियाओं द्वारा इन्द्रियोंमेंके मल आदिक विषेले पदार्थोंके विनाश करनेके साधन मौजूद हैं। परन्तु खेद यही है कि इन क्रियाओंको यथा-विधि बतलानेवालोंका अभाव है। पुस्तकों द्वारा पढ़कर इन क्रियाओंका सीखना बहुत कठिन ही नहीं, वरन् असंभव है।

इन सड़े हुए पदार्थोंको जमा होनेसे रोकनेके लिये यह बात जानना भी परमावश्यक मालूम होता है कि यह कीटाणु किस प्रकार और किन किन अवस्थाओंमें बढ़ जाते हैं। इस समयतक जितने प्रयोग इस विषयमें किये गये हैं उनसे पता चलता है कि यह कीटाणु वहीं बढ़ सकते हैं जहां उन्हें भोजनका अच्छा सुभीता हो और यथायोग्य स्थान और सामग्री उपस्थित हो ! भोजनकी कमी होनेसे जीवनसंग्राम आरंभ हो जाता है और फिर केवल बल युक्त और प्रौढ़ योनिजोंको ही जीवित रहनेका अवसर मिल सकता है। इन सारी सुविधाओंका यथायोग्य विचार करके इस प्रकारके अनेक कीटाणुओंको पालनेका प्रयत्न किया जाता है। यह बात तो प्रत्यक्ष ही है कि यह सब कीटाणु एक ही स्थान-पर तथा एक ही अवस्थामें नहीं रह सकते हैं। जिस अवस्थामें एक प्रकारके योनिजोंकी वृद्धि हो सकती है वही दूसरे प्रकारके जीवोंको नाश करनेमें समर्थ हुआ करती है। अतः इन्हीं अवस्थाओंका यथोचित विचार रखनेसे इन कीटाणुओंकी संख्या बहुत कम की जा सकती है और भोजनकी मात्रा ही इन जीवोंकी उत्पत्ति और वृद्धिकी न्यूनाधिकताका कारण हो सकती है। अस्तु, भोजन उतना ही करना चाहिये जितना कि शरीरकी पुष्टि और वृद्धिकेलिये परमावश्यक और उपयोगी प्रतीत हो। साफ़ साफ़ शब्दोंमें इसका अर्थ यह है कि हर मनुष्यको अपना शरीर स्वस्थ और नीरोग रखनेकेलिये उतना ही भोजन चाहिये, जितना कि उसके मेदेमें सहज ही हज़म हो जावे। इसीलिये भोजनको खूब चबा चबा कर खाना परमोपयोगी बतलाया गया है।

परन्तु यह तो हुआ इन कीटाणुओंको न बढ़ने देनेका एकमात्र उपाय; परन्तु जहां यह कीटाणु बढ़ गये हों तथा जिन मनुष्योंके शरीरके रक्ता-णुओंमें इनका भी प्रवेश हो गया हो वहाँ इन्हें नाश करनेकेलिये मेचनीकाफ़ महाशयकी बतलाई हुई विधिका अवलंबन करना अलम होगा। इसी महानुभावके बतलाये हुये मठा या छाछके प्रयोगका हाल 'विज्ञान' के ५वें भागकी ५वीं संख्यामें प्रकाशित हो चुका है। अतः उसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

अस्तु दीर्घजीवन लाभ करनेका मुख्य उपाय यही है कि प्रत्येक मनुष्यको अपने शरीरकी रक्षा-केलिये सचेत रहते हुये अपने आहार, विहार तथा जीवन संबंधी प्रत्येक कार्य्यमें संयम अथवा निग्रह सिद्धान्तका अनन्योपासक होना चाहिये, शरीरको शुद्ध और स्वस्थ रखनेकेलिये जिन आन्तरिक तथा वाह्य प्रयोगों और साधनोंकी परम् आव-श्यकता है उनको प्रयोगमें लाना प्रत्येक भारत-वासीका धार्मिक कर्तव्य होना चाहिये। हमारे देश-

*सीरम चिकित्सा द्वारा उन मनुष्योंका इलाज किया जाता है जो किसी प्रकारके विष द्वारा रुग्ण हो जाते हैं। देखो विज्ञान भाग ३ अङ्क ४।

की सरकारको भी सार्व्वजनिक शिक्षा तथा स्वास्थ्यरक्षाकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये और इस देशकी शिक्षित समुदायका भी यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे अपने देशवासियोंको इन आवश्यक विषयोंका यथोचित ज्ञान करायें।

देश-कल्पना।

[ले०—प्रोफेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

कल आधी रातको एकाएकी आंख खुल गई और पड़ोससे बहुत सी स्त्रियोंके रोनेकी आवाज आयी। कुछ देर बाद पता चला कि कोई आदमी मर गया है और उसकी विधवा और बच्चे उसके वियोगदुखमें तड़प रहे हैं। रात अंधेरी थी, तारे चमक रहे थे। विचार हुआ कि उठकर जाऊं और इन शोकग्रस्तोंको सान्त्वना दूं। आवाज दक्खिनकी ओरसे आती थी, इससे मैंने अनुमान कर लिया कि किसके यहां यह दुर्घटना हुई है। हाथ बढ़ा कर दियासलाईकेलिए टटोला, पर हाथमें आया चश्मेका घर। दियासलाई न मिलनेसे, दिया न जला सका। फिर पड़े पड़े सोचने लगा।

मैंने शब्द सुन कर यह कैसे जान लिया कि आवाज़ दक्खिनसे आरही है और किसीके मर जानेपर रोना धोना हो रहा है? आंख खुलते ही मुझे यह कैसे पता लगा कि आधी रात हो गयी है। शब्द कहांसे आता है, यह प्रश्न देशका है; और इस समय आधी रात बीत गई है, इससे कालका निर्देश होता है। मैंने पहलेसे यह अनुभव कर रखा है कि उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम आदि दिशाओंसे जब शब्द आता है तो अपनी ऊंचाई नीचाई आदि गुणोंसे दिशाका कुछ न कुछ पता देता ही है। परन्तु यह बात भी सबको मालूम है कि शब्दसे दिशाके अनुमानमें हम कभी कभी धोखा भी खा जाते हैं। यही दशा समयके अनुमानमें भी कभी कभी होती है। हमने कैसे समझा कि आधी रात है? खुली छतपर पड़े पड़े ज्योंही आंख खुली, देखा कि वृश्चिक राशि दक्षिणके मध्याकाशमें है और आजकल ऐसा आधी रातके समय होता है, इसलिए समयका अनुमान भी कर लिया।

इन बातोंसे स्पष्ट है कि देश और काल दोनोंके विचारमें हमने अपने पहलेके अनुभवसे काम लिया है और यह अनुभव इन्द्रियोंके द्वारा ही हुआ है। अब प्रश्न यह है कि देश और कालका अनुभव कौन सी इन्द्रियोंके द्वारा हुआ है।

पहले हम देशके विषयमें विचार करेंगे। साधारणतः लोग समझते हैं कि हम आंखसे देख कर दूरीका अनुमान करते हैं। शास्त्रीय शब्दोंमें यही बात यों कही जा सकती है कि देश चक्षुरिन्द्रियका विषय है अर्थात् देश भी रूपके अन्तर्गत है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि हम आंखोंसे दूरीको देखकर मालूम कर लेते हैं, परन्तु यह नितान्त भ्रम है। आंखोंसे दूरीका अनुभव त्रिकालमें नहीं हो सकता। भौतिक विज्ञानवाले इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि हम आंखोंसे कैसे देख सकते हैं। प्रकाशकी किरणें वस्तुपर पड़कर आंखोंकी तरफ लौटती हैं और आंखके परदेपर अपना प्रभाव डालती हैं। हमने बागमें एक बड़ा सुन्दर गुलाबका फूल देखा। यह एक बहुत साधारण क्रिया है, पर साथ ही इसके यह भी समझ लेना चाहिये कि हमने वस्तुतः क्या देखा। सूरजकी अनेक रङ्गोंकी किरणें फूलपर पड़ीं। गुलाबीको छोड़ और सब तरहकी किरणें इस फूलमें समा गयीं। केवल गुलाबी किरणें कहीं घनी और कहीं फीकी होकर हमारी आंखोंकी ओर लौटीं और परदेपर आकर हमारी आंखकी नाड़ियोंको गुलाबी रङ्गका अनुभव कराया। हमने जो कुछ देखा वह सूरजकी किरणोंका समूह था। इसीको हमने गुलाबके फूलका रूप समझा। जिसे हम

Philosophy दर्शन]

गुलाबका फूल कहते हैं सच पूछिये तो हमने उसे जाना नहीं। निदान जो कुछ हम देखते हैं वह प्रकाशकी किरणोंका विविध तारतम्यसे दर्शन-मात्र है। फोटोसे सब लोग परिचित हैं। फोटोग्राफी आंखकी क्रियाकी नकल है। जिस तरह केमरेके पर्देपर सामनेका दृश्य चित्रित हो जाता है उसी तरह आंखके परदेपर भी सामनेका दृश्य चित्रित हो जाता है। दूरी कोई ऐसी वस्तु नहीं जो चित्रित हो सके। हां, दूरीके कारण किरणोंमें तारतम्य अवश्य पड़ता है और चित्रके खिंच जानेपर प्रकाशके ही भेदसे हम दूरीकी कल्पना कर लेते हैं। इस तरह यह स्पष्ट हुआ कि आंखोंसे हम दूरीका पता नहीं लगा सकते। प्रत्युत विचार द्वारा हम दूरीकी कल्पना करते हैं। यह प्रायः सभी बच्चेवालोंने देखा होगा कि बच्चा जब पहले पहल खाना खाना सीखता है तो चमचेको अपने मुंहतक लेजानेमें जरूर चूक जाता है। कभी कभी सर और कभी गाल और कभी कान-तक चमचेको लेजा कर धीरे धीरे चमचे और अपने मुंहकी दूरीका पता लगाता है और अभ्यास हो जानेपर फिर उससे भूल नहीं होती। लकड़ी चीरनेवाला भी पहले पहल जब काठके कुन्देपर कुल्हाड़ेको गिराता है अपने निशानेका अन्दाज़ा कर लेता है। पर ठीक ठीक निशानेपर कुल्हाड़ेका पड़ना बिना अभ्यासके सम्भव नहीं है। हाथ पैरके जितने काम हैं गतिसे सम्बन्ध रखते हैं और संसारमें बड़ेसे बड़ा और छोटेसे छोटा काम स्थानपरिवर्तन वा गतिका ही प्रकारान्तर है। यन्त्र शास्त्रमें इसीलिये कर्मको देश और शक्तिका गुणनफल बताया है। देशकी ठीक ठीक अटकल न होनेसे ही अच्छे अच्छोंका निशाना चूक जाता है और होशियारसे होशियार कारीगर देशकी ही ठीक कल्पनासे कार्य्यमें अपनेको कुशल सिद्ध कर सकता है*।

* ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥ —भगवद्गीता।

शब्द सुनकर दूरीका अनुमान होना कानका विषय नहीं है। भौतिकशास्त्र शब्दके विषयमें यह स्पष्ट कर देता है कि वायुमण्डलमें अथवा शरीरसे संलग्न किसी पदार्थमें भी जब स्फुरण होता है, जब कपकपी होती है और इसका प्रभाव कानके परदेपर पड़ता है तब हमको शब्दका भान होता है। शब्दके भानमें दूरीका भान कभी नहीं होता। पहलेके अनुभवसे हम दूरीका अनुमान मात्र कर लेते हैं। यह बात दूसरी है कि शब्दकी गतिका हिसाब करके हम जान लें कि शब्द कितनी दूरसे आया है। पर यह हिसाब किताब मन और बुद्धिका विषय है कानका विषय नहीं।

स्पर्श या त्वचासे, स्वादसे या सूंघ करके दूरीका ज्ञान लेना तो असम्भव है ही–इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। निदान शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध इन पांचों विषयोंमेंसे किसीमें दूरी अथवा देशका समावेश नहीं हो सकता। यह निश्चय है कि बोझ या दबावका अनुभव जैसे पांच ज्ञानेन्द्रियोंका विषय नहीं है उसी तरह देशका अनुभव भी पांचों ज्ञानेन्द्रियोंसे परे है। सारांश यह है कि देश, काल और शक्तिका अनुमान हमारी छठी इन्द्रिय मनके द्वारा होता है।

देशका अनुभव अपेक्षित है।

हम जब कभी दूरीकी कल्पना करते हैं, किसी परिमित दूरीको इकाई मानकर दूरीकी मात्रा बताते हैं। जव, चावल, अङ्गुल, इञ्च, सेन्टीमीटरसे लेकर मील, कोस, योजनादि दूरीकी इकाइयां हैं। मनुष्यकी कल्पनाकी सीमा उसकी इन्द्रियां हैं। इन्द्रियोंके द्वारा ही वह बाहरी संसारकी जानकारी प्राप्त करता है। इसीलिए अपनी इन्द्रियोंकी पहुंच जहांतक होती है वहींतक उसकी कल्पनाका परिमाण है। दस बीस पचास कोस तक प्रायः मनुष्यकी कल्पना सहजमें पहुंचती है। हम भूगोलमें भले ही पढ़ लें कि पृथ्वीका व्यास चार हज़ार कोस है, परन्तु सच पूछिये तो चार हजार कोस कितनी दूरी हुई यह हमारी कल्पना-

में उसी स्पष्टतासे आजाना, जिस स्पष्टतासे हम दो चार कोसकी दूरीका अनुमान करते हैं, असम्भव है।

देखकर दूरीका निश्चय करनेमें दृष्टि विपर्य्यय बाधक होता है। इस भूतलपर शहरकी गलियोंमें या सड़कोंपर जो रहता आया है, घरोंकी सापेक्ष स्थिति तथा खम्भे और लालटेन आदिकी पारस्परिक दूरीका अनुमान करके मोटी रीतिसे दूरी बता देता है, परन्तु वही देहात, जङ्गल वा मरुभूमिमें जाकर दूरीकी अटकलमें चूक जाता है। जो लोग देहात जङ्गल वा मरुभूमिके रहनेवाले हैं बस्तीमें आकर उसी तरह भ्रममें पड़ जाते हैं। जब पृथ्वीपरकी ही दूरीकी यह दशा है, जहां सापेक्ष दूरीके सामनेके लिये अनेक साधन विद्यमान हैं तो आकाशमण्डलमें स्थित असंख्य पिण्डोंकी पारस्परिक दूरीकी कल्पनामें दृष्टिविपर्य्यका होना तो कोई बात ही नहीं। आकाश पिण्डोंको देखकर मनुष्य अनादि कालसे भ्रममें रहा है और जब तक गणित और यन्त्रोंकी सहायता उसे नहीं मिली थी तब तक उसने इस विषयमें कितनी भूलें की थीं यह बात प्राचीन और आधुनिक ज्योतिषके इतिहाससे स्पष्ट हो जाती है।

इस प्रसंगमें यह भी विचारणीय है कि जब कभी हम दूरीकी चर्चा करते हैं हमारे मनमें अवश्य यह भाव होता है कि अमुक दूरी एक विशेष दूरीकी अपेक्षा कितनी है, अथवा उस विशेष दूरीकी सीमा क्या है। जब हम कहते हैं कि बनारससे बाबतपुर बारह कोस है तो हमारा अभिप्राय इतना ही नहीं होता कि यह दूरी कोस नापकी कल्पित दूरीकी अपेक्षा बारह गुनी है बल्कि उसके साथ साथ यह भी विचार प्रकट है कि इस दूरीकी सीमा एक ओर बनारसकी बस्ती और दूसरी ओर बाबतपुरकी बस्ती है। जब हम यह कहते हैं कि पृथ्वीसे सूर्य्य साढ़े नौ करोड़ मील है तो हमारा तात्पर्य्य पृथ्वीसे सूर्यतककी दूरीको सीमा बद्ध कर देनेका भी है। जब हम यह कहते हैं कि अमुक तारेकी दूरी एक हजार प्रकाश वर्ष* है तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि उस तारे और पृथ्वीके बीचमें हमारी देश सम्बन्धी कल्पना सीमाबद्ध है। सारांश यह कि बिना सीमा बद्ध किये देशका अनुमान हम कर ही नहीं सकते। अथवा यों समझना चाहिये कि देशकी कल्पनाके साथ उसका अपेक्षित होना भी अनिवार्य्य है।

देशकी कल्पनाके साथ साथ एक और आपेक्षिकता भी विचारणीय है। दिशाकी कल्पना भी देशकी ही कल्पनाका एक विशेष रूप है। मनुष्यकी इन्द्रियोंके द्वारा दिशाकी कल्पना केवल तीन प्रकारकी होती है जिसे हम बहुत साधारण शब्दोंमें लम्बाई चौड़ाई और मोटाई भी कह सकते हैं। ठोस पदार्थोंकी कल्पना इन्हीं तीनोंपर निर्भर है। जो लोग ज्यामिति जानते हैं, उनके लिए इतना ही कह देना काफी होगा कि ठोसके अनुमानमें दिशा सूचक तीन ही परिमाण वा दो ही धरातलोंकी कल्पना हो सकती है। इसी कल्पनाका विस्तार करनेसे चार छः अथवा दस दिशाओंकी कल्पना की गई है। इसका विस्तार अधिक भी हो सकता है। दस दिशाओंकी कल्पनामें [पश्चिमादि दिशाएं और वायव्यादि कोण] तो एक ही धरातलकी दिशाएँ हैं। केवल ऊपर नीचे यह दो दिशाएँ दूसरे धरातलकी हैं। हम चाहें तो इस धरातलमें भी चार आठ वा अधिक विभाग कर सकते हैं। परन्तु भौतिक कारणोंसे इस विशेष धरातलमें व्यवहारकेलिए अधिक विभागोंकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। साथ ही यह भी स्मरण रहे कि दिशाका अनुमान धरातलपर ही निर्भर है। और धरातलकी कल्पना अनेक विन्दुओंकी अपेक्षित स्थितिपर निर्भर है। यदि हम मान लें कि आकाशदेशमें किसी ग्रह वा तारेकी नाईं हम भी एक विन्दु हैं तो उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम आदिकी कल्पना हमारे लिये अनिश्चित

* देखो विज्ञान भाग ६ पृष्ठ ४५

हो जायगी। सारांश यह कि ऐसी दशामें हम जिधर चाहें उधर जो दिशा चाहें वह दिशा मान ले सकते हैं। थोड़ी देरकेलिए मान लीजिये कि पृथ्वीका गोला स्वयम् आकाशमण्डलमें दिशाओं-की कल्पना करना चाहता है। अब बताइये कि उसकेलिए ऊपर नीचे या अगल बगल क्या होगा? उसकी दिशाओंकी कल्पना ज्यामितिके अनन्त धरातलोंमें ही हो सकती है।

यह तो स्पष्ट हो गया कि दिशाकी कल्पना भी सापेक्ष है। साथ ही यह भी प्रकट है कि यह आपेक्षिकता कल्पना करनेवालेपर निर्भर है। दिशाकी कल्पनामें भी इस प्रकार दो सीमाएँ हो गयीं।

जिस पदार्थको हम कल्पनामें लाना चाहते हैं, जिस वस्तुकी अटकल करना हमें इष्ट है, वह पदार्थ वा वस्तु यदि अत्यधिक परिमाणमें हो तो उसका मान वा अटकल करनेकेलिए अपने सुभीतेके अनुसार हम नपना बना लिया करते हैं—इस बातकी व्याख्या हम ऊपर कर आये हैं। अब यह विचार करना है कि देशका वास्तविक परिमाण क्या है? उसका सम्बन्ध हमारी कल्पना-में आये हुए देशसे कैसा है, निष्पत्ति क्या है, और क्या देशकी वास्तविक सत्ताको अपनी बुद्धिमें लाना सम्भव है?

गणितमें शून्यता और अनन्तता यह दोनों कल्पनाएँ प्रसिद्ध हैं। गणितज्ञोंको मालूम है कि शून्यता नितान्त अभावका नाम नहीं है। वस्तुका इतना कम होना कि उसका नापना वा उसका मान व्यवहारतः असम्भव हो शून्यता है। साथ ही वस्तुका इतना अधिक होना कि मान असम्भव हो अनन्तता है। साधारण अङ्कगणितमें यदि तीनमेंसे तीन घटाया जाय तो शेष शून्य समझा जाता है और यहां नितान्त अभावकी ही कल्पना की जाती है। परन्तु उच्च गणित द्वारा यह सिद्ध है कि व्यवहारतः नितान्त अभाव असम्भव है और शून्य भी एक अति सूक्ष्म मानातीत सत्ता है। इसी प्रकार यह भी सिद्ध है कि अनन्तता अति स्थूल मानातीत सत्ता है। इस प्रकार यह भी समझा जा सकता है कि अत्यन्त छोटा भिन्न जैसे $\frac{३}{७३७५८३८२५२५३२२२}$ जिसके मानकी वास्त-विक कल्पना असम्भव है शून्यके बराबर है अथवा शून्य ही है। उसी प्रकार यह भी माना जा सकता है कि इस भिन्नका उलटा अर्थात् $\frac{७३७५८३८२५२५३२२२}{३}$ अत्यधिक और प्रायः माना-तीत संख्या होनेके कारण अनन्त समझा जा सकता है। हमने जो उदाहरण लिया है उच्च गणितमें उसकी अपेक्षा अत्यन्त अधिक और अत्यन्त कम अङ्कभी व्यक्त किये जाते हैं—इतने-कि जिनके सामने हमारे उदाहरणकी अनन्तता शून्यतामें परिणत हो जाती है। अतः इस प्रसङ्गमें यह कह देना अनुचित न होगा कि शून्यता और अनन्तताकी कल्पना भी सापेक्ष है।

देशका प्रसार जैसा कुछ कि हमारी इन्द्रियोंसे व्यक्त होता है अमित, अपरिमित, अखण्ड और मानातीत है। देशके ओर छोरका कहीं पता नहीं है। इन्द्रियोंके द्वारा देशके कितने अंशका हम अनुमान कर सकते हैं यह कहना कठिन है। प्रकाशकी गति एक लाख छियासी हज़ार मील प्रति सेकण्ड है। आधुनिक ज्योतिष शास्त्रने पता लगाया है कि ऐसे तारे भी इस अनन्त देशमें चमक रहे हैं जिनसे हमारी पृथ्वीपर आनेमें प्रकाशको हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। प्रकाश-की गतिका हिसाब लगाकर इन तारोंकी दूरी इतनी अधिक सिद्ध होती है कि कल्पनाके पैर पक जाते हैं और मनका सिर घूमने लगता है। इतनेपर भी बड़े बड़े ज्योतिर्विद नेति नेतिका ही डङ्का बजा रहे हैं और कहते हैं कि यह दूरी जो हमको अत्यधिक और अचिन्त्य जंचती है अनन्त देशकी कल्पनाके सामने शून्य है और शून्यसे अधिक नहीं है।

जब देशके इतने बड़े अंशको जिसे हम कल्पनातीत आधिक्यका सर्टिफिकेट देते हैं दूसरी ओरसे लाचार हो हमें शून्य कहना पड़ता है तो देश विषयक हमारी साधारण कल्पना शून्यातिशून्य वा कल्पनातीत शून्य होगी। अथवा यह कहना भी अनुचित न होगा कि हमारे कल्पित देशका नितान्त अभाव है। अथवा यों कहिये कि देश विषयक हमारी जो कुछ कल्पना है वह वास्तविक सत्ताकी कल्पना नहीं है वरन् सच्ची बात यह मालूम होती है कि किसी वास्तविक सत्ताका हमारी इन्द्रियोंके विशेष नाड़ी जालपर विशेष प्रभाव पड़ता है जिससे हमारी चेतनामें देशकी कल्पनाका उदय होता है। वस्तुतः जिस कल्पनाको हम देश कहते हैं वा जिस रूपमें देश हमको व्यक्त होता है वह हमारी चेतनाका आन्तरिक भाव है और उसकी वाह्य सत्ता कुछ भी नहीं। शायद यही कल्पना है जिसमें हमारे मीमांसक एक पक्षके तो देशको अनन्त और दूसरी पक्षके देशका अत्यन्ताभाव मानते हैं।

ताताका लोहेका कारखाना

[ले०—अध्यापक दुर्गाप्रसाद, बी. ए.]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

त भट्टेके वर्णनमें नीचे दी हुई बातोंका भी जानना आवश्यक है। सुभीतेके लिए हम उनको पांच शीर्षकोंमें देंगे—(१) लोहिया पत्थरका भण्डार (ore bunkers) (२) भट्टेका शिरोभाग (furnace top), (३) भट्टेका अधोभाग (furnace foot) (४) ढलुआं लोहा या लौह डिम्ब (pig iron) और (५) मैल (slag)।

लोहिया पत्थरका भण्डार

यह देखिये इस तालाबके किनारे खुले मैदानमें काहेसे लदी हुई रेलगाड़ियोंकी पंक्तियां खड़ी हुई हैं? चलिये, पास चलकर देखें कि रेतकेसे ढेले इनमें काहेके भरे हैं। एक ढेला हाथमें लेकर देखिये तो। यह साधारण मट्टीके ढेलों और पत्थरोंसे कहीं ज़्यादा भारी हैं। इन्हीं ट्रकसके पास जो छप्पर (shade) पड़ा हुआ है, इसीके नीचे बहुत सी कोठरियां (bins) बनी हैं, जिन्हें बंकर (bunker) कहते हैं। इनमेंसे कुछमें लोहिया पत्थर भरा है, कुछमें चूनेका पत्थर और शेषमें कोक है।

इन बंकरोंके पेंदे समतल नहीं होते वरन् ढलवां होते हैं और उनमें एक द्वार भी लगा रहता है, जो एक दस्तेके (handle) सहारे खुलता और बन्द होता है। इन बंकरोंके नीचे रेल पथ बने हुए हैं, जिनपर बिजलीकी शक्तिसे चलनेवाले ठेले इधर उधर दौड़ा करते हैं। यह ठेले ही बंकरोंके द्वारोंके नीचे जब जा कर ठहरते हैं तो इनमें बैठा हुआ मज़दूर बंकरवाले मज़दूरको बंकरका द्वार खोलनेके लिये कहता है और ठेलेके भर जानेपर बन्द करा देता है। माल भर जानेपर ठेला यहांसे चलकर एक और प्लेटफार्मपर ठहरता है, जिसके नीचे भी रेल पथ बना है। इन ठेलोंमें माप यंत्र लगे रहते हैं, जिनसे यह ज्ञात हो जाता है कि ठेलेमें कितना माल गिरा।

अब ज़रा आगे बढ़ कर देखिये कि उपरोक्त ठेला कहां जाकर ठहरता है। जहां वह ठहरा है वहींसे एक ढलवां रास्ता उसके नीचेसे आरम्भ होकर एक बड़ी ऊंची गुम्बदके शिखर तक चला गया है। देखिये इस पथपर छोटी छोटी गाड़ियां चल रही हैं? एक सपाटेसे ऊपरकी ओर लपकी जा रही है और दूसरी नीचेकी ओर आ रही है। यह देखिये यह उतर कर ठेलेके नीचे जा खड़ी हुई और कुलीने ठेलेका पेंदा खोल माल मसाला उस गाड़ीमें डाल दिया। माल गिरते ही गाड़ी सपाटेसे फिर ऊपर चढ़ने लगी और जो दूसरी गाड़ी पहले चढ़ रही थी अब उतर रही है। ठेला भी अपने स्थानसे हटकर बंकरके नीचे

पहुंचा और फिर माल लाद लाया। इस प्रकार यह ठेले बंकरसे माल यहां तक पहुंचाते हैं और छोटी छोटी गाड़ियां, जिन्हें स्किप कहते हैं माल गुम्बद्की शिखरतक पहुंचा देती हैं। पाठक इस गुम्बद्से पहले परिचित हो चुके हैं। यही वात-भट्टा है।

वातभट्टेका शिखर (furnace top)

वातभट्टेके शिखरकी आकृतिका पूर्णज्ञान उस चित्रके देखनेसे हो जायगा जो विज्ञान भाग ७, अङ्क १, पृष्ठ ३६ पर दिया हुआ है। भट्टेका ऊपरी भाग एक बे पेन्देके प्यालेका सा होता है और इसे होपर (hopper) कहते हैं। यह भाग खुला नहीं रहता वरन् एक सूच्याकार वस्तुसे बन्द रहता है। इस सूचीका ऊपरी भाग एक डांडीसे लगा रहता है, जो सूचीको डाटे रखती है और अपनी जगह पर कायम रखती है। डांडीके दस्तेको ऊंचा करनेसे सूची नीचेकी ओर झुक जाती है और वात-भट्टेका मुंह खुल जाता है।

स्किप्समें जो माल आता है वह होपरमें डाल दिया जाता और जब एक रौएडके (round) लिए काफ़ी जमा हो जाता है तो डांडी उठाकर भट्टेमें डाल दिया जाता है।

स्पष्ट है कि वात भट्टेका ऊपरी भाग सदा बन्द रहता है और केवल भट्टेमें लोहिया पत्थर, चूना आदिके डालनेके समय निमिष मात्रकेलिए खोला जाता है और बन्द कर दिया जाता है। फिर यह प्रश्न उठता है कि भट्टेकी धुआं इत्यादिका क्या होता है। पूर्वोक्त चित्रको देखिये तो मालूम होगा कि बाएँको एक बड़ा भारी नल इसी गरज़से लगाया गया है।

वातभट्टेमेंसे बहुत सी गैसोंका मिश्रण निकलता है। अतएव जो सज्जन ढलवां रास्तेसे चढ़ कर वातभट्टेके शिखरतक पहुंच, उसके चारों तरफ़ लगे हुए प्लेटफार्मपर घूमते हों उन्हें सूचीके हटनेके समय सावधान रहना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि चावसे सूचीके हटते ही वे भट्टेमें झांकने लगें। ऐसी गुस्ताखी करनेवालोंको हवाका थपेड़ा लगता है, जो प्रायः असावधान दर्शकको मूर्च्छित कर देता है। बात यह है कि भट्टेमेंसे निकलनेवाली गैसोंमें कर्बन एक ओषिद् भी रहता है। यह बहुत ज़हरीली वायु है। सूचीके हटनेसे गैसें शिखर द्वारा भी निकलने लगती हैं और यदि दर्शक अपना मुंह और नाक अच्छी तरह बन्द नहीं कर लेते तो हानि पहुंचनेकी सम्भावना रहती है।

जब होपरसे एक रौएडका बोझ गिराया जाता है तो भट्टेका ऊपरी भाग साधारणतः आठ फुट खाली रखा जाता है और जब इसके गल जानेसे भट्टा बारह फुट खाली हो जाता है तो फिर एक रौएड डाला जाता है।

भट्टेमें कोयला जलानेसे जो गैसें तैयार होती हैं उनका भी पूरा उपयोग किया जाता है। भट्टेके शिखरके पास एक बड़ा नल लगा हुआ है। बेल खुलनेके समयको छोड़ सदा गैसें इसी नलसे बाहर निकलती रहती हैं और कई कामोंमें इनका प्रयोग होता है। इनको जलाकर कहीं इंजनका बैलट (boiler) और कहीं स्टोव गरम किये जाते हैं। भट्टेके सब स्टोव इसी गैससे गरम किये जाते हैं। कारखानोंके कार्यकर्ता बड़े कुशल होते हैं। वे सदा इस फिक्रमें लगे रहते हैं कि रत्ती भर चीज़ भी खराब न जाय, यहां तक कि इंजनसे निकलती हुई भापका भी संचय करनेके पश्चात् जलरूपमें फिरसे प्रयोग किया जाता है।

वात भट्टेका आकार तथा ढांचा मनुष्यके शरीरका सा है। जैसे मनुष्यके शरीरमें तीन प्रधान भाग होते हैं वैसे इसमें भी हैं। जिस प्रकार मुहंमें नाक इत्यादि होते हैं वैसेही भट्टेकी शिखरमें होपर तथा बेल हैं जहां पत्थर डाला जाता है। गलेके पासका व्यास पेटसे कम है अर्थात् गलेका व्यास १२ फुट और पेटका व्यास २० फुट है और कमरके पास ११ फुट है।

अन्तिम भाग (hearth) चूल्हा कहलाता है। इस स्थानमें दो रास्ते हैं। एकसे मैल और दूसरेसे ढलवां लोहा (pig iron) बह निकलता है।

भट्ठेका अधोभाग

यह प्रतिदिनके अनुभवकी बात है कि जब रसोई घरमें आग बुझ जाती है तो उसे जलानेके लिए पंखा झलते हैं, थोड़ी देरमें अंगारे लाल हो जाते हैं और ज्वालाका गरजता हुआ शब्द सुनाई देने लगता है। इसी प्रकार लोहार धौंकनीके द्वारा भट्ठोंकी आगको भी तेज करते हैं।

ओषजन (oxygen) एक ऐसी गैस है कि जिसकी आवश्यकता सब प्राणियोंको होती है। वायुमें यह $\frac{1}{5}$ परिमाणमें पायी जाती है और प्रत्येक वस्तुको जलानेके लिए इसीकी आवश्यकता होती है। जहां ओषजन नहीं है वहां कोई वस्तु नहीं जलती। जहां यह अधिक परिमाणमें है वहां अग्नि अथवा चिराग बहुत जल्द और तेजीसे जलेगा। इसलिए हम लोग पंखेके द्वारा ओषजन मिश्रित वायु चूल्हेमें पहुंचाते रहते हैं और जब जलने लगता है तब भी ओषजन चिमनी तथा छड़ोंके बीचमें पहुंचती रहती है, किन्तु पत्थर गलानेका भट्ठा बिलकुल बन्द रहता है। इसलिये बिना हवा पहुंचाये भट्ठेके भीतर आग जल नहीं सकती। इसीलिए बिजली घरसे बराबर हवा यहां आती रहती है। यह हवा ठण्डी होती है। आप समझ सकते हैं कि यदि ठण्डी हवा भट्ठेमें दी जावे तो यद्यपि यह जलानेमें सहायता तो देगी परन्तु भट्ठेको ठण्डा भी जरूर कर देगी, जिससे तापक्रम बहुत कम हो जायेगा, जलावन अधिक खर्च होगा और निश्चित समयमें पत्थर भी कम गलेगा। तो भी कितने ही कारखाने ठण्डी हवाका व्यवहार करते हैं। यह लोग समझते हैं कि ठण्डी हवासे लोहा अच्छा बनता है।

ताताके कारखानेमें तो गरमवायुका व्यवहार किया जाता है। बिजली घरसे आती हुई वायु ईंटोंके बने हुए (stoves) स्टोव्ज़में गरमकी जाती है। ततपश्चात् भट्ठेमें जाती है। भट्ठेमें जो गैस बनती है उसमेंसे थोड़ीसी तो शिखरसे बाहर निकलकर बरबाद हो जाती है और शेष स्टोवमें जलायी जाती है अर्थात् स्टोव गरम करनेके काममें लाई जाती है। स्टोव इन उच्छिष्ट गैसों-को जलाकर गरम किये जाते हैं और बारी बारीसे वातभट्ठेको गरम हवा पहुंचानेमें काम आते हैं। इसका सविस्तार वर्णन पहले ही किया जा चुका है।*

स्टोवसे हवा गरम होकर भट्ठेमें जाती है, परन्तु भट्ठेके भीतर एक ही नलसे नहीं जाती, क्योंकि किसी एक स्थानमें हवाकी अधिक झोंक होनेसे लाभके बदले हानि होती है। इसलिए इस बड़े नलसे बहुतसे छोटे छोटे नल लगे हैं, जिनको वातछिद्र (tuyeres) कहते हैं। ये नल भट्ठेके भीतरी भागमें वातको ले जाते हैं। ये बहुत पतले होते हैं और इनमें आध आध इञ्च व्यासके कई छेद होते हैं।

वात तथा भट्ठेकी तेज आंच इन वातछिद्रों-को गला देती, यदि इनकी रक्षाके लिये कोई उपाय नहीं किया जाता। इनकी रक्षाके लिये ठण्डे पानी-के नल लगे रहते हैं, जिनमें पानी सदा दौड़ता रहता है और वातछिद्रोंको ठण्डा रखता है।

प्रत्येक (tuyeres) ट्वियरके बाहरी छोरपर एक छोटासा अठन्नीके बराबर गोल चमकता हुआ पीतलका प्लेट मालूम पड़ता है। गौरसे देखनेसे शीशेका छोटा टुकड़ा मालूम पड़ता है और इसके द्वारा देखनेसे भट्ठेके जलते हुए पक्काशयका हाल मालूम पड़ता है। यह दृश्य बहुत मनोहर होता है। भीतर तप्त उज्ज्वल पदार्थ तथा लपकती ज्वाला शिखाएँ मालूम होती हैं। रोशनीसे आंखें शीघ्र चौंधिया जाती हैं किन्तु यदि आपके पास कोई नीला शीशा हो तो आप बहुत अधिक समयतक इस दृश्यको देख सकते हैं। इनको

* विज्ञान भाग ७ अङ्क १, पृष्ठ ३४

झरोखे (peep holes) कहते हैं। इनके द्वारा देखा जाता है कि हर जगह काम पूरी तौरसे होता है अथवा नहीं। यहां आपको आश्चर्य्य होगा कि इतनी गरमी होनेपर भी शीशा क्यों नहीं गल जाता है। इसका कारण यह है कि वातप्रवाह ऊपरकी ओर होता है और ज्वालाकी लपटोंको अपने साथ उसी ओर ले जाता है, इसलिए यह टुकड़े ज्यादा नहीं तपने पाते।

(pig-iron) लोहडिम्ब या ढलुआं लोहा।

ऊपर कह चुके हैं कि भट्टेसे द्रवलोहा डब्बोंमें गिराया जाता है। यही लोहा इस्पातमें परिवर्तित हो जाता है और तब इससे रेलें बनती हैं। भट्टेसे द्रवलोहा निकालनेकी राहको टेप-होल (tap-hole) कहते हैं। इसके खोलनेके समय सब लोग सामनेसे हट जाते हैं और लोहा गटरमें हो (gutters) कर बह निकलता है। यह गटर समतल भूमिमें ला कर छोड़ नहीं दी जातीं, किन्तु बालूकी दो लम्बी डौलियोंके बीच हो कर बहती हैं। इस मैदानके अन्तमें एक तंग रास्ता एक फुट चौड़ा बना होता है, जिसको रनर (runner) कहते हैं। इस रनरसे समकोण बनाते हुए तंग रास्ते होते हैं। ये रास्ते एक दूसरेसे गजभर दूर होते हैं और इनको सीता (sows) कहते हैं। हरेक सीताके बीचमें एक लम्बी बालूके ढेरोंकी कतार बनी रहती है। प्रत्येक ढेर एक गज लम्बा, तीन इञ्च चौड़ा और तीन इञ्च मोटा होता है। इन ढेरोंके बीचमें भी उतनीही जगह छोड़ी होती है जितनी ढेरोंकी होती है। इनको पिग-मोल्ड (pig-moulds) और इस स्थानको पिगबेड (pig-beds) कहते हैं। जब टेपहोल (tap-hole) खुलनेवाला होता है तो सब लोग बहुत सावधान हो जाते हैं। पहले मट्टी (fire-clay) की डाट (plug) लोहेकी छड़से तोड़ी जाती है और तब लाल सुनहले रंगके द्रवकी धारा गटरमें बहने लगती है और ढलवां नालेके नीचे उतरती है। यही लोहा है जो गले हुए मैलसे रंगमें स्वच्छ तथा चमकीला होता है। इसके साथ मैल भी निकलता है किन्तु हलका होनेसे उतराता रहता है और कुछ गटरके ऊपर रखी हुई छड़ोंसे रुक जाता है।

द्रव लोहा बहते बहते रनर (runner) तक आजाता है और उसे अखीर तक पूरा भर देता है। द्रवलोहा इससे आगे नहीं जाता, क्योंकि रनरका निचला छोर बालूकी दीवारसे बन्द रहता है। इस कारण सीधे आगे न बढ़नेसे द्रवधातु सीतामें (sow) अपना मुख फेर लेता है। यह सीता रनरके निचले भागकी ओर होती हैं।

यहां यह बात जाननेकी है कि लोहा न बालूसे मिलता है और न उसको अपने स्थानसे हटाता है, परन्तु धीरे धीरे (pig-moulds) पिगमोल्ड्सका सीतामें (sows) भरता जाता है। भरने पर एक मनुष्य लोहेके कुदालसे इस सीताके (sow) मुखपर बालू डाल देता है तब दूसरी सीतामें द्रव लोहा जाने लगता है। इस प्रकार पिगमोल्ड्स (pig moulds) की समस्त सीता (sows) भर जाती है। इस द्रव धातुके स्रोतको फेरनेवाले पसीने पसीने हो जाते हैं।

जब सब लोहा भट्टेसे निकल आता है तब टेप-होल (tap-hole) को फिर आतशी मट्टीसे (fire-clays) बन्द कर देते हैं। यह काम बहुत भयानक होता है। टेपहोलके (tap-hole) मुखपर हवाई तोप लगाकर आतशी मट्टी (एक प्रकारकी तैयार की हुई मिट्टी जो अग्निको सहन कर सकती है) से भरते जाते हैं। इस समय तोपके चलनेसे भयानक शब्द होता है।

यह सांचोंमें पहुंचा हुआ लोहा, समय पाकर ठण्डा और कठोर हो जाता है। फिर पिगमोल्ड्सकी (pig-moulds) लोहेके छड़ोंको तोड़ते हैं। तब लोहडिम्ब अलग अलग हो जाते हैं। इसी कारण गलानेवाले भट्टेसे निकले हुए लोहेको ढलुआं या डिम्ब—लोह (pig-iron) कहते हैं, क्योंकि प्रायः इसके डिम्ब बना लिये जाते हैं। प्रत्येक डिम्ब २० या २५ सेर भारी होता है, जिससे आसानीसे उठाया

जा सकता है। ढलुआं लोहा (pig-iron) तुनुक होता है, इस कारण आसानीसे टूट जाता है। कभी कभी पिगबेडके (pig-bed) लौहडिम्ब यंत्रसे तोड़े जाते हैं, इस यंत्रको पिग ब्रेकर (pig-breaker) कहते हैं।

लोहेका मैल (slag)

लकड़ी कोयला और पत्थरसे लोहा भारी होता है। इसलिये जैसे ही लोहा पत्थरसे अलग हुआ और द्रवावस्थामें आया कि भट्टेके पेंदेमें गिरने लगता है। लोहिया पत्थरसे लोहेके अतिरिक्त दूसरे पदार्थ भी बनते हैं। इस पदार्थको (slag) मैल कहते हैं। यह मैल लोहेसे हलका होता है।

लोहा और मैल एक ही साथ बनते और साथ ही भट्टेके पेंदेमें गिरते हैं। लोहा भारी होनेसे नीचे जा बैठता है और मैल हलका होनेसे लोहेके ऊपर तैरता है। पर यह याद रखना चाहिये कि यद्यपि लोहा अधिक परिमाणमें पेंदेमें इकट्ठा हो जाता है, तथापि थोड़ा बहुत मैल द्रवलोहमें जहां तहां रह जाता है और ऊपर नहीं उठने पाता। मैल और लोहा निकलनेके लिये दो अलग अलग छेद होते हैं। लोहा चार पांच घंटेमें बाहर निकाला जाता है, किन्तु मैल दो दो घंटे पीछे ही निकाल लिया जाता है।

[समाप्त]

कद ठिंगना या ऊंचा क्यों होता है ?

[ले०—अध्यापक चिरञ्जीलाल माथुर, बी. ए, एल. टी.]

प्राचीन चित्रोंको देखकर विदित होता है कि भारतनिवासी पहले खासा लम्बे चौड़े होते थे। आज कलके पश्चमी शिक्षासे सुशोभित मनुष्य तो प्रायः ५ फुट ही रह जाते हैं। प्राचीन समयको छोड़कर सत्तर अस्सी बर्षके बूढ़ोंको ही हम अपनेसे कहीं लम्बा पाते हैं। भारतवासियोंके क़दको क्रमशः घटता हुआ देखकर किसी मसख़रेने कहा है कि यदि इसी प्रकार आगामी संतानका कद घटता रहा तो किसी समयमें भारतवासियोंकी संतान डिबियामें बंद करनेके योग्य हो जायगी। आइये इस बातपर विचार करें कि क़द ठिंगना या ऊंचा क्यों हो जाता है।

प्रायः कहा जाता है कि यदि मा बाप लम्बे होंगे तो संतान भी लम्बी होगी और यदि मा बाप ठिंगने होंगे तो संतान भी ठिंगनी होगी। यह बात कुछ अंश तक तो ठीक है, पर सर्वथा ठीक नहीं कही जा सकती, क्योंकि लम्बे माता पिताका बालक यदि ऐसी दशामें रहे कि भोजन बलदायक न मिले या कोई कष्ट अथवा बीमारीसे पीड़ित रहे तो उसका कद उतना ऊंचा न होगा जितना उसके अन्य भाई बहिनोंका होगा। इसके प्रतिकूल यदि छोटे कदके माता पिताका बालक सब प्रकार अच्छी दशामें रखा जाय तो मा बापसे लम्बा हो जायगा। सच है कि एक सीमा होती है जिससे अधिक बढ़ना संभव नहीं होता, परन्तु दूसरे जीवधारियोंको देखते हुए यह कह सकते हैं कि जलवायु, भोजन, आंतरिक सुख दुखका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। (Australia) आस्ट्रेलिया देशके वेलर घोड़ोंको देखिये कितने ऊंचे हो जाते हैं। यह ऊंट जैसे वेलर अरबी घोड़े व अंग्रेज़ी या हिन्दुस्तानी घोड़ियोंकी संतान होते हैं, परन्तु आस्ट्रेलिया देशके जल वायुके और भोजन अच्छा मिलनेके कारण इतने ऊंचे हो जाते हैं।

आधुनिक संतानोत्पत्ति शास्त्रवेत्ता इस विषयकी भली भांति छान बीन कर रहे हैं। अमेरिका महाद्वीपमें (Devonport) डेवनपोर्ट महाशयने इस विषयपर अपना समय और शक्तिका व्यय किया है। उनकी छान बीनका परिणाम यह सिद्धान्त है कि कद बढ़नेके वेगके कम हो जाने और कर्मेन्द्रियोंके चैतन्य होनेसे बहुत कुछ सम्बन्ध

अवश्य है। स्त्रियोंके कद बढ़नेका समय देखनेसे ज्ञात होता है कि १४ वर्षतक तो स्त्री बढ़ती है। इस उम्रपर आकर बढ़नेका वेग कम हो जाता है। जो वेग बढ़नेका १४ वर्ष तक रहता है यदि वही वेग २५ वर्षतक रहे तो स्त्रीका कद ८२$\frac{1}{2}$ इंच या लगभग ७ फुट होगा। इस ऊंचाई तक न पहुंचनेका कारण यही है कि वेग विशेष अवस्थापर कम हो जाता है। जब वीर्य्य उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियां (glands) प्रौढ हो जाती हैं तो कद बढ़नेका वेग घट जाता है। इन ग्रन्थियोंके जल्द या देरसे प्रौढ़ होनेसे कदका बढ़ना जल्द या देरसे कम होगा। तो फिर कदपर प्रभाव डालनेवाली तीन बातें हैं (१) संचार या बीज परम्परा (२) जल, वायु, भोजन इत्यादि (३) कामोद्दीपनका समय। अब देखना चाहिये कि भारतवर्षमें दिन प्रतिदिन कद छोटा होता जाता है इसका कारण क्या है ? यदि ध्यानपूर्वक सोचते हैं तो ज्ञात होता है कि कुछ दरजे तक जल वायु भोजन इत्यादिसे भी ऐसा होता है, क्योंकि वर्तमान समयमें अधिकांश भारतनिवासियोंको न तो जल वायु स्वच्छ मिलता है और न यथोचित पुष्टिकारक भोजन मिलता है। नगर बड़े बड़े हो जानेसे जलवायु स्वच्छ मिलना दुर्लभ हो जाता है और भारतवर्षकी दरिद्रता तो समस्त संसारमें मानी हुई बात है ही। परन्तु कद छोटे होनेका मुख्य तीसरा कारण है। इस प्राकृतिक नियमका स्वाभाविक प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। भारतवर्षमें बालविवाहकी कुप्रथा प्रचलित है। इसीसे छोटी उम्रमें कामोत्तेजना होती है और क्रमशः कद छोटा होता जाता है।

उत्तरीय भारतके मनुष्य प्रकृतिके अनुसार अच्छे लम्बे कदके होते हैं। जल वायु भी इस देशका बुरा नहीं है। आवश्यकता इस बातकी है कि सावधानीसे रह कर अपनी शारीरिक दशा ठीक रखें, भोजन इत्यादिका यथाशक्ति अच्छा प्रबंध करें और कमर कसके इरादा कर लें कि न तो बाल विवाह ही करेंगे और न बालकोंका और किसी प्रकारसे, समयसे पहले, ब्रह्मचर्य भङ्ग होने देंगे। इस बारेमें विचारोंका प्रभाव बड़ा प्रबल होता है। युवकोंका ध्यान इस ओरसे बचाये रखनेका प्रयत्न करना भारतनिवासियोंको अपना कर्तव्य समझना चाहिए। दुर्भाग्यसे हमारे देशमें बहुतसी कुरीतियां ऐसी हैं कि जो इस कार्य्यमें बाधक होती हैं और युवकोंके हृदयोंमें कामकी अग्नि और भड़का देती हैं। विवाहके समय गीत प्रायः इसी प्रकारके गाये जाते हैं और नित्य प्रति गानेके गीति भी अधिकांश ऐसे ही विचारोंसे भरे होते हैं कि युवकोंमें कामोत्तेजना करनेमें सहायता देते हैं। ऐसे गीतोंका गाना बन्द होना चाहिये और उनके स्थानपर धार्म्मिक, शांति दिलानेवाले, गीत गाये जाने चाहियें। जबतक यह न होगा कद बढ़नेमें जल्दी रोक लगजाना बन्द न होगा।

देशके हित, जातिके हित और व्यक्तिके हितके विचारसे यह जरूरी है कि भारतके बालक पूर्ण अवधि तक कदमें बढ़ें और सब प्रकार स्वस्थ हों। लम्बे कद और अच्छे स्वास्थ्यवाला मनुष्य अस्वस्थ नाटोंके मुकाबलेमें प्रत्येक कार्य्यमें अधिक योग्य समझा जायगा। आप देखते होंगे कि बहुत सी आवश्यकताएं समाचार पत्रोंमें निकलती हैं। उनमें लिखा होता है कि प्रार्थना पत्रके साथ फोटो भेजो और प्रायः सबही बड़े पदोंके प्रार्थी मुलाकातके लिए बुलाए जाते हैं। इसका मनशा सूरतशकल देखनेका ही होता है।

प्रशान्त महासागरमें ।

[ले०-श्री लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव)

(गताङ्कसे सम्मिलित)

इतनेमें रमाकान्तके पैरके नीचेकी पृथ्वी हिली और उसके पैर पृथ्वीसे तीन या चार फुटकी ऊंचाई तक उठ गये। चारों ओरसे जलके सैकड़ों फव्वारे एक साथ छूटने लगे। इन फव्वारोंमें इतना ज़ोर था कि बौछारका जल पेड़की चोटी तक पहुंचता था। रमाकान्तका सब शरीर जलमें सराबोर हो गया। कोई तीन मिनटतक इन फव्वारोंकी फुहार उठती रही, फिर बन्द हो गई। रमाकान्तने देखा कि मदनमोहन इत्यादि भी नीचेसे ऊपर तक भीगे हुए उससे दो ही गजके फासलेपर खड़े थे और उसको देखकर निकट चले आये। रमाकान्त उठा और इनको अपने पीछे आनेका इशारा कर समुद्रकी ओर चल पड़ा। थोड़ी ही देरमें यह लोग समुद्र तटपर पहुंच गये। वहांसे डोंगीमें सवार होकर गिरिजापर पहुंचे। बड़े कमरेमें पहुंचकर रमाकान्तने एक छोटीसी सन्दूक जो कमरेमें लटकती हुई घड़ीके पीछेवाले ताक़में बन्द थी निकाली। फिर उस सन्दूकको खोलकर और उसमेंसे तालियोंका एक गुच्छा निकालकर अपने पलंगके पासवाले बड़े सन्दूकको खोला। इस सन्दूकमें कई प्रकारके कपड़े रखे थे। इसमेंसे कुछ कपड़े निकालकर रमाकान्तने मदनमोहन, बलवीर और विश्वनाथको दिये और अपने लिए भी आवश्यक कपड़े निकाले। कपड़े बदल चुकनेपर रमाकान्तने कहा—"आप अपने नीचेवाले कमरेमें चले जाइये। भोजन इत्यादिसे निवृत्त होकर लौटनेपर फिर बात चीत होगी।" रमाकान्त पूजागृहमें चला गया और मदनमोहन बलवीर और विश्वनाथ नीचेवाले कमरेमें चले आये। कमरेमें एक लम्प जल रहा था। पूरे कमरेकी लम्बाई चौड़ाईकी एक रङ्गीन दरी बिछी हुई थी। दीवारोंमें कहीं खिड़कियोंका निशान तक न था, फिर भी न जाने किस राहसे हवाके ठण्डे ठण्डे झोंके आ रहे थे। यह तीनों इसी फर्शपर बैठ गये। थोड़ी देर बाद एक नौकर एक बड़े थालमें कुछ फल और अन्यान्य भोज्य पदार्थ लेकर उपस्थित हुआ। थाल और जलके पात्रको फर्शपर रखकर नौकरने कहा—"इस थालमें कितनी ही ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें आप लोगोंने कभी खाया न होगा। फिर भी इसमें किसी प्रकारके सन्देह करनेका कारण नहीं। इसमें अधिकांश जङ्गलकी जड़ी बूटियोंसे बने हुए पदार्थ हैं। हमारे कप्तान साहबकी यह आज्ञा है कि जिस समय गिरिजा पृथ्वीके जिस स्थानमें हो उस समय उसके आरोहियोंको उसी स्थानमें उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंसे सन्तुष्ट किया जाय। उनकी आज्ञानुसार इस थालमें रखी हुई प्रायः सभी चीज़ें सामनेवाले द्वीपमें उत्पन्न होनेवाली जड़ी बूटियों और फल फूलादिसे तय्यार की गयी हैं। इसमें कोई भी ऐसी चीज़ नहीं जिसके खानेसे आप लोगोंको किसी प्रकारकी हानि हो सके। इतना कहकर नौकर चला गया। मदनमोहनने थाल खींच लिया और परमात्माको धन्यवाद देकर बलवीर और विश्वनाथके साथ भोजन करने लगा। भोजनोपरान्त मुंह हाथ धो चुकनेपर इधर उधरकी बातें आपसमें होने लगीं।

मदन०—उस पेड़के नीचेसे जलकी धाराका एकाएक फूट निकलना और फिर दो ही मिनटके बाद बन्द हो जाना बड़े आश्चर्य्यका विषय है। वहां न तो कोई नदी है न तालाब और न कुआं। फिर यदि कोई जलाशय हो भी तो उससे क्या? सोचनेकी बात तो यह है कि ऐसी तीव्र धारा कहांसे और कैसे फूट निकली?

बल०—जान पड़ता है कि इस स्थानके आदिम निवासी यंत्र विद्यामें बड़े निपुण थे। उन्होंने विदेशियोंको अपनी कार्य्य कुशलताका

परिचय देनेके लिए उस पेड़के नीचे पृथ्वी-गर्भ-में ऐसे फव्वारे बनाये थे जो समय समयपर अब भी ऊपरको जल फेंका करते हैं।

विश्व०—(हंसकर) इन्होंने उस मर्मको कैसा स्पष्ट समझ लिया है। वाह! कहना तो यह भी चाहिये था कि वह आदिम निवासी इन जैसे सभ्य मनुष्योंको देखकर पुनर्जीवित हो उठते हैं और अपनी कृतज्ञताको दर्शानेकेलिए नीचेसे फव्वारेका जल फेंकते हैं—नहीं, नहीं, अर्घ्य द्वारा अभिवादन करते हैं।

मदन०—यह बड़ी कठिन समस्या है। हम लोग इसे हल नहीं कर सकते। जितना ही इसे समझनेके लिए दिमाग लड़ाते हैं उतनी ही इसकी जटिलता और भी बढ़ती जाती है। अच्छा देखिये कप्तान साहब इस विषयमें क्या कहते हैं।

इतना कह कर मदनमोहन उठ खड़ा हुआ, बलवीर और विश्वनाथ भी खड़े हो गये और थोड़ीही देरमें कप्तानके कमरेमें पहुंच गये। रमाकान्त आराम कुर्सीपर लेटकर कुछ पढ़ रहा था। इन तीनोंको देखकर पलंगके पास फर्शपर बैठ जानेका इशारा किया। कुछ देरके बाद रमाकान्तने अपनी किताब आराम कुर्सीकी दहनी पटरीपर रखकर कहा,—"पेड़के नीचेवाली घटनाको देखकर आप लोग चकित हो गये थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस मनुष्यने कभी ऐसे स्थानोंमें परिभ्रमण न किया होगा, ऐसे ऐसे प्रकृतिके गूढ़ रहस्योंका निरीक्षण न किया होगा, उसको ऐसी घटनाओंसे बड़ा आश्चर्य होगा। जो बात कभी देखने अथवा सुननेमें नहीं आती उसके सहसा प्रकट हो जानेसे मनुष्यका चित्त चञ्चल हो उठता है। कितनी ही भावनाएँ उसके दिमाग-में चक्कर लगाने लगती हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि उनका ठीक कारण न जाननेसे मनुष्य भयभीत हो जाता है और भूत प्रेतादिका सन्देह करने लगता है। परन्तु मनुष्यको चाहिये कि अपने मनको स्थिर कर ऐसी घटनाओंके मूल कारणका अनुसन्धान कर लेनेपर अपने विचार-को प्रकट करे। मैं आप लोगोंसे पहले भी कह चुका हूं कि इस द्वीपमें मुझे कई बार आना पड़ा है, परन्तु आज तक मैंने भी ऐसे अद्भुत दृश्यको नहीं देखा था। धड़ाकेकी आवाजके बाद जब जलकी धाराएँ एकाएक फूट निकली थीं तो मैं भी अत्यन्त भयभीत हो गया था। फिर उनके बन्द हो जानेपर तुम लोगोंको पास ही खड़ा देखकर चित्तको कुछ शान्ति हो गई। वहां अधिक देर तक ठहरना उचित न जान कर मैं तुम लोगोंको इशारा कर इधरको चला आया। उस समयसे अबतक मेरा चित्त बिलकुल चञ्चल था। जब मैंने इस पुस्तकको खोलकर उक्त रहस्यका पूरा ब्यौरा पढ़ा है तो चित्तको कुछ शान्ति हुई है। यह पुस्तक आजसे कोई दो हज़ार वर्ष पहलेकी लिखी हुई है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसमें इस द्वीपका वर्णन बहुत अच्छी तरह किया गया है। समय पाकर तुम लोग इस पुस्तकको पढ़ लेना"। इतना कहकर रमाकान्तने पासवाली मेजपर रखे हुए गिलासको उठाकर थोड़ा सा जल पिया और फिर कहने लगा। "चन्द्रमा और सूर्य्यके आकर्षणके आधिक्यसे समुद्र-का जल ऊपरको उठता है। जलकी इस उठानको लहरोंका उठना कहते हैं। आकाश पिण्डोंमें चंद्रमा और पिण्डोंके अतिरिक्त पृथ्वीके अत्यन्त निकट है। इसलिए सूर्य्यकी अपेक्षा इसकी आकर्षण शक्ति-का प्रभाव पृथ्वीपर अधिक पड़ता है। यही कारण है कि चन्द्रोदयके समय तथा चांदनी रात-में समुद्रकी लहरें अधिक वेगसे उठने लगती हैं। पृथ्वीका जो भाग चन्द्रमाके ठीक सामने या उसके ऊर्ध्व पथ (Vertical path) के ठीक नीचे पड़ता है उस भागपर उसकी आकर्षण शक्तिका प्रभाव अधिक पड़ता है। इस आकर्षणके प्रभावसे समुद्र-का जल चारों ओरसे खिंचकर एकत्र हो जाता है और बड़ी बड़ी लहरोंके रूपमें परिणत हो कर किनारेकी ओर दौड़ने लगता है। समुद्रतटकी

पहाड़ियां प्रायः खोखली हुआ करती हैं। यह सामनेवाली पहाड़ी भी सम्भवतः ऐसी ही है। जब लहरें बड़े वेगसे आकर किनारेसे टकराती हैं तो समुद्रका जल पहाड़ीके भीतर ही भीतर उस पेड़ तक पहुंच जाता है और अपने ठहरनेके लिये काफ़ी स्थान न पाकर ऊपरके छिद्रों द्वारा फव्वारेकी तरह फूट निकलता है। इस पुस्तकमें इस द्वीपके कितनेही ऐसे ऐसे स्थानोंका वर्णन है। सूर्य्यकी आकर्षण शक्ति पृथ्वीसे अत्यन्त दूर होनेके कारण चन्द्रमाकी आकर्षण शक्तिसे बहुत कमज़ोर होती है। इसलिये दिनके समय बड़ी बड़ी लहरें बहुत कम उठती हैं और इसी कारणसे यह दृश्य दिनको प्रायः अदृश्य सा रहता है। रातको चन्द्रोदय होनेके साथ ही फिर दिखाई देने लगता है। जिस समय हम लोग उस वृक्षके नीचे पहुंचे थे उस समय चांदनी चारों ओर छिटक रही थी और समुद्रमें बड़ी बड़ी लहरें उठती और किनारेसे टकरा रही थीं। इस समय भी वहां वही क्रम जारी होगा, क्योंकि चन्द्रमाका प्रकाश बहुत बढ़ गया है। इतना कहकर रमाकान्तने मदनमोहनसे पूछा—"क्यों मदन! इससे पहले तुमने कभी ऐसा दृश्य देखा था या नहीं ?"

मदन०—कभी नहीं। ?

रमा०—क्या तुम्हें कभी किसी ऐसे द्वीपमें वा समुद्रके तटपर रहनेका मौक़ा नहीं पड़ा।

मदन०—बहुत! अनेकों बार।

मदनमोहनके यह शब्द एक विचित्र भाव लिये हुए निकले थे। रमाकान्त इन भावोंको समझनेके लिये बड़े ध्यानसे उसके चेहरेकी ओर देख रहा था। चतुर लोग चेहरेकी चमकसे चित्तके भाव जान लिया करते हैं। कुछ देर तक निश्चित भावसे मदनमोहनके चेहरेकी ओर देख कर रमाकान्तने कहा,—"मदन! इस प्रशान्त महासागरमें तुम लोग कैसे आये।"

मदन०—पहले तो मैं दुर्भाग्यवश समझता था; परन्तु अब सौभाग्यवश समझना पड़ता है। कप्तान साहब! संसारमें किसीके सब दिन बराबर नहीं जाते। जिस स्थानमें मैं आज बैठा हुआ हूं उस स्थानका दर्शन मैंने स्वप्नमें भी नहीं किया था। आपके इस प्रश्नने मुझे अपने और अपने साथियोंके इस सफ़रका हाल सुनानेके लिए विवश कर दिया है। यद्यपि मुझे अभी ऐसा करना उचित नहीं तथापि मेरी आत्मा आपसे निवेदन करनेके लिए अनुरोध कर रही है। अन्तरात्मा कभी मनुष्यको धोखा नहीं देती। इसकी आज्ञानुसार काम करनेसे मनुष्यका सदा कल्याण होता है।

बाल्यावस्थामें जब मेरे पिताजी मुझे अपनी गोदमें बैठाकर भगवान् कृष्णके स्तोत्र और गीताके श्लोक कण्ठ कराने लगते तो समय समयपर कुछ इधर उधरकी कहानियां भी सुनाया करते थे। उन कहानियोंमें वह देश देशान्तरोंके जङ्गलों, पहाड़ों और प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करते थे। ऐसी कहानियोंको मैं बड़े चावसे सुना करता था। प्रशान्त महासागरमें फैले हुए छोटे छोटे द्वीपोंके अद्भुत रहस्य और मनोरंजक दृश्यका हाल सुनकर बचपनसे ही मुझे उन्हें देखनेकी लालसा उत्पन्न हो गई थी। अबसे पांच वर्ष पहले मैं इङ्गलैंडमें पढ़नेके लिए आया था। बलवीर और विश्वनाथसे विद्यालयमें ही मुझसे परिचय हुआ। गर्म्मीकी छुट्टियोंमें हम तीनों इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध बन्दरगाह डोवरको देखने गये। वहां मि० पेन्डर्सनसे मुलाकात हो गई। वह "पेरो" नामक सौदागरी जहाज़के कप्तान थे। उनका मुझसे पहले भी परिचय था। मि० पेन्डर्सनने कहा कि मेरा जहाज़ कल छ बजे शामको यहांसे फीजीद्वीपको जायगा। आप मुझसे प्रशान्त महासागरके द्वीपोंके देखनेकी कई बार इच्छा प्रकट कर चुके हैं। इस समय अच्छा मौका है यदि इच्छा हो तो चलिये।

मिस्टर पेन्डर्सनकी बातोंका प्रभाव हम लोगोंपर बहुत पड़ा। दूसरे दिन हम लोग

सन्ध्या समय 'ऐरो' में सवार हुए। ग्रीष्म ऋतुकी चांदनी रात थी और ठण्डी ठण्डी सामुद्रिक वायु चल रही थी। ऐसे समयमें 'ऐरो' का लंगर उठा। कुछ देर तक हम लोग किनारेकी ओर खड़े देख रहे थे, किनारेकी भूमिके आखोंसे ओझल हो जानेपर सामुद्रिक जीवोंका निरीक्षण करने लगे। 'ऐरो' कभी शान्त और कभी अशान्त जल राशिको चीरता हुआ आगे बढ़ता जाता था। थोड़ी ही देरमें हम लोग अटलांटिक महासागरके प्रशस्त वक्षस्थलपर विचरण करने लगे। रङ्ग विरङ्गी मछलियां स्वेच्छानुसार 'ऐरो'के चारों ओर तैरती हुई दिखाई देती थीं। उड़नेवाली मछलियोंके झुण्डके झुण्ड वायु मण्डलमें उड़ रहे थे। चिड़ियां शिकारके लिये इनके पीछे लगी हुई थीं। एक बार एक मछली (Dolphin) डोलफिनके डरसे भागी और 'ऐरो' के रस्सेसे टक्कर खाकर मेरे निकटवाले पटरेपर गिर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और देखने लगा। अभी उसके पर बहुत छोटे थे और सम्भवतः थोड़े ही दिनोंसे निकलने भी लगे थे। उन मछलियोंके विषयमें मुझे एक बात और भी मालूम हुई। वह यह कि जब तक उनके पर जलसे भीगे रहते थे तभी तक समुद्र वक्षसे एक फुटकी ऊंचाईपर वह वायु मण्डलमें विचरण कर सकती थीं। जलके सूखते ही अपने परोंको भिगोनेके लिए वायुमण्डलसे उतर कर समुद्रमें डुबकियां लगातीं और फिर उड़ने लगतीं। इससे मैंने यह अनुमान कर लिया कि जलके अति शीघ्र सूख जाने और धड़ामसे समुद्रमें गिर पड़नेके डरसे वह एक फुटसे अधिक ऊंचाई तक नहीं जातीं। मैंने उस मछलीको फिर जलमें फेंक दिया। इस प्रकार समुद्रके जीवों और उसकी लहरोंका अद्भुत तमाशा देखते हुए हम लोग अमेरिका महाद्वीपके दक्षिणी सिरे हरन अन्तरीप के (cape Horn) निकट पहुंच गये। यहांकी वायु बहुत ठण्डी थी और समुद्रमें बड़ी बड़ी लहरें उठ रही थीं। वास्तवमें यह स्थान बड़ा ही भयानक था। जहाजी लोग इस अन्तरीपके बड़े बड़े तूफानोंकी कहानियां कहने लगे।

एकने कहा—"सामुद्रिक संसारके जितने स्थानोंमें मैंने भ्रमण किया है उनमें सबसे भयानक स्थान मुझे यही प्रतीत होता है। मैं यहां दो बार आ चुका हूं और दोनों बार जहाजोंके नष्ट विनष्ट हो जानेके कारण बड़ी कठिनतासे मेरी प्राण रक्षा हुई है। अब फिर तीसरी बार आया हूं भगवान् ही रक्षा करें।"

दूसरेने कहा—"इससे पहले मैं यहां एक बार और आया था। उस बार वायुके वेगसे जहाजके पालके चिथड़े चिथड़े हो गये थे और रस्से टुकड़े टुकड़े हो गये थे। ठण्डके मारे प्राणोंके लाले पड़ गये थे।"

तीसरेने कहा—"मुझे यहां पांच बार आना पड़ा है और हर बार पहलेकी अपेक्षा अधिक दुर्दशा हुई है।"

जहाज़ियोंकी इन बातोंसे हम लोग भयभीत तो अवश्य हुए परन्तु ईश्वरकी रक्षापर दृढ़ रहे। कुछ ही दिनोंमें इस भयानक अन्तरीपको पार कर हम लोग प्रशान्त महासागरमें पहुंच सके। सागरके उस अंशका जल बहुत ही शान्त था और शीशेके समान चमक रहा था। जलमें तैरते हुए भिन्न भिन्न आकार प्रकारके और रङ्ग बिरङ्गे जानवरोंको देख कर परमात्माकी सृष्टिकी अनन्तताका भाव हम लोगोंके हृदयमें सुदृढ़ हो गया। जहाज़ी लोग तो कई बार देखनेके कारण इन जीवोंकी ओर कम ध्यान देते थे परन्तु हम लोग प्रायः दिन भर यही तमाशा देखा करते थे। इस प्रकार नित नये नये जीवोंको देखते हुए हम लोग महासागरके "मूंगा द्वीप समूह" के निकट पहुंच गये। अहा! उस दृश्यको हम लोग कभी न भूलेंगे। दूरसे ही उन द्वीपोंके किनारे सफ़ेद और चमकते हुए दिखाई देने लगे। सूर्य्यकी किरणोंके पड़नेसे उनकी चमक ऐसी बढ़ जाती थी कि आंखें झपक पड़ती थीं। किनारेपर घने और लम्बे नारियलके पेड़ दिखाई

देते थे। उस अनुपम दृश्यको देखकर हम तीनों-की यही इच्छा होती थी कि किसी प्रकार उन द्वीप-समूहोंपर पहुंच जाते और वहांकी प्राकृतिक सजावटकी शोभासे अपने नेत्रोंको तृप्त करते। ईश्वरकी कृपासे हुआ भी ऐसा। हम लोगोंकी आशालतामें शीघ्र ही फल लग गया। इच्छा करते देर न हुई कि उसकी पूर्त्तिका आयोजन हो गया। रात्रिके समय एक बड़ा भारी तूफान उठा। इसके पहले झोंकेने ज़हाजके दो मस्तूलोंको तोड़ फोड़कर समुद्रमें गिरा दिया। जहाज़ियोंकी हिम्मत बिलकुल टूट गई। पांच दिनोंतक लगातार तूफान चलता रहा। एक छोटीसी डोंगीको छोड़कर सब नाव और डोंगियां बह गईं। मांझी भी बह जानेके डरसे पतवार छोड़ कर पटरेसे चिपट गये। हम लोग भी खड़े होकर मृत्यु के मुखमें गिरनेकी प्रतीक्षा करने लगे। कप्तान कहता था कि न जाने अपने पथसे किस ओर और कितनी दूर हम लोग बह आये हैं। उसकी इन बातोंसे और भी भय उत्पन्न होने लगा। छठे दिन प्रातः काल हम लोगोंको स्थल भागका दर्शन हुआ। यह एक छोटासा द्वीप था और चारों ओरसे मूंगेकी चट्टानोंसे घिरा हुआ था। इन्हीं चट्टानोंपर समुद्र-की लहरें टकराती थीं। इन्हींके पास ही दो और चट्टान थीं। उन दोनोंके बीचका जल स्थिर था। परन्तु उसमें घुसनेके लिये जो राह थी वह बहुत ही तंग थी। कप्तान इसी ओर 'पेरो' को ले जाने-का उद्योग करने लगा। परन्तु इस मुहाने तक पहुंचते पहुंचते एक विशाल लहर जहाजसे आ टकराई। इस आघातसे जहाजका पिछला भाग टूट गया और वह समुद्रके भीतर जाने लगा। कप्तानने उस बची हुई डोंगीको उतारने-की आज्ञा दी। डोंगी जलमें उतारी गई। परन्तु इस छोटीसी नावमें बैठकर सबका पार उतर जाना बिलकुल असम्भव था। यह देखकर मैंने बलबीर और विश्वनाथसे जहाज़की डांड़को किसी प्रकार खोलकर समुद्रमें फेंकनेको कहा। डांड़ समुद्रमें फेंका गया। हम तीनों ठीक उसी समय समुद्रमें कूदे जब एक दूसरी बड़ी लहर आकर डूबते हुए ज़हाजसे टकराई। कप्तान और दूसरे जहाजियोंको जो उसके साथ डोंगीमें सवार होनेका उद्योग कर रहे थे हम लोगोंने नहीं देखा। ज़हाज़से कूदते समय मुझसे एक बड़ी भारी भूल हो गई। बलबीर और विश्वनाथ तो पिछली लहरके टक्कर लेनेसे पहले ही कूद चुके थे। परन्तु मैं लहर और जहाज़की टक्कर हो चुकने पर कूदा। इस कारण जलपर पहुंचते पहुंचते मुझसे और जहाज़के नीचे भागवाले पटरेसे टक्कर हो गई। इस टक्करसे मुझे बहुत चोट आई और मैं बेहोश हो गया।

मैं नहीं कह सकता कि कितनी देर तक मूर्छित रहा। परन्तु जब मेरी आंखें खुलीं तो मैंने अपनेको एक चट्टानपर लेटे हुए पाया। मेरा शरीर बिलकुल शिथिल हो रहा था। आंखोंके आगे अन्धेरा छा गया था। बोलना चाहता था परन्तु बोल न सकता था। थोड़ी देर तक अपनी आंखोंको बन्द कर फिर खोलनेके बाद मैंने बलबीरके शरीरको अपने सामनेकी ओर वायु मण्डलमें लटकता हुआ देखा। इनके शरीरके चारों ओर अग्निकी लपट उठ रही थी और मेरे शरीरके चारों ओर नाचने, गाने और बजानेका शब्द सुनाई दे रहा था।

(शेष फिर)

धाराकी इकाई और स्पर्श—धारामापक

[ले०—प्रोफ़ेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

धाराके जो तीन गुण पाठकोंको विज्ञानके पिछले अंकमें बतलाये जा चुके हैं उन्हींके आधारपर धाराके नापनेके यन्त्र बनाये जाते हैं और धारामापक कहलाते हैं। यह स्पष्ट है कि एक गुणके आधारपर बने हुए यंत्रकी बनावट दूसरे गुणके आधारपर बने हुए यंत्रसे भिन्न होगी। इसीलिए हरएक गुणके आधारपर बने हुए यंत्रकी बनावट समय समयपर वर्णन करेंगे। चुम्बकीय गुणसे धारा नापनेके कई प्रकारके यंत्र बाजारमें मिलते हैं। उनका रूप प्रायः एकही प्रकारका होता है, केवल बाहिरी बनावटमें थोड़ासा भेद पाया जाता है। ऐसे सब यंत्रोंका तो एक लेखमें वर्णन करना असंभव है, यहां केवल एक प्रकारके धारा मापकका ही वर्णन किया जायगा।

चुम्बकीय गुणके आधारपर बना हुआ यंत्र स्पर्श-धारामापक कहलाता है और इस प्रकार बनाया जाता है—लकड़ीका, एक फुट व्यासका, चक्र लेते हैं, जो एक इञ्चके लगभग मोटा होता है और जिसमें आध इंचकी झिरी होती है। इस झिरीमें $\frac{१}{१६}$ इंच मोटे तांबेके, रेशम या रुईके डोरोंसे लिपटे हुए, तारकी १६ अथवा ३२ लपेटें लगा दी जाती हैं। चक्र एक लकड़ीके गोल तख़्तेपर खड़ा जड़ दिया जाता है। इस तख़्तेके नीचे तीन पेचदार टांगें लगी होती हैं, जिनकी सहायतासे तख़्ता समतल रखा जा सकता है। तारका एक सिरा एक पेचके नीचे और दूसरा दूसरेके नीचे तख़्तेपर दबा दिया जाता है। इन पेचोंमें एक एक फालतू ढिबरी भी होती है, जिनके नीचे बाट्रीके सिरोंसे जुड़े हुए तार दबा दिये जाते हैं। यह पेच धारामापकके संयोजक कहलाते हैं। चक्रके केन्द्रपर एक लकड़ीका टुकड़ा जड़कर उसपर एक काग़ज़का टुकड़ा चिपका देते हैं, जिसपर एक वृत्त बना होता है। इस वृत्तका केन्द्र और चक्रका केन्द्र एकही होने चाहियें और वृत्तकी परिधिपर डिग्रियों-के चिह्न अङ्कित होने चाहियें। एक छोटासा चुम्बक (लगभग एक इञ्च लम्बा) लेकर उसके बीचमें रेशमका बारीक धागा बांध केन्द्रके ऊपर चक्रकी परिधिसे लटका देते हैं। चुम्बकमें एक सूचक भी जड़ा होता है, जिसके छोर वृत्तकी परिधि-पर घूमते हैं और चुम्बकके विचलनका कोण बतलाते हैं। अङ्कित वृत्तका व्यास दो इञ्चके लगभग होता है। बड़ा वृत्त और छोटा चुम्बक इस कारण लिये जाते हैं कि छोटे वृत्तमें डिग्रियोंके चिन्ह छोटे होंगे और उनके हरांश पढ़नेमें कठिनाई होगी। चुम्बक छोटा लेनेका कारण यह है कि केन्द्रके पास ही चुम्बकीय शक्तिकी रेखाएँ घनी और
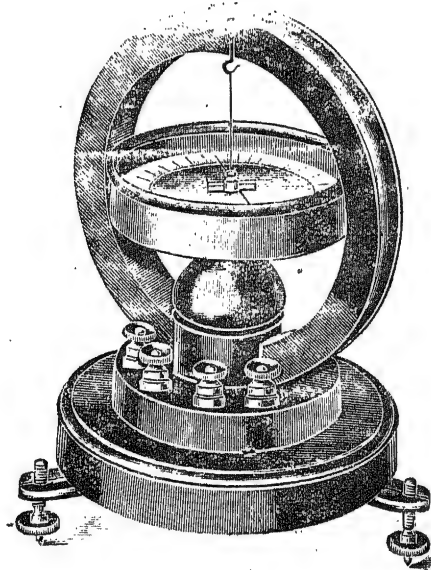
चित्र २–संयोजक

चित्र ३—स्पर्श-धारामापक

समानान्तर होती हैं, केन्द्रसे आध इञ्चसे अधिक दूरीपर रेखाएँ फैल जाती हैं।

अब हमको यह देखना है कि इस यंत्रसे विद्युत् धारा कैसे नाप सकते हैं, अतएव पहले धाराकी इकाई बतला देना परमावश्यक है।

धाराकी इकाई

जो धारा २ श. मी. व्यासवाले वृत्तमेंसे बहती हुई उसके केन्द्रपर रखे हुए इकाई बलवाले चुम्बकीय सिरेपर २ा डाइनके बराबर शक्ति डालती है इकाई धारा मानी जाती है। चूंकि इस घेरेका वृत्त २ा श. मी. है, इसलिए यों भी कह सकते हैं कि इस घेरेके वृत्तका प्रत्येक श. म. एक डाइनकी शक्ति डालता है और इकाई धाराकी परिभाषा इस प्रकार भी दी जा सकती है

जो धारा एक श. मी. अर्धं व्यासवाले घेरेकेए क श. मी. लम्बे चापमेंसे बहती हुई घेरेके केन्द्रपर रखे हुए इकाई प्रबलता-वाले चुम्बकीय सिरेको एक डाइनकी शक्तिसे हटावे इकाई धारा कहलाती है। दो, इकाई प्रबलतावाले, चुम्बकीय सिरे भी एक श. मी. की दूरीपर रखे हुए एक दूसरेको एक डाइनकी शक्तिसे हटाते हैं और इस घेरेका एक श. मी. लम्बा चाप भी चुम्बकीय सिरेसे एक श. मी. की दूरीपर रखा हुआ एकही डाइनकी शक्ति डालता है। इसलिए इकाई प्रबल-तावाले चुम्बकीय सिरेके समान माना जा सकता है। इसी बातको ध्यानमें रखते हुए और इस नियमको कि जितनी धारा प्रबल होगी उतनी ही शक्ति भी अधिक होगी प्रत्यक्ष मानकर कितने ही बड़े व्यासकी कई लपेटोंवाली कुण्डलीका चुम्बकीय प्रभाव उसके केन्द्रपर निकाला जा सकता है, यदि उसमें हो कर बहती हुई धाराका परिमाण मालूम हो तो। मानलो लपेटोंकी संख्या न है और उनका अर्धव्यास र श. मी. है और ध इकाइयोंकी धारा इन लपेटोंमेंसे बह रही है। कुल तारकी लम्बाई २ारन श. मी. हुई और ध धाराके बहनेसे यह लपेटें अपने केन्द्रपर रखे हुए इकाई प्रबलतावाले चुम्बकीय सिरेपर उतनी ही शक्ति डालेंगी जितनी कि २ारनध के बराबर प्रबलतावाला चुम्बकीय सिरा इकाई प्रबलतावाले चुम्बकीय सिरेसे र श. मी. की दूरीपर रखनेपर डालता। अतएव यह

$$\text{शक्ति} = \frac{\text{२ा र न ध}}{\text{र}^2}$$

$$= \frac{\text{२ा न ध}}{\text{र}}$$

अब विचारिये कि इकाई प्रबलतावाला चुम्बकीय सिरा तो केन्द्रपर रखा ही नहीं जा सकता, क्योंकि अकेला चुम्बकीय सिरा कभी मिलता ही नहीं है। केन्द्रपर एक छोटासा चुम्बक ही रख सकते हैं। जिसके उत्तरी सिरेकी प्रबलता प मानी जा सकती है। इसके सिरेपर शक्ति $=$ २ा न ध $\times \frac{\text{प}}{\text{र}}$। इतनी ही शक्ति इसके दक्षिणी सि-रेपर भी पड़ेगी और इसकी दिशा पहली शक्तिकी दिशाके विपरीत और समानान्तर होगी। यह दोनों शक्तियां मिलकर युगल बना लेंगी और चुम्बक इस युगलके कारण अपनी जगहसे हट जायगा।
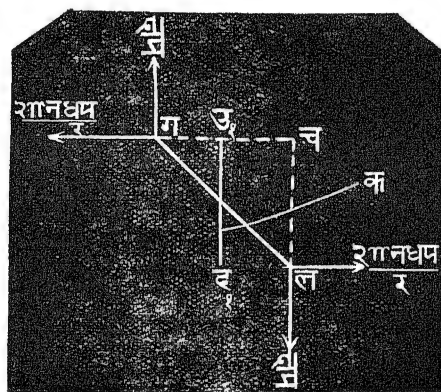
चित्र ४—पृथ्वी और वद्युत धाराके युगल

यदि यंत्रकी कुण्डली चुम्बकीय याम्योत्तर (उत्तर, दक्षिण) दिशामें रखें तो धाराके कारण उत्पन्न हुए युगलकी शक्तियां जो घेरेके तलसे समकोण होती हैं पूर्व पश्चिम दिशामें होंगी और पृथ्वीकी शक्तिसे समकोण बनावेंगी। चुम्बक अपने स्थानसे हटकर दूसरे स्थानपर ठहरेगा। मान लो कि विचलनका कोण क है। इस स्थानपर

पृथ्वी और धारावाले युगल एक दूसरेकी तुलना किये हुए हैं, इसलिए उन दोनोंके घूर्ण भी बराबर ही होने चाहियें।

$$\text{पृथ्वीके युगलका घूर्ण} = \text{चप. गच}$$
$$= \text{चप. गल ज्या क}$$

यहांच पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्तिका चितिज अवयव है।

$$\text{धाराके युगलका घूर्ण} = \frac{\text{२॥ न धप. चल}}{\text{र}}$$
$$= \frac{\text{२॥ न धप. गल}}{\text{र}}\text{कोज्या क}$$

और यह दोनों बराबर हैं, इसलिये

$$\text{चप. गल ज्या क} = \frac{\text{२॥ न धप. गल}}{\text{र}}\text{ कोज्या क}$$

$$\therefore \frac{\text{च ज्या क}}{\text{कोज्या क}} = \frac{\text{२॥ न ध}}{\text{र}}$$

$$\text{च स्पर्श क} = \frac{\text{२॥ न ध}}{\text{र}}$$

$$\text{ध} = \frac{\text{च}}{\frac{\text{२॥ न}}{\text{र}}}\text{ स्पर्श क}$$

इस समीकरणमें $\frac{\text{२॥ न}}{\text{र}}$ धारामापककी स्थिर संख्या कहलाती है, क्योंकि यह संख्या उस समय तक नहीं बदलती है जब तक लपेटोंकी संख्या या उनका व्यास न बदला जावे। इस संख्याको स से सूचित किया करेंगे। इसी समीकरणमें $\frac{\text{च}}{\text{स}}$ ऐसी संख्या है जो जब तक च न बदलेगा न बदलेगी, अर्थात् एक स्थान या प्रयोगशालाकेलिये एक ही रहेगी और यह ऐसी संख्या है जिसको विचलनके कोणकी स्पर्शरेखासे गुणा करनेसे धारा मालूम हो जाती है। इसी कारण इस संख्याको 'बदलनेवाली संख्या' कहते हैं। यदि धारा इतनी प्रबल हो कि विचलन ४५° के बराबर हो तो स्पर्श क, = १ और धारा = बदलनेवाली संख्या, अर्थात् बदलनेवाली संख्या उस धाराके बराबर है जो ४५° का विचलन पैदा कर देती है। बदलनेवाली संख्याके मालूम होनेपर विचलनके कोणकी स्पर्शरेखाकी सहायतासे इस धारामापक द्वारा धारा नापी जाती है, इसीलिए इस धारामापकको स्पर्श धारामापक कहते हैं। उदाहरणकेलिये जो धारामापक ऊपर वर्णन किया है उसकी स्थिर और बदलनेवाली संख्याएं यहां निकाल देते हैं।

न = ३२, र = १५ क्योंकि उसमें ३२ लपेटें थी और उसका व्यास ३० श. मी. के बराबर था।

$$\text{इसलिए स्थिर संख्या} = \frac{\text{२॥} \times \text{३२}}{\text{१५}}$$

$$\left[\because \text{॥} = \frac{\text{२२}}{\text{७}}\right] = \frac{\text{२} \times \text{२२} \times \text{३२}}{\text{७} \times \text{१५}}$$
$$= \text{१३.४}$$

$$\text{प्रयागमें इस यंत्रकी बदलनेवाली संख्या} = \frac{\text{·३६}}{\text{१३·४}}$$
$$= \text{·०२६५ धारा की}$$

इकाइयां, क्योंकि यहांपर च ·३६। साधारणतः इस संख्याको इस प्रकार नहीं निकालते हैं, च और न निकालना तो अवश्य आसान है किन्तु धारामापकके घेरोंका अर्धव्यास निकालना इतना आसान नहीं है। लपेटें एक दूसरेके उपर लगानी ही पड़ती हैं, अर्धव्यासके नापनेमें कठिनाई पड़ती है। इसी कारण इस संख्याको दूसरे (रासायनिक) गुणकी सहायतासे प्रयोग द्वारा निकालना सरल और उचित समझा जाता है। दूसरे गुणकी सहायतासे धारा किस प्रकार नापते हैं उसका वर्णन अगले अङ्कमें करेंगे।

समालोचना।

भगमी भूषण—रचयिता गोपालनारायणसेन सिंह, बी. ए.। प्रकाशक गङ्गा पुस्तकमाला–हज़रतगंज लखनऊ। मूल्य ≠)

इस पुस्तकमें चार छोटी छोटी कहानियां हैं। भाषा अच्छी, सरल और सुबोध है। कहानियां उपदेशप्रद है। घरमें लड़कियोंको कैसी

उपयोगी बातें सिखाई जा सकती हैं और पाठशालाओंके शिक्षणमें क्या क्या त्रुटियां रह जाती हैं, यह पहली कहानीमें अच्छी तरह दिखलाया है। माता पिताका आदर करना और उनकी आज्ञा पालन करना कितना आवश्यक है—यह दूसरी और तीसरी कहानीमें दिखलाया है। केवल चौथी कहानी अस्वाभाविक सी जान पड़ती है। जो सिद्धान्त उससे लेखक निकालना चाहतेथे, वह बहुत मोटी रीतिसे निकाला गया है।

सुघड़ चमेली—ले० रामजीदास भार्गव, बी, ए, प्रकाशक गंगापुस्तकमाला, लखनऊ। मूल्य =)

भाषा लखनवी हिन्दी है। असानीसे सबकी समझमें आ जायगी। स्टैल बहुत सुन्दर और विषय मनोरम है। जो बातें लड़कियोंको घरके काम काज करते समय ध्यानमें रखनी चाहियें - वह इसमें दी हुई हैं। लड़कियोंको अवश्य पढ़ानी चाहिये, बड़ा लाभ होगा।

कविताकौमुदी—संग्रहकर्ता-पं० रामनरेश त्रिपाठी। उन्हींके साहित्य भवनसे, जो प्रयागके जानसेनगंजमें है, प्रकाशित। मूल्य २)।

इस पुस्तकमें हिन्दीके ५२ सुप्रसिद्ध कवियोंकी कविताका संग्रह है। बहुत वर्ष हुए जब ऐसा एक संग्रह कई भागोंमें काशीसे प्रकाशित हुआ था, पर उसमें कुछ क्रम न था। भक्ति रस प्रधान कविताओंका संग्रह बलवीडियर प्रेससे भी निकल चुका है, पर प्रस्तुत संग्रह निराले ही ढंगका है। प्रत्येक कविका पहले संक्षिप्त जीवन चरित्र दिया है, तदनन्तर उसकी अच्छी अच्छी कविताओंका संग्रह दिया है। कविताओंके चुननेमें संग्रहकर्ताकी योग्यता और विद्वत्ताका पूरा परिचय मिलता है। प्रायः ऐसी कविताएँ दी हैं, जो अनुपम भाव और रस सम्पन्न हैं। यों तो इसके पढ़नेसे सभी लाभ उठा सकते हैं, पर विशेषतः अंग्रेज़ी पढ़नेवाले नवयुवकोंको इसका अध्ययन अवश्यमेव करना चाहिये। उन्हें ऐसा करनेसे सहजमें हा ज्ञात हो जायगा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली उनको कैसे अमृतमय उपदेशों और अद्वितीय साहित्यसे वञ्चित रखती है।

पुस्तकके अन्तमें कठिन शब्दोंका अर्थ भी दिया है। आर्यसमाजी भजनीक, प्रायः मूर्तिपूजाके विरोधसे, सूर और तुलसीके भजनोंका तिरस्कार कर अपने गढ़े हुए भजनोंको गाया करते हैं, जिससे एक प्रकार साहित्यकी हत्या होती है। इस संग्रहमें अनेक ऐसे छन्द मिलेंगे, जो वे बिना अपने सिद्धान्तोंका उल्लंघन किये, गा सकते हैं।

कार्य्य-विवरण

१—पहिला अधिवेशन

विज्ञान परिषद्का प्रथम साधारण अधिवेषण १ दिसम्बर १९१७ को म्योरकालेज प्रयागके फ़िज़ीकल सायंस थियेटरमें हुआ। अध्यापक के० ए० पटवरधन, एम.एस० सी० ने "वनस्पतिका खाद्य" पर मनोहर व्याख्यान दिया।

२—दूसरा अधिवेशन

विज्ञान परिषद्का दूसरा साधारण अधिवेशन अध्यापक सैय्यद मोहम्मदअली नामीके सभापतित्वमें २६ जनवरी १९१८ को म्योर कालेजमें हुआ। पिछले अधिवेषणकी कार्य्यवाही पढ़ी गयी और स्वीकृत हुई। मेजर वामनदास बसुका इस्तेफा स्वीकृत हुआ। रायशिवप्रसाद बहादुरके त्यागपत्रके सम्बंधमें यह निश्चय हुआ कि आपसे प्रार्थनाकी जाय कि आप अपना त्यागपत्र वापिस लेलें। भारत-भक्त भारतभाषाभृत्य श्रीमान राजकुमार रणवीरसिंह जुदेव, अमेठीराज परिषद्के सभ्य चुने गये। इसके पश्चात् यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि राय बहादुर पुरोहित गोपीनाथ एम. ए. और राजा सैय्यद अबूजाफर साहब बहादुर परिषद्के सभ्य और उपसभापतियोंको सी. आई. ई. और सरदार संतोखसिंह बी. ए. को राय बहादुरकी

पदवी मिलनेपर बधाई दी जाय। युइंग क्रिस्चियन कालेजके अध्यापक श्री प्रभुदास, एम. ए. ने "अलकतरा और उससे प्राप्य पदार्थ" पर अध्यापक रामदास गौड़के सभापतित्वमें महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया। परिषद्का कार्य्य" व्याख्याता और सभापति महोदयको धन्यवाद देकर समाप्त हुआ।

३—पहला असाधारण अधिवेशन

२३ जनवरी १९१८ के दिन सायंकालके पांच बजे परिषद्के जन्मदाता सभापति सर सुन्दर लालकी आकस्मिक मृत्युपर शोक प्रकट करनेके लिए म्योर कालेजके फिजीकल सायंस थियेटरमें अध्यापक सतीश्चन्द्र देवके सभापतित्वमें एक असाधारण अधिवेषण हुआ। अध्यापक राम गौड़ने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया और अध्यापक मेहदी हुसेन नासरीने इसका अनुमोदन किया।

Resolved that the Vernacular Scientific Society Allahabad is deeply grieved at the sad demise of the Society's President Founder and Life fellow the Hon'ble Dr. Sir Sundar Lal, Kt. LL. D. C. I. E which is a grave irreparable loss to the country and the Society expresses its deep sympathy with the survivours of the deceased in their great calamity.

४—तीसरा अधिवेशन

विज्ञान परिषद्का तीसरा साधारण अधिवेषण म्योरकालेजके फिज़ीकल सायंस थियेटरमें अध्यापक सतीश्चन्द्र देवके सभापतित्वमें हुआ। पिछले अधिवेषणकी कार्य्यवाही पढ़ी गयी और स्वीकृत हुई। अध्यापक रामदास गौड़ने कहा कि अधिवेषणोंकी कार्य्यवाही देशी भाषाओंमें लिखी जानी चाहिए थी, और बिना प्रस्ताव पेश हुए और उसके अनुमोदनके स्वीकार नहीं होनी चाहिए थी। अध्यापक चुन्नीलाल साहनीने कहा कि कार्य्यवाहीके स्वीकृत होनेके लिए प्रस्तावकी आवश्यकता नहीं है। अध्यापक करमनारायणने यह प्रस्ताव पेश किया कि अध्यापक रामदास गौड़के कार्य्य विवरणके हिन्दीमें लिखे जानेके सम्बन्धके प्रस्तावपर परिषद्के अगले अधिवेषणमें विचार किया जाय। अध्यापक चुन्नीलाल साहनीने इसका अनुमोदन किया और प्रस्ताव स्वीकार हुआ। निम्नलिखित सज्जन परिषद्के सभ्य चुने गये।

१. माननीय महाराजा सर मुनीन्द्र चन्द्र नन्दी के. सी. आई. ई., कासिम बाज़ार

२. भगवान जगद् गुरुश्री शंकराचार्य, करवीर पीठ, कोल्हापुर

३. श्री. गोपालप्रसाद भार्गव, रईस, बेलन गंज आगरा

४. डा. मनोहर लाल अलीगढ़

अध्यापक कु. चं. भट्टाचार्य ने 'चलते फिरते अजायबघर' पर व्याख्यान दिया। अध्यापक राम दास गौड़ ने व्याख्याता और सभापति महोदयको परिषद्की ओरसे धन्यवाद दिया। इसके पश्चात् सभा का विसर्जन हुआ।

५—चौथा अधिवेशन

विज्ञान परिषद्का चौथा साधारण अधिवेषण महामहोपाध्याय डा. गंगानाथ झाके सभापतित्वमें शामके पांच बजे म्योर कालेजमें हुआ। अध्यापक राम दास गौड़का त्यागपत्र पढ़ा गया और यह निश्चय हुआ कि अध्यापक गौड़से यह प्रार्थना की जाय कि वह अपना त्यागपत्र वापिस लेलें और जो तजवीज़ उचित समझें परिषद्के किसी अगले अधिवेषणमें पेश करें। जब तक तजवीज पेश न हो और उसपर बहस न हो जावे उस समय तक उनके प्रस्तावके संबंधमें कोई विचार नहीं हो सकता।

अध्यापक करम नारायण और चुन्नीलाल साहनीका प्रस्ताव पेश नहीं हुआ, क्योंकि दोनों महोदय उस समय उपस्थित नहीं थे।

निम्न लिखित सज्जन परिषद्के सभ्य चुने गये।

१ अध्यापक करमचंद्र मेहता, एम. एस. सी. आगरा कालेज, आगरा।

२. डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा., बी. एस सी. एम. बी. बी. एस., लखनऊ।

३. अध्यापक अमरनाथ झा, बी. ए. म्योर कालेज इलाहाबाद।

इसके बाद अध्यापक ब्रजराज, बी. एस. सी, एल. एल. बी. ने फिजीकल सायंस थियेटरमें "पिन्डोंका बनना" पर व्याख्यान दिया। व्याख्यान में अध्यापक गोपालस्वरूप भार्गव सभापति थे। व्याख्यानके पीछे व्याख्याता और सभापति महोदयको धन्यवाद दिया गया और कार्य्यवाही समाप्त हुई। —मंत्री।

प्राप्तिस्वीकार

अक्टूबर १९१७

श्री० सिद्धेश्वरीप्रसाद वर्मा, एम.एस-सी. प्रयाग (१९१६-१७) १२)
श्री० रामदास गौड़ (१९१६-१७) प्रयाग ३।~)॥२
श्री० सालिगराम टंडन, एम. एस. सी., बहरायच (१९१६-१७) १२)
श्री० हीरालाल खन्ना (१९१५-१६) ६)
श्री० सतीशचन्द्र देव, एम. ए. ५)
श्री० व्रजकिशोरप्रसाद, दरभंगा (१९१६-१७) १२)
श्री० विनायकराव, जबलपुर (१९१६-१७) १२)
श्री० धु० भा० देवधर एम. एस-सी. इन्दौर (१९१७-१८) १२)

नवम्बर १९१७

श्री० लालाजी श्रीवास्तव, एम. एस-सी., अजमेर ५)
डा० गणेशप्रसाद (दान) १०)
श्री० सी० पी० राम स्वामी अइयर, वकील मदरास (१९१६-१७) १२)
पं० सुदर्शनाचार्य (दान) ५)
श्री० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी. (१९१७-१८) १२)
श्री० पी० जी० शाह, एम. ए. (१९१७-१८) १२)
श्री० हरनारायण बाथम, एम० ए० (१९१७-१८) १२)

दिसम्बर १९१७

श्री० ठा० राजबहादुरसिंह (१९१६-१७) १२)
श्री० वी. एस. तम्मा, एम. एस. सी. (१९१७-१८) १२)
श्री० महेशप्रशाद भार्गव, एम. एस-सी. २)
श्री० विश्वम्भरप्रशाद माथुर, एम. एस-सी. ५)
मेजर वामनदास बसु (१९१७ तक) २६)
भारतभक्त भारतभाषाभृत्य श्री० राजकुमार रणबीरसिंह जु देव, अमेठी १२)
श्री० रामचन्द्र शर्म्मा वैद्य (१९१६-१७) १२)
अध्यापक नगेन्द्रचन्द्र नाग, एम. ए. बनारस (१९१७-१८) १२)
श्री० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी. एल. टी. रायबरेली १२)

जनवरी १९१८

श्री० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. १)
श्री० महेशप्रशाद भार्गव, एम. एस-सी. १)
राय रवि नंदनप्रसाद बहादुर, बनारस १९१८ तक ३०)
श्री० जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, बी. ए. २)
श्री० राम जी दास भार्गव बी० ए (१९१७-१८) १२)

फरवरी १९१७

डा० मनोहर लाल अलीगढ़ १२)
बा० गोपाल प्रसाद भार्गव, आगरा १५०)
श्री० महेश प्रसाद भार्गव, एम. एस-सी. १)
श्री० जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव १)
भारत भक्त भारत भाषा भृत्य श्री राजकुमार रणवीरसिंह जु देव, अमेठी १२=)
श्री० गोपालस्वरूप भार्गव. एम- एस. सी. १)
बा० शिवप्रसाद गुप्त, बनारस १५०)

मार्च १९१७

राय गोकुलप्रसाद बहादुर १९१७ तक ३६)
श्री० मधुमंगल मिश्र, बिलासपुर १९१८ तक २४)

श्री० रामदास गौड़ एम. ए. १९१८ तक　　१२)
श्री० महेशप्रसाद भार्गव, एम. एस-सी.　　१)
श्री० देवकीनन्दन बी. ए, एल. आर. ए. सी., पूसा　　१२)
भारतभक्त भारतभाषाभृत्य श्री राजकुमार रणवीरसिंह जुदेव, अमेठी　　१२≡)
श्री हरिशचन्द्र, एम. एस. सी. (१९१७ तक)　२४)
श्री० गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री (१९१८ तक) १२)
श्री० जगन्नाथप्रसाद श्री वास्तव, बी. ए.　　१)

अप्रेल

माननीय महाराजा साहिब कासिमबाज़ार १५०)
श्री महेशप्रसाद भार्गव, एम.एस. सी....... १)
श्री गोविन्दप्रसाद एम. ए. ......　　१०)

परिषद्-समाचार

धन्यवाद

अलवर निवासी पं० रामजीवनलाल भागव, बी. ए. ने अपने भतीजे पं० मन्नालालजीके विवाह-के शुभ अवसरपर परिषद्को पच्चीस रुपये २५) का दान दिया। परिषद्की ओरसे हम आपको धन्यवाद देते हैं और प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर नव दंपतिको चिरायु करे और उन्हें सदा धर्मपथ पर चलाकर सच्चा गृहस्थ बनावे।

वरके छोटे चचा, हमारे मित्र प्रो० सालिग्राम-जीको भी, जो सदा परिषद्के काम बड़े उत्साहसे करते हैं, इस अवसरपर बधाई देते हैं।

*　*　*　*

'बच्चा' के हिन्दी संस्करणके लेखक हमारे मित्र प्रोफेसर करमनारायण, एम. एस-सी. को पञ्जाबके छोटे लाटने १००) का इनाम दिया है। पञ्जावकी सरकारका यह काम प्रशंसनीय है। युक्त प्रान्तकी सरकार तो देशी भाषाओंमें ग्रन्थ लिखनेवालोंको पूछती भी नहीं, फिर लेखकोंका उत्साह कैसे बढ़े?

परिषद्के सभ्य डा० अन्नदाप्रसाद सरकार और परिसभ्य पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव, रईस नवाबगंज श्रीमान् सम्राट्के जन्मदिनके शुभ अवसर पर राय साहिबकी उपाधिसे विभूषित किये गये हैं। आप दोनों सज्जनोंको हम बधाई देते हैं।

*　*　*　*

'विज्ञान' के सम्पादकीय विभागके लिये पुस्त-कालयकी बड़ी आवश्यकता है। 'विज्ञान' में विज्ञान' को सभी शाखाओंपर लेख निकलते हैं और निकलते रहेंगे। इन लेखोंके संशोधनमें बड़ी कठि-नाई पड़ती है। बहुत सी उपयोगी पुस्तकें स्थानीय पुस्तकलायोंमें हैं ही नहीं और जो हैं भी उनका मिलना बड़ा मुश्किल। यह कठिनाइयां तभी दूर हो सकती हैं, जब परिषद्के पास बहुत अच्छा पुस्तकालय हो। विज्ञानके पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे पुस्तकालयके लिये धन एकत्रित करें और शीघ्र ही इस अभावको दूर करें।

'विज्ञानके' पाठकोंने विज्ञान परिषद्की अपील जो पिछले अङ्कमें प्रकाशित हुई थी पढ़ी होगी। हम उनसे नम्रतापूर्वक यह प्रश्न करना चाहते हैं कि उन्होंने उक्त अपीलको पढ़कर परिषद्के लिए क्या काम किया?

पाठकवृन्द! आपको मालूम है कि यूरोपकी, यूरोपके भिन्न भिन्न देशोंकी, क्या जन संख्या है? कुल यूरोपकी जन संख्या ४२ करोड़ है, जिसमेंसे जर्मनीकी ६ करोड़, इङ्गलैण्डकी ३ करोड़ और फ्रांसकी ४ करोड़ है। इन तीन देशोंका साधारण-तया और जर्मनीका विशेषतः साहित्य-भण्डार बड़ा प्रतिभाशाली है।

अब ज़रा २० करोड़ सपूतोंकी मा-हिन्दी भाषाकी ओर दृष्टि डालिये। काव्य, अलङ्कारादि दो चार विषयोंको छोड़कर, समस्त विषयोंका साहित्य लापता। हिन्दी भाषा भाषियोंके लिये यह कैसे लज्जाका विषय है। होना तो यह चाहिये था कि हिन्दीका साहित्य संसारमें सबसे अच्छा और सर्वाङ्ग सम्पन्न होता और संसारकी सब

जातियां उससे लाभ उठातीं। पर हमारी अकर्तव्य परायणतासे आज हमारी मातृ भाषा हिन्दीको नीचा देखना पड़ता है?

स्मरण रखिये कि आपके पूर्वजों ने पूर्व काल में संस्कृत साहित्य कितनी उच्च कोटिका रचकर खड़ा कर दिया था। कहां हैं मिश्र, यूनान और चेलडियाकी सभ्यताओंके पक्षपाती, वे आयें और बतलायें यदि किसी जातिने सृष्टिके आदिसे अब तक ऐसे गौरवशील और महत्व पूर्ण साहित्यकी रचना की हो?

जिस विषयका, आत्म विद्या या दर्शन शास्त्रका, अध्ययन हमारे पूर्वजोंने विशेष प्रकारसे किया, उसको उन्होंने चरम सीमा तक पहुंचा दिया।

समय बदल गया, आदमी बदल गये, देश और समाजमें अद्भुत परिवर्तन हो गया। आज हमारी आवश्यकताएं कुछ और ही हैं। हमको अब आत्म विज्ञानके साथ ही साथ पदार्थ विज्ञानके मनन और अध्ययनकी नितान्त आवश्यकता दिखाई देती है। क्या वह जाति, जिसने आत्मविज्ञानमें अनुपम उन्नति की थी पिछड़ जायगी?

नहीं, कदापि नहीं यह हमारा अटल विश्वास है। महर्षियोंका रुधिर हमारे शरीरोंमें सञ्चार कर रहा है, उनका तेज और तपोबल अब भी हमारे मस्तिष्कोंको प्रकाशित कर रहा है। उनकी तपस्याओंका फल रूप आत्म विज्ञानका भण्डार हमारे पास है। आत्मबल ही संसारमें मुख्यबल है। आत्म विज्ञानसे सुसज्जित होकर जिस समय हम कार्यक्षेत्रमें प्रवेश करेंगे उस समय एक बार तो सारे संसारको हिला देंगे.

आर्यसन्तान! अपने पुराने गौरवका स्मरण कर पदार्थ विज्ञानके मननशीलनमें प्रवृत्त हूजिये और दस वर्षमें अद्वितीय साहित्यकी रचना कर सभ्य संसारको अपने बल, विद्या प्रेम और योग्यताका परिचय दीजिये।

पदार्थ विज्ञानके अनुशीलनमें प्रवृत्त होनेके लिये पहले आरम्भमें उससे थोड़ी बहुत जानकारी हो जाना आवश्यक है। केवल हिन्दी जाननेवालेके लिए ऐसा करना वर्तमान अवस्थामें नितांत असम्भव है, क्योंकि हिंदी भाषामें पदार्थ विज्ञानका बहुत कम साहित्य है। इसी अभावकी पूर्त्ति करना विज्ञान परिषद्का उद्देश्य है।

क्या इस उद्देश्यकी पूर्त्ति में आप सहायक होंगे? क्या आप देशकी भावी उन्नतिके लिये प्रयत्न करनेका पुण्य लेंगे? क्या आप भारतके गांव गांव और घर घरमें 'विज्ञान' का प्रकाश पहुंचाकर दरिद्रोंका दारिद्र, रोगियोंका रोग और पीड़ितोंकी पीड़ा हरण करनाका यश-लाभ करेंगे? तो आइये तन मनधनसे परिषद्की सहायता कीजिये और उसके काममें योग देकर देशका उपकार कीजिये।

सूचना

किसी संस्थाके मंत्री श्रीयुत रतनसिंह जी ने ३) मनी आर्डर द्वारा भेजे हैं, परन्तु उनका पता कूपनमें नहीं दिया था। अतएव उनके पास अभी 'विज्ञान' नहीं भेजा गया है। यदि किसी सज्जनको उनका पूरा पता मालूम हो तो लिखने की कृपा करें।

—मेनेजर 'विज्ञान'

बच्चा

[ले० कप्तान कुरशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देशभक्तो ! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८$\frac{3}{4}$ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

अनुवादकको पंजाब के छोटे लाठ ने १००) इनाम दिया है।

पुस्तकका मूल्य १), विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ।॥=) में मिलेगी।

मंगानेका पताः –

प्रोफेसर करम नारायण,
एम. एस-सी.,
ज्योर्ज टौन, प्रयाग।

विज्ञापन छपाईके नियम।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास ... ... ५)
प्रति पृष्ठ २ कालम ... ... ४)
१ ,, ... २।)
आधा ,, ... १।)
आधे कालमसे कमका ... ... १)

२—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा। जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें।

३—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालोंको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा।

५—विज्ञापन बँटाईकी दर क्रोड़पत्र देखकर बतायी जायगी।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषत्,
प्रयाग।

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला-महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग १—ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग २—ले० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३—**मिफताह-उल-फ़नून**—अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४—**ताप**—ले० प्रेमबल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५—**हरारत** [तापका उर्दू अनुवाद]—अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला—प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० सालिग्राम वर्मा, ... -)

७—**केला**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

८—**सुवर्णकारी**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९—**चुम्बक**—ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—ले० बसीस्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी, एल.टी, विशारद ... ... ।=)

११—**क्षयरोग** ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... -)

१२—**दियासलाई और फास्फोरस**—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. -)

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ।।). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-) ७-केला—मूल्य -) ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

दीवारपर लटकाने योग्य सौर केलेण्डर (पञ्चाङ्ग)

'विज्ञानके' कवर पृष्ठ २ पर जो सौर पञ्चाङ्ग प्रतिमास निकलता रहता है, वह सुन्दर छपा हुए, दीवारपर लटकाने योग्य केलेण्डरके रूपमें 'विज्ञानके' ग्राहक बिना मूल्य मंगा सकते हैं। यदि वे ऐसा करना चाहते हैं, तो)॥ का टिकट डाक व्ययकेलिए नीचे पतेसे भेज दें और अपनी ग्राहक संख्या भी लिखदें—

मंत्री, ज्ञानमण्डल—काशी

विज्ञान भाग १ तथा २

जो सज्जन भाग १ तथा २ बेचना चाहें, वह कृपाकर नीचेके पतेसे लिखा पढ़ी करें—

मंत्री, विज्ञान परिषद्—प्रयाग

परिषद्से प्राप्य अन्य पुस्तकें

१—बच्चा ... ... ॥=)

२—मारीभ्रम ... ... २।)

३—हमारे शरीर की रचना भाग १ २।)

मंगानेका पता - मंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ४०　　　　Reg. No. A-708

भाग ७　　कर्क १९७५ । जुलाई १९१८　　संख्या ४

Vol. VII.　　　　No. 4

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)　　　　एक प्रतिका मूल्य ।)

विद्याप्रेमियोंको शुभ सूचना

विज्ञानके तुलाके (अक्तूबर) अङ्कसे निम्नलिखित विषयोंपर लेखमालाएँ आरम्भ होंगी और एक वर्ष तक जारी रहेंगी।

१—पैमाइश (Surveying)
२—दुग्ध व्यवसाय और गोशाला (Dairy farming)
३—कीटाणु शास्त्र (Bacteriology)
४—विद्युत् शास्त्र (Electricity)
५—रसायन शास्त्र (Chemistry)
६—त्रिकोणमिति (Trigonometry)
७—बीज [भुज] ज्यामिति (Coordinate geometry)

इन विषयोंपर हिन्दी-भाषामें पुस्तकें अभी तक नहीं लिखी गई हैं। अतएव विद्या प्रेमियोंको उचित है कि 'विज्ञान' के ग्राहक शीघ्र बनें, जिसमें सहजमें ही उनके पास इन विषयोंके अपूर्व ग्रन्थ, बिना विशेष धन व्यय किये एकत्रित हो जायं। इस शुभ अवसरको हाथसे न खोइये।

—मंत्री, विज्ञान परिषद

विज्ञापन छपाईके नियम।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास	...	...	५)
प्रति पृष्ठ २ कालम	...	...	४)
१ ,,	...	...	२।)
आधा ,,	...	...	१।)
आधे कालमसे कमका	...	...	१)

२—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा। जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें।

३—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालोंको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा।

५—विज्ञापन बँटाईकी दर क्रोड़पत्र देखकर बतायी जायगी।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषत्,
प्रयाग।

बच्चा

[ले० कप्तान कुरशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.]

देशभक्तो! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८ ३/४ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

अनुवादकको पंजाब के छोटे लाठ ने १००) इनाम दिया है।

पुस्तकका मूल्य १), विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥।=) में मिलेगी।

मंगानेका पता:—

प्रोफ़ेसर करमनारायण,
एम. एस-सी.,
म्योर्ज़ हौस, प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ७ } कर्क, संवत् १९७५। जुलाई, सन् १९१८। { संख्या ४

मंगलाचरण

जुगनूसम जगमगत जगत अनगिनत दिखाये,
रवि शशि भी अति तुच्छ तिमिर रज कन ठहराये,
मानव गौरवके वास्तविक चित्र दरसाये,
ज्ञान-शिखामें अहङ्कार औ दाप जराये,
तत्त्वज्ञानीके मार्गको जिसने आलोकित किया,
जय जय जिसने अहमित मिटा आत्मरूप दिखला दिया।

—रामदास गौड़

'आओ खेल खेलें'

[ले०—प्रोफ़ेसर मनोहरलाल, एम. ए.]

हमारे पूर्व परिचित कृष्ण और मोहन आज सायंकालके ५ बजे जङ्गलकी तरफ़ हवा खाने कदम बढ़ाये चले जा रहे हैं। इतनेमें ही पीछेसे आवाज़ आई, "कृष्ण ठहरो! हम भी सैर करने चलेंगे।" कृष्णने फिर कर देखा तो हेडमास्टर साहिब एक हाथसे चश्मा सुधारते और दूसरेसे टोपी झलते हुए चले आ रहे थे। जब वह इनके पास पहुंचे, तो इन दोनोंने नमस्कार किया और तीनों आगे बढ़े। गांवके बाहर निकलकर यह लोग एक छोटी सी वाटिकाकी ओर चल पड़े, जो एक साधुने बना रखी थी। उसके बीचमें एक पक्की बारहदरी बनी हुई थी और एक कोनेपर बड़ा कुआ था।

Mathematics गणित]

गर्मियोंके दिनोंमें, जहां मैदानमें बड़े बड़े पेड़ोंको छोड़ हरियाली नज़र भी न आती थी, यही एक स्थान हरा भरा दीखता था। साधुने बेला और मोगरेके बहुतसे पेड़ लगा रखे थे और नित्य प्रात समय उनको सींचा करते थे। संध्या, स्नान आदि करनेके उपरान्त कठिन परिश्रमसे महात्माजी पानी खींचकर पांच छः मटके भरकर रख लिया करते थे। जो हारे थके बटोही वहां होकर निकला करते थे, उन्हें यह स्थान स्वर्गका सा आनन्ददायी प्रतीत होता था। शामको भी गांवके भक्तजनोंका इसी स्थानपर अच्छा समारोह होता था। हमारे मित्र यहां पहुंच घासके तख्तेमें बैठ गये।

थोड़ी देर तक तो यह इधर उधरकी बातें करते रहे, पर अन्तमें हेडमास्टर साहिबने कहा—

"कृष्ण, उस दिन हमने तुम्हें नये खेल बतानेका बचन दिया था। आज हम तुमको कई ज्यामितिके खेल बतायेंगे। हम ऐसी बातें सिद्ध कर देंगे, जो तुम जानते होगे कि गलत हैं, पर तुम युक्तियोंमें तर्काभास बतलाना।"

कृष्ण—मास्टर साहिब, बड़ा आश्चर्य है कि गलत बातें भी ठीक साबित हो सकती हैं।

मास्टर—कृष्ण, संसारमें हम बहुत सी गलतियां करते हैं। प्रायः हम यह समझते हैं कि वह गलतियां नहीं। हम उन्हें उचित और युक्ति-संगत समझ कर ही करते हैं। परन्तु जब अपनी गलती मालूम हो जाती है तो पछताना पड़ता है। ज्यामितिमें भी बहुत सी गलत बातें सही साबित की जा सकती हैं। दलीलोंमें गलती दिखलाना बड़ी चतुराईका काम है। यह तो तुम जानते ही होगे कि (यूकलिड) उकलेदसने ज्यामितिपर बारह पुस्तकें लिखीं। इनके अतिरिक्त उन्होंने तीन और पुस्तकें लिखीं, जिनका हाल बहुत कम लोगोंको मालूम है। इनमेंसे दोमें तो उन्होंने अभ्यासके लिए प्रश्न दिये थे, पर तीसरीमें ज्यामितीय तर्काभासोंका वर्णन किया था। उनके तर्काभासोंका कुछ ठीक ठीक पता नहीं चलता, पर हम आज तुम्हें कई तर्काभास बतलायेंगे।

कृष्ण—मास्टर साहिब, यह तो आज आपने नई बात ही बतलाई। अब कृपाकर एक आध तर्काभास दिखलाइये।

मास्टर—अच्छा तुम्हारे पास कोई कागज है।

कृष्णने जेबमेंसे कागज निकालकर मास्टर साहिबको दिया। मास्टर साहिबने भी फौंटेनपेन निकालकर चित्र १ कागज़पर बनाया।

पहला तर्काभास

मास्टर—कृष्ण, देखो क, ख, ग, घ, एक आयताकार चतुर्भुज है। घसे च घ रेखा खींचो और उसे ख घ के बराबर बनाओ। कख और कच के मध्य विन्दुओंसे लम्ब खींचो। चूंकि कख और कच समानान्तर नहीं हैं, इसलिए यह लम्ब भी कहीं मिल जायेंगे। मान लो यह झ पर मिलते हैं।
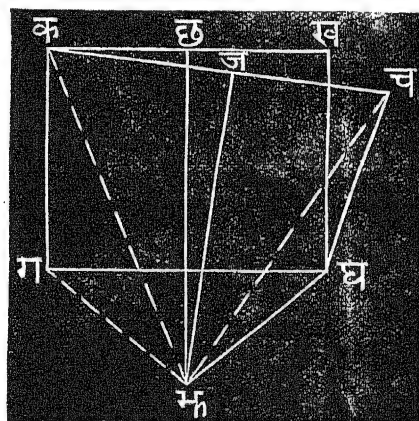
चित्र १

अब देखो कच का ज मध्य विन्दु है और जझ, कच का लम्ब है। इसलिए कझ=चझ [क्योंकि ∠ कजझ = ∠ चजझ; कज = चज और जझ दोनों त्रिभुजों कजझ और चजझ में है।]

इसीप्रकार गझ = घझ और कग = खघ = चघ

कगभ्क और चघभ्क त्रिभुजोंमें, एककी तीनों भुजाएं दूसरे की तीनों भुजाओंके बराबर हैं। इस लिए दोनों त्रिभुज सब भांति बराबर हैं और ∠कगभ्क = ∠चघभ्क परन्तु ∠कगभ्क = कगघ + ∠घगभ्क

और ∠चघभ्क = ∠चघग + ∠गघभ्क

∴ ∠कगघ + ∠घगभ्क = ∠चघग + ∠गघभ्क

पर ∠घगभ्क = ∠गघभ्क

∴ ∠कगघ = ∠चघग

यहां यह स्पष्ट है कि ∠कगघ तो समकोण है और ∠चघग अधिक कोण है।

इसलिए यह सिद्ध हो गया कि समकोण = अधिक कोण। पर तुम जानते हो कि अधिक कोण समकोणसे सदैव बड़ा होता है, जैसा चित्रसे भी स्पष्ट है।

कृष्ण—मास्टर साहिब, तर्क तो आपका ठीक है, युक्तियां सब चुस्त और दुरुस्त हैं। पर परिणाम आश्चर्यजनक है।

दूसरा तर्काभास

मास्टर—कृष्ण, देखो अब हम यह सिद्ध कर देंगे कि रेखाका एक भाग पूर्ण रेखाके बराबर है। मान लो कि कखग एक ऐसा त्रिभुज है, जिसकी भुजाएँ असमान हैं। क से कच लम्ब गिराओ खग पर और कघ ऐसी रेखा खींचो कि कोण खकघ बराबर हो कोण कगख के।
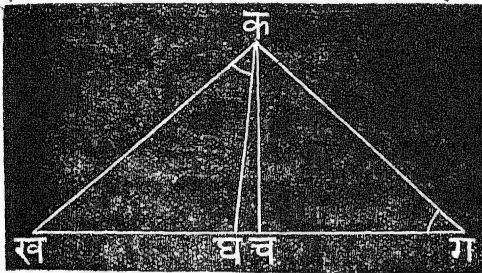
चित्र २

(१) चूंकि कखघ और कखग त्रिभुजोंमें

∠कखघ = ∠कखग

∠खकघ = ∠खगक

और पहलेका तीसरा कोण [कघख] = दूसरे के तीसरे कोण (खकग) के

∴ दोनों त्रिभुज सजातीय (Similar) हैं

$$\therefore \frac{\text{खघ}}{\text{कख}} = \frac{\text{कख}}{\text{खग}} = \frac{\text{कघ}}{\text{कग}}$$

ख से जो लम्ब ($ल_1$ व $ल_2$) कग और कघ पर गिराये जायँगे, उनकी निष्पत्ति भी $\frac{ल_1}{ल_2} = \frac{\text{कग}}{\text{कघ}}$

$$\therefore \frac{\text{त्रिभुज कखघ}}{\text{त्रिभुज कखग}} = \frac{\text{कघ} \times \frac{ल_2}{2}}{\text{कग} \times \frac{ल_1}{2}} = \frac{\text{कघ} \times ल_2}{\text{कग} \times ल_1}$$

$$= \frac{\text{कघ}^2}{\text{कग}^2}$$

$$\text{पर } \frac{\text{कघ}^2}{\text{कग}^2} = \frac{\text{खघ}}{\text{खग}}$$

$$\because \frac{\text{त्रिभुज कखघ}}{\text{त्रिभुज कखग}} = \frac{\frac{\text{खघ} \times \text{कच}}{2}}{\frac{\text{खग} \times \text{चक}}{2}} = \frac{\text{खघ}}{\text{खग}}$$

$$\therefore \frac{\text{कघ}^2}{\text{खघ}} = \frac{\text{कग}^2}{\text{खग}} \cdots\cdots (1)$$

परन्तु $\text{कघ}^2 = \text{कख}^2 + \text{खघ}^2 - 2\,\text{खघ.खच}$

और $\text{कग}^2 = \text{कख}^2 + \text{खग}^2 - 2\,\text{खग.खच}$

(१) में इन सम्बन्धोंका प्रयोग करके यह सिद्ध होता है कि—

$$\frac{\text{कख}^2 + \text{खघ}^2 - 2\,\text{खघ.खच}}{\text{खघ}}$$

$$= \frac{\text{कख}^2 + \text{खग}^2 - 2\,\text{खग.खच}}{\text{खग}}$$

$$\therefore \frac{\text{कख}^2}{\text{खघ}} + \text{खघ} - 2\,\text{खच} =$$

$\frac{कख^2}{खग}$ + खग − २ खच

$\therefore \frac{कख^2}{खघ} - खग = \frac{कख^2}{खग} - खघ$

$\therefore \frac{कख^2 - खग.खघ}{खघ} = \frac{कख^2 - खग.खघ}{खग}$

$\therefore$ खघ = खग

यह स्पष्ट ही है कि खघ, खग रेखाका एक अंश मात्र है।

तीसरा तर्काभास

क्या १=२ ?

कृष्ण—मास्टर साहिब, आपकी युक्तियां तो ठीक जान पड़ती हैं। अब मैं जाकर घरपर सोचूंगा। कल आपको बतलाऊंगा कि मैं कहां तक सफल हुआ।

मास्टर—अच्छा कृष्ण। इन दो प्रश्नोंपर तो तुम घरपर विचार करना, पर यहां तुम्हें और दो एक चुटकले बतलाये देते हैं।

मान लो क = ख

तो $क^2 = ख^2 = कख$

और $कख - ख^2 = क^2 - ख^2$

$\therefore ख (क - ख) = क^2 - ख^2$

$= (क - ख)(क + ख)$

$\therefore$ ख = क + ख = २ ख

$\therefore$ १ = २

चौथा तर्काभास

क्या ल २ = ० ?

मास्टर—तुम जानते हो कि ल १ = ०, पर हम अभी साबित कर देंगे कि ल २ = ०।

देखो—ल २ $= १ - \frac{१}{२} + \frac{१}{३} - \frac{१}{४} + \frac{१}{५} - \frac{१}{६} + \cdots$

$= \left(१ + \frac{१}{३} + \frac{१}{५} + \frac{१}{७} + \cdots\right) - \left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \frac{१}{८} + \cdots\right)$

$= \left[\left(१ + \frac{१}{३} + \frac{१}{५} + \frac{१}{७} + \cdots\right) + \left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{१}{६} + \frac{१}{८} + \cdots\right)\right]$

$- २\left(\frac{१}{२} + \frac{१}{४} + \frac{२}{६} + \frac{१}{८} + \cdots\right)$

$= \left[१ + \frac{१}{२} + \frac{१}{३} + \frac{१}{४} + \frac{१}{५} + \cdots\right]$

$- \left[१ + \frac{१}{२} + \frac{१}{३} + \frac{१}{४} + \cdots\right]$

$= ०$

इस परिणामपर भी विचार करना। यदि तर्काभास बतलाओगे तो इनाम देंगे।

कालकी कल्पना।

[ले०—प्रो० रामदास गौड़, एम. ए.]

जिस प्रकार देशकी कल्पनामें मान और सीमा दोनोंके द्वारा ही हम देशका परिचय पाते हैं, उसी प्रकार कालकी कल्पनामें भी मान और सीमा आवश्यक हैं। लवनिमेष, परमाणु, पल, विपल, घड़ी, सेकण्ड, मिनट, घण्टेसे लेकर कल्प और ब्रह्माकी आयुतक कालका ही मान है। हमारे यहां ब्रह्माकी आयु, ब्रह्माके दिन कल्प और मन्वन्तरकी कल्पना ऐसी ऊंची संख्याओंमें की गयी है कि विज्ञानके द्वारा प्राप्त संख्याओंकी उनमें काफ़ी गुञ्जाइश है। यह याद रहे कि ब्रह्माकी आयु भी परिमित है। सृष्टि असंख्य बार हुयी और असंख्य बार होगी। कितने ब्रह्मा अपनी आयु पूरी करके मर गये और कितने ही इसी प्रकार होंगे और मरेंगे। सारांश यह कि ब्रह्माके जन्म मरणसे भी कालका अन्त नहीं होता। पृथ्वीपर आजकल चौबीस होराओं वा घण्टोंका एक रात दिनका परिमाण माना जाता

Philosophy दर्शन]

है। पृथ्वीके आदि रूपमें, जब जल आजकलके रूपमें नहीं था, जब पृथ्वी तरल आग्नेय दशामें थी, तब पृथ्वीके अनेक भागोंमें दो घण्टेमें ही दिन रातकी पूर्ति होती थी। भूगर्भ विज्ञानियोंने सिद्ध किया है कि पृथ्वी जबतक ठण्डी नहीं हुई थी तबतक उसके भिन्न भिन्न अंश भिन्न भिन्न समयोंमें धुरीकी परिक्रमा किया करते थे। ज्योतिर्विद कहते हैं कि बृहस्पतिकी वर्तमान दशा ठीक ऐसी ही है। यह बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि अपनी धुरीका एक चक्कर लगा देनेसे ही एक दिन रातका परिमाण हो जाता है। यदि पृथ्वीके भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न कालमें पृथ्वीकी परिक्रमा करें तो दिन रातका परिमाण भी उन देशोंकेलिये भिन्न भिन्न होगा। ध्रुव देश उत्तर खण्डमें अथवा उसके निकटवर्ती लैपलैण्ड, ग्रीनलैण्ड आदि देशोंमें जो दिन रातके परिमाणमें अन्तर है वह और कारणोंसे है, जिनका वर्णन करना यहां बाहुल्यमात्र होगा। परन्तु इतना फिर भी हम यहां विदित कर देना चाहते हैं कि वर्तमान दशामें पृथ्वीके भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न कालमें धुरीकी परिक्रमा नहीं करते।

सूर्य्यके अस्त और उदयसे हम दिन रातकी गिनती करते हैं। चन्द्रमाके परिभ्रमणसे हम महीनेका हिसाब लगाते हैं। सूर्य्यकी गतिसे ऋतु और वर्ष हमारी समझमें आते हैं। यदि सूर्य्यको प्रमाण न मानकर हम शनिका प्रमाण मानते तो हमारा एक वर्ष तीस सौर वर्षके बराबर होता। इसी प्रकार यदि हम बृहस्पतिको प्रमाण मानते तो हमारा एक वर्ष बारह सौर वर्षोंके बराबर होता।

छोटे मानोंमें घड़ी पल आदिकी कल्पना भी सापेक्ष ही है। कटोरेमें जल जितनी देरमें भर जाता है अथवा किसी एक पात्रमेंसे दूसरे पात्रमें किसी छोटे छेदसे निकलकर रेत भर जाती है अथवा घड़ीमें एक चिह्नसे दूसरे चिह्न तक जितनी देरमें सुई पहुंच जाती है उतनी देरको घड़ी या घण्टा माना जाता है। सारांश यह है कि हम कामसे समयका अनुमान करते हैं। मशहूर है कि बाबर मोमबत्तीके जल जानेसे समयका अनुमान करता था। समयके अनुमानमें चाहे हम शनि, बृहस्पति, सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि बड़े बड़े पिण्डोंकी गतिसे अटकल करें और चाहे बालुकायन्त्र जलघटी, छायाघटी या घड़ी आदि किसी यन्त्र अथवा छोटे पिण्डकी गतिसे समयका अनुमान करें। परन्तु समयके अनुमानमें सभी दशाओंमें किसी न किसी प्रकारकी गति ही प्रमाण है। हम कह चुके हैं कि प्रकाशकी गति एक लाख छियासी हज़ार मील प्रति सेकण्ड है। इसमें मील और सेकण्ड सबसे छोटे मान हैं। यदि हम प्रकाशकी घड़ीकी कल्पना करें और प्रकाशकी गतिसे समयका एक छोटा मान बनावें तो जितनी देरमें प्रकाश एक मील चलता है उतनी देरको सुगमतापूर्वक हम अत्यन्त अल्पकालका नपना बना सकते हैं। यह सेकण्डका $\frac{१}{१८६०००}$ वां अंश होगा। यद्यपि हमारे शास्त्रकारोंका परमाणु नामक समय-मान एक भिन्नमान है तथापि सुगमताकेलिए हम इस अत्यन्त अल्प मानको परमाणुकाल कहेंगे।

परमाणुकाल कहनेमें एक विशेष सुभीता है। विज्ञानके हालके आविष्कारोंमें यह एक बड़े महत्वकी बात जानी गयी है कि परमाणुओंकी रचना विद्युत् कणों द्वारा हुई है। यह विद्युत् कण किसी विशेष विद्युत् कणकी चारों ओर बड़े वेगसे परिभ्रमण करते हैं। इस परिभ्रमणसे ही परमाणुकी सत्ता है। परिभ्रमणकी गति भी निकाली गयी है। कहते हैं कि विद्युत् कणोंकी चाल लगभग एक लाख अस्सी हजार मील प्रति सेकण्डके है। यदि हम एक एक परमाणुको एक एक ब्रह्माण्ड मान लें और विद्युत्कणोंकी गतिसे ग्रहोंकी गतिके सादृश्यका अनुमान करें तो यह समझना कठिन न होगा कि परमाणु-

मण्डलमें जितनी देरमें एक विद्युत्कणका परिभ्रमण पूरा होता है उतनी देरको वहांका एक वर्ष माना जा सकता है। इसको हम सुभीतेकेलिए परमाणु वर्ष कहेंगे।

अब यदि हम अपने वर्ष, युग, कल्प आदिका मान हिन्दू ज्योतिषके अनुकूल रखें तो हिसाबसे ४ अरब ३२ लाख परमाणु-वर्षोंका एक परमाणु-कल्प हुआ, जो हमारे ६ घण्टे ४० मिनटके बराबर हुआ। ब्रह्मका एक अहोरात्र दो कल्पोंका होता है और ३६० अहोरात्रका एक ब्रह्मवर्ष होता है। इस हिसाबसे हमारे पार्थिव वर्षोंमें १११ वर्ष परमाणु ब्रह्माण्डके ब्रह्माकी आयु हुई। अर्थात् मनुष्यकी साधारण आयुमें परमाणु ब्रह्माण्डके सत्तर हज़ार कल्प बीत जाते हैं। या योंही सोचिये कि जितनी देरमें हमारा एक सेकण्ड बीतता है उतनी ही देरमें परमाणु-ब्रह्माण्डके १ लाख ८६ हजार वर्ष बीत जाते हैं और परमाणु मानवकी ६ हजार पीढ़ियां हो जाती हैं। परमाणु-मानवकी दृष्टिसे हमारी साधारण आयु अनादि और अनन्त है। परमाणु-मानव यह सोचेगा कि पार्थिव मनुष्य अनादि और अनन्त है और यह नित्य, सत्य निरामय, गोतीत और निर्विकार है। एक पक्षसे यह भी सम्भव है कि वह हमको निराकार भी समझे और हमारी सत्ताको अपनी कल्पनाके बाहर जाने, परन्तु इस अंशका विस्तार प्रस्तुत प्रसंगसे बाहर होगा, इसलिए हम यहां इतना ही कहना पर्य्याप्त समझते हैं।

ज्योतिर्विद जानते हैं कि वरुणग्रहका एक वर्ष हमारे १८० वर्षोंके बराबर होता है। वरुणग्रह हमारे सूर्य्य मण्डलके अन्तर्गत ही है और यद्यपि इस मण्डलमें हमसे इसकी दूरी बहुत है, परंतु तारोंकी दूरीसे इसकी कोई तुलना नहीं है। तोभी हम यह सहजमें ही समझ सकते हैं कि हमारे यहांका ६० वर्षका बूढ़ा वरुण ग्रहके ६ महीनेके बच्चेके बराबर होगा और वहांका सौ बरसका बूढ़ा हमारे यहांके १८ हजार बरसका होगा। और यदि वहांका मनुष्य वहांके सवा तीन सौ बरस जीता है तो वह हमारे यहांके साठ हज़ार बरसके बराबर हुआ। वाल्मीकीय रामायणमें जहां रामचन्द्र और लक्ष्मणजीको ले जानेकेलिए विश्वामित्रजीने दशरथजीसे प्रार्थना की है वहां राजा दशरथने कहा है कि हे कौशिक मैं साठ हजार वर्षका हो गया तब यह पुत्र उत्पन्न हुए हैं (षष्ठि वर्ष सहस्राणि जातस्य ममकौशिक)। पार्थिव मानसे साठ हजार वर्ष बहुत होते हैं परन्तु वरुण-मानसे सवा तीन सौ वर्षसे कुछ ही अधिक हुए। यदि किसी तारेका मान लें तो शायद साठ हजार वर्ष वहांके तीस चालीस बरस वा कहीं किसी और तारे के दो चार ही बरसके बराबर हों।

यह विश्व अनन्त है। ऐसे ऐसे भी पिण्ड हो सकते हैं जिनके वर्षका मान हमारी अपेक्षा इतना बड़ा हो कि हमारा एक एक कल्प उस पिण्डके एक एक क्षणके बराबर समझा जाय। ऐसी दशामें वह पिंड हमारे सत्यलोक या ब्रह्मलोकके बराबर होगा, जिसको हम नित्य, अनन्त, अविनाशी और निर्विकार समझते हैं। हमारेलिए जैसे परमाणु-ब्रह्माण्ड वैसे ही उनकेलिए हमारा सौर-ब्रह्माण्ड ठहरा।

समयकी सापेक्षता समझनेकेलिए जो बातें हमने ऊपर दिखलाई हैं सम्प्रति पर्य्याप्त होंगी।

भूत, भविष्य, वर्तमान यह तीन काल भी आपेक्षिक ही हैं। इनकेलिए विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जो बात किसीकेलिए भूतकालमें हुई उसीका किसी औरके लिए भविष्य वा वर्तमान कालमें होना सम्भव है। अथवा जो बात हमारेलिए भविष्यमें होने वाली है वह बहुत सम्भव है कि किसी औरके लिए वही घटना भूतकालमें हो चुकी हो। आज आकाश मण्डलमें ज्योतिर्विद एक अद्भुत दृश्य देखता है। दो तमोमय तारे आपसमें लड़ जाते हैं और एक तीसरा तेजोमय पिण्ड बनाते हैं, यह

एक नये ब्रह्माण्डकी रचना है जो आज ज्योतिर्विद अपनी आंखोंसे देख रहा है। हिसाब लगानेसे पता लगता है कि प्रकाशके पहुंचनेमें बहुत देर लगी है। जो घटना हमको इस समय दीख रही है वस्तुतः पांच सौ बरस पहले हो चुकी थी। उस पिंडके जितने दृश्य हम देखते हैं सभी कुछ पांच सौ बरस पहलेके हैं। इसी प्रकार हमारी कल्पना-में यह बात भी आ सकती है कि यदि किसी तारा-जगतमें जहांसे प्रकाशके पृथ्वीपर आनेमें साढ़े चार हजार बरस लगते हैं ऐसे जीव हों जो अपनी अद्भुत शक्ति और विशेष यन्त्रोंके द्वारा पृथ्वीपरकी घटनाओंको देख सकते हैं तो उन्हें हमारे यहां की महाभारतकी लड़ाई वर्तमान कालकी तरह दिखायी दे रही होगी। उनको पाण्डवों और कौरवोंकी सेना कुरुक्षेत्रमें मारकाट करती हुई दिखायी पड़ेगी। और आजकलका योरोपीय महा-समर उनकेलिए साढ़ेचार हजार बरस बाद भविष्यमें होनेवाली घटना होगी। ईसाइयोंके बाबा आदम और मथूसिला आदिके समयकी घटनाएँ वहांके लोग इस समय देख रहे होंगे। और इधरका पांच हजार बरसोंका पार्थिव इतिहास यदि उनको आज ही किसी प्रकार मिल जाय तो उनके लिये खासा भविष्य पुराण होगा, जिसमें "विकटा नाम्नी राजमहिषी" का वर्णन क्षेपक न समझा जायगा।

यह तो दूरका उदाहरण हुआ। पासका ही एक उदाहरण लीजिये।

गंगा उस पार एक धोबी पाटेपर पटक पटक कर कपड़े धो रहा है। पटकनेका शब्द हमको तब सुनायी पड़ता है जब वह फिर पटकनेकेलिए ऊंचा उठा चुकता है। मान लीजिये कि इसमें एक सेकंडकी देर लगी तो स्पष्ट है कि जो शब्द एक सेकंड पहले पाटेपर हो चुका है वह हमें अब एक सेकंड बाद सुनायी पड़ा। एक सेकंड पहलेकी घटना धोबीकेलिए भूतकालमें हुई, हमारेलिए वर्तमान कालमें।

भूत, वर्तमान और भविष्य नामके यह तीन विभाग कर्म और घटनाके सम्बन्धसे सुभीतेके लिए नियत किये गये हैं। ठीक बात तो यह है कि वर्तमान कालकी कोई सत्ता ही नहीं। वर्तमान कालकी कल्पना हम कितने ही सूक्ष्म अंशमें करें यह बात स्पष्ट ही है कि प्रत्येक क्षण भविष्य कालके अक्षय कोषसे निकलकर सतत और निरन्तर भूतकालके नित्य वर्तमान कोषमें चला जा रहा है। इस प्रकार भविष्यसे भूत होनेमें जितनी देर लगे उतनी देरको ही वर्तमान काल कह सकते हैं। परन्तु वास्तवमें यह देर कुछ भी नहीं है। इसलिए वर्तमान कालकी कोई सत्ता ही नहीं है।

देशकी कल्पनापर विचार करते हुए हमने यह दिखाया है कि जब किसी अवरोधके विरुद्ध किसी विशेष दूरीतक शक्तिकी गति होती है तो कहा जाता है कि काम हुआ है। यन्त्र शास्त्रमें काम या कर्म्मकी यही परिभाषा है। तात्पर्य्य यह कि रुकावटका मुकाबिला करते हुए दूरी तय की जाय तो कह सकते हैं कि शक्तिने काम किया। आधसेरका बोझ एक फुटकी ऊंचाईतक उठानेमें पृथ्वीके आकर्षणकी रुकावटका मुकाबिला किया गया और एक फुटकी दूरी तय की गयी। आध-सेर एक पौण्डके बराबर होता है इसलिए यन्त्र शास्त्रमें इसी बातको यों कहते हैं कि एक फुट पौण्ड काम हुआ। परन्तु जो कुछ काम किया जाता है उससे ही हम समयका भी अनुमान करते हैं। इसलिए यदि हम काम या कर्म्मकी इकाई बनाना चाहें तो हमें समयका बिना विचार किये हुए भार और दूरी अथवा भार और देश इन दोनों-का विचार करना होगा। भार और देशके विचार-से कामकी मात्रा निश्चित हो सकती है। यह कहा जा सकता है कि इतने फुट पौंड काम हुआ। परन्तु यदि हम बलका निर्देश करना चाहें या हम यह जानना चाहें कि काम करनेमें कितना बल लगा तो काम करनेमें कितना समय लगा यह भी विचार करना आवश्यक होगा। इस

प्रकार बलकी इकाईका मान यदि मिनटोंमें निश्चित किया जाय तो हम यों कह सकते हैं कि एक मिनट-में एक पौंड बोझ एक फुट ऊंचा उठानेमें जितना बल लगा वह बल एक बल वा बल की इकाई कहला सकता है। निदान काम करनेकी दर नियत करनेमें हमको समयका विचार करना पड़ता है। अथवा कर्मसे ही हम समयका अनु-मान करते हैं। इन दोनों बातोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। समयका अनुमान हम कर्म वा घट-नाओंसे करते हैं और कर्मका वा घटनाओंका मान हम समयके द्वारा करते हैं। इन दोनों बातों-पर विचार करनेसे यही स्पष्ट होता है कि समयके विषयमें हमारी जो कुछ कल्पना है वह कर्म्म मात्र-पर निर्भर है। चाहे वह घटना वा कर्म आकाशके पिंडोंकी गतिकी नाईं प्राकृतिक हो अथवा मनुष्य-की साधारण क्रियाओंकी तरह मानवी। हम यह भी दिखा आये हैं कि हमारा एक सेकंड किसी और के एक कल्पके बराबर हो सकता है और किसी औरका एक क्षण हमारे लिए ब्रह्माकी आयुके बराबर हो सकता है। और यह तो एक साधारण अनुभव है कि शोक का अल्प क्षण भी कल्पके समान बीतता है और हर्षके वर्ष ऐसे बीत जाते हैं कि पता नहीं लगता। स्पष्ट है कि कालका अनुभव जिस किसी रूपमें हमारे मनको हो किसी नित्य परिमाणमें नहीं हो सकता अर्थात् देशकी तरह कालका विचार भी सापेक्ष ही है।

अब शून्यता और अनन्ततापर जब विचार करते हैं तो, जैसा हम देशके विचारमें दिखा आये हैं, एक ओरसे तो काल अनन्त हो जाता है और दूसरी ओरसे शून्य वा उसका अत्यन्ताभाव दिखाई पड़ता है। या यों कहिये कि हमारे मीमांसकों-के अनुसार या तो काल अनन्त ही है और कल्पनातीत है या उसकी कोई सत्ता ही नहीं। क्योंकि वाह्य घटनाओंका अथवा उनकी सत्ताका हमारी इन्द्रियोंके विशेष नाड़ी जालपर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है, जिससे हमारी चेतनामें घटनाओं-के क्रमका अथवा आगे पीछे होनेका भाव उत्पन्न होता है और हम कालकी कल्पना करते हैं। जिस रूपमें काल हमको व्यक्त होता है वह हमारी चेतनाका आन्तरिक भाव है और उसकी वाह्य सत्ता कुछ भी नहीं है।

पाश्चात्य और भारतीय विज्ञानवाद

[ले०—श्रीयुत ला० कन्नोमल, एम. ए.]

भारतवर्ष दार्शनिक मतोंका भाण्डार है। भूमण्डलपर कोई दार्शनिक विचार ऐसे नहीं जिनकी स-दृशता भारतीय विचारोंमें नहीं हो। यों तो दार्शनिक विचारोंमें अनेक मत हैं, पर मुख्यतः इनकी दो शाखाएं हैं। एक तो सर्वा-स्तित्ववाद और दूसरी विज्ञानवाद या आत्मवाद। दृश्यमान संसार सत्य है; हमारे मनके बाहर संसारमें जितने पदार्थ दिखाई देते हैं उनकी वास्तविक सत्ता है—यह सर्वास्तित्ववाद है। संसारके बाहरी पदार्थ केवल देखने मात्रके ही हैं, वास्तवमें सत्य नहीं–न उनका कोई निज सत्ता है। सत्य वस्तु हमारा मन ही है; मनकी विविध कल्पना शक्तियोंसे बाहरी संसारकी सत्ता है—यह विज्ञानवाद है। इन मतोंको स्पष्ट करनेके लिए उदाहरण देते हैं। हम संसारमें रहते हुए अनेक प्राकृतिक पदार्थ देखते हैं जैसे वृक्ष, पर्वत, नदी, समुद्र, आकाश, वनादि। ये सब पदार्थ वास्तवमें सत्य हैं या केवल हमारी मनकल्पनाओंके दृश्य हैं? एक तो कहते हैं कि इनकी स्वतंत्र सत्ता है। जैसे दिखाई देते हैं वैसे ही हैं। यह बात नहीं है कि उनकी रचना हमारी मनकल्पनाओंसे ही हुई है। इन सब पदार्थोंकी रचना प्रकृतिसे हुई है और प्रकृति एक स्वयं सत्ता रखनेवाली वस्तु है और अनादि है। प्रकृति परमाणुओंकी बनी है और परमाणु ऐसे सूक्ष्म हैं कि न तो इनके भाग हो

Philosophy दर्शन]

सकते हैं, न उनमें विस्तार है और न वे दृष्टिगोचर हैं। पश्चमीदेशोंमें इस मतके माननेवाले बहुत विद्वान हैं और भारतवर्षमें भी इस मतके अनुयायियोंकी कमी नहीं। न्याय वैशेषिक शास्त्रोंका यही मत है। इस मतके धुरन्धर आचार्य गौतम और कणाद हैं।

दूसरे मतवाले यह कहते हैं कि पूर्वोक्त पदार्थोंकी सत्ता स्वतंत्र नहीं है, वह हमारी मनकल्पनाओं पर अवलम्बित है। संसार रचनाकी मुख्य सामग्री काल, आकाश और कार्यकारण शृङ्खला हैं। किसी घटनाका होना कालपर निर्भर है। कालके तीन रूप भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान हैं।

कोई घटना ऐसी नहीं जो इन तीनों कालोंमें किसीसे सम्बन्ध नहीं रखती हो। संसारकी जितनी दृश्यमान वस्तुएं हैं, सब आकाशमें स्थित हैं, इसीके कारण उनमें भिन्नता है। यदि आकाश नहीं हो तो वस्तुओंमें भिन्नता होना असम्भव है। यदि एक वृक्षको दूसरे वृक्षसे पृथक् देखते हो, यदि वृक्ष और पर्वतमें भिन्नता देखते हो, यदि पृथ्वी और आकाशमें दूरी दिखाई देती है अर्थात् संसारकी सब वस्तुओंका पृथक् पृथक् दिखाई देना आकाशाधारके कारण ही है। संसारकी रचनामें तीसरा कारण कार्य कारण शृङ्खला है। पानी बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है, बादलोंसे वर्षा होती है, तापसे जलको भाप बन जाती है इत्यादि। इन वाक्योंमें बीज, बादल और ताप कारण हैं और वृक्ष, वर्षा और भाप कार्य हैं। संसारकी जितनी वस्तुएं हैं सब इसी प्रकार कार्य-कारण शृङ्खलासे बंधी हुई हैं।

अब प्रश्न यह है कि संसार रचनाके तीन मुख्य कारण अर्थात् काल-आकाश-कार्यकारण शृङ्खला हमारे मनके भीतर हैं या बाहर। विज्ञानवादियोंका कहना है कि ये तीनों चीज़ें मनके भीतर हैं—बाहर नहीं। जब ये तीनों मनोमय हैं और संसार रचना इन्हींसे है तो स्वयंसिद्ध है कि संसार मनोमय ही है—बाह्य सत्तावाला नहीं। पाश्चात्य देशोंके विद्वानोंने संसारको मनोमय सिद्ध करनेमें बड़ी विद्वत्ता और तर्क कुशलता दिखाई है।

जार्ज बर्कलेका कहना है कि संसारका आधार प्रकृति नहीं है—मन है। द्रव्य कोई वस्तु नहीं है। यह मन ही है जिसके कारण दृश्यमान जगत्की स्थिति है।

इन महानुभावका कहना है कि सांसारिक पदार्थ इन्द्रिय गोचर हैं—हमें उनका अनुभव इन्द्रियों द्वारा होता है। ये अनुभव चैतन्य वस्तुमें ही रह सकते हैं—किसी जड़ वस्तुमें नहीं। शीत, ताप, स्वाद, सुगन्धि इत्यादि अनुभवरूप हैं—ये किसी जड़ वस्तुमें नहीं केवल चैतन्यमें ही रह सकते हैं; अतः शीत जलमें नहीं है, गर्मी अग्निमें नहीं है; स्वाद मिष्ठान्नमें नहीं है, सुगन्धि पुष्पमें नहीं है बल्कि हमारे मनमें है। इसी तरह बाहरी वस्तुओंमें विस्तार, आकार, रूप, रङ्ग, आदि जो दिखाई देते हैं, वास्तवमें उनमें नहीं हैं—हमारे मनमें ही हैं, क्योंकि वे भी एक प्रकारके अनुभव हैं। शीत, तापादि तीव्र अनुभव हैं और हमें तत्क्षण मालूम होने लगते हैं और विस्तार आकारादि मन्द अनुभव हैं जो विचार करनेसे मालूम होते हैं, क्योंकि निरन्तर अभ्यासके कारण वे स्वतंत्र वस्तुएं दिखाई देने लगी हैं। इस महानुभावके मतानुसार संसार मनोमय है।

डेविडह्यूमका मत इनसे भी कुछ बढ़ा हुआ है। उनका कथन है कि संसार केवल मन कल्पनाओं और अनुभवोंका एक पुञ्ज है और कुछ नहीं। इनके मतानुसार कार्यकारण शृङ्खला भी एक मनकल्पितवस्तु है। वास्तवमें कुछ नहीं है। अभ्यास पड़ जानेसे वस्तुओंमें कार्य कारण दिखाई देने लगते हैं; परन्तु वास्तवमें कार्यका कारणसे कोई आन्तिरक सम्बन्ध नहीं है।

फिकटे, सोपनहर आदि तत्त्ववेताओंके गहन विचारोंसे भी संसार मनोमय ही सिद्ध होता है।

भारतीय दार्शनिक विद्वानोंने भी संसारको मनोमय माना है। इनमें बौधमतके विज्ञानवादियोंके विचार लगभग वैसे ही हैं जैसे जार्ज, बर्कले, ह्यूमादिके; परन्तु वेदान्तियोंके विचार इनसे कहीं बढ़े चढ़े हैं। पाश्चात्य विद्वान् तथा बौध विज्ञानवादियोंके विचारानुसार बाहरी जगत् असत्य है, परन्तु मन और उसके अनुभव सत्य हैं। उनका कथन है कि संसार बाहर तो नहीं है लेकिन मनमें है। दूसरे शब्दोंमें यह कहना है कि जगत् असत्य है लेकिन मनोभाव जिसपर उसका होना निभर्र है सत्य है। वेदान्तियोंका कथन है कि आत्माके सिवा और सब मिथ्या है। बाहरी संसार और मनोभाव दोनों एक ही असत्य वस्तुके बने हैं जिसे माया कहते हैं। इसके सूक्ष्मरूपसे मन, बुद्धि, तथा इन्द्रियोंकी रचना है और स्थूलरूपसे स्थूल संसारकी। ये दोनों असत्य—सत्य है तो केवल आत्मा ही है। इस विचार और पूर्वोक्त विचारोंमें बड़ी भिन्नता है। उनमें तो केवल जगतको ही असत्य माना गया था और मनादिको सत्य, और इसमें इन दोनोंको ही मिथ्या माना गया है—केवल आत्माको ही सत्य बताया है। पाश्चात्य विद्वान् तथा अन्य भारतीय दार्शनिक पंडित जिसे आत्मा या जीव मानते हैं उसे वेदान्ती सूक्ष्म शरीरके नामसे पुकारते हैं—आत्माके नामसे नहीं, क्योंकि आत्मा उससे परे है। सूक्ष्म शरीर १७ चीज़ोंका बना है अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियां ५ कर्मेन्द्रियां, ५ प्राण, १ मन और १ बुद्धि। ये सब मिलकर जीवका काम देती हैं और इसी जीवका आवागमन होता है-आत्माका नहीं। पाश्चात्य विद्वानोंकी जीव सम्बन्धी परिभाषा इससे ऊपर नहीं है। वे वेदान्तियोंकी आत्माकी सीमातक नहीं पहुंचे हैं; और यही कारण है कि उन्होंने मनोभावोंको सत्य माना है। यदि उनको वेदान्तियोंकी आत्माका परिचय होता तो वे इसी श्रेणीपर नहीं ठहर जाते, बल्कि आगे बढ़ते हैं। वेदान्तशास्त्रका महत्त्व यही है कि उसने बड़ी गवेषणाके पश्चात् आत्माका सत्यज्ञान खोज निकाला है। यह आत्मा और परमात्मा अर्थात् ब्रह्म, एक ही है—उनमें कोई भेद नहीं। भिन्नता केवल माया जनित उपाधियोंकी है। जैसे एक घड़े और दूसरे घड़ेके आकाशमें भेद नहीं तथा एक घड़ेके आकाश और महदाकाशमें भेद नहीं, इसी तरह आत्मा और परमात्मामें भेद नहीं। यह वस्तु आत्मा अथवा ब्रह्म निरन्तर सत्य, अविनाशी, अनादि अनन्त और अव्यय है और उसका रूप सच्चिदानन्द है। जगत् जिसमें बाहरी और मनोगत जगत् दोनों शामिल हैं माया निर्मित है और मिथ्या है। यही भाव निम्नलिखित श्लोकका है—

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं शास्त्र कोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ब्रह्मजीवोपिनापरः॥

वेदान्तशास्त्रके आदिम आचार्य उपनिषदोंके वक्ता हैं, उनके पीछे बादरायण ऋषि और आधुनिक कालके धुरन्धर आचार्य श्री शंकराचार्य जी हैं, जिनके विचार गहनताकी तुलना किसी पाश्चात्य दार्शनिक विद्वान्‌के मतसे नहीं हो सकती क्योंकि यह उसके सामने एक तुच्छ वस्तु है।

नीम और उसके गुण

[ले०—श्रीयुत सच्चिदानन्द सहाय]

भारतवर्षमें ऐसा कौन मनुष्य है जिसने नीमके वृक्षको नहीं देखा। पांच बर्षके लड़केसे सौ वर्षके बुड्ढ़ेतक इससे परिचित हैं। यह एक द्विदल (Dicotyledon) वृक्ष है, जो प्रायः सभी प्रान्तोंमें उगता है। हम इस वृक्षकी शारीरिक रचनाको वर्णन न करके इसके गुणोंका ही उल्लेख करेंगे। प्राचीनकालमें नीमका वृक्ष एक बहुत ही पवित्र वृक्ष माना जाता था और हिन्दू समाजके लोग तो यही समझते थे, और वे लोग जो प्राचीन रीति रिवाजको घृणाकी दृष्टि से नहीं देखते अब भी समझते हैं,

Hygienic स्वास्थ्यरक्षा]

कि नीमके वृक्षपर जगत-रक्षिणी माता काली वास करती हैं। जहां कहीं देवीका मंडप होता है वहां नीमका वृक्ष अवश्य ही देखा जाता है, इसलिए प्रत्येक बस्तीमें प्रायः दो चार वृक्ष अवश्य रहा करते हैं।

प्राचीनकालके वैद्य पानीमें नीमके पत्तोंको उबाल कर घावोंको धोते थे, पत्तोंको पीसकर लेप चढ़ाते थे और सदा सफलता प्राप्त करते थे। अभी तक हिन्दुओंके घरोंमें शीतला देवीका (जिसे लोग माता कालीकी कृपा समझते हैं) जब आगमन होता है तो रोगीकी खाटके पास नीमके हरे हरे पत्तोंकी डाली रखते हैं और नीमके पत्तोंसे रोगीको हवा करते हैं। शीतला ग्रसित रोगियोंको नीमके पत्तोंसे बहुत लाभ पहुंचता है। सुना जाता है कि हकीम लुकमानने एक कोढ़ीको नीमका अर्क पिलाकर (जिसके निकालनेकी विधि अब लुप्त हो गई है) अच्छा किया था। इससे विदित होता है कि केवल हिन्दू ही नहीं बल्कि प्राचीन कालके यूनानी हकीम भी नीमके गुणोंको भली भांति जानते और उससे लाभ उठाते थे।

हमारे भारतवर्षमें चैत्र और वैशाखके महीनोंमें प्रायः लड़कोंको फुनसी और खाज हुआ करती है। यदि चैत्र महीनेके आरम्भसे नीमका टूसा (फुनगी) नित्य प्रातःकाल चबायें तो फुनसी खाज आदिसे बच सकते हैं और मौसमी ज्वर तथा शीतलाका भय भी बहुत कम हो जाता है। यदि जी चाहे तो नीमके टूसेको बैंगनके साथ पकाकर भी खा सकते हैं, इससे भी उतना ही लाभ होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह पके हुए नीमके टूसे अस्वादिष्ट मालूम होते हैं, किन्तु उनके गुणोंके सामने कड़वेपनकी परवाह न करनी चाहिये।

मनुष्योंको भोजन केवल स्वादकेलिए ही नहीं करना चाहिये बल्कि स्वादसे अधिक उसके गुणोंकी ओर ध्यान देना उचित है। वैज्ञानिक खोजसे पता चला है कि नीम बहुत बड़ा Bitter है जिसके चबानेसे राल (Saliva) और पाचनरसकी (Gastric juice) शक्ति बढ़ जाती है, और इसी कारण खाद्य पदार्थ ठीक रीतिसे पचते हैं। मौसिमके बदलनेपर पाचनशक्तिमें कमी आ जाती है, भूख कम हो जाती है, और पित्त भी कुछ कम हो जाता है। नीमके सेवनसे यह सब शिकायतें दूर हो जाती हैं और मनुष्य स्वस्थ रहता है। छोटे छोटे बच्चोंको खाज फुन्सीसे बचानेके लिए एक दूसरी तरह भी नीम काममें लाया जा सकता है। बच्चे नीमके पत्ते या फुनगी चबाना पसन्द नहीं करते, इसलिए थोड़ेसे नीमके फूलोंको अन्दाजसे पानीमें डालकर इतनी देर उबालिये कि एक हलकी गन्धका रंग उतर आये। उस रंगमें बच्चोंके कपड़े रंग कर पहिरानेसे भी खाज, फुन्सी नहीं होती।

प्रायः सभी लोग जानते हैं कि मौसमी ज्वर मच्छड़के काटनेसे होता है। यदि सन्ध्या समय नीमके पत्ते और थोड़ासा गन्धक घरोंमें जलाया जाय तो मच्छड़ सहज भाग जाते हैं। मौसमी ज्वरसे पीड़ित मनुष्योंको नीमकी सींकोंका काढ़ा औटाकर पिलानेसे यह रोग दूर हो जाता है।

विसूचिकाके (हैज़ा) ज़मानेमें यदि पानीमें नीमके पत्तोंको उबालकर हाथ, मुंह और बर्तन धोनेके काममें लायें तो इस बीमारीसे बहुत कुछ बच सकते हैं। खानेकी चीज़ोंको ढांककर ऊपरसे नीमके पत्ते रख दें तो ज़हरीले कीड़े खाद्य पदार्थोंमें प्रवेश नहीं करने पाते।

अगर नीमकी दाँतनसे प्रति दिन मुंह धोया करें तो दांतोंमें कोई जीवाणु न रहें और बहुतसी बीमारियोंसे हम बचे रहें। जो मनुष्य अजीर्णसे पीड़ित रहते हैं वे यदि प्रति दिन नीमकी दाँतन काम में लाया करें तो बहुत लाभ हो सकता है।

(Pyoerrhea alveolaris) पायुरीया अलभिलेरिस में भी नीमकी दांतन करनेसे बड़ा

लाभ होता है और मुखकी दुर्गन्धि जाती रहती है।

नीमके पके फल खानेमें मीठे मालूम होते हैं और बच्चे उन्हें बड़े चावसे खाते हैं। इसलिए उनके गुरुजनोंको उचित है कि लड़कोंको नीमका फल अवश्य ही खिलाया करें। ऐसा करनेसे उनका रक्त शुद्ध रहेगा। जिस गांव या बस्तीमें नीमका पेड़ न हो वहांके बासियोंको निबोलीका मुरब्बा या अचार बनाकर अपने पास रख लेना चाहिये। यह समय समयपर काम आ सकता है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि नीममें ऐसा कौन सा अवयव है जिससे उसमें इतने गुण भरे हैं। कलकत्ता मेडिकल कौलिजकी रासायनिक प्रयोगशालामें (Chemical Laboratory) इस वृक्षसे एक प्रकारका अम्ल (acid) निकाला गया है, जो पोटासियम धातु (metallic potassiun) से मिलकर एक लवण (Salt) बनाता है, जिसको पोटासियम मारगोसेट (Pot-margoset) कहते हैं और इसी अवयवके रहनेसे नीममें इतने गुण पाये जाते हैं। पोटासियम मारगोसेट और सोडियमगिनोकोरडेट कोढियोंके शरीरोंमें (inject) त्वचा भेद करके पहुंचाये जाते हैं।

पाठकोंको नीचे दी हुई बातें भी सम्भवतः रुचिकर प्रतीत होंगीः—

गोंद

नीमकी छालसे तृणमणिके रङ्गका, चमकीला गोंद भी निकलता है, जो थोड़ा थोड़ा करके इकट्ठा कर लिया जाता है और विलायतमें 'गम गेट्टी' (gum gattie) या 'ईस्ट इण्डिया गम' के नामसे बिकता है। यह एक उत्तेजक पदार्थ समझा जाता है और वैद्य इसका उपयोग दवाओंमें किया करते हैं।

तेल

जब निबोलियां पक कर पेड़से गिर जाती हैं तो उन्हें बटोर कर तेल निकाल लिया जाता है। तेलका स्वाद कड़वा और तीखा होता है। उसका रङ्ग गहरा पीला होता है। प्रायः तेल जलाने या साबुन बनानेके काम आता है। जलानेसे धुआं अधिक देता है, इसलिए गरीब आदमी ही इसका प्रयोग करते हैं। साबुनमें भी इसकी गंध बराबर आती रहती है। कपड़े धोनेका साबुन ही इस तैलसे बनता है। जिन लोगोंको खुजली या दाद हो जाते हैं, वह नीमके साबुनसे नहाया करते हैं। तेल अच्छा कृमि और कीट नाशक है। कभी कभी वृक्षोंको कीड़ोंसे बचानेके लिए तेल पेड़ोंपर मल दिया जाता है। सिंधमें स्त्रियां तेलसे सिर नहाया करती हैं।

नीमकी खली

खलीका खाद बहुत अच्छा होता है।

नीमकी छाल (खोटी)

घिसकर फोड़े फुन्सियों पर लगाते हैं।

नीमकी पत्ती

नीमकी पत्तियोंको पीस कर और लुगदी बना कर दुखती हुई आंखों पर रखते हैं। कोंपलोंको बहुत बारीक पीसकर काजलमें भी मिलाते हैं। पत्तियोंको पीसकर और छानकर रङ्गनेके काममें भी लाते हैं। सूखी हुई पत्तियोंको कपड़ों और किताबोंमें रख दिया करते हैं। इससे कीड़ेका बचाव रहता है। अजकल तो कपड़ोंमें नेपथेलीनकी गोलियां रखा करते हैं, जिनकी दुर्गन्ध कपड़ोंमेंसे कई दिनोंके बाद जाती है। पत्तियोंको धूनी देनेके काममें भी लाते हैं।

पत्तोंको पानीमें उबालकर प्रसूताओंको न्हिलाया करते हैं।

नीमकी शराब

नीमके पेड़मेंसे या तो स्वयम् ही अर्क निकलता है या कृत्रिम रीतिसे निकाला जाता है। जब रस स्वयम् ही निकलने लगता है तो वृक्षके कई भागोंमेंसे लगातार कई सप्ताहतक निकलता रहता है।

रस निकालनेकी कृत्रिम रीति यह हैः—

किसी अच्छी जड़को खोदकर उसमें शिगाफ लगा देते हैं और कोई पात्र उसके नीचे रख देते हैं।

जब रस इकट्ठा हो जाता है, तो उसका खमीर उठा लेते हैं। यह द्रव उत्तेजक और पुष्टि कारक होता है। सं०]

नीलकी खेती

[ले०— पं० मुरारीलाल भार्गव, बी. ए, एल-एल. बी.,]

नीलके बोनेका तरीका यह है कि जिस समय रबीकी फसल कट जावे उसी समय खेतको परेवट करके और पृथ्वीको जोतकर फिर दुबारह परेवट करदें। जब उसमें खूब पानी भरा हो बीजको छिड़ककर, बबूल इत्यादिके झांकरसे घसीट दिया जाय, जिससे थोड़ी मिट्टी उठकर बीजको ठीक तरह दबा दे। चूंकि नील बोनेका समय ऐसा है कि न तो काश्तकारको ज़मीन जोतनेका समय मिलता है और न दुबारह परेवटकेलिए पानी ही मिलता है, इसलिए बिना जोते ही नील बो दिया जाता है। परन्तु यह रीति किसी प्रकार भी ठीक नहीं है, क्योंकि (१) खेतकी घास टूटनेकी जगह खूब जम जाती है और काटनेके समय लाँक (नीलका पौदा) के साथ मिल जाती है और पीछेसे नीलके रंगको अशुद्ध कर देती है और (२) पृथ्वीकी नमी शीघ्र ही निकल जाती है।

जिस समय अंकुर फूटने लगें उस समय सिंचाई फिर करनी चाहिये। इस पानीको 'घुट्टी देना' कहते हैं। यदि 'घुट्टी' न दी जायगी तो फसल अच्छी न होगी। समय और आवश्यकताके अनुसार पानी दिया जाता है और घास इत्यादि भी नरा दी जाती है।

एक बीघा कच्चेकेलिए १॥ सेरसे लेकर २ सेर तक अच्छा बीज काफी होता है, पर यह मात्रा जमीनपर भी निर्भर है। अच्छी धरतीमें कम और कमजोरमें अधिक बीजकी आवश्यकता होती है। अच्छा नील हल्के भूरे रंगका पीली झांई लिये होता है। स्याह सुर्ख अथवा हरे रंगका बीज कभी न लेना चाहिये और अगर दोनों किस्मका बीज मिला हुआ होवे तो २ सेरसे कम बीज न डालना चाहिये।

वायुका प्रभाव

यदि पश्चिमकी हवा चलती हो तो फसल अच्छी तैयार होती है और लाँकमेंसे रंग भी ज़्यादा मिलता है।

धरती

प्रायः नील उस धरतीमें अच्छा होता है जिसमें नत्रजनकी मात्रा कम होती है और फासफोरिक अम्ल (phosphoric acid) बहुतायतसे पाया जाता है, क्योंकि नीलका पौदा नत्रजनको हवामेंसे बहुत चूसता है। इसलिए उसे नत्रजन पृथ्वीमेंसे लेनेकी आवश्यकता नहीं रहती और न उसकी ऐसी प्रकृति ही है कि ज़मीनमेंसे नत्रजन ग्रहण करे। यह पौदा दाल जातीय (leguminous) है, इसलिए यदि पश्चिमी हवा ही चले तो पौदेको नत्रजन मिलनेका ज्यादा सुभीता होता है, क्योंकि पूर्वी हवामें पानी अधिक होनेके कारण पौदा नत्रजन कम खींचता है। इसके अतिरिक्त यह पानी पौदेकी नमीको बढ़ाता है और पत्ती तथा पौदेकी खारको धो डालता है, जिससे पौदेके रंगमें कमी आ जाती है।

खाद

यदि शोरेकी खाद सितम्बर मासमें दी जाय तो पैदावार बहुत होगी, परन्तु इस खादकी कीमत पैदावारकी औसतसे ज़्यादा बैठती है, इसलिए यह काममें नहीं लायी जाती। नितारका पानी भी, जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा, उम्दा खाद है, परन्तु इसमें नत्रजनकी अधिकता होनेके कारण नीलकी काश्तकेलिए अच्छा नहीं होता। हां पैदावार अच्छी होगी, पर पत्तीके रंगमें

Agriculture कृषि]

कमी होती है। यह नितारका पानी ईख, तमाकू, व अनाज इत्यादिकेलिए बहुत ही लाभदायक है। इसलिए जिस पृथ्वीमें नितारका पानी दिया जाय उसमें यह फसल अवश्य ही करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि यदि अनाजकी फसल काटनेके बाद फिर नीलकी फसल की जावेगी तो नील बहुत ज़्यादा और अच्छा पैदा होगा। यह अक्सर देखा गया है कि अगर पृथ्वीमें नील ही नीलकी काश्त की जाय तो पृथ्वी कमज़ोर होती चली जाती है और काश्त घटती जाती है और अगर बीचमें दूसरी अनाज इत्यादिकी काश्त की जाय तो बहुत लाभ होता है। यह भी देखनेमें आया है कि यदि नीलकी काश्त बजाय हर सालके दूसरे साल की जाय तो बहुत ही फायदा होता है। नीलकी काश्त करनेसे ज़मीन बहुत ही अच्छी हो जाती है और देखा गया है कि गेहूं इत्यादि जो नीलके बाद पैदा होता है बहुत ही बड़ा और पहले नम्बरका और बहुतायत से होता है। लादा अर्थात् रंग निकाला हुआ पैदा भी खातके काममें आता है, परन्तु नीलकी खादके काममें नहीं, क्योंकि इसमें भी नत्रजनकी अधिकता होती है। जिस खेतमें लादाका खाद दे दिया जाय वह तो निहाल हो जाता है और फिर पैदावार बहुत अच्छी होती है। जांच करनेसे मालूम हुआ है कि नीलकी पैदावारके लिए फासफोरिक अम्ल अधिक चाहिये, इसलिए सुपरफोसफेट आफ लाइम इत्यादि पदार्थोंकी खाद बहुत ही अच्छी होती है। रंग केवल पत्तीमें होता है।

पौदेका रंग

जैसे जैसे पौदा बढ़ता जाता है और एक हद तक पहुंचता जाता है, पत्तीमें रंग बढ़ता जाता है। ऐसा अगस्तके महीने तक होता है। ऊपरकी पत्तीकी अपेक्षा नीचेकी पत्ती-में अधिक रंग होता है। इससे यह बात प्रत्यक्ष है कि पौदेमें एक हद तक ही रंगकी बढ़ती होती है। बहुतों का यह खयाल है कि जितना पौदा लांबा होगा उतना ही रंग ज़्यादा निकलेगा, परन्तु यह बात बिलकुल गलत है। जांच करनेसे मालूम हुआ है कि जब पौदा 'मद पर' आ जाता है तो उसमें रंगकी बढ़ती बन्द हो जाती है, बल्कि नीचे- वाली पत्तियोंमें तो रंगकी कमी होती जाती है और ऊपर जो नई कोंपलें फूटती हैं वह घासफूसका सा काम करती हैं और रंग को खराब करती हैं। इसके अलावा पौदेका वजन बढ़ जानेसे रंगकी औसद कम बैठती है।

एक ही पृथ्वीमें बराबर नील काश्त करना या उलट फेर करके और दूसरी फसल करके फिर काश्त करना

अगर एक ही ज़मीनमें हर साल नील बोया जाय, और कुछ फसल न की जाय, यानी रबी न की जाय तो फी सौमन लाँक में ५४ के लगभग रंग निकलेगा और यदि रबी की फसल की गई हो या बिलकुल नई ज़मीन हो तो केवल ।५ ही निकलेगा। इसके कई कारण हैं—(१) घास रबी-की फसल करनेसे या ख़रीफकी कोई पैदावार-करनेसे जा सकती है। (२) नीलको फसल-के बाद दूसरी करनेसे कीड़ा नहीं आ सकता, क्योंकि एक ही फसल एक ही जगह हरसाल होने-से उसका कीड़ा वहां मौजूद रहता है और फसल-की अदल बदलसे कीड़ा मर जाता है। (३) फसल-की हेर फेरसे खादकी कमी नहीं होती यानी वही खाद हर साल उस पृथ्वीमेंसे नहीं खर्च होती है, बल्कि दूसरी फसलसे नई तरहकी खाद मिल जाती है। जो कमी एक फसलसे होगी वह दूसरी फसलसे पूरी हो जायगी। बहुत ज़्यादा कमी, जो एक ही फसलको दुबारा बोनेसे होती न होगी।

मेहका प्रभाव

यदि पानी बहुत बरसे तो नीलका औसद अवश्य ही कम हो जाता है। जांचसे मालूम हुआ है कि पानी बरसनेसे रंग बह नहीं जाता, परन्तु जो कमी हो जाती है उसके कई कारण हैं— (१) पौदे गीले तुलते हैं और कोठीपर उनका

करदा नहीं काटा जाता (२) माल बिलोनेके बाद अच्छी तरह नहीं जमता और बहुतसा नितारके पानीमें निकल जाता है। (३) मेह बरसनेसे ठंडक हो जाती है और पानीमें गरमी नहीं रहती। होज़ ठंडे पड़ जाते हैं, इसलिए दवाईके होज़ोंमें रंग अच्छी तरह नहीं छूटता। (४) सम्भवतः मेह पौदेमेंके एक विशेष पदार्थको जो कि एनज़ाइम या फेनकार (enzyme) कहलाते हैं धो डालता है। पदार्थ रंग निकालनेमें दबावके समय बड़ी मदद करता है। *

यदि पौधा काटकर डाल दिया जाय अथवा गहरा भर दिया जाय और उसके ऊपर पानी पड़े और वह बहुत देर तक इसी दशामें तर रहे तो बहुधा देखा गया है कि पौधा जल जाता है। जला हुआ पौदा काममें नहीं लाना चाहिये, क्योंकि (१) माल तो उसका निकल चुका और (२) यदि ऐसा पौदा दबा दिया जाय तो बिलोनेके समय बड़ी तकलीफ होती है और बड़ा जोर लगाना पड़ता है।

मदपर आना

पौदा जब जवान हो जाय अर्थात् मदपर आ जाय तो काट डालना चाहिये, क्योंकि अगर ऐसा न किया जाय तो ऊपर लिखे अनुसार उसमें मालकी कमी होती जायगी। यदि काटा न जाय तो कुछ समयके पश्चात् केवल डंठल ही डंठल रह जायंगे और ऊपर लम्बी लम्बी फली आ जायंगी। पौदेका मद पहचाननेके कई तरीके हैं :—(१) अपने अनुभवसे जानकार आदमी तुरन्त ही मालूम कर लेते हैं कि पौदा मदपर आगया या नहीं। (२) पौदेकी औसद लम्बाई ३ फुट होती है। (३) जब मदपर आ जाता है नीचेकी पत्ती पीली पड़ जाती है। (४) यदि ऊपरकी पत्ती लेकर उसको मोड़ा जाय तो बजाय सिमटने के पत्ती तड़क जाती है। (५) यदि पत्तीको मोड़ा जाय तो उसमेंसे नीलकी खुशबू निकलेगी। (६) पत्ती नीचेकी ओर मुड़ने लगेगी। (७) नीलके खेतमें पकी सेंधकी खुशबू हो जायगी। (८) नीलकी फसलकी मियाद १०० से ११० दिन तक है, इस अरसेमें पौदा अवश्य ही 'मद' पर आ जाता है।

ऊपर लिखी हुई रीति अधिक तर सुमात्राके बीजके पौदेके लिए काममें लाई जाती है। यह बीज ही संयुक्त प्रान्तमें आज कल काममें लाया जाता है। जावाका बीज बहुत अच्छा होता है, परन्तु वह बड़ा मंहगा होता है और उससे नील पैदा करनेमें और बनानेमें अधिक परिश्रमकी आवश्यकता होती है।

* इस फेनकारके प्रभावसे पौधोंके अवयवोंसे रंग बनता है।

मन्दाग्निकी चिकित्सा

[ले० अध्यापक गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए]

पढ़े लिखे भारतवासियोंमें बिरले ही ऐसे मिलेंगे जिनका आमाशय वा कोष्ठ ठीक ठीक काम करता हो। परन्तु वह इसे बुरा नहीं मानते। एक समय आधपावसे अधिक भोजन नहीं कर सकते हों, दिनमें पांच वक्त पाखाना जाते हों, फिर भी अपनेको भला चंगा बताते हैं। यदि कोई संदेह करे तो चिढ़कर कहते हैं—"मैं बीमार नहीं हूं। हां जो शिकायत सब पढ़े लिखे आदमियोंको रहती है वह मुझे भी है।" देखिये कैसी ढिठाई है।

आज यहांपर मन्दाग्निकी चर्चा, डाक्टर ए. सी. बनरजी लिखित "इंडियन एजुकेशन" के एक परमोपयोगी लेखको देखकर की जाती है। उनका कथन है कि बंगालमें आधेसे ऊपर शिक्षित और उच्च पदाधिकारी किसी न किसी रूपमें अजीर्णसे पीड़ित होते हैं। जैसे जैसे अवस्था अधिक होती है क्लेश बढ़ता जाता है, परन्तु प्रायः

इस उत्पातका बीज विद्याभ्यासकालमें ही वपन होता है। यह रोग बड़ा ही हठी होता है। एक मरतबे जब इसका आक्रमण हो चुकता है तो जीवन पर्य्यन्त कुछ न कुछ गड़बड़ी लगी रहती है। स्वस्थ आदमियोंको, विशेषकर उन लोगोंको जो अधिकतर मस्तिष्कका काम किया करते हैं तथा व्यायाम और अंग संचालनका जिन्हें कम अवसर मिलता है, इस रोगसे बचे रहनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि उनकी पाचन शक्तिके बिगड़नेका बहुत भय रहता है।

डाक्टर बनरजीने इस रोगके कई कारण बताये हैं, जिनमें भोजन और विश्रामके लिये उपयुक्त समयका न होना, स्नानके उपरान्त तुरंत भोजन करना, चाय और कहवेका अधिक व्यवहार इत्यादि मुख्य हैं।

पीड़ितोंको नीचे दिये हुए नियमोंपर ध्यान देनेसे लाभ होगा—

१. यथा संभव दवाओंका व्यवहार न कीजिये।

२. जब क्रोध या किसी उद्वेगके वशमें हों तो भोजन न करिये। जब तब उपवास करना आपके लिये अच्छा होगा।

३. जो चीज़ें सहती हों वही खाइये, जो चीज़ें नहीं सहतीं उनसे हमेशा परहेज़ कीजिये। यह कहावत याद रखिये—"किसीको बेंगन ब्यालू किसीको बेंगन विष।" अपने अनुभवके अनुसार भोजनका परिमाण भी निश्चय कर लीजिये। कम हो तो हो, ज़्यादा न होने पाये।

४. जब आपको संदेह हो कि कुछ खायँ वा न खायँ तब न खाइये।

५. रातमें देर तक न जागिये। मंदाग्निवालोंको समयपर सो जाना और प्रातः ही उठना बड़ा गुणकारी होता है।

६. बिना अच्छी भूखके कभी न खाइये।

७. मिठाई बहुत थोड़ी खाइये। पानी भी कम पीजिये, खासकर भोजनके समय अधिक पानी न पीजिये।

८. जो भोजन कीजिये वह न अधिक उष्ण हो न ठंडा ही हो। गरमीके दिनोंमें बर्फका पानी व्यवहारमें न लाइये।

९. जो खानेकी चीज़ें आपको न रुचें दूसरोंके पुष्ट वा लाभदायक कहनेपर भी न ग्रहण कीजिये।

जलके जीवाणु

[ले०—श्रीयुत तेजशङ्कर कोचक, बी. ए. एस-सी.]

जलमें नाना प्रकारके जीवाणु पाये जाते हैं। जैसे स्थानका जल होगा, जैसे बर्तनोंमें रखा होगा और जैसी जैसी चीज़ोंसे उसका सम्पर्क होता रहेगा उसीके अनुसार भांति भांतिके जीवाणु जलमें होंगे। तलइयाओं और गड्ढोंके जलमें अधिक जीवाणु होते हैं। जिस तलइयामें नालेका पानी गिरता है उसमें और भी अधिक होते हैं। तलइयाके जलकी मिट्टी जब तहमें बैठती है तो उसके साथ अधिकांश जीवाणु तहमें बैठ जाते हैं और मिट्टीके छलक आनेपर जीवाणु भी जलमें फिर आ जाते हैं। गहरे कुएँकी अपेक्षा उथले कुएँके जलमें अधिक जीवाणु होते हैं। जिस कुएँमें जगत नहीं बँधी होती है और बाहरका पानी बहकर आता रहता है उसमें भी अधिक जीवाणु पाये जाते हैं। जो पानी सण्डास, मोरी, नाली इत्यादिके पास खुला रहता है या इनके पाससे होकर बहता है उसमें भी अधिक जीवाणु होते हैं। जो जल गन्दे स्थानोंपर बिना धोये मांजे बर्तनोंमें रखा जाता है और जो जल उँडेल कर नहीं निकाला जाता बल्कि लोटे गिलाससे हाथ डालकर निकाला जाता है उसमें भी अधिक जीवाणु हो जाते हैं। जिस जलमें जीवाणुओंको उचित अहार नहीं मिलता उसमें जीवाणु बहुत कम रहते हैं। साधारण दशामें जलमें आङ्गारिक पदार्थ जीवाणुओंके मुख्य अहार होते हैं। अब प्रश्न यह उठता है

Bacteriology जीवाणु शास्त्र]

कि जीवाणुओंकी कितनी संख्या होनेसे पानी पीनेके योग्य नहीं रहता। इसकी कोई संख्या तो नियत नहीं है पर साधारणतः जलका पेय या अपेय होना दो तरहसे निश्चित किया जाता है—

(१) जिस जलमें किसी रोगके जीवाणु मिलें, चाहे उनकी संख्या कितनी ही कम क्यों न हो, उसे काममें न लाना चाहिये।

(२) जिस पानीमें प्रतिघन सेंटीमीटर १०० या १०० से कम जीवाणु हों उसको बेखटके काममें लाना चाहिये, पर जिस जलमें सौसे अधिक और पांच सौसे कम जीवाणु हों उसे डरते हुये काममें लाना चाहिये और जिस जलमें इससे अधिक हों उसे छाने बिना काममें न लाना चाहिये। स्मरण रहे कि छाननेकी विधि वह नहीं है, जिससे हम कपड़ेसे शरबत इत्यादि छान लेते हैं। इस तरहसे छाननेसे जीवाणुओंकी संख्या घटती नहीं बल्कि बढ़ जाती है। छाननेकी रीति हम आगे चलकर वर्णन करेंगे। यहां तो हम जीवाणुओंकी जांच करनेकी विधिपर विचार करेंगे। इसकी बहुत रीतियां हैं। हम केवल एक सरल रीति बतलाते हैं। जिलाटीनको एक परखनलीमें गलाओ और जिस पानीकी जांच करनी हो उसकी कुछ बूंदें इस जिलाटीनमें डालकर नलिकाको खूब हिलाओ और तुरंत एक शीशेके दलपर फैला दो और इस दलको एक बरफ़के टुकड़ेपर रखकर ढक दो। जब जिलाटीन जम जाय तो पालन यंत्रमें रखकर जलकी नमीके सहारे उचित तापक्रमपर जिलाटीनमें जीवाणुओंकी वृद्धि करो। तीन दिनमें इनकी भली भांति वृद्धि हो जायगी। इसके पश्चात् दलको अणुवीक्षण यन्त्रके तले रखकर जीवाणुओंको जांचो। जांचनेकी रीति यह है कि पहले इनके गुच्छोंकी जांच करते हैं अर्थात् (colonies) कालोनीज़की संख्या गिनते हैं। फिर एक प्रकारके जितने गुच्छे होते हैं गिन लेते हैं। अन्तमें इनमेंसे एक गुच्छेमें जितने जीवाणु हों गिनकर यह मान लेते हैं कि उसी रूपके और जितने गुच्छे हैं उनमें भी उतने ही जीवाणु होंगे। इस भांति गुच्छोंकी संख्यासे एक गुच्छेमेंके जीवाणुओंकी संख्याको गुणा करके एक रूपके जीवाणुओंकी संपूर्ण संख्या लगभग जान लेते हैं। उदाहरण-मान लीजिये कि एक रूपके गुच्छे बीस हैं और उनमेंसे एक गुच्छेमें सौ जीवाणु हैं। पस सब गुच्छोंमें २० × १००=२००० जीवाणु हुए। इस रीतिसे ठीक संख्या तो नहीं मालूम होती पर अन्दाज लगा लिया जाता है। जीवाणुओंकी संख्या गिननेके लिए दलके ऊपर एक और दल जिसमें बहुत बारीक चारखाना कटा होता है रख लिया जाता है और इससे गिननेमें बड़ी सुगमता होती है।

जीवाणुओंकी संख्या गिननेके पश्चात् जिलाटीनमेंसे कुछ भाग लेकर स्वच्छ पानीमें डालकर पानीको एक दलपर सुखा लेते हैं और इसके पश्चात् जेनशियन वायोलेट (gentian violet) या और किसी रंगसे जीवाणुओंको रंगते हैं। यह भी जांच करनेकी बड़ी अच्छी रीति है, क्योंकि किसी जीवाणुपर रंग चढ़ता है, किसीपर नहीं चढ़ता और किसी जीवाणुपर कोई विशेष रंग ही चढ़ता है (कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ता)।

समुद्रके पानीमें भी जीवाणु होते हैं पर तटपर उनकी संख्या बहुत अधिक होती है और जितने ही भूमिसे दूर जाते हैं संख्या कम हो जाती है। समुद्रकी सतहपर वायु और सूर्यकी किरणोंकी नाश करनेकी शक्तिके कारण जीवाणुओंकी संख्या कम होती है। जो जल कि बिलकुल स्वच्छ और निर्मल होता है अथवा बहुत ही गंदा होता है उसमें रोगके जीवाणुओंकी संख्या बहुत कम होती है। जिस पानीमें कुछ खार होता है उसमें रोगके जीवाणु बहुत होते हैं। जिस पानीमें खट्टापन होता है (ऐसिड) उसमें रोगके जीवाणु बहुत कम होते हैं। निम्नलिखित रोग जलके जीवाणुओंके द्वारा प्रायः फैला करते हैं।

(१) (Typhoid) मोती झिरा

(२) कालरा—इसके जीवाणु थोड़ी ही खटाईसे मर जाते हैं।

पानीके स्वच्छ करनेकी रीतियां

(१) अगर नगरोंका कूड़ा करकट नदियोंमें नहीं डाला जाय तो उनका जल बड़ा स्वच्छ होता है। इसके कई कारण हैं—

(क) नदियां जब बहती हैं तो उनका पानी उलटता पलटता रहता है। इस कारण वायुकी ओषजनसे मिलता रहता है, जिससे जीवाणुओं-का नाश हो जाता है

(ख) सूर्य्यका प्रकाश भी जीवाणुओंको मारता है।

(ग) पानीमें काई इत्यादि जो पौदे पैदा हो जाते हैं, वह पानीमेंके आङ्गारिक पदार्थोंको अपने काममें ले आते हैं, जिससे उनकी मात्रा बहुत कम हो जाती है और जीवाणु भी कम हो जाते हैं।

(घ) पानीमें मिट्टी बालू इत्यादि जब तहमें बैठती ह, उनके साथ साथ जीवाणु भी तहमें बैठ जाते हैं।

(२) पानीमें खड़ियाकी बुकनी मिला देनेसे पानीमेंके आङ्गारिक पदार्थ तहमें बैठजाते हैं।

(३) पांच सेर पानीमें छः ग्रेन फिटकरी और छः ग्रेन खड़िया मिला देनेसे भी पानी साफ़ हो जाता है, परन्तु दूसरी और तीसरी रीति वहीं काम आ सकती है जहां बड़े बड़े हौज़ हों और पानी सूर्य्यके प्रकाश और वायुमें कुछ देर तक एकत्रित रखा जाता हो।

(४) थोड़ेसे जल छाननेके लिए सबसे अच्छी वस्तु बालू है। बालू बहुत महीन होनी चाहिये और इसमें पानी धीरे धीरे छनना चहिये। बालूको बदलते रहना चाहिये। जिस बालूकी तहमेंसे पानी छन रहा हो, ध्यानसे देखनेसे उसके ऊपर एक बहुत हलका मकड़ीका सा जाला फैला हुआ दिखलाई देगा। यह जाला बड़ा उपयोगी है। अधिकांश पानी इसीके द्वारा साफ़ होता है। इसको हरगिज न तोड़ना चाहिये। जब पुरानी बालू निकाल कर नई बालू रखो तो दो तीन दिन तक उसका छना पानी नहीं पीना चाहिये, क्योंकि नई बालूकी तहपर दो तीन दिनमें उपरोक्त जालेकी तह बनती है और इसके पश्चात् पानी साफ़ होना आरम्भ होता है। पानीको धीरे धीरे छानना चाहिये अर्थात् एक घंटेमें चार इंचसे अधिक न उतरना चाहिये।

(५) उबालनेसे पानी दस पांच मिनटमें बिलकुल साफ़ हो जाता है। यह अति उत्तम रीति पानी साफ़ करनेकी है पर उबालनेसे पानीमें से ओषजन निकल जाती है, जिससे पानीका स्वाद बिगड़ जाता है और पाचनशक्ति जाती रहती है।

पाचसर चेम्बर लेण्ड फिलटर

(६) (Pasteur Chamberland filter) यह चिकनी और चीनी मिट्टीका बना होता है। इससे अधिक अच्छा जलके छाननेका कोई यंत्र नहीं है। इसके द्वारा एक जीवाणु भी जलमें नहीं रहने पाता।

(७) बर्कफील्ड फिलटर (Berkfield filter) यह भी बहुत उत्तम छन्ना है परन्तु कुछ दिनोंके बाद यह काम नहीं देता।

बच्चोंके रोग

[ले०—पं० अयोध्या प्रसाद भार्गव]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

१२—कीड़ोंका पेटमें पड़ जाना।

पेटकी आंतोंमें ३ प्रकारके कीड़े पड़ जाते हैं-(१) (Ascaris or pin worms) एसकैरिस या पिनवोर्म्स (२) (thread worms or mow-worms) मोववोर्म्स (३) टेपवोर्म्स (tapeworm)

तीसरी प्रकारके कीड़ोंकी और दो जातियां हैं-

(१) टेनियालेटा जो तीन फुटसे ७ फुट तक लम्बे होते हैं और कभी साबित नहीं निकलते। (२) टेनियासोलियम जो ३० फट तक लम्बे होते हैं।

Hmœopathy होमियोपैथिक चिकित्सा]

यह आसान बात नहीं है कि शरीरके बाहिरी लक्षणोंसे कीड़ोंका होना पहचान लिया जाय, क्योंकि बहुतसे अन्य रोगोंमें भी वही चिह्न मिलते हैं जो कीड़ोंके पड़ जानेमें मिलते हैं। हाँ यदि कुछ कीड़े या कीड़ेका कोई हिस्सा बाहर निकले तो मान लेंगे कि पेटमें कीड़े ज़रूर हैं। अब यदि कोई औषध ऐसी दी जाय कि जिससे दस्त आयें और कीड़े निकल जायँ, जैसा कि ज़्यादातर हकीम डाक्टर करते हैं, मेरा तो ख़्याल है कि मरीज़ कमज़ोर हो जायगा और रोगका मूल कारण दूर न होगा। होमियोपेथीमें ऐसी दवाएँ दी जाती हैं जिनसे कीड़े मर जाते हैं और बाहर निकल जाते हैं इसलिए मरीज़को भी कोई हानि नहीं पहुंचती। कभी कोई ऐसी औषधि नहीं देनी चाहिये जिससे कोई भी ख़राबी उत्पन्न हो सके, क्योंकि ज़हरीली और तेज़ दवाओंके देनेसे उसी समय हानि होनेके अतिरिक्त बादको भी बच्चोंके हृष्ट पुष्ट रहनेमें रुकावट पड़ती है। यह तीनों प्रकारके कीड़े, अगर कुछ समय तक पेटमें रहें, तो तकलीफ़ तो ज़रूर देंगे, लेकिन, चूंकि इनके दांत नहीं होते, पेटमें ज़ख़्म न करेंगे और न बच्चेको मार ही डालेंगे। जो बच्चे बोल नहीं सकते उनको जब यह बीमारी होती है तो रोते हैं, चैनसे नहीं सोते, नाक कुरेदते हैं, खांसते हैं, कभी कभी बेहोश हो जाते हैं। हर मनुष्यके पेटमें थोड़े बहुत कीड़े रहते हैं, लेकिन जब तक कोई दूसरी बीमारी नहीं होती यह कीड़े अपनी जगह नहीं छोड़ते और कुछ तकलीफ़ नहीं देते।

लक्षण

(१) एसकैरिस या पिनवोर्म्स—जब यह कीड़े पेटमें हो जाते हैं तो शामको और रातको गुदामें खुजली मालूम होती है, पेशाब करनेमें तकलीफ़ होती है, कांखने और दर्दके बाद भी पूरे तौरपर पाखाना नहीं होता, पाखाने और मसाने या पेशाबकी जगहसे मवाद सा निकलता है, सोतेमें रोगी दांत किटकिटाता है।

(२) मोव-वोर्म्स—जब यह कीड़े पेटमें हो जाते हैं तो ऊपर लिखे चिन्होंके अतिरिक्त पेटमें दर्द रहता है जो ठंडा दूध पीने या मीठेकी चीज खाने या पीनेसे कम हो जाता है।

(३) टेपवोर्म्स—इनकी पहिचान यह है कि मनुष्यको कोई चीज़ बाईं तरफ़से नलेमें चढ़ती और उतरती मालूम होती है या किसी तरफ़ कोई चीज़ लहराती हुई चलती मालूम पड़ती है और चक्कर आते हैं—ख़ास कर खानेसे पहिले सवेरेके समय।

चिकित्सा

(१) ऐसकैरिस या पिनवार्म्स—यह कीड़े पाखाना निकलनेकी जगहके कुछ ही ऊपर रहते हैं। कभी कभी गुच्छेके गुच्छे हो जाते हैं, इनके लिए एकोनाइट और इगनेशिया या मरकरी और चाइना या कैलकेरिया कार्ब और फ़ैरम या सिना और सलफ़र प्रत्येक एक दूसरेके बाद, अर्थात् एकोनाइटके बाद इगनेशिया और इगनेशियाके बाद एकोनाइट हर दूसरे दिन शामको देना चाहिये।

दूसरा इलाज यह है कि शामको १ औंस मीठा तेल गुदामें पिचकारीसे डाल दिया जाय। थोड़ी देर बाद कीड़े जीते या मरे हुये निकल आयेंगे।

(२) मोववोर्म्स—जब यह कीड़े पड़ जायँ तो

(क) पेटका दर्द और बुखार रहनेपर—सिना, एकोनाइट, बैलेडोना, ह्यौसिमस, मरकरी, देना चाहिये।

(ख) यदि दर्दके साथ ऐंठन हो तो सिना, बलेडोना, ह्यौसिमस देना चाहिये।

(ग) अगर दर्दके साथ दस्त आते हों और भूक अधिक लगती हो तो सिपजिलिया, नक्सवोमिका देना चाहिये।

(घ) अगर बुख़ार हो तो एकोनाइट, सिलिसिया देना चाहिये।

(च) अगर रातको दस्त अधिक आते हों, लेकिन पाखाना थोड़ा थोड़ा होता हो और बच्चेका मुंह पीला पड़ता जाय तो नक्स देना चाहिये।

नोट—बच्चोंकेलिए एक सालकी उम्र तक एक छोटी गोली

इसके पश्चात् ८ साल तक ३ गोली, फिर ६ गोली एक खुराकमें देनी चाहियें।

मीठी चाज़ें, दूध, आलू, और मांस इस मर्ज़वाले बच्चोंको न देना चाहिये। नमकीन और अच्छा पका हुआ खाना जो जल्दी पच सके देना चाहिये।

(३) टेपवोर्म्स—बहुत कम पड़ते हैं इसलिए यहाँपर इनके विषयमें विस्तारसे नहीं लिखा गया। प्रायः इनका भी इलाज मोववोर्म्सकी भांति किया जाता है।

१३—बिछौनेमें पेशाब कर देना।

इस मर्ज़को सुलसुलबौल कहते हैं। यह बच्चोंकी आँतोंकी ख़राबी, मसानेकी ख़राबी, कमज़ोरी, पेटमें कीड़े पड़ जाने, मसानेके मुंहके पट्ठोंके सुकड़ने और कई अन्य कारणोंसे हो जाता है।

अगर लड़कियोंको यह बीमारी हो तो रातके वक्त ३ छोटी गोली सीपिया एक हफ़्ते तक बराबर देते रहें। इसके बाद एक हफ़्ता नागा करके फिर यही दवा देने लगें। अगर लड़कोंको यह बीमारी हो तो नक्सवोमिका की ३ छोटी गोलियां रातको दी जायँ। अगर सात दिनमें फ़ायदा न हो तो कैलकेरिया और सलफ़र सवेरेके वक्त सात दिन तक दिया जाय। अगर इन दवाओंसे कुछ फ़ायदा न हो तो पेशाब की जाँच करायी जाय और जब यह मालूम हो जाय कि बीमारी होनेका क्या कारण है तो किसी डाक्टरकी सलाहसे इलाज किया जाय।

शरीरके रासायनिक तत्व।

[ले०—डा० बी. के. मित्र, एल. एम. एस.]

पिछले लेखमें हम शरीरके भिन्न भिन्न उपादान बता चुके हैं और यह भी दिखा चुके हैं कि वे सबके सब, दूधमें मौजूद हैं और उसमेंसे निकाले जा सकते हैं। वे पांच प्रकारके हैं अर्थात् (१) मांस जातीय (पनीर) (२) शर्करा जातीय (दुग्धशर्करा) (३) मेद जातीय (घी) (४) लवण जातीय (खोयेको जलानेसे जो राख बचती है) (५) और जल।

Physiology शरीर शास्त्र]

परन्तु उपरोक्त पदार्थोंको शरीरके उपादान कहनेपर भी रासायनिक "तत्व"* नहीं कह सकते। जलको लीजिये, यदि आप इसके अन्दर विशेष रीतिसे विद्युत्धारा चलायें तो जल टूटकर दो ऐसी गैसें (ओषजन और उज्जन) बन जाती हैं, जिनको हम फिर नहीं तोड़ सकते हैं। जल जो कि दो अन्य सरल पदार्थोंसे बना हुआ है उसको हम आजकलकी रासायनिक परिभाषामें तत्व न कहकर यौगिक पदार्थ कहते हैं। इसी तरह जो शरीरके अन्दर भिन्न भिन्न लवण हैं उनको रासायनिकोंने विश्लेषण करके देखा है कि उनके अन्दर कितने ही प्रकारकी धातु जैसे सोडियम, कैलसियम, मैगनीसियम, लोह और कितने ही प्रकारकी अधातु जैसे क्लोरीन, फास्फोरस आदि सम्मिलित हैं। शरीरके दो उपादान, जल और लवण जड़ जगतमें ही अधिकतर मिलते हैं, इसलिए इनको अजैव या अनाङ्गारक कहते हैं। परन्तु इनका विशेष लक्षण यह है कि इनको तपानेसे कारिख नहीं बचती अर्थात् यह अङ्गार या कर्बन रहित हैं।

बाकी उपादानोंमें (पनीर, शर्करा, और घी) सबमें कर्बन मौजूद है, जैसा कि आगपर तपानेसे मालूम हो सकता है। ऐसे पदार्थ अधिकतर चैतन्य जगतसे ही प्राप्त होनेके कारण अङ्गारक या जैव कहलाते हैं।

यद्यपि यह तीनोंके तीनों जैव हैं अथवा कर्बनके जटिल यौगिक हैं। तथापि इनका भेद

---

* प्राचीन पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, और आकाशको पांच महातत्व कहते थे, परन्तु आधुनिक रासायनिक इस संज्ञा को एक और अर्थमें व्यवहार करते हैं।

प्रत्यक्ष मालूम होता है। हम इनको पूर्व व्याख्यान-में एक सामान्य परीक्षा द्वारा भी प्रकट कर चुके हैं, यथा--घी सुगमतासे जलता है और जलनेमें कोई दुर्गन्धि नहीं देता, शर्करा घीकी तरह नहीं जल सकती है और उससे भी कोई दुर्गन्धि नहीं निकलती, पर पनीर आदि मांस जातीय पदार्थों-के जलानेमें एक तीव्र दुर्गन्ध मय वायु निकलती है, जिसका प्रधान भाग अमोनिया है। अमोनिया-के अन्दर नत्रजन और उज्जन सम्मिलित रहती हैं।

घी वा मोमकी बत्तीको यदि आप किसी कांचके वायुघटके अन्दर जलावें तो देखेंगे कि तुरन्त ही उसके किनारोंपर जलकण जम जाते हैं और यदि बादमें घटके अन्दर स्वच्छ चूनेका पानी डालकर हिलायें तो वह दूधिया हो जाता है। साधारण वायुसे पूरित वायु घटके अन्दर चूनेका पानी डालकर हिलानेपर ऐसा दूधिया नहीं बनता। रासायनिकोंने सिद्ध किया है कि घृतादि पदार्थोंके जलानेसे दो पदार्थ पैदा होते हैं, एक जल जो आप प्रत्यक्ष देखते हैं और दूसरा एक अदृश्य वायु जो चूनेके पानीको दूधिया करती है, और कर्बनद्विओषिद कहलाती है। इसी प्रकार शर्कराके जलानेसे भी यही दो पदार्थ बनते हैं, परन्तु उसमें कर्बन ज़्यादा होनेसे कुछ कारिख बच जाती है। इन दोनों पदार्थों (घी और शर्करा) में तीन रासायनिक तत्व होते हैं अर्थात् कर्बन, ओषजन, और उज्जन। घीमें उज्जनकी मात्रा अधिक और ओषजनकी कम होती है। इसी कारण घी तेज़ीसे जलता है। पनीरके अन्दर उपर्युक्त तीन तत्वोंके अतिरिक्त एक चौथा मौलिक पदार्थ नत्रजन भी रहता है जोकि जलने-से तीव्र गन्धित अमोनिया रूपमें निकलता है।

अब हम देखेंगे कि यही उपादान शरीरके अन्दर किस तरहसे बदलकर मल आदिमें निकलते हैं। शरीरके प्रधान मल, मल, मूत्र, स्वेद और प्रश्वास हैं। विष्ठा द्वारा भोज्य पदार्थों-के वह अंश निकल जाते हैं, जो पचाये नहीं जा सकते।

पहिले श्वासको लीजिये। यदि आप एक कांचकी बोतलका हुक्का बनालें और बोतलमें थोड़ा सा स्वच्छ चूनेका जल डालकर मुंहनालसे हवा खैंचें तो देखियेगा कि चूनेका जल वैसा ही स्वच्छ रहता है। पर यदि चिलमके रखनेके स्थानसे फूंकें तो वह तुरन्त ही दूधिया हो जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि प्रश्वासके द्वारा भी वही कर्बनद्विओषिद वायु निकलती है जो कि मोम-बत्तीके जलानेसे पैदा होती है। किसी ठंडे शीशे-को नाकके सामने थामिये, उसपर तुरन्त ही जल कण जम जायेंगे, जोकि मोमबत्तीके जलानेसे भी पैदा होते हैं। यह दोनों प्रकारके मल शरीरके अन्दर अधिकतर घृत और शर्करासे पैदा होते हैं। स्वेदके अन्दर कई प्रकारके लवण जलमें घुले रहते हैं। मूत्रमें भी अधिकतर एक जैव लवण (यूरिया) जलमें घुला रहता है। यह मूत्र लवण मांसजातीय (नत्रजनीय) पदार्थोंसे ही उत्पन्न होता है। आपने देखा होगा कि सूखी मोरियों वा सड़कके पेशाब ख़ानोंमेंसे जो कम धुलते हैं एक तरहकी तेज़ धांस निकलती रहती है। यह धांस अधिकतर अमोनियाकी ही है जो मूत्र लवणसे उत्पन्न होता है।

सारांश यह है कि जो तीन प्रकारके प्रधान जैव पदार्थ हम खाते हैं यथा—मांस, मेद और मण्ड जातीय यह सबके सब शरीरके अन्दर पच कर भिन्न भिन्न क्रियायें करते हैं और इनका मल अधिकतर मूत्रलवण (नत्रजन उज्जन ओषजन और कर्बनका एक यौगिक), कर्बन द्विओषिद् (कर्बन और ओष जनका यौगिक और जल (उज्जन और ओषजनका यौगिक) इन तीन आकारोंमें परिणत होकर निकल जाते हैं।

यह पदार्थ (कर्बन, ओषजन, उज्जन और

नत्रजन) चारो मौलिक वा तत्व हैं, जिनसे हमारे शरीर वा भोज्य पदार्थोंके उपादान अधिकतर बनते हैं।

दूधमें विकार पैदा करनेवाले जीवाणु और उनके दूर करनेकी विधि

[ले०—श्रीयुत राधानाथ टण्डन, बी. एस-सी., एल. टी.]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

दूधके बैक्टीरिया

जैसा पहले कहा जा चुका है बैक्टीरियाकी उत्पत्ति भोज्य पदार्थोंकी उपस्थितिपर ही निर्भर है, विशेषतः उन भोज्य पदार्थोंपर जिनमें नत्रजनकी अधिकता हो। यों तो बैक्टीरिया प्रायः सभी नत्रजनीय पदार्थोंमें थोड़े बहुत पाये गये हैं, पर दूधमें यह अधिकांश पाये जाते हैं, क्योंकि दूधमें नत्रजनीय पदार्थोंका अंश अधिक रहता है। देर तक रखे हुए दूधमें बैक्टीरिया अधिक होते हैं। हालके दुहे हुये दूधमें यह बहुत कम या बिलकुल नहीं होते। जब तक दूध थनमें रहता है तब तक बैक्टीरिया रहित होता है। दूधकी ग्रन्थियोंमें (mammary gland) कोई रोग हो तो दूसरी बात है। इस कथनकी जांच पासचरने (Pasteur) एक स्वच्छ कीटाणु-रहित कांचकी नलीमें दूध दुहकर की। साधारणतः हमारे देशमें दुहे हुये दूधमें अणुवीक्षण द्वारा बहुत बैक्टीरिया दिखाई देते हैं। यह बैक्टीरिया इतने शीघ्र कहांसे आजाते हैं? पाठको, इसका मूल कारण हमारे दूध दुहनेवालोंके दूध दुहनेके बर्तन हैं। खेदकी बात है कि जिस देशके लोग शताब्दियोंसे नेम धर्म और सफाईके लिए विख्यात चले आए हैं और जहां कि छुआ-छूतका झगड़ा अब भी किसी किसी प्रांतमें इतना है कि खून खराबा तक हो जाता है, उसी देशके लोग मैले कुचैले बर्तनोंमें दूध

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

दुहें। इस पापका परिणाम यह है कि आज सैकड़ों बच्चे केवल दूध पीनेसे ही मर जाते हैं। बात वास्तवमें यह है कि आजकलके लोगोंने छुआ छूतका वास्तविक मर्म नहीं समझा। यदि समझा होता तो ऐसी उदासीनता बर्तनोंके सम्बन्धमें न दिखलाते। बर्तन ज़मीनपर लुढ़क रहे हैं, गोबर भी लग गया है पर लोग इस बातपर ध्यान न देकर उन्हीं बर्तनोंमें दूध दुह लेते हैं। इस विषयमें हमको पाश्चात्य देशोंसे शिक्षा लेनी चाहिये। वहांके लोग बर्तनोंको साफ़ करनेके बाद उन्हें गर्म भापमें मिनटों तपाते हैं और तब उनमें दूध दुहते हैं। दूध दुहनेके लिए रांगके बर्तन काममें लाते हैं, क्योंकि और धातुओंकी अपेक्षा रांग आसानीसे साफ़ हो जाती है। हमारे यहां किसी किसी गांवमें "वही रफतार बेढ़ंगी जो पहले थी सो अब भी है" के अनुसार लकड़ीके बर्तनोंमें ही दूध दुहते हैं। ऐसे लोग बड़ी भूल करते हैं, क्योंकि लकड़ीके बर्तन बहुत जल्द मैले हो जाते हैं और उनका साफ़ करना कठिन है। ऐसे बर्तनोंमें कभी दूध नहीं दुहना चाहिये। बहुधा गौओंके थनमें धूल या गोबर, जिसमें बैक्टीरिया अधिक होते हैं, लग जाता है। दुहते समय इनके कण दूधमें गिर पड़ते हैं, जिससे दूधमें अगणित बैक्टीरिया फैल जाते हैं। अतः दुहनेके पहले गौओंके थनको धो लेना चाहिये। पहले दुहे हुए दूधमें बैक्टीरिया सदा पाये जाते हैं, क्योंकि दुहनेके बाद थोड़ा दूध थनाग्रमें रहता है और वायु लगते ही जीवाणु उसमें प्रवेश कर जाते हैं। यही जीवाणु दूसरे समय दुहनेपर दूधमें आ जाते हैं। डाक्टर शल्ट्ज़ (Dr Schultz) ने प्रयोगोंसे सिद्ध किया है कि पहले दुहे हुये दूधमें प्रति घन इञ्च १३६०००० जीवाणु होते हैं। पीछेसे दुहे हुये दूधमें बिलकुल नहीं होते, क्योंकि जो कुछ बैक्टीरिया पहलेसे थनाग्रमें रहते हैं वह सब पहली बार दुहनेमें निकल जाते हैं।

दूध दुहनेवालेके हाथ दुहनेके समय बिल-

कुल साफ़ होने चाहियें। बहुतसे ग्वाले दुहनेके पहले हाथोंको दूधकी धारसे धो लेते हैं। इससे कोई विशेष लाभ नहीं। इसके बदले यदि वैसलीन (vaseline) हाथोंमें रगड़ लिया करें तो अच्छा हो। इससे किसी तरहकी गंदगी हाथोंसे छुटने नहीं पाती। इन पूर्वोपायोंका महत्व इसी बातसे प्रकट होता है कि दुहते समय इन नियमोंके पालनसे जीवाणुओंकी संख्या बहुत ही घट जाती है। दूधमें बैक्टीरिया अधिक होनेसे दूध देर तक नहीं रखा जा सकता और यदि रखा जाय तो इन जीवाणुओंके कारण फट जाता है। यही कारण है कि दूध दुहनेके समय बड़ी सफ़ाई रखने की आवश्यकता है। सफ़ाईके साथ दुहनेसे दूध अधिक समयतक बिना बिगड़े हुये रखा जा सकता है। इस अभिप्रायकी सिद्धिके लिए इन दो बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है।

(१) अपने हाथोंको दुहते समय साफ़ पानीसे धो लेना चाहियें। यदि साबुन और गर्म पानीसे धोये जायँ तो और भी अच्छा है।

(२) दुहनेके पहले गौओंके थनोंको पानीसे अच्छी तरह धोकर स्पंज (sponge) या साफ़की हुई रुईसे सुखा दें ताकि दुहते समय पानीकी एक बूंद भी दूधमें न टपकने पावे। इन बातोंका ख़याल रखनेसे दूध हज़ारों जीवाणुओंके आक्रमणसे बच जाता है। दूधमें नीचे दिये हुए दो तरहके बैक्टीरिया पाये जाते हैं:—

(१) खास दूध बासो बैक्टीरिया अर्थात् वह बैक्टीरिया जो दूधके अतिरिक्त और पदार्थोंमें बहुत ही कम मिलते हैं।

(२) साधारण बैक्टीरिया अर्थात् वह बैक्टीरिया जो यद्यपि दूधमें बहुधा पाये जाते हैं, पर और पदार्थोंमें भी पाये जाते हैं। यह अकस्मात दूधमें प्रवेश करते हैं। ऐसे, आकस्मिक बैक्टीरिया यदि किसी रोगके हों तो सावधान होकर इनके दूर करनेका यत्न करना चाहिये, नहीं तो दूध पीनेसे रोग होनेका डर रहता है।

(१) दूधवासी बैक्टीरिया

दूधमें जितने प्रकारके परिवर्तन नित्यके जीवनमें देखनेमें आते हैं वह सब विशेष जातिके बैक्टीरिया द्वारा सम्पादित होते हैं। अतएव यदि दूध न बिगड़ने देकर हानिसे बचना चाहते हों, तो इन बैक्टीरियाका हाल अवश्य जानिये। दूधके कई प्रकारके बैक्टीरिया और उनसे उत्पन्न होने वाले किण्वोंका वर्णन नीचे दिया जाता है: –

१—तक्र-किण्व अर्थात् छाछ-खमीर

यदि ताज़ा दूध कुछ समयतक रखा जाय तो उसका दही जम जाता है। और उसमें एक प्रकारका अम्ल पैदा हो जाता है। दूधसे दही बनाना छाछ-जीवाणु (लैकटिक बैक्टीरिया) का काम है। यह बात सब जानते हैं कि दूधमें एक विशेष दर्जेका खट्टापन आ जानेसे ही दही बनने लगता है। यह खट्टापन (लैक्टिक अम्ल) छाछाम्लका ही गुण है, जिसको छाछ-जीवाणु बनाते हैं। इस अम्लके अधिक हो जानेसे दूध दहीमें परिवर्तित हो जाता है। इन बैक्टीरियाकी एक जाति लैकटि बैसली (Lactic bacilli) कहलाती है। इसकी वृद्धि १०°श और ४५°श के भीतर होती है। ३५°श पर इनकी वृद्धि बड़े वेगसे होती है। ताज़ा दूधमें छोड़ देनेसे २५°श से ३०°श तक के तापक्रमपर कुल दूध १५ घन्टेमें दही हो जाता है।

लैक्टिक बैक्टीरियामें बीज नहीं बनते, इसलिए इनमें प्रतिरोध शक्ति भी कम होती है। यह ७०° शके तापक्रमकी गर्मीसे तुरन्त मर जाते हैं। दुग्धशालामें यह बैक्टीरिया बड़ी हानि पहुंचाते हैं, क्योंकि इनसे दूध आपसे आप दही हो जाता है। और जातिके लैक्टिक बैक्टीरिया पनीर (Cheese) बनानेमें बाधा डालते हैं।

२—कैसीन किण्व (Casein Ferments —दूसरे प्रकारके बैक्टीरिया वह हैं जो दूधका एक दूसरे

प्रकारसे दही बनाते हैं। लैक्टिक बैक्टीरियाकी तरह यह लैक्टिक अम्ल नहीं बनाते। इस प्रकारका एक जीवाणु ३७°श पर अपनेसे ३० गुनेवज़न के दूधको ११ मिनटमें दही बना देता है। यह बीज-वाले जीवाणु हैं। इनमें सहनशक्ति बहुत होती है। यह अधिक गर्मी पहुंचानेपर भी जोवित रहते हैं। यह ११५°शसे १२०°श तककी गर्मी पहुंचने पर २ मिनट तक जीवित रहते हैं। इन्हीं बैक्टीरियाके कारण दूधको जीवाणु रहित करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है।

नीचे लिखे हुए विकार भी विशेष बैक्टीरिया द्वारा ही पैदा होते हैं:—

नीलादूध
लालदूध
पीलादूध
खट्टादूध

(२) रोग पैदा करनेवाले बैक्टीरिया

डाक्टरोंने इस बातको पूरी तरहसे सिद्ध कर दिया है कि दूध द्वारा बहुतसे रोग मनुष्योंमें फैल सकते हैं। इनमें सबसे साधारण रोग क्षय-रोग (Tuberculosis) है। लण्डनमें परीक्षा करने पर फी सैकड़ा ५ दूधके नमूनोंमें क्षयरोगकी शलाका (tubercle bacilli) पायी गई। इन जीवाणुओंका अन्वेषण १८८२ में राबर्टकोहने किया था। इनमें एक विचित्र बात यह है कि ३०°श और ४०°श के भीतर ही भीतर इनकी वृद्धि होती है। अतः यह ठण्ड और धूपसे जल्दी मर जाते हैं। महामारी हैज़ा आदि रोगोंकी तरह यह रोगभी शरीरके भीतर जीवाणुओंकी संख्या न्यूनाधिक होनेसे होता है। जब शरीरमें शलाकाओं-(bacilli) की संख्या अधिक होती है तो रोग बड़े वेगसे बढ़ता है। व्यवहारमें इन शलाकाओंसे हानि इस बातसे कम पहुंचती है कि कई गौओंका दूध मिलाकर बेचा जाता है, जिससे दूषित दूध अच्छे दूधमें मिल जाता है और उसका असर शरीरपर बहुत कम होता है। यद्यपि शलाकामय दूधसे प्रायः क्षयरोग नहीं होता तो भी स्वास्थ्य बिगड़नेका इससे बड़ा भय रहता है। ऐसे बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जहां बच्चोंको क्षयरोग दूषित दूधके सेवनसे हो गया है। क्षयरोग शलाकाएं दूधसे निकले हुए पदार्थोंमें बहुत देर तक रह सकती हैं। एक महीनेके बाद उनकी संख्या इतनी घट जाती है कि फिर उनसे किसी तरह की हानि पहुंचनेका भय नहीं रहता। दूधको काममें लानेके पहले उबाल लेनेसे बैसली मर जाते हैं। अतः उसको सदा उबाल कर पीना अच्छा है।
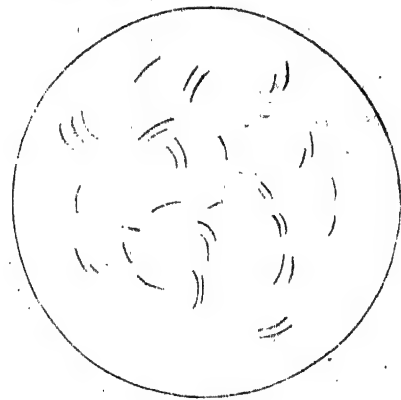
चित्र ३

अणुवीक्षण द्वारा देखा गया क्षयरोग-शलाका का चित्र

(Typhoid bacilli) टाइफोइड बैसली

मोतीझिरा (typhoid fever) बहुधा जल द्वारा फैलता है। दूध दही आदिके बर्तनोंको दूषित जलसे धोनेपर जलके जीवाणु दूधमें पहुंच जाते हैं। फ्रांसके डाक्टर जैकोके मतानुसार मोतीज्वर १०० रोगियोंमें कमसे कम १७ को दूधके सेवनसे हो जाता है। मक्खन और पनीरमें मोतीझिरेकी शलाकाएँ ५ दिनसे ८ दिनतक जीवित रहती हैं।

डिपथीरिया (Diphtheria) बैसली

डिपथीरिया शलाकाएँभी एक तरहके रोग संचारी जीवाणु हैं जो बहुधा दूधमें प्रवेश कर

जाते हैं। बहुतसे बच्चे डिपथीरिया शलाका द्वारा दूषित दूधके पीनेसे रोगी हो कर मर जाते हैं। स्कूलके विद्यार्थियोंमें भी यह रोग बहुधा देखा गया है। सोर थ्रोट (Sore throat) की बीमारी डिप-थीरिया बैसिली द्वारा ही पैदा होती है यह बैसिली वायु द्वारा और लोगोंके शरीरमें प्रवेश कर रोग पैदा कर देते हैं। अतः स्कूलके किसी विद्यार्थीको यदि यह रोग हो जाय तो तुरन्त उसका उपाय करना चाहिये, ताकि रोग और विद्यार्थियोंमें न फैल जाय।
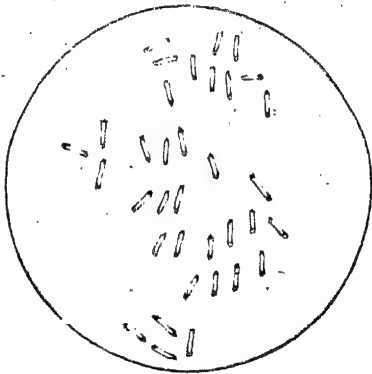
चित्र ४–डिपथीरिया-शलाका

हैज़ेकी शलाकाएँ (Cholera bacilli)

पाठको, आपने हैज़ेका नाम तो अवश्य सुना होगा। यहां उसी हैज़ेकी शलाकाओंका वर्णन है, जिसके प्रकोपसे प्रतिवर्ष मनुष्य पीड़ित हुआ करते हैं। यह रोग भी शलाकार जीवाणुओंसे पैदा होता है। इन्हीं जीवाणुओंकी कृपासे हज़ारों मनुष्य प्रति वर्ष मर जाते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि भोज्य पदार्थोंके द्वारा ही मनुष्य-में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दूधमें कालरा बैसिली (Cholera bacilli) के प्रवेश कर जानेसे और रोगोंकी तरह कालरा हो जानेकी भी बड़ी सम्भावना होती है, क्योंकि प्रयोगोंमें कालराके बैसिली भी दूषित दूधमें पाये गये हैं। पर एक विचित्र बात इनके सम्बन्धमें यह है कि कच्चे दूधमें यह २४ घंटेसे अधिक नहीं रह सकते, क्योंकि छाछजीवाणु द्वारा पैदा किये गये छाछाम्लसे यह नष्ट हो जाते हैं। गरम किये हुए दूधमें कालराके बैसिली बड़ी प्रचुरतासे फैलते हैं क्योंकि इनके बैरी दूध उबालनेपर इनके पहले ही मर जाते हैं। बहुधा दूध पीनेके बाद जो प्राणघातक परिणाम देखनेमें आता है वह कालरा बैसिलीसे पैदा हुए विष पदार्थसे ही होता है।
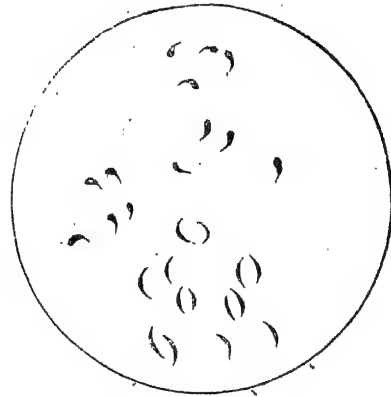
चित्र ४–हैज़ेके शलाका-जीवाणुका (Cholera bacilli) सूक्ष्मदर्शकद्वारा देखा गया चित्र

दूधमें विकार पैदा करने वाले जीवाणुओंके दूर करने की विधि-बैक्टीरियाके गुणोंसे परिचित होनेके लिए इतना कहना पर्याप्त होगा। इतनेसे ही भली भांति समझमें आजायगा कि बैक्टीरिया अनेक रोगोंके मूल कारण होते हैं और हमारे स्वास्थ्य-को बिगाड़ देते हैं। अब इन प्राणघातक बैरियोंके नाश करनेके कुछ उपायोंपर विचार करना चाहिये। बैक्टीरियासे दूधकी रक्षा रासायनिक पदार्थों द्वारा अच्छी तरह हो सकती है। नीचे लिखे हुए रस साधारणतः व्यवहारमें लाये जाते हैः—फर्मलीन (Formalin), सेलिसिलिक अम्ल (Boracic acid) सोहागा अम्ल, (Benzoic acid) उज्जन द्विओषिद (Hydrogenperoxide), सोडा और चूना। हालकी खोजोंसे पता चला है कि इन रासायनिक पदार्थोंसे शरीरके तन्तुओंको हानि

पहुंचती है, इसीसे कुछ आधुनिक वैज्ञानिकोंने इन पदार्थोंके व्यवहारका विरोध किया है।

पासचरकी रीति

पासचरका नाम बहुधा मदिरा सम्बन्धी बातोंमें सुना जाता है। मदिरा बनानेकी आधुनिक रीतियां इन्हींकी निकाली हुई हैं। फेन (खमीर) सम्बन्धी अन्वेषणोंसे पासचरको इस बातका ज्ञान हुआ कि मदिरा को ६०° श तक गरम करनेसे इसके बहुतसे अवगुण दूर हो जाते हैं। इसी रीतिसे उसने दूध भी शुद्ध करना चाहा। उसने अनुभव किया कि ऐसा करनेसे न केवल दूधके बहुतसे अवगुण दूर हो जाते हैं वरन् उसमें देर तक ठहरनेका भी गुण आ जाता है। इस विधिसे दूध जिस तापक्रमतक गरम किया जाता है वह तापक्रम उन जीवाणुओंको जिनसे दूध मलाई आदि खट्टे पड़ जाते हैं नष्ट कर देनेके लिए पर्याप्त है। जो जीवाणु बच रहते हैं वह फिर इतने वेगसे नहीं बढ़ने पाते।

इस रीतिकी परीक्षा कई प्रयोगों द्वारा हो चुकी है। कुछ वैज्ञानिकोंके मतानुसार इस रीतिसे शुद्ध किया हुआ दूध यदि १२°श से १४°श तकके तापक्रमपर रखा जाय तो ४० घंटा अधिक ठहर सकता है। पासचरकी रीतिसे दूध शुद्ध करनेके लिए एक ऐसे बर्तनका व्यवहार होता है जिसमें दूध भाप द्वारा ७१°श तक २० मिनिट गरम किया जाता है। इस बर्तनमें एक मथनी होती है, जिससे दूध बराबर चलाया जाता है। दूध न जलने ही पाता है और न उसका स्वादही बदलता है। इस रीतिसे न केवल क्षयरोग के (tuberculosis) बल्कि और रोगोंके बैक्टीरिया भी भस्म हो जाते हैं।

पासचरकी रीतिसे दूध शुद्ध करनेके सबसे अच्छे यंत्रका चित्र नीचे दिया जाता है:—
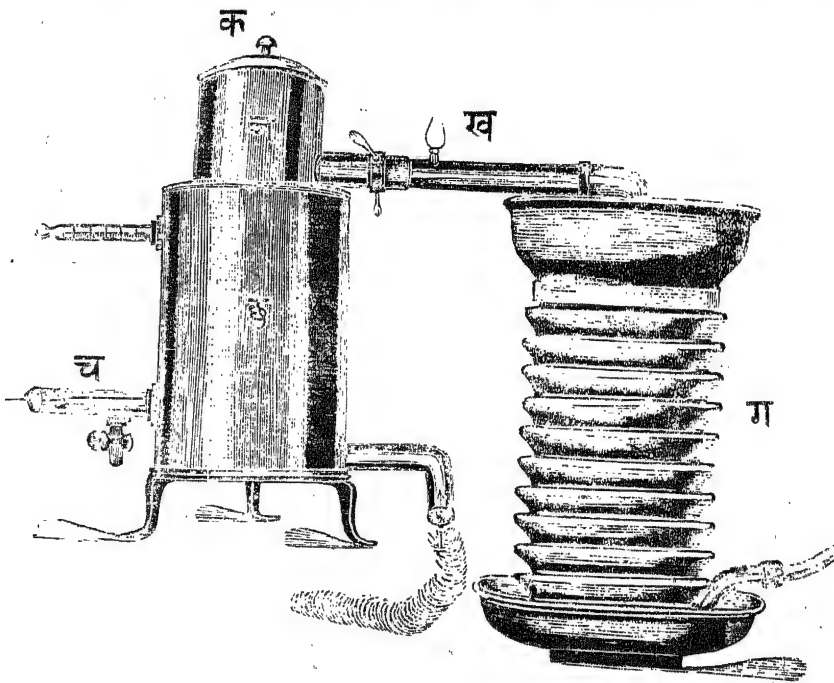
चित्र ६—दूध शुद्ध करनेका यंत्र

क ढक्कनको उठाकर दूध ज में भर दिया जाता है। फिर भाप छ बर्तनमें प्रवेश करती है और १५ या २० मिनट दूध ७७° श तक गरम होता है। उसके बाद बिना ढक्कन उठाए हुए ख नलीको खोल देते हैं, जिससे दूध निकलकर ग में आजाता है। गरम होनेके बाद ही दूधको तुरन्त ठन्डा कर दिया जाता है, जिससे औटानेकी गन्ध न आने पावे। ठन्डा करनेके लिए एक विचित्र रूपका बर्तन ग, जैसा चित्रसे ज्ञात होता है, प्रयोग करते हैं। इस बर्तनसे निकलनेके बाद दूध भापसे शुद्ध किये हुए बर्तनोंमें भर लिया जाता है।

इस गोलाकार बर्तनसे विशेष लाभ यह है कि यह जगह जगहपर उभरा हुआ होता है, जिससे इसका बाहरी तल साधारण बर्तनोंके तलसे दुगना हो जाता है और परिणाम यह होता है कि दूध और बर्तनोंकी अपेक्षा इसमें आधे ही समयमें ठण्डा हो जाता है।

दूधके शुद्ध करनेकी दूसरी विधि

इस विधिमें दूध १००° श के ऊपर तक गरम किया जाता है, जिससे दूधके कुल बैक्टीरिया और बीज नष्ट हो जाते हैं। यूरोपमें कहीं कहीं तो दूधको १००°श से ऊपर तक गरम करते हैं और किसी स्थानमें उसको धीरे धीरे गरम और ठण्डा करते हैं। धीरे धीरे गरम और ठण्डा करनेसे अधिक लाभ होता है। इससे दूधमें कोई विकार नहीं उत्पन्न होता और न दूधका स्वाद ही बदलता है।

पहले कहा जा चुका है कि बच्चों और बालकोंके स्वास्थ्यपर दूधका ही अधिकतर प्रभाव पड़ता है। दूध ही इनका मुख्य भोजन है। अतः यह परम आवश्यक है कि दूध शुद्ध और हानिकारक बैक्टीरियासे मुक्त हो। इस विचारसे यह उचित जान पड़ता है कि इस विषयको समाप्त करनेके पहले गृहस्थियोंके योग्य एक सरल यंत्रका वर्णन यहांपर कर दिया जाय।

सबसे पहली बात इसके सम्बन्धमें ध्यान देने योग्य यह है कि दूधके लिये सदा स्वच्छ बोतलें रखनी चाहियें। भोजनके लिये धातुके बर्तनोंकी अपेक्षा चीनी या कांचके बर्तन वैज्ञानिक दृष्टिसे अच्छे समझे जाते हैं। यूरोपवाले प्रायः चीनी या कांचके बर्तनोंमें ही भोजन करते हैं। धातुके बर्तनोंकी अपेक्षा ऐसे बर्तन अधिक स्वच्छ होते हैं और बहुत जल्द साफ हो जाते हैं। एक और लाभ ऐसे बर्तनोंसे यह है कि इनमें प्रायः हर प्रकारके भोज्य पदार्थ रखे जा सकते हैं, पर धातुके बर्तनोंमें रखनेसे कुछ खाद्य विषैले हो जाते हैं। इस देशकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं कि यूरोपकी नकल की जाय, पर बहुतसे सरल नियम ऐसे हैं जिनका पालन करना बहुत आसान है।

दूध आनेके पहले साधारण शरबतकी बोतलोंको अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये। ज्योंही दूध दुहकरआये बोतलोंमें भरकर डाट लगादें। डाट और दूधके बीचमें २ इञ्च जगह छोड़ देनी चाहिये। यह डाट रबड़की होती है। वायु और गैसोंके निकलनेके लिये इसमें अलुमिनमकी (aluminium) एक नली ख होती है, इस नलीके ऊपर एक बारीक सूराख क होता है जिससे वायु स्वयम् दबावके बलसे बाहर निकल जाती है। बोतलमें डाट लगाकर एक ढक्कनदार बर्तनमें रख देते हैं। ढक्कन ज्योंका त्यों बन्द कर दिया जाता है और बर्तनको १००°श तक गरम कर पौन घंटेतक उसी तापक्रमपर रखते हैं। उसके बाद बोतलोंको निकालकर एक ठण्डी जगहमें रखते हैं। ठंडा होनेपर भीतरकी भाप जम जाती है, जिससे दूधके
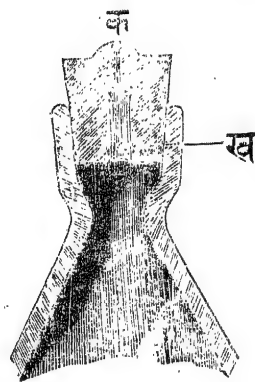
चित्र ७—शुद्ध दूध रखनेकी बोतलकी डाट

ऊपरकी जगह शून्य हो जाती है। बोतल हिलनेसे उसमें वैसा ही शब्द पैदा होता है जैसा किसी शून्य स्थानमें तरलके हिलनेसे होता है। ठण्डा होनेसे दूधके ऊपरकी भाप जम जायगी और शून्य पैदा हो जायगा। अतएव डाटपर बाहिरकी
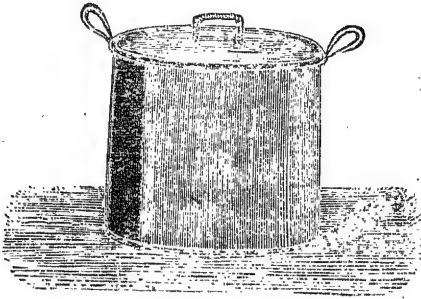
चित्र ८—बोतल गरम करनेका बर्तन

तरफ दबाव ज़्यादा होगा और डाटका बीचवाला छेद बन्द हो जायगा।

जब बच्चोंको दूध देना हो तो बोतलोंसे ही पिला देना चाहिये। दूध पीनेके लिए डाटके स्थानमें एक रबड़का थन लगा देते हैं।

बोतल खाली हो जानेपर उसे तुरन्त ही गरम पानीसे धो डालना चाहिये। इन नियमोंका ध्यान रखनेसे दूध अगणित बैक्टीरिया और बीजोंसे बचा रहता है। पाश्चात्य देशोंमें इन नियमोंका अनुसरण करनेसे बच्चोंकी मृत्यु संख्या बहुत ही घट गई है। हमें आशा है इस विषयको पढ़कर पाठकगण भी कुछ न कुछ लाभ उठाएंगे और देशके बच्चोंकी स्वास्थ्यरक्षाके लिए अपने यहां भी अच्छे अच्छे नियमोंका प्रचार करेंगे।

व्यापार संगठन

व्यापारिक सफलताके साधन

[ले०—श्रीयत कस्तूरमल बंठिया, B. Com.]

व्यापार चाहे कैसा ही क्यों न हो, उसके प्रारम्भमें कठिनाइयाँ तथा विघ्न बाधाएँ उपस्थित होती ही हैं। हमारा उद्देश सबसे पहिले यही बतलानेका है कि हम अपने व्यापारको किस ढर्रेपर चलावें और उसका संगठन किस प्रकार करें, जिससे हमारी कठिनाइयाँ यदि समूल नष्ट न हो जावें तो कम तो अवश्य ही हो जावें। संसारमें व्यापार कई प्रकारके हैं। इनमेंसे प्रत्येक मनुष्यको अपने लिए एक अथवा एकसे अधिक व्यापार छांट लेना आवश्यक है। जो आदमी ऐसा नहीं करता और सब प्रकारके व्यापारोंमें हाथ डालता है वह लाभके बदले निस्संदेह हानि उठाता है। अस्तु, किसी व्यापार विशेषको न लेकर, यहां-पर ऐसे ही साधारण नियमोंपर विचार करेंगे जिनका उपयोग सब प्रकारके व्यापारोंमें होता है।

कुछ थोड़े से व्यापारोंको छोड़कर सब व्यापार ऐसे हैं कि आरम्भ करते ही उनमें नफा नहीं होने लगता। पहिले उन्हें जमानेकेलिए बहुत कुछ खरच करना पड़ता है और तब वे धीरे धीरे नफा देने लगते हैं। ज्यों ज्यों व्यापार पुराना होता जाता है त्यों त्यों नफा बढ़ता जाता है। जिन थोड़े से व्यापारों-में शुरुसे ही बहुत नफा होने लगता है वे थोड़े ही कालतक चलते हैं और फिर धीरे धीरे लाभके स्थानमें हानि होने लगती है। ऐसे (diminishing) नफेवाले व्यापारोंके अतिरिक्त एक और भेद भी व्यापारोंका हो सकता है। इस तीसरे भेदमें उन व्यापारोंका समावेश होता है कि जो अस्थायी हों अर्थात् जो कुछ कालके लिए ही खड़े किये गये हों। इन दो प्रकारके व्यापारोंका विवेचन स्थगित रख अभी ऐसे ही व्यापारोंके विषयमें विचार करेंगे कि जो सदा तीसों दिन चलानेके विचारसे

खड़े किये जाते हैं और जिनमें लाभ उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। हमारे लिए ध्यानमें रखनेकी बात केवल यही है कि हमें अपनी आजीविकाकेलिए ऐसा व्यापार करना चाहिये कि जो आरम्भमें ही लाभकारी नहीं परन्तु सदैव ऐसा बना रहे।

जिस व्यापारमें हमें उत्तरोत्तर लाभ होता रहता है उसकेलिए तीन बातें मुख्य हैं। इन तीनों-में किसका प्रथम, किसका द्वितीय और किसका तृतीय स्थान है—यह कहना कठिन है, क्योंकि व्यापार विशेषके अनुसार इनका महत्व भी न्यूनाधिक हो जाता है। वस्तुतः यह तीनों ही बातें प्रत्येक व्यापारकेलिए जरूरी हैं। पहले व्यापार संचालकोंमें व्यापारोचित गुण तथा शक्ति होनी चाहिये। दूसरे पूंजी इतनी तो अवश्य होनी चाहिये कि जिससे व्यापारकी शैशवावस्था बाधा रहित व्यतीत हो जावे अर्थात् जबतक व्यापार नफा न देने लगे तबतक उसे चलते रखनेकेलिए पर्याप्त पूंजी होनी चाहिये। तीसरे व्यापार संचालकोंमें यह योग्यता होनी चाहिये कि बाजारमें अपने व्यापारकी पैठ शीघ्र जमा लें। पूंजी तथा व्यापार कौशल चाहे हममें अपरिमित हो परन्तु जबतक यह तृतीय गुण न होगा तबतक हमारा व्यापार सफल नहीं हो सकता। पहले दो साधनोंके होते हुए हमें कोई ऐसी बात अपने व्यापारमें उपस्थित करनी चाहिये कि ग्राहकोंके दलके दल हमारी ओर आकर्शित हों। अस्तु, सबसे उपयोगी बात जो हमें कोई भी व्यापार शुरु करनेके पहिले ध्यानमें रखनी चाहिये, यह है कि बाजारमें साख तथा पैठ कैसे जम सकेगी। जब हमारे पास पहले दो साधन अर्थात् व्यापार कौशल तथा पूंजी यथेष्ट परिमाणमें होंगे तो यह तीसरी बात भी सहजमें ही सिद्ध हो जायगी। परन्तु कितने अर्से-में होगी यह कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि विलम्ब लगे तो हमें अधीर न होना चाहिये। यदि व्यापार संसारसे हमारा पहलेसे कुछ भी परिचय अथवा सम्बन्ध नहीं है तो हमें ऐसे व्यापारमें कुछ विशेष पूंजी यथेष्ट लाभ पानेकेलिए लगानी होगी और तब ही हम पूर्व परिचित व्यापारकी भांति कुछ कालके अनन्तर पैठ जमाने-में कृतकार्य हो सकेंगे।

ऊपर व्यापारिक सफलताके तीन साधन बताये गये हैं। इनका अर्थ बहुत व्यापक है। हरएक व्यक्तिमें यह तीनों थोड़े बहुत अंशमें जन्मसे ही पाये जाते हैं। परन्तु जब कभी इस स्वाभाविक परिमाणसे विशेष परिमाणमें इनकी आवश्यकता होती है तो हमको इसकेलिए बाहरी आश्रय लेना पड़ता है। कोई व्यक्ति एक साधारण व्यापार इन स्वाभाविक गुणोंकी सहायतासे सफलतापूर्वक चला लेता है, परन्तु जब वही व्यक्ति एक मोटे पायेपर कोई व्यापार करना चाहता है तो वह अकेला ऐसा व्यापार फायदेके साथ नहीं चला सकता। सुतरां वह अन्य आदमियोंकी सहायता लेता है। यह सहायता उसे दो तरहसे प्राप्त हो सकती है। या तो वह दूसरे आदमियोंको अपना साझी बनावे या वेतन देकर अपनी त्रुटियोंको गुमाश्तों तथा नौकरों द्वारा पूरी कर ले। ऐसा करनेका तात्पर्य यही है कि निर्दिष्ट व्यापारको फायदेके साथ चलाने योग्य, इन तीनों साधनोंका यथेष्ट परिमाणमें उसे लाभ हो। एक आदमीके पास व्यापारिक कौशल तथा सम्बन्ध यह दो सा-धन यथेष्ट परिमाणमें उपस्थित हैं परन्तु तीसरा साधन पूंजीका अभाव है। इस दशामें व्यापारमें उसे पूर्ण सफलता होना कठिन है। हां! अपनी साखके बल वह इन दो साधनोंको पाकर कुछ लाभ अवश्य उठा सकेगा। परन्तु थोड़ा लाभ उठाना ही हमारा लक्ष्य नहीं है। वह व्यापारी जिन-के साथ वह व्यापार करता है और जो उसकी सफलताके विषयमें असंदिग्ध हैं, चाहे ऐसा देरसे भले ही हो, उसके साथ कुछ सरल शर्तोंपर व्यापार करनेको राजी हो जावेंगे। परन्तु इतनेसे ही हम यह नहीं कह सकते कि वे इस प्रकार अपना धन जोखिममें डालनेका उससे कुछ एवज़

लिये बिना रह जायँगे। पस हमारे सामने बिकट समस्या आ रहेगी कि हमको इस प्रकारसे अपनी साखके बलपर व्यापार करना और उसके योग्य पूंजी जुटाना ठीक होगा अथवा किसी एक व्यक्तिसे उधार लेकर व्यापार करना ठीक होगा। अथवा पूंजीवालोंके साथ साझा कर उनके साथ अपना लाभ बांटते हुए व्यापार करना ठीक होगा। चाहे जिस विधिका आश्रय ले व्यापारीको तो अपना व्यापार सफलतापूर्वक चलानेके योग्य पर्याप्त पूंजी लानी ही होगी।

साझेका विषय अभी न लेकर पहिले नौकर अथवा गुमाश्ते द्वारा अपनी त्रुटियोंको पूरे करनेकी युक्तिका विचार करना ठीक होगा। इस युक्तिसे हमें यह फायदा अवश्य होता है कि हमारे नफेमें कोई भाग नहीं बटाता। परन्तु इसमें आपत्तियां कई हैं जो किसी त्रुटि विशेषसे बहुत कुछ सम्बन्ध रखती हैं। यह बात सच है कि साधारण त्रुटिकी इस प्रकार पूर्ति करना यद्यपि सदैव ठीक नहीं होता तथापि लाभदायक हो जाता है, क्योंकि दूसरोंके सहारेका कहांतक कोई भरोसा कर सकता है। उदाहरणके लिए कल्पना कीजिये कि किसी एक व्यक्तिके पास कौशल तथा सम्बन्ध यह दो साधन मौजूद हैं, परन्तु तीसरा साधन अर्थात् पूंजीका बिलकुल ही अभाव है। फिर कल्पना कीजिये कि वह इस साधनकी त्रुटिको पूरा करनेके लिए एक धनीको नौकर रखता है। पहिले तो यह कल्पना ही हमारे लिये आकाश कुसुमवत् है। क्योंकि धनी मनुष्य नौकर रहनेकी अपेक्षा स्वतंत्र रूपसे व्यापार करना बेहतर समझेगा और कदापि अपनेसे हीन स्थितिवालेकी नौकरी नहीं करेगा। परन्तु फिर भी यदि हम ऐसा होना सम्भव मान लें तो हमारे सामने यह समस्या उपस्थित है कि ऐसा आदमी किस लिए अपनी रकम हमारे व्यापारमें लगायेगा? उसे केवल अपने वेतनसे काम है। और जो उसका मालिक अर्थात् नौकर रखनेवाला उसे अपनी पूंजी उसके व्यापारमें लगानेको मजबूर करेगा तो वह उसका बहुत ही भारी एवज मांगे बिना न रहेगा। इतना ही नहीं वरन् अपना काम भी अच्छी तरह न करेगा और मालिकको सदा उससे दबता रहना पड़ेगा।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह प्राकृतिक गुण कुछ अंशमें हरेक व्यक्तिमें रहते हैं। अस्तु पूंजीवाला व्यक्ति जिसके पास बाकीके दो बचे हुए साधनोंमेंसे कोई भी साधन मौजूद है तो वह ऐसे आदमीसे कि जो उसकी त्रुटिको पूरी कर दे साझा कर अपनी नौकरीकी अपेक्षा विशेष लाभ उठानेकी चेष्टा करेगा। यह त्रुटि पूर्त्तिका प्रबन्ध एक ऐसा प्रबन्ध है कि जो केवल अस्थिर ही नहीं वरन् उससे लाभ उठाना भी कठिन है। हां, पक्की साझेदारी अवश्य निभ सकती है।

ऐसा प्रबन्ध भी यदि हमारे व्यापारके लिए हितकर निपटे तो हमारा सौभाग्य मानना चाहिये। परन्तु साथमें यह बात नहीं भूल जाना चाहिये कि इस सम्बन्धसे पूंजीवाला व्यक्ति संतुष्ट होगा और यह सदैव इसी गुमाश्तगीमें रहना पसंद करेगा। हमें स्मरण रखना चाहिये कि यह प्रबन्ध बालुकामयी भूमिपर स्थित है, जो न जाने कब खिसककर हमारे व्यापार महलको ढहा दे।

अब हम एक ऐसी व्यक्तिका उदाहरण लेते हैं कि जो पूंजी तथा व्यापार कौशलवाला तो है परन्तु उसको बाजारसे तथा व्यापार संसारसे रंच मात्र भी परिचय नहीं है। यह त्रुटि भी उपर्युक्त त्रुटिकी भांति गुमाश्तोंद्वारा पूरी की जा सकती है और बहुधा इसमें सफलता भी प्राप्त हो जाती है। परन्तु यहांपर भी हमको ऐसा न होने देना चाहिये कि हमारा व्यापार गुमाश्तों तथा नौकरोंकी बदौलत चले और कठपुतलीकी नाई हम अलग बैठे रहें। ऐसी स्थितिका परिणाम यह होगा कि सारा व्यापार हमारे गुमाश्तोंकी दयापर चलेगा और उनके बिना वह एक क्षण भी जीवित न रह सकेगा। इतना ही नहीं वरन् हमें

सदा यह दहशत बनी रहेगी कि न जाने कब यह गुमाश्ते हमारी नौकरी छोड़ दें और स्वयम् या किसी और व्यक्तिकी ओरसे हमारे प्रतिपक्षी बन बाजारमें आडटें और तब हमारे मुंहपर मक्खियां भिन भिनायां करें।

गुमाश्तोंकी प्रतियोगिता तथा प्रतिद्वन्दता-का भय किसी अंशमें कम किया जा सकता है परन्तु सर्वथा नहीं मिट सकता। जब किसीको हम नौकर रखें तो हम उससे एक ऐसा इकरारनामा लिखा सकते हैं कि जबतक हमारी सेवामें रहेगा तबतक न तो स्वयम् कोई धंदा कर सकेगा और न साक्षात् रूपसे किसी अन्य प्रतिपक्षी व्यापारीसे मिल सकेगा। परन्तु ऐसे इकरारनामेमें दो बातें विचारणीय हैं। पहिले तो ऐसा प्रतिबंध आईन-के अनुकूल होना चाहिये। आईन (Indian contract act sec. 27) उन सब इकरारनामोंको जो किसी मनुष्यको पेशा अथवा व्यापारसे आजी-विका कमानेसे रोकते हों नाजाइज ठहराता है। यद्यपि ऐसा पब्लिक पालिसीके लिहाजसे किया गया है तथापि इस साधारण नियमके भी तीन अपवाद हैं। कुछ भी हो चाहे अपवाद उपस्थित हों अथवा नहीं यह आईन तब भी लागू नहीं होता जब कि ऐसा इकरारनामा उचित समयकेलिए हो और निर्दिष्ट सीमामें ही उसको वैसा व्यापार करनेसे मना करता हो। समयका औचित्य अनौचित्य आदि बातें निर्णय करना न्यायालयके इन्साफपर है। इस प्रकारका इकरारनामा लिखाना, कि मैं अन्य किसीकी नौकरी ही नहीं करूंगा, बिलकुल न्याय विरुद्ध है। परन्तु यही इकरार यदि कुछ समयके लिए किया गया हो तो उचित तथा बाध्य माना जा सकता है।

दूसरी आपत्ति जो हमको ऐसे इकरारनामेके लिखानेमें होती है वह यह है कि गुमाश्ते हमको ऐसा इकरारनामा लिखकर देंगे अथवा नहीं और यदि देंगे तो हम उनसे शर्तें पूरी करा सकेंगे या नहीं। यह दोनों ही बातें विचारणीय हैं। जिस मनुष्यका व्यापार संसारसे खूब घनिष्ठ सम्बन्ध हो वह कभी ऐसा इकरारनामा लिख देना पसंद न करेगा। और जो कभी दे भी देगा तो हमारे लिए उसको उससे बांधना कठिन होगा, क्योंकि उसका सम्बन्ध व्यापार संसारसे हमसे कई दर्जे ज़यादा है।

वस्तुकी सत्ता

[ले०—रामदास गौड़, एम० ए०]

देश और कालके विचारमें हम यह दिखला चुके हैं कि जो कुछ परीक्षा हम वाह्य विषयोंकी करते हैं, अपनेसे अतिरिक्त अन्य जो कुछ हम जानते हैं, वह सब अपनी इन्द्रियों द्वारा करते हैं। इन्द्रियोंको करण अथवा हथियार वा औजार कहते हैं। हमारे बाहरी औजार पांच ज्ञानके और पांच कर्म्मके कहे जाते हैं और भीतरी औजार अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार इन चारोंको कहते हैं। सारांश यह कि अपनेसे पृथक् पदार्थोंका ज्ञान हमको पांचों ज्ञानेन्द्रियोंसे, जो वाह्य करण हैं और मनसे जो अन्तः करण है प्राप्त होता है। ज्ञानकी दृष्टिसे जो वस्तु जानी जाती है उसको ज्ञेय कहते हैं और जाननेवालेको ज्ञाता कहते हैं। देखनेके विचारसे देखी जानेवाली वस्तुको दृश्य कहते हैं और देखनेवालेको द्रष्टा वा साक्षी कहते हैं। इस जागृत जगत्में जाननेवाला और देखने-वाला मैं हूं और जानी गयी वा देखी गई मेरे सिवा सभी वस्तुएं हैं। इसे साधारण भाषामें हम अपना आपा कहते हैं और संस्कृतमें आत्मा कहते हैं। जो पदार्थ आत्मासे भिन्न है उसे इसी-लिए अनात्म कहते हैं। जिन वस्तुओंको साक्षी देखता है और ज्ञाता जानता है उन सभी वस्तुओं-को अपने आपेसे भिन्न जानता ही है। इस प्रकार

Philosophy दर्शन]

ज्ञाता और ज्ञेय, साक्षी और दृश्य, दो का होना सहज ही मानना पड़ता है।

इस लेखमें हम यही विचार करेंगे कि अनात्मकी वा साधारणतया जिसे हम वस्तु कहते हैं उसकी सत्ताका हमको कितना ज्ञान है। इस सम्बन्धमें विचार करते हुए हमें अपने औजारोंकी परीक्षा बहुत आवश्यक जान पड़ती है। हम जिन साधनोंसे वस्तुको परखते, पहचानते हैं, हम जिन यन्त्रोंके सहारे देखने और जाननेका काम लेते हैं, वह औजार और वह यन्त्र कहां तक हमारी सहायता कर सकते हैं और वह साधन हमारे लिए कहांतक विश्वास योग्य हैं। हम एक एक इन्द्रियका इस प्रकार अलग अलग विचार करेंगे।

शब्दों के सुननेका साधन हमारे कानोंका नाड़ीजाल है। वाह्य जगतमें जो कम्पन उत्पन्न होते हैं भिन्न भिन्न प्रकारके हैं और उनकी गति भी भिन्न भिन्न वेगकी है। एक पदार्थमें कम्पन वा स्फुरण होनेसे उसके निकटवर्ती पदार्थमें भी कम्पन वा स्फुरण होने लगता है। निकटवर्ती पदार्थके अनुकूल होनेपर यह स्फुरण उसी प्रकारका होता है और उदासीन वा प्रतिकूल होनेपर प्रकारमें अन्तर पड़ जाता है। जो हो इस स्फुरणका प्रभाव जब हमारे कानके पर्देपर पड़ता है तब हम शब्दका अनुभव करते हैं, चाहे इस स्फुरणका द्वारा वायु हो वा अन्य कोई पदार्थ। यह बात भी परीक्षा द्वारा सिद्ध है कि एक सेकण्डमें तेतीस स्फुरणसे लेकर चालीस हजार स्फुरण तकका प्रभाव साधारण मनुष्यके कानके परदेपर पड़नेसे शब्दका अनुभव होता है। स्फुरणका वेग इससे कमो वेश हो तो शब्दका अनुभव नहीं होता। साधारण धड़ धड़ आदि मिले जुले और गड़बड़ शब्दोंसे लेकर मृदंग वीणा आदि मधुर बाजोंके शब्द और तार-स्वर का मनोहर गान इन्हीं स्फुरणोंके अन्तर्गत है। केवल कानोंके सहारे हम शब्द शब्दमें भेद अनुभव कर सकते हैं। जिनके कान बहुत बारीक भेदोंका अनुभव कर सकते हैं, ऊंचे नीचे, द्रुत अनुद्रुत, आदि स्वरों और मीड़ों और ग्रामोंके भेद केवल कानके सहारे बता सकते हैं। परन्तु यह बताना कि अमुक शब्द मृदंगका है और अमुक वीणाका, अमुक मनुष्यका अलाप है और अमुक हारमोनियमका स्वर है, केवल कानोंका काम नहीं है। इन शब्दोंके जो यन्त्र हैं उन यन्त्रोंकी जानकारी हमको और इन्द्रियोंके सहारे होती है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि वाह्य पदार्थोंमें तेतीस प्रति सेकण्डसे कमके स्फुरण भी होते रहते हैं और चालीस हजार प्रतिसेकण्डसे अधिकके भी। यह सब स्फुरण यदि हमारे कानके परदोंपर प्रभाव डालें और शब्द होकर सुनाई पड़ें तो इतना शोर व गुल हो कि बड़ी मुसीबतमें पड़ जायं। साथ ही यह भी न भूलना चाहिये कि इस प्रकारके स्फुरण ज्यों ज्यों दूर जाते हैं मन्द होते जाते हैं। इसी कारण बहुत दूरके शब्द भी हम नहीं सुन सकते। या यों कहिये कि बहुत दूरके स्फुरणोंका प्रभाव हमारे कानोंपर नहीं पड़ता। सारांश यह कि हमारी सुननेकी इन्द्रिय परिच्छिन्न है। उसकी शक्ति सीमाबद्ध है। उसकी ताकत महदूद है। बाहरी यन्त्र बनाकर हम कानकी शक्ति कितनी ही बढ़ायें परन्तु यह कहनेके लिए हम अभी तय्यार नहीं हैं कि इन बाहरी यन्त्रोंके सहारे भी हम अपनी कर्णेन्द्रियको अपरिच्छिन्न। उसकी शक्तिको असीम, अपरिमित और अपार, उसकी ताकतको गैर महदूद बना सकेंगे। एक ही प्रकारके स्फुरणका प्रभाव कानोंकी भिन्न रचनाके कारण भिन्न भिन्न प्राणियोंपर विविध रीतिसे पड़ सकता है और यह सम्भव है कि एक प्राणी किसी विशेष प्रकारके स्फुरणको एक तरहका शब्द अनुभव करे, दूसरा दूसरी तरहका और तीसरा कुछ भी अनुभव न कर सके। इस प्रकार हमारे कानोंकी गवाही घंटे के शब्द होने न होने वा उसके तांबे

पीतल वा फूलके बने होने वा उसे लकड़ीसे या किसी धातुसे बजाये जाने वा उसके दूर वा निकट बजने अथवा किसी विशेष प्रकारसे बजनेके लिए भी न तो काफ़ी हो सकती है और न किसी तथ्यका प्रतिपादन कर सकती है।

स्पर्शसे अथवा छू कर हम ठण्डा, गर्म, कड़े नरमकी पहचान करते हैं। हमारी त्वचाका नाड़ी जाल जिन वस्तुओंके पास होता है, उन वस्तुओंसे एक प्रकारका स्फुरण वा कम्पन लेकर हमारे चित्त देवताको पहुंचाता है। फिर बुद्धिसे हम यह विवेचन करते हैं कि यह स्फुरण किसी दूसरे स्फुरणकी अपेक्षा ठण्डा वा गरम, कड़ा वा नरम है या नहीं। हमारा शरीर स्वयं एक विशेष गर्म्मी रखता है, जिसमें कुछ थोड़ी बहुत कमी वेशी होती रहती है। शरीरके अंग अंगमें नर्म्मी और कड़ाईका तारतम्य है पर इस तारतम्य की भी सीमा संकुचित ही है। तात्पर्य्य यह कि हमारे शरीरके अंग अंग थोड़े बहुत कड़े नरम, ठण्डे गर्म हैं ही, और त्वचा सारे शरीरमें फैली हुई है। किसी किसी स्थानपर छूकर जाननेकी शक्ति बहुत तीव्र है, और रीढ़के पास पीठमें यह शक्ति बहुत कम है। एक परकारके दोनों भुजोंको मोड़कर इकट्ठा कीजिये कि दोनों नोकोंके बीच एक जौसे कम अन्तर रह जाय और इन दोनों नोकोंको उंगलीके सिरेपर रखिये तो दो नोक अलग अलग प्रतीत होंगे और अगर पीठपर लगाइये तो एक ही नोकका अनुभव होगा। नरमी और कड़ाई आपेक्षिक है। छूनेवाले अंगको अपेक्षा जो वस्तु नरम होती है प्रायः उसे नरम और जो कड़ी होती है प्रायः उसे कड़ी कहते हैं। अनेक वस्तुओंको इसी प्रकार छूकर उनमें परस्पर नरमी और कड़ाईका भी अनुमान करते हैं। परन्तु यह पहचान एक हद तक ही हो सकती है। लोहे और सोनेकी आपेक्षिक नरमी या कड़ाईकी पहचान हम छूकर नहीं कर सकते। सोना लोहेको खरोंच सकता है अथवा लोहा सोनेको खरोंच सकता है, यह एक कर्म्मेन्द्रिय और दूसरी चक्षुरिन्द्रिय दोनोंके सहारे हम जान सकते हैं और बुद्धिद्वारा यह निश्चय कर सकते हैं कि सोना लोहेकी अपेक्षा नरम है। इसी प्रकार ठण्डा और गरम अनुभव करनेके लिए भी हमारी त्वचाकी क्रिया एक हद तक ही काम दे सकती है और त्वचाके अनुभवकी सापेक्षताके कारण हमको धोखा भी हो सकता है। तीन गिलास लीजिये। एकमें बहुत गरम, दूसरेमें साधारण कुएंका पानी और तीसरेमें बरफ़का पानी रखिये। बरफ़वाले पानीमें हाथ डालकर कुएंवाले पानीमें हाथ डालनेसे कुएंका पानी गरम प्रतीत होगा और जलते हुए पानीमें हाथ डालकर कुएंवाले पानीमें हाथ डालनेसे कुएंका पानी बहुत ठण्डा लगेगा। स्पष्ट है कि जल एक ही है और एक ही दशामें है, परन्तु हमारी त्वचाकी भिन्न दशाके कारण भिन्न प्रतीत होता है। जाड़ोंमें और गरमियोंमें कुएंके जलमें जो भेद देखनेमें आता है उसका कारण यही है। गरमी और ठण्डक भी एक हद तक ही हम अनुभव करते हैं। अत्यन्त ठण्डा और अत्यन्त गरम दोनोंसे ही हमारी स्पर्श नाड़ियां स्तब्ध हो जाती हैं और जल जाती हैं और अनुभव करनेकी क्षमता नष्ट हो जाती है। ऐसी दशामें हम अन्य यन्त्रोंका सहारा लेते हैं। हम जानते हैं कि गर्म्मीसे वस्तुओंका प्रसार और ठण्डसे सङ्कोच होता है। इस प्रसार और संकोचके तारतम्यका विचार करके हम गरमीका तारतम्य जान सकते हैं। तापमापक यन्त्र प्रायः इसी सिद्धान्तपर बनते हैं। इनमें तीसरी इन्द्रिय बुद्धि निश्चय करती है कि किसमें ताप अधिक है और किसमें कम। ताप सूर्य्यमें अधिक है अथवा लुब्धक तारेमें—वस्तुतः यह ज्ञान हमारी त्वचाकी गतिसे बाहर है, परन्तु यन्त्रोंसे और बुद्धिसे ग्राह्य है। निदान त्वचाका व्यापार सीमाबद्ध है। स्पर्श शक्ति परिच्छिन्न है और दूसरी इन्द्रियोंसे इसका अन्योन्याश्रय है।

यदि नरमी और कड़ाईकी जांचमें वर्तमान सापेक्षताके बदले हमारी शक्ति इतनी अपरिमित होती कि आकाश जैसे सूक्ष्म पदार्थका भी स्पर्श कर लेते और हीरा और ईस्पातकी पारस्परिक नर्मी और कड़ाईका भी अनुभव कर लेते और ठोस उज्जनकी ठण्डक और सूर्य्य जैसे उत्तप्त पिण्डकी गर्मी अपनी त्वचासे जान सकते तो हमको संसारमें रहनेमें कितनी कितनी कठिनाइयां होतीं, क्या क्या मुसीबतें आजातीं, यह पूर्णतया हमारी कल्पनामें नहीं आ सकता। जिस त्वचासे हम हीरेकी कड़ाईका अनुभव कर लेते उससे हम साधारण ईंट पत्थरकी भीत सहज ही खोद सकते। लकड़ी हमारे लिए अत्यन्त नरम हो जाती। जल आदि द्रव पदार्थका तो पता ही क्या होता। आकाशतकको स्पर्श करके ज्ञान लेनेके शक्ति होती तो इसकी उल्टी दशा हो जाती। जल हमको हीरेसे भी अधिक कड़ा प्रतीत होता। रोटी आदि स्थूल वस्तुओंका तो कहना ही क्या है? इन दोनों दशाओंमें हमारा सांसारिक जीवन और तरहका होता। वर्तमान सांसारिक जीवनमें त्वचाकी परिच्छिन्न शक्ति ही हमारे लिए अनुकूल है। जो कुछ हो स्पर्शेन्द्रियकी गवाही केवल इतनी ही बातके लिये है कि वाह्य वस्तुका संबंध हमारे शरीरसे किस तारतम्यका है। हमारे शरीरकी अपेक्षा वाह्य वस्तु कितनी कड़ी, नरम और ठण्डी, गर्म है। यह जान लेनेसे हमको वस्तुकी वास्तविक स्थितिका पता नहीं लगता। हमारी त्वचाकी गवाही हमारे शरीरसे सापेक्ष है और परम सत्य और नित्य नहीं है।

आकाशमें स्वभावसे ही अनेक प्रकार और भिन्न भिन्न वेगके कम्पन वा स्फुरण होते ही रहते हैं। इन स्फुरणोंमेंसे कुछ ही हमारी आंखोंके नाड़ीजालपर प्रकाशका अनुभव कराते हैं। जिसे हम सूर्य्यका प्रकाश कहते हैं वह सूर्य्यके पिण्डसे निकले हुए आकाश तरङ्ग हैं, जो पृथ्वीतक आती हैं और वाह्य वस्तुओंपर पड़कर हमारी आंखके पर्देपर अपना प्रभाव डालती हैं। जो किरणें वस्तुओंमें समा जाती हैं उनका प्रभाव हमारी आंखोंपर नहीं पड़ता। जहां सभी किरणें समा गई हैं वहां घोर काला वा अन्धकार दिखाई देता है। जहां सभी किरणें लौटकर हमारी आंखके पर्देपर प्रभाव डालती हैं हमें सफेद दिखाई पड़ता है। हमें सफेद और कालेके बीचमें विविध किरणोंके मिलनेसे विविध रङ्गोंका भान होता है। हम अपने सामने नीले रङ्गसे रंगी हुई भीत देखते हैं। उसमें वास्तविकता यह है कि सूर्य्यकी और किरणें भीतमें समा जाती हैं, केवल नीला किरणें हमारी आंखोंकी ओर लौटती हैं। साधारण मनुष्यकी आखें बैंगनीसे लेकर लाल रङ्गोंकी किरणों तक अनुभव कार लेती हैं। लाल या बैंगनीके बाहरकी किरणोंका भिड़ आदि कई मनुष्येतर प्राणी अनुभव कर सकते हैं। साधारणतया यह बात सबको मालूम है कि जो हमारे लिये अंधेरा है उसमें भी अनेक प्राणी प्रकाशका अनुभव करते हैं। वैज्ञानिकोंने तो यह सिद्ध किया है कि सारे विश्वमें प्रकाश ही प्रकाश है, अन्धकार तो त्रिकालमें कभी हुआ ही नहीं। अपने न देख सकनेको ही हम अन्धकार कहते हैं। जिन आकाशके तरंगोंसे बैंगनी और लाल रङ्गोंके बाहरकी किरणोंका आविर्भाव होता है निरन्तर विद्यमान हैं, पर हम अनुभव नहीं कर सकते। प्रसिद्ध एक्स किरणोंको सब लोग जानते हैं कि बहुधा अपारदर्शी वस्तुओंको पारदर्शक कर देती हैं। थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि हमारी आंखोंमें एक्स किरणोंकी शक्ति आ गयी और बहुतसे ठोस पदार्थ हमारे लिए पारदर्शी हो गये या यों समझिये कि जो किरणें भीतके आरपार आ जा सकती हैं उनका प्रभाव हमारी आंखके पर्दोंपर पड़ने लगा। ऐसी दशामें हमारी वही गति होगी जो मय-दानवद्वारा रची

हुई सभामें दुर्योधनकी हुई थी। भीत न देख सकनेके कारण हम ठोकरें खायेंगे और हमारी जीवन यात्रा असम्भव हो जायगी। किरणोंके ठीक ठीक प्रति फलित होनेके लिये हमारी आंखका यन्त्र एक विशेष रीतिसे बना है। उसकी बनावटपर किरणोंका ठीक रूप दर्शाना निर्भर है। ऐसा न हो तो नुमाइशोंमें जो दीवार कहकहा बनाते हैं उसकी दशा हो जाय। दर्पणका धरातल यदि विषम हो तो देखनेवालेका अंग प्रत्यंग ऐसा विकृत दिखाई पड़ेगा कि हंसते हंसते पेटमें बल पड़ जायँगे। और यदि दर्पण कहीं बीचसे ऐसा टूट गया कि केन्द्रसे अनेक खण्ड हो गये और खण्ड अभी ज्योंके त्यों लगे हुये हैं तो 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात' का दृश्य आंखके सामने आ जायगा। बाजारमें टके दो टकेका खिलौना जो दूरबीनके नामसे बिकता है और जिसे अङ्गरेज़ीमें केलिडास्कोप कहते हैं और हिन्दीमें बहुरूप दर्शक या बहुरूपिया कह सकते हैं तीन या दो कांचके खड़े टुकड़ोंको समकोणमें लगाकर एक नलीमें बन्द कर देनेसे बनता है। पानीमें सीधी खड़ी लकड़ी डालिये तो धरातलपरसे टूटी हुई या मुड़ी हुई दिखती है। देखनेमें लम्बाईमें भी कमी आ जाती है। इसे प्रकाशका त्रोटन कहते हैं। मृगतृष्णाका कारण भी इन्हीं किरणोंके द्वारा उत्पन्न दृष्टि-विपर्य्यय है। कहांतक कहें सारे विश्वका दृश्य इन्हीं किरणोंका कौतुक है, जिन्होंने सत्ताको छिपा रखा है, असलियतपर पर्दा डाल रखा है। मनको मिलाकर वाह्य ज्ञानकी कुल छः इन्द्रियां हैं। परन्तु ज्ञान शक्तिकी तुलना की जाय तो इसमें नौ भाग आंखके हैं और एक भागमें शेष पांच इन्द्रियोंके व्यापार हैं। आंखका काम इतने महत्वका होते हुए भी हम इस बातको दिखा आये हैं कि इसकी शक्ति कितनी परिच्छिन्न है और इसकी गवाही वास्तविक सत्ताकेलिये कितनी कम विश्वस्य और बलहीन है।

(शेष फिर)

विद्युत्धाराके नापनेकी रासायनिक विधि

[ले०—प्रोफ़ेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

मेषके अङ्कमें यह बतलाया जा चुका है कि यदि किसी बर्तनमें दो प्लाटिनमके पत्र लगे हों और उसमें तेज़ाब मिश्रित पानी भर कर पत्रोंका सम्बन्ध तारोंद्वारा किसी बाटरीके छोरोंसे कर दें तो विद्युद्धाराके प्रवाहके प्रभावसे विश्लेषण हो जायगा। उस पत्तरपर जो बाटरीके धनात्मक सिरेसे जुड़ा है ओषजन और दूसरेपर उज्जन निकलेगी। इस बर्तनको जल वाल्टामापक कहते हैं। इसी प्रकार यदि एक शीशे या मट्टीके बरतनमें तूतियेका घोल लेकर दो तांबेके पत्तर डुबो दें और उनका बाटरीसे सम्बन्ध कर धारा बहाने लगें तो वह पत्तर जो बाटरीके धनात्मक सिरेसे जुड़ा होगा हलका होता जायगा और दूसरे पत्तरपर ताम्बेकी तह चढ़ती दिखाई देगी। इस बर्तनको तांबेका वाल्टामापक कहते हैं। यदि तांबेके पत्तरोंके बदले चांदीके पत्तर और तूतियेके घोलके बदले चांदीके किसी यौगिकका घोल लेवें तो चांदीका वाल्टामापक बन जायगा। इसी प्रकार किसी भी पदार्थका वाल्टामापक बना सकते हैं। प्रायः ताम्बेका वाल्टामापक सरल और सस्ता होनेके कारण प्रयोगशालाओंमें प्रचलित है और धारा नापनेके काममें आता है।

पहले पहल फेरेडेने वैद्युतिक विश्लेषणके तीन नियम प्रयोगों द्वारा सिद्ध किये थेः—

१. यदि कई पदार्थोंके वाल्टामापक इस प्रकार जोड़े जावें कि उनमेंसे एक ही धारा बहे तो भिन्न भिन्न वाल्टामापकोंके ऋणात्मक पत्तरोंपर (अर्थात् उन पत्तरोंपर जो बाटरीके ऋणात्मक सिरेसे जुड़े हुए हैं या जिनसे वाल्टामापकसे धारा निकलती

है) जो पदार्थोंकी मात्राएँ किसी नियत समयमें जमा होंगी उनमें वही निष्पत्ति होगी जो उनके (equivalent weight) योग-भारोंमें होती है।

२. एक वाल्टामापकमें नियत समय तक नियत परिमाणकी धारा बहानेसे जितनी मात्रा उसके ऋणात्मक पत्तरपर जमा होती है धारा दुगनी करनेसे उसी समयमें दुगनी मात्रा और तिगुनी करनेसे तिगुनी मात्रा जमा होगी। यदि धारा उसी परिमाणकी रखकर समय दुगना या तिगुना कर दें तो दुगुनी या तिगुनी मात्रा ऋण-पटपर जमा होगी। इसी नियमको, जो धारा नापनेके लिए बड़ा ही उपयोगी साबित होगा, सूत्र रूपमें इस प्रकार कह सकते हैं।

मान लो, इकाई धारा एक सेकंड तक बहानेसे किसी पदार्थके म ग्राम जमा होते हैं तो—

इकाई धारासे १ सेकंडमें म ग्राम जमा होते हैं
ध धारासे " " म ध " " होंगे
" स ,, सेकंड म ध स " "
यदि इस मात्राको मा मान लें तो

मा=म ध स

अब यह मालूम है कि इकाई धाराके एक सेकंड तक तांबेके वाल्टामापकमें होकर बहनेसे ऋणात्मक पटपर ·००३२९ ग्राम तांबा चढ़ जायगा तो तांबेके वाल्टामापकके लिए यह समीकरण इस प्रकार लिखा जा सकता है।

मा = ·००३२९ ध स

$$ध = \frac{मा}{·००३२९ \times स.}$$

अब यदि तांबेके वाल्टामापकके ऋणात्मक पत्तरको धारा बहानेसे पहले और नियत समयतक धारा बहानेके पीछे तोल लें तो दोनों तोलोंका अन्तर=मा। इस मा को '·००३२९×नियतसमयसे' भाग देनेसे धारा निकल आयेगी। सब वाल्टामापकोंसे धारा नापनेकी यही क्रिया है।

अब उस प्रयोगका वर्णन करेंगे जिसमें धारामापककी 'बदलनेवाली संख्या' वाल्टामापककी सहायतासे निकाली जाती है। यहां हम यह भी बतलाना आवश्यक समझते हैं कि भिन्न भिन्न यंत्रोंको चित्रमें कैसे सूचित किया करेंगे।

यंत्र　　चित्रमें कैसे सूचित करेंगे ?

बाटरी

धारामापक

वाल्टामापक

चित्र ९

जोड़नेवाले तारोंको रेखाओंसे सूचित किया करेंगे। यह प्रयोग इस प्रकार किया जाता है।

ब एक बाटरी है जिसका एक सिरा वाल्टामापकके एक पत्तरसे जुड़ा हुआ है। बाटरीका और वाल्टामापकका दूसरा सिरा परिवर्तक (commutator) के दो सिरोंसे जोड़ दिये जाते हैं और धारामापकके दोनों सिरे परिवर्तकके बाकी दो सिरोंसे जोड़ दिये जाते हैं। यह परिवर्तक इस प्रकार बनाया जाता है।

एक लकड़ीका चौकोर टुकड़ा तीन इंच लम्बा दो इंच चौड़ा और १ इंचके लगभग मोटा लेकर इसके चारों कोनोंपर आध इंच गहरे और आध इंचके व्यासवाले चार छेद कर लिये जाते हैं। हर एक छेदके पास एक संयोजक लगा दिया जाता है और उसके नीचे एक तांबे या पीतलका तार दबा दिया जाता है। इस तारका एक सिरा छेदके अंदर रहता है। इन पेचोंमें एक एक ढिबरी और होती है जिसके नीचे धारामापक या बाटरीके सिरोंसे जुड़े हुए तार लाकर दबा दिये जाते हैं। लकड़ीके टुकड़ेके चारों छेदोंमें पारा भर दिया जाता है। इसी-

लिए यह पारेका परिवर्तक कहलाता है। एक छोटेसे लकड़ीके टुकड़ेमें दो मुड़े हुए तार अलग अलग लगा लिये जाते हैं। जब यह घोड़ी इस तरह रख दी जाती है कि एक तार च और ग में और दूसरा र और क में डूबा रहता है तो धारा बाटरीके धनपटसे चलकर ग में, ग से (घोड़ीके तार द्वारा) च में, च से धारामापकमें, फिर क में, क से घोड़ीके दूसरे तारद्वारा र में, र से वाल्टामापकमें होती हुई बाटरीमें फिर पहुंच जाती है। परन्तु यदि घोड़ी इस प्रकार रखें कि एक तार क, ग में डूबे और दूसरा र, च में तो धाराइस प्रकार बहेगीः—
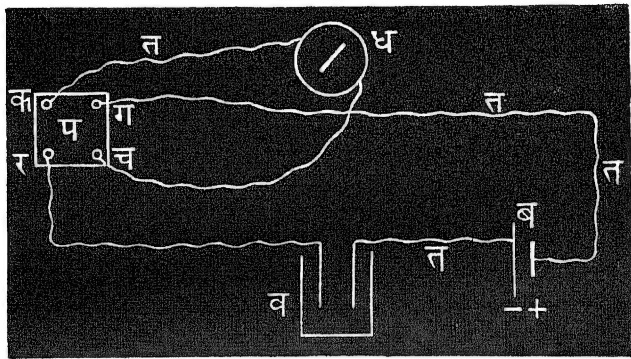
चित्र १०

ब से ग में ग से क में, क से ध में, ध से च में, च से र में, र से व में, व से ब में। स्पष्ट है कि घोड़ीको उक्त दो स्थितियोंमें रखनेसे धारामापकमें धाराके प्रवाहकी दिशा बदल जाती है। धारा पहले च से प्रवेश करके क से आ निकलती थी, पर दूसरी बार क से प्रवेश कर च में आ निकलती है, पर वाल्टामापकमें सदा उसी दिशामें बहती रहती है।

जिस प्रकार धारामापक परिवर्तकके साथ जोड़ा जाता है वह सदैव ध्यानमें रखना चाहिए। धारामापकके सिरे परिवर्तकके कर्णके सिरोंसे जोड़ दिये जाते हैं। कदाचित् तारोंके बन्धनोंमें (जोड़नेमें) भूल हो जायगी तो वाल्टामापकमें भी दिशा बदल जायगी। जितना ताम्बा एक दिशामें धारा बहनेसे एक पत्तरपर चढ़ेगा, दिशा लन बराबर हो जाते हैं। इसके पीछे बाटरीके बदलनेसे उतर जाया करेगा। इसी विचारसे तार इस रीतिसे जोड़े जाते हैं कि धाराकी दिशा केवल धारामापकमें बदले और बाकी चक्रमें एकसी रहे।

ऊपर जो नियम और समीकरण धारामापकके सम्बन्धमें निकाले गये हैं उनमें यह मान लिया है कि धारामापकके घेरे चुम्बकीय याम्योत्तरमें रखे हैं। परिवर्तककी सहायतासे धारामापक याम्योत्तरमें बड़ी आसानीसे इस प्रकार रखा जाता है। पहले धारा धारामापकमें एक दिशामें बहाई जाती है और चुम्बकका विचलन देख लिया जाता है। उसके पश्चात् धाराकी दिशा घोड़ीकी स्थिति बदल कर) बदल दी जाती है और चुम्बकका विचलन देख लिया जाता है। यदि यह दोनों विचलन बराबर हों तो धारामापककी कुण्डली चुम्बकीय याम्योत्तरमें समझनी चाहिये। यदि यह दोनों विचलन बराबर न हों तो कुण्डलीको इधर उधर उस समयतक घुमाया जाता है जब तक यह दोनों विचऋणात्मक सिरेसे जुड़ा हुआ वाल्टा मापकका पत्तर निकालकर इसके बदले तोला हुआ पत्तर रखकर घंटे या आध घंटे तक धारा बहाई जाती है। उसके बाद धाराको रोक कर उस पत्तरको तोल लिया जाता है। इन दोनों तोलोंके अन्तरसे जितना तांबा पत्तरपर नियत समयमें चढ़ता है मालूम हो जाता है। फिर इन समीकरणोंकी सहायतासे बदलनेवाली संख्या निकाल ली जाती है।

$$\text{ध} = \text{बदलनेवाली संख्या} \times \text{स्पर्श क}$$

$$\text{ध} = \frac{\text{मा}}{\cdot 00328 \times \text{समय (सेकन्डोंमें)}}$$

$$\therefore \text{बदलनेवाली संख्या} = \frac{\text{मा}}{\text{स्पर्श क.} \times \cdot 00328 \times \text{समय.}}$$

धाराके बहाने और रोकनेका काम भी इसी परिवर्तककी घोड़ीसे लिया जाता है। जब धारा बहानी होती है घोड़ी रख दी जाती है और जब रोकनी होती है घोड़ी उठा ली जाती है। यदि घेरेपर जहां कोणोंके चिन्ह बने हुए हैं और उनके परिमाण लिखे हुए हैं बदलनेवाली संख्या और प्रत्येक कोणकी स्पर्शरेखाका गुणनफल लिख दिया जावे तो धारामापकसे धारा भी तुरन्त ही मालूम हो जाया करेगी। किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। वास्तवमें धारामापकमें भिन्न भिन्न प्रबलताकी धाराएँ बहाई जाती हैं जिनसे भिन्न भिन्न विचलन होते हैं और प्रत्येक विचलनके स्थानपर जो संख्या धाराकी प्रबलताके लिए वाल्टामापकसे मिलती है लिख दी जाती है। यही विधि धारामापकके अंकित करनेकी है।

इस बातका ध्यान रहे कि जो धाराकी इकाईकी परिभाषा ऊपर दी गयी है वह व्यवहारिक इकाईकी परिभाषा नहीं है। इसको विद्युच्चुम्बकीय पद्धतिकी इकाईके नामसे सूचित किया करेंगे। व्यवहारमें यह इकाई बहुत बड़ी समझी जाती है और व्यवहरिक इकाई इस इकाईका (दशमांश) दसवां हिस्सा होती है। इस इकाईकी परिभाषा पहले भी विज्ञानमें दी जा चुकी है। यह वह धारा है जो चांदीके वाल्टामापकमें प्रति सेकंड ·००१११८ ग्राम चांदी चढाती है। विद्युच्चुम्बकीय पद्धतिकी इकाई धारा उसी समयमें ·०१११८ ग्राम चांदी चढावेगी। व्यवहारिक इकाईका नाम एम्पियर है। जो धारामापक एम्पियरोंमें अंकित होता है वह एम्पियर मापक अथवा एम्पमापक भी कहलाता।

लंगडोंके लिए एक नईउपयोगी लकड़ीकी टांग

बंबईके एक महाशय रामचंद नथूमल ओसवाल, जोहरी बाज़ार निवासीने गतवर्षमें दो आविष्कार किये हैं और उनके अपूर्व तथा उपयोगी होनेके कारण बृटिश गवरमेंटने उनको पेटेंट भी कर दिया है। मैंने स्वयं मंबादेवीके निकट उक्त बाज़ारमें उक्त जैन महाशयकी दूकानपर जाकर उनके कारखाने तथा सरकारी सनदोंको देखा। इसके अतिरिक्त बंबईके दो नामी दैनिक गुजराती पत्र, यथा सांझ वर्तमान तथा बंबई समाचारने उक्त आविष्कारोंका उत्तम परिचय सर्वसाधारणको दिया है। उसका फल यह हुआ कि कई हिन्दू तथा पारसी दानवीरोंने एक वस्तु अर्थात्

लकड़ीकी टांग [बैसाखी]

उक्त महाशयसे रियाती मोलपर लेकर लंगड़ोंको दान दी हैं।

लाला नथूमलने लकड़ीकी टांगके बनानेमें सरल रचनासे काम लिया है। सरल होनेपर भी इस समय युरोप आदि देशोंकी प्रचलित टांगोंसे गुणोंमें अधिक हैं।

दूसरा आविष्कार जो इन्होंने किया है वह जन्तु निवारक है। देखनेमें तो यह एक लकड़ीका सरल रचना का खिलौना है पर कम उपयोगी नहीं है। जन्तु निवारक खाट, इसीके आधारपर, उक्त महाशयने बनाई हैं। खाटोंके लकड़ीके पाय बहुत लाभकारी सिद्ध होंगे, कारण कि जन्तु निवारक पायोंकी खाटपर खटमल पायेकी एक कटोरीमें हल्दी-तेलकी खिचड़ीका दर्शन करते ही पीछे लौट जावेंगे।

जन्तु निवारक छीका जो इसी नयमपर तैय्यार हो चुका है भोजन लटकानेके कामका

Genaral साधारण]

होगा। कीट आदि जन्तु उसकी एक पेंदीमें रह जावेंगे और भोजनपर चढ़ाई नहीं करेंगे।

सुप्रसिद्ध देशभूषण श्रीयुत पण्डित बाल गंगाधर तिलकजीने स्वयं जब वह बम्बई पधारे थे आविष्कार कर्ताकी दूकानपर जाकर कृत्रिम टांगों-की रचनाको देख उनको उत्साहित किया था।

लाला नथूमलकी टांग बचपनमें कट गई थी, वर्षों उन्होंने कष्ट सहा और उचित लकड़ीकी टांग बनवानेमें बहुतसा द्रव्य खर्च किया। यह अंगरेज़ी भाषा नहीं जानते। साधारण हिन्दी लिख पढ़ लेते हैं। कानसे बहिरे भी हैं। अपनी टांगके अनुभवसे इनके मनमें जो जो विचार नई लकड़ीकी टांग बनानेके संबंधमें आये, उनके अनुसार बढ़ईसे काम कराते रहे और दो वर्षों के लगातार प्रयोगोंमें बहुत धन नष्ट कर चुकनेके पीछे अन्तको सिद्धि प्राप्तकी। जैनी होनेसे इन्होंने कभी मांस मदिराका सेवन नहीं किया है। इनके विचार सर्वहित संबंधी हैं। मज़हबी तंगदिली इनको छू नहीं गई। यह सदाचारी पुरुष हैं। ४२ वर्षकी इनकी आयु है। रहनेवाले यह पंजाबके अमृतसर नगरके हैं।

—आत्माराम अमृतसरी।

सिरका दर्द

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

बदनके सब हिस्से एक दूसरेसे सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए बुख़ार, पेटकी खराबी, सर्दी और जुक़ाम, जोड़ोंका दर्द, धूपकी गर्मी, कमज़ोरी, बाहरी चोट आदि कारणोंसे भी सिरमें दर्द प्रायः हो जाता है। इसलिये इस मर्ज़का इलाज हम अलग अलग लिखते हैं, जिससे मनुष्यको दर्द होनेका कारण मालूम हो जानेपर वह ठीक दवा खा सके।

[Homeopathy होमियोपैथिक चिकित्सा]

१ सर्दीके कारण जब दर्द हो तो एकोनाइट, आरसेनिक, बैलेडोना, ब्राइनिया, कैमोमिला आदि देना चाहिये।

२—जब दर्द गर्मीके कारण हो तो एकोनाइट, बैलेडोना, ब्राइनिया और कार्बोवेजीटेबिलस देना चाहिये।

३—जब दर्द धूपकी गर्मीके कारण हो जाय तो आरनिका, बैलेडोना या नक्सवोमिका देना चाहिये।

४ जब सिरमें दर्द अधिक बदनकी मिहनत या थकावटसे हो तो आरसेनिक, आरनिका, ब्राइनिया और रहूस टौक्स देना चाहिये।

५—जब सिरमें दर्द लिखने पढ़ने या दिमाग़-की मिहनतके कारण हो तो औरम, कैलकेरिया-कार्ब, फ़ासफ़ोरस और सलफ़र आदि देना चाहिये।

६—जब बदहज़मीके कारण हो तो आरसेनिक, ब्राइनिया, आईपीकौक, पलसेटिला और सलफ़र आदि देना चाहिये।

७—जब कब्ज़के कारण हो तो नक्सवोमिका, ओपियम या सलफ़र देना चाहिये।

८—जब गठियाके कारण हो तो आरनिका, इगनेशिया, सीपिया और सलफर आदि देना चाहिये।

९—जब ठंडे पानीसे ज़्यादा देरतक नहानेके कारण हो तो कैनथ्राईडीज़, पलसैटिला और रहूसटौकस आदि देना चाहिये।

१०—जब खाँसीके कारण हो तो एकोनाइट, बैले-डोना, ब्राइनिया और नक्सवोमिका आदि देना चाहिये।

११—जब चोट आनेके कारण हो तो आरनिका देना चाहिये और टिन्चर आरनिका या आरनिका की गोली या अर्क दर्दकी जगह मलना चाहिये।

१२—अगर जागनेके कारण हो तो कैलकेरिया, लैचैसिस ? और पलसैटिला आदि देना चाहिये।

१३ जब शराब, भंग या और नशेकी चीज़ पीनेके बाद दर्द हो तो कर्बोवेजीटेबिलस और नक्सवो-मिका और ओपियम आदि देना चाहिये।

१४—अगर दर्द कभी एक तरफ़ और कभी दूसरी तरफ़ हो तो मरक्यूरियस, सीपिया और शिलि-सिया आदि देना चाहिये।

१५—जब दर्दके साथ जी मिचलाये और कै हो जाय तो चाइना, कौफ़िया, फ्रेटीना, थ्यूजा और विरेट्रम-एल्ब देना चाहिये।

१६—जब दर्द पेटकी खराबीके कारण हो तो नक्सवोमिका, पलसेटिला और सीपिसे या आदि देना चाहिये।

१७—अगर दर्द दाहिनी ओर हो तो केलकेरिया, ड्रोसिरा, ग्रिफ़ाईटीज़ और यदि बाईं ओर हो तो कैपसिसेकम, कौलोसिन्थिस, और मरक्यूरियस आदि देना चाहिये।

१८—यदि दर्द मासिकधर्मके रुक जानेके कारण हो तो साईक्लमैन और पलसैटिला एक दूसरे के बाद देना चाहिये।

जो जो कारण ऊपर लिखे हैं उनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों कारण सिरके दर्दके होते हैं और इन सबके मालूम करने और इलाज करनेके लिए बड़े ग्रन्थोंके पढ़नेकी आवश्यकता है। साधारण आवश्यक दवाएँ ऊपर लिख दी गई हैं।

भुनगा पुराण

[ले०—प्रो० रामदास गौड़, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

भुनगा ऋषियोंकी इतनी उत्कंठा और अपरिमित श्रद्धा देख श्री भुनगेश्वरजी प्रसन्न हो बोले-"हे ऋषिकुमारो, तुम धन्य हो, इस घोर कलिकालमें ज्ञान-विज्ञानकी ओर तुम्हारी ऐसी रुचि सराहनीय है। तुमसे सचमुच भुनगा कुलको बड़ा गौरव, असीम सम्मान, प्राप्त है; तुम जैसे धर्म्मात्मा इस भूतलपर अबतक विचरते हैं, यही बात है कि अनेक पातकोंके बोझसे लदी भगवती वसुन्धरा रसातल जानेसे बची हुई है। जो प्रश्न तुमने किये हैं, यद्यपि बड़े कठिन हैं, बड़े दुर्बोध हैं, और मुझे इनके वर्णनमें अत्यन्त परिश्रम होगा, तथापि तुम लोगोंकी श्रद्धा भक्ति देखकर तुम्हारी प्रार्थनाको अस्वीकार करना भी दुस्तर कार्य्य है। अब मैं तुम्हारे प्रश्नोंका विधिपूर्वक उत्तर देता हूं, मन लगाकर सुनो।

हे मुनियो! आकाश क्या है, यह बड़ा विकट प्रश्न है। हम किसी बातको इंद्रियोंके द्वारा ही जानते हैं। हमने एक हरी भरी रमणीय वाटिकामें प्रवेश किया, गुलाबकी कलियां चटक रहीं थीं। कोमल कोमल पँखडियोंपरसे ओसकी बूदें ढलक रहीं थी, रंग बिरङ्गे फूलों और स्वादिष्ट फलोंसे वृक्ष लदे हुए थे, फूलोंकी भीनी भीनी गमकसे तबीयत मस्त हो रही थी। थकानके कारण शरीर भारी लगता था, सो हम एक घासके सुन्दर फूल पर बैठ गये और वाटिकाकी शोभाका आनन्द लूटने लगे। इन सब क्रियाओंमें हमने कलियोंका चटकना सुना, कोमलताको स्पर्शसे जाना सुन्दरताको देखा, फलोंको चखकर स्वाद जाना और सूंघकर सुगन्धका पता पाया। हमको इन बातोंसे जान पड़ा कि हमने वाटिकाको कान त्वचा, आंख रसना और नाक सबके द्वारा जाना, बल्कि हमने थकानके कारण अपने शरीरके बोझको भी जान लिया, जो छठी इन्द्रिय मनका व्यापार है। इन छहों इन्द्रियोंसे हमने परीक्षा की, परन्तु सच बात यह है कि जो कुछ हमने जाना वह सब इन्द्रियोंका विकार है।

हमारे कानोंने जो शब्द सुना, क्या था? वायुमें एक तरहकी कँप कँपी थी जिसकी चोट कानके परदेपर लगी और हमको वही चोट शब्द होकर जान पड़ी। हमने जो कोमल और ठण्डा ठण्डासा अनुभव किया, क्या था? किसी पदार्थके निकट आनेसे हमारी त्वचाके नाड़ी जालमें एक तरह की कँपकँपी उत्पन्न हुई, जिसको हमने कोमलता और ठंड कहा। हमने जो सुंदर रूप देखा क्या था? सूर्य्यकी किरणें जो अनेक रंगोंकी हैं घासपर पड़ीं, उनमेंसे हरी किरणोंको छोड़ सभी किरणें घासमें समा गयीं। हरी

किरणें तारतम्यके साथ हमारी आंखोंकी ओर लौटीं और परदेपर पड़कर उन्होंने हमारी आंख-की नाड़ियोंपर विशेष प्रभाव डाला जिससे हमने हरा रङ्ग तथा पत्तियोंके आकारकी कल्पना की। हमने स्वाद कैसे जाना? हमारी जीभके नाड़ी-जालके निकट वस्तुके आनेसे हमारी नाड़ियोंमें एक विशेष प्रकारका कम्पन हुआ, जिससे हमने विशेष स्वादकी कल्पना की। हमने फूलोंके सुवा-सका पता कैसे पाया? फूलोंका कुछ वायव्य वा सूक्ष्म अंश उड़कर हमारी नाकके नाड़ीजालके निकट आया, जिससे घ्राण-नाड़ियोंमें एक विशेष प्रकारका कम्पन हुआ, जिससे हमने विशेष प्रकार-के गंधका अनुभव किया। किसी वस्तु वा अपने शरीर और पृथ्वी वा अन्य बड़े पिंडमें परस्पर खिंचाव होनेसे हमारी विशेष नाड़ियोंमें विशेष कँपकँपी हुई, जिसे हमने बोझ बताया। निदान हमने शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध और भार इन छहों अनुभवोंको मिला जुला कर वाह्य संसारकी समस्त वस्तुओंके गुणोंकी कल्पना कर ली और मूँछोंपर ताव देकर कह बैठे कि हमने वस्तुओं-को जान लिया। हम संसारके ज्ञाता सहजमें ही बन बैठे। परन्तु सच्ची बात यह है कि हमने वस्तुको जाना ही नहीं। हमने वस्तुके उन्हीं गुणोंको जाना जिनका प्रभाव हमारी इन्द्रियोंपर पड़ता है। हे भुनगाभूषणो, जब तक मैं इन साधारण शरीरोंमें बिचरता था, इसी भ्रममें पड़ा हुआ था कि वाह्य वस्तुकी सत्ता वैसी ही है जैसी हम अपनी इन्द्रि-यों द्वारा जानते हैं। जब मैं परमाणु देहमें पहुंचा, पता चला कि इन्द्रियोंसे हमें सदा धोखा ही धोखा खाना पड़ता था, सचमुच हम कुछ जान नहीं पाते थे। इन्द्रियोंके प्राचीरमें बैठे बैठे कहीं किसी झरोखेसे भी अपने बाहरकी वस्तुकी वास्त-विकताका पता नहीं लगता था। जब वाह्य स्थूल पदार्थोंका सच्चा और यथार्थ ज्ञान इन्द्रि-योंके द्वारा होना असम्भव है, तब अकाशका ज्ञान जो पांचोंमें सबसे सूक्ष्म तत्त्व है, हमें साधारण प्रश्नोत्तरों और उदाहरणोंसे हो जाना असम्भव है। इसीलिए हे भुनगा ऋषियो, यह बिना बताये कि आकाश क्या है, मैं अपने अनुभव कह चलूँ तो सम्भव है कि प्रसंगानुसार तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर भी मिल जाय और अनुभवजन्य व्याख्यासे यह दुर्बोध विषय भी तुम्हें सुबोध हो जाय।

हे भुनगाभूषणो, मैं तुमसे कह चुका हूं कि जिस समय उस महा समरक्षेत्रसे बड़े वेगसे खंड खंड होकर मैं निकला मेरे असंख्य शरीर हो गए, जिनकी सूक्ष्मताके आगे मेरा पहलेवाला दैत्यदेह एक बड़े भारी ब्रह्माण्डके समान दिखाई पड़ता है। मेरे शरीरोंकी गिनती तो नहीं हो सकती थी परन्तु मेरी अहन्ता मेरे सभी शरीरोंमें एक ही थी। हे महर्षियो, हमारी कल्पनामें यह बात नहीं आ सकती कि असंख्य शरीरोंमें एक ही अहन्ताका अनुभव कैसा होता है। तुम यह नहीं जान सकते कि समूचे ब्रह्माण्डके ब्रह्माण्डमें गणनातीत शरीरोंमें मैं ही मैं था। यह मेरे लिए कितने बड़े आनन्दकी बात थी। मेरे करोड़ों शरीर बड़े भयंकर वेगसे इस ब्रह्माण्डके भीतर चक्कर लगा रहे थे। इस वेगका अनुमान तुम्हारे लिए बड़ा कठिन है। मोटी रीतिसे ऐसा समझो कि जितनी तेज़ीसे प्रकाशका कम्पन होता है और उसकी लहरें चलती हैं उतने ही वेगसे मेरे शरीर चक्कर लगा रहे थे। जितनी देरमें मानव ब्रह्मा-ण्डका एक पल होता है उतनी देरमें हमारे शरीर साढ़े चार लाख मील मानव ब्रह्माण्डके अनुसार चक्कर लगा जाते थे। या यों समझो कि जितनी देरमें मानव ब्रह्माण्डका एक पल होता है उतनी देरमें हमारे ब्रह्माण्डका एक कलि-युग हो जाया करता था। इस ब्रह्माण्डका नायक और नियन्ता मैं ही मैं था। और यह ब्रह्माण्ड भी मैं ही था। मेरे अतिरिक्त असंख्य गणनातीत ब्रह्माण्ड आकाशके सत्ता महार्णवमें हिलोरें ले रहे थे। जिधर निगाह पड़ती है ब्रह्माण्ड ही

ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ते हैं। इन ब्रह्माण्डोंकी स्थिति उस महार्णवमें बड़ी अद्भुत थी। महार्णवका तरल पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म कणोंका बना हुआ था परन्तु यह महार्णव इतना ठोस था, इतना घना था कि यदि धातुओंमें सीसा जितना घना है और जितना भारी है यदि घनत्वमें दो अरब-गुना बढ़ जाय तो शायद इस आकाश पदार्थकी घनताकी समता कर सके। साथ ही यह आकाश महार्णव ऐसा तरल और ऐसा सूक्ष्म दीखता था कि हम लोगोंमें जो ब्रह्माण्ड अत्यन्त विकट और भयंकर वेगसे चक्कर लगा रहे थे उनको भी लेश मात्र संघर्षण, तनिक भी रुकावट, नहीं होती थी। हे महर्षियो! यह अद्भुत लीला है कि आकाशकी घनता ऐसी भयानक हो और साथ ही उसकी तरलता और सूक्ष्मता भी ऐसी विचित्र हो। मैं जानता हूं कि तुम्हारी कल्पनामें यह दोनों विरुद्ध बातें नहीं आ सकतीं। परन्तु मेरा तो अनुभव है, मेरे लिए यह बातें प्रत्यक्ष हैं।

मेरे शरीर जितने सूक्ष्म थे उतनेही तेजोमय भी थे। मेरे शरीरोंके प्रकाशसे ही सारा ब्रह्माण्ड जगमगा रहा था। इस ब्रह्माण्डमें जिसे मैं अपने शरीरका समूह कह रहा हूं कैसे लोग बसते थे, उनकी कैसी सभ्यता थी, वह लोग आस्तिक थे वा नास्तिक थे, उनमें जन्म, विवाह मरण आदिकी क्या व्यवस्था थी, उनकी शक्ति कितनी थी, उनके आकार प्रकार कैसे कैसे थे, यह सब जानना मेरे लिए असंभव था। क्योंकि यद्यपि मैं अपने पहलेके दानवी शरीरकी अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म हो गया था तथापि अपने ब्रह्माण्डका नायक और सर्वव्यापक देवता था। इतना बड़ा था कि अपने ब्रह्माण्डके सूक्ष्म जीवों तक मेरी निगाहका पहुंचना असम्भव था। मुझे अनुभवसे यह भी प्रतीत हुआ कि इसी तरह सूर्य्य भी अपने ब्रह्माण्डके सूक्ष्म जीवोंसे इसी प्रकार अनभिज्ञ होगा और मानव ब्रह्माण्डका अधिष्ठाता मनुष्य भी अपने शरीर ब्रह्माण्डमें रहनेवाले असंख्य सूक्ष्म प्राणियोंसे बिलकुल बेख़बर होगा।

हे भुनगानन्दनो, मुझे अपने दिव्य ज्ञानसे यह विदित हो गया है कि भविष्यकालमें जब इस महासर्गकी कथा महर्षि व्यास लिखने बैठेंगे तो इस मेरे ब्रह्माण्डका नाम परमाणु रखेंगे और मेरे शरीरोंको विद्युत्कण कहेंगे। इसीलिए हे महर्षियो! मैं भी इन्हीं नामोंसे अपनी कथा विस्तार रूपसे कहूंगा। चित्त लगा कर सुनो।

इत्यार्षे श्री भुनगा महापुराणे परमाणु ब्रह्माण्ड वर्णनोनाम नवमोऽध्यायः।

वैज्ञानिक शिक्षासे देशोन्नति

(ले०—श्रीयुत सत्यभक्त जी,)

विज्ञान ज्ञानका श्रेष्ठ अंग है। यदि केवल इसके शब्दार्थपर ध्यान दिया जाय तो यह ज्ञानकी अधिकता और श्रेष्ठताको प्रकट करता है, जो आजकलके किये जानेवाले अर्थसे विरुद्ध नहीं है। आजकल विज्ञान विशेषतः 'साइन्स' (Science) के लिये प्रयुक्त किया जाता है। और यह 'साइन्स' सर्व श्रेष्ठ ज्ञान है। अतएव 'विज्ञान' शब्दका साइन्सके लिए प्रयोग किया जाना भी ठीक है। संसारकी वर्तमान अवस्थामें विज्ञानसे उच्च कोटिका और अधिक उपयोगी ज्ञान मिल सकना कठिन है। कितने ही मनुष्य अध्यात्म विद्याको इससे बढ़ कर बतलाते हैं और एक दृष्टिसे वह ठीक भी है, पर तोभी निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि सांसारिक कार्योंमें उससे भी पहला नम्बर विज्ञानका है। बिना विज्ञानके संसार कुछ है ही नहीं यह, कहना अतिशयोक्ति नहीं है। साथ ही यह जान लेना भी अच्छा होगा कि सर्वसाधारण जैसा समझते हैं विज्ञान और अध्यात्म विद्या परस्पर विरोधी

नहीं हैं। आंतरिक दृष्टिसे देखनेपर वे दोनों एक ही मालूम पड़ते हैं—एक प्रकृतिकी खोज तथा अन्वेषण करता है, दूसरा जीव और आत्माका रहस्य मालूम करता है और दोनोंका अन्त एक ही स्थानपर जा कर होता है। इस प्रकार यह एक दूसरेके सहायक हैं और दोनों समान उपयोगी हैं। किसी एकको ही आवश्यक और श्रेष्ठ बताना भ्रम मात्र है।

वैज्ञानिक शिक्षाका क्षेत्र तथा उससे होनेवाले लाभ असीम और असंख्य हैं। इसीके सहारे मनुष्य अपनी उस आद्यावस्थासे छुटकारा पा सका है, जिसमें वह बिलकुल बनपशुओंके समान था, और कच्चा मांस खाकर नग्न रहते हुये ही समस्त जीवन व्यतीत करता था। फिर ज्यों ज्यों मनुष्यका ध्यान विज्ञानकी ओर झुकता गया और वह परिश्रमपूर्वक इस विषयमें खोज करता गया त्यों त्यों उसकी उन्नति होती गई। जिस जातिने इस ओर जितना ध्यान दिया उसकी सभ्यता तथा उन्नतिका परिमाण उतना ही बढ़ता गया। प्रत्येक देशकी वर्तमान अवस्था इसके प्रमाण स्वरूप देखी जा सकती है। अफ्रीकाके हब्शियों, अरबके रहनेवालों, अस्ट्रेलिया, फिजी, न्यूजीलेंड, अमेरिका आदिके आदिमवासियोंकी दशा विना वैज्ञानिक उन्नतिके वैसी ही अवनत बनी हुई है और विज्ञानकी आराधना करनेवाले इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि योरोपीय देश आजकल जिस सर्वोच्च आसन और पदको प्राप्त किये हुये हैं वह भी सबको मालूम ही है। एक समय था जब कि भारतवर्ष भी विज्ञानका भक्त था। यहां बड़े बड़े विज्ञानी थे और सर्वसाधारणका विज्ञानसे पूर्ण प्रेम था। उस समय यहांकी उन्नति ऐसी हुई कि उसीके कारण संसारके अनेक शक्तिशाली तथा सभ्य राष्ट्रों द्वारा इस हीन दीन दशामें भी यह सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है। अतएव इससे भली भांति मालूम होता है कि वैज्ञानिक शिक्षाकी आवश्यकता प्रत्येक देशको है। जिसे अधोवस्थासे निकलकर उच्चावस्थामें आनेकी इच्छा है, जो अपने अभावों और आवश्यकताओंको सरलता पूर्वक पूर्ण करना चाहता है और जिसे विद्या, बुद्धि, कलाकौशल, शिल्प वाणिज्य आदिमें उन्नति करनेकी इच्छा है—ऐसे प्रत्येक देशका विज्ञानकी आराधना करना परम कर्तव्य है।

कोई भी देश क्यों न हो, उसे सबसे प्रथम अन्योंके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेकी चिंता पड़ती है। जब देशवासी शत्रुओंके आक्रमणसे निर्भय और निश्चंत हो जाते हैं, तभी वे विद्या, बुद्धि, कला कौशल आदिकी वृद्धिकी ओर दत्तचित्त होते हैं। पुरुष परीक्षामें कहा भी है।

> शस्त्रविद्या स्वभावेन सर्वाभ्योऽस्ति महीयसी।
> शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते॥

सो यह देश-रक्षाका कार्य विज्ञानकी सहायतासे जितनी उत्तमता और सरलतासे हो सकता है, अन्य उपायोंसे वैसा कदापि नहीं हो सकता। विज्ञानके द्वारा ही मनुष्य आजकल नवीन अस्त्र शस्त्र, बारूद एवम् अन्य तीव्र मसाले प्रस्तुत करके शत्रुओंसे अपने देशकी रक्षा करते हैं। यह भी प्रत्यक्ष बात है कि आधुनिक शस्त्रोंवाले सो मनुष्य भी लाखों शस्त्र-हीन मनुष्योंका सामना कर सकते हैं। भला आजकलकी मशीनगनोंसे होने वाली गोला-वृष्टि, बन्दूकोंसे मेहकी झड़ीकी तरह बरसनेवाली गोलियों, भीमकाय तोपोंके गोलों, आसमानसे वायुयान द्वारा की गई बमवाजीके सामने प्राचान तलवार, धनुषबाण, भाले, गदा आदि धारण करनेवाले योद्धा किस प्रकार ठहर सकते हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इस प्रकारके मनुष्य-संहारक अस्त्र शस्त्र आविष्कार करके ईश्वर की सृष्टिका नाश करना तथा दूसरे देशोंको पददलित करना कोई भला और महत्वपूर्ण कार्य है। वरन्

इसका आशय इतना ही है कि विज्ञानके बलसे दुर्बल जाति भी प्रबल आक्रमणकारीसे अपनी रक्षा कर सकती है। दूसरे यह बात विज्ञानके बलको भी प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूपसे बतलानेवाली है। वैसे तो आजकल प्रत्येक जाति विज्ञानकी थोड़ी बहुत सहायता स्वरक्षाकेलिए लेती ही है, पर कितने ही स्थानोंमें केवल विज्ञानकी सहायतासे बड़ी सेनाओंको हरा देने और अपने देशकी रक्षा करनेकी घटनाएँ देखी जाती हैं, जो विज्ञानके बलको बड़ी उत्तमतासे प्रत्यक्ष करती हैं।

अर्कमीदिसका नाम विज्ञान ज्ञाताओंसे छिपा नहीं है। जब रोमनोंने उसके निवास स्थान साइराक्यूज़पर चढ़ाई की तो उसने तरह तरहके यन्त्र वैज्ञानिक युक्तियोंसे आविष्कार करके कोई तीन वर्ष तक अपने नगरकी रक्षा की। उनका वर्णन पढ़कर आज भी महदाश्चर्य होता है। वह आतिशी शीशोंके यन्त्र द्वारा दूरसे ही रोमियोंके जहाजोंमें आग लगा देता था। पत्थर, लकड़ीके कुंदे आदि वस्तुएँ बड़ी दूरतक फेंकनेवाली मशीनें भी उसने बनाईं, जिससे रोमनोंकी सेनाकी बड़ी क्षति हुई। उसने और भी कितने ही यन्त्र बनाये, जिनके द्वारा साइराक्यूज़ जैसा छोटा राज्य महान रोमन साम्राज्यकी अजेय सेनाको वर्षोंतक रोके रहा। वर्तमान योरोपीय महायुद्धमें भी विज्ञानकी महिमापूर्णरीतसे देखी जा रही है। उसके बलसे ही अकेली जर्मनी संसारके पांच बड़े बड़े राष्ट्रोंके साथ चार वर्षोंसे बराबर मुकाबिला कर रही है। जर्मन लोग कभी बड़ी तेज बारूद निकालते हैं, कभी ६३ मनका गोला फेंकनेवाली भी भीमकाय तोपें बना डालते हैं। यह भी समाचार आया है कि उसने ७५ मील तक गोला फेंकनेकी परम आश्चर्यकारक विधि भी विज्ञानके बलसे ढूंढ़ निकाली है। वे युद्ध क्षेत्रमें कभी ज़हरीली गैस छोड़ते हैं और कभी तरल अग्निकी वर्षा करते हैं। वायुयानों और पनडुब्बी नावोंको असाधारण शक्तिशाली बनाकर शत्रुको व्यस्तकरना तो उसका नित्यप्रतिका कार्य है। यह सब विज्ञानका प्रताप है। अंगरेज़ोंने भी प्रत्युत्तरमें कितनी ही नवीन वस्तुओंका आविष्कार किया है और उन्हींके कारण यह भी उसका सामना करनेमें समर्थ हुए हैं। इन बातोंसे क्या यह भली भांति प्रमाणित नहीं होता कि विज्ञानमें देश रक्षाकी बड़ी भारी शक्ति है।

इसके अतिरिक्त देशवासियोंके जो अभाव और आवश्यकताएँ हों उनका मोचन विज्ञान द्वारा सरलतापूर्वक हो सकता है। इसका प्रमाण भी इस महायुद्धमें सबको मिल गया है। युद्धके कारण एक देशसे दूसरेमें सामान जाना बन्द हो गया है। जहां जो सामान नहीं होता उसके बिना वहांके निवासियोंको बड़ा कष्ट हो रहा है। युद्धकेलिए भी कितनी ही वस्तुओंकी बहुत अधिक परिमाणमें आवश्यकता हो रही है। उन सब वस्तुओंका अभाव विज्ञान द्वारा तरह तरह के उपाय निकाल कर किया जा रहा है। इस प्रकार कपड़े और चमड़ेकी कमी होनेसे जर्मनीने काग़ज़के कपड़े, टोपी और जूते बना लिये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने रस्से रस्सियोंके लिए सनकी जगह अपने यहाँ दलदलोंमें उत्पन्न होनेवाले एक वृक्षसे काम लिया है, जिसकी ओर अभीतक किसीका ध्यान नहीं गया था। दूसरा उदाहरण एडीसन साहिबका निकाला निकिलधातुका काग़ज़ है। वर्तमान युद्धके कारण काग़ज़ भी इतना महँगा हुआ है कि मिलना भी कठिन हो रहा है। इस अभावको देखकर अमेरिकन विश्वकर्मा एडीसनने निकिलका काग़ज़ बना दिया जो मजबूती, स्याही ठहरने, पतलेपन आदि सब बातोंमें प्रचलित काग़ज़से श्रेष्ठतर है। यह बातें उदाहरण की दी गईं। संसारके अन्य देशोंमें लाखों अभावोंकी पूर्त्ति विज्ञान द्वारा हुई है और हो रही है।

आजकल राष्ट्रोंकी समृद्धिका एकमात्र कारण विज्ञान नहीं है। जिसके यहाँ वैज्ञानिक शिक्षाका

जितना प्रचार है, वह उतना ही समृद्ध है और जो उससे विमुख है वह दीन हीन है। उदाहरण-को भारत, चीन ईरान और इंगलैंड, जर्मनी आदि देखे जा सकते हैं। प्रथम श्रेणीके देश अपनी विज्ञान हीनताके कारण निरन्तर निर्धन होते जाते हैं और दूसरी श्रेणीवाले उत्तरोत्तर धनी। यह सब विज्ञानकी ही महिमा है। भारत, ईरान आदि जैसे देशोंके निवासियोंका भली भांति पेट नहीं भरता और उनकी आवश्यकताएँ प्रायः अपूर्ण रहती हैं। इनकी सरकारोंको कभी किसी राष्ट्रीय कार्यके लिए कुछ रुपयेकी आवश्यकता होती है तो दस बीस करोड़में ही बड़ी कठिनता जान पड़ने लगती है और खजाने सदा खाली ही दिखलाई दिया करते हैं। उधर इंगलैंड आदिको देखिये जहां प्रत्येक व्यक्ति सुखपूर्वक रहता है, और आवश्यकताओंको सरलतापूर्वक पूर्ण कर लेता है। वहांकी सरकार भी इतनी धनवान है कि दस करोड़ रुपये प्रति दिनके हिसाबसे चार साल तक व्यय करनेमें समर्थ हो सकी है। वास्तवमें इस यूरोपीय महायुद्धका व्यय हम लोगोंको आश्चर्यमें डाल देता है। हमारी समझमें यही नहीं आता कि यह राष्ट्र इतने धनवान कैसे हो गये जो नित्यप्रति दस दस करोड़ रुपये वर्षौंतक व्यय कर सकते हैं। पर कारण यही है कि यह सब विज्ञान-के कारण बढ़े हुए कला कौशल तथा व्यवसाय वाणिज्यका फल है, जिसका हमारे देशमें नितान्त अभाव है। इंगलैंडने भांति भांतिकी कल और उपाय आविष्कार करके सूती कपड़ेके कार्यमें बड़ी उन्नति की है और उसके कारण वह प्रति वर्ष करोड़ों रुपयेका लाभ उठाकर धनवान बनता जाता है। इसी प्रकार जर्मनीका रंग तथा खिलोने आदिका व्यवसाय है। वह विज्ञान बलसे कोयले जैसी सामान्य वस्तुसे नाना प्रकारके सुन्दर रंग, तरह तरहके सुगंधित इत्र, एवं सैकरीन आदि अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ प्रस्तुत करके तथा उन्हें संसारके सम्पूर्ण बाजारोंमें अधिकमूल्य पर बेचकर आज दूसरा कुबेर बन बैठा है। जापान भी वर्तमान समयमें अपनी दियासलाई, मोजे, बनियान आदि वस्तुएं सस्ते मूल्यपर बनाकर अर्बों रुपये उत्पन्न कर रहा है। यह सब देश विज्ञान बलसे ही वस्तुएं सस्ते दामोंपर बेचकर इस प्रकार समृद्ध बन रहे हैं।

विज्ञान-बलसे केवल कला कौशल और व्यापार द्वारा ही देश समृद्ध नहीं होता, वरन् पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति बढ़ाकर, ऊसर पृथ्वीको हरी भरी भूमिमें, परिवर्तन करके देशकी खनिज और वानस्पतिक सम्पत्तिका यथायोग्य उपयोग करके, व्यर्थ जानेवाली वस्तुओंको लाभदायक कार्योंमें प्रयुक्त करके भी देशको अमित लाभ पहुंचाया जा सकता है। अमेरिकाके कैलीफोर्निया प्रांतकी कितनी ही पृथ्वी पहिले ऊसर पड़ी हुई थी। पर अमेरिकनोंने नाना प्रकार-के उपायों द्वारा उसीको इतना फलप्रद बना लिया कि अब उससे देशको करोड़ों डालरोंकी आय होती है। अमेरिकामें ऐसी भूमिके लिये सौ कोस दूरसे जल लाया जाता है। बहुत अधिक कड़ी पृथ्वीको डाइनेमैट द्वारा ठीक बना लिया जाता है। जहां जल किसी प्रकार मिल ही न सके वहांके लिए उन्होंने निर्जल कृषिकी विचित्र पद्धति निकाललो है। इस प्रकार यह लोग अपने यहांके कोयले, लोहे, अन्य धातुओं, मिट्टीके तेल आदिको भी बहुत अधिक परिमाणमें और थोड़े व्ययमें निकालते हैं। इससे भी देशको कुछ कम लाभ नहीं होता। और तो क्या, कुछ समय पूर्व समाचार पत्रोंमें देखा था कि रस निकाल लेनेके पीछे बची ऊखकी छूछसे जो सब देशोंमें अबतक योंही फैंकी जाती है अमेरिकाके किसी व्यक्तिने कागज बनाने की विधि निकाली है। * एकतो वे देश हैं; जिनमें इसप्रकार वैज्ञानिक उपायोंसे देशकी सम्पत्ति निरंतर बढ़ाई जा रही है। इसके विरुद्ध हमारे

* यह पदार्थ खादके काममें भी आता है। वि० सं०

भारतको देखिये जहां वैज्ञानिक शिक्षाका प्रायः अभाव है। इसीलिए यहांकी उर्वरभूमि भी क्रमशः ऊसरमें परिणित होती जा रही है। ऊसरको काम लायक बनानेका तो विचार हो कहां, खनिज पदार्थोंसे किसी प्रकारका लाभ नहीं उठाया जाता। व्यर्थपदार्थोंको काममें लाकर लाभदायक बनाना तो दूर रहा सैकड़ों उपयोगी पदार्थ सदा योंही नष्ट होते रहते हैं। उदाहरणके लिए खाद सम्बन्धी दुर्दशा पर्याप्त है। उद्योग धन्धे सब सुषुप्ति अवस्था-में पड़े हुये हैं और इन सब कारणोंसे यहांकी जैसी अवस्था हो रही है वह भी किसीसे छिपी नहीं है।

मनुष्यके लिए अच्छा स्वास्थ्य और आरोग्य ईश्वरकी परम-कृपा स्वरूप हैं। इनके बिना मनुष्य जीता हुआ भी मरेसे बुरा है। कहना व्यर्थ है कि वर्तमान समयमें स्वास्थ्य रक्षा और आरोग्य विज्ञानके सब तरह अधीन हैं। आजकल नगरोंकी घनी बस्तीमें रहना पड़ता है, अप्राकृत रूपसे बन्द स्थानोंमें देर तक परिश्रम करना पड़ता है, रहन सहनके निमय बिगड़ गये हैं, लोगोंने संयम पूर्वक रहनेको बिलकुल त्याग दिया है, और मनमानी खूब करने लगे हैं। तरह तरहकी कुरीतियां समाजमें प्रचलित हो गई हैं। इन सब कारणोंसे रोग भी निरंतर बढ़ते जाते हैं। आरोग्यता मनुष्यसे बिदा लेती जा रही है। स्वास्थ्यने भी कूच कर दिया है। ऐसी अवस्थामें रोगोंका निवारण और स्वास्थ्य संरक्षणका कार्य चिकित्सा विज्ञान द्वारा ही हो रहा है। उसीके द्वारा नाना प्रकारकी ओषधियों और उपायोंका आविष्कार करके रोगोंको दूर किया जाता है। स्वास्थ्य रक्षाके नियम भी उसीसे मालूम होते हैं। कीट-विज्ञान द्वारा हम अनेकों अपकारी वस्तुओंसे बचे रहते हैं। शारीर विज्ञानकी सहायतासे हम उन उपायोंका अवलम्बन कर सकनेमें समर्थ होते हैं, जिनसे देहका कार्य बिना व्याघातके चलता रहे, और हमारा स्वास्थ्य स्थिर रहे। इतना ही नहीं वरन् यदि हम अंगहीन भी हो जायं तो अब विज्ञानकी सहायतासे हमारी वह त्रुटि भी पूर हो जाती है। अब ऐसे ऐसे कृत्रिम अंग बन गये हैं जिनसे मनुष्य बहुत सुविधा पूर्वक अपने समस्त कार्य कर सकता है। इस विषयके आविष्कार इस महायुद्धके कारण बहुत अधिक हुये हैं। और वे बहुत ही लाभ दायक तथा महत्वपूर्ण हैं।

[शेषफिर]

परिषद् समाचार

परिषद्के मान्य सभ्य डा० गणेशप्रसाद, एम. ए., डी. एस-सी. (इत्यादि) ने कलकत्ता यूनीवर्सिटी कालेज ओव् सायंससे पदत्याग करके बनारस हिन्दू विश्व विद्यालयके प्रिंसिपेलका पद स्वीकार कर लिया है। हिन्दू विश्वविद्यालयको हम बधाई देते हैं कि उसे ऐसे योग्य प्रिन्सीपेलकी नियुक्ति करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

* * * *

'विज्ञान' के जन्मदाता और परिषद्के प्रेमी श्रीयुत रामदास गौड़, एम. ए. की नियुक्ति भी हिन्दू विश्वविद्यालयके प्राच्य विभागमें हो गई है। आपने म्योर कालेजमें २२ जुलाईको इस्तैफा दे दिया और बनारस चले गये।

* * * *

परिषद्के सभ्य राय ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, एम. ए. को, भारत सम्राट्के जन्म दिनके उपलक्ष्यमें, डी. एस. ओ. की उपाधि मिली है। आपको बधाई है।

* * * *

परिषद्के सभ्य श्रीयुत नगेन्द्रचन्द्र नाग, एम. ए., एफ. आई. सी., जो हिन्दू विश्व विद्यालयमें रसायन शास्त्रके अध्यापक थे, गतमाससे औद्योगिक रसायनके मयसूर अध्यापक नियुक्त हुए हैं।

आपको बधाई है। आपने नीली लाल, और काली पेंसिलें बनाई हैं, जो विलायती पेंसिलोंसे भी अच्छी ठहरी हैं। कांचपर निशान करनेकी पेंसिलें भी बनाई हैं। गत दो मासोंसे आप ब्लुब्लेक इंक (स्याही) बनानेकी युक्तिपर प्रयोग कर रहे हैं और कृतकार्य हो चुके हैं।

आपने शराब आदिमें मद्यसार (alcohol) निकालनेकी बड़ी सुगम रीतिका आविष्कार किया है, जिसका उल्लेख विज्ञानके अगले अङ्कमें किया जायगा।

भारियमकी कच्ची धातु अलवरमें बहुत मिलती है। उसमें प्रायः भारियम गन्धेत ही होता है। इसीसे प्रो० नागने भारियम कर्बनेत, नत्रेत और हरिद बनाया है।

* * * *

परिषद्के मंत्री पं० शालग्राम, एम. एस-सी. कई महीनोंसे अमोनियम गन्धेतसे अमोनिया बनानेका प्रयोग कर रहे थे। आजकल अमोनिया मिलना बड़ा कठिन है और जिन बर्फकी कलोंमें अमोनिया काम आता है, उनके चलानेमें बड़ी कठिनाई होती है। हमारे मित्र और परिषद्के सभ्य पं० गोपालप्रसाद भार्गव, मालिक 'भार्गव आईस फेक्टरी' आगराने पं० शालग्रामसे उक्त प्रयोग अपने बर्फखानेमें कराया और हम बड़े हर्षसे लिखते हैं कि यह प्रयोग सिद्ध हो गया है और अब अमोनिया भार्गव आईस फेक्टरी आगरेसे जो सज्जन चाहें मंगा सकते हैं।

भारतमें पूंजीवालोंको 'विज्ञान' का इसी प्रकार आदर कर अपने व्यवसायोंमें उन्नति करनी चाहिये।

* * * *

परिषद्का पुस्तकालय

श्रीयुत पं० रामजीवन लाल भार्गव, भूत पूर्व तहसीलदार—धौलपुरने निम्न लिखित पुस्तकें विज्ञान परिषद्के पुस्तकालयको प्रदान की हैं। इसके लिए आपको परिषद्की ओरसे धन्यवाद देते हैं—

1. J. W. Mellor's Modern Inorganic Chemistry.

2. Hoseley's Mechanics applied to Arts.

3. Practical Physics by Rajni Kant De.

4. A class book of Organic Chemistry by. J. B. Cohen.

5. A class book of Chemistry, by Donington. (Parts I—IV.)

6. An introduction to the Study of Sound, by Rajni Kant De.

7. An exercise book of Practical Physics, by Gregory.

श्री० पं० शालग्रामजीने और प्रो० ब्रजराज बी. एस. सी. ने भी निम्नलिखित पुस्तकें प्रदान की हैं, जिसके लिए हम आप दोनों सज्जनोंको धन्यवाद देते हैः—

8. Ganots' Natural Philosophy.

9. Ganots' Popular Natural Philosophy.

जो पुस्तकें अबतक परिषद्के कार्य्यालयमें थीं। उनकी सूची नीचे दी जाती हैः—

10—16. Harmsworth's Popular Science. [I—VII Volumes.]

17—19. Harmsworth's Popular Educator.

20. Apte's English-Sanskrit Dictionary.

21. Apte's Sanskrit-English Dictionary.

22. Chamber's English Dictionary.

23. ताप

24. विज्ञान प्रवेशिका भाग १

25. مفتاح الفنون

26. حرارت

27. मधुमक्षिका।

[यह पुस्तक अध्यापक गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. ने प्रदान की थी]

29. Students' Practical Dictionary.

30. Scientific Glossary of Nagri Pracharni Sabha.

[यह पुस्तक डा० नौनिहालसिंह भार्गवने परिषद्को प्रदान की थी।]

28. विश्व व्यापार—ले० गौरीशङ्कर शर्मा पालीपाल

31. वनस्पति शास्त्र भाग १, २,–ले० महेश चरणसिंह

32. कृषी शास्त्र—ले० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए.

33. पदार्थोंके गुण व स्वभाव—ले० प्रेम बल्लम जोषी, बी. एस. सी.

34. साइन्स दर्पण—ले० भवानी दत्त पाण्डे

35. हर्बर्ट स्पेन्सरकी ज्ञेय मीमांसा—ले० कन्नोमल एम. ए.

36. " " " अज्ञेय मीमांसा " "

37. व्यापार शिक्षक भाग १—ले० गंगाशङ्कर पचोली

38. कृषि विद्या भाग ५—ईख, राव, गुड़, खांड़—ले० पं. गङ्गा शङ्कर पचोली

39. कृषि " भाग ४—दूध और उसके उपयोग ले० पं० गङ्गाशङ्कर पचोली।

40. कोकेन और उसका हानि कारक परिणाम—ले० पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव

41. उपनिषद् रहस्य, ले०ला कन्नोमल एम. ए.

* * * *

हमारे मित्र और परिषद्के सभ्य, पं० महेशप्रसाद भार्गव एम. एस-सी., को 'काग़ज़की लुगदी' का काम सीखनेके लिए संयुक्त प्रान्तकी सरकारने १५० पैाण्ड प्रति वर्षकी छात्रवृत्ति दी है। अभी एक साल तक आप लखनऊ पेपर मिलमें काम सीखेंगें, तत्पश्चात् आप इङ्गलैण्ड जायँगे।

हम आपको बधाई देते हैं।

समालोचना

हठयोग - अनु० श्रीयुत ठाकुर प्रसिद्धनारायण सिंह बी. ए., मिलनेका पता देशसुधारक ग्रंथमाला कार्यालय काशी मू० १॥)

मूल ग्रन्थ योगी रामचारकजी ने अंगरेज़ी भाषामें लिखा था। उसका यह हिन्दी रूपान्तर ठाकुर साहिब ने बड़ी योग्यतासे किया है। जो लोग अभ्यास करना चाहें इस पुस्तकके सहारे बड़ी सुगमतासे कर सकते हैं।

हमारे देशमें प्रायः लोग हठयोगके नामसे डरा करते हैं। वास्तवमें यह है भी ठीक,क्योंकि हठयोगकी बहुतसी क्रियाएँ बड़ी भयानक हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें उक्त क्रियाओंका ज़िक्र भी नहीं है। क्योंकि इसमें केवल उन्हीं साधनोंका उल्लेख है जो हठयोग तथा राजयोग दोनोंके ही अन्तर्गत हैं।

जितनी बातें इस ग्रन्थमें दी हैं, वैज्ञानिक दृष्टिसे सभी युक्तिसंगत और उपयोगी हैं। वस्तुतः यह पुस्तक स्वास्थ्यरक्षापर एक बहुत अच्छा निबन्ध है। जिन्हें अपने स्वास्थ्यके सुधारनेकी इच्छा हो वह इसे अवश्य पढ़ें।

—मनोहरलाल

सौर-पञ्चाङ्ग

कर्क-श्रावण १९७५। जुलाई-अगस्त १९१८।

रविवार		५ १३ २१	१२ ५ २८	१९ १३ ४	२६ ४ ११	
सोमवार		६ १४ २२	१३ ६ २९	२० १४ ५	२७ ५ १२	
मंगलवार		७ १५ २३	१४ ७ ३०	२१ ३० ६	२८ ६ १३	
बुद्धवार	१ आ० शु० ९ जु० १७	८ श्रा० कृ० १ २४	१५ ८ ३१	२२ श्रा० शु० १ ७	२९ ७ १४	
बृहस्पतिवार	२ १० १८	९ २ २५	१६ ९ अग० १	२३ २ ८	३० ८ १५	
शुक्रवार	३ ११ १९	१० ३ २६	१७ ११ २	२४ ३ ९	३१ ९ १६	
शनिवार	४ १२ २०	११ ४ २७	१८ १२ ३	२५ ४ १०		

नोट—बीचमें सौर, दाएंको अंग्रेजी और बाएंको चान्द्र तिथियां दी गई हैं।

पुस्तककी ज़रूरत

हिन्दी भाषामें सायंसकी ऐसी पुस्तककी आवश्यकता है, जिसमें भौतिक रीतिसे जल और वायुका वर्णन हो। कोई सज्जन कहींसे भेज सकते हों या पता दे सकते हों तो अच्छा कमीशन दिया जायगा।

पताः—श्रीयुत गिरधारीदास
गांव—भूमियांवाली,
पोस्ट अबोहर (ज़ि० फीरोज़पुर)

हमारे शरीरकी रचना भाग २

छपकर प्रकाशित हो गया !!

स्वास्थ्य रक्षाके नियम जाननेके लिए और संसारमें सुखमय जीवन बितानेके लिए इस पुस्तकका पढ़ना परमावश्यक है।

देखिये इसकी विषय सूची और स्वयम् विचारिये कि कैसे महत्वके विषय इसमें दिये हैं:—

१-पोषण संस्थान, २-रक्तके कार्य, ३-नाड़ी मण्डल, ४-चक्षु, ५-नासिका, ६-जिह्वा, ७-कर्ण, ८-स्वर यंत्र, ९-नर जननेन्द्रियां, १०-नारी जननेन्द्रियां, ११-गर्भाधान, १२-गर्भ विज्ञान, १३-नवजात शिशु।

इस भागमें ४५४ पृष्ठ हैं। १३३ चित्र हैं। १९ चित्र हाफ टोन प्लेट हैं। १ रङ्गीन चित्र है।

मूल्य केवल ३।)—विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सभ्य और परिसभ्योंको २॥।≡) में मिलेगी।

पता—मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग।

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।~). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति॥). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, ~). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि।). ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-) ७-केला—मूल्य ~) ८-सुवर्णकारी-मूल्य।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

Telegram to be addressed thus :—
"DR. BHARGAVA",
ALLAHABAD.

Ladies and Gentlemen desirous of gaining my advice in any case of Diseases, whether Acute or Chronic, should give a plain statement of their afflictions, when contracted, the present symptoms, &c., in fact everything should be made known to me precisely as would occur by personal interview.

All Letters will be treated as strictly Private and Confidential.

Invalids on a visit to Allahabad, may call on me whenever convenient.

Office Hours, 6 to 8 in the morning and 4 to 5 in the Evening.

ADDRESS :—

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,
235, BAHADURGANJ, ALLAHABAD, U. P.

परिषद्से प्राप्य अन्य पुस्तकें

१—बच्चा ... ... ॥=)

२—मारीश्रम ... ... १)

३—हमारे शरीरकी रचना भाग १ २)

मंगानेका पता—मंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ४१ — Reg. No. A-708

भाग ७ — सिंह १९७५। अगस्त १९१८ — संख्या ५

Vol. VII. — No. 5

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कर्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)]

एकप्रतिका मूल्य ।)

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला-महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१-**विज्ञान प्रवेशिका** भाग १—
ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२-**विज्ञान प्रवेशिका** भाग २—ले० महावीर-प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३-**मिफताह-उल-फ़नून**-अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४-**ताप**-ले० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५-**हरारत** [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला-प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६-**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**-ले० सालिग्राम वर्मा, ... ‐)

७-**केला**-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ‐)

८-**सुवर्णकारी**-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९-**चुम्बक**-ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०-**गुरुदेवके साथ यात्रा**-ले० वसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी., विशारद, ... ।=)

११-**क्षयरोग**-ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... ‐)

१२-**दियासलाई और फास्फोरस**—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. ‐)

विद्याप्रेमियोंको शुभ सूचना

विज्ञानके तुलाके (अक्तूबर) अङ्कसे निम्न-लिखित विषयोंपर लेखमालाएँ आरम्भ होंगी और एक वर्षतक जारी रहेंगी।

१-पैमाइश (Surveying)

२-दुग्ध व्यवसाय और गोशाला (Dairy farming)

३-कीटाणु शास्त्र (Bacteriology)

४-विद्युत् शास्त्र (Electricity)

५-रसायन शास्त्र (Chemistry)

६-त्रिकोणमिति (Trigonometry)

७-बीज (भुज) ज्यामिति (Coordinate geometry)

इन विषयोंपर हिन्दी भाषामें पुस्तकें अभी तक नहीं लिखी गई हैं। अतएव विद्याप्रेमियोंको उचित है कि 'विज्ञान' के ग्राहक शीघ्र बनें, जिसमें सहजमें ही उनके पास इन विषयोंके अपूर्व ग्रन्थ, बिना विशेष धन व्यय किये एकत्रित हो जायं। इस शुभ अवसरको हाथसे न खोइये।

हमारे शरीरकी रचना भाग २

छपकर प्रकाशित हो गया !!

स्वास्थ्य रक्षाके नियम जाननेके लिए और संसारमें सुखमय जीवन बितानेके लिए इस पुस्तकका पढ़ना परमावश्यक है।

देखिये इसकी विषय सूची और स्वयम् विचारिये कि कैसे महत्वके विषय इसमें दिये हैं:—

१-पोषण संस्थान, २-रक्तके कार्य, ३-नाड़ी मण्डल, ४-चक्षु, ५-नासिका, ६-जिह्वा, ७-कर्ण, ८-स्वर यंत्र, ९-नर जननेन्द्रियां, १०-नारी जननेन्द्रियां, ११-गर्भाधान, १२-गर्भ विज्ञान, १३-नवजात शिशु।

इस भागमें ४५४ पृष्ठ हैं। १३३ चित्र हैं। १९ चित्र हाफ टोन प्लेट हैं। १ रङ्गीन चित्र है।

मूल्य केवल ३।)—विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सभ्य और परिसभ्योंको २॥=) में मिलेगी।

पता—मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ७ } सिंह, संवत् १९७५। अगस्त, सन् १९१८। { संख्या ५

मंगलाचरण

जगमें होता नित्य अवैधिक व्यत्यय दीखै
प्रायः दैविक कृत्य अनित्य, अनिश्चय दीखै
परिवर्तन-रथ-चक्र, वक्र-पथ, उद्धत दीखै
आवर्तन-क्रम, क्रम-विहीन, भ्रम-आवृत दीखै
पर जो सुविज्ञ विज्ञान-बल-अनुशीलनमें लग्न हैं
उनको सारे विधि कृत्य-क्रम सूझैं सरल अभग्न हैं

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग ९-८-१८

—श्रीधर पाठक

१—प्रकृतिको अटूट ईंट

[ले०—'रसायन']

जाननेकी इच्छा, ज्ञानकी प्यास और देखनेका चाव प्रत्येक प्राणीमें पाया जाता है। यही दो प्रबल प्रेरक मनोवृत्तियां हैं जो मनुष्य मात्रको अपनी दृष्टिका क्षितिज और विद्याका वृत्त बढ़ानेकेलिए बाधित करती रहती हैं। ज्ञानोपार्जनके मुख्य साधन मन आदि छः इन्द्रियां हैं। किसी बालकको देखिये। जहां कोई चीज़ दीख पड़ी कि उसने उसे पकड़नेका प्रयत्न किया और जहां उसे पकड़ पाया कि झट मुंहमें रख परीक्षा आरम्भ की। रसीली और स्वादिष्ट वस्तुको बहुत देर तक चूसते रहते और कड़वी या चिरपरी वस्तुको सहसा त्यागते बालकोंको सभीने देखा होगा। बड़ा होनेपर भी निरीक्षण और परीक्षणका चाव बना रहता है। यही कारण है कि बालक निचले बैठना कदापि पसन्द

Chemistry रसायन शास्त्र]

नहीं करते और जहां तक बन पड़ता है उठा धराई करते रहते हैं। परन्तु और बड़े होनेपर प्रायः निरीक्षण और परीक्षणके यन्त्र ही उनसे बगावत कर बैठते हैं। अपने परीक्ष्य पदार्थोंमें ही वह ऐसे जा फंसते हैं कि कभी कभी मनुष्य-को निकम्मा ही करके छोड़ते हैं। परन्तु वीरात्माएँ ऐसी भी होती हैं कि उनको निस्सङ्ग रख अपने ज्ञानकी सीमाको विस्तृत करनेमें लगाये रहती हैं और अपना और अपनी जातिका भला करती रहती हैं। यही वीरात्माएँ वैज्ञानिक और उनका अनुशीलनक्षेत्र विज्ञान कहलाता है।

बाल्यावस्थामें शुद्ध ज्ञानकी पिपासा पायी जाती है। बालक आकर अपने पितासे पूंछता है—"पिताजी यह गोली काहेकी बनी है?" पिता उत्तर देता है—"यह कांचकी बनी है।" पुत्र इस उत्तरसे सन्तुष्ट न होकर फिर पूंछता है—"पिता जी, कांच क्या होता है?" इस प्रकार पुत्रके प्रश्नोंका सिलसिला जारी रहता है। पिता उत्तर देता देता हार जाय, पर पुत्र प्रश्न करते करते नहीं हारता। वास्तवमें पिता पुत्रके प्रश्नोंका समुचित उत्तर ही नहीं दे सकता। वह केवल बात टालनेका प्रयत्न करता है। प्रायः ऐसे प्रश्नोंका उत्तर हम पदार्थके त्रिविध वर्गीकरणका आश्रय लेकर ही दिया करते हैं। यह कह देना कि अमुक पदार्थ वानस्पतिक, पाशव या खनिज हैं पदार्थकी बनावटका यथार्थ ज्ञान करानेके लिए पर्याप्त समझा जाता है। परन्तु इस प्रकारका उत्तर देना प्रष्टाकी गवेषणा शक्तिको खराब कर देना है। बचपनमें माता पिता द्वारा अयुक्त शङ्का समाधान और आधुनिक कुत्सित शिक्षा-प्रणाली बच्चोंके मनोंमें गवेषणा शक्तिको बुरी तरहसे दबा देती है और यही कारण है कि हमारे यहां बालक ज्यों ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों त्यों उनकी गवेषणा शक्ति कम होती जाती है। अस्तु आधुनिक शिक्षाप्रणालीका सुधार राजनैतिक सुधारसे कहीं ज़्यादा ज़रूरी है।

संसारमें अगणित पदार्थ देखे और पाये जाते हैं। पृथ्वीके ओर छोरसे अनेक पदार्थ हमारे विलासार्थ लाये जाते हैं। वसुन्धराके पृष्ठ तलपर जो विपुल पदार्थ मिलते हैं, उनके अतिरिक्त रत्न-गर्भाके गर्भसे न जाने कितने रत्न निकाले जाते हैं और हमारे काम आते हैं। इस पदार्थ-वैचित्र्य और पदार्थ-बाहुल्यको देख मनुष्य अवाक् हो जाता है और परीक्षाका कार्य हताश होकर छोड़ देता है, परन्तु मनकी जो प्राकृतिक इच्छा ज्ञान प्राप्त करनेकी है वह उसे बराबर उकसाती रहती है, उत्तेजित करती रहती है। अतएव मनुष्यको विवश हो धीरे धीरे परीक्षाका कार्य करते ही बन पड़ता है। पहले मनुष्य पदार्थका त्रिविध वर्गीकरण ही करके सन्तुष्ट रहा, पर कुछ कालके अनन्तर उसने पंच-महाभूतका सिद्धान्त रचा। इसके अनुसार संसारके समस्त पदार्थ पांच महाभूतोंसे निर्माण किये गये हैं और इन्हींकी न्यूनाधिकतासे पदार्थोंमें विभिन्नता पायी जाती है। परन्तु यह सिद्धान्त कपोल कल्पित था। उसकी नींव प्राकृतिक तथ्यों और प्रयोगात्मक परीक्षणपर खड़ी न की गई थी, वह निरी मन-घड़न्त थी।

जैसे जैसे मनुष्यका प्रयोगात्मक ज्ञान बढ़ता गया और परीक्षा करनेके नये नये तरीके ईजाद होते गये, त्यों त्यों मनुष्यके विचारमें अद्भुत परिवर्तन आता गया। संसारके विविध भागोंमें लाखों आदमियोंने अनेक पदार्थोंकी परीक्षा आरम्भ कर दी। बरसोंतक जी जानसे वे लोग दिन रात मेहनत करते रहे, पदार्थोंकी परीक्षामें जुटे रहे। जटिल पदार्थोंको तोड़ तोड़ कर, उनका विश्लेषण करके, सरल पदार्थ निकालते रहे। अन्तमें यह सिद्ध हुआ कि यह 'दुन्याय गूनागून' यह विचित्र संसार केवल सत्तर सरल-तम पदार्थोंके संयोगसे बना है। पदार्थ वैचित्र्य इन्हीं मौलिकोंके, भिन्न भिन्न रीतिसे, भिन्न परिमाणोंमें, संयोग होनेका परिणाम रूप है। इन

सरलतम पदार्थोंसे अधिक सरल पदार्थ निकालना असम्भव सा प्रतीत होता है—न यह पदार्थ एक दूसरेमें बदले जा सकते हैं।

यही सत्तर प्रकार की ईंटें हैं, जिनसे प्रकृति देवीने अपना परम रमणीय प्रासाद बनाया है। यह ईंटें रङ्गरूपमें, भारमें, और अन्य गुणोंमें एक दूसरीसे भिन्न हैं, पर एक प्रकारकी ईंटें सब एकसी ही होती हैं। इन विविधभांतिकी ईंटोंमेंसे कुछसे तो पाठक परिचित ही होंगे। सोना, चांदी, सीसा, रांगा, जस्ता, लोहा, गंधक, ताम्बा, कर्बन (कोयला या अङ्गार), अलुमिनम, और पारा प्रायः नित्यके जीवनमें काम आते रहते हैं। मग्नीसियमका तार बच्चे प्रायः जलाया करते हैं। निकिलकी इकन्नियां कई सालसे चल रही हैं। शेष मौलिकोंसे या तो जनसाधारणका परिचय है ही नहीं या है भी तो बहुत कम से। अयोडीनका टिंकचर, नत्रजन, ओषजन, हरिण आदिसे कुछ शिक्षित सज्जन परिचित भले ही हों, पर अन्य मौलिकोंका सम्भवतः उन्होंने नाम भी न सुना होगा। कुछ मौलिक तो ऐसे हैं, जिनके दर्शन थोड़ेसे सुविख्यात वैज्ञानिकोंको छोड़, अन्य प्राणियोंने किये न होंगे।

इसका कारण क्या है ?

यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इसका क्या कारण है ? एक कारण है उपयोगिताकी कमी। थोड़ेसे मौलिक ऐसे हैं जो मनुष्यके काम नहीं आते। संसारके कार्योंमें भी वे अनावश्यक हैं। यदि आज वे पृथ्वीपरसे अन्तरधान हो जायं, तो प्रकृतिके कामोंमें किसी भांतिकी बाधा न पड़े और उनके अभावका हमको पता भी न चले। ऐसे मौलिक स्कैंडियम, गेलियम, जीनन, क्रिपटन (कृपण) आदि हैं। कुछ मौलिक ऐसे भी हैं कि हैं तो बहुत उपयोगी, परन्तु जन साधारण उनका प्रयोग स्वयम् नहीं कर सकते ! थोरियम और सीरियम लम्पकी जालियोंमें मौजूद रहते हैं, परन्तु बहुत कम मनुष्य इस बातसे अभिज्ञ होंगे। दूसरा कारण यह है कि कुछ मौलिक बड़े अमूल्य हैं। कुछ तो सोने और सफेद सोने (प्लाटीनम) से सैकड़ों गुना कीमती हैं। हीरे और लालोंका मूल्य उनके सामने न कुछ है। कुछ इतने अधिक कीमती तो नहीं हैं, परन्तु उनका मूल्य उनकी उपयोगिताके हिसाबसे बहुत ज्यादा बैठता है। इसीसे इन दोनों प्रकारके मौलिकोंको लोग नहीं खरीदते या खरीद सकते।

मौलिकोंके कीमती होनेके कारण

इनकी कीमत, इनका मूल्य इतना अधिक क्यों है ? इसके भी दो कारण हैं। या तो यह कि उनका उन खनिजोंमेंसे शुद्ध रूपमें निकालना, जिनमें वे पाये जाते हैं, बड़ा कठिन है। खनिजोंके अवयवोंके साथ उनका इतनी दृढ़ताके साथ संयोग हो रहा है कि उनके पृथक् करणमें बहुत शक्ति खर्च होती है। या वह संसारमें इतनी कम मात्रामें पाये जाते हैं कि बरसोंतक परिश्रम करते रहनेपर, हज़ारों मन पदार्थको लेकर, उसके अवयवोंको एक एक करके निकालकर, अन्तमें रत्ती या दो रत्ती इष्ट पदार्थ या मौलिक प्राप्त होता है। उदाहरणके लिए लीजिये रेडियम या वायुका कोई निष्क्रिय अवयव।

जब श्रीमान क्यूरी और उनकी धर्मपत्नीने रेडियमका आविष्कार किया था, उन्होंने २५० मन पिचब्लेन्डी नामक खनिजसे कार्य आरम्भ किया था। अन्तमें महीनोंके निरन्तर परिश्रम करनेपर उनको एक पदार्थ मिला जिसमें रेडियम था। उसकी इतनी मात्रा थी कि एक पाईपर रखी जा सकती थी ! इसीसे रेडियमका मूल्य सोनेसे ३००० तीन हज़ार गुना है ! समुद्रके जलमें घुले हुए सुवर्णकी मात्रा पिचब्लेण्डोमें विद्यमान रेडियमकी मात्रासे बहुत अधिक है, फिर भी क्या कभी कोई मनुष्य समुद्रजलसे सोना निकालनेका साहस कर सकता है ? यदि कोई ऐसा दुस्साहस करे तो निकाला हुआ सोना हज़ार गुनी कीमतपर बेचनेसे केवल खर्चा मात्र निकल सकेगा !

वायुमें ओषजनके और नत्रजनके अतिरिक्त पांच और मौलिक पाये जाते हैं। १००० भाग (आयतन) वायुमें ९९ भाग ओषजन और नत्रजन हैं। शेष १ भागमें अधिकांश आर्गन हैं। आर्गनके चारसौवें भागके बराबर चारों शेष अवयवोंका आयतन है! इस भांति वायुके ४०००० चालीस हजार भागमें इन चारों अवयवोंका आयतन १ ठहरा! पाठक स्वयं अनुभव करें कि ४०००० भाग वायु लेकर, उसमेंसे क्रमशः ओषजन और नत्रजन निकालकर १०० भाग पांचों अवयवोंके निकालना, इन १०० भागोंमेंसे ९९ भाग आर्गन अलहदा करना और अन्तमें इस १ भागमेंसे चार अवयवोंके अलग अलग करनेमें कितना परिश्रम, कितना धन व्यय होगा। इस भांति किसी एक अवयवका मुश्किलसे $\frac{१}{४}$ भाग प्राप्त होगा। या यों कहिये कि यदि हमें एक घड़ा इनमेंसे किसी अवयवका चाहिये तो १६०००० घड़े वायु लेकर कार्य आरम्भ करना होगा!

यहां तक तो बात हुई उन मौलिकोंकी, जो संसारमें बहुत कम मात्रामें पाये जाते हैं, पर अब उन मौलिकोंका हाल सुनिये जो हर जगह पाये जाते हैं, परन्तु तब भी अलभ्यसे हो रहे हैं। साम्भरसे ॥) आठ आने मन नमक आप मंगा सकते हैं। मान लीजिये कि आप एक गाड़ी नमकका आर्डर दे रहे हैं, तो आप को १५०) में मिल जायगी। अब यदि आप यह सोचें कि भाई ३०० मन नमकमें लगभग १२० मन सोडियम धातु और १८० मन हरिन गैस विद्यमान हैं। हम सबकी सब हरिन और २० मन सोडियम गवर्मेन्टको छोड़ दें और यह लिख दें कि ३०० मन नमककी जगह हम केवल १०० मन सोडियम लेना चाहते हैं, अतएव वही भेज दिया जाय। आपको बड़ा आश्चर्य होगा जब आपसे २००० दो हज़ार रुपयेके लगभग मांगे जायंगे।

आपने हिसाब तो ठीक लगाया पर एक बात भूल गये। नमकमें सोडियम और हरिनका इतना दृढ संयोग हो रहा है कि एक सेर नमकको तोड़ फोड़कर उसके अवयवोंको अलग अलग करनेमें आपको इतनी शक्ति लगानी पड़ेगी जितनी १०० मन बोझ लगभग २००० दो हज़ार मील खींच ले जानेमें लगेगी। इस शक्तिकेलिए आपको कितना ईंधन फूंकना पड़ेगा, उसका आपने हिसाब ही न लगाया।

ईंटोंके खिलौने

ईंटोंकी सत्तरसे अधिक प्रकारकी जातियां मौलिक कहलाती हैं और ईंटोंको वैज्ञानिक भाषामें परमाणु कहते हैं। यदि किसी मनुष्यको सत्तर प्रकारकी ईंटें दे दी जायं और यह कह दिया जाय कि इन ईंटोंके ऐसे खिलौने बनाये जिनमें कमसे कम दो ईंटें भिन्न भिन्न जातिकी हों—कई जातिकी ईंटें दो दो या दोसे अधिक भी ली जा सकती हैं—तो स्पष्ट है कि लाखों तरहके खिलौने बन सकते हैं। प्रकृति देवी बैठी बैठी यही खिलौने बनाया करती है, इन्हींको वैज्ञानिक भाषामें अणु कहते हैं। यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि अणु दो या अधिक जातिके परमाणुओंके, भिन्न भिन्न संख्याओंमें, मिलनेसे बनते हैं।

अणु और परमाणु संकेत

आइये, इन अणु और परमाणुओंकी कथा विस्तारसे सुननेके पहले कुछ अपनी सुविधाके लिए संकेत बनालें। प्रत्येक मौलिकके परमाणुको हम उसके नामके पहले अक्षरसे सूचित करेंगे। जैसे उज्जनके एक परपाणु को उ से, ओषजनके एक परमाणुको ओ से, इत्यादि। अब परमाणुओंके संयोगसे अणु बनते हैं, तो अणुओंको भी ऐसे ही संकेतों द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। जैसे पानी उज्जन ओषजनके संयोगसे बनता है। पानी इसी लिए उज्जन और ओषजनका यौगिक कहलाता है। प्रयोगोंसे जाना गया है कि पानीके एक

अणुमें उज्जनके दो और ओषजनका एक परमाणु पाया जाता है। अतएव पानीका एक अणु इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं $उ_2$ ओ।

वस्तुकी सत्ता

[ले०—प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम. ए.]

[गताङ्कसे सम्मिलित]

जिह्वासे हमको रसोंका ज्ञान होता है और छः रसोंमें हम जिह्वासे ही भेद बता सकते हैं। परन्तु यह बात सबको मालूम है कि अनेक रसोंका प्रभाव हमारी रसनाके नाड़ी-जालपर ऐसा अनिष्ट हो सकता है कि इसकी नाड़ियां स्वयम् निकम्मी और निश्चेष्ट हो जायं। बचपनमें बहुत तीखे रसोंका आस्वादन जब तक नहीं हुआ है तब तक रसनाके नाड़ीजालकी दशा कुछ और होती है। बड़े होनेपर जब तीखे, कड़वे, कसैले पदार्थोंका सेवन मनुष्य करने लगता है, तब उसकी नाड़ियां कुछ और ढंग पकड़ लेती हैं। एक ही पदार्थ किसीको बहुत नमकीन और किसीको कम नमकीन लगता है। खट्टे, तीते, कड़वे स्वादकी भी यही दशा है। स्पष्ट है कि घोड़ेको घासोंमें जितना स्वाद मिलता होगा मनुष्यको उसका पता नहीं है। जितने प्राणी हैं सबकी रुचि और आवश्यकताएं भिन्न हैं। इसीलिए स्वादमें भेद होना भी आवश्यक है। एक ही पदार्थका भिन्न प्राणियोंके लिए भिन्न स्वादका होना स्पष्ट है। इसलिए यह भी स्पष्ट है कि वस्तुके गुणोंके विचारमें हमारी रसनाकी गवाही परम सत्य और नित्य नहीं है।

गन्धकी दशा भी रसकी सी है। गन्धका अनुभव तो मनुष्य प्राणीको इतना कम होता है कि उसपर विशेष विस्तार हो नहीं सकता। जो पदार्थ वायव्य रूपमें होकर हमारी गन्धकी नाड़ियों तक पहुंचते हैं, उनमेंसे अनेक गन्ध हीन प्रतीत होते हैं और उनसे हमारी बुद्धिको पदार्थ-विवेचनमें कोई सहायता नहीं मिलती। परन्तु जो पदार्थ गन्धमय हैं उनका अनुभव भी भिन्न प्राणियोंको भिन्न रीतिसे होता है। तात्पर्य्य यह कि जिस प्राणीको जो गन्ध हितकर है वही प्रायः रुचिकर भी है। जो स्वाद जिस प्राणीको हितकर है वही स्वाद प्रायः रुचिकर भी है। रस और गंधकी विवेचनामें व्यक्ति-समीकरण ऐसा घनिष्ठ है कि वस्तुके विषयमें इन दो साधनों द्वारा मनुष्यकी जानकारी अत्यन्त परिच्छिन्न हो जाती है। इसीलिए रसना और घ्राण दोनोंकी गवाही वस्तुके गुणोंके विषयमें परम सत्य और नित्य नहीं है।

औजार चाहे जैसा हो अपने विशेष प्रयोजनके लिए ही बनता है और उससे वही काम लिया जा सकता है। जिस प्रकार बसूलेसे पछोरना, आंखसे स्वादको छूना या नाकसे शब्दका देखना अघटित, अयुक्त, असंगत और असंभव है, उसी तरह इन्द्रियों द्वारा वस्तुका वास्तविक ज्ञान होना भी सम्भव नहीं है। बात यह है कि इन्द्रियां इसलिए नहीं बनीं कि हम वस्तुकी वास्तविकताको जानें अथवा ब्रह्मकी सत्तापर विचार करें। इन्द्रियोंकी रचनाका प्रधान उद्देश्य यह जान पड़ता है कि हम जीवन-यात्रा करते हुए निरन्तर उन्नति करते चलें और आत्मोन्नतिके लिए इस शरीरके होते हुए प्रयत्न करते रहें।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, तथा दबाव—छहों विषयोंका आविर्भाव किस प्रकार होता है? इस शरीरके भीतर बैठे हुए चेतन अथवा अहन्ताकी सत्ताकी ही यह महिमा है। या यों कहिये कि मैं जो जाननेवाला और देखनेवाला हूं इस शरीरकी ज्ञानेन्द्रियोंका अधिष्ठाता हूं और उनके सारे अनुभवोंका वैज्ञानिक रीतिसे संग्रह करके जाननेवाला वा ज्ञाता हूं। मेरे होनेमें अथवा

मेरी सत्तामें मुझे सन्देह नहीं हो सकता, परन्तु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और भार न तो मेरे गुण हैं और न इनकी स्थिति मेरे भीतर है। यदि इन विषयोंकी सत्ता केवल मेरे नाड़ी-जालमें होती तो विषयके अनुभवोंमें निरन्तर समानता और एकता दिखाई पड़ती। और जो कुछ मैं कल्पना कर लेता उसीके अनुसार अनुभव भी सम्भव होता, जैसे यदि मैं सामनेकी दीवारको कल्पना कर लेता कि घोड़ा है और घोड़ा ही देखने लगता, तो यह बात मानी जा सकती थी कि हमारे अनुभूत विषय हमारी ज्ञाननाड़ियोंके ही आश्रित हैं। किसी वाह्य सत्तासे उनका सम्बन्ध नहीं है। परन्तु तथ्य ऐसा नहीं है। हम कल्पना मात्रसे अपने सामनेकी दीवारको घोड़ा नहीं कर सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि इन छः विषयोंका अनुभव जो हमें होता है, उससे और वाह्य जगतसे अनिवार्य्य सम्बन्ध है। सारांश यह कि सत्ता मेरी भी है और वाह्य जगतकी भी। न तो यह कहा जा सकता है कि मैं नहीं हूं और न यह कहना सम्भव है कि वाह्य वस्तु नहीं है। परन्तु वाह्य वस्तु कैसी है, उसकी रचना किस प्रकारकी है, उसकी वास्तविक सत्ताके विषयमें हम कितना जानते हैं, यह विचार केवल होने न होनेसे सम्बन्ध नहीं रखता। अपने समस्त वाह्य ऐन्द्रियक अनुभवोंसे हम इतना ही जानते हैं कि हमारी सत्ता और वाह्य जगतकी सत्ता इन दोनोंके परस्पर और अन्योन्य प्रभावसे जो तथ्य उत्पन्न होता है उसीका नाम विषय है और छहों विषय मेरे और वाह्य वस्तु दोनोंके होनेके गवाह हैं।

वाह्य वस्तुके ऐसे गुण जो नित्य और स्थायी हैं और जिनसे हमारी इन्द्रियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं अथवा जो गुण द्रष्टा वा ज्ञाताकी इन्द्रियोंके अधीन नहीं हैं उन गुणोंका प्रत्यक्ष अनुभव ज्ञाता वा द्रष्टाके लिए असम्भव है। यह बात स्पष्ट ही है।

वाह्य वस्तुकी सत्ताके विषयमें हम अन्तःकरणोंके द्वारा कुछ अनुमान मात्र कर सकते हैं और यद्यपि हमारे अन्तःकरण भी शरीर-यात्रा मात्रकेलिए उद्दिष्ट हैं तथापि यह हमारे बड़े पैने औजार हैं। इनसे हम प्रत्यक्ष ज्ञानका काम तो नहीं ले सकते, परन्तु अनुमानमें हम बन्द नहीं हैं और बात भी यही है कि जहां प्रत्यक्षानुभवके पैर लंगड़े हो जाते हैं अनुमानकी वैसाखी काम दे ही जाती है। वाह्य वस्तुके विषयमें अबतक जो कुछ अनुमान हुआ है वैज्ञानिकोंके पक्षसे नेति ही कहना पड़ता है। विज्ञानका एक पक्ष कहता है कि वस्तुमात्र आकाश तत्वके बड़े वेगसे स्फुरण करनेसे आविर्भूत होती है अर्थात् आकाशका विकार है। दूसरा पक्ष कहता है कि विश्वकी वास्तविक सत्ता ऐसे ठोस वस्तु की है जो सीसेसे चार अरब गुना अधिक घना है। इस घनत्वके भीतर अत्यन्त सूक्ष्म पोल है जिन्हें हम परमाणु कहते हैं और यह कल्पनातीत घन पदार्थ ऐसी तरल दशामें है कि इन पोलोंका तरलताके कारण निरन्तर स्फुरण होता रहता है। तीसरा पक्ष यह कहता है कि यह विश्व शक्तिका अपार सागर है, जिसमें शक्ति अपने गुणोंसे ही विविध वेगोंकी, स्फुरण और गतिकी दशाएँ वा भँवर बनातीहै। यह भँवर ही सूक्ष्मसे सूक्ष्म परमाणु हैं। इन परमाणुओंकी उत्तरोत्तर स्थूलता और घनत्वसे हमें इस विश्वका अनुभव होता है। गीताके अनुसार प्रकृति आठ तरह की है अर्थात् पंच महातत्व, मन, बुद्धि और अहंकार। तात्पर्य्य यह है कि मन, बुद्धि, अहंकार तक वस्तु हैं, अपने आपेसे भिन्न हैं वा अनात्म हैं। यदि परमाणुओंसे ही सबकी रचना मानी जाय तो आकाशके उपरान्त मन, बुद्धि और अहंकारके परमाणुओंकी कल्पना भी की जा सकती है। अथवा यदि प्रोफ़ेसर असबर्न रेनल्डका यह सिद्धान्त मान लिया जाय कि जो कुछ हमें वस्तु सा प्रतीत होता है वह केवल प्रकृतिके भीतर पोल है तो उसके साथ साथ मन, बुद्धि, अहंकारको भी प्रकृतिकी वास्तविक सत्ताके भीतर पोल मान

लेनेसे कोई हानि नहीं दिखाई पड़ती। जिस तरह इस पोलवाले सिद्धान्तसे गुरुत्वाकर्षण, प्रकाशका वेग आदि प्रायः सभी प्राकृतिक तथ्योंकी पूरी पूरी व्याख्या हो जाती है, उसी तरह मन बुद्धि अहंकार-के सम्बन्धमें जितनी कल्पनाएँ की जाती हैं सब-की व्याख्या इस पोलवाले सिद्धान्तसे हो सकती है। विज्ञानने अबतक जितनी वस्तुएँ भारवती हैं, उन्हींको वस्तु माना है और अभी तक आकाश वा उसके सूक्ष्म तत्त्वोंको वस्तु माननेमें अनेक वैज्ञानिकोंको आपत्ति है। पर केवल गुरुत्वाकर्षण वा भारको ही वस्तुकी कसौटी बनाना हमारी रायमें युक्तिसंगत नहीं है। गुरुत्वाकर्षण स्थूल वस्तुका गुण है, सूक्ष्म वस्तुका नहीं। अथवा यों भी कह सकते हैं कि स्थूल वस्तुओंमें जो स्थिति गुरुत्वाकर्षणकी है सूक्ष्म वस्तुओंमें वही स्थिति आकर्षण और अपक्षेपणकी है। इसी दृष्टिसे हमने आकाश, मन, बुद्धि और अहंकारको भी वस्तु शब्दके अन्तर्गत रखा है। पंच महातत्त्वोंके साथ मन, बुद्धि, अहंकारकी भी गिनती करके गीताने भी इन तीनोंको अनात्मा ही माना है। इस तरह सूफ़ी लोग जिसे नफ़्स नातिक़ा कहते हैं और जिसे कबीरपन्थी और नानकपन्थी बोलता पुरुष कहते हैं वह वेदान्तकी जाग्रत अवस्थाका चेतन हुआ। इसी प्रकार स्वप्नावस्थामें भी मन, बुद्धि, चित्त, अहं-कार चारों अन्तःकरणोंकी क्रिया बराबर होती रहती है। सपनेका देखनेवाला अपनेको सपनेके दृश्यसे अलग और देखनेवाला ही मानता है। परन्तु सपनेमें यदि यह ज्ञान हो जाय कि यह स्वप्नकी अवस्था है और मैं जो स्वप्नका देखनेवाला हूँ जाग्रत अवस्थाका भी चेतन हूँ तो वस्तुतः स्वप्नावस्था नष्ट हो जाती है और द्रष्टा यदि सपने-को देखता भी रहा तो वह सपना उसके लिए बायस्कोपकी तसवीरोंसे ज़्यादा हैसियत नहीं रखता। सुषुप्ति अवस्थामें सुखका अनुभव करने-वाला अवश्य विद्यमान है, क्योंकि गहरी नींदके बाद उठनेपर मनुष्यकी जाग्रत अवस्थाका चेतन उस सुखानुभवको उसी तरह अपना किया हुआ स्वीकार करता है जिस तरह वह सपनेके सुख दुखको स्वीकार किया करता है। परन्तु सुषुप्ति-की अवस्थामें वैसी सचेत दशा नहीं होती जैसी जाग्रत और स्वप्नमें होती है। जाग्रतमें मनुष्य अधिक सचेत होता है, स्वप्नमें कम, सुषुप्तिमें अत्यन्त कम और यदि गणितके उत्तरोत्तर घटने-वाले नियमके अनुकूल विचार किया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि तुरीयावस्था वा निर्विकल्प समाधिसे चेतनका कोई सरोकार ही नहीं है। अथवा यों समझना चाहिए कि हमारी सत्ता ऐसी अवस्थामें भी नष्ट नहीं होती जिस अवस्था-में चेतनका सर्वथा अभाव रहता है। सारांश यह कि चेतना भी स्वयं आत्मा नहीं है, वरन् आत्मा और अनात्माके संसर्गसे उद्भूत एक गुण है जो विशेष विशेष अवस्थाओंमें विशेष रूप और परि-माणमें प्रकट होता है।

हमने पहले दिखाया है कि हमारी बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंकी शक्ति परिच्छिन्न है और उनकी गवाही परम सत्य, नित्य और सर्वथा विश्वास योग्य नहीं है। मन छठी इन्द्रिय है, जिस-का कर्त्तव्य भार दबाव वा आकर्षण और अपक्षेपण आदिका अनुभव करना है। यहाँ तक इसकी गणना बाह्य इन्द्रियोंमें हो सकती है। परन्तु स्वप्नावस्थामें जब बाह्य करण शिथिल होते हैं यह इन्द्रिय बड़े जोरोंसे काम करती रहती है और कभी कभी इतनी प्रबल हो जाती है कि मनुष्य सोते सोते उठ भागता है और स्वप्नावस्थामें भी कर्मेन्द्रियोंसे काम लेने लग जाता है। इसे निद्राभ्रमण या स्वप्नचार रोग कह सकते हैं। इस प्रकारके रोगी पाश्चात्य देशोंमें बहुतायतसे मिलते हैं। परन्तु स्वप्नमें उठ बैठना, रोना, चिल्लाना और फिर सो जाना यह तो साधारण अनुभवकी बात है। जिस तरह कानके, आँखके, त्वचा आदिके रोग हैं उसी तरह यह मनके रोग हैं। सारांश यह कि मन बाह्य करण भी है और अंतः

करण भी है। जैसे त्वचाके लिए सारे अंगमें फैले हुए नाड़ीजाल हैं वैसेही मनके लिए भी सारे शरीरमें नाड़ीजाल फैले हुए हैं। परन्तु मनकी गणना अन्तःकरणोंमें इसलिए होती है कि इस वाह्य करणका व्यापार स्वप्नावस्थामें भी बिना किसी रुकावटके होता रहता है। बुद्धिका व्यापार इष्टानिष्टमें आवश्यक अथवा द्वन्द्वोंमें विवेचन करना है और अहंकारका व्यापार द्रष्टा वा ज्ञाताकी हैसियतसे अपनी सत्ताका मान है। मैं हूँ और मैं करता हूँ इस बातकी निष्ठा अहन्ताका व्यापार है। जिस तरह और ज्ञानेन्द्रियोंकी कच्चाई हम दिखा चुके हैं. उसी तरह बुद्धि और अहंकारके व्यापारोंमें भी कच्चाई अथवा देश, काल और वस्तुके विचारसे तारतम्यका होना स्पष्ट ही है। अष्टधा प्रकृतिकी कल्पनामें पाँच तत्वोंके साथ मन, बुद्धि और अहंकारको गिनाया है। परन्तु हम इन्द्रियोंके नाते उन्हीं पाँचों तत्वोंसे सम्बन्ध रखनेवाली पाँचों इन्द्रियोंके साथ मन, बुद्धि और अहंकारको गिनते आये हैं। बात यह है कि मनुष्यके शरीरमें इन बाहरी प्रकृतियों या तत्वोंके प्रतिनिधि हमारी यह आठों ज्ञानेन्द्रियां हैं। अर्थात् कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और घ्राण तथा मन, बुद्धि और अहंकार—इनके यह आठ विषय हुए—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मनन, विवेचना और अहंकरण।

ऊपर जिन आठों विषयों तक हम विचार कर आये हैं, उन सबमें एक गुण समान रूपसे पाया जाता है, यद्यपि उसकी मात्रामें तारतम्य भी देखा जाता है। सुननेमें, छूनेमें, देखनेमें, चखनेमें, सूंघनेमें तथा मनन विवेचन और अहंकरणमें भी बराबर एक दूसरेसे सम्बन्धको समझ कर याद रखना जारी रहता है। हमारे पास अनुभवोंको इकट्ठा करके रख छोड़नेका ख़जाना है और वह खजाना ऐसा है कि उससे ज्ञानकी सम्पत्ति सारे शरीर देशमें बढ़ती रहती है और बहुतेरी स्वभावमें परिणत हो जाती है। इस अद्भुत और समान भावसे व्यापक गुणको हम चेतना कह सकते हैं जो फिर भी आत्म और अनात्मके संसर्गका फल ही जान पड़ती है, क्योंकि अनात्मका संसर्ग जहां सर्वथा नहीं है वहां चेतनाका भी दर्शन नहीं होता।

हमने अबतक आठ ज्ञानेन्द्रियों और उनके आठ विषयोंपर और साथ ही वाह्य वस्तु तथा उसके अनुभवोंपर विचार करके यह दिखलाया है कि वस्तुकी सत्तामें यद्यपि लेशमात्र सन्देह नहीं है, तथापि अपनी इन्द्रियोंकी गवाहीसे जो कुछ विविध नाम और रूप हमने निश्चित किये हैं वह अनित्य और मिथ्या हैं और उनकी वास्तविक सत्ता नहीं है। अब रही यह बात कि जब वस्तुकी सत्तामें तनिक भी सन्देह नहीं है और अपनी अथवा आत्मसत्तामें भी कोई शुबहा नहीं है तो क्या आत्म और अनात्म यह दो अलग अलग सत्ताएं हैं, अथवा दोसे भी अधिक सत्ताएँ हैं या एक ही सत्ता है, परन्तु दो मालूम होती हैं? इस बातपर हम आगे चल कर विचार करेंगे।

धर्म और विज्ञान

[ले०—श्रीयुत गुलाबराय, एम. ए.]

यूरोपीय देशोंमें धर्म और विज्ञानकी लड़ाई बहुत कालसे चली आ रही है। प्राचीन कालमें वैज्ञानिकोंको धर्मवेत्ताओंके भयसे अपने मत प्रकट करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी। आज स्कूलके सभी लड़के जानते हैं कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है परन्तु इस बातको, धार्मिक लोगोंके मतके विरुद्ध होनेके कारण, गेलिलियो (Galilio) प्रकाशित करनेसे रोका गया था। आजकल यूरोपमें सायन्सका साम्राज्य हो गया है। धार्मिक लोगोंको अपने पक्षके सिद्ध करनेमें बात बातपर विज्ञानकी साक्षी देनी पड़ती है। जो बात विज्ञानके संकुचित (?) घेरेसे बाहर होती

है उसके लिए धार्मिक लोगोंको अरण्यरोदन ही करना पड़ता है। जब एक दलका प्रभाव बढ़ता है तब दूसरे दलके लोग विजयी लोगोंके मतके अनुकूल चलनेकी यथेष्ट चेष्टा करने लगते हैं। परन्तु इसपर भी विजयी दलके लोग संतुष्ट नहीं होते। धर्म और विज्ञान प्राचीन भारतवर्षमें दो न थे, परन्तु आजकल भारतवर्षमें विज्ञानके नामसे धर्मके ऊपर कभी कभी बड़ा अत्याचार किया जाता है।

धर्म और विज्ञानमें कोई स्वाभाविक विरोध नहीं, किन्तु लोगोंके अज्ञानसे धर्म और विज्ञानमें बड़ा विरोध उपस्थित हो गया है। इस विरोध-की शान्तिके लिए भी उपाय किये गये हैं। अभाग्यवश वह उपाय ऐसे हैं जिनसे कि समाज-के पूर्ण विकाशमें रुकावटके सिवाय और कोई लाभ नहीं। स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने धर्म और विज्ञानकी जो एकता करनी चाही है वह बड़ी विचित्र है। उनका कहना है कि विज्ञान-के अन्तिम सिद्धान्त अज्ञेय हैं और धर्मके भी मूल सिद्धान्त अज्ञेय हैं। अतः धर्म और विज्ञानमें यही एकताका मूल है। जब दोनोंके अन्तिम सिद्धान्त अज्ञेय हैं तो एकता कैसी? दो अज्ञेय पदार्थ एक नहीं हो सकते। यह केवल शाब्दिक ऐक्य है, वा-स्तविक नहीं। इससे ऊंची श्रेणीके वह लोग हैं जो धर्म और विज्ञानमें कुछ भावात्मक सिद्धान्तों-पर एकता ढूंढ़ते हैं। ऐसे लोग धर्मकी इतनी काट छांट करते हैं कि उसमें प्राकृतिक नियमोंके अति-रिक्त और कुछ नहीं रहता और प्राकृतिक नियमों-की ऐसी भावात्मक भाषामें प्रशंसा करते हैं कि उनको ईश्वरका स्थान दे देते हैं। ऐसे लोगोंने प्राकृतिक धर्म (natural theology) भी स्थापित किया है, किन्तु यह धर्म न तो धार्मिक लोगोंको संतुष्ट करता है और न वैज्ञानिकोंको ही। धर्म और विज्ञानमें यदि महत्तम समापवर्तक (G. C M.) निकालें तो बहुत थोड़ा बचता है और वह इतना थोड़ा होता है कि उससे मनुष्यका संतोष नहीं होता। लोगोंका यह विचार है कि जो सि-द्धान्त दोनोंमें शामिल हों अथवा एक आवें वही सत्य हैं। हम ऐसे मुश्तरिक सिद्धान्तोंको सच्चाई के घेरेसे बाहर नहीं करना चाहते, किन्तु हमारा यह कहना अवश्य है कि सच्चाईका बहुतसा अंश उन भेदोंमें रहता है जिनका एकताके ढूंढने-वाले तिरस्कार कर देते हैं। जब भेद वैसे ही बने रहे तो एकतासे हो क्या लाभ? वह भेद थोड़ी देरकेलिए एकताकी चमक दमकमें दब जावें किंतु उनका नाश नहीं हो सकता। यदि वह भेद निर्मूल होते तो संसारमें उनकी स्थिति ही न रहती। भेदोंका संसारमें आना इस बातका प्रमाण है कि उनमें कुछ सत्यता अवश्य है। एकताके प्रेममें उन भेदोंको क्यों खोना चाहिये। यदि धर्मको विज्ञानसे कुछ अधिक मानवजातिके ज्ञानकी पूर्णतामें योग देना है तो हम केवल एकता स्थापित करनेके उद्देश्यसे मानव जातिके ज्ञानभाण्डारको पूर्ण होनेसे क्यों वञ्चित रक्खें। हम उन सिद्धान्तोंको जो धर्म और विज्ञानमें सम्मिलित हैं आदरकी दृष्टिसे देखते हैं ही, किन्तु भेदोंकी सत्यताको छोड़कर नीरस एकता स्थापित नहीं करना चाहते।

हम मानते हैं कि धर्म और विज्ञानमें बहु-तसे सिद्धान्त एकसे हैं, किन्तु हम दोनोंकी विशेषतामें बाधा नहीं डालना चाहते। धर्म और विज्ञान दोनों ही सत्यकी खोज करते हैं। दोनों ही क्षणिक दृश्योंसे हटकर अटल वस्तुकी ओर झुकते हैं। दोनों ही वर्तमानसे संतुष्ट न रहकर भविष्यकी ओर जाते हैं। यह सब ठीक है। इतनेमें ही धर्म और विज्ञानकी एकता नहीं हो जाती। धर्म और विज्ञानकी एकता तब तक न होगी जब तक कि दोनोंकी विशेषताओंका यथार्थ मूल्य निर्धारित न हो जावे। विज्ञान अपनी खोजके वृत्तको संकुचित कर उन्हीं बातोंपर विशेष ध्यान देता है जो इन्द्रियोंके विषय हैं। धर्म, आत्मता (personali-

ty) की गुह्यतम गह्वरोंमें प्रविष्ट हो भावोंकी उत्कृष्टताको अपना विषय बनाता है। मनुष्य जीवनकी सफलताकेलिए भावोंकी उत्कृष्टता उतनी ही आवश्यक है जितना कि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त भौतिक ज्ञान। यदि भावोंका तिरस्कार करके विज्ञान और धर्मकी एकता की जावे तो उस ऐक्यसे विरोध ही श्रेय है। एक दूसरेकी विशेषताको भली प्रकार समझ लेना यही सच्चा ऐक्य है। विज्ञानसे भौतिक पदार्थ जो हमारे शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं उनका ज्ञान होता है। धर्मसे हमारे भावोंकी उन्नति द्वारा आध्यात्मिक उन्नति होती है। जिस प्रकार मनुष्यकेलिए शरीर और आत्मा दोनों ही आवश्यक हैं उसी प्रकार धर्म और विज्ञान हैं। वैज्ञानिकोंको अपने संकुचित क्षेत्रको ही ज्ञानका सारा क्षेत्र समझकर भावोंको वृथा न समझना चाहिये और न धार्मिक लोगोंको इतना ऊँचा चढ़ जाना चाहिये कि भौतिक पदार्थों के नियमोंको जिनसे कि मनुष्यका शरीर बँधा है अपने ऊपर बाध्य न समझें। धर्म और विज्ञानकी एकताकेलिए थोड़ी उदारता चाहिए। विरोध भाव छोड़कर एक दूसरेकी विशेषताओं-को स्वीकार कर मानवजातिके ज्ञान भाण्डारकी पूर्ति करना यही धर्म और विज्ञानका परम कर्तव्य है।

वैज्ञानिक शिक्षासे देशोन्नति

[ले०—श्रीयुत सत्यभक्तजी]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

विज्ञान द्वारा मनुष्योंकी भलाईके हजारों आविष्कार हुए हैं, जिनके कारण आजकल मनुष्यकी जीवनयात्रा बहुत कुछ सुगम तथा सुखमय हो गई है। आज जो कपड़ा बुननेकी, कातनेकी, पीसनेकी, कागज बनानेकी, लकड़ी चीरनेकी, खेत जोतनेकी, बोझा उठानेकी, तरह तरहके खिलौने बनानेकी, कपड़े सीनेकी इत्यादि हजारों लाखों तरहकी मशीनें तथा कलें दिखाई दे रही हैं, जिनसे बहुत शीघ्रतासे अच्छा काम निकलता है, वे सब विज्ञानकी बदौलत ही नसीब हुई हैं। रेल, तार, बेतार, टेलीफोन, जहाज, बिजली गैस आदिकी रोशनी, हवाई जहाज, मोटर, बाइसिकिल आदि वस्तुओंके आविष्कारोंसे मनुष्यका जितना लाभ हुआ है और उसे कम परिश्रमसे जितना अधिक लाभ मिलने लगा है, उसका उल्लेख करना हमारी शक्तिके बाहर है। फोनोग्राफ, बायस्कोप, मैजिक लालटेन आदि किस प्रकार मनुष्योंका मनोरंजन कर रहे हैं और लाभ पहुंचा रहे हैं, यह भी किसीसे नहीं छिपा है। फोटोका कैमरा, दूरबीन, एवम् अन्य यन्त्र मनुष्यके ज्ञानको किस प्रकार बढ़ा रहे हैं और उनकी सहायतासे कैसे गूढ़ रहस्योंका उद्घाटन हो रहा है, यह सबको प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। फोटोके कैमरेका ही प्रताप है कि जो चित्र प्रथम सैकड़ों रुपये व्यय करनेपर भी प्राप्त नहीं हो सकता था वह अब कुछ आनेोंमें ही मिल जाता है। छापेके लाभ तो किसी प्रकार कहे ही नहीं जा सकते। इसने संसारमें पुस्तक रूपी अमूल्य रत्न बहुत सुलभ करके अज्ञान अन्धकारको दूर कर दिया है और मनुष्य अपनेको तथा अपनी शक्तियों और अधिकारोंको पहिचाननेमें समर्थ हो सका है। इनके अतिरिक्त विज्ञानने और भी लाखों तरहके मनुष्य-हितकारी आविष्कार किये हैं, वे अकथनीय हैं। लेखनीकी सामर्थ नहीं जो उनका वर्णन कर सके।

विचित्रताओं तथा आश्चर्योंका तो विज्ञान अक्षय भण्डार ही है। विज्ञानके समान विचित्रता उत्पन्न करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। आप जो हजारों तरहके बाजीगरी और शौबदेबाजीके खेल देखते रहते हैं और जिन्हें देखकर बड़े बड़े बुद्धिमान और चतुर कहानेवाले मनुष्योंकी बुद्धि

स्तम्भित रह जाती है वे सब विज्ञानकी ही करामात हैं। संसारके प्राचीन सप्ताश्चर्योंमेंसे चीनकी दीवार, मिश्रके पिरामिड, बैबीलनका बाग आदि सभी विज्ञान बलसे प्रस्तुत किये गये थे। और आधुनिक टैम्सकी सुरंग, पनामाकी नहर, स्वेजकी नहर आदि परम आश्चर्य उत्पादक वस्तुएं, जिनको देखकर साधारण मनुष्य अब भी देवों, जिन्दोंको निर्माण की हुई समझें, और जिनकी कारीगरीके सामने विश्वकर्माकी बुद्धि भी हार मान जाय, वे सब तो विज्ञानकी सहायतासे बनाई ही गई हैं। आपने उपन्यासोंमें तो बड़े बड़े तिलस्मोंका हाल पढ़ा ही है और पढ़कर तथा आश्चर्यमें डूबकर अन्तमें उनका असत्य होना भी निश्चय कर लिया है, पर विज्ञान वास्तवमें उनसे भी सैकड़ों गुने आश्चर्य-उत्पादक तिलिस्म बनानेकी सामर्थ रखता है। नमूनेकेलिए एडिसनका तय्यार किया हुआ मकान अमेरिकामें देखा भी जा सकता है, जिसमें अपने आप होनेवाले समस्त कार्योंका अवलोकन करके साधारण मनुष्य कदापि भूतलीला समझे बिना नहीं रह सकता। इनके अतिरिक्त अपने आप चलने फिरने, काम करनेवाला लोहेका मनुष्य, किनारेपरकी बिजलीके जोरसे ही स्वतः चलनेवाला जहाज़, सैकिंड भरमें हजारों कोस समाचार पहुंचानेवाला बेतार, सप्ताहोंतक समुद्रके तलमें रह सकनेवाली नाव, भूख नापनेका यन्त्र आदि इतनी अधिक अगणित विचित्र वस्तुएं विज्ञानने आविष्कार की हैं कि उन सबका बुद्धिमें आना कठिन है। इन विचित्र वस्तुओंसे मनुष्यका ज्ञान कितना अधिक बढ़ता है और वह अपने स्वरूपको पहिचाननेमें किस प्रकार समर्थ होता है, ज्ञानी मनुष्य इसे भली भांति समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनसे जो मनोरंजन होता है सो अलग है।

इन सब लाभोंके अतिरिक्त विज्ञानका सबसे बड़ा लाभ मनुष्यकी बुद्धिपर बड़े अज्ञानावरणको हटाकर ज्ञानका प्रकाश करना है। मनुष्यकी समझमें जो भ्रमात्मक बातें समाई हुई हैं, उनका भी संशोधन विज्ञान ही करता है। यह कहना सर्वथा सत्य है कि विज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। इसीसे मनुष्योंके हृदयमें वास्तविक ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। इसीके द्वारा मनुष्य सब बातोंका वास्तविक रहस्य जान सकता है और परमात्माकी लीलाके समझनेमें समर्थ हो सकता है। विज्ञान-विमुख पुरुष कभी संसार और उसमेंकी वस्तुओंकी वास्तविकताको नहीं समझ सकता। अब तक सब लोग पृथ्वी और आकाशके विषयमें न मालूम क्या क्या कल्पना किया करते थे। कोई पृथ्वीको शेषनाग, कछुआ, बैल आदिपर रखी बतलाते थे, कोई सूर्य चन्द्रमाकी पृथ्वीकी परिक्रमा देनेकी बात कहते थे। पर विज्ञानने गणित और दूरबीन द्वारा इन बातोंका सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लिया है और आकर्षणशक्तिके उस सर्वमान्य सिद्धान्तको ढूंढकर निकाला है, जिससे समस्त विश्वकार्य चल रहा है और मनुष्य सूर्य, पृथ्वी, तारागण आदिका वास्तविक रहस्य समझने लगा है। इस अज्ञानका सबसे अच्छा उदाहरण चन्द्रमामें दिखाई देनेवाले धब्बे हैं। किसीने उन्हें कलंक कहा, कोई चन्द्रमामें छेदोंके होने और उनमें होकर आकाशकी नीलिमा दीखनेकी बात कहते थे। कोई उसे शिकार खेलती हुई भीलनी बतलाते थे और कोई चरखा कातती हुई चन्द्रमाकी बुड्ढी मा, न मालूम कितने सिद्धान्त इस विषयमें गढ़े जाते थे। पर विज्ञानने उन्हें ज्वाला-मुख सिद्ध करके सबका भ्रम दूर कर दिया। इसी प्रकार पृथ्वीके स्तरों, उसके अन्दरकी अग्नि, भूडोल, ज्वालामुखी, खौलते सोते आदिका ठीक वृत्तान्त भी भूतत्ववेत्ताओंकी खोजसे प्रकट हुआ। नहीं तो लोग अब तक ज्वालामुखीको कितने ही भारतीयोंके समान कोई बड़ी शक्तिशालिनी देवी ही माना करते। पृथ्वीकी उत्पत्ति, प्रलय, घटने बढ़नेका हाल भी हम विज्ञान द्वारा ही जान सके हैं, जो सृष्टिका सबसे बड़ा रहस्य है और जिसके विषयमें सैकड़ों मतोंने हजारों तरहकी

विचित्र बातें लिखी हैं। रसायनकी महिमा तो लिखी जानी असम्भव ही है, जिसने संसारके मूल-तत्त्वको हमपर प्रकट किया और जिसके सहारे हम प्रत्येक पदार्थकी वास्तविकता जाननेमें समर्थ हो सकते हैं। जीव विज्ञानने तो संसारकी काया ही पलट दी। इसके बिना हम प्राणियोंके भीतरी रहस्योंको किस प्रकार जान सकते थे। हम प्रत्येक जीवके विषयमें बड़ी बड़ी विचित्र कल्पनाएँ किया करते थे, पर विज्ञानकी कृपासे अब प्राणियोंके सम्बन्धकी सभी समस्याएं सरलता पूर्वक निर्णीत हो जाती हैं। मानसिक शक्तियोंकी ठीक ठीक प्रमाणिक खोज भी विज्ञान द्वारा की जा रही है और बुद्धिमान पुरुष स्वीकार भी उसीको करते हैं, क्योंकि इसमें जो बात कही जाती है युक्तियों और पूर्ण प्रमाणोंके साथ। इसीसे इसको सत्य-ज्ञान कहा जाता है।

इन सब बातोंसे हम भली भांति जान सकते हैं कि वैज्ञानिक शिक्षाके बिना किसी देशकी उन्नति हो सकनी कठिन ही नहीं, एक प्रकार असम्भव है। इसके बिना न देशके शत्रुओं और लालची आक्रमणकारियोंकी चढ़ाइयोंसे रक्षा हो सकती है और न उसके तरह तरहके अभावोंकी पूर्त्ति। वैज्ञानिक शिक्षाके पूर्ण प्रचारके बिना देश धनवान और समृद्ध तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि सब प्रकारके कला कौशल व्यवसाय वाणिज्यका मूल विज्ञान है और इनके बिना धनकी उत्पत्ति हो नहीं सकती। विज्ञान रहित देशमें सार्वजनिक लाभ तथा मनोरंजनकी वस्तुओंका भी अभाव रहता है, तथा इससे वहाँके सामाजिक जीवनमें एक प्रकारकी उदासीनता, त्रुटि पायी जाती है और सबसे बड़ा अभाव तो इसमें ज्ञानका रहता है। वह तरह तरहके मिथ्या विश्वासों तथा कुरीतियोंका सदा शिकार बना रहता है और उसके कारण नाना-प्रकारकी विपत्तियां वहाँ आया करती हैं, तथा उन्नतिका मार्ग बन्द रहता है। उस अज्ञानको दूर करनेमें वैज्ञानिक शिक्षा ही समर्थ होती है। अतएव जिस देशको अज्ञान और असभ्य अवस्थासे निकलकर उन्नति करनेकी अभिलाषा हो उसके लिए अपने यहाँ वैज्ञानिक शिक्षाका प्रचार करना अनिवार्य है।

अत्यंत खेद है कि जो वैज्ञानिक शिक्षा इतनी महत्वपूर्ण है, जिसके बिना मनुष्यका मनुष्य कहा जा सकना कठिन है, जिसके बिना मनुष्यके हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट नहीं हो सकता, मनुष्य संसारके अनेक लाभदायक पदार्थोंसे बंचित रहता है, तथा अपना जीवन कष्टपूर्वक व्यतीत करता है, उसीकी हमारे भारतवर्षमें बड़ी दुर्दशा है। यहां इस सर्वोपयोगी, सर्वश्रेष्ठ विद्याका बड़ा अभाव है। यद्यपि अब भी विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्रबसु, प्रसिद्ध रासायनिक प्रफुल्लचन्द्र राय तथा सी. वी. रमन आदि जैसे कुछ उच्च कोटिके विज्ञानविद् यहां पाये जाते हैं, पर इससे यहां वैज्ञानिक शिक्षाका प्रचार सिद्ध नहीं होता। दो चार मनुष्योंके विद्वान हो जानेसे देशका उद्धार नहीं हो सकता, न जातिका अज्ञान मिट सकता है। यहांके मनुष्य अभी अविद्यामें पड़े हैं और विज्ञानसे प्रायः विमुख हैं। इसीका फल है कि यह देश ऐसी निर्धन और दीन हीन अवस्थामें देखा जा रहा है। यद्यपि इस दुर्दशाके कारण और भी कितने ही हैं, पर विज्ञानबिमुखता भी प्रधान कारणोंमेंसे एक है। यहां न तो उत्तम आविष्कार होते हैं, जिनसे सर्वसाधारणको लाभ हो और न कला कौशलकी वृद्धि, जिससे देशकी निर्धनताका नाश हो। इसीके अभावसे हम कच्चा माल दूसरोंको देकर उनसे बनाया हुआ माल बहुत अधिक मूल्यपर खरीदते हैं। ऐसी दशामें देश धनवान कहांसे हो। धन तो व्यापार व्यवसाय कलाकौशलसे ही आता है। इसी शिक्षाके अभावके कारण यहांके मनुष्य बहुत अधिक मिथ्याविश्वासी बने हुए हैं। और यहां भूत प्रेतोंका भी बड़ा आधिपत्य देखा जाता है। यह सब अज्ञानके लक्षण हैं। स्वास्थ्य भी

यहांका अच्छा नहीं। यहां रोगोंकी संख्या बहुत अधिक है और उनके कारण अकाल मृत्युकी भी बड़ी अधिकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि जब अन्य देशोंमें मनुष्यका औसत जीवन ४०, ५० वर्ष है, भारतमें केवल २५ ही है। ग्रामोंमें प्रतिवर्ष गड्ढोंमें सड़नेवाले पानी एवम् अन्य कारणोंसे मलेरिया ज्वर तथा अन्य बीसियों रोगोंसे करोड़ों मनुष्य मर जाते हैं। शहरोंमें भी सफ़ाईकी बड़ी कमी देखी जाती है और लोग इतने बुरे ढंगसे रहते हैं कि असंख्य मनुष्य अकालमें ही काल कवलित हुआ करते हैं। सारांश यही है कि वैज्ञानिक शिक्षाका प्रचार न होनेके कारण हमारे देशकी आज कल बहुत दुर्दशा है और दिनपर दिन दीन हीन होता जा रहा है।

देशहितैषियोंका परम कर्तव्य है कि वे अन्य सुधारोंके साथ वैज्ञानिक शिक्षाप्रचारकी ओर भी अवश्य ध्यान दें। जब देशमें कलाकौशलकी वृद्धि होगी, नवीन नवीन उद्योग धन्धे आरम्भ होंगे, वाणिज्य व्यापारको प्रसार होगा, तब यह अवश्य धन सम्पन्न हो जायगा। क्योंकि लक्ष्मी वाणिज्यमें ही निवास करती है और लक्ष्मीके आनेसे निस्सन्देह इसके अनेक कष्ट दूर हो जायंगे। इस कारण देशके नेताओं और शुभचिंतकोंका वैज्ञानिक शिक्षाकी ओरसे उदासीन रहना बड़ा हानिकारक है। जिस शिक्षासे आज संसारके समस्त-राष्ट्रोंकी उन्नति हो रही है, जिसके बलसे संसारकी जातियां शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ी चली जा रही हैं और अपना प्रभाव दूसरोंपर डालती जाती हैं, उसका भारतमें अभाव रहनेसे इसकी उन्नति किस प्रकार हो सकेगी। जब यहां विज्ञानकी शिक्षा फैलेगी तथा यहांके मनुष्य तरह तरहके व्यवसायों, दस्तकारी आदिमें प्रवृत्त होंगे, यहांपर भी नवीन आविष्कार होने लगेंगे, सर्वसाधारणकी रुचि विज्ञानकी ओर पूर्ण रीतिसे होगी तभी देशकी उन्नति और बढ़तीकी कुछ आशा की जा सकेगी। पर साथमें यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वह शिक्षा आजकलकी भांति निरी किताबी न होनी चाहिये। इससे कोई लाभ न होगा। अन्य देशोंके समान क्रियात्मक (practical) विद्या ही देशका सच्चा हितसाधन कर सकेगी और उसीकी आवश्यकता है।

संतोशकी बात है कि देशके विद्वान लोगोंमेंसे कुछका ध्यान इस ओर थोड़ा बहुत जाने लगा है। प्रयागकी विज्ञानपरिषद् इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो कई वर्षसे निरंतर विज्ञानप्रचारकी चेष्टा कर रही है और उससे लाभ भी बहुत कुछ हुआ है। आगेके लिए भी इससे बड़ी बड़ी आशाएं की जा रही हैं। लाहौरमें भी एक इसी भांतिकी संस्था है और उसका कार्य भी संतोशजनक है। इसके अतिरिक्त अब भारतके रत्न श्री जगदीशचन्द्र वसुने इस कार्यको आरम्भ किया है और अपने उद्देश्यकी सफलतार्थ कलकत्तेमें एक बड़ी प्रयोगशालाकी स्थापना की है। उससे भारतवासियोंको बहुत अधिक आशाएं हैं और हमें विश्वास है कि भविष्यमें इससे भारतवर्षका बहुत कुछ उपकार साधन हो सकेगा। प्रत्येक देशहितैषीका कर्तव्य है कि वह ऐसी संस्थाकी सहायता तन,मन, धनसे करें। हिन्दू-विश्वविद्यालय भी इस ओर विशेष ध्यान रखे। ऐसा सुननेमें आता है और लोगोंको विश्वास है कि वहां विज्ञान शिक्षाके लिए विशेष प्रबन्ध होगा। परमात्मासे प्रार्थना है कि इस देशके विद्वान वैज्ञानिक शिक्षाको ओर ध्यान दें और वह थोड़े ही समयमें भली भांति फैल कर देशको अधोगतिसे निकाल कर उच्चावस्थामें लानेमें समर्थ हों।

कवि बनाम वैज्ञानिक।

दरभंगेके वकील बाबू सन्तरामके यहाँ मैं आज कई बरसोंसे आता जाता हूं। अभी उस दिन वहाँ ललिताप्रसाद भी पहुँचे थे। बात ही बातमें बोल उठे—"कहना फिज़ूल है कि हम स्वराज्यके लायक़ हैं। इसी म्युनिसिपल इलेक्शनमें सब कुछ देख लिया!"

बात ख़तम भी न होने पाई थी कि एक महाशय जिन्हें मैंने यहाँ पहले कभी न देखा था, सर हिला कर कहने लगे, "अवश्य! तभी तो उस दिन एक प्रतिष्ठित पत्रने लिखा था—

"कहते स्वराज्यवादी—'हम होमरूल लेंगे'!
कुछ अक़्क़का ठिकाना! गूलरका फूल लेंगे!!"

'क्या खूब,' 'शावाश' कह कर सब हँस पड़े। वकील साहबने कहा—"पण्डितजी! यह ज़रूर आपके ही क़लमकी करामात है। मुझे तो इसमें ज़रा भी शक नहीं!"

मैंने पूछा—आपकी तारीफ़?

वकील साहबने बताया—"आप पं० बालादत्त त्रिपाठी, हिन्दी भाषाके एक होनहार कवि हैं। 'मिथिलामिहिर' तथा और भी कितने ही पत्रोंमें बराबर कविताएँ लिखते हैं। मकान आपका मुज़फ्फ़रपुर है।"

पण्डितजी मौन थे, पर उनकी भावभङ्गीसे जान पड़ा कि इन पङ्क्तियोंके लेखक वही थे। मैंने निवेदन किया-"पण्डितजीने स्वराज्यवादियोंपर जो मर्म्मभेदी व्यङ्ग्य-बाण छोड़ा, वह अपनी जगह नहीं पहुँच सका, आपकी चेष्टा व्यर्थ गई।"

बालादत्तजी मुसकरा रहे थे। वकील साहबने पूछा—'क्यों कैसे?'

'उत्प्रेक्षा ठीक नहीं। अलङ्कारका संहार...—'

'तो कविने धोखा खाया?'

'बेशक!'

General साधारण]

अब ललिताप्रसाद क्यों चुप रहने लगे! जोशमें बोले—"सो लोग गूलरके फूलमें यक़ीन करने लगे! ज़मानेकी खूबी है!!"

विज्ञानकी इस प्रकार अवज्ञा होते देखकर मैंने अर्ज की—"आप लोगोंकी यह धारणा निर्मूल है। बीसवीं सदीमें ऐसे ख़यालोंको अपने मनमें स्थान मत दीजिये। वास्तवमें लोग जिसे गूलरका फल समझते हैं वही उसका फूल है। केवल उसके आकारकी विचित्रता लोगोंको धोखेकी टट्टीमें डाल देती है!

ललिताप्रसाद—पर खुदा एक गूलरके ही साथ ऐसी चाल क्यों चला?

मैं—विज्ञान कभी 'क्यों' का उत्तर नहीं देता। प्रकृतिके व्याकरणमें अपवादोंकी कमी नहीं। कदम्बको देखिये, उसका फूल भी तो फल सा ही प्रतीत होता है।

'ज़रूर। पर कदम्बके फूलको हम देख सकते हैं।'

'आपने गेंदेका फूल देखा होगा। असलमें वह एक नहीं, अनेक फूलोंके संयोगसे बना रहता है। ठीक यही हाल कदम्ब, गूलर या सूर्य्यमुखीका है। आप जिसे गूलरका फल समझते हैं वह सैकड़ों, हज़ारों फूलोंका एक समूहमात्र है'।

पण्डितजी—पर इनका शङ्का समाधान तो न हुआ। आप कुछ और ही बात कह गये!

वकील साहब सब कुछ चुपचाप सुन रहे थे। 'परमात्माकी लीला बड़ी विचित्र है' यह कहकर, मेरी ओर विस्मय तथा कौतूहलकी दृष्टिसे देखने लगे। मैं आगे बढ़ा—

'हाँ तो आपने कहा कि हम कदम्बके फूलोंको देख सकते हैं, पर गूलरके फूलोंको नहीं। यह ठीक है। गूलरकी पुष्पराशिके ऊपर प्रकृति एक ऐसा आवरण डाल देती है कि बाह्य जगत्को उसके अस्तित्वका ख़बर ही नहीं होती—जन्मकालसे ही वे कुसुमकलियां पर्दानशीन हो जाती हैं।'

पं० बालादत्तजी मुझपर चोट करनेका मौका

ढूंढ ही रहे थे। 'समय चूक पुनिका पछताने' को याद कर गम्भीरतापूर्वक बोले—"कहना कठिन है कि पर्दा उनपर पड़ा है, या विज्ञानधुरन्धरोंकी अक़्ल पर।"

खैर, मैंने इसे अनसुनासा कर दिया।

मैं—यह तो आप जानते हैं कि पुष्पोंके खड़े रहनेके लिए एक आधार ज़रूरी है! बेला, चमेली, गुलाब इत्यादि फूलोंके चक्राकार आधारोंको आपने देखा भी होगा। मान लीजिये कि यह आधार किसी गेंद जैसा है। अब अगर यह फूल उसके ऊपर चारों ओर लग गये तो उन्हें सभी कोई देख सकता है, जैसे अभी आपने कदम्बकी बात कही। गेंद ठोस भी हो सकती है और नहीं भी; और अगर यह फूल उसके ऊपर न लगकर उसकी भीतरी सतहपर पैदा हो गये तो वे बराबर वहीं अवगुण्ठित रहेंगे और वहीं फलेंगे। या ऐसा अनुमान कीजिये कि यह आधार पहले तो चौरस था, पर धीरे धीरे वह एक गोलाकार कोष बन गया और सभी फूल कैदख़ानेमें पड़ गये!

वकील साहब—बात विश्वासके लायक़ है, पर अभी आपने कहा कि यह फूल वहाँ फल भी सकते हैं। क्यों, यह सच है?

मैं—मुझे इस कारागारके अभी कई रहस्य बताने हैं। आप लोग फूलके भिन्न भिन्न अङ्गोंको अच्छी तरह जानते होंगे। परागकोष, बीजकोष, पुंकेशर और स्त्रीकेशरको देखा भी होगा। पुंकेशरमें एक प्रकारकी धूल होती है, जिसे पराग कहते हैं। किसी कारणवश, स्त्रीकेशर या गर्भकेशरसे उसका संयोग होनेसे ही पुष्प गर्भाधान करता है। पर मैं यहाँपर एक प्रश्न करना चाहता हूँ। क्या कारण है कि हिन्दुओंमें समान गोत्रमें विवाह होनेकी प्रथा जारी नहीं?

पण्डितजी किसी स्मृतिका हवाला देना ही चाहते थे कि वकील साहब कहने लगे, "जहाँ तक मेरी समझ है एकही वंशके माता पिताकी सन्तान कभी उत्कृष्ट नहीं होगी! नसल सुधारनेके लिए भिन्न भिन्न गोत्रोंमें सम्बन्ध होना ज़रूरी है। हो सकता है यह मेरा भ्रममात्र है।

ललिताप्रसाद—मैं समझता हूं आपका क़यास सही है। अभी उस दिन मैं पूसा गया था। वहाँ होवर्ड साहबसे मिला। उन्होंने भी 'पूसा नं० १२' गेहूंके बारेमें कुछ ऐसी ही बातें की थीं!

मैं—आप लोग ठीक कह रहे हैं। अतएव यदि किसी फूलके परागका उसीके गर्भकेशरसे संयोग हो जाय तो सन्तान जैसी चाहिये वैसी न होगी। साथ ही, फूलोंमें इतना ज्ञान भी नहीं कि मनुष्यकी तरह वे इस विषयमें सावधान रह सकें।

वकील साहबने पूछा - तो फिर इस संयोगको रोकता कौन है?

बालादत्तजी बोल उठे—"बहुत अच्छा प्रश्न किया!" मैंने कहा "इसको रोकती है प्रकृति। उसने एक ऐसा नियम बना दिया है कि जिस समय किसी फूलमें पराग तैयार होगा उस समय उसका गर्भकेशर अपरिणतावस्थामें रहेगा। और इस हालतमें यदि संयोग हो भी जाय तो वह न होनेके बराबर है।"

ल० प्र०—तो फिर वह फल कहाँसे लाती है?

मैं—एक फूलके परागका संयोग दूसरे फूलके गर्भकेशरसे करा कर।

ल० प्र०—पर दूसरे फूलतक यह पराग पहुँचाता कौन है?

मैं—ऐसे साधनोंकी कमी नहीं। संसारमें हवासे कोई जगह ख़ाली नहीं। यही हवा एक फूलके पुष्परेणुको दूसरे फूलके परिणत गर्भकेशरतक पहुँचा देती है। सिवा इसके, यह काम तितलियों तथा मधुमक्खियों द्वारा भी होता है। मधुपानके मतलबसे जब मधुमक्खियां किसी फूलपर जा बैठती हैं, उसके परागका कुछ हिस्सा उनके पैरोंमें चिपक जाता है और इसी प्रकार दूसरे फूलोंतक जा पहुँचता है।

ललिताप्रसादका कौतूहल अब और भी बढ़

चला। वह बोलेः—"तो हाँ, वकील साहबने फलोंके विषयमें न पूछा था ?"

मैं—उसे समझानेकी ही चेष्टा कर रहा हूँ। यों तो साधारणतः प्रत्येक वृक्षके पुष्पमें पुंकेशर तथा गर्भकेशर वर्त्तमान रहते हैं, फिर भी इस नियमके कुछ अपवाद हैं। जैसे ताल या पपीतेका पेड़, लौकी या कुम्हड़ेको लत्ती। ताल या पपीतेकी दो जातियां होती हैं, जिनमें एकके फूलोंमें केवल पुंकेशर होते हैं। लौकी या कुम्हड़ेकी लत्तीमें दो प्रकारके फूल लगते हैं। उनमें कुछ तो पुरुष पुष्प और कुछ स्त्रीपुष्प होते हैं। पर उनका संयोग भी उसी रीतिसे होता है जो मैं अभी बता चुका हूँ।

वकील साहब—इसीलिए पुरुषतालमें कोई फल नहीं लगते, उसमें केवल जटाएँ रह जाती हैं। लौकीके भी कुछ फूल योंही सूख जाते हैं; उनमें कोई फल नहीं लगते।

मैं—ठीक। अब गूलरकी बात सुनिये। उसके अन्दर जो हज़ारों पुष्प मौजूद रहते हैं उनके भी दो भेद हैं—पुरुषपुष्प और स्त्रीपुष्प।

वकील साहब—अर्थात् कुछ केवल पुंकेशर रखते हैं और कुछ केवल स्त्रीकेशर ?

मैं—हां। अब देखिये प्रकृतिको एक ही गूलरके भीतरके पराग और गर्भकेशरका संयोग वांछनीय नहीं, पर पराग बाहर जाय तो कैसे ? जिन साधनोंका मैं अभी ज़िक्र कर चुका हूँ उनसे यहां कोई काम नहीं चल सकता। इसीलिए चतुर प्रकृति प्रत्येक गूलरके भीतर कुछ ऐसे छोटे जीवोंको पैदा करती है जिनकी गिनती नहीं हो सकती। उनके आनेजानेके लिए आप प्रत्येक गूलरके ऊपर एक बहुत महीन सूराख़ भी पायँगे। गूलरके स्त्री पुष्प ही इनके अण्डे देनेकी जगह हैं। पर जब इनके बच्चे सयाने होते हैं तब उनकी गुज़र वहां हो नहीं सकती और उन्हें कहीं अण्डे देना ज़रूरी होता है। इसीलिए वे अपनी जन्मभूमिका परित्याग कर, उसी सूराखके रास्ते बाहर निकल जाते और दूसरे गूलरके भीतर जाकर शरण लेते हैं। निकलनेके समय अपने साथ कुछ पराग भी लेते जाते हैं और उसे दूसरे गूलरके स्त्री-पुष्पोंतक पहुँचा देते हैं।

ल० प्र०—पर फल नज़र नहीं आते। उस संयोगका नतीजा क्या होता है ?

मैं—अच्छा बताइये, गेंदेका फल क्या है ?

ल० प्र०—उसका बीज।

मैं—तो गूलरके भीतर जो आप बहुत ही छोटे छोटे बीज पाते हैं वही उसके फल हैं। उनके सिवा और कुछ नहीं। जो कुछ मैं कहना चाहता था उससे कहीं ज्यादा कह गया। अब इजाज़त हो !

वकील साहब बोले—भाई, आज तक तो मैं यही सुनता आया हूं कि गूलरके फूलके दर्शन नहीं हो सकते। अगर कोई उसे देखले तो उसे कुबेरके भाण्डारकी कुंजी हाथ लग जाय। पर आपका विज्ञान तो कुछ और ही कहता है !!

मुझे आशा थी कि पण्डितजीके ज्ञान-चक्षु अब खुल गये होंगे। यह रहस्य सुनकर वे अबसे अपने काव्यकी इमारत विज्ञानकी नींवपर खड़ी करेंगे। पर व्यर्थ ! वकील साहबकी बात समाप्त होते ही उन्होंने शब्द-ब्रह्मका आह्वाहन इन शब्दोंमें कर ही तो दिया।

"सब बात इनकी झूठ है !जो फूल वह खिलता कहीं।
तो देशमें दारिद्र-दुखका चिह्न भी मिलता नहीं !"

मैं चुप रह गया। सोचा—सरस्वती ज्ञानमात्रकी अधिष्ठात्री देवी है। फिर भी कविगण, सरस्वतीसुत होनेका दावा अपने ही विषयमें करते हैं। ऐसी अवस्थामें वैज्ञानिक उसके सेवक हो सकते हैं—उसको सन्तान हर्गिज़ नहीं ! सरस्वती सदनमें बालादत्तजीका आसन ज़रूर मुझसे ऊंचा है !!

\+ \+ \+ \+

आज कचहरीमें वकील साहबसे मुलाक़ात हुई। उन्होंने कहा—"पण्डितजी कल मुज़फ़्फ़रपुर

चले गये। 'मिहिरके' लिए एक कविता लिख गये हैं। उसका अन्तिम चरण मुझे याद है—

'कविसे मत वाद-विवाद करो,
कविसे कलिके परमेश्वर हारे !'

मैं समझता हूँ यह इशारा वैज्ञानिकोंकी ओर है।"

मैंने कहा—हाँ, मेरा भी यही ख़याल है।

—पारसनाथ सिंह, बी. ए.

प्रकाश-विज्ञानके अध्ययनकी आवश्यकता

[ले०-प्रोफेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी,]

ज्ञान प्राप्त करनेकेलिए मनुष्यके पास जितनी इन्द्रियां हैं, उनमें आँखसे बढ़कर उपयोगी, चक्षु-से अधिक लाभदायक और आश्चर्यजनक इन्द्रिय कोई नहीं है। बालक जब दूसरी इंद्रियोंसे—नाक, कान, जिह्वा आदिसे—ठीक ठीक काम लेना भी नहीं जानता, जब उसे यह भी मालूम नहीं होता कि स्वाद या सुगन्ध क्या है, तबसे ही उसे चमकदार, रंगीन, वस्तुएँ देखकर खुशी होती है। दीपककी लौ देखकर प्रसन्नताके मारे उछल उछलकर उसे पकड़ लेनेका प्रयत्न करता है और यद्यपि बड़े होनेपर उसकी अन्य इन्द्रियोंका विकाश हो जाता है, यद्यपि उसमें दूसरी इन्द्रियोंसे भी काम लेनेकी शक्ति आ जाती है तो भी यह कोई नहीं कह सकता कि आँखोंका महत्व कुछ कम हो जाता है। यह सब जानते हैं कि विशेष अवस्थाओंको छोड़कर हमारी अन्य सब इन्द्रियां मिलकर भी हमें किसी वस्तुका इतना ज्ञान नहीं करा सकतीं, जितना उसको एक बार देख लेनेसे होता है—उतना क्या उसका दसवां भाग भी नहीं होता। यह सच है कि कभी कभी हमारे नेत्र हमें धोका भी दे देते हैं; कभी कभी वस्तुका यथार्थ ज्ञान हमें नहीं भी होता और हैरान होकर हमें यह कहना पड़ता है कि "संसारमें जितनी चमकदार वस्तुएँ हैं वे सभी सुवर्णमयी नहीं हैं," "रूप देखकर ही लोभमें न आ जाओ," इत्यादि, किन्तु तब भी यह कहनेका कोई साहस नहीं कर सकता कि नेत्र सबसे श्रेष्ठ इन्द्रिय नहीं है। यह कहनेको कोई प्रस्तुत नहीं कि अन्य इन्द्रियां मनुष्यकेलिए नेत्रोंसे भी अधिक उपयोगी हैं।

किन्तु नेत्रों और दूसरी इन्द्रियोंमें एक बहुत बड़ा भेद है। जिस प्रकार नेत्रोंके द्वारा हमें ज्ञान प्राप्त होता है और जिस प्रकार हाथ, जीभ, आदिसे हम वस्तु-ज्ञान प्राप्त करते हैं, इनमें बड़ा अंतर है। हाथसे केवल वस्तुको छूनेसे हमें उसके कुछ गुणोंका ज्ञान हो जाता है। हम जान जाते हैं कि वह गरम है या ठंडी, नरम है या कड़ी इत्यादि। हाथ और वस्तुके अतिरिक्त किसी तीसरी वस्तुकी आवश्यकता नहीं होती। जीभको भी कड़वा, मीठा, खारी आदि स्वाद जाननेकेलिए किसी तीसरी वस्तुका मुंह नहीं ताकना पड़ता। वह भी केवल वस्तुको छूकर अपना कार्य कर लेती है। किन्तु आँखें ऐसा नहीं कर सकतीं। वस्तुको आँखसे छू देनेसे उसके रंग रूपका कुछ भी बोध नहीं होता। नेत्रोंको वस्तुसे भिन्न किसी अन्य वस्तुकी ज़रूरत रहती है, जिसके बिना वे सर्वथा असमर्थ हैं। दिनमें मनुष्यको नेत्र और वस्तुके अतिरिक्त और किसी तीसरी चीज़की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि प्रकृतिने कृपा करके हमारे लिए सूर्य बना दिया है। और इसी कारण बहुधा मनुष्योंको यह ज्ञात भी नहीं होता कि बिना सहायताके हमारे नेत्र कुछ कार्य नहीं कर सकते। किन्तु जब सूर्यदेव अस्त हो जाते हैं और अंधकारमयी रात्रि हमारे सामने उपस्थित होती है, तब मनुष्यको यह ज्ञात होता है कि सूर्यसे हमारा कितना उपकार होता है। उसके बिना हम कितने निर्बल हो जाते हैं।

तभी मनुष्यने अपनी बुद्धिसे काम लेना आरम्भ किया और अपने लिए कुछ कृत्रिम सूर्य बनानेका प्रयत्न किया। पहले तो जलती लकड़ीसे ही उसने अपने नेत्रोंको सहायता दी। यही उसका कृत्रिम सूर्य हुआ। किन्तु ज्यों ज्यों उसकी बुद्धि बढ़ती गई त्यों त्यों उसने नई नई वस्तुओंका प्रयोग करना सीखा। मोमबत्ती और तेलके दीपक व्यवहारमें लाने लगा। धीरे धीरे गैसके दीपक जलने लगे। उससे भी संतुष्ट न होकर विद्युत् अर्थात् बिजलीका भी प्रयोग हुआ। और इसी प्रयत्नका परिणाम है कि आज सारे संसारमें बिजलीके छोटे बड़े दीपक और गैसका अलौकिक श्वेत प्रकाश (Incandescent gas light) सूर्यके स्थानपर नेत्रोंकी बहुत कुछ सहायता कर रहे हैं। किन्तु यह भूल न जाना चाहिये कि यद्यपि अंधकारपर विजय प्राप्त करनेके उपादानोंमें अधिकाधिक उन्नति हो रही है और आज हम लोग अपना बहुत कुछ कार्य सूर्यके बिना भी निकाल लेते हैं, किंतु अभी तक वस्तुतः उपयोगी कृत्रिम सूर्यके बन जानेमें बहुत देर है। यह बात तब और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है जब हिसाब लगाकर देखते हैं कि जितनी सामग्री और शक्ति हम इन विविध प्रकारके दीपकोंमें खर्च करते हैं उसका एक शतांश भी हमारी आँखोंके काम नहीं आती। इस सम्बन्धमें प्रोफ़ेसर लैंगली (Langley) की परीक्षाओंका परिणाम नीचेके वक्रोंमें दिया है। इन वक्रोंसे पता लगता है कि जितनी शक्तिका व्यय होता है उसमेंसे कितनी प्रकाशमें परिणत होती है और कितनी तापमें। हम दीपक तापकेलिए नहीं जलाते। हमें केवल प्रकाश चाहिये। अतः जितना ताप बनता है उतना शक्तिका अपव्यय है। दीपकोंमें सबसे उत्कृष्ट विद्युल्लाट (electric arc) है, पहिले वक्रमें उसका ही हिसाब है। उससे स्पष्ट है कि सौ रुपयेका सामान और शक्ति लगा देनेपर भी हम पूरी तरह एक रुपयेके सामानका भी उपयोग नहीं कर सकते। जब विद्युल्लाटका यह हाल है तब अन्य दीपकोंके अपव्ययका क्या ठिकाना है? वक्र ३ में सूर्यके प्रकाशका हिसाब है। यह देखकर कि
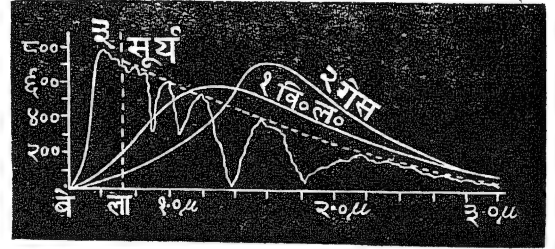
चित्र १—विद्युल्लाटसे जितनी शक्ति प्राप्त होती है, वह उस वर्गफलसे प्रदर्शित है, जो वक्र १ तथा बे ला रेखाके बीचमें है। इसका उतना अंश, जो खड़ी हुई टटी रेखाके बाएँको है, प्रकाशके रूपमें और जो अंश दाएँको है, तापके रूपमें रहता है। यह स्पष्ट है कि कुल शक्तिका कितना कम अंश प्रकाशमें और कितना अधिक तापमें परिणत होता है। इसी प्रकार गैस तथा सूर्य द्वारा उत्पादित शक्तिका ब्यौरा वक्र २ तथा ३ से विदित होगा।

बे और ला से बैंजनी तथा लाल प्रकाश अभीष्ट है, दृश्य प्रकाशकी यह दो सीमाएँ हैं।

यहाँ भी बहुत सी शक्ति तापके रूपमें रहती है और केवल पाँचवाँ भाग नेत्रोंके काम आती है, यह परिणाम निकालना कि प्रकृति इससे अधिक मितव्यय करना जानती ही नहीं ठीक नहीं है, क्योंकि सूर्यके तापकी भी तो संसारको बहुत आवश्यकता रहती है। यदि सूर्यसे केवल देखनेमें ही सहायता पहुंचाना प्रकृतिको अभीष्ट होता तो कदापि शक्तिका इतना व्यय न होता। प्रकृतिकी इस शक्तिका पता जुगनू (खद्योत) के प्रकाशसे लगता है। इसमें तापका नाम नहीं और प्रकाश भी अधिकतर उस रंगका है, जिसका कि नेत्र अधिक उपयोग कर सकते हैं। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं कि जो बात मनुष्य अपने इतने प्रयत्नसे भी अभीतक नहीं कर सका वही क्षुद्र जुगनू स्वाभाविक रीतिपर कर लेता है। उसे अपना दीपक जलानेमें बहुत ही कम खर्च करना पड़ता है। मनुष्यको अभी इस क्षुद्र जन्तु-

से बहुत कुछ सीखना है, जिससे वह भी अपना दीपक जुगनूकी ही भांति थोड़े व्ययमें जला लिया करे। संसारको कितना लाभ हो सकता है, यदि दीपक जलानेका व्यय आधा भी हो जाय। यदि जुगनूके दीपकका रहस्य ज्ञात हो जाय, तो न मालूम कितने करोड़ रुपये वार्षिक मनुष्यको अन्य कामोंकेलिए बच जावें। यदि और किसी लालच-से नहीं तो यह क्या कुछ कम लाभ है, जिसके-लिए मनुष्यको प्रयत्न करना चाहिये और कृत्रिम सूर्योंकी उपयोगिता बढ़ानेके विचारसे अन्वेषण करना चाहिए।

किन्तु ज़रा विचार करनेसे मालूम हो जायगा कि नेत्र और देखने योग्य वस्तुके अतिरिक्त सूर्य या दीपक तीसरी वस्तु बतलाई गई है, केवल उससे काम नहीं चलता। इनके सिवाय किसी और वस्तुकी भी आवश्यकता होती है, क्योंकि यदि हम अपने कमरेके सब द्वार और खिड़कियां बन्द करलें तो हमें वहाँकी कोई वस्तु दिखलाई नहीं पड़ेगी। चाहे उस समय दोपहरके १२ बजे हों उस समय सूर्यके रहनेपर भी हमारे नेत्र कुछ कार्य नहीं कर सकते। किन्तु साधारण बात होने-पर भी क्या यह बात आश्चर्यकी नहीं है कि द्वार-में यदि छोटीसी भी दरार हो, दीवारमें यदि छोटा सा भी एक छिद्र हो तो सारा कमरा उसकी प्रत्येक वस्तु हमें बहुत अच्छी तरह दिख-लाई देने लगती है। न तो सूर्य ही कमरेमें घुस आया और न कोई नई वस्तु ही कमरेमें प्रविष्ट दीख पड़ती है। किन्तु फिर यह चमत्कार क्यों? चाहे हम देख सकें या नहीं, कुछ न कुछ कमरेमें अवश्य घुस आया है। वह वस्तु हममेंसे नहीं निकली। हम उसके कारण नहीं हो सकते, क्यों-कि यदि ऐसा होता तो उस छिद्रकी क्या आव-श्यकता थी? वह वस्तु कमरेमेंकी किसी अन्य वस्तुमेंसे भी नहीं निकली, क्योंकि यदि ऐसा होता तो बिना छिद्रके भी तो निकल सकती थी। तब क्या छिद्रमें ही यह अद्भुत गुण है? किंतु फिर रात्रिको उसका गुण कहाँ चला जाता है? तब अवश्य ही वह वस्तु सूर्यसे निकलकर छिद्र द्वारा कमरेमें घुसी होगी। सूर्य भगवान भी उस अदृष्ट अलौकिक वस्तुको हम लोगोंके निकट भेज कर हमारे नेत्रोंकी सहायता करते हैं और हमारे दीपक, कृत्रिम सूर्य, भी यही अद्भुत वस्तु उत्पन्न करने-के यंत्र हैं। नेत्रोंको जिस तीसरी वस्तुकी आवश्य-कता है और जिसके बिना उनका काम नहीं चल सकता वह सूर्य नहीं, दीपक नहीं, यही वस्तु है, जो छिद्र द्वारा कमरेमें अनायास ही घुस आई। जिसे हम देख नहीं सकते, पर जो हमें देखनेको समर्थ करती है। इसका नाम "प्रकाश" है। यह 'प्रकाश' क्या है और यह हमारे नेत्रोंकी किस प्रकार सहायता करता है, इन प्रश्नोंपर इस समय हमें विचार नहीं करना है। हमें यहाँ केवल यही देखना है कि क्या इस प्रकाशके विज्ञानका अध्य-यन आवश्यक है? क्या हम इसका उपयोग अपने और संसारके लाभकेलिए कर सकते हैं? क्या इस प्रकाशके विषयमें बहुत कुछ जानकर, उसका उचित उपयोग करनेकी शक्ति प्राप्त कर सकनेपर, हम इस संसारमें अधिक सुख पूर्वक जीवन निर्वाह कर सकते हैं?

सूर्यके न रहनेपर अपने कमरों और बड़े बड़े सभा मण्डपों अथवा नाट्यशालाओंमें प्रकाश करनेमें तो खैर इतना अधिक कष्ट नहीं होता, क्योंकि ऐसे स्थानोंमें तो केवल अच्छे दीपकसे ही काम चल जाता है, किन्तु यदि हमें प्रकाशको कुछ दूर ले जाना हो अर्थात् यदि हमें दीपकको यहीं रखकर २४ मीलकी दूरीपर प्रकाश करना हो तब किस उपायका अवलम्बन करें। अच्छेसे अच्छा दीपक भी उतनी दूरसे केवल दिखलाई दे सकता है, किन्तु वह वहांकी वस्तुओंको देखनेमें हमारी सहायता नहीं कर सकता। तो तनिक सोचिये कि जहाज रात्रिमें निर्भय यात्रा कैसे कर सकते हैं? यदि प्रकाशस्तंभोंपर (light houses) ऐसा प्रबंध न होता कि बहुत तीव्र प्रकाश वहांसे

निकल कर मार्गमें फैल जाय और सबका सब एक ही साथ जाकर समुद्रको प्रकाशित न कर दे तो जहाजोंका रात्रिमें चलना बहुत ही कठिन हो जाता। (चित्र २, ३)। यदि जहाजोंपर वह प्रखर प्रकाश पुंज (searchlight) न होता तो क्या रात्रिमें जहाज़ोंको यह मालूम हो सकता था कि सामने कोई चट्टान है और यदि उससे बचकर न चलेंगे तो सर्वनाश हो जायगा? क्या इसके बिना वायुयानपर (airship) बैठनेवालोंको यह ज्ञान हो सकता था कि वे निर्दिष्ट नगरके ऊपर कब पहुंचते हैं और उस नगरमें उनके उतरनेका स्थान कहांपर है। संसारका कोई दीपक भी यह अद्भुत काम नहीं कर सकता। किन्तु प्रकाशविज्ञानके अध्ययनसे मनुष्यको वह सब बातें मालूम हो गई हैं और उसने वह सब सामान बनाना सीख लिया है, जिससे यद्यपि दीपक इतना शक्तिशाली न हो तो भी यह सब कार्य बहुत सुगमतासे हो जाते हैं। अब तो यही अद्भुत बातें नित्य प्रति व्यवहारमें आती हैं और उन्हें देखकर लोगोंको कुछ आश्चर्य भी नहीं होता। यह केवल प्रकाश-विज्ञानकी कृपा है। और यदि इसका अधिक मनन किया जायगा तो न जाने और क्या क्या आश्चर्यजनक कार्य मनुष्य कर सकेगा?

चित्र २—जब समुद्र तथा वायुमण्डल शान्त हों उस समयका एडीस्टोन प्रकाश स्तम्भका (Eddystone lighthouse) दृश्य।
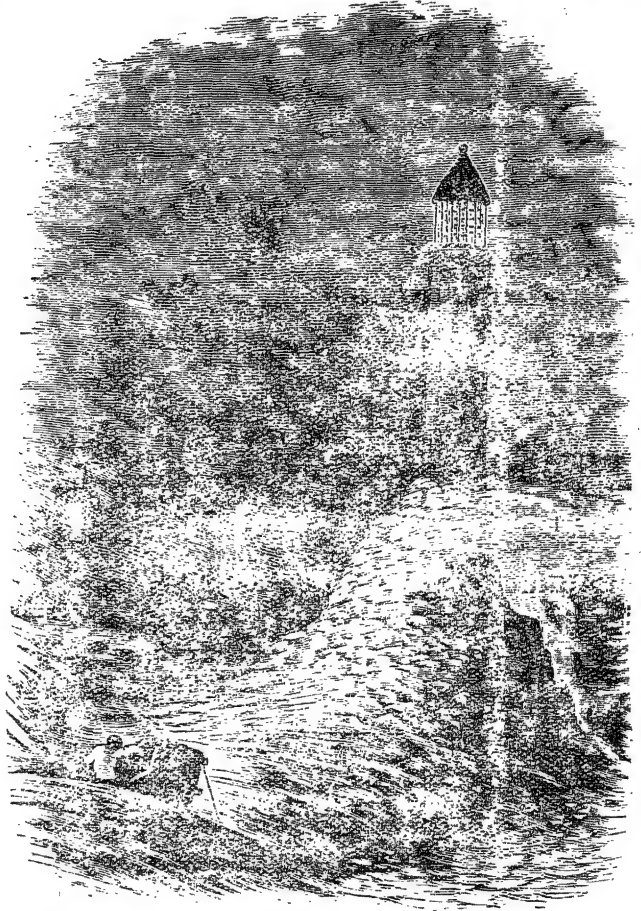
चित्र ३—तूफानमें एडीस्टोन प्रकाशस्तम्भका दृश्य।

उपरोक्त बातोंका उपयोग और महत्त्व केवल वही लोग समझ सकते हैं, जिन्हें कभी जहाजमें

बैठनेका अवसर प्राप्त हुआ है और उनसे भी अधिक वे लोग समझ सकते हैं, जिन्हें स्वयं जहाज चलानेका काम पड़ा है। किन्तु साधारण मनुष्योंको, भारतवर्षके अधिकांश निवासियोंको, ऐसा अनुभव नहीं होता। इसलिए कदाचित् वे इन बातोंके कारण प्रकाशविज्ञानका यथोचित आदर करनेकेलिए प्रस्तुत न हों। परन्तु जब हम मनुष्यके नेत्रोंकी ओर उनके विकारोंकी ओर दृष्टि डालते हैं, तब बहुत दुःख होता है। जिसकी दृष्टि कमज़ोर हो गई है, जिसे दूरकी वस्तुएं साफ साफ नहीं दिखलाई देतीं उसके दुःखका क्या ठिकाना है। आकाशमें रात्रिके समय चन्द्रमा और तारोंकी अनुपम छटाका आनन्दानुभव उसे कैसे हो सकता है। अरुणोदयकी मनमोहनी लालिमाका सौन्दर्य उसे अलभ्य है। सुन्दर सरोवर और बन उपवन देखकर भी वह प्राकृतिक सुखका अनुभव नहीं कर सकता। नट अपने शरीरको तोड़ मरोड़ कर जो अद्भुत खेल दिखलाते हैं उन्हें देखकर चित्तको जितना उल्लास होना चाहिये उतना उसे कभी नहीं हो सकता। ऐसे मनुष्योंके लिए संसार कितना अंधकारमय हो जाता, यदि विज्ञानके स्वार्थत्यागी उपासक प्रकाश सम्बंधी प्राकृतिक नियम न जान लेते और चशमेका आविष्कार न करते। कोई दवा ऐसे मनुष्यकी सहायता नहीं कर सकती थी। आजकल चशमोंका बहुत प्रचार होनेसे हम लोग इस आविष्कारका महत्व आसानीसे नहीं समझ सकते और उसे बहुत साधारण बात कह कर छोड़ देते हैं। किन्तु जो लोग चशमेका व्यवहार करते हैं, उनसे पूछिये कि यदि थोड़ी सी देरके लिए उनका चशमा ले लिया जाय तो उनकी क्या दशा हो जाती है। वे ही बतला सकेंगे कि यह कितने महत्त्वकी वस्तु है।

किन्तु यह समझना कि इस विज्ञानकी सहायतासे हम केवल नेत्रोंके विकारोंको ही दूरकर सकते हैं, उसकी अवज्ञा करना है। क्योंकि उसने हमें वह रीति बतला दी हैं, जिनसे हमारे नेत्र वह कार्य कर सकते हैं जो सर्वथा निरोग और स्वस्थ आँखें भी नहीं कर सकतीं। नाट्यशालामें रंगभूमिपर पात्र नाट्य कर रहा है। हमारी इच्छा है कि हम उन भावोंको गौरसे देखें, जिनकी छाया वे अपने मुखोंपर झलकानेका प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु ५०-६० गज की दूरीसे रात्रिके समय दीपकके
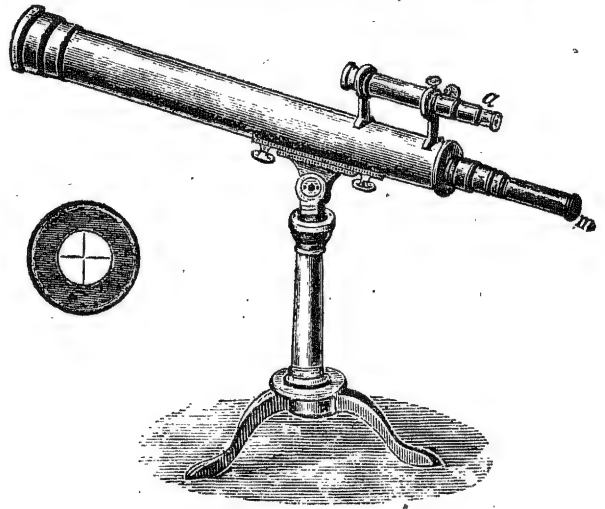
चित्र ४—दूरबीन।

प्रकाशमें यह कैसे हो? प्रकाश विज्ञान द्वारानिर्मित दूरबीन (Opera-glasses) झट हमारी सहायता कर देते हैं। सेनापति चाहता है कि शत्रु सैन्य क्या कर रही है, यह देखले। किन्तु इतनी दूरसे तो धुंधला धुंधला कुछ दिखाई देता है। यह भी नहीं जान पड़ता कि मनुष्य है अथवा केवल धुआं ही है। उस समय दूरबीन (Field-glasses) की आवश्यकता होती है। ज्योतिषियोंको मंगल, बृहस्पति और शनि आदि ग्रहोंके रूपरंग और उपग्रहों आदिके देखनेका शौक़ है। किन्तु अच्छी स्वस्थ आँखें होनेपर भी उनके अस्तित्वके अतिरिक्त कुछ नहीं दिखलाई देता और उपग्रह तो दिखलाई भी नहीं पड़ते। किन्तु दूरबीन (Telescope) से उसको उनकी इतनी छोटी छोटी बातें ज्ञात हो जाती हैं कि वह उन ग्रहोंमें जो नहरें इत्यादि हैं उनके विषयमें भी विवेचना करने लगता है।

कभी कभी नये नयें तारोंका भी आविष्कार हो जाता है। प्रकाश विज्ञानके वर्षों अध्ययन करनेपर मनुष्य जो यह सीधा सादा यंत्र बना सका है, उसने संसारके दृश्यको कितना विस्तृत बना दिया है और मनुष्यको जो यह अभिमान हो चला था कि संसारमें जो कुछ हैं हम ही हैं उसे कितना कम कर दिया है।

यद्यपि दृष्टिकेलिए इस यंत्रने दूरीको बिलकुल छोटा बना दिया है, यद्यपि अब यह शिकायत बहुत कम हो गई कि अमुक वस्तु इतनी दूर है कि उसे हम नहीं देख सकते, तथापि अभी एक बात और बच गई थी कि जिसमें मनुष्यके नेत्र कुछ काम नहीं कर सकते थे। शायद मनुष्यको यह भली भांति ज्ञात भी न था कि संसारमें ऐसे ऐसे जीव भी होते हैं जो बहुत थोड़े स्थानमें भी करोड़ोंकी संख्यामें एक साथ निवास कर सकते हैं और करते हैं। उसको यह मालूम न था कि उससे रक्तकी एक बूंदके साठवें भागमें लगभग ५० लाख लालकण होते हैं। और यदि १३ अरब लाल कण एकत्रित किये जायँ तो उनका भार एक माशेके लगभग होता है। जब सूक्ष्म दर्शक (microscope) से उसने यह दृश्य देखे होंगे तब तो अवश्य उसके मनमें उस प्राकृतिक शक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई होगी, जिसके आश्रित असंख्य जीव छोटे और बड़े सुख पूर्वक निर्वाह कर सकते हैं। किन्तु जब उसने इस सूक्ष्मदर्शकसे इन कीटाणुओं-का रक्तके कीटाणुओंसे भयंकर युद्ध होते हुए देखा होगा, जब उसे ज्ञात हुआ होगा कि यही सूक्ष्म जन्तु रोगोंके कारण हैं, जब इस यंत्र द्वारा उसको इन रोगोत्पादक जन्तुओंके नाश करनेकी रीति मालूम हुई और जब उसने देखा कि इस यंत्रके द्वारा तो संसारके अनेक रोगोंका नाश किया जा सकेगा और किया जा रहा है, तब तो अवश्य उसके मन-में यह भावना उत्पन्न हुई होगी, जैसे कि अब हमारे मनमें उत्पन्न होती है, कि जब विज्ञानके इस छोटे-से यंत्रसे मानव संसारका इतना अधिक लाभ हो सकता है, तब उन मनुष्योंके हाथमें संसारको भला करनेकी कितनी अधिक शक्ति होगी, जो अपना जीवन विज्ञानके अध्ययन और आविष्कारमें लगा देते हैं। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पहले पहल यह सूक्ष्मदर्शक कुछ अधिक उपयोगी नहीं जान पड़ा होगा, क्योंकि बहुत छोटी वस्तुएं हम देख सकें या नहीं, इससे मनुष्यको क्या? किन्तु जब हम देखते हैं कि इससे मनुष्य-की शक्ति कितनी बढ़ गई है और इसके द्वारा मानव समाजको कितना लाभ पहुंचाया जा सका है तब विवश होकर हमें स्वीकार करना पड़ता है कि प्रकृति जो कुछ वैज्ञानिक अनुसंधानके द्वारा हमें बतलाती है उसे कभी छोटा और अनुपयोगी नहीं समझना चाहिये। इस समय चाहे वह बहुत ही तुच्छ जान पड़े और शायद वर्षोंतक उसकी तुच्छतामें अंतर न पड़े, किन्तु बहुत सम्भव है कि किसी न किसी दिन यही तुच्छ बात अत्यन्त उपयोगी और महत्वकी बात हो जावे।

खाद और खाद डालना

(लेखक—'पथिक')

[मकराङ्कसे सम्मिलित]

हड्डीकी खाद

हड्डी खेतमें पांसके समान डाली जा सकती है, क्योंकि उसमें चूनेका फोस्फेत (Phosphate of Lime) ५० प्रतिशत और नत्रजन (Nitrogen) ३ प्रतिशत होती है। हड्डीका असली फोस्फेत (Phosphate of bone) ज़मीनके पानीमें और वानस्पतिक रस-में घुलता नहीं है, इसलिए इसे सड़ा कर, घुलने योग्य बना कर खेतमें डालते हैं। यदि हड्डीका चूरा बना कर खेतमें डाला जावे तो शीघ्र ही पौदों-के काममें आ सकता है।

हड्डोकी भिन्न भिन्न प्रकारकी पांस विविध

Agriculture कृषिशास्त्र]

रीतियों द्वारा तैय्यार करके काममें लाई जाती हैं। इनके रूप निम्नलिखित हैं:—

(Bone Meal) हड्डीका चूरा
(Bone Dust) हड्डीकी बुकनी
(Bone Charcoal) हड्डीका कोयला
(Bone Ash) हड्डीकी राख
(Fermented Bone) गली हुई हड्डियां
(Bone Superphosphate) हड्डीका सुपर-फोस्फेत

यह भिन्न भिन्न समयपर पौदोंकी खुराकके काममें आती हैं। हड्डीका चूरा बहुत कम मात्रामें पानीमें घुलता है और सुपरफोस्फेत सबसे अधिक।

हड्डियोंकी खाद बनानेकी रीति।

(१) Fermentation of Bones (हड्डियोंका गलाना)—

हड्डियोंको एक गड्ढेमें गलाते हैं। पहिले हड्डियोंका चूरा तय्यार करते हैं। फिर उसमें उतनी ही बालू मिला कर गड्ढे में भर देते हैं। इसके बाद गोशालाके धोनेका पानी और जानवरोंका पेशाब उसमें डाला जाता है। ऐसा करनेसे हड्डियोंका गलना आरम्भ हो जाता है। हड्डियों और पेशाबकी नत्रजन अमोनियाके यौगिकोंमें (Ammonium compounds) परिणित हो जाती है और खटिक फोस्फेत (calcium phosphate) का एक भाग पानीमें घुल जाने योग्य हो जाता है। इस मिश्रणको प्रत्येक दूसरे महीनेमें बाहिर निकाल कर फिर गड्ढेमें डाल देना चाहिये। ऐसा करनेसे हड्डियां शीघ्र गल जाती हैं। इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि यह मिश्रण सदा गीला रहे। ऐसा करनेसे आठ नौ मास बाद यह खेतमें डालने योग्य हो जाता है।

गली हड्डीकी खादके गुण—यह एक साधारण पांस नहीं है, वरन् एक विशेष प्रकारकी पांस है, जो कि प्रधानतः फोस्फोरिक अम्ल (Phosphoric acid) पौदोंको पहुंचाती है। इसका प्रभाव खेतमें कई वर्ष तक रहता है। इसका मूल्य दस या बारह आना मन है। हड्डीकी पांस खेतमें बोनेसे पूर्व डालनी चाहिये। इसको प्रति एकड़ १० से १५ मन तक डालते हैं। यह पांस फलदार वृक्षोंके लिए अत्यंत लाभदायक है। ᳲ२॥ से ᳲ४ तक पांस साधारण वृक्षके लिए काफ़ी है।

(२) Bone Superphosphate—

यह पांस तय्यार करनेके लिए हड्डियोंको खूब बारीक पीसते हैं। और पानीसे तर कर देते हैं। इसके पश्चात् $\frac{१}{५}$ भाग गंधकके तेज़ाबका डालकर उन्हें खूब चलाते हैं। जब हड्डियां गल जाती हैं, तो एक प्रकारकी लेई सी बन जाती है। जब तेज़ाबकी क्रिया समाप्त हो जाती है, तब उस लेईको फैला देते हैं, जिससे वह ठंडी हो कर सूख जावे। सूख जानेपर उसे पीस कर खेतमें डालने योग्य बनाते हैं।

चूरेको पानीमें इसलिए भिगोते हैं कि तेज़ाबका प्रभाव शीघ्र और सब जगह हो जाय। इस पांसमें निम्न लिखित पदार्थ होते हैं।

(१) घुलनशील और अघुलनशील खटिक फोस्फेत (soluble and insoluble calcium phophate).

(२) खटिक गंधेत (calcium sulphate)

(३) (free acid) अम्ल।

निम्नलिखित घुलनशील और अघुलनशील (soluble and insoluble calcium phosphates) खटिक फोस्फेत पाये जाते हैं:—

(अ) त्रिखटिक फोस्फेत (tri-calcium phosphate) जो जमीनके पानी और जड़के रसमें नहीं घुलता।

(ब) द्वि-खटिक फोस्फेत (di-calcium phosphate) जो साधारण पानीमें नहीं घुलता, पर जमीनके पानीमें और जड़के रसमें घुल जाता है।

(स) एक-खटिक फोस्फेत (mono-calcium phosphate) साधारण पानीमें घुल जाता है।

खटिक गंधेत (calcium sulphate) पानीमें बहुत कम घुलता है।

इस प्रकारसे बनी हुई पांसको खेतमें देनेसे हम पानीमें घुल जानेवाले फोस्फेतकी मात्रा बढ़ाते हैं। ज़मीनके अन्दर बहुतसे ऐसे भी फ़ोस्फ़ेत होते हैं, जो चूने, लोहे और अल्यूमीनियमसे मिल कर बने हुये हैं और जो पानीमें नहीं घुलते हैं। इस पांसकी भी पुरानी हो जानेपर यही दशा हो जाती है। इस पांसको मिट्टी या गोबरमें मिला कर खेतमें एकसा फैला देना चाहिये। यह उन खेतोंमें देनी चाहिये, जिनमें चूना अधिक हो। मूल्यवान फ़स्लोंमें भी इसे देना चाहिये। इसको एक मनसे ३ मन तक प्रति ऐकड़ डालते हैं। इसका मूल्य १६) प्रति मन है।

इसमें एक-खटिक फोस्फेत (mono-calcium phosphate) २·५ प्र० श०

त्रिखटिक फोस्फेत (tri-calcium phosphate) ४०·० प्र० श०

खटिक गन्धेत (calcium sulphate) १३·० प्र० श०

और द्वि खटिक फोस्फेत (di-calcium phosphate) थोड़ी मात्रामें होता है।

भिन्न भिन्न आङ्गारक पांसोंका तुलुनात्मक मूल्य—

		मूल्य प्रति मन			प्रतिशत नाइट्रोजन	एक सेर नाइट्रोजनका मूल्य		
		रु०	आ०	पा०		रु०	आ०	पा०
(१)	गोबरकी पांस	०	१	१	०·८	०	३	४
(२)	भेड़ बकरीकी मेंगनी	०	३	३	१·०	०	८	०
(३)	हरी खाद	०	०	६	०·५	०	२	८
(४)	मैला (Poudrette)	०	३	०	१·०	०	८	०
(५)	*अंडीकी खली	२	८	०	४·२	१	७	१०
(६)	नीमकी खली	२	८	०	५·०	१	४	०
(७)	महुएकी खली	१	४	०	२·५	१	४	०
(८)	बिनौलेकी खली	२	०	०	४·०	१	४	०
(९)	तिलकी खली	२	०	०	५·०	१	०	०
(१०)	कुसुमकी खली	२	०	०	४·०	१	४	०

* अंडीकी खली २।) मनके दरसे कृषी विभाग कानपुरसे मिल सकती है।—लेखक

बीज

[ले०—प्रो० हरनारायण बाथम, एम० ए०]

इस बातको सभी मानते हैं कि जैसा बीज बोया जायगा वैसा ही फल होगा। यदि बीज अच्छा है तो फल भी अच्छा होगा और यदि बीज खराब है तो फल भी वैसा ही होगा। इस कारण किसान यदि अच्छा लाभ उठाना चाहता है तो वह अच्छे बीज बोये। दरिद्रताके कारण, अपने देशमें, अच्छे बीजके बोनेसे जो फायदे होते हैं, उनकी ओर लोग कम ध्यान देते हैं। अकसर किसान वही बीज बोते हैं, जो उनके खेतोंमें पैदा हुए हैं, या जो उन्हें सवाई या ड्योढ़ियेपर मिलते हैं। खेत कटनेपर किसान बोहरोंको नाज दे जाते हैं। वे उस नाजमेंसे अच्छा अच्छा नाज बाज़ारोंमें बेच कर रुपया खड़ा कर लेते हैं और बचा हुआ नाज किसानोंके लिए रख छोड़ते हैं। अतएव बोहरोंसे अच्छा बीज मिलना अत्यन्त कठिन है। और इसी कारण हमारे देशके नाज दिन दिन खराब होते जाते हैं। अब रह गया किसानका अपना बोया हुआ बीज। यह अनुभवकी बात है कि एक खेतसे पैदा हुआ बीज यदि उसी खेतमें बार बार बोया जाय तो कुछ वर्षों बाद बीज ऐसा अच्छा पैदा नहीं होता है, जैसा शुरूमें हुआ था। यदि किसान बाहरसे अच्छा बीज नहीं ला सकता और अपना ही पैदा किया हुआ बीज बोना पसंद करता है तो उसे नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देनेसे अधिक लाभ पहुंचेगाः—

पहली बात यह है कि बीज अच्छी तरहसे पका हुआ हो। अच्छी तरह पके हुए बीजमें रज या अंकुर पूरा बना होता है। जैसे बच्चा अपने सब अंगों सहित अपनी मांके पेटमें रहता है, ठीक इसी तरह छोटेसे छोटे बीजमें भी वृक्षके सब अंग – जड़, तना, पत्ता आदि – मौजूद रहते हैं। यद्यपि यह रज वा अंकुर अति छोटे होनेके कारण दिखलाई नहीं देता तो भी कुछ वृक्षोंके बीजोंमें, जो बड़े होते हैं, यह दिखाई देता है, जैसे आम या इमलीके बीजमें। यदि बीज ठीक तरहसे नहीं पका है, तो उसके भीतर रज भी ठीक नहीं बना होगा। इस कारण ठीक अंकुर भी नहीं फटेगा, तब फिर वृक्ष और फल कैसे अच्छे होंगे।

दूसरी बात यह है कि बीज ताजा हो, अर्थात् पुराना न हो, क्योंकि जैसे बीज पुराना होता जाता है वैसे ही रजमें जो जीव है वह धीरे धीरे कमज़ोर होता जाता है और समय पा कर बिलकुल मर जाता है। फिर वह बीज बोनेसे नहीं उगता। बीजोंमें जितना ही अधिक जीव अंश होगा उतना ही बड़ा उसका पेड़ भी होगा; अतएव उतने ही कम बीज बोनेके लिए दरकार होंगे। इस कारण बोनेके पहले यह मालूम करना बहुत आवश्यक है कि बीजमें जीव अंश कितना है। बहुतसे बीज ऐसे होते हैं, जो देखनेमें तो बहुत बड़े और अच्छे मालूम होते हैं, पर जीव अंश उनमें बहुत कम होता है। ऐसे बीजके बोनेसे रुपया और परिश्रम दोनों व्यर्थ जाते हैं।

बीजोंमें जीव अंश जाननेकी विधि

एक छिछला मिट्टीका बर्तन लो। उसमें कुछ महीन मिट्टी या बालू डालो और इसके ऊपर गिन कर १०० बीज फैला दो। इसके बाद इन बीजोंको उसी महीन मिट्टी तथा बालूसे ढांक दो। बर्तनको किसी गरम जगहमें रखो, पर बर्तनका पेंदा नम बनाये रखो। अंकुर फूटनेपर उनको गिननेसे मालूम होगा कि कितने बीज जीवित अवस्थामें हैं। यदि इन अंकुओंकी तादाद ५० से कम है अथवा जो अंकुर निकले हैं वे बहुत ऊंचे नीचे और बे तरतीब हैं, तो यह नतीजा निकालना चाहिए कि बीज अच्छे नहीं हैं और न इनका बोना ही अच्छा है।

कौन बीज कितने दिनों तक जिंदा रहते हैं, इसका ज्ञान भी उपरोक्त तरीकेसे हो सकता है। कुछ बीजोंकी जिंदगी नीचे लिखी हैः—

Agriculture कृषिशास्त्र]

जौ	३ वर्ष		जई	३ वर्ष	
लोबिया, सेम	३	,,	पियाज़	२	,,
गोभी करमकल्ला	५	,,	कद्दू कुम्हड़ा	५	,,
गाजर	४	,,	मटर	३	,,
अजवाइन	८	,,	मूली	५	,,
खीरा, ककड़ी	६	,,	सरसों	५	,,
सन	२	,,	तरबूज	६	,,
बाजरा	२	,,	गेहूं	२	,,
ख़रबूज़ा	५	,,	राई	३	,,

तीसरी बात यह है कि बीज सुडौल बने हों और बड़े भी हों, क्योंकि जो बीज मोटे और बड़े होते हैं, उनमें जीव अंशके भोज्य पदार्थ बहुतायतसे रहते हैं और इनके ही खानेसे जीव पुष्ट रहता है।

चौथी बात यह है कि बीज भला चंगा तंदुरुस्त हो, उसमें किसी प्रकारका रोग और घुन, पाया आदि न लगा हो।

मामूली तौरसे बोनेके लिए बीज इस तरहसे चुन लेना अच्छा है। खेत भरमें वृक्षोंको, जो सबसे अच्छे हैं, बीजके लिए देख लो। जब वे अच्छी तरहसे पक जायं, उनको काटकर बीजोंको निकाल लो और अच्छी तरहसे उनको धूपमें सुखा कर घड़ों आदिमें बंद करके रख लो। जो बीज पूरी तौरसे धूपमें सुखलाये नहीं जाते, वे या तो गरमी पानेसे सड़ जाते हैं या उनमें अंकुर फूट आते हैं और फिर वे खेतके लायक नहीं रहते। घड़ेके मुंहपर एक सिरवा रखो—जो उसमें ठीक बैठ जाय। सिरवाको बंद कर दो, फिर इस ढक्कनके ऊपर राख रख दो, जिससे कीड़े इत्यादि बीजोंको हानि न पहुंचाने पायें।

हमारे यहांके प्रायः सब किसान ऐसे झमेलोंमें नहीं पड़ते। वे तो जो कुछ उनके खेतमें पैदा हुआ उसीमेंसे थोड़ा सा निकाल कर बीजके लिए रख लेते हैं और उसीको दूसरी फसलमें बो देते हैं। यद्यपि वे जानते हैं कि अच्छे बीज बोनेसे अच्छा माल और ज़्यादा पैदावार होगी और उसीसे उनको ज़्यादा रुपया भी मिलेगा, तो भी वे आलस्य तथा मूर्खताके कारण इतना कष्ट नहीं उठाते, जिससे उनकी दरिद्रता दूर हो जाय।

बीज चुननेकी उपरोक्त विधिका हमारे यहांके किसान केवल दो एक नाजोंके सम्बन्धमें अनुसरण करते हैं, जिनको वे आसानीसे पहचान लेते हैं, जैसे जुआर, बाजरा और मक्का। कहीं कहीं गेहूं, जौ, आदि नाजोंके लिए भी यह विधि इस्तेमाल करते हैं। जो किसान बीजका ध्यान रखते हैं वे उनको अपने हाथसे चुनते हैं। इस विधिसे बहुत देर और मेहनत लगती है। कहीं कहीं ऐसा देखा जाता है कि बोनेके लिए जो बीज लिया जाता है, उसको पहले सूपसे पछोड़ लेते हैं और फिर चलनीमें छान लेते हैं। पछोड़नेसे गरदा, खर पतवार सब निकल जाते हैं। चलनीमें छाननेसे छोटे छोटे बीज सब नीचे निकल जाते हैं और बड़े बड़े बीज ऊपर रह जाते हैं, जो बो दिये जाते हैं।

बीज चाहे जितना अच्छा हो तो भी यदि वही बीज बार बार हर साल एक ही ज़मीनमें बोया जायगा तो कुछ वर्षों बाद दुर्बल होने लगेगा और पैदावारी भी कम हो जायगी। इसलिए किसानके लिए यह बहुत लाभदायक होगा कि वह सदा सर्वदा अन्य जगहोंके अच्छे बीजकी तलाशमें रहे, क्योंकि अकसर ऐसा होता है कि भूर तथा रेतीली भूमिमें बोई हुई फसलके बीज यदि मटियार तथा दूमटमें बोये जाते हैं तो उनसे अति उत्तम फल मिलता है।

बहुतसे बीज तो ऐसे ही बो दिये जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे बीज हैं कि बोनेके समय उनको तय्यार करना पड़ता है, जैसे कपासके बीज (बिनौला)। इनके ऊपर रेशा होनेके कारण जब यह खेतमें डाले जाते हैं तब वे अलग अलग नहीं गिरते, बल्कि आपसमें चिपके रहते हैं और इकट्ठे गिर पड़ते हैं। इसलिए इनको पहले गोबर तथा नम मिट्टीके साथ रगड़ डालते हैं, जिससे रेशा छूट जाय और वे आपसमें न चिपकें। कुछ बीज ऐसे होते हैं, जिनको कौआ, गिलहरी, कीड़े मकोड़े

इत्यादि बहुत पसन्द करते हैं और खेतोंसे उनको खा जाते हैं, जैसे मक्का। शत्रुओंसे बचानेके लिए ऐसे बीजोंपर कोलतार (धूना) निम्नलिखित विधिसे लगा देना चाहिये। हर १२ सेर बीजके लिए २ बोतल पानी लो, उसमें १ बोतलका आठवां भाग कोलतार मिलाओ। फिर इस पानी मिले हुए कोलतारको बीजोंके ऊपर डालकर इतना हिलाओ कि सब बीजोंमें कोलतार लग जाय। इसके बाद इस ढेरमें थोड़ी सी सूखी मिट्टी तथा बालू मिलाकर फिर हिला देना चाहिये, जिससे बीज आपसमें चिपटने न पायें! इस प्रकारसे रंगे हुए बीज जब खेतमें डाले जाते हैं तब जानवर अथवा कीड़े मकोड़े उनको नहीं खाते हैं।

इसके अतिरिक्त जानवरोंकी तरह वृक्षोंमें भी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, जो वृक्षों और उनके फलोंको दुर्बल और क्षीण कर देती हैं। इनमेंसे कुछ बीमारियाँ ऐसी होती हैं, जोकि अति सूक्ष्म जीवाणुओंसे पैदा होती हैं। इन सूक्ष्म जीवोंको मनुष्य केवल अपनी आँखसे नहीं पहिचान सकता। परन्तु जब यह जीव वृक्षोंके ऊपर जम जाते हैं और उनको खा कर बढ़ते हैं, तब मनुष्यको दिखाई देने लगते हैं, जैसे बाजरेमें कंडुवा वा कालक लगनेपर होता है। जब बाजरेकी फसल पकने लगती है तभी यह कँडवा वा कालक दिखाई देने लगता है और दाने गोल और मोटे न हो कर लम्बे और पतले हो जाते हैं। और जब दानोंमें छेद किया जाता है तब उनमेंसे एक काली बुकनी (पौडर) निकलती है। इस बुकनीका हर एक ज़र्रा अर्थात् कण एक जीवाणु है, जो किसी भले चंगे दानेमें मिलनेसे उसमें भी बीमारी फैला देता है। जो फसल ऐसे बीजसे पैदा होती है, उसमें भी यह बीमारी बनी रहती है और किसान उससे लाभ नहीं उठा सकता। चूंकि साधारण मनुष्यकेलिए बीजोंमें ऐसी बीमारियोंका मालूम करना अत्यन्त कठिन है, इसीलिए उसको चाहिये कि जिन फसलोंमें ऐसी बीमारी पैदा हो जाती है उनके बीजोंको किसी ऐसी वस्तुसे मिला दे, जो इन जीवोंको बिलकुल नष्ट करदे और बीजोंको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचावे। इस कामकेलिए तूतिया बड़ा कारगर होता है और इसका निम्नलिखित विधिसे उपयोग करना चाहिये।

१० सेर बीजकेलिए ३० तोला तूतिया लो। इस तूतियाको पहले पीसकर गरम पानीमें घुला लो। जब तूतियाका पानी ठंडा हो जाय तब उसको बीजोंके ऊपर डालकर खूब अच्छी तरहसे मिला दो। फिर बीजोंको बिलकुल सुखा डालो। ऐसे बीज जब बोये जाते हैं, तब उनके वृक्षोंमें बीमारी नहीं पैदा होती। तूतिया एक विषैला पदार्थ है। इस कारण बहुत ज़्यादा तूतिया नहीं इस्तेमाल करना चाहिये, क्योंकि इसकी अधिकतासे बीज मर जाते हैं। जिन बीजोंमें यह लगा दिया हो उनको खाना भी नहीं चाहिये।

विज्ञानाध्ययनके सिद्धान्त और विभाग*

[ले०—प्रो० रामदास गौड़, एम. ए.]

आप लोग सभी कहीं न कहीं अध्यापक या मुदर्रिस होंगे। हमारे देशके होनहार बच्चोंको सभ्य मनुष्य बनाना आपके ही हाथोंमें होगा। इस निगाहसे देखा जाय तो आप लोग होनहार पीढ़ीके कर्त्ता धर्त्ता, भारतकी भावी प्रजाके विशाल ज्ञानमन्दिरकी नींव रखनेवाले हैं। जिस तरह आपको यह बहुत बड़ा काम सौंपा गया है उसी तरह आपकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ी हुई है, जो आप खुद समझते होंगे और यहांके महानुभाव शिक्षकोंने आपको बतलाया भी होगा। इसलिए इस मामलेमें आपसे

*प्रयागके नार्मल स्कूलके शिक्षकों और शिक्षितोंके सम्मुख २२ धन १९७१ वि० को व्याख्यान दिया गया था, उसके लिखे हुए नोटोंसे इस लेखका संकलन हुआ है। ले०

General साधारण]

हमें इतना ही कहना है कि विज्ञान, सायंस, जिसकी चर्चा मैं आपसे करूंगा ऐसा विषय है, ऐसा मज़मून है, जिससे आपको अपने धर्म्म पालनेमें, फ़र्ज़ अदा करनेमें बड़ी मदद मिलेगी। सायंस या विज्ञानको जो सीखना समझना चाहे उसे केवल तीन काम करने पड़ते हैं। परीक्षा या आज़माइश, निरीक्षा या ग़ौरसे देखना, निष्पत्ति या नतीजा निकालना। हम किसी बातको अच्छी तरह जानना चाहें तो पहले परीक्षा करते हैं, आज़मायश करते हैं, इसमें जो बातें हमें दीखती हैं उनपर विचार या ग़ौर करते हैं और अन्तमें उससे कुछ न कुछ निष्पत्ति, परिणाम, नतीजा निकालते हैं। हमको ज्ञान किसीसे सुनकर या कोई किताब पढ़ कर या अनुमान और अटकलसे भी हो सकता है। पर अपने आप तजरबा करके, अपने हो अनुभवसे जो ज्ञान होता है उसे विज्ञान या सायंस कहते हैं। जैसे, हमने सुना है कि कोहेनूर एक बहुत बड़ा हीरा है, जो हमारे देशमें खानिसे निकला और आजकल हमारे प्रजाप्रिय भारतेश्वरके मुकुटमें प्रकाश कर रहा है। यह हमने पढ़ा या सुना है, इसका हमको ज्ञान है, हम जानते हैं। पर, इस खड़िया मिट्टीको हम हाथमें लेकर देखते, सूंघते, चखते हैं, रगड़कर निशान करते हैं, इसके रेज़े, रेज़े, कण कणको खुर्दबीन, क्षुद्रवीक्षणसे देखते हैं, पानी, तेल, तेज़ाबमें डालकर देखते हैं कि क्या दशा हुई, आगमें तपा कर देखते हैं कि कैसा रहा। इसी तरह अनेक परीक्षाओंसे खड़ियाके पूरे गुण हम अपने अनुभव, अपने तजरबेसे जान जाते हैं। यही विज्ञान हुआ।

आजकलके विज्ञान पढ़नेवाले अधपढ़े ऐसा समझ बैठते हैं कि यही सौ दो सौ बरससे विज्ञान पैदा हुआ है, परन्तु विचार कीजिये, पुरानी जातियोंका इतिहास पढ़िये, मनुष्यकी प्रकृतिका इतिहास पढ़िये, इंसानी ख़सलतके हालात पढ़िये, तो मालूम होगा कि जबसे मनुष्य कहलाने योग्य हुआ, तबसे ही विज्ञानका प्रारंभ, सायंसका आगाज़ हुआ है।

प्राचीन सभ्यताके लिए भारतवर्ष मिश्र, मध्यलुनपुर और चीनका बड़ा नाम है। यही मुल्क सभ्यताके ब्रह्मा थे, तहज़ीबके पैग़म्बर थे। अफ़सोसकी बात है कि इनकी सभ्यता इतनी पुरानी हो गयी और इतना ज़माना गुज़र गया कि बचे बचाये निशानोंसे उनकी असली सभ्यताकी थाह नहीं मिलती। तो भी इन देशोंके रहनेवालोंको भांति भांतिकी ओषधियोंका, धातुओंका और तरह तरहके यंत्रोंका ही ज्ञान न था, बल्कि यहांके दार्शनिक और वैज्ञानिक बड़े गहरे सिद्धान्तोंपर बहस करते थे, जिनका बचा बचाया अंश आज भी हमारी बुद्धिको चक्करमें डाल देता है। जिस गोली बारूदसे यूरोप अपनी नयी सभ्यताका प्रमाण पुराने देशोंको देता है, जिस कांचके बरतनोंने और यंत्रोंने विज्ञानके संसारको अपनी मुट्ठीमें कर लिया है, जिस चांदी और सोनेपर संसारका व्यापार निर्भर है, सभी प्राचीन कालके हैं और पुराने मुल्कोंकी ईजाद हैं। प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे इन सबका पता लगता है।

आजकलके पछाहीं वैज्ञानिक, जिन्हें न तो पुराने इतिहासकी परवाह है और न उन्हें मालूम ही है और जिनकी गरज खास यह है कि हम अपने आगे पुराने लोगोंका रंग न जमने दें, वह इस बातको ज़ोरोंके साथ कहते हैं कि पुराने लोग कोरे तर्कसे काम लेते थे और जांच करना उनके निकट तुच्छ काम था। यह इलज़ाम कितना ग़लत है, यह अभियोग कैसा बे सिर पैरका है, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि अनेक विज्ञानोंसे, जिनका आरम्भ इन्हीं पुराने देशोंमें हुआ, साफ साबित है। बिना जांचके विज्ञानका आरम्भ नहीं हो सकता। यह बात दूसरी है कि वह जिस रीतिसे जांच करते थे उसमें और आजकलकी रीतिमें कुछ भेद हो। जिस दृष्टिसे या जिस पक्षसे वह किसी बातपर विचार करते थे सम्भव है कि

पाश्चात्यकी दृष्टि और पक्षसे कुछ भिन्न हो, देशान्तर और कालान्तरके कारण यह भेद होना आवश्यक है और कौन जाने आज जिस चोटीपर यूरोप चढ़ा हुआ है सौ दो सौ क्या, दस बीस पचास बरसमें ही, किसी नयी सभ्यता और ईजादके सामने वही बहुत नीचे दरजेकी ठहरे।

अभी चालीस बरसके भीतरकी ही बात है कि यूरोप आदिके वैज्ञानिक मूलप्रकृतिके सिद्धान्तपर हंसते थे और अब एक ही मूल पदार्थको सिद्ध करनेके लिए ज़मीन आसमान एक कर रहे हैं। वैशेषिक हिन्दुओंका एक शास्त्र है, जिसका परमाणुवाद मशहूर है। इस शास्त्रके आचार्य्य कणादने यह सिद्ध किया था कि वस्तु मात्रका मूल, तमाम चीज़ोंकी असलियत, अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु हैं, निहायत बारीक ज़र्रे हैं, जो देखे नहीं जा सकते, पर सभी एक ही तरहके हैं, सबका रूप रंग बड़ाई छोटाई बराबर है। अभी सौ बरस हुए डाल्टनके परमाणुवादसे इस विचारमें बड़ा हेर फेर हो गया और समझा जाता था कि कणादका सिद्धान्त अब खंडित हो गया। पर हालमें ही क्रुक्स, टामसन आदिने फिर कणादकी ही बात पक्की ठहराई है और सब लोग मूलप्रकृतिके सिद्धान्तकी ओर ही झुके हुए हैं।

प्राचीन कालसे मनुष्य दो तरहकी सृष्टि देखता आया है—एक जड़, दूसरी चेतन। भारतवर्षमें प्राचीन दार्शनिकोंने जड़ और चेतन दोनोंके बारेमें बड़ी खोज की थी। चौरासी लाख योनि और चार खानि जीव हमारे यहांकी मशहूर बात है। देहाती तक जानते हैं। हां इसमें शक नहीं कि वह लोग हर एक खानि और हर एक योनि, हर शरीरधारी और शरीरोंके अंग प्रत्यंग, हड्डियां और रगरेशों तकका विस्तार करनेमें, उनकी तफ़सील जाननेमें, अपना समय और बुद्धि बल नहीं लगाते थे। उन्होंने मोटे मोटे विभाग करके प्रकृतिकी साधारण बातें जान लीं, पर तफ़सीलकी तरफ तवज्जुह नहीं की, विस्तारकी ओर बहुत ध्यान देना उन्हें मंजूर भी न था। इसका क्या कारण है?

सिद्धान्तोंपर विचार करनेके लिए साधारणतः दो रीतियां हैं। एकको समास कहते हैं और दूसरीको व्यास। जो कुछ हम देखते और जानते हैं उसकी परीक्षा सारेका सारा या सम्पूर्ण लेकर एक साथ करें और सबका विचार स्थूल दृष्टिसे करें, जिसे समास कहते हैं। या हर एक बातको, प्रत्येक विन्दुको, विस्तारपूर्वक देखें और सबकी अलग अलग परीक्षा करें, जिसे व्यास कहते हैं। या दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि अपनी सारी जानकारी जो इस विश्वके विषयमें है, जो इस दुनियाकी बाबत है, उसे इकट्ठी कर कुलकी हैसियतसे उसपर निगाह डालें यह एक तरीक़ा है। और हर पहलूपर ग़ौर करना, हर हिस्सेपर विचार करना, हर टुकड़ेका अध्ययन करके उसके लिए स्थान और विभाग नियुक्त करना, निदान् बारीकियोंके अन्दर घुसना, यह दूसरा तरीक़ा है। समासकी रीतिसे विचार करनेवाला संसार रूपी पेड़के जड़ और तनेसे चलता है और शाखा शाखा डाल डाल पत्ती पत्तीका पता लगाता है और व्यासकी रीतिसे पत्तियों, टहनियों, डालियों और शाखाओंसे होकर तने और जड़ तक पहुंचता है। नतीजा दोनोंका एक ही होता है, पर रीतियां जुदी हैं। विज्ञानकी इन दोनों रीतियोंमें हमारे देशके लोग समासकी ओर अधिक झुके हुए थे और हालके पछाहीं विद्वान् व्यासकी ओर अधिक लगे हुए हैं। पर यह न समझना चाहिये कि इन दोनोंने अपने दूसरे पक्षको बिलकुल छोड़ ही दिया है। जहां वेदान्तकी निगाहसे ब्रह्मवादी सारे विश्वको एक देखता है, वहां भारतवर्षके ही और विज्ञानी संसारकी सभी बातोंपर अलग अलग और विस्तारसे विचार करनेमें लगे थे। यूरोपमें जहां विद्याकी हर शाखा और हर विभागपर बालकी खाल खींचनेवाले तर्क हो रहे थे और तुच्छसे तुच्छ बातोंकी जांच हो रही थी वहां कान्ट, शोपनार

हेगल आदि समस्त विश्वपर एक दृष्टिसे विचार करनेमें लगे हुए थे। आप लोगोंको नीचे दिये हुए विज्ञान-वृत्तसे पता लगेगा कि इन दोनों रीतियोंसे किन किन विद्याओंका अध्ययन हुआ है।
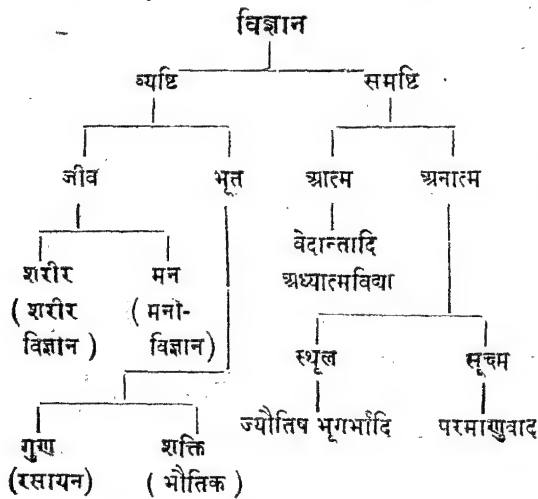
समष्टिके साथ साथ व्यष्टि विचारमें हमारे पुराने लोग बिलकुल कोरे नहीं थे। पदार्थोंके साधारण गुणोंके अध्ययनमें पूर्वी विद्वानोंने जो कुछ कर रखा था उसपर ही पच्छिमी विद्वानोंके विज्ञानकी नींव रखी गयी है। ठोस द्रव वायव्यके लक्षणोंसे, प्रवेशाभाव, सटाव, खिंचाव, बोझ, गति, लचक आदि गुणोंका उन्होंने अलग अलग विचार किया था। वह जिस निगाहसे विचार करते थे, उसी नज़रसे हम भी देखें तो नये विज्ञानियोंको पुराने विज्ञानियोंपर हँसनेका कोई कारण न रहेगा। तत्व या उन्सुर शब्दपर मध्य-कालके लोगोंने इतनी भूल फैलायी कि हालमें लोगोंने तत्व और मूल पदार्थको या उन्सुर और मुफ़रिदको एक ही चीज़ समझा और अपनी भूलको पुराने विद्वानोंके सिर मढ़ा! हमारे दर्शनोंमें जिसे पंचतत्व कहा है (पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश) या यूनानतकके विद्वानोंने जो चार अनासिर गिनाये हैं (पृथ्वी, जल, तेज, वायु) वह वस्तुकी दशा हैं, माद्देकी हालत हैं, असलियत नहीं है। आजकलकी भाषामें पाँचों तत्वोंको या चारों उन्सुरोंको हम दूसरी तरहपर बयान करते हैं। पृथ्वीकी जगह ठोस या घन कहते हैं। जलकी जगह द्रव या रकीक कहते हैं। हवाकी जगह वायव्य या गैस कहते हैं। तेज या आगकी जगह उस शक्ति या ताकतको देते हैं, जिसकी जड़ आकाश है। ठोस, द्रव और वायव्य आदि दशामें एक ही मूल पदार्थका होना भी संभव है। पानी ठोस होनेपर बरफ़, द्रव होनेपर जल और हवा हो जानेपर भापकी सूरतमें होता है। पानी चाहे मुफ़रिद हो चाहे मुरक्कब, चाहे मौलिक हो चाहे यौगिक, तीनों हालतोंमें पाया जाता है। लोहा ठोस होता है, आँचसे गलकर पानीसे भी पतला हो जाता है और लोहेके कारखानोंमें लोगोंने देखा है कि दस दस फुटकी ऊंचाईसे गला हुआ लोहा पानीके झरनेकी तरह गिरता है और पानीकी ही तरह फैल भी जाता है। बहुत ज़्यादा आँच देनेसे यही हवाके रूपमें बदल सकता है। बल्कि ज़मीनके अन्दरका पता लगानेवालोंने मालूम किया है कि धरती भीतरसे पोली है और उसमें लोहेकी घनी और भारी हवा भरी हुई है। निदान मौलिक, यौगिक कैसे ही पदार्थ हों आँच और दबावकी कमी बेशीसे अपनी हालत बदलते रहते हैं।

मौलिक पदार्थ उन्हें कहना चाहिये, जिनमेंसे किसी प्रक्रियासे तोड़कर उनसे भिन्न पदार्थ नहीं निकाले जा सकते। सोनेसे चाहे जैसा बर्ताव कीजिये उससे सोनेके सिवा और कोई पदार्थ निकल नहीं सकता। चांदी, ताँबा, गन्धक, पारा सभी पदार्थ सोनेकी तरह मौलिक हैं। गन्धक और ताँबा अगर एक साथ तपाये जायँ तो कोयलेसा काला एक पदार्थ बन जाता है, जो न गन्धक है न ताँबा। पर इस कोयलेके रूपवाले पदार्थको अत्यन्त तेज आँच दें तो गन्धक उड़ जायगा और ताँबा रह जायगा। गन्धक और ताँबा तो मौलिक या मुफरिद हुए

और वह कालीसी चीज़ यौगिक या मुरक्कब हुई। पानी भी एक मुरक्कब या यौगिक है। इन बातोंसे यह प्रकट है कि मूल पदार्थोंके सबसे छोटे टुकड़े परमाणु होंगे। परमाणुओंमें परस्पर रूप, रंग, आयतन, भारमें अन्तर होगा। यह बात कणादसे नहीं मिलती। पर हालमें कणादके परमाणुओंका पता विद्युत्कणोंमें लगा है।

लोहा, ताँबा, गन्धक, कोयला, उज्जन आदि पदार्थोंकी गिनती अबतक ८० तक पहुँची है। ऐसा भी हो सकता है कि भविष्यमें और भी मूल पदार्थ मालूम कर लिये जायँ। यद्यपि इन मूल पदार्थोंकी असल अबतक ठीक ठीक मालूम नहीं हुई, तोभी रेडियमका पता लगनेसे यह अटकल की गयी है कि सभी मूलपदार्थ ऐसे बिजलीके ज़र्रोंसे बने हैं, जिनका रूप रंग एक है, जो परमाणुओंसे भी छोटे हैं और जिनपर अभीतक कोई वैज्ञानिक किसी प्रकारका प्रयोग नहीं कर सका। यह मालूम किया गया है कि ऐसे ही १७०० बिजलीके कणों या ज़र्रोंसे उज्जनका एक परमाणु बना हुआ है। यह भी अनुमान किया गया है कि और और भारी परमाणुओंमें इन बिजलीके कणोंकी गिनती बहुत ज़्यादा है। निदान सभी मूल पदार्थ यद्यपि आपसमें इतने भिन्न हैं अपनी असल एक ही रखते हैं और विद्युत्कणोंके ही मिलनेसे बने हैं। यह विद्युत्कण ही संसारके सभी पदार्थोंके मूल ठहराये गये हैं। रसायनशास्त्रका अन्तिम निष्कर्ष, आखिरी नतीजा, यही निकलता है कि सबकी असलियत बिजली या शक्तिके कणोंमें है। भौतिक विज्ञान अन्तमें यह नतीजा निकालता है कि सबकी असलियत जो कुछ है वह हमारी कल्पनाके बाहर है। हमारे ख़्याल और तसव्वरमें नहीं आ सकता। अगर हम कहें कि शक्ति या ताकत है, तो बिना पदार्थके शक्तिकी कल्पना नहीं हो सकती। बग़ैर माद्दे के ताक़तका ख़्याल करना मुहाल है। इसी तरह हम ऐसे माद्देका भी ख़्याल नहीं कर सकते, जिसमें ताकतका सहारा न हो। हम ऐसे जड़ पदार्थकी कल्पना नहीं कर सकते, जिसमें शक्तिका एकदम अभाव हो। एक खड़ियाके टुकड़ेको लीजिये, इसमें भी सटाव और खिंचावकी शक्तियाँ निरन्तर काम कर रही हैं। अगर यह काम न हो, खड़ियाके कण कण अलग हो जायँ। कणोंमें भी बड़े वेगकी गति है, जो स्वयं बहुत बड़ी शक्ति है। इस शक्तिको कणोंसे अलग समझना असम्भव है। इसी असलियतको जिसका बयान नहीं हो सकता हिन्दुओंके यहाँ मूलप्रकृति कहा गया है।

जीव विज्ञानवाले भी अपना आखिरी नतीजा ऐसी ही किसी कल्पनातीत प्रकृतिको कहते हैं। अभीतक उनकी समझमें यही नहीं आया है कि चेतनता कैसे पैदा होती है। वह समझते हैं कि पदार्थोंके ही विशेष रीतिपर मिलनेसे चेतनता प्रकट हो जाती है, पर अभीतक यह भेद नहीं खुला है।

हिन्दुओंमें वेदान्तके माननेवाले और मुसलमानोंमें सूफ़ी, जिन बातोंपर बहस करते हैं वह सब विज्ञानोंके आखिरी नतीजे हैं, अन्तिम निष्कर्ष हैं। प्रकृति और पुरुष, जड़ और चेतन, शक्ति और गुण, आत्म और अनात्म, यही उनके विचारके विषय हैं। इस ख़्यालसे वेदान्तका शब्द बहुत ही ठीक ठीक अर्थ प्रकट करता है। वेद विज्ञान है और उसका अन्त निष्कर्ष या नतीजा है। गरज़ यह कि सायंसोंसे जो कुछ नतीजा निकला उसपर ही समष्टि रूपसे विचार करनेवाला विज्ञान वेदान्त है। विज्ञानोंने व्यष्टि विचार करते करते समष्टिमें अपना अन्त किया अर्थात् अपनी खोजमें डाल डाल, पात पात घूमकर अन्तमें ज्ञानके पेड़की जड़ तक मनुष्य पहुँचा।

ज्ञानका पेड़ उलटा है, इसकी पत्तियाँ और शाखाएं नीचे हैं और जड़ ऊपर है। खोज करनेवाला मनुष्य शाखा और पल्लवोंसे पता लगाते लगाते जड़तक पहुँचता है। और जब बहुत जान

जाता है आप्त हो जाता है, अपने मक़सदको पहुँच जाता है।

मनुष्य जब थोड़ासा जानता है समझने लगता है कि मैं बहुत जानता हूँ। परन्तु ज्यों ज्यों उसका ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसे यह पता लगता जाता है कि मैं बहुत कम जानता हूँ, उसका अहंकार घटने लगता है। जब वह ज्ञानके समूहकी तहतक पहुँच जाता है, जब उसकी बुद्धिके पैर धरतीपर टिक जाते हैं, अहंकारका दम घुट जाता है और मनुष्य ज्ञान विज्ञानमय हो जाता है। इसीलिए कहा है—

"आँरा कि ख़बर शुद खबरश बाज़ नयामद"।

अर्थात् जो ज्ञानमें तल्लीन हो गया वह फिर दुनियाके कामका न रहा, बल्कि दुनियाका उस-तक पहुँचना असम्भव हो गया।

मित्रो! शिक्षाका फल यह नहीं है कि आप दूसरोंको शिक्षा देनेके योग्य हो जावें। शिक्षाका चरम उद्देश्य यही है, तालीमका मक़सदे ऊला यही है कि आप लोगोंके दिलमें ज्ञान प्राप्त करने-का चस्का हो जाय और आप स्वयं अपने शिष्योंके हृदयमें वैसा ही पैदा कर दें। अगर आप इतना कर सकें तो अपना उद्देश्य पूरा कर लिया। उसी तरह मैं भी अपना उद्देश्य पूरा समझूंगा अगर आपके हृदयमें ऐसा चस्का आजके व्याख्यानसे ज़रा भी पैदा कर सका।

कोयलोंकी खानोंमें भूतलीला

[ले०—प्रो० मनोहरलाल, एम.ए.]

यदि कहींपर किसी पदार्थका ढेर लगा हो और कुछ कालके अनन्तर उसमें आग लग उठे तो आप क्या अनुमान करेंगे? ऐसी घटनाएँ बहुत बार जङ्गलोंमें या खानोंमें होती रहती हैं और जब तक कि विज्ञानके प्रकाशने अज्ञान-तिमिर-को दूर न किया था, प्रायः यही समझा जाता था कि यह भूत लीला है। भला, भूतोंके सिवाय बो-हड़में, निर्जन स्थानमें रखे हुए पदार्थमें कैसे आग लग सकती है?

Chemistry रसायन शास्त्र]

गीली घासकी जहां पूंजी लगा दी, तहां धीरे धीरे रासायनिक क्रिया हुआ करती है और ओ-षजनसे मिलकर घास धीरे धीरे जला करती है। जब कभी कोई पदार्थ वायुमण्डलमें जलता है, तो उसकी रासायनिक क्रिया ओषज़नके साथ इस वेगसे होती है कि ताप और प्रकाश उतपन्न होते हैं। यदि वही क्रिया धीरे धीरे हो तो गर्मी तो उतनी ही पैदा होगी, परन्तु मामूली तौरपर दि-खाई न देगी। पर हां, यदि किसी तापमापकसे नापें तो एक दम पता चल जायगा कि तापक्रम वायुमण्डलसे अधिक है।

अस्तु, जब गीली घासकी ढेरी लगा दी जाती है, तो उसके केन्द्रपर घास धीरे धीरे जलती रहती है और जब तापक्रम बहुत अधिक हो जाता है, तो पूंजीमें आग लग जाती है अर्थात् ओषजनके साथ क्रिया बड़े वेगसे होने लगती है। यह घटना महीनोंमें पूरी होती है, परन्तु आप अन्य पदार्थोंके विषयमें यह दस पांच मिनटमें ही अनुभव कर सकते हैं।

एक फ़ासफोरसका टुकड़ा काटिये और उसे सुखाकर किसी बर्तनमें रख दीजिये। आप देखेंगे कि उसमेंसे सफेद धुआं निकल रहा है। इस अवस्थामें वह धीरे धीरे जल रहा है और जो गर्मी पैदा होती है उससे उसका तापक्रम बढ़ता जाता है और वह पिघलता जाता है! थोड़ी देरमें आप देखेंगे कि वह भकसे जल उठता है।

इसी भांति जहांपर कोयलेकी बुकनीका ढेर लगा रहता है, आग लगनेका बहुत भय रहता है। बुकनी धीरे धीरे ओषजनके साथ मिलती रहती है अर्थात् जलती रहती है। जब तापक्रम उचित सीमातक बढ़ जाता है, बुकनीमें आग लग उठती है।

कोयलेकी खानोंमें बुकनीके ढेरके ढेर लगे

रहते हैं। इन ढेरोंमेंसे बुकनी उड़ती भी रहती है। यह धूल उतनी ही भयानक है, जितनी कि दलदली-वायु। इसमें कहीं एक दफ़ा आग लगनेकी देर है कि बड़े ज़ोरका धड़ाका होता है और खान भरके प्राणी आहत होकर मर जाते हैं। अतएव इन दोनों आफतोंसे बचनेके लिए उपायोंकी खोज वर्षोंसे हो रही है। अब तक केवल दो उपाय निकले हैं:—

(१) ढेरोंको खूब तर रखना—ऐसा करनेसे धूल कभी न उड़ेगी, वायुमंडल स्वच्छ रहेगा और धड़ाका (विस्फोटन) होनेका डर न रहेगा। [क्योंकि यह धूल तभी विस्फोटक होती है, जब वायु-मंडलमें छायी रहती है।]

(२) कोयलीकी धूलमें रेत मिला देना—ऐसा करनेसे भी कोयलेकी बुकनीकी तेज़ी कम हो जाती है और विस्फोटनका भय नहीं रहता।

इन दोनों उपायोंका अनुष्ठान करते हुए भी खानोंमें जगह जगहपर काठकी द्रोणियां रेतसे भरकर थोड़े थोड़े अन्तरपर रख दी जाती हैं। यदि कभी किसी कारणवश कोयलेकी गर्द खानके वायुमण्डलमें छा जाय और विस्फोटन हो जाय, तो वह घटनाकेन्द्रसे बहुत दूर न जाने पायगा। जहां विस्फोटन (आगकी लौ) हुआ कि किसी द्रोणीमेंसे स्वयम् ही रेत उड़ी और उसके आस पास छा गई। फिर इस रेतके परदेको चीरकर विस्फोटनका आगे बढ़ना असम्भव है।

यहां यह बतला देना भी उचित है कि यह विस्फोटन क्या होता है। मान लीजिये कि खानिकी वायुमें कोयलीकी बुकनी उड़कर फैल गई और किसी स्थानपर किसीने दियासलाई जला दी या यह रेत किसी जलती हुई लौके सम्पर्कमें आगई, तो उस स्थानपर बुकनी जलने लगेगी और ज़ोरका धड़ाका होगा। अब यह जलती हुई बुकनीकी लौ चारों तरफ़ फैलती चलेगी और धड़ाके होते चलेंगे। यहांपर यह न समझ लेना चाहिये कि कुल खानमें एक दम विस्फोटन हो जायगा। वास्तवमें विस्फोटनकी तरङ्ग एक विशेष वेगसे चला करती है, यद्यपि यह वेग अत्यधिक होता है। विस्फोटनकी तरङ्ग उसी भाँति एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुंचती है, जैसे बारूदकी पंक्तिमें आग लगा देनेसे आग इधर उधर फैलती है।

नकसीर

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

कभी कभी देखा गया है कि नाकसे खून जानेसे मनुष्योंके कई रोग अच्छे हो गये हैं, पर प्रायः मनुष्योंको, विशेषतः उनको जिनके फेंफड़े कमज़ोर होते हैं, इससे बहुत हानि पहुंचती है। औरतोंका भी जब मासिकधर्म रुक जाता है तो नाकसे खून आने लगता है। जिन लोगोंके फेंफड़े कमज़ोर हों, उनको तीन तीन घंटे बाद एकोनाइट और सलफ़र एक दूसरेके बाद कमसे कम चार खुराक देना चाहिये और अगर खून बंद न हो तो इसी तरह सीपिया और कार्बोविजिटेबिलस देना चाहिये।

औरतोंको जब नाकसे खून गिरे और यह मालूम हो कि मासिक धर्मके रुक जानेसे नकसीर जारी हुई है तो किसी डाक्टरसे राय लेनी चाहिये और जो दवाएँ इस बीमारीके लिये पहले लिखी गई हैं उनका सेवन कराना चाहिये।

नकसीरके बहनेके बहुतसे कारण हैं, जिनमेंसे थोड़े कारण नीचे दिये जाते हैं और उनके अनुसार इलाज भी बतलाया जाता है।

१—अगर सिरकी ओर अधिक रुधिर जानेके कारणसे है तो एकोनाइट और बैलेडोना देना चाहिये।

२—अगर नाकपर चोट लगने या कटनेसे है तो आरनिका और केलनड्यूला खाना और लगाना चाहिये।

३—अगर नशेकी चीज़ें और शराबके कारण

है। तो हर दो या तीन घंटे बाद नक्सवोमिका देना चाहिये।

४—अगर अधिक मिहनत और गर्मीके कारण है तो कार्बोविजिटेबिलस और रसटोक्स देना चाहिये।

५—अगर अधिक गर्मीके कारण है तो एकोनाइट और ब्राइनिया आध आध घंटे बाद देना चाहिये।

६—यदि ज़्यादातर रातके समय नकसीर छूटती है तो शामके वक्त एक एक खुराक घंटे घंटे पीछे बैलेडोना और ब्राइनिया की देना चाहिये।

७—अगर सबेरेके वक्त नकसीर छूटती है तो कार्बोविजीटेबिलस और नक्सवोमिका देना चाहिये।

८—अगर खानेके पीछे या कभी कभी दो चार बूंद खून गिर जाता है तो सीपिया, शिलिसिया, सलफ़र या कैलकेरिया, ग्रिफ़ाईटीज़ और लायकोपोडियम इस तरह देना चाहिये कि पहले एक दवा ८ या १० दिन तक दी जाय फिर दूसरी और फिर तीसरी दवा दी जाय। ३, ४ सप्ताह तक बराबर दवा दी जायं।

९—अगर सिरमें सर्दी लगनेके कारण नकसीर हो तो आरसेनिक और पलसेटिला एक दूसरेके बाद सुबह और शाम देना चाहिये।

१०—अगर नकसीर कमज़ोर और दुबले आदमीके हो तो शुरुमें आध आध घंटे बाद चाइना दिया जाय और जब ख़ून गिरना बन्द हो जाय तो फ़ैरम देना चाहिये।

११—बच्चोंकी नाकसे ख़ून सुन्ना पड़ जानेके कारण निकलने लगता है और इसकी पहिचान यह है कि बच्चे नाक कुरेदते रहते हैं। ऐसे बच्चों-के पहिले चार खुराक सिना ३ x दो दो घंटे बाद दे-कर फिर सिना और मरक्यूरियस तीन तीन घंटे बाद दिया जाय। सिवाय ठंडे पानीसे तर किये हुए कपड़े या बर्फ़के टुकड़ेके और कोई चीज़ नकसीर-के रुक जानेके लिये ऊपरसे न लगानी चाहिये। अगर नकसीर बह कर नाकमें खन जम गया हो तो उसे कुरेदना न चाहिये। ऐसा भी देखा गया है कि अगर कपड़ेकी पट्टी कसकर ऊपरके होठ-के नीचे बांध दी जाय, तो नकसीरका खून बंद हो जाता है और मुल्तानी या खसकी मिट्टी पानी-में भिगोकर सूंघनेसे भी फायदा होता है।

ऐसे मरीजको, जिसे अकसर नकसीर छूटती हो, मांस, मसालेदार चीज़ें और गर्म असर रखने-वाली चीज़ें खानेको न देनी चाहियें।

शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम

[ले०—अध्यापक गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए.]

अजीर्ण और मन्दाग्नि विद्वत्ता और सौजन्यताके चिन्ह समझे जाने लगे हैं! स्वयं पीड़ित इन कष्टोंकी उपेक्षा करते हैं! इसका परिणाम बहुत अशुभ होता है, परन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं है कि बद्धकोष्ठ वा अजीर्ण कोई असाध्य रोग है। इतना अवश्य है कि प्राकृतिक नियमके अनुसार स्वस्थ दशामें किसी भीतरी अंगकी क्रियाका मनुष्य-को ज्ञान नहीं होता, उसमें कोई बाधा वा पीड़ा नहीं बोध होती, प्रत्युत खाने पीनेसे एक प्रकारकी तृप्ति और सुख मिलता है, पाचन क्रियाके सम्पन्न होनेपर आनन्दका अनुभव होता है। किन्तु इसके स्थानमें भोजन करनेके उपरान्त जब पेटमें भारी-पन या पीड़ा मालूम हो, वायुसे भर जाय वा फूल उठे, या बेचैनी, दिलकी धड़कन, बद्धकोष्ठ तथा सुस्ती हो तो समझना चाहिये कि मन्दाग्नि-के लक्षण हैं।

यों शीघ्र किसीको विश्वास नहीं होगा, परन्तु बड़े बड़े डाक्टरोंकी यह सम्मति है कि मंदाग्नि-का प्रधान कारण अन्नको बिना अच्छी तरह चबाये निगल जाना है। चाहे बुढ़ापेके कारण मरीज़के मुंह-में दाँत न हों, जिससे भोजन कुचला न जाय, या दाँतोंके रहते हुए भी वह इस कामकेलिए इतना

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

समय न निकाल सके, या इतना कष्ट न उठाये कि एक एक कौरको धीरज और परिश्रमके साथ कुचलकर खावे। तात्पर्य यह है कि भोजनके समय मुंहसे रालका उचित परिमाणमें स्राव नहीं होने पाता, भोजनका मण्डमय (starchy) अंश ज्योंका त्यों आमाशयमें चला जाता है, प्रोटीडका हिस्सा भी अच्छी तरह नहीं घुलने पाता, इसलिए भीतर जानेके बाद भी उसपर रसोंकी क्रिया जैसी होनी चाहिये नहीं होती। यह शिथिलता भी मुंहमें रालके न बहनेपर ही निर्भर है। जब मुंहमें कौर खूब चलाया जाता है और स्वाद मालूम होता है, तब जबड़ोंके नीचेसे ढेरसा राल छूटकर, भोजनके साथ मिलकर, पेटमें जाता है और उसीके प्रभावसे पेटमें अम्लरस इत्यादि भी पसीजते हैं, तब ठीक ठीक पाचन क्रिया होती है। इस चक्रमें जहाँ पहली कड़ी टूटी, तो समझिये कि सब कारखाना ही बन्द।

इससे स्पष्ट है कि मंदाग्नि भी जल्दबाज़ोंका रोग है। काममें सदा चूर रहनेवाले बड़े आदमियोंको खाने तकका अवकाश नहीं मिलता। दिमागका काम करनेवाले और समयको अनमोल समझनेवाले १०, १५ मिनट भी रसोई घरमें ठहरना पाप समझते हैं। वह घरवालोंपर बड़ा एहसान करते हैं, जो अन्यमनस्क होते हुए जैसे तैसे दो चार कौर अन्न, पानी वा दूधके सहारे, गलेके नीचे उतारते हैं। मज़ेमें कुल्ला भी नहीं करते और बाहर निकल जाते हैं। कितने ही तेज़ तबियत और राजनैतिक खोपड़ीवाले नवयुवक भोजनके आसनपर भी अखबार तथा पुस्तक ले जाते हैं, क्योंकि उन्हें शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि होनेका दावा रहता है। जब एक साथ खाना, अखबार पढ़ना, बातें करना, समस्या सोचना आदि कई काम संपादित हो सकते हैं फिर आप जीवनमें खूब पराक्रम दिखलाकर क्यों न यश उठावें? सनातनियोंके जटिल नीतिकार मनुकी लीकपर एकान्तमें शान्तभावसे भोजन करनेका क्या प्रयोजन है?

खेद सहित कहना पड़ता है कि नवयुवक इस वाग्जालके आप ही शिकार बन बैठते हैं। न सनातनियोंका कुछ बिगड़ता और न मनु महाराजके नामपर धब्बा आता है। नवयुवकोंकी जब आंखें खुलती हैं, तब वही ६ महीनेका सीधा मार्ग उन्हें अपने हठधर्मके कारण १ वा २ वर्षमें तै करना पड़ता है या यों कहिये कि परहेज़से कुछ लोग तो मामूली स्वास्थ्य लाभ कर लेते हैं और कुछ आजीवन बेकाम हो जाते हैं।

स्वास्थ्य विज्ञान तो यह कहता है कि न केवल खानेके समय शांत और एकाग्रचित् होना चाहिये, वरन् भोजनके आसनपर बैठनेके कमसे कम आध घंटे पहले, सब कामसे छुट्टी लेकर, मन और शरीर दोनोंको पूरा विश्राम देना चाहिये। बाइसिकलपर या पैदल कहींसे दौड़े आकर, चौकेमें खानेकेलिए बैठ जाना पाचनशक्तिको शीघ्र ही बिगाड़ डालता है। बहुतेरे नवयुवक खानेके केवल १५, २० मिनट पहले अपनी किताबें बन्द करते हैं और फिर झटपट नहा धो और कसरत करनेकी रसम अदा कर रसोई घरमें चले जाते हैं। स्मरण रहे खानेके पहिले कोई कठिन शारीरिक वा मानसिक परिश्रम करना बहुत हानिकारक होता है, इसीलिए यह निषिद्ध है। इसे बूढ़ोंका ढकोसला कह कर नहीं तिरस्कार करना चाहिये, क्योंकि इस नियमके अंतर्गत जो प्राकृतिक सिद्धान्त छिपा है, उसकी अवहेलनाका भयानक परिणाम होता है।

धीरे धीरे खानेका पाठ कोई कभी पढ़े, बालपन वा यौवन कालमें, वह जितना ही शीघ्र सीखेगा, उतना ही कष्ट और भयसे बचेगा। पर इसके बिना सीखे निस्तार नहीं है। कभी कभी तो इसकी आदत डालनेके लिए मुंहके कौरको गिनतीके साथ चबाना बड़ा सहायक होता है। इस सम्बन्धमें लोगोंको मिस्टर ग्लैडस्टन, डाक्टर फ़्लेचर और सर एण्ड्रू क्लार्ककी उक्तियां स्मरण होंगी। मिस्टर क्लार्कका बचन उतना प्रचलित नहीं है,

परन्तु उसके रुचिकर होनेके कारण यहांपर उद्धृत किया जाता है। आप कहा करते थे कि सबके मुंहमें ३२ दांत होते हैं, इसलिए यह नियम होना चाहिये कि प्रत्येक कौरको ३२ बार चबाएँ और जितने ही दांत गिरे हों उसी अनुपातसे अधिक बार कुचलें।

भोजनके उपरान्त बूढ़े पुरनियोंका दांतोंको अच्छी तरह साफ करना हमारे लिए भी प्रशंसनीय है, क्योंकि उनके बीच भोजनका जो अवशिष्ट अंश रह जाता है वह तुरन्त सड़ने लगता है और राल-के साथ पेटमें जाकर गड़बड़ पैदा करता है। इसीलिए कई डाक्टर इस बातपर अब जोर देने लगे हैं कि दांतोंको प्रातःकाल धोनेके अतिरिक्त भोजनके उपरान्त दतून या मंजनसे धोना बहुत महत्व रखता है। बूढ़े लोग अभी तक खरका या दाँत-खोदनीसे दांत खोदते हैं और उनके पुराने फैशनपर बड़ी दिल्लगी उड़ायी जाती है।

थोड़े दिनोंकी बात है स्वयं लेखकने प्रबुद्ध-भारतके संपादक तथा श्री विवेकानन्दमठके सन्यासी मि० अलिक्जैण्डरको बंगाली समाजमें एक भोज खानेके उपरान्त मुंहमें उंगलियां डालकर दाँतोंको खूब मलकर साफ करते देखा, जिसपर कई छोकरोंकी दृष्टिमें वह उपहासपात्र भी बने। धन्य हैं वह पुरुष जो भारतवर्षके केवल शास्त्रीय सिद्धान्तोंके साथ सहानुभूति नहीं प्रकट करते, किन्तु हिन्दु विज्ञान-विहित अभ्यासोंका भी अपने जीवनमें अनुकरण करते हैं! हम लोग अपनी दिनचर्यामें उनका सर्वथा वहिष्कार करने लगे हैं। यह कितने शोक की बात है!

पाचनशक्तिकी प्रखरता वा मन्दापन बहुत कुछ भोजन-गृहकी स्वच्छता और सुन्दरता तथा भोजन करनेवालोंकी मानसिक अवस्थापर भी अवलम्बित है। भोजनालयकी चारुता और मनोहरताका ध्यान जैसा दक्षिणियोंमें होता है भारतवर्षके किसी अन्य जातिमें नहीं देखनेमें आता। उनका भोजनालय क्या होता है मानो दूसरा यज्ञशाला। भोजन आरम्भ करनेके पहले पूजन आदिसे मनमें जो सुचित्तता आती है उसके अलावा सबके आगे केले वा पलाशके विस्तृत श्यामल पत्तोंपर परोसे हुए व्यञ्जनोंकी सजावट, विविध वर्णोंके बिखरे हुए पुष्पोंकी शोभा तथा वायुमें हवनके सुगन्धित द्रव्योंके परिमलसे चित्त बड़ा ही प्रफुल्लित हो उठता है। उस समय भीतरसे रुचिके साथ एक अपूर्व क्षुधा जाग उठती है। बस खाती ही बनता है!

यह पाठकोंके अपने अनुभवकी बात होगी कि कभी कभी बहुत दिनोंके पुराने मरीज़ भी घरमें विवाह इत्यादि उत्सवमें परहेज़को ताकपर रख छोड़ते हैं और जी खोलकर सब चीज़ें खाते हैं और, अचम्भा यह कि, हज़म कर जाते हैं। साधारणतः हम लोग भी अपने यहाँ जो चीज़ नहीं खाते वा बहुत डर डर कर खाते हैं वही दूसरोंके घर दावतोंमें अकड़कर आकंठ खा आते हैं और कोई नुकसान नहीं होता। इसका सिद्धान्त यह है कि संस्कार आदिमें या चार आदमीके मेल-जोलमें, जब कोई खाने बैठता है, तो हर्ष और प्रसन्नताके कारण उसके शरीरमें एक प्रकारकी (nervous stimulus) स्नायविक उत्तेजना होती है, जिससे एकाएक उसके आमाशयमें अम्लरस इत्यादि पाचक द्रव्य पसीजने लगते हैं। उस घड़ी जो कुछ खाया जाता है, बातकी बातमें भस्म हो जाता है।

बहुतेरे आदमियोंसे इसीलिए अकेलेमें नहीं खाया जाता। साथ खानेके लिए घरके किसी प्राणिको बिठा लेते हैं। कोई नहीं हुआ तो बात करनेके लिए एक आदमी चाहिये। मुसलमानोंमें बहुतोंकी आदत होती है कि घरमें कोई न मिले तो कहींसे मित्र या मिहमान ढूंढ़ लाते हैं। इस प्रकार सहभोजनका आनन्द केवल समाज सुधारकोंकी कल्पनामें ही नहीं है, वरन् उसका एक वैज्ञानिक बहाना भी है। अस्तु यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि मन और

हृदयके भावोंका पाचन शक्तिसे बड़ा गहरा सम्बन्ध है, । आमाशयके रसोंपर उनका क्या प्रभाव पड़ता है। यह कहना ज़रा कठिन है, परन्तु उनका रालके स्रावपर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। देशी पंचायतोंमें बहुधा आपने देखा होगा कि चोर पकड़नेकी एक निराली विधि होती है । जिन लोगोंपर संदेह होता है उनको वृत्ताकार बैठाते हैं । तब प्रत्येकको हलदीमें रंगे या सादे चावल देते हैं, जिसे चबा कर एक साथ उगल देना होता है। इसके साथ मंत्र इत्यादि भी पढ़े जाते हैं और देव देवियोंकी दुहाई भी दी जाती है। फल यह होता है कि पकड़ जानेके भय और शंकाके मारे वास्तविक चोरके मुंहमें राल सूख जाती है और वह जो चांवलके दाने थूकता है सब सूखे होते हैं, जब कि दूसरोंके मुंहसे गीले निकलते हैं। इतनेमें चोर पकड़ लिया जाता है।

क्रोध, चिंता, ग्लानि, मानसिक खिन्नता इत्यादिसे भी पाचनशक्ति बहुत खराब होती है । बुरे समाचार सुनकर या यात्राओंके ऊपर निकलनेके पहले घबराहटसे भूख मर जाती है। ऐसी स्थितिमें गोली और चूर्णके सेवनसे क्या उपकार हो सकता है। हक़की बात यह है कि मंदाग्निका रोगी आप भी मरता है और साथ साथ वैद्यको भी ले मरता है।

कब्ज़

संसारकी सभ्य और असभ्य जातियोंके खानपान और रहन सहनकी तुलना करके जो लोग कहा करते हैं कि मनुष्यका पिछले हज़ार बर्षोंमें उन्नति और गौरवसूचक सबसे उत्कृष्ट कृत्य प्रकृतिके ऊपर विजय है, अर्थात् आहार व्यवहार और सभी सामाजिक आवश्यकताओंके लिए उसने प्रकृतिको अपने अनुकूल बना लिया है, तो इस दावेको हम माननेके लिए तैयार हैं। परन्तु जब यह पूछा जाता है कि क्या प्रकृतिने भी मनुष्यके मन, शरीर और उसके प्रत्येक अवयवको अपने अधीन कर रखा है, क्या अपनी भीतरी प्रवृत्तिको मनुष्यने बाहरी प्रकृतिके उस प्रभावसे सर्वथा छुड़ा लिया है, तो सभ्यताके पक्षपाती निरुत्तर हो जाते हैं।

दृष्टान्त लीजिये। प्राचीनकालमें मनुष्य सारे दिन अहार ढूंढ़नेके उपरान्त थोड़ेसे सूखे वा सड़े गले कन्दमूल और बन-फलोंसे, जिसमें भी शरीरकेलिए पोषक द्रव्य बहुत कम होता था, अपना उदर भर लेते थे।

अब इस समय धन हो तो हलवा पूरी और पुलावकी कौन कहे, मनुष्यकी बुद्धि चातुरीसे वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें हज़ारों ऐसे कृत्रिम व्यञ्जन मिलते हैं, जिनमें एकसे एक बढ़कर बल और पुष्टि देनेवाले गुण हैं। परन्तु इन हज़ारों वर्षके भीतर रूखी सूखी वा कड़ी चीज़ें खानेके कारण मनुष्यके पेट और आंतोंकी जो खास बनावट हो गई है वह केवल पुष्टकारी कृत्रिम भोजनोंसे कब ठीक ठीक काम दे सकती है। उन्हें तो पुष्टिकारक और पुष्टिहीन, मिश्रित भोजनका अभ्यास हो गया है। केवल पुष्टियुक्त दीजिये तो वह बिगड़ जायं, निरा पुष्टिहीन दीजिये तो बेकाम हो जायँ।

एक कथा सुनिये। संयुक्तप्रान्तमें एक दिन एक धार्मिक संप्रदायके अनुयायी मिले। मालूम हुआ कि आप केवल मूंगकी खिचड़ी खाकर दस दस घण्टे आसन मारे गुरुकी बतायी विविध क्रियाओंका अभ्यास करते थे। पाखाना पेशाबकी एक बार भी हाजत नहीं होती थी। मैंने सोचा यह ठीक है। खिचड़ीमें ऐसे ही निरर्थक द्रव्य बहुत कम है. खूब घुली हुई खिचड़ीसे जिसमें चांवल वा दालके कण भी नहीं दिखाई देते बहुत थोड़ा मल बनता है, परन्तु हां जो कुछ बनता है वह आंतोंमें खूब चिपक जाता है और उसका बाहर निकलना बड़ा ही कठिन हो जाता है। जभी तो ऐसे धार्मिक पुरुषोंको मनोवाँछित कब्ज़ होता है और योगसिद्धि होनेके बहुत पूर्व ही इस दुनियासे, बड़ी शीघ्रतासे, पेटके अनेक रोगोंके पंजेमें पड़कर,

कूच करना पड़ता है; इसीको सभ्यताका कब्ज़ कहते हैं।

यों तो कब्ज़ वा बद्धकोष्ठके बहुतसे कारण हो सकते हैं, परन्तु उनमें जो मुख्य हैं उनपर यहां संक्षेपसे विचार करना अच्छा होगा। कब्ज़ प्रायः किसी भी बीमारीके साथ देखनेमें आता है और वह इसलिए कि बीमारीकी हालतमें जो पथ्य दिया जाता है वह काबिज़ होता है। कभी कभी कब्ज़ पेट और आंतोंकी दुर्बलताका एक लक्षण होता है। साधारणतः पेटमें अम्लरसके आधिक्यसे भी इसकी उत्पत्ति होती है। यह भी संभव है कि आंतोंसे पाचक रसोंके स्राव न होनेसे कब्ज़की शिकायत हो। और तरह भी स्वास्थ्यके गिर जाने, शरीरमें उचित पोषणके न पहुंचने, रुधिरके अभावसे, वा स्नायविक दौर्बल्यके (neurasthenia and debility) होने पर या ज्वरके उपरान्त पेटमें मलकी गति रुक जाती है। बाज़ लोगोंको स्नायविक और पेशीके दोषसे जन्मसे ही यह रोग लग जाता है। खैर यह सब कारण बहुत कम देखनेमें आते हैं। अधिकतर यह खाने पीनेके दोषसे ही होता है, जो पीछे बेपरवाही और अन्य बुरे बुरे अभ्यासोंसे, जैसे बहुत बैठा रहना या प्रातः काल जल्दीमें पाखाने न जाना इत्यादिसे, बढ़ जाया करता है। बस निश्चय यह है कि इस कष्टका आरम्भ खाने पीनेमें असावधानीसे होता है।

यह भी ध्यानमें रखने योग्य बात है कि जिसके शरीरके स्नायुजाल (nervous mechanism) जितने दृढ़ होते हैं उसी सफाईसे उसकी आंतोंसे मलका रेचन (defecation) भी होता है। एक में शिथिलता आई तो कुछ न कुछ दूसरेमें भी शिथिलता आ जाती है। बाज़ बाज़ हालतोंमें लड़कपनसे ही कुछ स्नायविक गड़बड़ी होती है और तबसे बद्धकोष्ठ चला आता है। साधारणतः जवानी आनेके थोड़े ही दिन बाद स्नायविक सुस्तीके साथ कब्ज़ भी प्रकट होता है और बहुतेरोंको केवल बुढ़ापेमें ही पहले पहल यह शिकायत होती है। पेट और आँतोंकी इस रेचन क्रियाको बाहरसे उसकानेका कोई निश्चित उपाय नहीं है, परन्तु आहार इत्यादिके सुधारसे थोड़ा बहुत आराम ज़रूर मिल सकता है।

शरीर-विज्ञानकी खोजसे यह पता चलता है कि रेचन क्रियाके ठीक ठीक होनेकेलिए कुछ बातें ज़रूरी हैं। जिसे हम रेचन-क्रिया कहते हैं उसके होनेके पहले सारी आँतें एक ओरसे दूसरी ओर हिलोरें मारती हैं और फिर सिकुड़ जाती हैं। इसीसे मलको धक्का पहुंचता है और वह धीरे धीरे आँतोंमें नीचेको खिसकता है। आँतोंके बारी बारीसे इस सिकुड़ने और फैलनेको पेरिस्टेलसिस (Peristalsis) कहते हैं। वह दो तरहसे हो सकता है। एक तो केवल पेटमें कठिन, तरल वा वाष्पके दबावसे, दूसरे (chemical distension) रासायनिक क्रिया से। संभवतः दोनों ही क्रियाएं साथ साथ काम करती हैं। पहली क्रियाके होनेके लिए खाये हुए अन्नमें एक ऐसा भाग होना चाहिये जो पाचन क्रियाके समाप्त होनेपर भी बेपचा रह जाय। यह अंश भिन्न भिन्न आहारके अनुसार कम या वेश हुआ करता है। प्रयोग करके देखा गया है कि २,४३८ ग्राम दूध लेनेपर ८६ ग्राम मल निकला, जिसमें २४·८ ग्राम बेपचा हुआ भाग था। १,४३५ ग्राम मांस लेनेपर ६४ ग्राम मल और १७·२ ग्राम बे पचा भाग निकला। १,३६० ग्रामरोटीसे (४६ आउन्स) ८१५ ग्राम मल और ११५·८ ग्राम बेपचा अंश मिला (रुबनर साहबका हिसाब)।

इन दो क्रियाओंमें पहली शुद्ध दबावसे होती है। दबाव कभी कभी एकबारगी बढ़ जाता है तो पीड़ाजनक हो जाता है। दूसरी, जिसमें रासायनिक दाह वा उत्तेजनासे (chemical irritation) मलको गति पहुँचती है, वह अधिकतर कर्बोज और सेलुलोज़के सड़ने और जीवाणुओंके पैदा होने तथा उन्हींके बनाये हुए अम्लके (Acids)

कारण होती है। अजीर्ण और पतले दस्तकी बीमारी तो स्पष्ट रूपसे पेटमें अधिक अम्लके संचय होनेकी ही वजहसे होती है। जीवाणुओंकी (bacterial) क्रियासे प्रोटीडके सड़नेपर आंतोंके निचले भागमें भी (colon) मलपर ज़ोर पड़ता है। और यह स्मरण रखने योग्य बात है, जैसा कि स्ट्रासबर्गर साहबने (Strasburger) प्रमाणित किया है, कि पाखानेमें प्रतिदिन निकले हुए सूखे जीवाणुओंका औसत वज़न कब्ज़की हालतमें ५.५ ग्राम और स्वस्थ दशामें ८.० ग्राम हुआ करता है। इससे यह नतीजा निकलता है कि मनुष्यकी स्वस्थ अवस्थामें प्रोटीडमें जितनी सड़ायन होती है, उसकी अपेक्षा कब्ज़ होनेपर कम होती है। रोगग्रस्त मनुष्योंके मलकी परीक्षासे यह अकाट्य ठहर चुका है। तब तो डाक्टर वैद्य लोगोंका यह भय दिलाना कि पेटके भीतर मल रह जानेसे एक प्रकारका मादक उत्पन्न होता है और मनुष्य अपने शरीरके विषसे आप ही आहत होता है बिल्कुल निर्मूल प्रतीत होता है।

कब्ज़ अमीरोंकी बीमारी ज़रूर है। इसको निरा आक्षेप नहीं मानना चाहिये, क्योंकि यह खुली बात है कि खाने पीनेसे सुखी भाग्यवान मनुष्य भरसक ऐसी चीज़ें खाते ही नहीं जो पुष्टकारी न हों। इसका फल यह होता है कि आँतोंमें भोजनका निकृष्ट भाग वा मल बहुत थोड़ा रह जाता है। परन्तु ऊपर कह आये हैं कि पेटमें रेचन क्रियाके (peristalsis) होनेके लिए भोजनमें कुछ निरर्थक द्रव्य भी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि धनी रसिक मनुष्य अपने आहारमें प्रोटीडकी अपेक्षा मण्डादि कर्बोज, खीर, पुलाव, मिठाई, फल इत्यादि मात्रासे अधिक बढ़ा देते हैं, जिससे कई प्रकारके आवश्यक अम्लरस और वाष्प नहीं बन पाते। इसपर भी पेट साफ हो तो आश्चर्यकी बात है!

जहाँ तक देखा गया है, सादे और कम गरिष्ट खान-पानसे मामूली कब्ज़में बातकी बातमें लाभ होता है। इससे खान पानके सुधारका महत्व जितना बताया जाय थोड़ा होगा। परन्तु यह लाभ केवल उन्हीं रोगियोंको होता है जिनका कष्ट थोड़े ही दिनोंका है। इधर बहुधा कब्ज़के पुराने रोगी अनेक प्रकारकी दस्तावर दवाओंके आदी हो जाते हैं, उनके पेटमें इतनी शक्ति बाकी नहीं रहती कि बाहरी संकेतसे उसमें स्फूर्ति आये। ऐसे रोगियोंकी दशामें खान पानके संयमसे एकाएक कोई लाभ नहीं देख पड़ता, जिससे वह निराश होकर बैठ जाते हैं। इन लोगोंको पहलेसे ही चेतावनी दे देनी चाहिये कि चाहे पथ्य-विचारसे आरम्भमें वैसा लाभ न हो, परन्तु इसका स्थायी रूपसे नियम कर लेना उनका कर्तव्य है। चिकित्साके और अङ्गोंमें यह भी आवश्यक अंग हैं। कोई भोजन सम्बन्धी बहुत बड़ा परिवर्तन करनेकी ज़रूरत नहीं है। केवल दो चार बातोंका ध्यान रखना चाहिये। एक तो साग भाजीकी (cellulose) बहुलता रहे, दूसरे मांसका परिमाण कम हो, तीसरे घी, मक्खन और तैल द्रव्यकी मात्रा अधिक हो, चौथे पानी पीनेमें कोताही न की जाय और अन्तमें कोई ऐसी औषध न सेवन की जाय जो दस्त लावे।

रोगीकेलिए अपने चौकेसे बारीक आटे वा मैदेका तो एकदम बहिष्कार कर देना उचित है। उसके स्थानमें बिना छाने हुए आटेका व्यवहार अच्छा है। जहाँपर संदेह हो तो ऊपरसे थोड़ासा चोकर मिलाकर काम निकालना चाहिये। गेहूंको दलवाकर सादे पानी या दूधमें पकवानेसे बड़ा अच्छा दलिया बनता है, जो पुष्ट होनेके साथ साथ कब्जमें बड़ा गुण करता है। तरकारियोंमें मूली, शलजम, भंटा, कुम्हड़ा, कटहल और आलूको छोड़कर सभी खाने योग्य हैं। बथुई, चौराई, पालक इत्यादि सागको दालके साथ पकाकर खानेकी बिधि सबसे अच्छी है। तरकारी भाजी, घी वा तेलमें भुनी न हो, मसालेदार भी न हो, केवल धनिया सौंफ वा जीरेके साथ बन्द बरतनमें चुराई हुई हो। बाज़ मरतबे गोभी और पियाज़से कुछ लोगोंके

पेटमें बदबू आजाती है। इसका कारण यह है कि इसमें गंधकका अंश ज़्यादा है, जिससे आंतोंमें एक प्रकारकी हवा (Sulphuretted hydrogen gas) उठने लगती है। दिनमें फलोंका प्रयोग कई बार करना चाहिये। विशेषकर कब्ज़में सेब—पेड़के पके या उबाले हुए—नाशपाती, आड़ू, लुकाठ, पपीता, बेल, संतरा, अंजीर और छुहारा इत्यादि फल कामके हैं। जितने दफ़े भोजन किया जाय थोड़ा बहुत मक्खन वा घी भी खाया जाय। अन्नमें चिकनाई रहनेसे पेट साफ होनेमें आसानी पड़ती है। कितने ही आदमियोंको तेलसे घृणा होती है, परन्तु जो खा सकें उनके लिए ज़ैतूनका तेल फ़ायदेकी चीज़ है। जब ही प्यास मालूम हो तो इच्छा भर पानी पीना चाहिये। बहुत लोग गरम पानीसे ठंडे पानीको अच्छा बताते हैं। चाय, काफी कब्ज़में निषेध है। बहुत सोडा पीनेका अभ्यास डालनेसे भी उसका गुण जाता रहता है।

एक दो बातोंसे रोगीको विशेषरूपसे सतर्क कर देना चाहिये। पथ्य इत्यादिमें सहसा परिवर्तन कर देना ठीक नहीं है। शुरूमें रोगीकी रुचिका भी कुछ ख्याल रखना पड़ता है। पुराने कब्ज़में दो चार दिनके कठोर नियम पालनसे कुछ नहीं होता। बरसोंके परहेज़के बाद रोगसे छुटकारा पाना संभव है। इसलिए क्रमशः संयमका अभ्यास डालना और धैर्यपूर्वक उस समयतक इसका पालन करते रहना चाहिये जब तक शरीर फिरसे पूर्णरूप स्वस्थ न हो जाय। कोई कोई लोग तो चाहे वह जितना ही फल और-तरकारी खालें पचा जाते हैं, पर कितनोंको इनसे आँतोंमें सड़ायन हो जाती है, वायुसे पेट फलने लगता है और कभी कभी पतले दस्त आने लगते हैं। ऐसे लोगोंको बहुत सम्हल कर अन्दाज़से फल वा तरकारी खानी चाहिये। इसके अतिरिक्त जबकि बलग़मी (मोटे) शरीरवालोंको कब्ज़ होता है तो आलू, शकर, चावल इत्यादि कर्बोज कम करके प्रोटीडमय भोजन बढ़ा देना चाहिये और जिस दशामें मंदाग्निके लक्षण भी विद्यमान हों तो कब्ज़का अलग इलाज करना व्यर्थ है। ऐसे रोगियोंका कब्ज़ केवल पथ्यके सेवनसे नहीं जा सकता।

कब्ज़ दूर करनेके सरल नियम।

(१) सुबह शाम नियत समयपर शौचको जाइये।

(२) शौच जानेके पहले एक ग्लास ठंडा पानी पी लीजिये।

(३) स्वाभाविक दुर्बलता हो तो पेड़ूपर थपकी देकर मन ही मन संकल्प कीजिये कि पेट साफ हो जाय।

(४) ऐसी चीजें खाकर पेट न भरिये जो थोड़े ही वज़नमें बहुत पुष्टि रखती हैं, जैसे बादाम वा गाजरका हलवा, पाव रोटी, बालाई, भूनी खिचड़ी वा पुलाव, मखानेकी खीर, मसालेदार फ़ीरीनी, चाय इत्यादि।

(५) गेहूंका दलिया दूधमें या पानीमें, बे छाने आटेकी खरी रोटी, गुड़, फल, तरकारी, ताज़ा मक्खन तबियत भर खाईये। अच्छा आटा न मिले तो उसमें कुछ चोकर मिला लीजिये।

(६) खानेके घंटे डेढ़ घंटे बाद अच्छी तरह पानी पीजिये। रातको सोनेके पहले गरम दूध पीनेसे सबका पेट नहीं साफ होता। किसी किसीको दूध कब्ज़ करता है। दिनमें भी जो दूध न हज़म कर सकें वह मठा पी सकते हैं। इससे शरीरको पोषण भी मिलता है और पेटके कीड़े भी मर जाते हैं। दूसरे शरीरको कुछ तरल पदार्थकी जो आवश्यकता होती है वह भी पूरी हो जाती है। पर रातको दही वा मठा निषेध है।

(७) कसरतसे कब्ज़में बड़ा फ़ायदा होता है, पर इसके लिए बन्द घरके भीतर नहीं वरन् खुली हवामें की गयी कसरत काम करती है। इस कसरतसे विशेषकर पेड़ूके ऊपर बल पड़ना चाहिये। दरी या बिस्तरपर लेटकर दोनों हाथ कनपटीसे लगाकर सीधा पीछे फेंकिये। कमरसे

नीचेका भाग ज्योंका त्यों रखिये, परन्तु ऊपरका धड़ आहिस्ता आहिस्ता इस प्रकार उठाइये कि दोनों हाथ कनपटीसे लगे रहें और आप बिना किसीके सहारे उठ बैठें। आरम्भमें ६, ७ बार उठिये और लेटिये। व्यायामकी दूसरी विधि यों है। कमरके ऊपरके धड़को बिस्तरपर रखिये और पैरोंको एक एक करके धीरे धीरे उठाकर कमरके ठीक ऊपर खड़ा कीजिये। इसके पीछे फिर दोनों पांवोंको एक साथ ज़मीनसे धीरे धीरे ऊपर खड़ा कीजिये। तीसरी विधिमें आप पैरोंपर खड़े हो जाइये और उन्हें धरतीपर अच्छी तरह जमाये रखिये। अब यदि आप पूरबकी ओर देख रहे हों तो जहां तक बन पड़े शरीरको मरोड़ कर उत्तर-पश्चिमकी ओर फिरिये। वैसे ही शरीरको दक्षिण पश्चिमकी ओर ऐंठिये। यह क्रिया भी सामर्थ भर ८-१० बार दुहरानी चाहिये।

बारी बारीसे पेडूको फुलाने और पिचकानेसे भी आंतें दृढ़ होती हैं और जमा हुआ मल निकल जाता है। प्रातः उठते ही घरमें जिस खिड़कीसे साफ और अच्छी हवा आती हो उसके सामने खड़े होकर फेफड़ोंमें जितनी हवा आ सके भरना और छोड़ना लाभ करता है। इस क्रियासे जैसे हाथोंमें स्पंज दब जाता है वैसेही गुरदा भी सिकुड़ता और फैलता है और उसकी शिथिलता चली जाती है। इससे कब्ज़ और बदहज़मी, दोनों शिकायतें दूर होती हैं।

बहुत लोगोंको बाइसिकल चढ़नेसे कब्जमें हानिके स्थानमें लाभ होता देखा गया है। यदि इसके सहारे कब्ज़के मरीज़ शहरकी भीड़से निकल कर गाँवकी खुली हवामें चले जांय तो दुगुना लाभ पहुंचे।

[असमाप्त]

आँखकी बीमारियां

[ले०-पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

आँख बदनका एक नाजुक हिस्सा है। उसमें अनेक रोग बाहरी और भीतरी कारणोंसे हो जाते हैं। अनाड़ीका इलाज आंखकी बीमारियोंमें कभी न करना चाहिये, क्योंकि निगाहकी खराबी बढ़ गई तो अन्धे हो जानेमें सन्देह नहीं। इसलिए जब आँखका इलाज किया जाय तो होशियार डाक्टरकी सलाह लेना आवश्यक है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि होमियोपैथिक इलाजमें ऐसी कोई दवा नहीं है, जो कभी हानि पहुंचावे। इसी कारण हम कुछ औषधियोंके बतलानेका प्रयत्न करते हैं।

(१) अगर बाहरकी चोट या सरदी लग जानेसे आँखमें लाली मालूम हो तो ठंडे पानीसे या दूध और पानी मिलाकर या आरनिकाकी ८, १० बूंद पानीमें डालकर उस पानीको आँखके अन्दर डालें या आँखको धोवें।

(२) निगाहकी कमजोरी—यह कई कारणोंसे हो सकती है और यह कई प्रकारकी होती है। प्रत्येक दशामें भिन्न भिन्न इलाज किये जाते हैं। इलाज करनेसे पहले मरीजका स्वास्थ्य ठीक किया जाय और जो कारण निगाहकी कमज़ोरीका हो उसके मिटानेका उपाय किया जाय। बाहर टहलना, अच्छा बलवर्धक भोजन करना, स्नान करना और हर समय चित्त प्रसन्न रखना अति आवश्यक है। इसके बाद अगर नीचे लिखी हुई खराबी या बीमारीके कारण निगाहमें कमजोरी आई है तो, जो दवा लिखी गई है, उसका सेवन दिनमें तीन बार कराना चाहिये।

१—बैलेडोना, कैलकेरिया—कार्ब या सिपजिलिया—अगर कमजोरीका कारण बारीक काम या सीना पिरोना, कसीदा आदि करना है।

२—नैट्रमम्यूरेटिकम, नक्सवोमिका, फोसफोरिक एसिड या सलफ़र-यदि शरीरकी दुर्बलताके कारण कम दिखलाई देने लगा हो।

३—चाइना, लैचीसिस, नक्सवोमिका, या ओपियम-अगर निगाहकी कमजोरीका कारण नशीली चीज़ोंका सेवन है।

४—बैलेडोना, डलकेमरा, यूफ्रेशिया, पलसेटिला—अगर सर्दीके कारण कम दीखने लगा हो।

५—औरम, कोनियम, ओपियम, सीकेल-अगर बुढ़ापेके कारण कम दीखने लगा हो।

६—कैमोमिला, कौस्टिकम, यूफ्रेशिया, हिलीबोरसनिग, मरक्यूरियस, पलसैटिला, स्पिजिलिया-यदि गठियाके होनेके कारण है।

७—कैलकेरिया, कौस्टिकम, शिलिसिया, सलफ़र,—अगर फोड़ा फुन्सी या दाने वगैरह निकलते निकलते रुक जानेके कारण आंखोंमें कमजोरी हुई है।

८—बैलेडोना, हयोसिमस, नक्सवोमिका और ओपियम-यदि निगाहकी कमज़ोरीके साथ सिरमें भारीपन आदि भी रहता हो।

९—नैट्रिक एसिड, पैटरोल, पलसैटिला-अगर कानके दर्दके कारण कमज़ोरी हो।

१०—कैपसिकम, कोकस कैक्टी, नक्सवोमिका, पलसैटिला, स्टेफ़ीसैग्री-यदि पेटकी बीमारियोंके कारण निगाहकी कमज़ोरी हुई हो।

११—कैलकेरिया, हीपरसल्फ़, आयोडिम, शिलिसिया और फ़ोसफ़ोरस-अगर फेफड़ेकी ख़राबीके कारण बीमारी हुई हो।

१२—साईक्यूटा, कोनियम, फ्लेन्टेगो, सीपिया और सलफ़र यदि निगाहकी कमज़ोरी रहमकी ख़राबीके कारण हुई है।

३—ओपथेलमिया यानी आंखोंका सूजना

इसमें साफ़ कपड़ा ठंडे पानीमें, या गुनगुने पानीमें या दूध और पानी मिले हुएमें तर करके आंखोंके पपोटेपर रखनेसे फ़ायदा होता है। मरीज़को रोशनीसे बचाना चाहिये और शोर गुल उसके पास न होना चाहिये। जो कीचड़ आँखसे निकले, उसको साफ़ मुलायम कपड़ेसे इस तरह साफ़ करना चाहिये कि किसी दूसरी जगह न लग जाय। यहांतक बचाना चाहिये कि किसी दूसरेके भी वह कपड़ा न लगे, क्योंकि उस कीचड़में एक प्रकारका ज़हरीला असर होता है, जिसके लग जानेसे आंखमें सूजन हो आती है। साधारण लोशन, १ माशा ज़िंकसलफ़ेट, आध पाव पानीमें मिलानेसे, बन जाता है, जो इस रोगमें आँखके धोनेकेलिए लाभदायक है। जुकाम, गठिया, सुज़ाक और आतशककी बीमारीवालोंको यह आँखोंका रोग अधिकतर होता है। जिन लोगोंको आतशकके कारण यह रोग हो जाय, उनको बिना डाक्टरकी सलाहके कोई इलाज न करना चाहिये। बाकी सब सूरतोंमें एकोनाइट, आरनिका बैलेडोना, यूफ्रेशिया और मरकरी का सेवन फ़ायदा करेगा। यों तो कैमोमिला, इगनेशिया, कोलोसिन्थस, स्पिजिलिया, सलफ़र, विरेट्रम, हीपरसल्फ़, चाइना, डलकेमरा, थ्यूजा आदि दवाइयां भी फ़ायदा करती हैं, लेकिन ऊपर लिखी ५ दवाइयां ज़्यादा लाभदायक हैं।

यूफ्रेशिया—इन सबमें ज्यादा अच्छी दवा है, जिसको आँखकी प्रत्येक बीमारीमें खा और लगा सकते हैं।

४—कन्जंकटिवाईटिस या आंखोंका दुखना

इस बीमारीमें आँखका सफ़ेद पर्दा लाल हो जाता है। आंखसे पानी आता है। ऐसा मालूम होता है कि आँखमें धूल पड़ गई है। बच्चोंको अधिकतर यह बीमारी सर्दी गर्मी और ख़ाक धूलके कारण हो जाती है। मरीज़को रोशनीसे बचाना और आंखोंको साफ़ रखना आवश्यक है। निम्न लिखित दवाइयोंका प्रयोग लक्षणानुसार करना चाहिये।

एकोनाइट—जब अधिक लाली और सूजन हो, बुख़ार हो और गाल तमतमाये हुये हों।

एपिस—जब नीचेके पपोटे सूजकर लटक जायं, लाल हो जायं और जलन हो।

आरजेन्टमनैट्रम—पपोटे मोटे पड़ जायं और

सूज जायं, आँखमें कीचड़ ज्यादा निकले और पुतलीके चारों ओर लाली आ जाय।

आरसेनिक—आँखमें जलन, पुतलीपर जख़्म, आँखके सफ़ेद पर्देपर सूजन, प्यासकी अधिकता हो और कीचड़ इतनी निकले कि पलकें चिपक जायं।

और भी दवायें जैसे लायकोपोडियम, सलफ़र पिफ़्राईटीज, पलसैटिला, रसटोक्स, कैलकेरिया कार्ब, कैमोमिला, नाइट्रिक एसिड वगैरह काममें आती हैं।

५—ग्रेनूलर आइलिड यानी रोएँ पड़ना

इसमें छोटे छोटे दाने पपोटेके अन्दरवाली तहपर हो जाते हैं। पपोटे सूज आते हैं, कीचड़ निकलती है। अधिकतर बच्चों, पढ़ने लिखनेवालों और औरतोंको आँख न साफ़ रखने, रोशनी और धुएँमें बैठनेसे हो जाते हैं। आँखोंको साफ़ रखना चाहिये और रोशनीसे बचना चाहिये। आँखके अन्दर फूंका हुआ जस्ता (सफेदा) डालनेसे फ़ायदा होता है और आरसेनिक, आरजेन्टम नेट्रम, बोरेक्स, कैलकेरिया कार्ब आदि दवाइयां पिलानी चाहियें।

६—स्टाई यानी गोहंजनी

इस बीमारीमें पपोटेके किनारेपर दाना निकल आता है, दाना पक जाता है, मवाद निकलता है, सूजन, लाली और आँसू निकलते हैं, दर्द और टपका होता है। कभी कभी एक दूसरेके बाद कई दाने निकलते हैं। आँखको मसलना नहीं चाहिये और रोशनीसे बचना चाहिये। हैपरसल्फ, पलसैटिला और मरक्यूरियसके खानेसे फायदा होगा।

सिटरिन ओइन्टमेन्ट—अगर दिनमें दो तीन बार दानोंपर लगा दिया जाय तो फायदा होगा। ऐसी होशियारीसे लगाना चाहिये कि आँखके भीतर न जाय। अगर दाने कड़े हो गये हों तो कैलकेरिया, स्टैफ़ीसेगेनिया या सलफर की एक अथवा ६ गोली ६, ७ दिन तक देना चाहिये। हलका खाना और गुनगुना पानी मरीजकेलिए ज्यादा लाभदायक है।

७—रतौंदी यानी रातको न दिखलाई देना

इस बीमारीमें बेलेडोना, फासफोरस, पलसैटिला, रेननेक्यूलिस बल्ब के देनेसे फायदा होता है।

८—मायोपिया या चीज़ोंका बहुत ही पास लाकर देख पढ़ना

इस मर्जकेलिए खास दवाएँ कार्बोवेजीटेबिलस, नाट्रिक एसिड, पलसैटिला, फासफोरिक एसिड और सलफर हैं। लेकिन डाक्टरकी सलाहसे यदि चश्मा लगाया जाय तो अच्छा है। बैलेडोना, स्पोंजिया कोनियम और यूफ्रेशिया भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

९—एमबीलोपिया

इस बीमारीमें निगाह कम हो जाती है, ज़्यादातर कमजोरी, नजला और बुढ़ापेके कारण यह बीमारी होती है और बैलेडोना, चाइना, साईक्यूटा, कौस्टिकम, कैलकेरिया, मरक्यूरियस, नक्सवोमिका, पलसैटिला, फासफोरस, सीपिया, शिलिसिया, और सलफर देनेसे फायदा होता है। चाहिये कि रोगीको ऐसा खाना दिया जाय, जिसमें चिकनाहट ज्यादा हो और जल्द पचनेवाला हो और ऐसा काम न किया जाय कि जिससे आँखोंपर ज़ोर पड़े।

अगर डाक्टरकी राय हो कि चश्मा लगानेसे फायदा होगा तो चश्मा लगाना चाहिये।

दृश्य और अदृश्य प्रकाश

[ले०—प्रो० व्रजनन्दन सहाय, बी. एस-सी.,]

नेत्र और कान मनुष्यकी दो इन्द्रियां हैं। हमको यह पता लगाना है कि उनमें वैज्ञानिकोंके मतानुसार कौन अधिक बलवान है। साधारण मनुष्य तो समझेंगे कि इनके बलकी तुलना करना असम्भव है। अपने अपने कामोंमें दोनों ही कुशल हैं, किन्तु विज्ञानकी दृष्टिसे कान आँखसे कहीं अधिक बलवान प्रतीत होता है।

यदि किसी तरहसे शब्द किया जाय तो वह वस्तु, जिससे शब्द उत्पन्न होता है, स्पन्दन करने लगती है। यह स्पन्दन वायु द्वारा हमारे कानमें पहुंचकर शब्दका बोध कराते हैं। यदि कोई वस्तु एक सेकंडमें २५६ बार और दूसरी वस्तु ५१२

Light प्रकाश विज्ञान]

बार कांपे तो जो शब्द दूसरी वस्तुसे उत्पन्न होगा वह पहिली वस्तुसे उत्पन्न हुए शब्दसे एक सप्तक (octave) अधिक समझा जायगा। गालटनकी सीटी (Galton's whistle) बजाकर यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य उस शब्दको सुन सकता है जो ३० से लेकर १५००० कम्पन प्रति सेकण्ड तकसे उत्पन्न हुआ है। अथवा कानसे मनुष्य कई सप्तकके शब्दको सुन सकता है। आप कानकी शक्ति तो जान चुके, अब आँखकी शक्तिकी परीक्षा कीजिये।

एक काँचका त्रिपार्श्व लीजिये। उसके एक तरफसे बहुत सूक्ष्म छेद द्वारा सूर्य्यका प्रकाश आने दीजिये और उसे त्रिपार्श्वपर पड़ने दीजिये। यह रश्मि पुञ्ज (किरणें) त्रिपार्श्व (काँचके तिपहल) मेंसे निकलकर जहाँ, दीवालपर या किसी सफ़ेद काग़ज़के तावपर, पड़ें, वहाँ आप एक मनोहर रङ्गीन चित्र देखेंगे, जिसमें क्रमशः लाल नारङ्गी, पीला, हरा, नीला, बैंगनी और कासनी रंग विद्यमान हैं। यह रश्मिचित्र कहाँसे आया? यह उसी उज्ज्वल प्रकाशसे उत्पन्न हुआ है, जिसने त्रिपार्श्वमें प्रवेश किया था। अतएव मानना पड़ता है कि स्वेत प्रकाश वास्तवमें सात रंगोंका मिश्रण है। जिस तरहसे सात स्वर—षड़ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—मिलकर शब्द विज्ञानमें एक सप्तक होता है, उसी तरह प्रकाश विज्ञानमें सात रंगका एक सप्तक होता है। आँखसे केवल एक सप्तक आप देख सकते हैं, किन्तु हम ऊपर कह आये हैं कि कई सप्तक आप कानसे सुन सकते हैं। इससे यह स्पष्ट हुआ कि कान नेत्रसे अधिक बलवान है।

जो सात रंगका रश्मिचित्र आपने देखा वह पूर्ण रश्मिचित्रका केवल एक अंश है।

आपका नेत्र इतना असमर्थ है कि एक सप्तक अर्थात् सात रंगके आगे पीछे कुछ पता नहीं लगा सकता। चित्र ५ देखिये। इसमें ३ दृश्य सप्तरंजन है, जो हमारा नेत्र देख सकता है। किन्तु यह रश्मिवर्ण बाएँको दो और सप्तक तक चला गया है। दूसरी तरफ ४ से १० तक और उससे बहुत आगे कई सप्तक तक गया है। मालूम नहीं यह कितना बड़ा है, किन्तु हमारी आँख केवल तीसरा सप्तक देख सकती है। १ और २ में सूक्ष्म तेजकी किरणें हैं। रश्मिचित्रके इस हिस्सेको पुराकासनी या पुराबेजनी कहते हैं। कासनी तथा
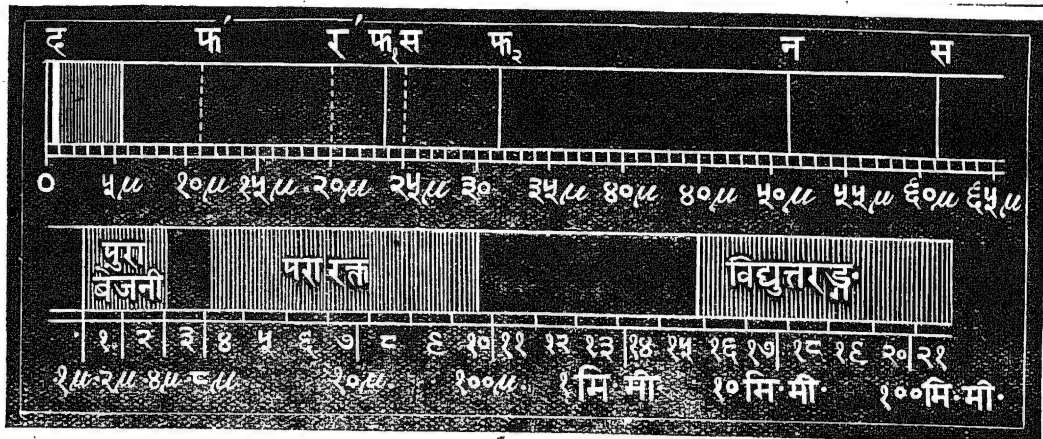
चित्र ५—पूरे रश्मि चित्रको २१ सप्तकोंमें विभक्त किया जा सकता है, जिनमेंसे पहले दो (१, २) पुरा बेंजनीके हैं, तीसरा दृश्य प्रकाशका है, ४—१० तक परा-रक्त अर्थात ताप-किरणोंके हैं, ११—१५ तकका विवरण अज्ञात है, १६—२१ तक विद्युत्तरङ्गोंके हैं।

पुरा कासनी किरणें अधिकतर छायाचित्रण तथा रासायनिक परिवर्तनोंमें काम आती हैं। लालसे आगेके हिस्सेका, ४ से १० सप्तक तकका, पता लगाया जा चुका है। यह किरणें बड़ी गरम होती हैं। इनकी नाप तापमापक यन्त्रोंसे होती है। १० से १५ तक के हिस्साका कुछ पता अभी तक नहीं लगा है। १६ से २० तक और उससे भी आगेके हिस्सेका पता लग चुका है। हमारे देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर जगदीश्चन्द्र बसुने भी बहुत कुछ इस कार्यमें सफलता प्राप्त की है। १५ के आगे विद्युत्की किरणें हैं। हरट्ज़ने विद्युत्की बड़ी बड़ी तरङ्गोंको नापा था। उनके तरङ्गान्तर कई मीलके थे और यही तरङ्गें बेतारमें काम आती हैं, किन्तु छोटी छोटी तरङ्गोंका पता लगाना और माप करना हमारे सर जे० सी० बसुका काम था। उन्होंने ४ मिलीमीटर लम्बी तरङ्गोंतकको नाप डाला है। इससे छोटी विद्युत्की तरङ्ग आजतक नहीं नापी गयी हैं। यह तो सब हुआ, किन्तु यह कैसे मालूम हो कि यह सब एकही रश्मिचित्रके हिस्से हैं। इसका प्रमाण यह है कि दृश्य-प्रकाशके कई एक नियम मालूम हैं, जैसे—परावर्तनका नियम, वर्तनका नियम और ध्रुवीभवनका नियम। १ से २१ तककी सब किरणें इन नियमोंके अनुसार चलती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि १ से २१ तक सब एकही रश्मिचित्रके भाग हैं। सात रंगोंके आगे पीछेके अंश जो हम लोगोंके नेत्र नहीं देख सकते विद्युत्-यन्त्रों द्वारा या रासायनिक विकृति द्वारा जाने गये हैं। जब नेत्र असमर्थ हुए तो भौतिक यंत्र काममें लाये गये यहांतक कि डाक्टर बोसने एक कृत्रिम नेत्र बना डाला है, जिससे आप छोटी छोटी तरङ्गोंकी किरणें देख सकते हैं*।

* श्रीमती प्रियम्वदा देवीने बहुत परिश्रम करके इस लेख-की शुद्ध और स्वच्छ कापी किया है, इसकेलिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। —ले०

रोग, उसके कारण और उससे बचनेके उपाय

[लेखक—साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ शास्त्री]

संसारके आदिम असभ्य पुरुषोंका विश्वास था कि रोग देवताओं और भूत, प्रेत, पिशाचादिक क्रूर आत्माओंके कोपसे हुआ करता है, और इसकी शांतिका एकमात्र उपाय उनका (आत्माओं) प्रसन्न करना है। परन्तु जैसे जैसे संसारमें सभ्यता बढ़ती गई वैसे वैसे उक्त मतपरसे लोगोंका अन्ध विश्वास उठता गया और लोग समयानुकूल कार्य कारण-की खोज करके नये नये सिद्धान्त निश्चित करने लगे। मध्ययुगके आचार्योंने मनुष्यके शरीर-में तीन प्रकारकी प्रकृतियों (humours) का अस्तित्व आविष्कृत किया और इनका नाम वात, पित्त और कफ रखा। इन्हीं तीनों प्रकृतियोंका नाम, पाश्चात्य विद्वानोंने क्रमशः (nervous-temperament) नर्वस् टैम्परामैन्ट, (bile) बाइल और (lymph) लिम्फ रखा है। इनमें की पहिली प्रकृति वायुरूप और बाकीकी दोनों तरल मानी गई हैं। उन्होंने इन्हींमेंसे एक या अधिककी न्यूनाधिकताको रोगका कारण बताया है और रेचनादि द्वारा शरीरमें इनकी समानता उत्पन्न करना रोग नाशका मूल साधन समझा है।

परन्तु अब इस नवयुगमें सभ्यताने और भी उन्नति की है। विशेषतः पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके परिश्रमसे अनेक नवीन यन्त्रादिका आविष्कार हुआ है, जिससे कार्य कारणकी परीक्षामें, और भी सुभीता हो गया है। इसी कार्य कारणकी जांचसे अन्यान्य विषयोंकी उन्नतिके साथ ही साथ शारीरिक निदानमें भी बहुत कुछ उन्नति हुई है, जिससे मध्ययुगके सिद्धान्तोंमें परिवर्तन हो गया, नवाविष्कृत अणुवीक्षण यन्त्र (microscope) द्वारा देखनेसे मालूम हुआ है कि समस्त

General साधारण]

प्राणियोंके शरीर असंख्य छोटे छोटे जीवित कोषों-से (cells or corpuscles) बने हैं। अथवा यों भी कह सकते हैं कि प्राणियोंके शरीर छोटे छोटे जीवित कोषोंके प्रजासत्तात्मक राज्य हैं और जिस समय एक राज्यके कोष दूसरे राज्यके कोषोंपर आक्रमण करते हैं, उस समय इनमें आपसमें घोर संग्राम प्रारम्भ हो जाता है। इसी-को रोग कहते हैं। और जिस प्रकार लोगोंका आपसकी मारपीटके कोलाहलसे झगड़ा स्वयं प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार आपसमें लड़ते हुए कोषोंके कार्योंसे रोग स्वयं ही अपने आपको प्रकट कर देता है।

आक्रान्त कोष समूह को (host) आतिथ्य-कारी और आक्रमणकारी कोषोंको (parasite) परोपजीवी वा अतिथि कहते हैं।

पाठक अब समझ गये होंगे कि आतिथ्यकारी और अतिथि कोष समूहोंके युद्धका ही नाम रोग है। अतः सबसे पहिले हमको यह जानना चाहिये कि कोष (cell) क्या चीज़ है।

कोष (cell or corpuscle) प्राणीमात्रके जीवनका सबसे छोटा उपकरण (organ) है। इसका पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हमको अमीबाकी रचनापर विचार करना चाहिये।

अमीबा (amoeba) सब प्राणियोंमें अत्यन्त ही सादा और एककोषमय जीव है। इसका यह कोष्ठ चेतनोत्पादक तरल पदार्थ-जीवाद्यम-के (protoplasm) एक अति सूक्ष्म कणसे युक्त होता है, जिसका रूप शुद्ध सान्द्र तरल पदार्थके कणके समान है। यह गड्ढों आदिकी कीचड़में मिलता है। परन्तु अति सूक्ष्म होनेके कारण अणुवीक्षणयन्त्र (microscope) की सहायता बिना नज़र नहीं आता। अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे कुछ समयतक देखनेसे प्रतीत होता है कि इसके शरीरका आकार एकसा नहीं रहता। वह सदा बदलता रहता है। कभी एक रूपका होता है तो कालान्तरमें दूसरे रूपका। इसका कारण यह है कि जिस ओर इसे अपने भक्ष्यका पता चलता है उसी ओर यह अपने शरीरके अगले भागको फैलाता है और पिछले भागको सिकोड़ लेता है। इस प्रकार धीरे धीरे खिसकता हुआ अपने भक्ष्यके पास पहुंच जाता है और उसको अपने शरीरके एक भागसे ढक लेता है। तत्काल ही इसके शरीरमें छिद्र बन जाता है और उसी मार्गसे भोजन शरीरके अन्दर चला जाता है।

अमीबाके मुख, आंख, नाक आदि कोई भी अङ्ग अलग नहीं होता, जो कुछ भी होता है कोष्ठा-न्तर्गत जीवाद्यमके (protoplasm) भीतर ही होता है। यही इसके जीवनका आधार है।

ध्यान पूर्वक देखनेसे प्रतीत होता है कि अमीबा चलता है, श्वास लेता है मलत्याग करता है अपने अङ्गोंका पोषण करता है, अपनी रक्षाका प्रबन्ध करता है, बाहरकी वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करता है और वंश वृद्धि करता है। उक्त सात बातोंको जीवनके मुख्य लक्षण समझना चाहिये। यह लक्षण प्रत्येक जीवित कोषमें न्यूनाधिक रूपसे अवश्य ही होते हैं।

परन्तु जिस प्रकार छोटे छोटे कारखानोंमें एक ही कारीगरके होनेसे सब काम उसीको करने पड़ते हैं और बड़े बड़े कारखानोंमें अनेक कारीगरोंके होनेसे वही काम बांट दिये जाते हैं और प्रत्येक पुरुषको लगातार एक ही काम करनेका अभ्यास हो जानेसे उन कामोंमें यथेष्ट उन्नति हो जाती है, उसी प्रकार एककोषवाले प्राणीके उस एक ही कोषको पूर्वोक्त सातों बातें करनी पड़ती हैं। परन्तु जैसे जैसे जीव उच्च कोटिको प्राप्त करता जाता है और उसके कारखानेमें कोषरूपी कारी-गरोंकी वृद्धि होती जाती है, वैसे वैसे उक्त कार्य उसके कोष समूहोंमें बट जाते हैं और प्रत्येक कोष समूह अपने हिस्सेके कार्यका ही उत्तर दाता होता है, जिससे वह उनके करनेमें कुशल हो जाता है। अर्थात् कोई कोष समूह शरीरके

रक्षा करता है, कोई पोषण करता है, कोई मल-त्याग करता है और कोई वंशवृद्धि करता है। अमीबा एक कोषका जीव है। इसलिए इसके इसी कोषको अन्य कार्योंके साथ साथ अपनी वंशवृद्धिका भी कार्य करना पड़ता है। अतः वह अपने शरीरकी पुष्टि करके बीचमें से सिकुड़ने लगता है और बालकोंके झुनझुनेके आकारका होकर बीचमेंसे टूट जाता है। इस प्रकार एक अमीबाके दो हो जाते हैं और दोनों अलग अलग पूर्वोक्त प्रकारसे ही अपनी रक्षा और वंशवृद्धिका नियम जारी रखते हैं।

प्रत्येक कोष समूह किस प्रकार अपने कार्यों-को बांट लेते हैं। इसको समझनेके लिए उत्तरोत्तर उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुए प्राणियोंकी देह-रचनापर विचार करना चाहिये। अतः अब हम क्रमशः वालवाक्स, हाइड्रा और साइक्लोप्स नामक कीड़ोंकी बनावटपर विचार करेंगे।

वालवाक्स कई सौ कोषोंके एकत्रित होनेसे बना होता है। इसके शरीरस्थ कोषोंने पूर्वोक्त कार्योंमेंसे दो कार्योंका विभाग कर लिया है। एक गतिका और दूसरा वंशवृद्धिका। इसीसे इनमें विशेष उन्नति भी नजर आती है। इस कीड़ेका आकार ठीक गोलेका सा अथवा थैलीका सा होता है और इसके शरीरके ऊपरके कोषमें दो बाल निकले हुए होते हैं। इनको अंगरेजीमें सीलिया कहते हैं। ये नावके डांड़की तरह आगे पीछे हिला करते हैं। इन्हींकी सहायतासे यह (वालवाक्स) पानीमें वृत्ताकार घूमा करता है इसके शरीरके भीतरी कोषोंका खास कार्य वंश-वृद्धि करना है। यह जीव भी बहुत ही छोटा होता है, परन्तु आंखसे देखा जा सकता है।

हाइड्रा (hydra) वालवाक्ससे बड़ा होता है। इसका शरीर कई सहस्र कोषोंके समूहसे बनता है। इसके शरीरकी रचनाको समझनेके लिए एक ओरसे खुली एक थैली लीजिये और जिस ओरसे वह खुली है उस ओरसे उसे अन्दरकी तरफ आधी तक मोड़ दीजिये। अब आप देखेंगे कि इस थैलीमें दो तह हो जांयगी—एक अन्दरकी ओर और दूसरी बाहरकी ओर। तथा बीचका स्थान खुला रहेगा। इसी प्रकारका इस जीवका शरीर होता है। यदि और भी इसका स्पष्टीकरण करना हो तो इसके शरीरकी उस कांचकी दावात-से तुलना की जा सकती है, जो बाजारमें एक आनेमें मिलती है और जिसको उलट देनेपर भी स्याही नहीं गिरती। विकासवादके सिद्धान्तानुसार वालवाक्सके शरीरमें ही उन्नति और परिवर्तन होकर हाइड्राका शरीर बना है। जहांपर यह दोनों तह मिलती हैं वहींपर इसका मुख होता है, जिसके आगे अंगुलियोंके समान तन्तु निकले हुए होते हैं। इन्हींकी सहायतासे यह अपना भोजन मुखमें लेता है। इन तन्तुरूप अवयवोंको अंगरेजीमें tentacles कहते हैं। यह बहुत कुछ सिकुड़ सकते और लम्बे भी हो सकते हैं। इस कीड़ेमें तीन कार्योंकी उन्नति और विभाग पाया जाता है। गति, पोषण और वंश-वृद्धि। इनमेंसे गतिका कार्य इसके मुखके आगे लगे हुए तन्तुरूप अवयवोंके (tentacles) कोष करते हैं, पोषणका कार्य भीतरी तहके कोष करते हैं और वंशवृद्धि करनेके लिए कुछ कोष अलग ही नियत होते हैं। इस कीड़ेमें पाचन क्रिया और स्नायुकी रचनाके चिन्ह भी पाये जाते हैं।

यह कीड़ा बहुधा पानीमें तैरती हुई लकड़ी या घास फूसपर चिपटा हुआ मिलता है।

साइक्लोप्स नामक कीड़का शरीर लाखों कोषोंके समुदायसे बना होता है। इसके कोषोंने हाइड्रासे भी विशेष उन्नति कर ली है और कार्य विभागमें भी यह उससे बढ़े चढ़े हैं। इसके शरीरके नीचे, पीछेकी तरफ एक कोष समूह है, जिसकी सहायतासे यह एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुंचता है। उसे इसकी टांगें समझनी चाहियें। इसी प्रकार इसके शरीरके नीचे आगेकी तरफ भी एक कोष समूह है, जिसकी सहायतासे यह अपना भो-

जन ग्रहण करता है। उसे इसके हाथ कहने चाहियें। इन हाथ पैरोंको गति प्रदान करनेके लिए, इनके साथ जुड़ा हुआ जो कोष समूह है उसे पठ्ठा (Muscles) समझना चाहिये। इसी प्रकार उस कोषसमूहको, जिसका कार्य अपने बनाए हुए तरल पदार्थ द्वारा भोजन पचाना है, यकृत् (lever) और ज्ञान तन्तुओं द्वारा प्रत्येक कोष समूहसे सम्बन्ध रखनेवाले विशिष्ट कोष समूहको मस्तिष्क कहना चाहिये। मस्तिष्कके ज्ञान तन्तु भी कोषसमूहोंसे ही बने होते हैं। इस कीड़ेमें एक कोषसमूह ऐसा भी होता है, जिसका कार्य वंशवृद्धि करना है। इसको जननेन्द्रिय कह सकते हैं। इस विवरणसे विदित होता है कि इस जीवमें पाचन-क्रिया-कारी यकृत, गतिप्रवर्तक स्नायु-बन्धन, ज्ञानक्रियाके संचालक ज्ञानतन्तु और मस्तिष्क और वंशवृद्धिकारक जननेन्द्रियकी अच्छी वृद्धि हुई है।

इसी प्रकार जैसे जैसे प्राणियोंका क्रमशः विकाश होता गया है वैसे वैसे कोष समूहकी बनावटमें और कार्यविभागमें भी उन्नति होती गई है। हां कुछ ऊपरकी कोटिके शरीरोंमें आनेपर कोषोंको एक कार्य विशेष करना पड़ता है। इसको हम रक्त संचालन कह सकते हैं। प्रत्येक नियमित कार्य करनेवाले कोषोंको कोषजाल (tissue) कहते हैं। इन्हीं कोषजालोंसे जीवधारीके शरीरका प्रत्येक अङ्ग बना होता है। आशा है पाठक ऊपर लिखे हुए क्रमविकाशके सिद्धान्तानुसार अमीबासे मनुष्य-तकके शरीरकी रचनाका कौशल कुछ कुछ समझ गये होंगे।

अब हम शरीरकी त्वचा और रुधिरकी बनावट तथा कार्य्योंका वर्णन करेंगे, क्योंकि हमारे इस लेखका सम्बन्ध विशेषतर इन्हीं दोनों वस्तुओंसे है।

यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि त्वचासे हमारा सारा शरीर ढका रहता है और यही त्वचाका आवरण हमारे शरीरके कोष जालों (tissue) को स्थूल (आंखसे दिखानेवाले) और सूक्ष्म (अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे दिखनेवाले) असंख्य शत्रु कीटोंके हमलोंसे बचाता है। हमारी यह त्वचा भी असंख्य कोष समूहोंसे ही बनी है। इसके ऊपरकी तहके कोष अनेक कारणोंसे नष्ट होते रहते हैं और उनके स्थानोंमें नीचेके कोष समूहोंसे उत्पन्न हुए जीवित कोष समूह आ उपस्थित होते हैं। इस प्रकार कोषोंकी निरन्तरकी बाढ़से त्वचाकी मरम्मत हो जानेके कारण बाहरी शत्रुओंसे हमारी बहुत कुछ रक्षा होती है। क्योंकि आक्रमणकारी (parasite) शत्रुकोषोंको रुधिर तक पहुंचनेके पहिले इस त्वगावरणको छेदना पड़ता है। रुधिर ही इन शत्रुकीटोंके भोजनका खजाना है, और इसीकी ताकमें असंख्य जीव घूमा करते हैं। अतः यदि शरीरपर त्वचाका आवरण न होता तो प्राणियोंका जीवित रहना कठिन हो जाता। और साथ ही यदि इस आवरणकी पूर्वोक्त प्रकारसे मरम्मतका प्रबन्ध न होता तो भी बड़ी कठिनता होती। एक दफे त्वचामें क्षति हो जानेपर, घावके न भरनेके कारण, शत्रुकोषोंको भीतर प्रवेश करनेका हमेशाके लिए सुगम द्वार मिल जाता। परन्तु ईश्वरने हमारी रक्षाके लिए देहपर ऐसा कवच पहना दिया है कि जिससे इन शत्रुओंको भीतर प्रवेश करनेका बहुत ही कम मौका मिलता है। यह शत्रुकोष निर्बल होनेके कारण स्वयं इस आवरणको नहीं भेद सकते। परन्तु या तो रुधिर चूसनेवाले मच्छर आदि कीड़ोंके द्वारा त्वचामें छिद्र किये जानेपर या खाने पीनेकी सामग्रीके साथ शरीरमें प्रवेश करते हैं और रुधिरतक पहुँच जाते हैं।

(असमाप्त)

जौलाई मासकी 'ललिता'

का आशासे अधिक स्वागत हुआ। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तथा प्रो० विन्सेन्ट स्मिथ, M. A., I. C. S., Oxford के सारगर्भित विद्वत्ता पूर्ण लेख जिसने पढ़े कह उठा—"कौन कहता है हिन्दी पत्रिकायें गवेषणातीत लेखोंसे शून्य रहती हैं। श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी M. R. A. S., श्रीयुत कन्नोमल, एम० ए०, सैशन्स जज धौलपुर, श्रीयुत देवीप्रसादजी मुन्सिफ M. R. A. S., श्रीयुत Pro. V. V. Swami M. A., M. R. A. S. आदि विद्वानोंके मनोरञ्जक लेखोंको भी हिन्दी संसारने बड़ी ही आदरकी दृष्टिसे देखा। 'पति देवता' शीर्षक गल्प पढ़कर पाषाण-हृदय तक पिघल गये। 'बुद्धदेव' नामक लोम हर्षण उपन्यास और 'हत्यारी चिट्ठी' नामक लोमहर्षण उपन्यास की तो पहिली ही झलकने पाठकोंको इतना आतुर कर दिया है कि अभीसे इन साहित्य-रत्नों को पुस्तकाकार प्रकाशित कर देने के लिये आग्रह-पत्र आ रहे हैं। महात्मा गान्धी के रंगीन चित्रने तो बेतरह लोगोंको लुभाया है। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी आदि सभी भाषाओंके पत्र प्रशंसात्मक आलोचनायें कर रहे हैं। एक पुराने बंगाली साहित्य-सेवीने तो यह भविष्यद्वाणी की है कि 'राष्ट्रभाषा हिन्दीके मुकुटमें 'ललिता' कोहेनूरकी भांति चमकेगी'। यही कारण है कि पहिली संख्याकी प्रतियां बातकी बातमें निकल गईं। केवल थोड़ी सी कापियां बची हैं। प्रेमी गण शीघ्रता करें। 'ललिता' की बारह मासकी मुंह दिखाई ५) और एक बार की ।।) है, तीन मास तक निरन्तर दर्शन करनेपर भी यदि 'ललिता' चित्त न चुरावे तो मुंह दिखाई वापिस।

पत्र—व्यवहारका पता—

मैनेजर 'ललिता'—

सेवासदन—मेरठ।

काश-नाशक

खांसी बहुत बुरा रोग है। इससे असावधान होनेपर अंतमें क्षयी आदि बिकट रोगोंका शिकार बनना पड़ता है। जिसे दम्मा, ज्वर खांसी, स्वर भेद, कफ के साथ रक्त गिरना और कमज़ोरी हो उसके लिए काश नाशक अमृत के समान है। पीने में अमृतके ही समीन मीठा है। दाम ८ औंस की शीशी १।)

स्त्री संजीवनी

स्त्रियों के लिये प्रदर रोग से अधिक हानिकारक और कोई रोग नहीं है। प्रदरवाली स्त्रियों-को अनेक रोग घेरे रहते हैं। सन्तान पैदा करना तो उनके लिए असंभव ही सा हो जाता है। स्त्री संजीवनी पीनेसे हरतरहका प्रदर आराम होता है। जैसे मासिकधर्म एक माससे कम या अधिक समयपर होना, अधिक दिनों तक जारी रहना या महीनेमें दो तीन बार होना, श्वेत पीला काला और गरम रक्त जारी होना और बहुत थोड़ा मासिक होना आदि रोग एकदम दूर हो जाते हैं और सन्तान पैदा करनेकी शक्ति भी आ जाती है। मूल्य आठ औंस की शीशीका १।)

उदरामृत नमक

चाहे किसी तरहका पेटका दर्द क्यों न हो इसकी एक ख़ोराक तत्काल प्रभाव दिखलाती है। पेट फूलना; पेटका दर्द; वायुविकार, मन्दाग्नि, अनपच, खट्टी, डकार आदि पेट सम्बन्धी रोगों की यह रामबाण औषध है। दाम बड़ी शीशी १), दर्जन ६)। छोटी शीशी ।), १ दर्जन २।)

मिलने का पता—

मैनेजर लक्ष्मी औषधालय, चौक, गया

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-) ७-केला—मूल्य -) ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

Telegram to be addressed thus :—
"DR. BHARGAVA",
ALLAHABAD.

Ladies and Gentlemen desirous of gaining my advice in any case of Diseases, whether Acute or Chronic, should give a plain statement of their afflictions, when contracted, the present symptoms, &c., in fact everything should be made known to me precisely as would occur by personal interview.

All Letters will be treated as strictly Private and Confidential.

Invalids, on a visit to Allahabad, may call on me whenever convenient.

Office Hours, 6 to 8 in the morning and 4 to 5 in the Evening.

ADDRESS :—
DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,
235, BAHADURGANJ, ALLAHABAD, U. P.

परिषद्से प्राप्य अन्य पुस्तकें

१—बच्चा ... ... ॥=)
२—मारीभ्रम ... ... १)
३—हमारे शरीरकी रचना भाग १ २)

मंगानेका पता—मंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—
सुख-संचारक कंपनी मथुरा

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषत्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ४२ | Reg. No. A-708
भाग ७ | सिंह १९७५ । सितम्बर १९१८ | संख्या ६
Vol. VII. | No.6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३ ।] | एक प्रतिका मूल्य ।)

हिन्दू मात्रके जीवनका आनन्द ! देशभक्तोंको अमृतके समान ! ! स्वराज्य वादियोंका सच्चा सहायक वीर मित्र ! ! !

सच्चे देशभक्त महात्मा गान्धी और लो० तिलककी

पवित्र आत्माके तुल्य

सचित्र सुन्दर दृढ़ प्रतिज्ञ निर्भय राष्ट्रीय मासिक पत्र ।

देश-भक्त

बड़ी ही सजधजसे चित चुरानेवाले सामयिक चित्रों व लेखों सहित बस प्रकाशित होनेवाला ही ।

देश-भक्तका सच्चा उद्देश

'सच्चा निर्भय दृढ़ प्रतिज्ञ हूं, देश भक्त है मेरा नाम,' । देश प्रेममें प्राण गंवाना, मुख्य धर्म है मेरा काम ।

देश भक्तका सदैव निर्भय होकर सामयिक कठिनाइयों व कष्टों तथा दुःखोंको सहन कर देशकी सेवा करना तथा दुष्टोंकी निर्भीकता पूर्ण पोल खोलना

मुख्य कार्य होगा ।

अन्य सभी प्रकारके लेख व कविताओंका संग्रह रहा करेगा । यदि आप जीवित निर्भीक लेख पढ़ना चाहते हैं तो ग्राहक श्रेणीमें नाम लिखाइये ।

देश भक्तकी संख्यापर हम तो तन मन और धन सब कुछ लगाते हैं । किन्तु सर्व साधारणसे मात्र वार्षिक ३) और नमूनार्थ एक कापी अवलोकनार्थ मुफ्त भेजते हैं । नमूना मंगाकर पढ़िये सिर्फ ग्राहकोंको स्वराज्य वीणा व तीन रंगका स्वराज्य केलेंडर भी मुफ्तमें मिलेगा ।

कवियों व लेखकोंको जोशीले जीवित लेख व कविताएँ भेज पुरस्कार लेना चाहिए ।

सच्चे विज्ञापन दाताओंको विज्ञापन शीघ्र भेज लाभ उठाना चाहिए ।

पता—मन्त्री देश भक्त, सिरसागंज—मैनपुरी (यू. पी.)

विज्ञापन छपाईके नियम ।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास	...	...	५)
प्रति पृष्ठ २ कालम	...	...	४)
१ ,,	...	...	२।)
आधा ,,	...	...	१।)
आधे कालमसे कमका	...	...	१)

२—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा । जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें ।

३—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी ।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालेको प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा ।

५—विज्ञापन बँटाईकी दर क्रोड़पत्र देखकर बतायी जायगी ।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषद् ,
प्रयाग ।

बच्चा

[ले० कप्तान कुरेशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम. ए.

...का जड़...

...शभक्तो ! आपको मालूम है कि सं० १९११ ...१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये । इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये ।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी । अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है ।

अनुवादकको पंजाब के छोटे लाट ने १००) इनाम दिया है ।

पुस्तकका मूल्य १) , विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥।=) में मिलेगी ।

मंगानेका पताः—

प्रोफ़ेसर करमनारायण,
एम. एस-सी.,
...प्रयाग

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ७ } कन्या, संवत् १९७५। सितम्बर, सन् १९१८। { संख्या ६

मंगलाचरण

जयति सुमति-सम्पन्न सुजन, जग-धन्य जन्म-धर
सुचि-सनेह-गुन-गेह, ध्येय-ध्रुव, धीर-बीर-बर
त्यों नित-दया-द्रवन्त सन्त, द्रुत-दुरित-अन्त-कर
जग-जीवन,जग-बन्धु, जटिल-छल-छन्द-दुन्द-हर
त्यों ललित-कलित-कौशल-कलादिक-दिगन्त-
दीपित-करन
विज्ञान-बीर बिजयन्ति जग, बिबिध-विघ्न-बाधा-हरन

श्रीपद्म-कोट, प्रयाग, }
११-६-१८ }
—श्रीधर पाठक

—:०:—

आत्म और अनात्म

[लेखक-प्रोफेसर रामदास गौड़, एम्० ए०]

वस्तुकी सत्तापर विचार करते हुए हम दृश्य और द्रष्टाकी परिभाषा समझा चुके हैं। यह भी हमने दिखाया है कि साधारणतः जिसे हम चेतना कहते हैं वह समस्त इन्द्रियोंमें व्यापक है। यद्यपि बहुत से लोग उसे साधारणतः आत्मा ही समझते हैं, तथापि हमने यह भी दिखाया है कि चेतना केवल अपने आपेका रूप नहीं है, बल्कि वाह्य वस्तु और आत्मसत्ता दोनोंके संसर्गका फल है। बल्कि यों कहना भी ठीक होगा कि जाननेकी क्रिया जो समस्त ज्ञानेन्द्रियोंमें मणिमालाके भीतर पिरोये हुये सूतकी तरह फैली हुई है इसी चेतनाका आविर्भाव है और यह चेतना यद्यपि वाह्य वस्तुसे सम्बन्ध रखती है तथापि इसे यदि हम स्वतः जीव अथवा आत्माका अंश कहें तो अनुचित न

Philosophy दर्शन]

होगा। किसी किसी पक्षके वेदान्तियोंने जीवको आत्माका अंश कहा भी है। जिस तरह घड़ेके भीतरवाला आकाश घटाकाश और मठके भीतर-वाला आकाश मठाकाश कहलाता है—यद्यपि आकाश आकाशमें कोई भेद नहीं है, आकाश वस्तुतः एक सर्वत्र ओतप्रोत भावसे व्यापक पदार्थ है—उसी तरह आत्माकी सत्ता एक ही है, परन्तु अनेक शरीरोंमें इन्द्रियोंके द्वारा परिच्छिन्न होनेके कारण अलग अलग जीव माना जाता है और अनुभव भी अलग अलग ही होता है। यदि हम इस व्याख्याको मान लें तो यों कह सकते हैं कि जीव वा चेतनाकी सत्ता यद्यपि आत्माकी सत्तासे सर्वथा भिन्न नहीं है तथापि बाह्य वस्तुकी सत्ताके संसर्गसे सविकार है। वा यों भी हम कह सकते हैं कि जैसे यह शरीर भिन्न भिन्न तत्त्वोंसे बना हुआ है उसी तरह जीव भी आत्म और अनात्म इन दो तत्त्वोंकी सम्मि-लित दशा है। यहाँ तक हम आत्म और अनात्म, द्रष्टा और दृश्य इन दोनोंको अलग अलग मानते आये हैं, इसीलिए जीवकी परिभाषा भी हमने इसी मन्तव्यके अनुसार की है। परन्तु अब हम इस प्रश्न-पर विचार करेंगे कि आत्म और अनात्मकी अलग अलग सत्ता है अथवा एक है—(१) जिसे हम अनात्म कहते हैं वह एक ही सत्ता है अथवा भिन्न भिन्न कई सत्ताएँ हैं, (२) आत्माकी एक ही सत्ता है अथवा अनेक।

जिसे हम अनात्म कहते हैं वह एक ही सत्ता है अथवा भिन्न भिन्न कई सत्ताएँ हैं?

वस्तुकी सत्तापर विचार करते हुए हम यह दिखा आये हैं कि हमारी इन्द्रियोंकी गवाही वस्तुके विषयमें परिच्छिन्न है। जो कुछ हम जानते हैं वह वस्तुके गुण हैं और इन गुणोंका आविर्भाव हमारी आत्मसत्ताके संसर्गसे अथवा क्रिया प्रक्रियासे होता है। कमलके फूलमें उसका रंग, कोमलता और उसकी पंखड़ियोंका आकार आदि कमलके गुण हुए। यदि वस्तु सत्ताको हम व मानें और कमलके समस्त गुणोंको क तो कमलका सगुण रूप हमारे लिए क+व हुआ। कमलसे भिन्न यदि हम खड़िया मिट्टी ले लें तो खड़िया मिट्टीके गुण हम कमलसे भिन्न पाएँगे। परन्तु वस्तुकी सत्ता एक ही मानते हुए यदि हम वस्तुको फिर व कहें और खड़ियाके भिन्न गुणोंके समूहको ख तो खड़ियाका सगुण रूप हमारे लिए ख+व हुआ। इसी रीतिसे गंधक-के भिन्न गुणोंके लिये ग मान लें तो गंधकका सगुण रूप ग+व हुआ। इन तीनों उदाहरणोंमें अर्थात् क+व=कमल, ख+व=खड़िया मिट्टी, ग+व=गंधक, इन समीकरणोंमें हमने वस्तुकी वास्तविक सत्ताको एक ही माना है, क्योंकि समस्त गुणोंसे परे, गुणातीत और परम सत्ता एक ही हो सकती है। हम दो पदार्थोंमें भेद कैसे करते हैं और उन्हें कैसे पहचानते हैं? उनके गुणोंके भेदसे। शब्दमें, स्पर्शमें, रूपमें रसमें, गन्धमें, भारमें हम भेद देखकर ही पदार्थ पदार्थमें भिन्न भिन्न गुणसमूहोंकी कल्पना करते हैं और अन्तर समझते हैं। यह सब गुण इन्द्रियोंके विषय हैं। इन्द्रियके विषय आत्म और अनात्मके संसर्गसे, उन दोनोंकी पारस्परिक क्रिया प्रक्रिया-से, प्रकट होते हैं और गुणोंमें भेद होनेका कारण इस प्रक्रियामें वा संसर्गमें न्यूनाधिक्य और तारतम्य ही है। यदि हम थोड़ी देरके लिए यह भी मान लें कि भिन्न भिन्न वस्तुओंकी सत्ता भिन्न भिन्न है तो हमको अफलातूनकी तरह मानना पड़ेगा कि वास्तविक सत्ता भी अनेक प्रकारकी है। अच्छा अब यह सोचना चाहिये कि हम दो वस्तुओंमें भेद कैसे समझते हैं? गुणोंके भेदसे। यदि हम भिन्न भिन्न गुणातीत सत्ताएँ मानें तो हमको भिन्न भिन्न सत्ताओंमें अन्तर समझनेके लिए भिन्न गुणोंका आरोपण करना होगा। परन्तु यह कैसे हो सकता है, क्योंकि सत्ताओंको गुणातीत अर्थात् गुणोंसे परे तो हम पहले ही मान चुके हैं और गुणोंका

भाव और अभाव एक ही देश और कालमें होना असम्भव कल्पना है। यही बात है कि हम वस्तु सत्ताको एक ही गुणातीत पदार्थ माने बिना नहीं रह सकते। अर्थात् यदि ऊपरवाले समीकरणोंमें प्रत्येक दशामें हम वस्तुसत्ताको भिन्न मानें तो समीकरणोंका रूप यह होगा—

क + व' = कमल
ख + व'' = खड़िया मट्टी
ग + व''' = गन्धक

इन समीकरणोंमें व', व'', व''' तीनों भिन्न भिन्न वस्तु सत्ताएँ हैं। पाठक देख सकते हैं कि इन्हें भिन्न माननेकेलिए हमको तीन भिन्न भिन्न चिह्नोंका प्रयोग करना पड़ा है। तात्पर्य यह कि इन तीनोंमें परस्पर भेद समझनेकेलिए हमको भिन्न भिन्न चिह्नों अर्थात् भिन्न भिन्न गुणोंका आरोप करना पड़ा है। अथवा पहले गुणातीत वा गुणोंसे परे मानकर अब फिर उन्हें सगुण बनाना पड़ा है। और दोनों बातें एक साथ हो नहीं सकतीं। इसलिए वस्तुकी भिन्न भिन्न सत्ताएँ मानना असंगत और अयुक्त है। निष्कर्ष यह कि जिसे हम अनात्म कहते हैं वह एक ही सत्ता है, भिन्न भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं।

आत्माकी एक ही सत्ता है अथवा अनेक ?

हम देखते हैं कि संसारमें चलने फिरनेवाले और स्थिर रहनेवाले, चर और अचर, दोनों प्रकारके असंख्य जीव हैं। यदि एक द्रष्टा है तो दूसरा दृश्य है। दृश्यकी कोटिमें जीव वा चेतन भी, जो अन्य शरीरोंमें है, सम्मिलित है। जीव जीवमें और चेतन चेतनमें हम अन्तर देखते हैं। परन्तु इन भेदोंका कारण क्या है ? वही गुण। गुणोंके भेदसे ही हम एक प्राणीके चेतनसे दूसरे प्राणीके चेतनमें अन्तर मानते हैं। बानर, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल और ब्राह्मण सबमें चेतनता है, परन्तु इनमें परस्पर गुणोंके कारण अन्तर है। यदि हम उसी तर्कसे काम लें, जिसे हम ऊपर वस्तु सत्ताकी एकता सिद्ध करनेमें प्रयुक्त कर चुके हैं तो हम उसी प्रकार दिखा सकते हैं कि आत्मसत्ताएँ भिन्न नहीं हैं वरन् सत्ता आत्माकी एक ही है और भेदोंका कारण केवल गुण ही हैं, जो आत्म और अनात्मके संसर्गमें न्यूनाधिक्य वा तारतम्यसे घटित होते हैं। ऊपर जो रीति हम दरसा चुके हैं उसके दोहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

आत्म और अनात्मकी अलग अलग सत्ता है अथवा एक है ?

हम अबतक जिस प्रकार अपना विचार प्रकट करते आये हैं उसमें आत्म और अनात्मकी सत्ताएँ अलग अलग न मानते तो तर्क वा युक्तिको अच्छी तरह व्यक्त करना असम्भव हो जाता। अब हमें यहाँ यह विचार करना है कि आत्म और अनात्म क्या वस्तुतः दो भिन्न भिन्न सत्ताएँ हैं ? इस प्रश्नका विचार करनेमें यह न भूलना चाहिये कि हम दृश्यको बराबर अनात्म कहते आये हैं और द्रष्टाके नाते गुणोंके द्वारा वस्तुओंमें भेद देखते दिखाते आये हैं। जब गुणोंका ज्ञाता द्रष्टा है तब स्वयं द्रष्टा द्रष्टामें भेद अथवा गुणोंके समूहके कारण अन्तर देखना किसी अन्य द्रष्टाका व्यापार होगा। परन्तु यदि हम इन द्रष्टाओंको उस अन्य द्रष्टाकी दृष्टिसे दृश्य मान लें तो उस अन्य द्रष्टाकी सत्तापर विचार करनेकेलिए भी अन्यान्य द्रष्टाओंकी आवश्यकता होगी और यह विचार शृङ्खला अनन्त और असमाप्य हो जायगी। इसलिए हमें द्रष्टा और दृश्यके सम्बन्धमें विचार करते हुए और किसी युक्तिका आश्रय लेना पड़ेगा।

जाग्रत जगतमें हम द्रष्टा हैं और जगत दृश्य है, हम अपने द्रष्टापनको भी मानते हैं और जगतको दृश्य होना भी मानते हैं, गम्भीर विचार करनेसे दोनोंको मानने वा जाननेवाला सम्भव है कि हमारी अहन्तासे भी अधिक भीतरी सत्ता हो। हम सपनेमें देखते हैं कि हमारा शरीर अद्भुत आकारका हो गया है और हमारे सामने हिमालय पहाड़की बड़ी ऊँची चोटी आकाशको चूम रही है। सपनेमें यही विश्वास होता है कि यह

पहाड़ अनादि कालसे खड़ा है और मैं भी, जो इसका द्रष्टा हूँ, अनादि कालसे हूँ। द्रष्टा और दृश्य दोनों ही सपनेमें सतत वर्त्तमान जान पड़ते हैं। सपनेके जगतका स्रष्टा और सपनेके द्रष्टाका भी स्रष्टा कोई ऐसा अगोचर और कल्पनातीत सत् है, जो न केवल स्वप्नावस्थाको उत्पन्न करता है, बल्कि सुषुप्ति अवस्थाके सुखका भी उत्पन्न करनेवाला है और जो केवल जाग्रतके चेतन वा द्रष्टा तथा जाग्रतके दृश्यका आधार ही नहीं है, वरन् तुरीयावस्था वा निर्विकल्प समाधिकी दशामें जबकि चेतना वा अहन्ताका अभाव हो जाता है, तब भी शरीरके समस्त अविज्ञात कर्मोंका नियमन करता रहता है।

शरीरमें रहनेवाला चाहे कुछ घंटोंकेलिए गाढ़ी नींदमें सोकर अपनी सभी इन्द्रियोंके व्यापार बंद रखे, परन्तु शरीरके भीतर अनेक काम ऐसे हैं, जिन्हें वह कभी बन्द नहीं कर सकता। ज्ञातृत्वकी दृष्टिसे हमारे कर्म्म दो प्रकारके होते हैं। ज्ञातकर्म्म और अविज्ञात कर्म्म। ज्ञातकर्म्म वह सब काम हैं, जिन्हें हम अपने संकल्पसे करते हैं। इन्द्रियोंके जितने व्यापार हैं सब ज्ञातकर्म्मकी कोटिमें आते हैं। अविज्ञातकर्म्म शरीरके भीतरके वह व्यापार हैं, जो निरन्तर बिना हमारी छेड़छाड़के होते रहते हैं, चाहे हम उन्हें जानें वा न जानें। हम निरन्तर साँस लेते रहते हैं। हमारा हृत्पिण्ड सदा एक नियमित परिमाणमें खून उछालता रहता है, पम्पका काम बराबर होता रहता है। शरीरके मांस तंतु बनते बिगड़ते रहते हैं। जठराग्नि और आमाशय और पक्वाशयके रस पाचनक्रियामें निरन्तर लगे रहते हैं। वृक्क या गुर्दा अपना काम करता रहता है। शरीरके रोमकूप स्वेदन जारी रखते हैं। सारे शरीरमें फैली हुई धमनियों और शिराओंमें रक्त निरन्तर बहता रहता है और इसी रक्तस्रोतमें असंख्य असंख्य सूक्ष्म प्राणी देवासुर संग्राम करते रहते हैं। इतने इतने विविध व्यापार और ऐसे बड़े बड़े मारके इसी देहमें सर होते हैं, पर इस जाग्रत जगतके द्रष्टाको बिलकुल पता नहीं होता। यही सब अविज्ञात कर्म हैं और कर्म अकारण नहीं हो सकते। ज्ञात कर्मोंकेलिए जाग्रत जगतका चेतन वा द्रष्टा जिम्मेदारी लेनेकेलिए तैयार है। इन कामोंको करे या न करे, या जैसे चाहे वैसे करे, उसको सोलह आना अख़्तियार है, पर अविज्ञात कर्म्मोंकेलिए चाहे वह कर्त्ता बनना स्वीकार भी कर ले और कहे कि मैं साँस लेता हूँ, मैं रक्तका प्रवाह करा रहा हूँ, मैं खाना पचाता हूँ इत्यादि, तोभी वह पूरा पूरा जिम्मेदार इसलिए नहीं हो सकता कि यह सब काम उसके काबूके बाहर हैं। वह इन्हें अपनी इच्छानुकूल न तो एक मिनिटके लिए बन्द कर सकता है और न किसी रुके हुए काम को अपनी इच्छासे जारी कर सकता है।* और जब इस शरीरके यंत्रमें ऐसा विकार उत्पन्न हो जाता है कि इस शरीरका रहना ही असम्भव हो जाता है तो इस जाग्रत जगतका द्रष्टा चेतन इस शरीरमें रहनेकी इच्छा होते हुए भी बलात् निकाल दिया जाता है। सारांश यह कि द्रष्टा भी किसीकी सृष्टि है और दृश्यके ऊपर उसका अधिकार परिमित है। यद्यपि शरीर उसका दृश्य है तथापि इस शरीरका भी नियन्ता कोई और है औरवह "और" यह द्रष्टा नहीं है।

* भारतके एक प्रसिद्ध योगीराज अगम्य गुरु योगका एक अद्भुत चमत्कार दिखाया करते थे। संवत १९५५ में विलायतके प्रो० मोक्षमूलरके सामने उन्होंने आधे मिनिटतक अपने हृदयकी गतिको रोक रखा था। यह सभी जानते हैं कि एक सेकंडके लिए भी धुकधुकी बन्द हो जानेसे शरीरका सम्बन्ध छूट जाता है, परन्तु अगम्य गुरु यह तमाशा अक्सर दिखाया करते थे। लेखकने स्वयं देखा है कि एक चपरासी अपने कान उसी तरह हिला लिया करता था, जैसे पशु हिलाते हैं। उसने अभ्यास किया था। इन बातोंसे प्रकट होता है कि अभ्याससे अविज्ञात कर्म्मोंपर किंचित् अधिकार पाना संभव है और अपनी सुषुप्त शक्तियोंको भी जाग्रत कर सकते हैं। जीवका अंश होना इन बातोंसे प्रकट होता है। —ले०

हम अन्यत्र कह आये हैं कि जाग्रत और स्वप्नावस्थामें दृश्य और द्रष्टा दोनोंके दोनों किसी अन्यतम भीतरी आपेकी सृष्टि हैं। स्वप्नमें भी हम जब देखते हैं कि कोई हमारी गरदन मारता है, हमारा धन छीन ले जाता है, हमें कष्ट देता है, या जिस वस्तुकी हम इच्छा करते हैं वह हमसे दूर हटती जाती है, इन सभी अनुभवोंमें द्रष्टाकी लाचारी प्रत्यक्ष है और स्वप्नकी सृष्टिका रचयिता द्रष्टासे भिन्न कोई दूसरा मालूम होता है। परन्तु जब हम सपनेकी बात जागतेमें याद करते हैं या जब हम सपनेमें ही जान जाते हैं कि सपना देख रहे हैं तो हमें यही जान पड़ता है कि सपना भी हमारी कल्पनाका ही फल था और हमारी भीतरी इन्द्रियाँ मन बुद्धि और अहंकार काम कर रही थीं। हम चाहे इन बातोंको कितने ही निश्चयसे जान जायँ, यह हमारी शक्तिके बाहर है कि हम अपनी स्वप्नावस्थाको जब चाहें नष्ट कर दें और जब जीमें आये निर्म्माण कर लें। इससे स्पष्ट होता है कि इन्द्रियोंपर भी हमारा अधिकार पूरा पूरा नहीं है। फिर भी इस अज्ञात नियन्तासे जो हमारी इन्द्रियों और शरीरके समस्त अविज्ञात व्यापारोंपर अपना अधिकार रखता है हमारा बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध जान पड़ता है। सब तरहके कर्मोंमें उसका और हमारा साझा है। बल्कि यों कहना चाहिये कि वे उसके न केवल हम कोई कर्म्म करनेमें अशक्त हैं, बल्कि हमारा होना भी उसके बिना असम्भव है। द्रष्टाका आधार वा मूल वही एक सत्ता है।

इसमें तो सन्देह नहीं कि भिन्न भिन्न शरीरोंकी अहन्ता वा चेतना उसी तरह भिन्न हैं, जिस तरह दृश्य जगतमें वस्तुएँ भिन्न भिन्न हैं। आजकल वैज्ञानिक प्रयोगों और परीक्षाओंसे यह भी सिद्ध हुआ है कि मरनेके बाद प्राणी प्रेतावस्थामें रहता है और उसकी अहन्ता स्थूल शरीरके नष्ट होनेपर भी बनी रहती है और उस अहन्ताकेलिए कोई सूक्ष्म देह होता है जो हमारी इन्द्रियोंसे अगोचर है। ऐसी दशामें प्रेतको मरनेके पहलेकी बातें उसी तरह याद रहती हैं जैसे जीवित दशामें भूतकालकी घटनाएँ। अभीतक किसी वैज्ञानिक परीक्षासे यह प्रत्यक्ष नहीं हुआ है कि यही प्रेत अहन्ता किसी नये स्थूल शरीरमें प्रवेश करती है, जिसे जन्मान्तर कहते हैं। अहन्ता वा चेतना ही स्मृतिका आधार है। कहीं कहीं ऐसा सुननेमें आया है कि मनुष्यने अपने पूर्व जन्मकी घटना भी ठीक ठीक बतायी है। परन्तु ऐसे साक्षियोंकी संख्या अत्यन्त थोड़ी है। या तो पुनर्जन्म इतने अधिक कालतक प्रेतावस्थामें रहनेके बाद होता है कि स्मृति नहीं रह सकती अथवा शरीरान्तर होनेसे जैसे सब नयी इन्द्रियाँ मिलती हैं वैसे ही अहन्ता भी नयी मिल जाती है। दोनों बातें सम्भव और संगत जान पड़ती हैं। यदि प्रेतावस्थामें यह अहन्ता एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाती है और दुःख सुख हर्ष, अमर्षका अनुभव करती है तो किसी सूक्ष्म शरीरका होना अनिवार्य्य है। हमारे शास्त्रोंमें सूक्ष्म शरीर माना ही गया है और उसके अतिरिक्त कुछ दिनों तक रहनेवाला स्थूल शरीरका प्रतिरूप लिंग शरीर भी माना जाता है। सम्भव है कि स्थूल शरीरकी मृत्युके अनन्तर किसी अहन्ता वा चेतनको लिये हुए कोई सूक्ष्म शरीर वा कोष अपने चारों ओर नये स्थूल शरीरकी रचना करे और ऐसी दशामें अपने पहलेके स्थूल शरीरके अनुभवोंको याद रखे। इस तरह पूर्वजन्मकी बातें याद होना किसी मनुष्यमें सर्वथा असम्भव नहीं है। हमारे शास्त्रोंमें जन्मान्तरके सिद्धान्तोंमें कारणशरीरको जन्मान्तरका कारण बतलाया है। यह कारणशरीर सूक्ष्मशरीरसे भी अधिक सूक्ष्म और बीज रूप माना जाता है और कहते हैं कि इसमें ही जन्म जन्मान्तरोंकी अनन्त अनन्त घटनाओंका परिणामरूप अनुभव बीज रूपसे इकट्ठा रहता है, जो अगले जन्ममें स्वाभाविक वा प्राकृतिक प्रवृत्ति और निवृत्तिका रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसी दशामें घटनाओंका

याद न रहना बिलकुल स्वाभाविक है। जो हो घटनाओंका ज्ञान और उनका अनुभव चेतनका व्यापार है।

कई पक्ष इस चेतनको ही आत्मा मानते हैं, परन्तु चेतनकी भिन्न भिन्न दशाएं और भिन्न शरीरोंमें उसकी भिन्न मात्राएँ देखकर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि चेतनको जैसा हम समझते जानते बूझते हैं वैसा ही उसका सम्यक् रूप नहीं है। जिस प्रकार हमारे अनन्त जीवनमें हमारी सौ वर्षकी आयु अनन्त जगतमें एक विन्दुके समान भी नहीं है, अथवा यों कहिये कि शून्यके बराबर है, उसी तरह जिस चेतनको हम जानते समझते हैं वह अनन्त चिदात्माका ऐसा छोटा अंश है, जिसे शून्यकी बराबरी भी नहीं मिल सकती। ऐसे अपरिमित छोटाईवाले अंशको अलग देखते हुए सम्पूर्ण कह देना सम्भव नहीं है। साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि हम किसी ऐसी सत्ताका विचार नहीं कर रहे हैं, जिसके टुकड़े हो सकते हों। हम आत्मसत्ताको एक दिखा आये हैं, इसलिए यहाँ कह देना अयुक्त न होगा कि आत्मारूपी महासागरमें भिन्न भिन्न चेतनाएँ तरंगोंकी हैसियत रखती हैं।

यहाँ तक हम जो विचार कर आये हैं, उससे वस्तुकी सत्ता और आत्माकी सत्ता इन्हीं दोनोंकी कल्पना स्थिर हुई है। परन्तु अभी तक हमने यह विचार नहीं किया है कि वस्तुकी सत्ता और आत्माकी सत्ता एक ही है वा भिन्न। हम यह दिखा आये हैं कि गुणोंका समूह चाहे कितना ही भिन्न हो और वस्तुएँ कैसी ही अलग अलग दीखती हों, पर सत्ता एक ही है और अनन्त है, इसी प्रकार आत्मकी सत्ता भी अनन्त ही है। आत्म और अनात्म दोनोंकी सत्ताएँ अनादि, अनन्त, अपार, अखण्ड, अचिन्त्य, गुणातीत और कल्पनातीत हैं। यदि हम इन अज्ञातृत्व और निषेधवाचक शब्दोंको गुण मानलें तो आत्म और अनात्मकी सत्ताएँ भिन्न नहीं रह जातीं। अर्थात् हमें लाचार हो दोनोंको एक ही मानना पड़ता है। जब आत्म और अनात्म दोनों एक ही हैं, सत् एक ही है, तब इस भेद-भाव-सम्पन्न संसारकी स्थिति कैसे है? वेदान्ती लोग इस गुथीको सुलझानेके लिए यह युक्ति देते हैं कि जैसे समुद्रमें तरंगोंके संघर्षसे फेन बन जाता है, वैसे ही इस सत्ताके महासमुद्रमें निरन्तर तरंगोंके उठनेसे फेन रूपी संसार बनता बिगड़ता रहता है। यह युक्ति बहुत ही सुन्दर है, क्योंकि अबतक विज्ञानका जितना अनुशीलन हुआ है उससे यही सिद्ध होता है कि वस्तुतः यह समस्त विश्व तरंगोंका ही फल है। वेदान्त तरंगोंको दृष्टान्तके रूपमें पेश करता है, परन्तु विज्ञान कहता है कि यह कोरा दृष्टान्त नहीं है। वस्तुतः विश्व तरंगमय है। विश्वरूपी पटके तन्तु तरंग ही हैं। हम जिन आठों विषयोंको गिना आये हैं, वह भी पदार्थोंमें तरंगोंके उठनेसे और हमारे नाड़ी जालपर उनका प्रभाव पड़नेसे आविर्भूत होते हैं। जब विश्वकी सत्तामें तरंगोंका इतना बड़ा हिस्सा है तो समुद्र और तरंगकी युक्ति बहुत ही ठीक बैठी ही चाहे। बात यह है कि सतत परिवर्तनशील विश्वका होना परमसत्ताका स्वभाव है, उसकी प्रकृति है। यही उसका होना है। विश्व कोई अलग सत्ता नहीं है, जिसके कारणपर विचार करनेकी आवश्यकता हो। यह परम सत्ता स्वयं कारण और स्वयं कार्य्य है। वेदान्तकी परिभाषामें इसे अभिन्ननिमित्तोपादान-कारण कहते हैं। इसीलिए जब हम कार्य्य कारणका सम्बन्ध ढूंढ़ने लगते हैं तब अन्त ही नहीं मिलता। कार्य्य कारणकी शृंखला मालाकार या चक्राकार हो जाती है। छः का अंक बनानेमें दो और तीनसे गुणा करना पड़ता है, इसमें दो और तीनमें कार्य्य-कारण सम्बन्ध नहीं है। तीनका अधिकार अधिक और दो का अधिकार कम नहीं है। छः के अंकमें दो और तीन दोनोंके दोनों समान भावसे व्यक्त हैं। छः की सत्तासे भिन्न नहीं हैं। परन्तु कल्पना द्वारा छः के अंश कहे जाते हैं। ऐसी ही दशा आत्म

और अनात्मकी है। परमात्मा या परम सत्ता एक ही है। पूर्ण है। आत्म और अनात्म दोनों गुणकोंका उसमें समावेश है, परन्तु स्वतः पूर्णरूपसे वह वह गुणातीत और एक ही है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ †

सफल कौन होता है* ?

भादोंका महीना है। स्मार्तोंकी जन्माष्टमी कल हो गयी, परन्तु वैष्णव लोग आज व्रत रखेंगे और कृष्ण-जन्मका उत्सव मनावेंगे। इसी लिए स्कूल ११ बजे ही बंद हो गया, यद्यपि बहुतसे स्कूलोंमें इस उत्सवके लिए दो दिनकी और कहीं कहीं तीन दिन तककी छुट्टी होती है। कल रातसे ही गरमी कुछ बढ़ गयी थी, जो आज १२ बजे तक वैसी ही रही। इसके थोड़ी ही देर बाद एकाएक कुछ ठंडी हवा चलने लगी, आकाशमें बादल घिरने लगे और आध ही घंटेमें इतनी घटा छा गयी कि अन्धकारके मारे लिखना पढ़ना असम्भव हो गया। पौन बजेके लगभग कुछ बूंदा बांदी होने लगी और एक बजेसे पानी ज़ोरसे बरसने लगा। उस समय कोई काम करनेको जी नहीं चाहता था। बस बार बार यही मनमें आता था कि लिखना पढ़ना छोड़कर बरसते पानीका दृश्य देखा जाय।

इसी बीचमें एक तीन बरसकी लड़की आयी और ऊधम मचाना शुरू कर दिया। कभी तो छतके पनारेसे गिरते हुए पानीकी मोटी धाराको पकड़नेके लिए वह बाहर निकलना चाहती थी, कभी बरसातीसे गिरती हुई बूंदोंको हाथपर रोकती थी। वह तो थोड़ी देर तक ऐसा करके अन्दर चली गयी और मैं बैठकके द्वारपर खड़ा होकर सामने बहते हुए पानीका दृश्य देखने लगा। सामने थोड़ी सी खुली जगह है, जहां दक्खिनकी ओरसे खपरैलका पानी, पूरबकी ओरसे ऊंची छतका पानी और पच्छिमकी ओरसे बैठककी छतका पानी आकर मिलता है और सब एक होकर उत्तरकी ओर कुछ दूर बहकर एक बड़ी नालीमें जा गिरता है। इस नालीका पानी सड़ककी नालीमें, सड़ककी नालीका सई नदीमें बहता हुआ गोमतीमें और गोमतीका गंगामें बहता हुआ समुद्रमें जाकर मिल जाता है। चारों ओरसे आते हुए और एक ही रास्तेसे बहते हुए पानीको देखकर तरह तरहके भाव मनमें उठने लगे। कभी यह प्रश्न मनमें उठता था कि भिन्न भिन्न स्थानोंमें गिरा हुआ पानी एक जगह क्यों चला आता है और यदि चला भी आता है तो क्या अन्य अन्य रास्तोंसे आई हुई धाराओंमें मुठभेड़ नहीं होती"। मनुष्य समाजमें तो जहां दो तीन संस्थाएं खड़ी हुईं, तहां एक दूसरीकी निन्दा करने लगती हैं, जिसका प्रधान कारण यह होता है कि कहीं ऐसा न हो कि अमुक संस्था अधिक नाम पैदा

---

† जैसे दो तरंगोंके संघर्षसे फेन प्रकट हो जाता है, उसी तरह प्राच्य दर्शनों और पाश्चात्य विज्ञानोंके संघर्षसे लेखकके मनमें अरसेसे कुछ विचार उठ रहे थे, जिन्हें अब पाठकोंके सामने रखनेका साहस हुआ है। इन विचारोंमें मौलिकता कुछ भी नहीं है, विविध विचारोंका एकीकरण और संग्रहमात्र है। यह ठीक ठीक याद नहीं कि किन किन वैज्ञानिकों और दार्शनिकोंके अनुशीलनसे यह विचार उत्पन्न हुए, इसलिए किसीका हवाला नहीं दिया गया और न किसीके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की गयी। अधिकांशमें लेखक ब्रह्मलीन स्वा० राम तीर्थका कृतज्ञ है, जिनके लेखोंसे बहुत दिन हुए लेखकने बहुत लाभ उठाया है।

—रा० गौड़

* नागरी प्रचारिणी सभा रायबरेलीके अगस्त १९१८ के मासिक अधिवेशनके लिए लिखा गया था, परन्तु पढ़ा नहीं गया। -ले०

करले और मेरी संस्था पीछे रह जाय, फिर तो लोग मेरी ही बुराई करने लगेंगे। इतना ही नहीं कभी कभी तो एक ही संस्थाके लोगोंमें मत भेद खड़ा हो जाता है, जिस कारण एक दो नहीं सैकड़ों संस्थाएँ दो चार बरस तक अपना अपना काम करके टूट जाती हैं और कुछ टूटती नहीं तो मृतप्राय ज़रूर हो जाती हैं, जिनके लिए ज़रूरत यह पड़ती है कि किसी तरह उनका जीवन बना रहे, क्योंकि न मालूम किस समय जीवनी शक्ति भरने वाला कोई महापुरुष खड़ा हो जाय और उनको चैतन्य और उत्साह युक्त करके काम कराने लगे। जब तक सांस तब तक आसकी कहावत निरी गप नहीं है। इसका भी यही अर्थ है।

फिर कभी यह विचार उठता था कि जब पानी जैसा जड़ पदार्थ चारों ओरसे आकर एक ही रास्तेसे होता हुआ उस बड़ी नालीमें मिल जाता है, तब क्या मनुष्यकी संस्थाएं अपनी शक्तिके अनुसार काम करती हुई, एक दूसरीकी सहायक होती हुई, एक बड़ी संस्थामें नहीं मिल सकतीं? यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो कहना पड़ेगा कि पानी जैसा जड़ पदार्थ जीती जागती संस्थाओंसे भी श्रेष्ठ है। इस शंकाका समाधान उसी क्षण इस प्रकार हो गया कि पानी जड़ पदार्थ है, इसीलिए प्रकृतिमाताने आकर्षणशक्तिकेद्वारा इसको इकट्ठा करनेकी युक्ति निकाली है, नहीं तो पानी जहाँ जहाँ जाता वहींका हो जाता और सारे संसारको जलमग्न रखता। परन्तु मनुष्य एक जीता जागता चैतन्य प्राणी है, इसलिए इसकी चलायी हुई संस्था भी चैतन्य है। यदि कोई कहे कि संस्था तो मनुष्यके वशमें है, अपने आप कुछ काम नहीं कर सकती, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि संस्था किसी वस्तु विशेषका नाम नहीं है वरन् कई मनुष्योंके संग्रहीत मतका नाम है, जो एक विशेष रूपमें प्रकट होकर काम करता है। कुछ कालमें लोग भूलसे उस रूपको ही सब कुछ समझ लेते हैं और जिस मत या उद्देश्यसे उस रूपका जन्म होता है उसे भूल जाते हैं। यह कलियुग की ही बात नहीं है। सतयुग, द्वापर और त्रेतामें भी ऐसी ही भूलें लोग करते थे। यदि ऐसी भूलें न होतीं तो भगवानको बार बार अवतार न लेना पड़ता और न उनको यही कहना पड़ता कि "सकालनेह महता योगो नष्टः परंतप"। जितनी संस्थाएँ कायम हुईं वे सब इसी कारण कि जब लोग भूल कर उद्देशके केवल रूप विशेषको ही सब कुछ समझ बैठते हैं तो आपसमें ऐसा मतभेद होना स्वाभाविक है, जिससे एक होकर काम करना असम्भव हो जाता है, क्योंकि यह बात तो मानी हुई है कि जब कोई संस्था स्थापित की जाती है उस समय भी मतभेद रहता है। उसका कारण यह है कि सबकी बुद्धि एकही दर्जेकी नहीं है, कोई अधिक सोचता हैं, कोई कम। परन्तु उस समय एक होनेका कारण एक ऐसा उद्देश रहता है जो सबको विवश कर देता है कि एकमत होकर काम करें। रेलके मुसाफिर इस रहस्यको अच्छी तरह समझते हैं। जबतक गाड़ीमें बैठना पड़ता है, एक दूसरेसे ऐसी मुहब्बत पैदा कर लेते हैं कि समझ नहीं पड़ता कि इनकी जान पहचान आजकी है या बहुत पहलेकी और जिस समय अलग होनेका समय आता है बड़े प्रेमसे मिलते हैं, गद्गद हृदयसे जुदा होते हैं। इसपर आजकलके नये फैशनके जेन्टिलमेन कह उठेंगे कि हम तो जब गाड़ीपर सवार होते हैं तो सबसे पहले यह कोशिश करते हैं कि हमारा रोब सबपर जम जाय, फिर तो आरामसे रास्ता कट जायगा। इसीलिए किसी किसीके मुंहसे यह भी सुनाई पड़ता है कि गाड़ीमें आरामसे सवारी करनेकेलिए कोट, हैट और पैन्ट अपने साथ ज़रूर रखना चाहिये, फिरतो बिस्तरा बिछाकर लम्बी तानकर सोनेका या लेटे लेटे कोई किताब या अखबार पढ़नेका अच्छा मौका मिल जाता है और सब मुसाफिर, चाहे चौकीपर बैठें चाहे नीचे तख्तेपर ही, उनकी यह हिम्मत नहीं पड़ेगी कि ज़रा भी चूं करें।

इन जेन्टिलमैन महोदयोंको इसका उत्तर केवल यह दे देना चाहिये कि यदि उस डब्बेमें एक ऐसा मनुष्य आ जाय जो अपने स्वाभिमानकी उतनी ही कद्र करता है जितनी दूसरोंके स्वाभिमानकी और जो समझता है कि एक मनुष्यका टिकट लेकर गाड़ीपर सवार होनेका उतना ही अधिकार है जितना दूसरेका, तब तो वह आपको उठा कर बैठा देगा कि नहीं। तब आपकी सब पोल खुल जायगी और वे मुसाफिर जो पहले आपकी चाल ढालसे सहम गये थे और सिकुड़ कर बैठे हुए थे, अपने मनमें क्या विचार करेंगे।

सज्जनो, ऐसे ही मालूम नहीं कितने विचार उस पाव घंटेके बीच उठे। इतना ही कहनेमें इतनी देर लग गयी, जिसके लिए आशा करता हूं कि आप क्षमा करेंगे और आगेकी बात चित्त लगा कर सुनेंगे, क्योंकि मुझे अभी यह सिद्ध करना है कि सफल कौन होता है।

मैं इसी तरह बैठा बैठा बहते हुए पानीको देखता जाता था और मनमें अपने आप विचार तरंगें उठतीं और एक दूसरेसे टकराकर लोप होती थीं कि मेरे मित्र बाबू रामचन्द्र आ गये। प्रणाम नमस्कारके बाद वे भी दरवाज़ेके पास ही कुरसीपर बैठ गये और बहते हुए पानीको देखने लगे। थोड़ी देरमें उन्होंने पूछा—'भाई इस बड़ी धाराके बांए किनारेका पानी मटमैला है और दाहिने किनारेका साफ़। देखिये उस साफ़ पानीकी बड़ी धारामें मिलनेपर भी इसका गदलापन नहीं मिटा।'

इस तर्कपर मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मैंने सोचा कि यह मौका बड़ा अच्छा है कि मैं इन्हीं धाराओंकी सहायतासे, शक्तियोंके मिलनेका परिणाम क्या होता है, इसको समझा दूं और युक्तिसे इनको "शक्तिके समानान्तर चतुर्भुज" का सिद्धान्त भी समझा दूं। ऐसा सोचते हुए मैंने इनसे कहा—"यह तो आप जानते ही हैं कि यह बड़ी धारा कई छोटी छोटी धाराओंसे मिलकर बनी है, जिनमें मुख्य तीन हैं। खपरैल और ऊंची छतसे आनेवाले पानीकी धारा स्वच्छ है और उचित मार्गसे जा रही है, क्योंकि बहाव उत्तरकी ओर ही है और उसी ओर भूमि नीची है। परन्तु गदले पानीकी धारा इस बैठककी छतसे आ रही है और वेगसे गिरनेके कारण झोकमें पूरबकी ओर चली जाती है।

रामचन्द्र—किन्तु यह धारा पूरबकी ओर थोड़ी ही दूर तक जाने पाती है। उस बड़ी धारामें मिलते ही इसको उत्तरकी ओर घूमना पड़ता है।

मैं— इसका पानी ज्योंही भूमिपर आता है, गिरनेकी झोक इतनी अधिक होती है कि अपनेको सम्भाल नहीं सकता और पूरबकी ओर कुछ दूरतक बह जाता है, यद्यपि इसको जाना चाहिए उत्तरकी ओर, क्योंकि पानीके निकल जानेकी राह उसी ओर है। मगर किसी वेग या आवेशके कारण उलटी चाल कब तक निभ सकती है। थोड़ी दूरमें ही ईर्षा द्वेष रूपी मिट्टी, चाल मन्द पड़ जानेसे, जमा होने लगी, जिसके कारण पानी फैलकर बहने लगा। यही दशा उस संस्थाकी होती है, जिसमें ईर्षा और द्वेषकी अधिकताके कारण कुछ लोग उलटी चाल चलने लगते हैं और अपना गिरोह बना लेते हैं, मगर उसी ईर्षा द्वेषके कारण इस गिरोहमें ही फूट फैलकर उनकी शक्तिको मन्द और मृतप्राय कर देती है। * इसी बीचमें यदि सामनेकी बड़ी और स्वच्छ धाराकी तरह कोई प्रभावशाली शक्ति आगयी, तब तो इसकी उलटी चाल रुक जाती है और साथ साथ चलना पड़ता है, यद्यपि इसका गदलापन जल्दी मिट नहीं जाता।

रामचन्द्र—इस गदले पानीने उस बड़ी धाराकी राहमें भी तो रोड़ा अटकाया। देखिये यदि इसकी मिट्टी यहां न जम जाती तो उस धाराको इतना मुड़ना न पड़ता।

* ईर्षा द्वेषके कारण दम्भ और दर्प होते हैं, जिनके वेगके कारण असली बलका ज्ञान ठीक ठीक नहीं होता।—ले०

मैं—इसमें नयी बात कौनसी है ? शक्ति चाहे ज़रासी ही क्यों न हो अपना असर तो करेगी ही, परन्तु कब तक ! जब इसके सामने एक बड़ी भारी शक्ति एक दूसरे ही रास्तेपर ले जानेके लिए मुंह बाये हुए है तो इसे उसमें लीन हो जाना ही पड़ेगा। देखो न, मिट्टीके जमा होनेसे उस बड़ी धाराको कुछ मुड़ना पड़ा है, परन्तु परिणाम क्या हुआ। मट्टीके जमनेसे राह तंग हो गयी, जिससे इस धाराको और बल आ गया, क्योंकि जो पानी पहले फैलकर बहता, अब तंग राहसे बह रहा है और इस गदली धाराको और तेज़ीसे बहाये ले जा रहा है।

गणितके विद्वानोंने तो इसका हिसाब भी लगा लिया है कि जब कई शक्तियां एक साथ मिल जाती हैं तब परिणाम क्या होता है। इस विषयपर कई अध्याय लिखे गये हैं, जिनसे एक स्वतन्त्र पुस्तक बन गयी है, जिसका विस्तार करना इस समयके लिये उपयुक्त नहीं है—किसी और समय इसपर थोड़ा थोड़ा विचार किया जा सकेगा। आज तो मुझे यह बतलाना है कि भौतिक संसारमें शक्तियोंका हिसाब जिस प्रकार गणितके विद्वानोंने लगाया है उसी प्रकार मनोसंसारमें भी शक्तियोंका सम्बन्ध है। बड़े बड़े मनोविज्ञानियोंने इसका हिसाब लगाया है। परमपूज्य स्वामी रामतीर्थने तो 'Dynamics of mind' नामका एक बड़ा भारी लेख लिख डाला था, परन्तु खेद है कि मुझे उस पुस्तकका कुछ पता नहीं मिलता। इसमें उन्होंने यही दिखलाया होगा, जैसा कि लेखके नामसे प्रकट होता है कि मनपर शक्तियोंका क्या प्रभाव पड़ता है।

रामचन्द्र—इससे तो आज एक बड़ी शिक्षा मिली। चाहे जैसे संकटका समय उपस्थित हो निराश न होना चाहिये और ईर्षा द्वेषके थपेड़ोंसे हिम्मत न छोड़नी चाहिये और न चुप होकर बैठ ही रहना चाहिये। वरन् पहलेसे भी अधिक बल लगाकर काममें डट जाना चाहिए, यह सदैव ध्यानमें रखना चाहिए कि अपना उदारभाव डिगने न पावे, फिर तो यह क्षुद्र शक्तियां भी अपने हाथोंमें आ जायंगी, क्योंकि इन सबका उद्देश एक है और यह सब चाहती हैं कि अपना सुधार हो। परन्तु खराबी केवल यह है कि ममत्व और स्वार्थपरताके कारण बहुत दूर तक दृष्टि नहीं जाने पाती।

मैं—जितने महापुरुष हो गये हैं उन्होंने इसी मार्गका अवलम्बन किया है। जिसमें जितनी ही अधिक उदारता थी उसमें उतना ही अधिक लोगों और क्षुद्र शक्तियोंको एक करके एक मार्गपर ले जानेका गुण था। संसारका इतिहास, पुराना ही नहीं नया भी, यही सिखलाता है कि बुद्धिमानोंको आपत्तिके समय घबराना नहीं चाहिये, धीरज धरकर काम करना चाहिये। बड़े बड़े समाज सुधारकोंने क्या किया है ?-बुद्ध, शङ्करने क्या किया ? स्वयम् भगवान् कृष्णने क्या किया ? यह लोग ईर्षा द्वेषके स्वयम् शिकार न होकर, सत्यकी खोजमें लग गये और ज्यों ज्यों उन्हें ईर्षा द्वेषकी गंदी धाराओंसे टकराना पड़ा त्यों त्यों अपनी चाल और तेज़ करके आगेकी तरफ़ बढ़ते ही चले गये। ऐसे महात्माओंकी चाल उस स्थानपर थोड़ी देरके लिए रुकी सी और दूसरी ओर घूमती हुई सी मालूम पड़ती है, जहां टक्करका वेग अधिक है, परन्तु यह घूमना तो केवल इस लिए है कि टक्कर लगानेवाली धाराको भी अपने वशमें कर लें।

रामचन्द्र—यह तर्क उस समय लागू नहीं हो सकता जब कि द्वेष, ईर्षा, ममत्व और स्वार्थपरताकी प्रबलता अधिक हो। तब तो उदारता परोपकार इत्यादिको दब जाना पड़ेगा। आजकल पहलेकी प्रबलता है, इसलिए उदारता और परोपकारका विचार करना व्यर्थ है, क्योंकि विजय तो प्रबलकी ही होगी।

मैं—इसमें आप एक बड़ी भूल करते हैं। सारे संसारके इतिहाससे यही शिक्षा मिलती है कि

सच्चे मार्गपर चलनेवाले, परोपकार उदारता आदि सद्गुणोंके माननेवाले आरम्भमें चाहे जैसे निर्बल हों अन्तमें उन्हींकी जय होती है। हां, इन थोड़ेसे महात्माओंको अनेक कष्ट सहने पड़े हैं, परन्तु तो भी यह सतत प्रयत्नमें लगे रहे हैं और अन्तमें इन्होंने ही विजय प्राप्त की, सफलता देवीने इन्हींके गलेमें हार पहनाया।

इतना ही नहीं, इन लोगोंको धर्मके लिए, सत्यके लिए, जो ठोकरें खानी पड़ीं, उनसे यह और भी ऊंचे उठ गये हैं और एकदेशीय न होकर सार्वभौमिक और सार्वकालिकका पद प्राप्त किया है। यह एक पंथ, एक जाति तथा एक राष्ट्रके पूजनीय नहीं हैं, वरन् सभी उन्नतिशील जातियां इन्हींके पद चिन्हपर चलती हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, शंकराचार्य इत्यादि एक देशके नहीं हैं। यह लोगोंकी भूल है और ममत्व तथा अदूरदर्शिता है कि इनके नामपर खूनकी नदियां बहाते हैं और हर दम बहानेके लिए तैयार रहते हैं। हिन्दू ग्रन्थोंमें तो इसके एक दो नहीं सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे, जिनमें सन्मार्गपर चलनेवाले मुट्ठीभर लोगोंने विजयका डंका बजाया है। देवासुर-संग्रामसे लेकर रामरावण युद्ध तथा कृष्णकी अनेक लीलाएं इसी बातको पुष्ट करती हैं, जिनसे यह भी प्रकट होता है कि ऐसे महात्माओंकी सहायक प्रकृति देवी स्वयम् हो जाती है और परमेश्वर स्वयम् सहायता करनेको तैयार हो जाता है। इसलिए चाहे जैसी शक्ति अपने सामने खड़ी क्यों न हो, धीरज धरकर सत्कार्यके करनेमें डटा रहना चाहिये। संसारके अधिकांश मनुष्य ही नहीं वरन् प्रकृतिदेवी और परमपिता परमात्मा स्वयं साथ देनेकेलिए तैयार खड़े हैं, क्या नहीं सुना है कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्रश्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

बस, कर्तव्य कर्मका विचार रखते युद्ध-क्षेत्र रूपी संसार-क्षेत्रमें योद्धाकी भांति डटे रहो, फिर तो युक्ति बतलाने वाले श्री कृष्ण खुद ही हैं। यतो धर्मस्ततो जयः।

वायु और श्वासोच्छ्वास

[ले०—श्री० दुर्गाप्रसाद डबराल]

वायुका हमारे जीवनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि वायु न होती तो हम सांस न ले सकते, इससे स्पष्ट है कि हमारा जीवन वायुपर निर्भर है, किन्तु स्वास्थ्यकेलिए वायु शुद्ध होनी चाहिये। कहा है कि आरोग्यके लिए तीन बातोंकी बड़ी आवश्यकता है—स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु और भोजनमें संयम। स्वच्छ वायुके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। हममेंसे बहुतसे कलकत्तेकी काल कोठरीकी कथा जानते ही हैं, वहां १८ फुट लंबे और १५ फुट चौड़े एक छोटे-से कमरेमें रात्रिको १४५ मनुष्य बंद कर दिये गये थे। प्रातःकाल जब कपाट खोले गये तो केवल २३ मनुष्य जीवित निकले, बाकी सब मर गये थे। किसी दूसरे समय एक प्रचंड तूफानमें एक जहाज आ घिरा, कप्तानने अपने मुसाफिरोंको बचानेकेलिए १५० मनुष्योंको जहाजकी एक छोटीसी कोठरीमें बंद कर दिया, तूफान बंद होनेपर जब कोठरीका दरवाजा खोला गया तो केवल ७० मनुष्य जीवित निकले।

ऊपर लिखी दोनों घटनाओंमें मृत्युका कारण एक प्रकारका पदार्थ है, जो मनुष्यकी सांसमें पाया जाता है। वायुमें इसकी मात्रा बहुत बढ़ जानेसे मनुष्य एकदम ही मर जाता है, किन्तु मात्रा कम होनेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह पदार्थ कर्बनद्विओषिद (carbonic acid gas) है। सामान्य वायुमें भी यह वर्तमान रहता है, किन्तु उसका परिमाण

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

बहुत ही कम है। १०,००० भाग सामान्य वायुमें ४ भाग कर्बनद्विओषिद् रहता है, किन्तु सांसके द्वारा जो वायु बाहर निकलती है उसमें इसका परिमाण १०,००० भाग में ४४० है; इसीसे हम सोच सकते हैं कि प्रश्वास वायु कितनी हानिकारक होगी।

ईश्वरने हमारे चारों ओर वायुका समुद्र रचा है और हम आवश्यकतानुसार वायुका सेवन कर सकते हैं। जलमें भी वायुका अंश वर्तमान है। जलमें घुली हुई वायुके कारण समुद्र और नदियोंमें मछलियां जीवित रह सकती हैं। यदि जलमें वायु न हो तो पानीमें रहनेवाले जानवर कोई भी जीवित न रह सकें।

वायुमें एक लाभदायक गैस रहती है, जिसको ओषजन (oxygen) कहते हैं। शुद्ध वायुमें इसका परिमाण कर्बनद्विओषिद्से कहीं अधिक है। सांस लेनेमें हम ओषजनको अंदर खींचते हैं और कर्बनद्विओषिद्को बाहर निकालते हैं। यह कार्य फुप्फुसके द्वारा होता है, जोकि छातीके अंदर रहते हैं।

उचित प्रकारसे सांस लेनेकेलिए कई बातें आवश्यक हैं:-

(१) खुली हुई शुद्ध हवा।

(२) फुप्फुसमें वायुका मार्ग रोकनेवाली किसी वस्तुका बीचमें न होना।

(३) वक्षस्थलकी मांसपेशियों का (muscles) अच्छी दशामें होना।

प्रत्येक श्वास कर्ममें छातीको कमसे कम ३ इंच फुलाना चाहिये, छातीका उचित प्रकार फूलना वक्षःस्थलकी मांसपेशियोंपर निर्भर है। इन मांसपेशियोंको शक्तिशाली और दृढ़ बनानेके लिए प्राणायाम और व्यायामसे बढ़कर उत्तम उपाय कोई नहीं।

(४) ओषजन और कर्बनद्विओषिद्को ले जानेवाली वस्तु रक्त है और इन दोनों वायुओंका परस्पर परिवर्तन फुप्फुसमें होता है, इस लिए रक्तपरिभ्रमण (circulation of blood) के लिए हृदयको भी पुष्ट होना चाहिये।

कोई कोई वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रश्वासमें जो वायु बाहर निकलती है उसमें कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो कर्बनद्विओषिद्से भी अधिक हानिकारक होते हैं। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकोंका कथन है कि यदि चर्म, नख, दांत कपड़े इत्यादिके मैलको वायुके साथ मिल जानेसे बचानेमें सावधानी की जाय तो कर्बनद्विओषिद्के अतिरिक्त और कोई भी हानिकारक पदार्थ प्रश्वास वायुमें नहीं पाया जाता।

किन्तु केवल स्वच्छताके द्वारा ही वायु शुद्ध नहीं रह सकती। यदि कमरेमें कर्बनद्विओषिद्की मात्रा ०·१ प्रतिशतसे अधिक बढ़ जाय तो कमरेकी वायु गंदी हो जाती है। एक मनुष्य एक घंटेमें प्रश्वासके द्वारा ०·६ घनफुट कर्बनद्विओषिद बाहर निकालता है और यदि उसे एक घंटे में १००० घनफुट वायु दी जाय तो वह ०·६ घनफुट, ०·४ घनफुट कर्बनद्विओषितसे जोकि १००० घनफुट वायुमें पहिलेसे ही है, मिल जायगा, इसलिए उस कमरेमें कर्बनद्विओषिद्की मात्रा ०·१ प्रतिशत हो जायगी। यदि प्रति घंटे २००० घन वायु उस मनुष्यको दी जाय तो कर्बनद्विओषिद्की मात्रा घटकर ०·०७ प्रतिशत और ३,००० घनफुट वायु दी जाय तो ०·०६ प्रतिशत हो जायगी। बस कमसे कम ३,००० घनफुट वायु प्रत्येक मनुष्यको प्रति घंटे दी जानी चाहिये। या यों कहिये कि यदि किसी मनुष्यका सौभाग्य २० फुट लंबी, १५ फुट चौड़ी और १० फुट ऊंची कोठड़ीमें अकेले रहनेका हो तो उस कमरेको सम्पूर्ण वायु प्रति घंटे बदलनी होगी। इसके अतिरिक्त लैम्प और दीपक, जो कमरोंमें जला करते हैं, कुछ वायु लेकर कर्बनद्विओषिद उत्पन्न करते हैं। कहते हैं कि दो मोमबत्ती या एक लैम्प ठीक उतना ही कर्बनद्विओषिद पैदा करते हैं जितना कि एक मनुष्य।

प्रत्येक मनुष्यका इतना बड़ा कमरा नहीं हो सकता, इस कारण हमारे देशमें कमरेके अंदर सोनेकी अपेक्षा बाहर सोना कहीं अच्छा है। अधिक शुद्ध वायु कोई हानि नहीं पहुंचाती। जिस कमरेमें पर्याप्त वायु न मिल सके उसमें सोनेसे दिनकी शुद्ध वायु सेवनका लाभ हम रात्रिको खो बैठते हैं और तब प्रातःकाल उठनेपर थकावट दर्द सर, आदिक व्याधियां हमें क्लेष पहुंचाती हैं। सोनेमें मुखपर कपड़ा कभी नहीं डालना चाहिये, इससे प्रश्वासके द्वारा निकला हुआ कर्बनद्विओषिद उच्छ्वासके द्वारा फिर संस्थान में (System) पहुंचकर रक्तको अशुद्ध कर देता है।

मनुष्य कर्बनद्विओषिद कितनी शीघ्रतासे पैदा कर सकता है, यह हम इसीसे जान सकते हैं कि प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य रक्त शुद्धिके लिए साधारणतः एक मिनटमें २० बार सांस लेकर शुद्ध वायुको संस्थानमें पहुंचाता है। बचपनमें यह संख्या अधिक होती है, नवजात शिशुमें ४४। पांच वर्षकी आयुमें २५ के लगभग। शारीरिक परिश्रमसे–जैसे व्यायाम, भागना, दौड़ना, मैथुन–संख्या अधिक हो जाती है। खड़े रहनेमें लेटे रहनेकी अपेक्षा और दिनमें रातकी अपेक्षा सांस जल्दी जल्दी आते हैं। रोगोंमें श्वासकी संख्या घट बढ़ जाती है, ज्वरमें श्वास शीघ्रतासे आते हैं और फुप्फुस प्रदाह में (Pneumonia) श्वासकी संख्या ७०-८० के लगभग पहुंच जाती है।

प्रकृतिने हमको न केवल अपरिमित वायु दी है, किन्तु वह अनेक उपायोंके द्वारा अशुद्ध वायुको शुद्ध भी करती रहती है, जैसेः—

(१) वनस्पति वर्गके बर्द्धनके लिए कर्बनद्विओषिदकी आवश्यकता है, जिसे प्राणिवर्ग पैदा करते हैं। प्रकृतिने वनस्पति वर्गको वह शक्ति दी है, जिससे वे सूर्यके प्रकाशमें कर्बनद्विओषिदको लेकर ओषजन पैदा कर देते हैं।

(२) हवा समुद्र और पहाड़ोंसे शुद्ध वायुको लाकर अशुद्ध वायुको हटा देती है।

(३) वृष्टि वायुमें मिले हुए धूलके कण तथा कीटाणु और परमाणुओंको बहाकर ले जाती है और वायु शुद्ध कर देती है।

कितना पानी बरसा ?

[ले० अध्या० महाबीर प्रसाद, बी. एस.-सी., एल-टी, विशारद]

कल सन्ध्याको आकाशमें तारे नहीं दिखलाई पड़ते थे। कुछ कुछ ऊमस थी। इससे जान पड़ता था कि रातको पानी ज़रूर गिरेगा। एक बजे जब नींद खुली तो पानी बरस रहा था। झट उठ बैठा और यह देखनेको लालटेन जलायी कि पुस्तकें तो नहीं भीग रही हैं। रातको उठकर यह काम करना होता तो है बड़ा ही दुखद, परन्तु करना ही पड़ता है, नहीं तो कभी कभी सवेरे कागज़ पत्र पानीसे तर ही मिलते हैं। यहाँके मकानोंमें छतें मिट्टीकी होती हैं और ढलवां बनायी जाती हैं, जिससे बरसातका पानी बह जाता है। छतें बनानेके लिए लकड़ीकी धन्नियां एक एक डेढ़ डेढ़ फुटकी दूरीपर रखकर उनपर लकड़ीकी पटरियां या चैले बिछा देते हैं। इन्हींपर पहले गीली मिट्टी रखकर एक हाथ ऊंची मिट्टी डाल देते हैं और दो चार घण्टे खूब पीट देते हैं। बस छत तैयार हो जाती है। ऐसी छतोंसे पानी टपकनेकी आशंका बनी रहती है, क्योंकि चींटियां अक्सर छेद कर देती हैं और घासके जमनेसे उसकी जड़ोंमेंसे होकर भी पानी टपकता है। इसलिए छतोंकी पिटाई एक ही बार करके छुट्टी नहीं मिल जाती। महीनेमें दो एक बार फिर पीटना पड़ता है। कभी कभी तो बरसते पानीमें छेदोंको बन्द करना पड़ता है, नहीं तो घर पानीसे भर जाय। इस कारण लालटेन जलाकर लिखने पढ़नेके कागज

Physics भौतिक शास्त्र]

पत्र देखे तो पानीके कुछ छींटे पड़े थे। कागजोंको दूसरी जगह हटाकर फिर लेट गया। कुछ देर तक करवटें बदलनेके बाद सोया तो पौने छः बज गये। एकाएक प्रश्न उठा कि रातको कितना पानी बरसा होगा?

नित्यक्रियासे निबटकर यह निश्चय किया कि वर्षाके पानीकी नाप कैसे ली जाती है, इस विषयपर एक लेख लिखना चाहिये। क्योंकि जब कभी पानी बरसता है तब जितने मुंह उतनी बातें सुनी जाती हैं, जिनसे यह निश्चय नहीं होता कि पानी सचमुच कितना गिरा। कोई कहता है पानी तीन घंटे तक गिरा और खूब गिरा। कोई कहता है कि पानी बरसा तो जरूर तीन घंटे तक, परन्तु एक चालसे नहीं बरसा, कुछ देरतक बूंदा बांदी होती रही फिर एक घंटे तक ज़रा ज़ोरसे गिरा तब मंद पड़ गया, पिछले एक घण्टेतक सचमुच मूसलाधार पानी गिरा; इत्यादि। यही सोच विचार कर लिखने चला कि इतनेमें मेरे मित्र बाबू रामचन्द्र आ गये। उनसे भी रातके पानीकी बात चली। मैंने कहा कि ठीक ठीक नहीं बतला सकता कि कितना पानी गिरा, क्योंकि बीचमें थोड़ी ही देरके लिए जागा था। इसपर हम दोनोंमें यह बातें हुईं—

रामचन्द्र—आपतो विज्ञानके अध्यापक हैं। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे मालूम हो सके कि कितना पानी गिरा? उपाय भी ऐसा होना चाहिये कि रातको उठकर कष्ट न उठाना पड़े और न यही देखना पड़े कि कब तक पानी गिरा, परन्तु यह मालूम हो जाय कि कितना पानी गिरा।

मैं—विज्ञानमें इसका उपाय क्यों नहीं है। जब विज्ञानके बड़े बड़े पंडित बिना मतलबकी बातोंमें केवल ज्ञानपिपासा बुझानेकेलिए आकाश पाताल एक कर देते हैं और जब तक पूरी तरह खोज करके किसी बातके बारेमें निश्चय पूर्वक जानकारी नहींकर लेते, तबतक उसका पिंड नहीं छोड़ते तब ऐसी घटनाके लिए उन्होंने कुछ प्रयत्न नहीं किया ऐसा आपको न समझना चाहिये। वर्षाका प्रभाव मनुष्योंके जीवनपर कई प्रकारसे पड़ता है। देशकी जल वायु वर्षापर ही निर्भर है। वर्षासे ही खानेकी सारी सामग्री पैदा होती है, एक वर्षकी कौन कहे यदि उचित समयसे एक ही दो मास हटकर पीछे वर्षा हो तो त्राहि त्राहिकी पुकार चारों ओर मचने लगती है। अकाल पड़ जाता है। बहुत दूर क्यों जायँ, इसी वर्ष डेढ़ महीना पीछे वर्षा आरम्भ हुई, जिससे गरीबोंके खानेके अनाज नहीं बोये जा सके। सावाँ, कोदों, इत्यादि अन्न नहीं बोये जा सके, धान सूख गया, बाज़ारमें भाव चढ़ गया। देखिये १५, २० दिनसे पानी अच्छा बरस रहा है। चावल गेहूं सभी अनाज सस्ते हो गये। वर्षाकी महिमा स्वयम् भगवान कृष्णचन्द्र भी कह गये हैं—'अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न सम्भवः' फिर भला विज्ञानवेत्ता इसपर कुछ ध्यान न दें, यह असम्भव है। अभी आपको बतलाता हूं कि वैज्ञानिकोंने वर्षा नापनेके लिए कैसी अच्छी और सरल रीति निकाली है।

भूगोलकी पुस्तकोंमें आपने पढ़ा होगा कि चेरापुंजीमें सबसे अधिक वर्षा होती है। ६०० इंचसे अधिक वर्षा वहां ही होता है। आजकल अंग्रेज़ीके अख़बारोंमें भी आप पढ़ते होंगे कि जबलपुरमें दो इंच पानी गिरा, लखनऊमें डेढ़ इंच गिरा इत्यादि।

रामचन्द्र—हां, यह तो सुना है और पढ़ा भी है, परन्तु यह ठीक ठीक नहीं जानता है कि इसकी नाप कैसे ली जाती है।

मैं—यदि किसी चौरस भूमिमें पानी बरसे और वहीं ठहर जाय, न तो कहीं बहे और न मिट्टीमें सूख जाय, तो ऐसे पानीकी गहराई यदि एक इंच हो तो कहते हैं कि एक इंच पानी गिरा। यह ध्यान रखना चाहिये कि इस चौरस भूमिमें बाहरसे पानी बहकर न आने पावे। बस इसपर

जो पानी गिरे वहीं नापा जाय। यहांतक कि इस परका गिरा हुआ पानी यदि छिटककर बाहर चला जाय अथवा बाहरका पानी छिटककर इसमें चला आवे तो भी अशुद्धि हो जाती है।

रामचन्द्र—बात तो बड़ी सरल है, परन्तु शर्तें बड़ी टेढ़ी हैं। यह सम्भव नहीं कि कुछ पानी ज़मीनमें न सूख जाय, फिर यह प्रबन्ध करना भी तो कठिन है कि कहींसे पानी बहकर न आने पावे और न इस भूमिका पानी बह जाय।

मैं—यह शर्तें कठिन हैं, परन्तु असम्भव नहीं हैं। इसीलिए जैसा मैंने अभी बतलाया है वैसा किया नहीं जाता। वह तो केवल यह समझानेके लिए कहा था कि एक इंच पानीका मतलब क्या है। वैसा करनेमें सबसे बड़ी त्रुटि यह रह जाती है कि खुली जगहमें पानी पड़ा रहे तो कुछ उड़ भी जाता है, जिससे नाप ठीक ठीक नहीं ली जा सकती। मगर इस झंझटकी ज़रूरत ही कहां है। बस एक बर्तनकी ज़रूरत होती है, जिसके पेंदेके पास काँचकी एक बगली नली लगी रहती है। बर्तन बेलनाकार होता है, जिसके बीचका कहींका व्यास पेंदे या सिरेके व्यासके बराबर होता है। इस ढक्कनके बीचमें एक छेद होता है, जिससे इस खुले मुंहमें जो पानी गिरता है वह सीधा पेंदेमें चला जाता है। देखिये चित्र १
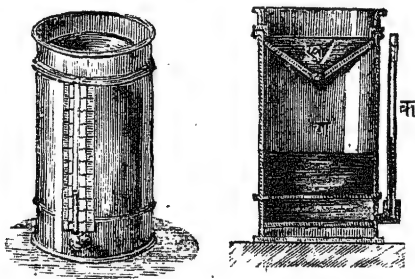
चित्र १

बर्तनमें पानी जितना ऊंचा होता है उतना ही ऊंचा बगली नलीमें भी चढ़ जाता है, जैसे गेडुएमें होता है। इस बगली-नलीमें इंचों और इसके भागोंके चिह्न खुदे हैं, जिससे झट जान लिया जाता है कि बर्तनमें पानी कितना ऊंचा है। बस यही वर्षाकी नाप हुई। इसीलिए ऐसे यन्त्रको वर्षामापक कहते हैं। चित्रमें दिया हुआ वर्षा-मापक बड़ा ही सरल है, परन्तु इससे बहुत थोड़ी वर्षाकी नाप नहीं ली जा सकती। इंचके दसवें भागकी नाप ली जा सकती है, परन्तु इससे कम-की नहीं।

बहुत सूक्ष्मतापूर्वक नाप लेनेके लिए ऊपर वाला यन्त्र चित्र २ की तरह बनाया जाता है।
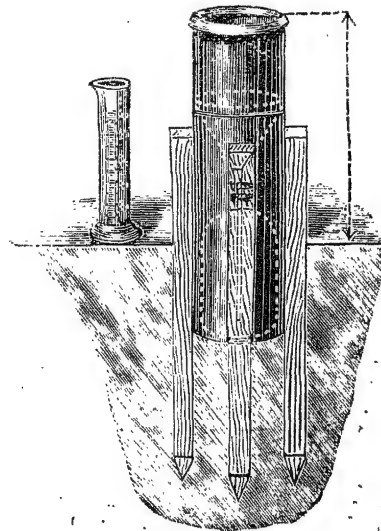
चित्र २

इसमें बगली नली नहीं है। इसकी जगह बेलना-कार बर्तनसे अलग एक नपना होता है, जिसका व्यास इंच सवा इंचका होता है। कीपनुमा ढकना, जिसमें वर्षाका पानी गिरकर छेदकी राह बोतलमें चला जाता है. ४ इंचसे कम व्यासका नहीं होता। यदि व्यास ४ इंच मान लिया जाय तो इसके मुंहका क्षेत्रफल ३.१४२×२^२ वर्गइंच या

१२·५६८ वर्ग इंच या मोटे हिसाबसे $१२\frac{१}{२}$ वर्ग इंच होता है। यदि इस क्षेत्रफलपर १ इंच पानी गिरे तो उसका घनफल $१२\frac{१}{२}$ घन इंच होगा। यही पानी यदि ऐसे नपनेमें उँडेला जाय जिसके पेंदे-का क्षेत्रफल $१\frac{१}{४}$ वर्ग इंच हो तो १० इंच ऊंचा होगा। एक एक इंचपर यदि चिन्ह बनाये जायँ तो $\frac{१}{१०}$ इंचकी नाप बड़ी ही आसानीसे ली जा सकती है। फिर एक इंचमें दस समान भाग बनाये जा सकते हैं। ऐसे एक भागमें जितना पानी समाता है वह कीपनुमा ढकनके क्षेत्रफल-पर केवल $\frac{१}{१००}$ इंच ऊंचा होगा। इस तरह अलग नपना रखनेसे एक इंचके सौवें भागकी नाप ली जा सकती है।

रामचन्द्र—नपनेके मुंह वा पेंदेका क्षेत्रफल यदि $१\frac{१}{४}$ वर्ग इंच हो तो उसका व्यास तो बहुत ही कम होगा। ऐसे तंग मुंहवाले बर्तनमें पानी भरना बड़ा कठिन होता होगा।

मैं—पेंदेका क्षेत्रफल $१\frac{१}{४}$ वर्ग इंच हो तो व्यास भी इतने ही इंचके लगभग होता है। हिसाब लगाकर देख सकते हो।

वृत्तका क्षेत्रफल = ३·१४२ × $त्र^२$ जहां त्र त्रिज्या वा अर्द्ध व्यासके लिए लिखा गया है। यदि क्षेत्रफल $१\frac{१}{४}$ वर्ग इंच अथवा १·२५ वर्ग इंच हो तो $१·२५ = ३·१४२ × त्र^२$

$$\text{या} \quad त्र^२ = \frac{१·२५}{३·१४२} = ·३९$$

$$\therefore त्र = ·६२४ \text{ वा } ·६२५ \text{ इंच।}$$

$$\therefore \text{व्यास} = १·२५ \text{ इंच वा } १\tfrac{१}{४} \text{ इंच।}$$

रामचन्द्र—बस वर्षा मापकमें इतनी ही बातें होती हैं। यह तो बड़ी ही सरल रीति है।

मैं—हां, इतनी ही। अच्छा अब यह भी जान लो कि यदि एक इंच पानी बरसे तो एक बीघे भूमिमें कितना पानी गिरेगा।

रामचन्द्र—हां बतलाइये।

मैं—एक बीघा भूमिका क्षेत्रफल उस वर्ग क्षेत्रके क्षेत्रफलके बराबर होता है, जिसका किनारा ५५ गज़ हो। इसलिए एक बीघेका क्षेत्रफल = ५५ × ५५ वर्ग गज़ = ५५ × ५५ × ६ × १४४ वर्ग इंच।

इसलिए १ बीघे भूमिपर एक इंच पानी गिरे तो उसका आयतन ५५ × ५५ × ६ × १४४ घन इंच होगा।

परन्तु १७२८ घन इंचका एक घन फुट होता है,

$$\text{इसलिए पानीका आयतन} = \frac{५५ \times ५५ \times ६ \times १४४}{१७२८} \text{घ० फु०}$$

$$= \frac{६०७५}{४} \text{घनफुट}$$

और १ घनफुट पानीकी तोल ६२·४२ पौंड होती है।

$$\therefore \text{पानीकी तोल} = \frac{६०७५}{४} \times ६२·४२ \text{ पौंड}$$

$$= \frac{६०७५}{४} \times \frac{६२·४२}{८२} \text{मन}$$

[८२ पौंडका एक मन होता है]

$$= १७२७ \text{ मन}$$

इसलिए एक बीघा भूमिपर एक इंच पानी बरसे तो १७२७ मन पानी होता है।

रामचन्द्र—पुरसे यदि खेत सींचा जाय तो इतना पानी कितने दिनमें कुएंसे निकल सकता है?

मैं—पुरके आयतन पर निर्भर है। इसका कुछ भी अनुभव नहीं है, इसलिए अनुमान नहीं कर सकता।

बस इतनी बात होने पायी थी कि अखबार लेकर डाकिया आ गया। बरसनेको बातचीत ख़तम कर दी गयी और अखबारी समाचार पढ़ने लगे।

दांत, मुंह और मसूड़ोंकी बीमारियाँ

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

१—दांतोंकी बीमारियां

अगर मनुष्यकी तन्दुरुस्ती अच्छी हो, तो उसे दाँतकी बीमारियाँ नहीं सतातीं। जिन लोगोंको पेटकी बीमारी या खराबी नहीं होती उनके दाँत न तो कभी सड़ते हैं और न दर्द करते हैं। पेटकी बीमारीसे ही दाँत जल्द हिलने और दर्द करने लगते हैं, उनमें कीड़ा लग जाता है और चीस चलती है। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण हैं, जिनसे दाँतोंमें खराबी पैदा हो जाती है। इसलिए दाँतकी बीमारियोंमें ऐसे डाक्टरोंकी सलाह लेनी चाहिये, जो दाँतोंका इलाज करते हैं। जो दवाएँ हम लिखते हैं उनसे भी फ़ायदा होगा, परन्तु यदि तकलीफ़का कारण ठीक ठीक मालूम न हो तो डाक्टरकी सलाह लेना आवश्यक है। सबसे आवश्यक तो यह है कि आम तन्दुरुस्ती कायम रखी जावे। इसके अतिरिक्त यह भी उचित है कि नित्य खानेके पश्चात् ताज़ा पानीसे दाँत मलकर कुल्ली की जाय और मँजन या दाँतनसे दाँत साफ़ किये जायं। दाँतोंको ठंडी चीज़के बाद एकबारगी गर्म चीज़से और गर्मके बाद ठंडीसे बचाना चाहिये। यदि दाँतोंपर चीप जम गई हो तो होशियारीसे हटा देना चाहिये। जब तक कि दाँतमें ऐसा रोग न हो जाय कि उसके बिना निकाले दूसरे दाँतोंकी हिफ़ाज़त न हो सके दाँतको उखड़वाना न चाहिये। अकसर दाँत बनानेवाले दाँत उखड़वानेकी सलाह दे देते हैं और अपनी कारीगरी दिखलानेके लिए तथा लाभके लालचसे ऐसे दाँतोंको भी उखाड़ देते हैं जो उखाड़नेके लायक नहीं होते हैं। सड़ जाने, बादीकी चीज़ खाने, मसूड़ोंके फूलने, ठंडी हवाके लगने, किसी कड़ी चीज़के दबाने, या गर्म चीज़के खाने आदिसे भी दाँतोंमें दर्द होने लगता है। चिन्हानुसार कुछ दवाइयाँ नीचे लिखी जाती हैं।

कैमोमिला, मरक्यूरियस, रहसटौक्स, स्टैफ़ीसेगेरिया—जब कि कई दाँतोंमें एकाएक दर्द हो जाय।

एकोनाइट—जब कि दर्दके अधिक होनेके कारण टपकन व बेचैनी हो।

एण्टिमटार्ट—जबकि दाँत सड़ गया हो, खाना खाने और ठंडा पानी पीनेके बाद दर्द हो और मसूड़ोंसे खून निकले।

आरसेनिकम—जबकि दर्द गाल, कान और आँख तक बढ़ जाय और मसूड़े फूले और ढ़ीले मालूम हों।

मोसिमस, मरक्यूरियस और सलफ़र—जबकि दाँतके दर्दके कारण मुंहकी हड्डियोंमें भी दर्द हो।

पलसेटिला—जबकि दाँतके दर्दके कारण आंखोंमें दर्द मालूम हो।

कैमोमिला और मरक्यूरियस—जबकि दाँतोंके कारण कानमें दर्द हो।

बैलेडोना—जबकि दाँतके दर्दके कारण प्यास अधिक लगे, मुंह और आँखें लाल हों, गाल सूजा हुआ हो और रातको ठंडी हवासे ज़्यादा दर्द मालूम हो।

कैमोमिला, नक्सवोमिका, मरक्यूरियस, पलसेटिला, रहसटौक्स—जबकि दाँतके दर्दके कारण सिरमें भी दर्द हो।

आरनिका, सीपिया, सलफ़र, औरम, ब्राइनिया—जबकि दांतके दर्दके कारण मसूड़े और मुंहपर सूजन आ जाय।

स्पौंजिया—दाँत जब सड़ जायं और टपकनका दर्द हो, आंख और नाकसे पानी बहने लगे, पानी और ठंडी हवा लगनेसे दर्द बढ़े।

केलकेरिया—दांतका दर्द ठंडी या गर्म चीज़ खाने या पीनेसे बढ़े।

कौफ़िया—दांतमें इतना अधिक दर्द हो कि नींद न आवे, रोगी तड़पे और ठंडे पानीसे दर्द कम हो जाय।

मरक्यूरियस—जबकि कई दाँतोंमें एक साथ दर्द हो, रातको ज्यादा दर्द रहे और राल बहे।

एकोनाइट, बैलेडोना, ब्राइनिया, कैमोमिलापलसैटिला, रह्स टौक्स, सिबीना और स्टैफ्रीसेगेरिया—जब दाँतका दर्द बाईके कारण हो

बैलेडोना, कैमोमिला, कौफ्रिया, ब्रौसिमस, इगनेशिया, प्लाटीना, सिपजिलिया—जब दांतका दर्द कमज़ोरीके कारण हो।

कार्बोवेजीटेबिलस—जब दांतका दर्द पारा आदिके खानेसे हुआ हो।

बैलेडोना, कैलकेरिया, नक्सवोमिका, पलसैटिला, सीपिया, स्टैफ्रीसेगेरिया—गर्भवती स्त्रियोंके दाँतके दर्दमें देना चाहिये।

इगनेशिया और सीपिया—ऐसे मर्द और स्त्रियोंके दाँतके दर्दमें देना चाहिये, जिनको दौरेकी बीमारी, जिसे हिस्टीरिया कहते हैं, हो।

बैलेडोना, कैलकेरिया, कैमोमिला, कौफ्रिया—बच्चोंके दाँतमें दर्द हो तब देना चाहिये।

२—मसूड़ोंका फूलना

अगर मसूड़ोंमें दर्द सूजन और गर्मी मालूम हो तो एकोनाइट और बैलेडोना एक दूसरेके बाद तीन तीन घंटेमें देना चाहिये।

अगर चीस और दर्द ज्यादा हो तो हीपर सल्फ़ और मरकरी एक दूसरेके बाद तीन तीन घंटे पीछे देना चाहिये।

अगर मसूड़ेमें मवाद आ गया हो तो मरकरी या शिलिसिया देना चाहिये।

नोट १—शिलिसिया अगर बुकनीकी शकलमें हो तो खानेके अतिरिक्त मसूड़ेपर मलनेसे भी फ़ायदा होगा।

नोट २—नश्तर दे देनेसे भी अगर मसूड़ेका मवाद निकाल दिया जाय और मरकरीका इस्तेमाल किया जाय, तो भी लाभ होगा।

३—मुँह आना

मुंहके अन्दर लाल चित्ते या छाले पड़ जाते हैं, जलन होती है, राल बहती है, खानेमें कष्ट होता है। अधिकतर बच्चों और औरतोंको यह बीमारी होती है और इसका कारण यह है कि ज्यादा गर्म चीज़ खाई जाय या मैदेके अन्दर अधिक गर्मी हो। मुंह और जीभपर छाले या ज़ख्म हो जाते हैं, कभी कभी हलक तक पहुंच जाते हैं और मसूड़े सूज कर ऊदे रंगके हो जाते हैं। कभी कभी जीभके किनारेपर ज़ख्म हो जाते हैं और सूज जाती है। मुंहसे निकली हुई भापमें दुर्गंधि होती है। जो राल निकलती है वह अगर होठ या और कहीं लग जाय तो छिल जाता है और कभी कभी मसूड़ोंसे खून भी निकलता है। जो दवाएँ नीचे लिखी हैं चिन्हानुसार देनी चाहियें।

आरसेनिकम एल्ब—जबकि मुंहके अन्दर छाले पड़ जायं और फूटनेपर नीले मालूम पड़ें और जीभपर भी छाले हों।

औरम—जब गालोंके अन्दर ज़ख्म जान पड़ें और हलक़के भीतर जलन हो।

बेप्टेशिया—जब गलेकी नलीमें छाले पड़ जायं, जीभमें ज़ख्म हों, मसूड़े सूजे और ऊदे रंगके हों और कोई चीज़ गाढ़ी न निगल सके। यह हालत ज्यादातर छोटे दूध पीनेवाले बच्चोंकी होती है।

बोरेक्स—बच्चों और बुड्ढोंके मुंहमें दाने निकल आयें और बच्चे दूध न पी सकें।

कैलकेरिया कार्ब—जब कमज़ोर और दुबले बच्चोंके मुंहमें दाने निकले हों।

केलोफिलम—जब गर्भवाली औरतोंके मुंहमें दाने निकल आये हों।

आयोडियम—मुंहसे दुर्गंधि आती हो, राल ज्यादा निकले और तमाम मुंहके अन्दर दाने हों।

मरक्यूरियस—जीभ सूज जाय, जीभके किनारोंपर ज़ख्म पड़ जायं, मसूड़ोंसे खून निकले, रातको जलन हो, राल ज्यादा बहे और साँस लेनेमें दुर्गन्धि आवे।

नैट्रिक एसिड—जबकि मुंह पारा खानेके सबबसे

आया हो या ऐसे मनुष्यका मुंह आया हो जिसको गर्मीकी बीमारी हो, मुंहसे खून निकले, राल लस दार डोरेकी भांति निकले और होठ और गालपर जहाँ तहाँ जख्म हो जांय।

सलफ़र—जीभपर सफ़ेद मैल जम जाय, छालों-में जलन मालूम हो, हरे रङ्गके पतले दस्त आवें।

४-गलसुजा

इस बीमारीमें हलक़की गिलटियां सूज आती हैं, बुखार आ जाता है, कभी कभी गिल्टी पक जाती हैं, मवाद निकलता है और दुर्गंधि आती है। इसमें नीचे लिखी दवाइयां देनी चाहिये।

एमोनियम म्यूरैटिकम—जब कि दोनों गिल्टी फूली हों, गाढ़ा बलग़म थूकनेसे निकले, मुंह खोलने और निगलनेमें कष्ट हो।

बैलेडोना—गिलटियां सूजी हुई और लाल रङ्ग की हों, हर समय खखारता रहे, रातको दर्द ज्यादा हो।

हीपरसल्फ़—जबकि दोनों गिलटियां सूज आवें और मुंहकी भापमें दुर्गंधि आवे।

लैचेसिस—बाईं ओरकी गिल्टी सूज आवे, निकलते समय कान तक दर्द हो, सो कर उठनेके बाद ज्यादा दर्द हो, कोई चीज़ न निगली जाय।

लायकोपोडियम—दाहने ओरकी गिल्टी सूज आवे, कब्ज़ रहे।

मरक्यूरियस—दोनों ओरकी गिल्टी सूज आवें, मुंह चलानेमें कान तक दर्द मालूम हो, रातको टपकेका दर्द हो, जीभके ऊपर सफ़ेद मैल जम जाय मुंहमें दुर्गंधि आती हो और मुंहके भीतर ज़ख्म हो जायँ।

५—रैन्यूला यानी जीभके नीचे सूजजाना

इस बीमारीमें दस बूंद आरनिकाकी आध पाव पानीमें मिला कर दिनमें एक दो बार कुल्ली करनी चाहिये और कैलकेरिया, मरकरी और थ्यूजा का सेवन करनी चाहिये। पहिले एक सप्ताहतक रातको सोते समय पहिली दवा लगाई जाय। जो इससे फ़ायदा न हो तो दूसरी और तीसरी दवा लगानी चाहिये।

६—गलेमें दर्द, ख़राश और छाले

इस रोगमें कभी कभी मवाद भी पड़ जाता है और बुख़ार भी आ जाता है। शुरुमें चँद खुराक बैलेडोना देनेसे फ़ायदा होता है। दूसरा इलाज यह भी है कि कपड़ेकी गद्दी सी बनाकर ठंडे पानीसे तर करके चारों तरफ़ बांध दी जाय और ऊपरसे सूखी फ़लालेन लपेट दी जाय। अगर दर्द और सूजन भी हो तो बैलेडोनाके बाद मरकरी दो दो घंटे पीछे दिया जाय। जैसे जैसे सूजन और दर्दमें कमी होती जाय दवाको खुराक़का समय बढ़ा देना चाहिये।

लैचेसिस—यह दवा उस समय देनी चाहिये जब कि दर्दके साथ जलन और खुश्क़ी हो और जीभ, गले और कान तक दर्द पहुँच जाय और दम घुटने लगे। गलेमें लाली और सूजन आ जाय और कोई चीज़ न निगली जाय, गर्दन छूनेमें कष्ट हो।

कैमोमिला—खासकर बच्चोंके लिए लाभदायक है, जब गलेकी गिलटियां सूज गई हों, दर्द पसीना रुकनेके कारण हो गया हो, निगलनेमें कष्ट हो, गलेमें सुरसुराहट, खाँसी, और धाँस मालूम हो। शामको बुख़ार, मुंहकी तमतमाहट और कपकपी मालूम हो।

पलसैटिला—खासकर औरतोंको, जब कि गलेमें सुर्खी और सूजन मालूम हो, गला सूखा हुआ हो, पर प्यास न लगे, शामके समय कपकपी मालूम हो, देनी चाहिये,

इन औषधियोंके अतिरिक्त नीचे लिखी दवाएँ भी इस्तेमाल करनेसे फ़ायदा होता है।

ब्राइनिया, हीपरसल्फ़, कैपसिकम, इग्नेशिया, सलफर, कौक्यूलस, आरसेनिक, कोनियम और सलफ्यूरिक एसिड।

अगर तालुएकी गिलटियां सूज आयें, जिसको कौवेका लटकना भी कहते हैं और जो ज्यादा

तर सर्दी लग जानेसे हो जाता है, तो उसका भी इलाज ऊपर लिखी दवाओंसे ही किया जाता है। खास दवाएँ इसकेलिए नीचे लिखी हैं, क़रीब क़रीब हर किस्मकी शिकायत इन्हींसे दूर हो जायगी—

बैलेडोना, कैलकेरिया, आरजेन्टम नेट्रिकम, मरकरी, और नक्सवोमिका ।

साझेका व्यापार

[ले०—श्री कस्तूरमल बांठिया, बा. काम.]

साझा क्या होता है ?

जहां दो अथवा दोसे अधिक व्यापारी अपना धन, जन, तथा शक्ति मिलाकर कोई व्यापार करते हैं तहां कहा जाता है कि साझा है और वह व्यापार साझेका व्यापार कहलाता है। साझेकी सामान्यतः मुख्य पहचान है—नफा आपसमें बांट लेना। परन्तु इतनेसे ही सदा यह बात निश्चय नहीं होती कि कोई व्यापार साझेका है या नहीं। व्यापारकी प्रकृति और उसकी विशेषताओंका विचार कर न्यायाधीश इस बातका निर्णय करता है।

कितने साझीदार होने चाहिएं ? प्राइवेट और पब्लिक कम्पनी

साझियोंकी संख्या कितनी होनी चाहिये, इस विषयमें कानूनका ऐसा कोई जटिल प्रतिबंध नहीं है। परन्तु सराफी साझेमें १० और व्यापारीमें २० से अधिक साझियोंकी संख्या हो तो भारतीय कंपनी नीतिकी धारा ४ के अनुसार रजिस्टर कराना चाहिये। बिना रजिस्टरीके वह साझेदारी अवैध (कानूनके विरुद्ध) गिनी जाती है, जिससे रुपयेकी वसूलीमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। साझेदारी रजिस्टर करानेके कानूनको भारतीय कंपनी कानून (१६१३) कहते हैं। उसकी धारा ५ के अनुसार कोई भी ७ व्यक्ति मिलकर एक कंपनी खोल सकते हैं और उसमें १० अथवा २० से अधिक साझी रखनेके लिए उसे कम्पनीके नामसे रजिस्टर करा सकते हैं। कंपनी भी एक विशेष प्रकारकी साझेदारी ही है, पर उसमें कुछ विशेषता होती है। साधारण साझेमें सदा अपरिमित जोखिम उठानी पड़ती है और उसमें साझियोंकी संख्या थोड़ी होती है। इसके विपरीत कंपनी साधारणतः परिमित जोखिमवाली होती है और उसके हिस्सेदारोंकी संख्या अपरिमित। इन कंपनियोंको कम्पनी कानूनके अनुसार कार्य करना पड़ता है। इनके विषयमें अब विशेष न कहकर यहांपर इतना ही लिख देना पर्याप्त होगा कि यह कम्पनियां दो प्रकारकी होती हैं, जिनमें एकको पब्लिक और दूसरीको प्राइवेट कम्पनी कहते हैं। पब्लिक कम्पनीसे तात्पर्य यह है कि वह कम्पनी जन साधारणको हिस्सेदार बनानेके हेतु विवरणपत्र (प्रास्पेक्टस) आदि निकालनेके वैध मार्गोंका अवलम्बन कर सकती है। परन्तु जो कम्पनी प्राइवेट कम्पनीके नामसे रजिस्टर कराई गई है वह जन साधारणको अपना हिस्सेदार नहीं बना सकती। उसके हिस्सेदारोंकी संख्या भी केवल ५० ही हो सकती है। इन असुविधाओंके सिवा ऐसी कंपनी पब्लिक कंपनीके किसी हक़से वञ्चित नहीं रहती। वरन् हिसाब किताबके मामलोंमें उसे कई बातोंकी विशेष सुविधा रहती है। देशका व्यापार बढ़ानेके हेतु हमारे देशवासी ऐसी कम्पनियां स्थापित कर बहुत कुछ काम कर सकते हैं। अतः इस प्राइवेट कम्पनीकी रीति नीतिके विषयमें आगे विस्तृत विवेचन किया जायगा।

साझेके व्यापारका आरम्भकाल

साझेका व्यापार कोई नयी बात नहीं है। हमारे बहुत ही प्राचीन धर्म, नीति और स्मृति-ग्रन्थोंमें भी इस प्रसंगके कई एक नियम दिये

गये हैं। उन ग्रंथोंमें "सम्भूय समुत्थान" के नामसे इस संस्थाका परिचय मिलता है। परंतु इसके अभ्युदय कालका अनुमान लगाना जरा कठिन काम है। अतः यह अनुमान किया जाता है कि जब मनुष्यने (self sufficing) आत्मनिर्भरता-की अवस्थाको पार कर दूसरोंके परिश्रमसे अपने जीवनकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेकी अवस्थामें पदार्पण किया होगा, उसी समयसे अथवा उसके कुछ पीछेसे इस साझेके व्यापार-की प्रथाका प्रादुर्भाव हुआ होगा। परन्तु इस संस्था अथवा अन्य किसी भी व्यापारिक संस्था-के आदि कालके इतिहासका पता लगाना यहांपर हमारा उद्देश्य नहीं है। और न इस प्रकारका गवे-षणात्मक परिचय हरेक व्यापारीके लिए उपयोगी तथा आवश्यक है। अतः यहांपर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि आजकल साझेसे संसारका बहुत सा व्यापार चलता है। साझेका महत्व केवल व्यापारिक सफलताके पूर्व कथित साधनोंके* अभावके कारण ही हो,ऐसी कोई बात नहीं है। इन साधनोंके यथेष्ट परिमाणमें होते हुए भी व्यापारी अपनी कार्यकुशलतासे आशातीत लाभ उठानेके हेतु एक दूसरेसे साझा करते हैं। यह हम सदा देखते आये हैं और इस समय भी देखते हैं।

किसको साझी बनाना चाहिये

साझेदारीका निष्कर्ष है--परस्परका विश्वास और भरोसा, अतः हमें साझियोंके चुनावमें विचार-से काम लेना चाहिये। हमें यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि प्रत्येक साझीदारको साधारणतः साझीदारीमें लिये हुए कर्जेकी पाई पाई चुकानी ही पड़ती है। कुछ हिस्सेदारोंकी असमर्थताके कारण शेष हिस्सेदारोंको छुटकारा नहीं मिल सकता। ज़र जवाहिरात और ज़मींजायदाद आदि बेचकर हिस्सेदारीका सारा कर्जा वसूल कर लिया जाता है। इसमें कानूनकी कोई रोक टोक नहीं है। इसलिए यदि हम अपने लिए एक ऐसा साझीदार चुननेकी भूल करें जो सट्टेबाज हो और अंधाधुंध सट्टा लड़ाता हो, तो ऐसे साझीदारकी असमर्थतामें उसके किये हुए सट्टेके व्यापारका सारा नुकसान हमसे वसूल कर लिया जायगा और वह हमें देना ही पड़ेगा, चाहे उस व्यापारके नफेका हमने कभी हिस्सा बटाया हो अथवा नहीं। ऐसे ही मान लो कि हम एक नाबालिगको अपना साझी-दार बनाते हैं। यह कोई अवैध कार्य नहीं है। परन्तु पण सम्बन्धी कानून (Law of contract) कहता है कि यह नाबालिग हिस्सेदार नुकसानका हिस्सेवार देनदार नहीं है। जितनी रकम उसने उस साझेमें लगाई है और जितना उसने उससे नफा उठाया है, केवल उतनी ही रकम उसके नुक-सानके हिस्सेके पूरा करनेके काममें आ सकती है। इस रकमसे ज्यादे आपके नुकसानके लिए वह नाबालिग ज़िम्मेदार नहीं है। बचे हुए नुकसानकी वसूलीकेलिए उसपर कचहरीमें कोई नालिश नहीं चल सकती। साझेमें लगाई हुई रकममेंसे अथवा उस साझेसे उठाये हुए नफेमेंसे कुछ रकम खर्च कर देनेपर वह रकम उस नाबा-लिगकी जायदाद तथा मिल्कियतसे हिस्सेदार वसूल कर सकता है, परन्तु उसके लिए भी वह उस नाबालिग साझीको ज़ाती तौर पर ज़िम्मे-दार नहीं कर सकता। अतः साझेमें व्यापार करनेमें जो याद रखने योग्य बात है वह यह है कि हमारा साझीदार एक ऐसा आदमी हो जिस-का हमें भरोसा हो, जो सट्टा आदि अवैध व्या-पार करनेवाला न हो और जो बालिग हो तथा उन दोषोंसे भी रहित हो,जो उसे पण वा कण्ट्रेक्ट करनेमें असमर्थ बनाते हों।

साझेका इक़रार नामा

अपना साझीदार चुननेके पश्चात् हमें आपसमें एक इकरारनामा लिख लेना चाहिये। भारतीय स्टाम्प कानूनके अनुसार साझेदारीका इकरार-

* देखिये विज्ञान भाग ७ अङ्क ४ पृष्ठ १७२

नामा रु १०) के तमस्सुख-नामेपर लिखा जाना चाहिये। यदि साझेदारी रु ५००) अथवा इससे कम पूंजीकी हो तो रु २॥) के तमस्सुख नामेपर ही ऐसा इकरारनामा लिखा जा सकता है। इतना होते हुए भी हम देखते हैं कि हमारे देश-की लगभग सारी साझेदारियोंके इकरारनामे केवल एक सादे काग़ज़पर अथवा ज़्यादासे ज़्यादा दो एक रुपयेके तमस्सुखनामेपर ही लिखे गये हैं और लिखे जाते हैं। हमारी जनताका ध्यान अभी तक इस अवैध कार्यवाहीकी ओर किसीने भी नहीं दिलाया है।

साझियोंके समान और असमान अधिकार

प्रत्येक साझीदारको साझेके कार्यमें समान हक़ प्राप्त है, यह हमारी भारतीय साझा-नीतिका आदेश है। परन्तु इकरार-विशेष(पण वा इकरारनामे)केद्वारा यह समानता असमानतामें भी परिवर्तित हो सकता है। प्रत्येक साझीदार साझेके व्यापारको चलानेके लिए कन्ट्राक्ट कर सकता है, हुंडी लिख सकता है, लिखा सकता है, बेच सकता है, बंटा सकता है और खरीद भी सकता है। इस प्रकार चलाये हुए व्यापारका नफा भी बराबर हिस्सोंमें बांटा जाता है। प्रत्येक साझीदार उस साझेके व्यापारके संचालन-में सब साझीदारोंका विश्वस्त एजन्ट है। उसके किये हुए सारे कन्ट्राक्टोंको तथा लिखी गई, लिखाई गई, बेची गई, खरीदी गई तथा खरीदवाई गई और बांटी हुई तथा बटवाई गई हुंडियोंका उत्तरदायित्व भी सबपर है। वह इस उत्तरदायित्व-के भारको साधारणतया किसी प्रकारसे नहीं हटा सकते। यदि कोई भी साझीदार साझेके व्यापारके बाहर कोई व्यापार अथवा कन्ट्राक्ट करे अथवा जिस साझीदारके अधिकार पहलेसे परिमित कर दिये गये हों और फिर वह उसके विरुद्ध काम करे तो ऐसे कार्योंका उत्तरदायित्व सब साझियोंपर नहीं रहता। परन्तु इसमें भी शर्त यह है कि उत्तर पक्षको इन बातोंकी सूचना होनी चाहिये। यदि दूसरा व्यक्ति इसमेंकी किसी बातसे परिचित नहीं है और प्रत्येक साझीदारको साझेके कार्य सम्पादनमें समान अधिकार प्राप्त है, ऐसा समझकर यदि वह साझीदार कोई ऐसा कन्ट्राक्ट करता है, जिसके करनेका उसे अधिकार नहीं है तो ऐसे कन्ट्राक्टकी जोखिम सब साझीदारोंको होती है। इस दशामें यह बात निस्सन्देह सच है कि साझीदारसे यदि कोई अलग इकरारनामा लिखा ले तो उससे कुछ लाभ नहीं होता। अतः ऐसा इकरारनामा लिखाना ही निरर्थक है, यह बात भी सहसा कह देना भारी भूल है। क्योंकि ऐसा इकरार नामा लिखा लेने-से उस साझीदारसे कि जिसने अपने अधिकारसे बाहर काम कर अन्य हिस्सेदारोंको नुकसान पहुंचाया है, साराका सारा हर्जाना वसूल किया जा सकता है।

सर्वसम्मति और बहुमत

सब बातोंमें समान अधिकार प्राप्त होते हुए भी कतिपय बातें ऐसी हैं कि जिनमें सारे साझीदारोंकी सम्मति एक होनी ही चाहिए। बिना सर्व सम्मतिके कोई भी साझीदार अपने समान स्वत्वोंके बलपर उस साझेमें विशेष परिवर्तन नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ एक साझीदार किसी अपने मित्रको उस साझेमें हिस्सेदार बनाना चाहता है। वह उस समय तक ऐसा नहीं कर सकता जब तक सारे साझीदार इस बातसे सहमत न हों। ऐसे ही साझेके व्यापारमें तथा उसके संगठनमें भी सर्वानुमति-के बिना किसी भी प्रकारका परिवर्तन, चाहे वह कितना ही लाभप्रद क्यों न हो, नहीं किया जा सकता। अलबत्ता दैनिक कार्य-व्यवहारमें सब साझीदारोंको समान अधिकार है और वे सब बहुमतसे संचालन किए जा सकते हैं। ऐसे ही साधारण बातोंका निर्णय भी बहुमतसे किया जा सकता है।

साझियोंको कितनी कितनी पूंजी लगानी चाहिये। इकरारनामेमें खोलने योग्य विषय

पूंजीके विषयमें कानूनका कुछ प्रतिबंध नहीं है। अमुक साझीदार व्यापारमें कितनी पूंजी लावे और अमुक कितनी, यह सब साझेके इकरारनामेमें खोल दिया जाता है। इसी प्रकार उस इकरारनामेमें साझा सम्बन्धी अन्य बातोंका भी खुलासा लिख दिया जाता है—जैसे साझियोंका कार्य विभाग, साझियोंके खर्चके लिए मासिक अथवा त्रैमासिक धनका परिमाण, व्यापारमें लगाई गई पूंजीके व्याज की दर तथा उठाई गई रकमके व्याजका दर, लाभका बँटवारा, नफेकी रकममेंसे कितनी रकम खोटी उघाई आदिके लिए सालाना पृथक् की जाय, उसका परिमाण और हिस्सेदारोंके अलग हो जाने अथवा मरजाने अथवा दिवाला निकाल देने आदिपर साझेके व्यापारको समेटनेके सम्बन्धमें निर्णय आदि, यद्यपि आईन अथवा कानून इस प्रकारकी बातोंको इकरारनामेमें लिखा जाना आवश्यक नहीं ठहराता। इतना ही नहीं, कानूनकी निगाहमें किसी भी प्रकारका लिखा हुआ इकरार, सम्बन्ध जतलानेके लिए आवश्यक तथा अनिवार्य नहीं है। तथापि असुविधा और हरेक मामलेमें कचहरीका आश्रय लेनेकी दिक्कत मिटानेके लिए उपर्युक्त बातोंका निर्णय इकरारनामेमें लिखा जाना ही श्रेयस्कर है।

पूंजीके विषयमें आईनका कोई प्रतिबंध नहीं है, यह पहले कहा जा चुका है। परन्तु साझीदार जिस तरह चाहें अपने आपको इस विषयमें बांध सकते हैं और ऐसा इकरारनामा वैध माना जाता है। चाहे कोई साझीदार व्यापारमें पूंजी लगावे अथवा नहीं, परन्तु नुकसानकी पूर्त्ति सबको अपने अपने हिस्सेके मुताबिक करनी ही होती है। साधारणतः जितनी रकम जिस साझीदारकी साझेमें पूंजीरूपसे आई है, उतनी रकमके लिए साझा उसका देनदार होता है। परन्तु यदि साझेमें कुछ नुकसान हुआ हो तो इस रकममेंसे नुकसानके हिस्सेकी रकम काटकर बाकी रकमके लिए ही साझा उक्त साझीदारका देनदार होता है।

तीन प्रकारके साझी

साझीदार तीन प्रकारके होते हैं। एकको कर्ता धर्ता (active), दूसरेको सोता अर्थात् निष्क्रिय (sleeping or dormant) और तीसरेको दिखावटी (ostensible or nominal) साझीदार कहते हैं। जन साधारणके सामने यह तीनों बराबर जिम्मेदार हैं।

पहले प्रकारके साझी वह हैं जो साझेके व्यापारके चलानेमें हरतरहसे भाग लें, उसका प्रबन्ध करें, उसके लिए कन्ट्राक्ट करें तथा करावें, हुंडी आदि लिखें तथा लिखावें। इसके विपरीत सोता हुआ अथवा निष्क्रिय साझी वह है जो साझेके लेन देनकी समान जोखिम तो अपने ऊपर लेता है, परन्तु उसके व्यापार संचालनमें कुछ भी भाग नहीं लेता। तीसरे प्रकारका साझी, जिसे हमने दिखावटी साझीका नाम दिया है, वस्तुतः साझी नहीं है। परन्तु अपना नाम तथा साख उस साझेको इस प्रकार काममें लेने देता है कि लोग उसे हिस्सेदार समझकर उस साझेसे सम्बन्ध कायम रखें। वह अपने ऊपर ऐसे मनुष्योंके लेन देनका उत्तरदायित्व लेता है।

अधिकारोंकी असमानताकी आवश्यकता

यह कहा जा चुका है कि आईनके अनुसार प्रत्येक साझीदारका साझेके नफे नुकसान तथा संचालनमें समान अधिकार है। परन्तु यह समानता ऐसी नहीं है, जो किसी खास इकरारनामेके द्वारा असमानतामें परिवर्तन न हो सके। ऐसा करना वैध है। व्यवहार जगतमें भी हमें ऐसे कितने ही उदाहरण दीख पड़ेंगे, जिनमें साझियोंके अधिकार इकरार-विशेष द्वारा न्यूनाधिक कर

दिये गये हैं। स्वत्वोंमें असमानता प्रस्तुत करनेका हेतु यह है कि प्रत्येक व्यक्ति समान ज्ञान, समान कौशल, समान पूंजी, समान शक्ति और समान सम्बन्धवाला नहीं होता। इस तारतम्यके कारण ही साझीदार अपने नफे-नुकसानकी समानता असमान कर लेते हैं। विशेष पूंजीवाला, विशेष व्यापार सम्बन्ध तथा कौशलवाला अपने लिए सदा अच्छी शर्तें मंजूर करा सकता है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस बातका निर्णय व्यापार-विशेषसे बहुत निकट सम्बन्ध रखता है। ऐसे व्यापारोंमें जहां थोड़ी सी पूंजीसे काम अच्छी तरह चलाया जा सकता हो, पूंजीवाला व्यक्ति अपने लिए कड़ी शर्तें मंजूर नहीं करा सकता। ऐसे साझेमें व्यापार कुशल और व्यापारिक सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तिका ही विशेषप्रभाव रहता है। परन्तु जिन व्यापारोंमें नफेकी दर पूंजीके ऊपर निर्भर है, उनमें पूंजीवालेकी स्थिति उपर्युक्त स्थितिसे बिलकुल विपरीत भी हो सकती है, ऐसा हम इस विवेचनको पढ़ कर सहज ही कह सकते हैं। दूसरे दो साधनवाला व्यक्ति उनका पूरा लाभ उठानेके लिए पूंजीवाले व्यक्तिको कई प्रकारके प्रलोभन दिखाता है और उसे साझेमें मिलानेका प्रयत्न करता है। इस दशामें पूंजीवाला व्यक्ति अपने लिए अच्छी शर्तें निःसंदेह मंजूर करा सकता है।

साझी दूसरा व्यापार भी कर सकता है या नहीं ?

नफेके बांटनेमें पूंजी, कौशल तथा व्यवहारिक सम्बन्ध केवल यही तीन बातें विचारणीय हों, सो नहीं है। इन तीनोंके अतिरिक्त एक चौथी बात और है। इसे हम कौशलका ही एक प्रभेद कह सकते हैं। परन्तु उसका भी नफेके बँटवारे-पर पूरा प्रभाव पड़ता है। अतः उसका स्वतंत्र विचार करना आवश्यक है। व्यापार-कौशल चाहे हमारे साझीमें अपरिमित परिमाणमें मौजूद हो, परन्तु उसके अस्तित्वसे ही हमें कोई लाभ नहीं। आवश्यकता इस बातकी है कि वह साझी अपने इस अपरिमित कौशलको साझेके लिए सम्पूर्ण रूप समर्पण कर दे। उस विषयमें साधारणतः सब साझीदार समान हक वाले हैं और प्रत्येकको साझेके व्यापारकी सेवामें अपना सारा समय देना होता है। परन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं कि वह रात दिन २४ घंटे निरन्तर इसी साझेके व्यापारका ध्यान और रट लगाये रहे। और अन्य किसी भी व्यापारमें अपनी शेष शक्ति तथा धन यथेष्ट लाभ उठानेके लिए काममें न लावे। यह सत्य है कि जब तक वह एक साझेमें है तब तक अपने नामसे कोई दूसरा साझा नहीं कर सकता और न प्रत्यक्ष रूपसे अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंका अन्य किसी साझेमें योग देकर लाभ उठा सकता है। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि उसकी फालतू शक्तियोंके उपयोगका कोई भी वैध मार्ग खुला नहीं है। वह साझा करनेके पूर्व अपने लिए इकरारनामेमें इस प्रकारकी स्वतंत्रता रखा सकता है। इसके अलावा यह सारी बातें कानूनकी हैं। हरेक बातके लिए बार बार कानूनकी आड़ लेनेको कचहरी जाना कोई भी पसन्द नहीं करेगा। अतः इस असुविधाको मिटाने तथा व्यक्तिविशेषकी शक्तियोंसे पूर्ण लाभ उठानेके लिए हमें इकरारनामेमें इस बातका अच्छी तौरपर खुलासा करा लेना चाहिये। यथा सम्भव उसे [illegible] विशेष तौरपर इकरार ही करा लेना चाहिये। व्यापारकुशल मनुष्य बहुधा पूंजी रहित होनेपर भी अच्छे साझीदार होते हैं।

आदर्श साझा और निस्वार्थता

हम आदर्श साझा तभी बना सकते हैं जब उसकी स्थायी स्थिति हो और प्रत्येक साझीदार उसके लिए निरन्तर कार्य करता हो तथा उस साझेके रहते वह अपने निजी लाभकी ओर कभी दृष्टिपात न करता हो। ऐसा आदर्श साझा होना कठिन है, परन्तु ऐसा साझा तो अवश्य हो

सकता है जो बहुत वर्षों तक टिका रहे और जिसकी सफलताके लिए प्रत्येक साझीदार यथाशक्ति प्रयत्न करे। साझेके कामके केवल दो ही मार्ग हैं। प्रथम तो हम अपना सम्पूर्ण जीवन उसके ही भलेके लिए अर्पण कर दें और उसके द्वारा हम अपना निजी स्वार्थ साध लें। स्वार्थ साधनके साथ साथ साझेकी भलाई भी हो, यह नहीं हो सकता। साझेका भला स्वार्थ त्याग-से ही हो सकता है। यदि हम अपने साझियोंका भला नहीं कर रहे हैं तो यह स्वतः सिद्ध है कि हम उनके विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। स्वार्थ साधन और साझेका भला, यह दो विरुद्ध बातें हैं। अतः अब यह बात कही जा सकती है कि वही साझा स्थायी और लाभप्रद होता है जिसका प्रत्येक साझीदार यह समझता रहे कि साझेका हित पहले है और मेरा पीछे। साझेकी भलाईमें ही मेरा भला है। जब इस विचारमें शिथिलता आने लगती है तब उस साझेकी नींव खोखली पड़ जाती है और शनैः शनैः वह साझा ही टूट जाता है।

साझे का प्रबन्ध

साझेके प्रबन्धके विषयमें यहां पर इतना ही लिख देना पर्याप्त होगा कि उसकी बागडोर सदा अनुभवी और व्यापारकुशल साझीदारके ही हाथमें स्थायी रूपसे दी जाना चाहिये। नीतिदत्त समान स्वत्वका भंग करना ही इस विषयमें लाभदायक है, परन्तु साथ ही स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रबन्धमें पूंजीवाले तथा विस्तृत व्यापार सम्बन्ध वाले साझियोंका एकदम विस्मरण न कर दिया जाय। चाहे यह व्यक्ति व्यापार संचालन तथा प्रबन्धका कुछ ज्ञान रखते हों या नहीं तो भी इनकी सत्ता इस विषयमें थोड़ी बहुत होना आवश्यक है। कुछ साझीदारों-को पूर्ण स्वत्व और कुछको केवल आर्थिक तथा अन्य विशेष बातोंमें राय देनेका स्वत्व दिया जाना चाहिये।

शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम

(गताङ्कसे सम्मिलित)

[ले० अध्यापक गोपालनारायणसेनसिंह, बी०ए]

आमाशयकी निश्चलता और वाताधिक्य

(Motor insufficiency and Dilatation.)

इसके अंतर्गत कई प्रकारके कष्ट देखनेमें आते हैं। परन्तु उन सबोंमें एक लक्षण मिलता है और वह यह कि समयपर पेट नहीं साफ हुआ करता। इसीके साथ कभी कभी आमाशयके रसोंके स्रावकी न्यूनता भी पाई जाती है, परन्तु यह ज़रूरी नहीं है। एक बात और है, आमाशय-में निश्चलताका दोष आनेपर भी संभव है कि वाताधिक्य न प्रकट हो, परन्तु जहां तक देखा गया है वाताधिक्यके सब कारणोंमें प्रधान कारण आमाशयकी निःसत्वता वा निश्चलता है।

(१) आमाशयकी शुद्ध निश्चलता (Gastric Myasthenia)

इसमें वाताधिक्य नहीं होता, केवल भोजनकी लुगदीको बाहर करनेकी शक्ति जाती रहती है, जिससे वह पेटमें ही पड़ी रहती है और इस कारण पेटको बहुत कम विश्राम मिलता है। इसे रोगकी प्रथमावस्था समझनी चाहिये।

(२) प्राथमिक वाताधिक्य (Primary gastritis)

कुछ दिनों तक पेटमें निश्चलता आनेके उपरान्त तथा पाचन क्रियामें शिथिलता तथा आमाशयकी दीवारोंके बैठ जानेसे इसकी उत्पत्ति होती है। पेटमें वायु इकट्ठा होनेसे और इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि इसकी उत्पत्तिके वास्तविक कारणका ज्ञान हो जाय तो चिकित्सामें बड़ी सुविधा हो सकती है।

इसमें सन्देह नहीं कि बहुधा बहुत ज़्यादा खाने पीने, थोड़ा ही अन्तर देकर ढेर ढेर सा गरिष्ठ भोजन करने तथा अच्छी तरह चबाकर न खाने और कौरको निगल जानेके अभ्याससे

ही रोगका आरम्भ होता है। इसमें भोजनके इतने बड़े भारको नीचे आंतोंमें उतारनेमें जो बल पड़ता है वह तो पड़ता ही है, अलग उनके पचानेके लिए रसोंकी भी बहुत ज़रूरत होती है, जो जुट नहीं सकते। दांतोंका भी इसमें बहुत बड़ा भाग होता है। कितने ही अवसरपर उनके दोषसे ही बहुतेरी विपत्तियां आ घेरती हैं। थोड़ा बहुत वाताधिक्य अर्थात् पेटका फूलना, पेटमें अम्ल-रसके आवश्यकतासे अधिक इकट्ठा होनेपर भी देखनेमें आता है। इन सभी अवस्थाओंमें यह निश्चय जानना चाहिये कि पथ्य इत्यादिके संयमसे और पाचन क्रियाके मर्मको भली भांति समझ लेनेसे रोगसे पूरा छुटकारा मिल सकता है।

(३) वाताधिक्य जटिल (Secondary gastritis)

जिस समय आमाशयकी निश्चलताके साथ वहांपर नमकके तेज़ाबके (hydrochloric acid) स्रावमें भी गड़बड़ी होती है तो चिकित्सामें कठिनता पड़ती है। ऐसी दशामें पेटके भीतर सड़ायन उत्पन्न होने और वायुकी वृद्धिसे क्लेश बढ़ जाता है। यदि रोगीको थोड़ी बहुत स्नायुविक दुर्बलताके अतिरिक्त, मन्द पाचन और वाताधिक्य—पेट फूलनेकी—भी शिकायत हुई तो फिर उसका सम्हालना बड़ी चतुराईका काम होता है।

इसमें सबसे पहले इस बातकी आवश्यकता है कि बहुत थोड़ी थोड़ी मात्रामें और बहुत ही हल्का भोजन दिया जाय, जिसमें वह बड़ी आसानीसे तैयार होकर आंतोंके पचानेके योग्य बने और आमाशयके बाहर हो जाय। यदि इसकी उपयोगिता समझी जाय तो रोगीको कुछ दिनों तक लघु आहारपर रखकर और उसके आमाशयको विश्राम देकर उसकी स्वाभाविक पाचनशक्तिको पुनः जगानेका यत्न किया जा सकता है। अवस्था अधिक ख़राब हुई तो गुदाकी राह नमकके पानीकी पिचकारी देकर रोगी और उसके आमाशय दोनोंको ही पूरा विश्राम देना चिकित्सकका पहला काम होता है।

दूसरी शर्त है कि कोई भारी चीज़ खानेमें न आये। जब कुछ खाया जाय थोड़ा खाया जाय। बिना कष्ट उठाये जहां तक तरल पदार्थ—जैसे दूध, मठा, झोर, शरबत वा पानी इत्यादि कम पिया जाय अच्छा है। इसी कारण पथ्योंमें सर्वोत्कृष्ट दूधका व्यवहार ऐसे रोगीके लिए नहीं बताया जाता। कठिन रोगकी दशामें तो बिलकुल सूखे पथ्यका सेवन करना होता है। जो कुछ तरल पदार्थ आवश्यक होता है वह गुदाकी राहसे पहुँचाया जाता है, परन्तु साधारणतः कुछ तरल द्रव्य पेटमें नितान्त आवश्यक होता है, जिससे खाई हुई चीज़ोंका आंतोंमें सहज ही प्रवाह हो और मल इत्यादि बाहर फेंके जा सकें। इस निमित्त तीन पाव, आधसेर पानी थोड़ा थोड़ा २४ घंटेके भीतर कई दफेकरके पीना ज़रूरी होता है। कुछ लोग इससे भी कम पानी पीकर काम चला लेते हैं। मसालोंका व्यवहार सर्वथा छोड़ देना चाहिये। चाय काफीसे भी पाचनशक्ति मन्द पड़ती है। खाना गरम गरम खाना अच्छा होता है। देरका बना ठंडा भोजन रोगीके लिए उतना उपयुक्त नहीं है।

भोजन दिनमें थोड़ा थोड़ा कई बार खिलाया हुआ गुणकारी ठहरता है। भोजनके लिए ऐसी चीज़ें होनी चाहिएँ, जो अत्यन्त बलदायक और पुष्टकारी हों और साथ ही उनमें यह गुण भी हो कि शीघ्र पचकर शरीरसे बाहर हो जायं। हरी तरकारी और भाजी इस कारण परित्याज्य हैं। उनमें तोलके हिसाबसे शरीरके लिए पोषक द्रव्य बहुत कम है।

यदि इस बातका प्रमाण मिले कि आमाशयके अम्लरस इत्यादि उचित रूपसे काम करते हैं तो रोगीको बिना रोक टोक ऐसा आहार दे सकते हैं, जिसमें प्रोटीन हो। मांस खिलाना हो तो उसका कोफ़्ता बनाकर और बहुत सूक्ष्म रूपसे पकाकर देना चाहिये, जिसमें उसके पचनेमें कोई सन्देह न रहे। देरतक मांसको आगपर पकानेसे

वह मुलायम और स्वादिष्ट भले ही हो जाय पर शीघ्र पचता नहीं। कच्चा या थोड़ा पकाया हुआ मांस खाते ही पच जाता है।

इसके प्रतिकूल यदि आमाशयमें रसोंका स्राव अधूरा होता है तो ऐसा आहार देना चाहिये जिसमें कर्बोज हो। परन्तु वह इस रूपमें हो कि पच भी जाय। प्रायः इस प्रकारके आहार-से सड़ायन उत्पन्न हुआ करती है, परन्तु इससे भय न खाना चाहिये। घी, मक्खन रुचे तो लाभकारी ठहरता है। ताज़ा मक्खन वा थोड़ी बालाई भी हज़म हो जाती है। ख़ैर, इन चीज़ोंके खानेमें एक नियमका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये। वह यह कि जो कुछ खाया जावे वह स्वस्थचित्तसे और खूब धीरे धीरे, जिसमें मुंहके अन्दरकी पाचनक्रिया समुचित रीतिसे पूरी हो। मामूली रोगीको भी भोजनके उपरान्त बिस्तर वा चारपाईके ऊपर लेटकर निश्चित रूपसे विश्राम लेना चाहिये। आरम्भमें कुछ दिनों तक पेटको हलकी पिचकारीके द्वारा धोना आवश्यक होता है। बादको रोगी अपनी अवस्था देखकर इसे छोड़ सकता है या जारी भी रख सकता है। मालिश, धौति-क्रिया और होमिओपैथिक चिकित्सासे इस रोगमें बड़ा लाभ होता है।

चिकित्साके आरम्भमें रोगीको चारपाईपर विश्राम लेना नहीं भूलना चाहिये। उस समय थोड़ा दूध, बार्ली (जौ) वा आरारूट ग्लासमन, मक्खन, बालाई, अंडे, कच्चा मांस या पिसी हुई मछली इत्यादि उचित पथ्य है। फिर जैसे जैसे शरीर-में बल आता जाय अधिक पुष्ट भोजन दिया जा सकता है, परन्तु रोगीके स्वास्थ्य लाभ करनेके पश्चात् भी यथासंभव भोजन सादा और हलका हो तथा बहुत थोड़े परिमाणमें और देरतक चबाकर खाया जाय। तरल द्रव्य भी अधिक व्यवहार-में न आने पाये, यहां तक कि २४ घंटेके अंत-र्गत जल इत्यादि ३० वा ४० औन्सकी सीमाके भीतर ही भीतर लिया जाय।

पित्ताधिक्य

यह रोग भी कभी तो जन्मसे ही और कभी खाने पीनेके असंयमसे होता है। परन्तु पुराना होनेपर संभव है कि पेटके भीतर दाने निकल आवें। इसमें सन्देह नहीं कि इस रोगके अन्य लक्षणोंमें पेटका चढ़ना वा फूलना भी एक है। इसको अजीर्णका सामान्य रूप समझ लेना चाहिये। आमाशयके ऊपरी भागमें एक प्रकारकी जलन, जो भोजन करनेके दो या तीन घंटेके बाद प्रकट होती है, इसके प्रधान लक्षणोंमें है। यह वेदना प्रायः कुछ खा लेने या कै करनेके बाद शान्त हो जाती है। यह निश्चय है कि स्वाभाविक रूपसे वमन या कैका होना एक असाधारण बात है, परन्तु उँगली डाल डालकर बहुतेरे लोग इसका अभ्यास कर लेते हैं। पेडू वा पेटके निचले भागमें वायुका इकट्ठा होना (रालके कार्बोनेत और पित्तके मिश्रण-से इस वायुकी उत्पत्ति होती है), गुरदेमें जलन और खट्टी डकार आना इत्यादि इसके आनुषंगिक लक्षण हैं। बहुधा पेटमें तीव्र वेदना भी उठती है और उसके साथ ही हीक और उल्टी डकारके (water brash) भी लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

इन सबका एकमात्र कारण आमाशयके भीतर रसोंका बड़ी शीघ्रतासे और अनुचित परिमाणमें संचय होना है। स्वस्थ आदमीके पेटमें बहुत देर-तक नमकके तेज़ाबका पता नहीं मिलता, परन्तु परीक्षा करनेसे मालूम पड़ता है कि रोगीके भोज-न करनेके १० मिनटके ही बाद यह अम्ल वर्तमा-न रहता है। संभव है कि किसी किसी दशामें पाचक द्रव्योंका स्राव, पाचन क्रियाके समाप्त होनेपर भी जारी रहता है। यही कारण है कि पेटमें, भोजनका मंडादि (starchy) अंश पहुंचते ही अम्लकी बहुतायतसे उचित रीतिसे पचने नहीं पाता। आमाशयमें कुछ देरतक ठहर-नेके बाद मंडादिका (चावल, आलू आदिका) पाचन हो सकता है, परन्तु इसका तो अवसर नहीं मिलता और वह ज्योंका त्यों रहकर पेटमें

भारीपन और भिन्न भिन्न असुख उत्पन्न करता है। हां, भोजनमें प्रोटीनका अंश मज़ेमें पच जाता है। स्नेह वा वसाके पचनेमें भी पित्ताधिक्यके कारण संदेह हो सकता है, परन्तु जहाँ तक देखा गया है इसमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। इतना ज़रूर है कि रोगीको मक्खन इत्यादिसे अरुचि रहती है। साधारणतः नियमित रूपसे अन्न आमाशयसे होकर आंतोंमें उतर आता है परन्तु जब कष्ट अधिक होता है तो कुछ विलम्ब होता है और न्यूनाधिक पेट भी चढने लगता है। कदाचित् मंडादिके (starch) पाचनमें गड़बड़ी पैदा होनेके कारण ही ऐसा होता हो। यदि पित्ताधिक्यकी शिकायत बहुत दिनों तक रह जाय तो उससे वाताधिक्य (gastirtis) होने का भय रहता है जिसमें बार बार वमनका होना तथा वमनमें श्लेष्माका पाया जाना इत्यादि विकार खड़े हो जाते हैं।

यह पित्ताधिक्यका साधारण रूप हुआ परन्तु अनेक स्थानोंपर इसके साथ और कई एक रोग लग जाते हैं, जिनका खूब पूरा विचार करके पथ्यादिकी व्यवस्था की जा सकती है।

यहांपर इस रोगकी उत्पत्तिके कारणोंपर पुनः एक दृष्टिपात कर लेना असंगत न होगा। अस्तु जैसा अजीर्ण, वाताधिक्य और बद्धकोष्ट इत्यादिके प्रकरणमें बताया गया है मुख्यतः भोजनको अच्छी तरह दांतोंसे न कुचलना, सहसा उसे गलेके नीचे उतार देना बड़ी जल्दबाज़ीसे खाना और तुरन्त ही कामको दौड़ जाना, भोजनमें प्रोटीनकी बहुलता, मदिराका अत्यधिक सेवन आदि इसके मूल कारणोंमें से हैं।

नित प्रति लोभ वश आवश्यकतासे अधिक खाना भी कितने ही मनुष्योंके विनाशका कारण होता है। परन्तु अनुभवसे मालूम होता है कि १०० में ६० रोगी मांस मछली और मसालोंकी आसक्तिके वश इस रोगके चंगुलमें फंसते हैं। यद्यपि स्वास्थ्य विज्ञानके अनुसार प्रोटीन वा कर्बोजसे किसी एककी अतिशयताके कारण पित्तकी प्रबलता होना निर्विवाद है। शादियोंमें, लम्बी यात्राओं, या प्रवासमें साधारण भोजन अप्राप्य होनेके कारण कितने ही व्यक्ति पूरी, मिठाई, निरा चावल या फल फलहरी, किसी एक चीज़से बहुत दिनोंतक निर्वाह करते हैं और अंतमें उनका आमाशय बिगड़ जाता है। बहुत लोग काममें व्यस्त रहनेके कारण या छूत छातके विचारसे या स्वयं रोटी बनानेमें अनभ्यस्त होनेके कारण वा आलस्यसे पूरा आहार नहीं लेते, उसका भी यही परिणाम होता है।

खेदकी बात यह है कि कई नवयुवक अपना शरीर बनानेकी उत्तेजनामें बहुत बहुत बादाम, पिस्तेका हलुवा, बालाई, घी-मक्खन, पुलाव, अख़नी (कई प्रकारके मांसका सार) अंडे इत्यादिका अपरिमित व्यवहार करके अपनी शक्तिको निकम्मी कर देते हैं। अपने घरके सादे भोजनको छोड़कर, मित्रमंडलीके बीच सम्मानसूचक दावतों और भोजोंमें, जहांपर रंग विरंगे व्यञ्जन खानेमें आते हैं, सम्मिलित होना भी इस रोगकी नींव डालता है।

डाक्टर लोग इस रोगके लक्षणोंको बहुत स्वाभाविक समझते हैं, वह कहते हैं कि प्रकृतिकी ओरसे मनुष्यके स्वेच्छाचारका यह केवल उत्तर मात्र है। जब वह अधिक मात्रामें अनापशनाप खाने लगते हैं, तो आमाशयको उन्हें पचाना अनिवार्य हो जाता है और वह असाधारण रूपसे पित्तादि पाचक द्रव तैयार करने लगता है। यदि मनुष्यके कर्मसे उत्तेजना पाकर वह भी दूसरी सीमाको पहुंच जाय तो उसमें दोष किसका है?

इसके अतिरिक्त डाक्टर यह भी स्वीकार करते हैं कि पित्ताधिक्य अकारण भी उपस्थित होता है। रोगीका साधारण स्वास्थ्य ठीक रहता है। हां, स्नायविक विकार थोड़ा बहुत कहीं कहींपर देखा जाता है। पुनः पुरुषोंकी अपेक्षा यद्यपि यह स्त्रियोंमें अधिक पाया जाता है, तथापि ऐसे रोगी लोभी, कंपशील और अकारण द्रुतपरायण भी होते हैं।

घरके सुखिये होते हुए भी वह अपने ऊपर स्वयं परिश्रमका काम ले लेते हैं। कितने ही ऐसे व्यवसायमें लिप्त होते हैं कि उसके कारण उजलतमें खाना, इक्के वा गाड़ीपर दौड़ना तथा बहुत चिंतित और व्यग्र रहना पड़ता है। इन्हींके मारे उनकी चिकित्सामें भी बहुत अड़चनें आती हैं, और बादको रोग प्रायः किसी आकस्मिक उद्वेग, मानसिक पीड़ा वा कामके बोझसे विषम हो उठता है। कभी कभी ऐसे रोगी भी पाये जाते हैं, जो बीचमें अच्छे होनेपर बिना संकोच सब कुछ खा लेते हैं, परन्तु रोगके उभड़ आनेपर उन्हें फिर खाटकी शरण लेनी पड़ती है।

इन सब रोगियोंकी दशाकी थोड़ी सी जाँच करनेपर प्रायः इस बातका पता चलता है कि रोगीकी किसी विशेष भोज्य पदार्थपर अधिक प्रीति होने तथा उसे खा लेनेके कारण कष्ट बढ़ता है, परन्तु उसका छूटना सहज नहीं और इसीलिए चिकित्सा भी निष्फल होती है। दूसरी पीड़ाओंके साथ कब्ज़ वा बद्धकोष्ठ भी बहुत दुःख देता है। बीमारी बढ़ जाने और कुछ कुछ असाध्य हो चलनेपर रोगीको नैराश्य और भग्नहृदयता भी आ दबाती है। जो कुछ हो रोगके संपूर्ण रूपसे हट जानेपर भी रोगीको इस बातसे पूरा सावधान और सतर्क होना चाहिये कि अब पहले जैसे गड़बड़ सड़बड़ खानेके दिन गये। उनका इसीमें कल्याण है कि अपने शेष जीवनमें किसी निपुण डाक्टरसे अपनी अवस्थाके अनुसार निदान लेकर पथ्यकी तालिका बनवावें और पूर्ण दृढ़ताके साथ उसका अक्षरशः अनुसरण करें।

पित्ताधिक्यमें पथ्य (निरामिष)

(१) पहिले आक्रमणमें जब कष्ट अधिक हो अर्थात् वमनकी प्रबलता हो, जिससे पेटके भीतर पानीका ठहरना भी असंभव सा प्रतीत हो तो दूधकी कांजी एक छटांकके परिमाणमें दो दो घंटेपर पिलाइये। कांजी बनानेकी सहज़ रीति यह है कि अंगरेज़ी दवाखानेसे कुछ नीबूकेसत* की डली लीजिये और उसे चूर कर रख लीजिये। उधर एक छटांक दूधको आगपर थोड़ा तपा लीजिये फिर उसीमें दो तीन रत्ती नीबूकासत मिलाइये, दूध फट जायगा, उसे एक साफ कपड़ेमें छान डालिये। श्वेत अंश अलग कीजिये और शुद्ध खट्टा जल रोगीको चमचेसे शनैः शनैः पिलाइये।

इसीके स्थानपर बार्लीका पानी भी दिया जा सकता है। एक कपड़ेमें बार्लीकी पोटली बनाकर उबलते पानीमें लटका देते हैं, कुछ देर बाद जब उसका सत खिंच जाता है तो उसे व्यवहारमें लाते हैं।

फलोंका पानी भी उपादेय है, जैसे डाभका (हरे नारियल) ताजा पानी, दो चार घूंट अनार, कसेरू और पपीतेका रस, जिस ऋतुमें जो मिले अच्छा होता है।

(२) वमनका जब प्रकोप घटता हुआ दीखे और पेटमें कुछ ठहरने लगे तो तरकारियोंका रसा—जैसे भिण्डी, परवल, केला, ननुआ, लौकी इत्यादिका थोड़ा थोड़ा चमचेसे दिनमें कई बार अकेला या खूब पकाये पुराने चावल या सूजीकी रोटीकी पपड़ियोंके साथ पच सकता है। रोटी बनानेकी यह विधि है कि पहले सूजीको पानीमें गूंधकर उसकी लोई खौलते पानीमें डाल दी जाय। कुछ देर चुरनेके बाद उसे निकालकर फिरसे खूब गूंधना चाहिये तब उसके छोटे छोटे फुलके सेक लिये जायँ।

(३) जब पेटमें मल बँध जाय और कमसे कम २४ वा ३६ घंटेमें एक बार पेट साफ़ होने लगे तो दिनमें ५, ६ घंटोंका अंतर देकर हलका हलका कई बार भोजन करनेका नियम बांधना चाहिये। प्रातःकाल एक या दो सूजीकी रोटी, दो ढ़ाई तोला मक्खन, मिश्री या गेहूंका दलिया, जिसमें ५, ७ किशमिश भी पड़ी हों और जो पानीमें अच्छी

* साइट्रिक एसिड।

तरह पकाया गया हो खाया जा सकता है। दोपहरको रोटी वा चावल, मूंगकी दालका पानी वा पतली दाल ही, केले, परवल वा लौकीकी थोड़ी तरकारी, घरका जमाया दही, जिससे बालाई उतार ली गई हो, किशमिश वा आलूबुखारेकी चटनी इत्यादि खा सकते हैं। खानेके उपरान्त कमसे कम १ घंटे विश्राम लेकर उठनेपर यदि प्यास मालूम हो तो आधपाव तीन छटांक घरका मथा हुआ मट्ठा पी सकते हैं। संध्या समय एक दो रोटियां वा पानीमें पका साबूदाना, जिसमें रुचिके अनुसार नीबूका अर्क वा मिश्री डाली गई हो खाना चाहिये। रातको खाना जहाँ तक हो सके हलका खाया जाय और सोनेके दो ढाई घंटे पहले समाप्त हो जाय (साबूदानेको भूनकर और सिलपर पीस कर पकाना चाहिये)। जिन लोगोंको दूध पचता हो वह पहले तो दूधको पानीमें मिलाकर थोड़ा थोड़ा लें और फिर वैसे ही एक पावके अन्दाज़ लिया करें। यदि साधारण दूध न हज़म हो तो उसे उबालकर उसकी बालाई निकाल डालनी चाहिये, तब पीना चाहिये। उसे और भी हलका करनेके लिए उसमें थोड़ा सा चूनेका पानी (lime water) मिला लिया जा सकता है। बढ़िया सोडावाटरके साथ भी पीनेसे दूध पच जाता है, किन्तु हठ करके दूध देनेकी ज़रूरत नहीं है। किसीको दूध रुचता है और किसीको अनेक उपाय करनेपर भी नहीं रुचता।

पित्ताधिक्यमें पथ्य (आमिष)

(१) प्रातःकाल आधपाव पतला किया हुआ दूध, एक या दो, गरम पानीमें, थोड़ा उबाले गये अंडे, एक छटाँक रोटी और १½ तोला मक्खन। दस बजे दिनको फिर आधपाव दूध, जैसा ऊपर बताया गया है। एक बजे फिर दूध, एक छटांक कोई हलकी मछली और चिकिन, रोटी और मक्खन। चार बजे दूध। सात बजे एक या दो अंडे, रोटी और मक्खन। दस बजे दूध।

इस पथ्यसे कुछ सहारा मिले और अपने खाने पीनेका पहलेका दोष ज्ञात हो जाय तो रोगीको चाहिये कि दांतोंको स्वच्छ रखने, देर तक खूब चबा चबा कर और बहुत धीरे धीरे खाने, नियत समयपर रसोईमें आजाने और भोजनके उपरान्त कमसे कम आध घंटे आराम लेने, शराब या तंबाकूकी बान छोड़ने और खुली हवामें थोड़ी कसरत करनेका पूरा यत्न करे। यदि सादे भोजनका अभ्यास पड़ गया तो समझिये रोगी चंगा हो गया।

कुपथ्य

मामूली या गरम मसाले, राई, सरसों, गोलमिर्च, सिरका, अदरक, मूली, गाजर, आलू, घी वा तेलमें तली वा भुनी तरकारियां या ऐसे साग भाजी, जिनमें पोषक द्रव्य कम हों और सेलूलोज़ अधिक, न खानी चाहिये। अचार, मुरब्बे, मिठाई, हलवा, पूरी चाय, काफी, झोर वा शोरवा इत्यादिसे भी परहेज़ करना चाहिये। चावल, मखाना, साबूदाना इत्यादि मंडमय द्रव्य यदि लिया जाय तो पहले आगपर भूनकर पीछेसे दूध या पानी में पकाया जावे। देरका बना वा ठंडा भोजन भी हानिकारक होता है। ५५° फै. से ठंडा और १३०° से गरम न होने पावे। भोजनमें १००° फै की उष्णता हो तो आमाशयमें रसोंका स्राव सीमाके भीतर ही होता है।

कुछ विषयोंपर डाक्टरोंमें स्वयं मतभेद है, जैसे नमकका व्यवहार। कुछ लोगोंके मतसे आमाशयका अम्लरस रक्तमें विद्यमान हरिदोंसे* प्राप्त होता है। इसलिए वह पित्ताधिक्यमें नमकका खाना निषेध करते हैं। यद्यपि नमक छोड़नेसे तत्काल कोई लाभ नहीं देखनेमें आता, किन्तु इसकी मात्रा कम कर दी जाय तो कुछ बुरा भी नहीं है। पित्तके स्रावपर इसका प्रभाव ज़रूर पड़ता है।

दूसरी विवादग्रस्त बात कबीज वा प्रोटीन-

* नमक आदि (chlorides), जो हरिनके यौगिक हैं।

मय भोजनका एकान्त सेवन है। यह तो निश्चय है कि पित्ताधिक्यमें जब कर्बोज (चावल, चीनी, दूध इत्यादि) खाया जाता है तो पित्तकी बहुलतासे उसकी पाचन-क्रिया एकाएक रुक जाती है और पेटमें पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। उधर प्रोटीनमय भोजन जैसे रोटी, दाल, मांस, दही इत्यादि—न केवल आसानीसे पच जाता है वरन् पित्तको भी रोकता है। इससे यह नतीजा निकला कि कर्बोज त्याज्य है। हां, थोड़ी चीनी या मिश्री वा अल्प परिमाणमें चावल वा आरारूट इत्यादि दे सकते हैं। परन्तु द्विविधाकी बात तो यह है कि प्रोटीन-मय भोजन खानेसे ही पित्तका अधिक स्राव होता है। उधर कर्बोजमय भोजन पित्तको बिलकुल उत्तेजित नहीं करता। यहां तक कि जिन पूर्वी देशोंमें, जैसे चीन, जापान आदिमें, चावल दूध और शाक तरकारीका अधिक व्यवहार होता है यह रोग सुननेमें नहीं आता। विशेषकर मांस मछली अंडे भक्षण करनेवाले यूरोपवासियोंको ही पित्ताधिक्य सताता है। इससे स्पष्ट है कि रोगि-योंके प्रोटीनमय भोजन देकर उनका चाहे थोड़े दिनोंके लिए कष्ट निवारण किया जावे, परन्तु कर्बोज और प्रोटीन मिश्रित भोजनका अभ्यास डाले बिना यह जड़ मूलसे नहीं दूर हो सकता।

पित्ताधिक्यके लिए व्यायाम

जिस किसीको पित्ताधिक्यकी थोड़ी या बहुत शिकायत हो वह यदि बहुत निर्बल पड़ गया हो तो १०, १५ मिनटसे लेकर घंटे डेढ़ घंटे ज़रूर घूमे। इस रोगमें घूमनेकी महिमा सभी डाक्टर वैद्य मानते हैं। तबियत जैसे सम्हलने लगे घूमना भी बढ़ाते जाना चाहिये। शुरूमें केवल २ मील जाकर लौट आना चाहिये। फिर धीरे धीरे जाने और आने दोनोंका हिसाब करके दूरी बढ़ाते जाना चाहिये। सबसे अच्छी बात यह है कि रोगी एक ऐसी छायादार सड़क चुने, जिसपर स्थान स्थानपर पत्थर गड़े हों और मीलका नम्बर लिखा हो। अन्तमें १६ मील तकका चक्कर लगाना चाहिये। इससे स्वास्थ्यमें अद्भुत उपकार होता है। जिन रोगियोंके पेटसे दो चार दाने अन्नके भी ज्योंके त्यों मलकी राह निकल आते थे उन्होंने भी धैर्य पूर्वक घूमनेका अभ्यास करके पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किया है। पहाड़ी देशोंमें घूमनेकी विशेष सुविधा होती है। वहां पर ४, ६ मील राह चलनेके बाद यदि १० मिनट विश्राम कर लिया जाय तो मनुष्य चाहे कैसा भी पसीनेसे लतपत और बेदम हो वह पुनः ताज़ा हो जाता है और बिना थकावटके ५, ७ मील आगे निकल जाता है। वर्षा ऋतुके अंतमें या वसन्त कालमें पहाड़ी प्रदेश पृथ्वीपर स्वर्ग समान हो जाते हैं। धनी और सम्पन्न मनुष्योंको इस सुअव-सरसे पूरा लाभ उठाना चाहिये।

पित्ताधिक्यसे बचनेके सहज उपाय

(१) यह पता लगाइये कि कौनसा भोजन खानेमें आपका कुशल है। अटकल मिल जाय तो फिर शीघ्र न बदलिये।

(२) बेकार न बैठिये। कुछ न सही अपनी तबियत ही बहलाइये। पर ऐसा न हो कि सब ओरसे ध्यान उचट कर पेटकी ओर जा लगे और आप झींकने लगें—"कबका खाया हुआ भोजन नहीं हज़म हुआ, आंतें दुखती हैं, पेट बोझल है, वायु भरा है इत्यादि।"

(३) इसका भय न कीजिये कि आप बहुत कम खाते हैं, दुर्बल हो जायंगे। सादा भोजन करते जाइये, कुछ दिनोंमें आप ही आहार बढ़ जायगा। इस समय जितना पचता है शरीरके लिए उतना ही आवश्यक है। पुष्टि और बल प्राप्त करनेके बहाने आप अनाप शनाप न खा लें, इस तरह महीनोंकी चिकित्सा एक दिनमें निष्फल हो जायगी। अति वृद्ध रोगियोंको छोड़कर और सभी लोग स्वास्थ्य और प्रकृतिके नियमोंका पालन कर शीघ्र ही नीरोग हो जाते हैं।

(४) जिस भोजनके कुत्सित व्यवहारसे शरीर ख़राब हुआ है, उसे बहुत दिनों तक आमा-

शय नहीं ग्रहण कर सकता, परन्तु समय पाकर वह भी एक दिन रुचने लगेगा। उसके खानेमें उजलत न कीजिये। बहुत लोग आक्रमणके समय भी मज़ेमें दूध, तरकारी, चावल रोटी इत्यादि हज़म कर लेते हैं। दूसरे एक कौर खायं तो खाट-से न उठें। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

(५) कोई दूसरी चीज़ खा सकें या नहीं, थोड़ा बहुत दही ज़रूर पचेगा। जब कुछ खाइये, दहीके साथ खाइये। दहीको ज़रूर साधिये। पित्त दोषके रोगियोंके लिए यह अमृत स्वरूप है।

(६) ख़ूब देरमें खाइये। बात करने, या सोचने विचारनेमें खाते समय ध्यान न बटने पाये। दृढ़ विचारके साथ खाइये कि जो कुछ अन्न आप ले रहे हैं वह पेटमें जाकर शक्ति और सामर्थ प्रदान करेगा।

(७) अच्छी तरह कुचल कर जो अन्न आप खाँयगे आमाशयकी बिगड़ी अवस्थामें भी पच जायगा।

(८) भोजनके समय पानी न पीनेका नियम पालन कीजिये।

(९) भोजनके उपरान्त कमसे कम आध घंटे निश्चेष्ट होकर ज़रूर विश्राम कीजिये।

[असमाप्त]

बिजलीको मात्रा और बाधा

[ले०—प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

विज्ञानके कर्कके अंकमें यह बतलाया गया है कि जब किसी पदार्थके वाल्टामापकमें ध इकाईकी धारा, स सेकिण्डों तक बहाई जाती है, तो जो उस पदार्थकी मात्रा मा धाराके प्रभावसे निकलती है, उसका धारा और समयसे यह सम्बन्ध हैः—

Electricity विद्युत्शास्त्र]

मा = मधस

म उस मात्राके लिए लिखा गया है, जो इकाई धाराके एक सेकिण्डतक बहनेसे निकलती है।

ध और स के गुणनफलको बिजलीकी मात्रा कहते हैं।

बिजलीकी मात्राकी व्यवहारिक इकाईका नाम कूलम्ब है। जब एक एम्पियरकी धारा एक सेकिण्डतक बहती है, तो बिजलीकी इकाई मात्रा अर्थात् एक कूलम्ब खर्च होती है। १० एम्पियर-की धारा एक सेकिण्ड बहनेसे १० कूलम्ब खर्च होंगे। यदि १० एम्पियरकी धारा १० सेकिन्ड तक बहती रहे तो १०० कूलम्ब खर्च होंगे। इसी प्रकार एक एम्पियरके १ घंटे तक बहनेसे ३६०० कूलम्ब खर्च होंगे। सुगमतासे हिसाब लगानेके-लिए कूलम्ब, एम्पियर और सेकिन्डोंका सम्बंध इस समीकारणसे सूचि त कर सकते हैं।

कूलम्ब = एम्प × सेकिन्ड ... (१)

यह इकाई विद्युत्रासायनिक क्रियाओंके सम्बन्धमें बड़ी उपयोगी है। समीकरण (१) इस प्रकार लिख सकते हैं।

मा = मक

जहां क कूलम्बों अर्थात् एम्पियर और सेकिण्डोंके गुणनफलकेलिए लिखा गया है।

म की परिभाषा पहले भी दी जा चुकी है और इसकी दूसरी परिभाषा इसी समीकरणके आधार-पर इस प्रकार दी जा सकती हैः—

$$म = \frac{मा}{क}$$

यदि क=१, तो म=मा अर्थात् म पदार्थकी वह मात्रा है जो एक कूलम्बसे निकलती है और इसको पदार्थका विद्युत्-योग-भार कहते हैं। हम जानते हैं कि चांदीका योगभार १०७·८८ ग्राम है और चांदीका विद्युत्-योग-भार ·००११८३ ग्राम प्रति कूलम्ब है। इसलिए चांदीके योग भारके बराबर

मात्रा निकालनेकेलिए $\frac{१०७.८८}{.००११८३}$ अथवा ६६४७० कूलम्बोंकी आवश्यकता होती है।

तांबेका योगभार ३१.७८ ग्राम है और इसका विद्युत्-योग-भार .००३२९ ग्राम प्रति कूलम्ब है। तांबेके योगभारके बराबर मात्रा निकालनेकेलिए $\frac{३१.७८}{.००३२९}$ अथवा ९६४.० कूलम्बोंकी आवश्यकता होगी। इसी प्रकार हम जांच सकते हैं कि सभी पदार्थोंके योगभार निकालनेकेलिए सदैव ६६४७० कूलम्बोंकी आवश्यकता होती है। कुछ लेखक बिजलीकी इस मात्राको फेरेडे कहते हैं।

बाधा और उसकी इकाई

हम बाटरी बनाना जानते हों तो अच्छा है, यदि न जानते हों तो बाज़ारसे मोल ले सकते हैं। हम चांदीका वाल्टामापक भी बना सकते हैं। अब बाटरी और वाल्टामापकसे किसी बर्तनपर चांदी कैसे चढ़ा सकते हैं। हमको पहले यह तो निश्चय कर ही लेना पड़ेगा कि इतनी चांदी हम चढ़ावेंगे। मान लीजिये कि एक फुट लम्बी और एक फुट चौड़ी पट्टीपर एक तरफ १ तोला (११.६ ग्राम) चांदी चढ़ाना चाहते हैं, तो हमको इन बातोंपर ध्यान देना पड़ेगा। एक कूलम्बसे .००११८३ ग्राम चांदी चढ़ती है, इसलिए हमको $\frac{११.६}{.००११८३}$ अथवा १०,००० के लगभग कूलम्बोंकी आवश्यकता है। १०,००० कूलम्ब एक एम्पियरकी धाराके २$\frac{३}{४}$ घंटे तक या १० एम्पियरकी धाराके १७ मिनटतक या १०० एम्पियरकी धाराके १०० सेकिण्ड तक या १००० एम्पियरकी धाराके १० सेकिण्डतक या १०००० एम्पकी धाराके १ सेकिण्डतक बहनेसे मिल सकते हैं। इन धाराओंमेंसे कौनसी धारा उचित होगी। बहुतसे जल्दबाज़ तो यह कहेंगे कि जब १०००० एम्पकी धाराके एक ही सेकिन्डतक बहानेसे काम निकल सकता है तो हम एक एम्पकी धारा बहाकर क्यों २$\frac{३}{४}$ घंटे तक इन्तज़ार करते बैठें। यहां वास्तवमें हमारे इन्तज़ारका काम नहीं है। देखना यह है कि कौन सी धारासे चांदी अच्छी चढ़ेगी। यदि १०,००० एम्पकी धारासे चांदी अच्छी चढ़े तो १०,००० एम्पकी धारा ही इस्तेमाल कीजिये। प्रयोगों द्वारा यह निश्चित हुआ है कि धाराका परिमाण, जिस चीज़पर चांदी चढ़ाते हैं उसके क्षेत्रफलके अनुसार न्यूनाधिक होना चाहिये। यदि क्षेत्रफल ५ वर्ग इंच है और १ एम्पसे अधिक धारा बहाई जावे, तो चांदी ठीक ठीक नहीं चढ़ेगी। हमारी पट्टी १ फुट लम्बी और एक फुट चौड़ी है, इसका क्षेत्रफल १४४ वर्ग इंच है, इसकेलिए ३० एम्पतककी धारा उचित है, इससे प्रबल धारा बहानेसे चांदी पट्टीपर भली भांति नहीं जमेगी। इसलिए हमको ३० एम्पकी धारा ५$\frac{१}{४}$ मिनट तक बहानी पड़ेगी जल्दी करनेसे काम नहीं चलेगा। वास्तवमें ३ एम्पकी धारा घंटे भरतक बहानेसे अच्छा फल मिलेगा।

क्या बाटरीको वाल्टामापकके साथ जोड़ते ही ३ एम्पकी धारा बहने लगेगी? यह बात एम्पमापकके चक्रमें लगा देनेसे जांची जा सकती है। जांचनेसे ज्ञात होगा कि या तो धारा दुर्बल है या प्रबल किन्तु ठीक ठीक ३एम्प नहीं है। अब यदि दुर्बल हो तो प्रबल कैसे हो सकती है और प्रबल हो तो दुर्बल कैसे हो सकती है। इन्हीं प्रश्नोंका उत्तर हम इस लेखमें देना चाहते हैं।

बाटरीसे वाल्टामापकमें धारा बहानेके लिए बाटरीके सिरोंको वाल्टामापकके सिरोंसे तार द्वारा जोड़ देना पड़ेगा। जबतक तार द्वारा सिरे नहीं जोड़े जावेंगे धारा नहीं बह सकती है। बाटरीमें धारा बहानेकी शक्ति अवश्य है और बिजली (मानों) चक्रमें चक्कर लगानेके लिए तैय्यार ही रहती है। किन्तु जब बिजली चक्रमें प्रवेश करती है, तो उसको बाधाका अनुभव होता है। और यही चक्रकी बाधा धाराके दुर्बल और

प्रबल होनेका कारण होती है। रास्ता जितना लम्बा और सकड़ा होता है उतनी ही बाधा अधिक होती है। रास्ता जितना छोटा और चौड़ा होता है बाधा उतनी ही कम होती है।

बिजली तारोंमें होकर जाती है, तार ही उसका रास्ता है, तार जितना लम्बा और बारीक होता है उसकी बाधा उतनी ही अधिक होती है। जितना तार मोटा और छोटा होता है उसकी बाधा उतनी हो कम होती है। एक एक गज़ लम्बे दो समान तार लेकर यदि उनको इस प्रकार जोड़ें कि एक तार दो गज़ लम्बा हो जावे तो इस जोड़की बाधा, एक तारकी जितनी बाधा है उसकी दुगनी हो जायगी। किन्तु इनको इस प्रकार जोड़ें कि जोड़की लम्बाई गज़ भर ही रहे (जैसा चौथे चित्रमें दिखलाया गया है) तो जोड़की बाधा एक
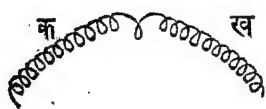
चित्र ३
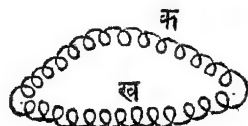
चित्र ४

तारकी बाधासे आधी हो जावेगी। तारोंके जोड़नेकी पहली रीति शृङ्खला बंधन और दूसरी हारबंधन कहलाती है। शृङ्खला बंधनसे बाधा बढ़ जाती है और हार बन्धनसे बाधा घट जाती है। यह तो साधारण हिसाब हुआ, किन्तु पूरा वैज्ञानिक हिसाब नीचे दिये हुए समीकरणसे विदित होगा–

$$\text{बा} = \text{व}.\frac{\text{ल}}{\text{च}.}$$

जहां बा=तारकी बाधा, व=उस पदार्थके एक घन शतांशमीटरकी बाधा है, जिसका तार बना हुआ है, ल=तारकी लम्बाई है और च=तारके मध्यच्छेदका क्षेत्रफल। पदार्थोंके घन शतांशमीटरकी बाधाएं (इनके निकालनेकी विधि फिर कभी बतलावेंगे) बहुधा दी ही रहती हैं। उनकी सहायतासे किसी पदार्थके कितने ही लम्बे और मोटे तारकी बाधा निकाली जा सकती है। घन शतांशमीटरकी बाधाको विशिष्ट बाधा भी कह सकते हैं।

बाधा नापनेकी व्यवहारिक इकाई ओह्म है। ओह्म महाशयने ही पहले पहल विद्युत् चलानेवाली शक्ति, धारा और बाधाके संबन्धका नियम निकाला था। इसलिए बाधाकी इकाई उनके ही नामसे प्रसिद्ध है। ओह्मकी परिभाषा इस प्रकार है।

ओह्म पारेके उस स्तम्भ (कोलम) की बाधा है, जो ०° श तापक्रमपर १०६·३०० श. मी. लम्बा और वज़नमें १४·४५२ ग्राम हो।

बाधाकी परिभाषामें तापक्रम आवश्यक है, क्योंकि तापक्रम बदल जानेसे बाधा बदल जाती है। साधारणतः पदार्थोंको बाधा तापक्रम बढ़नेसे बढ़ जाती है।

किन्तु कोई कोई पदार्थ ऐसे भी हैं, जिनकी बाधा कम हो जाती है। उन पदार्थोंमें जिनकी बाधा तापक्रम बढ़नेसे कम हो जाती है कोयला भी एक है।

अब हम उदाहरणकेलिए १०० मीटर लम्बे और २ श. मी. मोटे तांबेके गोल तारकी बाधा निकालकर बतलाएंगे।

इस लेखके अंतमें दी हुई सूचीमें* तांबेकी विशिष्ट बाधा $१·५६ \times १०^{-६}$ अथवा $\frac{१.५६}{१००००००}$ ओह्म है। इस तारके मध्यच्छेदका क्षेत्रफल $= \frac{२२}{७}$ वर्ग शतांशमीटर है। [क्योंकि इसका मध्यच्छेद वृत्ताकार है और वृत्तका क्षेत्रफल $= \frac{२२}{७}$ (अर्धव्यास)^{२} और इस तारका अर्धव्यास एक शतांशमीटर है।]

$$\text{बा} = \frac{१.५६}{१००००००} \times \frac{१००००}{\frac{२२}{७}} \text{ ओह्म}$$

* यह सूची अगले अङ्कमें दी जायगी—सं०

$$= \frac{१.५६ \times ७}{२२ \times १००} \text{ ओह्म}$$

$$= \frac{१}{२००} \text{ ओह्म [लगभग]}$$

यह बाधा बहुत थोड़ी है, इतने ही लम्बे और मोटे मैंगनीनके तारकी बाधा $\frac{१}{७}$ ओह्मके लगभग निकलेगी अर्थात् मैंगनीनके उतने लम्बे और मोटे तारकी बाधा तांबेके तारकी बाधाकी ३० गुनी होगी। वास्तवमें यकसां लम्बे और मोटे तारोंकी बाधाओंमें वही सम्बंध होता है जो पदार्थोंकी विशिष्ट बाधाओंमें होता है। मैंगनीनकी विशिष्ट बाधा तांबेकी विशिष्ट बाधासे ३० गुनी है।

इसी सूचीमें आप देखेंगे कि शीशा, रबर, चकमक पत्थर इत्यादि (जिनको सूचीमें रोधकके नामसे सूचित किया है) की बाधा तांबेकी बाधाकी कई अरब गुनी है। जिन पदार्थोंकी विशिष्ट बाधा कम है उनको वाहक (conductor) कहते हैं और जिनकी विशिष्ट बाधा बहुत ज्यादा है (शीशा इत्यादि) उनको रोधक (कुचालक) कहते हैं। सब ही पदार्थोंमें होकर बिजलीकी धारा जा सकती है, केवल उनकी बाधाओंमें ही भेद होता है। वायु सबसे अच्छा रोधक है। इसी कारण जब तक बाटरीके सिरोंके या उनसे जुड़े हुए तारोंके सिरोंके बीचमें हवा रहती है तब तक धारा नहीं चलने पाती है और ऐसे चक्रको खुला चक्र कहते हैं। जब बाटरीके दोनों सिरोंको ऐसे तारसे जोड़ देते हैं, जिसकी बाधा बहुत थोड़ी होती है तो सहसा बहुत प्रबल धारा बहने लगती है, ऐसे चक्रको सूक्ष्म-चक्र कहते हैं। बहुत प्रबल धारासे बहुत गरमी उत्पन्न होती है, जिससे तारों और यंत्रोंके जलनेका भय रहता है और बाटरी भी खराब हो जाती है। इसी कारण सूक्ष्म चक्रको सदैव बचाना चाहिये। बिजली घरके आदमियोंको जितना डर सूक्ष्म-चक्रसे लगता है, उतना कदापि किसी और चीजसे नहीं लगता। सूक्ष्म-चक्र उनकेलिए एक बड़ी ही भयानक घटना है। इसीके भयके कारण सब चक्रोंमें फ्यूज़ (Fuse) लगे रहते हैं। चक्रके बीचमें एक पोरसिलेन (Porcelain) चीनीकी डिबियामें एक सीसेके धातु-मिश्रणका तार लगा देते हैं। धारा इस तारमें होकर बहती है। जब कभी धाराकी प्रबलता एक नियत परिमाणसे बढ़ती है यह तार पिघलकर गिर जाता है, जिस कारण चक्र भङ्ग हो जाता है और धाराका बहना बंद हो जाता है। इस तारको फ्यूजका तार कहते हैं, तार सहित डिबियाको फ्यूज कहते हैं। यह तार अपने आप पिघलकर और यंत्रोंको बचा देता है।

जिस चक्रमें धारा बहनेसे गर्मीके अतिरिक्त और कोई असर पैदा न हो, उस चक्रकी बाधा और उसमें बहती हुई धारा और उसके सिरोंके अवस्था-भेदके सम्बन्धमें जो नियम ओह्मने निकाला वह यह है।

$$\frac{अ}{ध} = बा$$

अ = अवस्था भेद, ध = धारा और बा = बाधा।

इसको इस प्रकार भी लिख सकते हैं—

$$अ = बा \times ध$$

या $$\frac{अ}{बा} = ध$$

चक्र के सिरोंका अवस्था-भेद ऐसी रीतियोंसे भी निकाल सकते हैं, जिनमें धाराका काम नहीं पड़ता है। अवस्था-भेद निकाल कर और एम्प-मापकसे धारा मालूम करके चक्रकी बाधा निकाली जा सकती है। बहुतसे यंत्र इसी नियमके आधारपर बनाये जाते हैं और बाधा निकालनेमें तो यही नियम किसी न किसी प्रकारसे काममें आता है और इसी कारण बड़ा उपयोगी है।

उन चक्रोंमें जिनमें विश्लेषण होता है या मोटरें चलती हैं या बाटरियां भरी जाती हैं यह नियम किसी दूसरे रूपमें लागू है, जिसको किसी

दूसरे लेखमें बतलाएँगे। २ बिजलीके लम्पोंकी बाधा निकालकर इस लेखको समाप्त करेंगे। लम्प ही एक ऐसा यंत्र है जिसमें बिजली सिवाय गर्मी उत्पन्न करनेके और कोई काम नहीं करती है और यह नियम इसी साधारण रूपमें लग सकता है

(१) २५ बत्तीके लम्पकी बाधा—टँगस्टन धातुके तारका बना हुआ २२० वोल्टके अवस्था-भेदपर जलनेवाला २५ बत्तीका लम्प २५ वाट खर्च करता है। यह पहले बताया जा चुका है कि

वाट = वोल्ट × एम्प, इस लम्पके सम्बन्धमें
२५ वाट = २२० वोल्ट × धारा, अर्थात् धारा

$$= \frac{२५}{२२०} \text{ एम्प}$$

$$= \frac{१}{९} \text{ एम्पके लगभग}$$

ओह्मके नियमके अनुसार

$$\text{बाधा} \times \text{धारा} = \text{अ. भे.}$$

$$\text{इसलिए बाधा} = \frac{\text{अ. भे.}}{\text{धारा}}$$

$$= \frac{२२०}{\frac{१}{९}} \text{ ओह्म}$$

$$\therefore \quad \text{बाधा} = १९८० \text{ ओह्म}$$

इस लम्पकी बाधा २००० ओह्मके आस पास है।

(२) इसीप्रकार १०० बत्तीवाले लम्पकी बाधा ५०० ओह्मके लगभग निकलेगी और इसमेंसे $\frac{१}{२}$ एम्पके लगभग धारा बहेगी।

यदि हमारे पास नियत अवस्थाभेदवाली बाटरी हो तो चक्रमें बाधा डालकर जितनी धारा चाहें बहा सकते हैं। यदि चांदी चढ़ानेके वास्ते हम ऐसी एक बाटरी लें जिसके सिरोंमें ३ वोल्टके बराबर अवस्था-भेद हो तो चक्रकी बाधा एक ओह्मके बराबर होनेसे ३ एम्पकी धारा मिल सकती है।

बड़े बड़े पेचदार चक्रोंकी बाधा किस प्रकार निकाल सकते हैं, यह अगले लेखमें बतलाया जायगा।

प्रकाश विज्ञानके अध्ययनकी आवश्यकता

[ले०—प्रोफ़ेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

[गताङ्कसे आगे]

कौन अपने मित्रकी तसवीर अपने पास नहीं रखना चाहता? कौन कह सकता है कि महान् पुरुषोंके चित्रोंसे कुछ लाभ नहीं होता? उन चित्रोंको देख कर देशके नवयुवकोंके हृदयमें क्या उत्साहकी लहरें नहीं उठतीं? कौन नहीं जानता कि यदि किसी अस्थायी प्राकृतिक दृश्यका यथार्थ चित्र खिंच सके तो उसकी बारीकियोंको ढूंढ़ निकालनेमें बड़ी सुगमता होती है? किन्तु बिना आलोकचित्रणके (photography) क्या यह सब कुछ संभव था? क्या कोई मनुष्य सैकड़ों रुपये खर्च किये बिना अपने मित्रका चित्र बनवा सकता था? बिना आलोकचित्रणके सहस्रों सूर्यग्रहण योंही निकल जाते और हम उनसे कुछ न सीख पाते। पुलिसको भी अपराधीके ढूंढ़ निकालनेमें बहुत कठिनाई होती। किन्तु अब यह सब काम, प्रकाशविज्ञानके साधारण नियमोंके ज्ञानद्वारा आविष्कृत इस आलोकचित्रणकी कलाकी सहायतासे एक साधारण मनुष्य भी कर सकता है। यही क्यों, ऐसी बातें भी हो सकती हैं, जिनका होना संभव ही नहीं समझा जाता था। शब्द एक स्थानसे दूसरे तक वायुकी तरङ्गों द्वारा पहुंचता है। क्या कोई अपने नेत्रोंसे उन तरङ्गोंको देख सकता है? किन्तु अब आलोकचित्रण द्वारा उनका चित्र उतारा जा सकता है।

यदि चित्र रंगीन हो, यदि प्रकाश और छायाके स्थानपर केवल श्वेत और काला रंग न होकर वास्तविक रंग चित्रमें आजावें तो उस चित्रकी मनोह-

रता कितनी अधिक हो जाय। पुष्पकी कलियोंका चित्ताकर्षक रंग, ऊषा और अरुणके मिलनकी प्राकृतिक छठा, संध्याकी अलौकिक लालिमा और सुन्दरीके मुखकी सलज्ज रक्तिम आभा भी यदि कागजपर चित्रित हो तो कहिये चित्रकी शोभा कितनी बढ़ जाती है और उसका हृदयपर कितना प्रभाव पड़ता है? यह सब इसी प्रकाश विज्ञानकी कृपासे आजकल प्रति दिन किया जाता है। चित्र बन भी गया, किन्तु यदि उसकी सहस्रों प्रतियां न छप सकें तो कहिये वह समाचार पत्रों और पुस्तकोंके किस कामका? इसके बिना क्या जन साधारण चित्रसे लाभ उठा सकते हैं? क्या उस चित्रको देखनेकेलिए कोसों चलकर किसी चित्रशाला या प्रदर्शनीमें जाना प्रत्येक मनुष्यकेलिए संभव है। किन्तु प्रकाश विज्ञानने साधारणसे भी साधारण मनुष्यको इस सौंदर्य निरीक्षणसे वंचित रखना उचित न समझा और आज उसके ही बलसे लाखों रंगीन चित्र, नित्यप्रति पुस्तकों और समाचार पत्रोंमें छपते हैं। रविवर्माके सुंदर चित्र भी तीन या चार पैसेको कहीं भी मिल सकते हैं।

इस सम्बन्धमें मैजिकलालटेनके (magic lantern) विषयमें भी कुछ कहना आवश्यक है। उसके बिना वह छोटी छोटी तसवीरें जिन्हें एक एक करके देखनेमें लोगोंका बहुत समय व्यय होता, बहुत सुगमतासे, सहस्रों स्त्री पुरुषोंको एक साथ ही दिखलाई जा सकती हैं। उपदेशक और व्याख्यानदाता, यदि अपने श्रोताओंको दिखलानेकेलिए बड़े बड़े चित्र बनवाते तो सहस्रों रुपये व्यय होते और तिसपर भी उन सब तसवीरोंको साथ लिये फिरना कितना कष्टदायक होता। किन्तु इस छोटेसे यंत्रने उनका कार्य बहुत सरल कर दिया है। अब तो लोगोंका यह विश्वास हो चला है कि बिना मैजिकलालटेनके व्याख्यान, शिक्षण और मनोरंजनके कार्यमें आधी भी सफलता नहीं होती, यह भी प्रकाश विज्ञानका माहात्म्य है।

किन्तु जिस किसीने संध्याको एक घंटे किसी सिनामा (Cinematograph) या बायस्कोपके (Bioscope) देखनेमें व्यय किया है उसे अवश्य ज्ञात हो गया होगा कि वहांके चित्र कैसे सजीव जान पड़ते हैं। उन्हें देखकर चित्तपर उन दृश्योंका कैसा प्रभाव पड़ता है। क्या उस समय हम यह बात भूल नहीं जाते कि हम चित्र देख रहे हैं या वास्तविक घटना? किसी युद्धके दृश्यको देखकर क्या यह नहीं मालूम होता कि हम वास्तविक घटना स्थलपर उपस्थित हैं? बालकोंको इतिहास पढ़ानेकी क्या इससे अधिक सुगम रीति हो सकती है कि नित्य प्रति उन्हें इस प्रकारकी सजीव चलती फिरती तसवीरें दिखलाई जायं? यहांपर तो हमें अवश्य मानना पड़ेगा कि विज्ञानने समयपर पूर्ण जय लाभ कर लिया है। एक बार जो कुछ हो चुका है वह अब उसे फिर जब जी चाहे दोहरा सकता है। देहली दर्बारकी हाथियोंको सवारीको फिरसे निकलवा सकता है। बड़े बड़े युद्धोंको अब जी चाहे फिरसे लड़वा सकता है। हमारे नेत्रोंको जो कुछ पहिले हो चुका है उसकी छोटीसे छोटी बातें पुनः दिखला सकता है। अभी हालमें ही ग्रामोफोनको (Gramophone) इस चल-चित्र-दर्शकसे मिलाकर जो उन दृश्योंमें और अधिक जीवन डाल दिया गया है, जिसके द्वारा राजनीतिज्ञ उपस्थित ही नहीं होता, किन्तु व्याख्यान भी सुना देता है, उसके विषयमें यहां लिखना व्यर्थ है। किन्तु यह कहना उचित है कि यह सब विज्ञानके साधारण नियमोंका वर्षों अध्ययन करनेका परिणाम है।

प्रकाशके अन्य अद्भुत कार्योंके साथ ही साथ प्रकाशसे दूर स्थानपर संकेतों द्वारा समाचार पहुंचानेका ज़िक्र करना शायद उनके महत्त्वको कम कर देना है। क्योंकि आजकलके बेतारके (Wireless Telegraph) सामने उसे कौन पूछता है। किन्तु जब हम विचार करते हैं कि समाचार

ही नहीं चित्र भी ज्योंके त्यों तार द्वारा प्रकाश और विद्युत्की सहायतासे सैकड़ों कोसकी दूरी-पर बातकी बातमें पहुंचाये जा सकते हैं और तीन बजे होनेवाली घटनाके चित्र संसार भरमें संध्याके समाचार पत्रोंमें छपे हुए दिखलाई दे सकते हैं, तब क्या कोई यह कहनेका साहस कर सकता है कि यह विज्ञान तो केवल उन मनुष्योंके अध्ययन करनेके लिए है, जिनके पास बहुत रुपया है और जिन्हें तत्ववेत्ता बनना है, सांसारिक मनुष्योंको इससे क्या लाभ ?
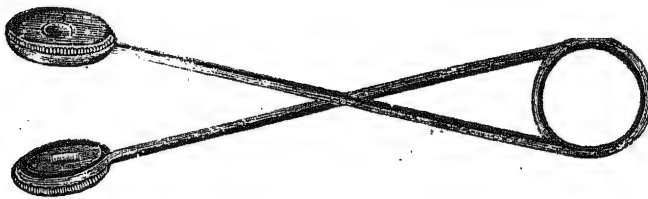
प्रकाश विज्ञान केवल इसी प्रकार हमें लाभ नहीं पहुंचाता किन्तु और भी अनेक बातें हैं जिनमें वह मानव संसारकी सेवा करता है। शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि चीनी-शक्कर बनानेमें इससे बहुत सहायता मिलती है। यदि ध्रुवी-भवन-मापक (Polarimeter) न होते तो यह जाननेमें कि अमुक घोलमें कितनी शक्कर है बहुत कठिनता होती।

यह सब कोई जानता है कि सच्चे हीरे और लालकी परीक्षा करना कितना कठिन कार्य है और विशेष कर इन दिनों जब कि नकली लाल इत्यादि इतनी उत्तमतासे बनाये जाते हैं। जौहरी वर्षोंके अनुभवसे कुछ सीखता है, फिर भी धोखा खा जाता है। किन्तु ध्रुवी भवन दर्शक-(Polariscope) से और अन्य उपायोंसे अब सुगमतासे यह काम हो जाता है और भूलकी कोई संभावना नहीं रहती। प्रत्येक चशमा काममें लानेवालेको यह जाननेकी आवश्यकता रहती है कि उसका चशमा कांचका है या पत्थरका। इसकी परीक्षा भी टूरमलीनके चिमटे (Tourmaline Tongs) (चित्र ६) से सहजमें हो सकती है।

चित्र ५—ध्रुवी-भवन-मापक (Polarimeter)

चित्र ६—टूरमलीनका चिमटा (Tourmaline Tongs)

तरह तरहके रंगोंका प्रकाश कितनी साधारण बात है, किन्तु इन रंगोंसे क्या क्या लाभ होते हैं, यह अभी बहुत कम मालूम है। नेत्रोंको रंगीन वस्तु देखनेसे आनन्द मिलता है, किन्तु यह किसने सोचा था कि कभी रंगके भी गाने बनाये जायंगे और जिस प्रकार सुरोंसे गायक अलौकिक गान पैदा कर देता है उसी प्रकार भिन्न भिन्न रंगोंको भी सुव्यवस्थित रीतिसे आंखके समक्ष प्रस्तुत करनेसे अपूर्व गान उत्पन्न हो जायगा। किन्तु नेत्रोंको आनन्द देनेके अतिरिक्त, बहुतसे जीवोंको अपनी जीविकामें सहायता देनेके अतिरिक्त, रात्रिमें सुन्दर संकेत बनानेके अतिरिक्त, रंगोंसे और भी अनेक उपयोगी और महत्वके काम लिये जा सकते हैं। सौरीयचिकित्सा (chromopathy) उन्नतिशील मनुष्योंका ध्यान अधिकाधिक आकर्षित करती जाती है। ऐसी साधारण बातोंसे प्रारम्भ करके कि तेज लाल प्रकाशसे सिरमें दर्द हो जाता है और हरे रंगसे नेत्रोंको ठंडक पहुंचती है, चिकित्साकी एक सर्वथा नई रीति निकाली गई है। प्रत्येक रोग केवल एक विशेष रंगके प्रकाशमें रोगीको रखकर और उसी रंगकी बोतलमें रखा हुआ पानी पिलाने मात्रसे अच्छा कर दिया जाता है।

किन्तु जब हम रश्मिचित्र दर्शक (spectroscope) (चित्र ७) की ओर दृष्टि डालते हैं तब तो यह सब बातें बहुत ही साधारण मालूम होने लगती हैं। इस यंत्रके बिना रसायन शास्त्रकी क्या दशा होती? क्या वह इतना उन्नत हो सकता था? मौलिकोंकी (elements) सूची कितनी अपूर्ण होती, विश्लेषणकी रीतियां कितनी भद्दी और कठिन होतीं। यदि प्रकाश विज्ञानसे सहायता न मिली होती तो इस यंत्रके बिना कौन एक रत्तीके
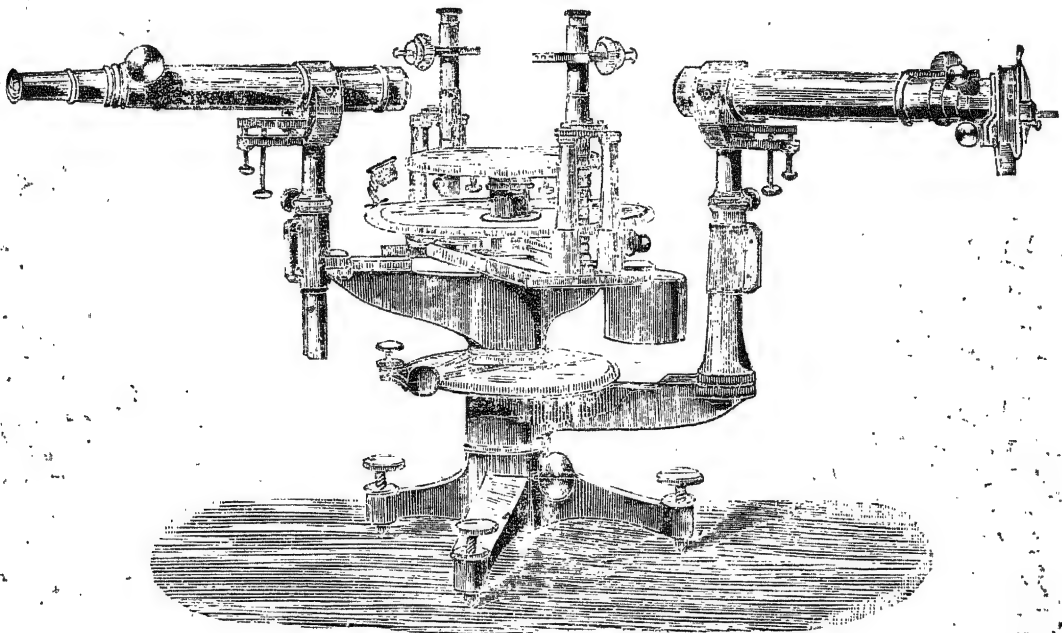
चित्र ७—रश्मिचित्र दर्शक (Spectrometer)

दस हज़ारवें भागके बराबर नमकके अस्तित्वका पता चला सकता ? इन छोटी छोटी बातोंको छोड़ कर जब हम यह विचार करते हैं कि यही यंत्र हमें तारोंके विषयमें कितनी बातें बतला देता है, तब तो आश्चर्यमें आकर चुप ही रह जाना पड़ता है। जो सर्वथा असंभव जान पड़ती थी, वह बात अब मनुष्यकी शक्तिके बाहर नहीं रही। आज कोई भी दुरबीनके साथ यह यंत्र लगाकर अधिकसे अधिक दूरवर्ती तारेके विषयमें निश्चय पूर्वक कह सकता है कि अमुक तारेमें अमुक अमुक पदार्थ विद्यमान हैं। केवल यही नहीं इस छोटेसे यंत्रसे हमें यह भी पता लग जाता है कि तारा पृथ्वीकी ओर आ रहा है, वा उससे दूर होता जा रहा है। केवल एक नज़र ही यह सब जाननेकेलिए पर्याप्त है। यही क्यों इस यंत्रके द्वारा तो यह भी पता चल जाता है कि अमुक तारेका तापक्रम कितना है।

ऐसे कामके यंत्रको प्रयोगशालामें रखकर भला विज्ञानको कब संतोष हो सकता था। जब तक वह प्रत्येक मनुष्यके पाकेटमें न पहुंच जाय तब तक बात ही क्या ? अतः ऐसी युक्ति निकाली गई कि चित्र ७ के सब आडम्बर दूर करके एक पाकट रश्मिचित्र दर्शक (pocket direct vision spectroscope) बना डाला गया।

नापनेके यंत्रोंके निर्माणमें तो प्रकाश विज्ञानके अध्ययनने सचमुच ही सर्वोत्कृष्ट सहायता की है। भूमिके नापनेकेलिए पैमाइश करनेवाला सर्वेअर (surveyor) जितने यंत्रोंका प्रयोग करता है, चाहे कोणमापक (goniometer) हो या थियोडोलाइट (theodolite) (चित्र ८) सब प्रकाश विज्ञानके सिद्धान्तोंपर ही निर्भर हैं। बिना षष्ठांश यंत्र (sextent) (चित्र ६) के जहाजोंका समुद्रमें—विशेषकर अज्ञात समुद्रोंमें—निडर होकर चलाना प्रायः असम्भव था। किन्तु यद्यपि यह सब यंत्र बहुत लाभदायक हैं, तोभी यह उतने आश्चर्य जनक नहीं हैं। विचार कीजिये कि एक छोटेसे रवेकी (crystal) मोटाई कुछ अंश गरम करनेसे कितनी बढ़ती होगी, शायद इंचका एक लाखवां भाग, जिसका पता लगाना भी कठिन है। प्रकाश-

चित्र ८—थियोडोलाइट (Theodolite)
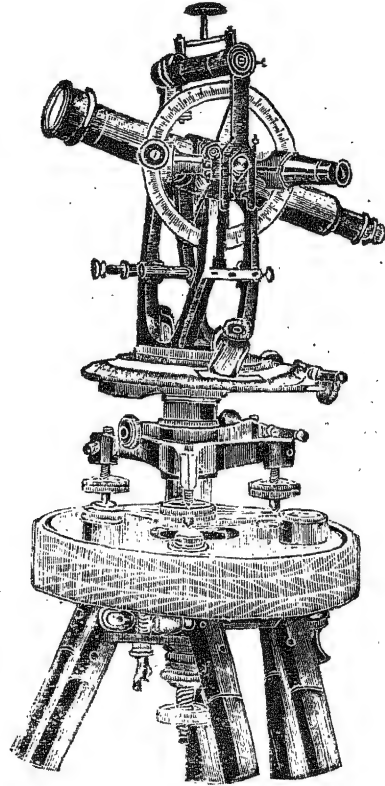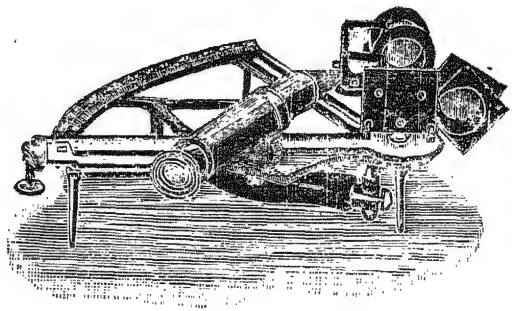
चित्र ६—षष्ठांश यंत्र (sextant)

विज्ञान उसका केवल पता ही नहीं लगा सकता किन्तु उसे ठीक ठीक नाप भी सकता है। सितार-के तारमेंसे कैसा मधुर गान निकलता है। इस कार्यमें तार न जाने किस किस प्रकार ऊपर नीचे, इधर उधर हिलता है। किन्तु प्रकाश विज्ञान उसी तारसे अपने भ्रमणका सारा सच्चा वृत्तांत लिखवा लेता है! साबुनमें जो बुलबुले हो जाते हैं उनकी दीवारकी मोटाईका विचार करिये। बुद्धि चक्कर खा जाती है, किन्तु प्रकाश-विज्ञान उसको भी नाप लेता है। एक बालटी पानीकी भरके उसपर एक बूंद तेल छोड़ दीजिये। तेल फैल जायगा। किन्तु क्या इस तेलकी तहकी मोटाई नापी जा सकती है? हां, प्रकाश-विज्ञानके द्वारा यह भी सरल कार्य है! एक मोटे लोहेके खंभेको ज़रा सा उंगलीसे छू देनेसे, अथवा उसपर श्वास छोड़ देनेसे क्या वह हिलने लगता है? विश्वास करना भी कठिन है, किन्तु यही प्रकाश-विज्ञान बतला देता है कि उसके हिलनेमें कोई सन्देह नहीं। यही क्यों वह चाहे एक इंचका दो या तीन करोड़वां भाग भी अपनी जगहसे हटे प्रकाश-विज्ञान अपने यंत्रों द्वारा उसे ठीक ठीक नाप सकता है!

किन्तु इस प्रकार प्रकाश-विज्ञानके अद्भुत आश्चर्यजनक कार्योंका कहांतक उल्लेख किया जाय? और प्रकाशके अन्य रूपोंका वर्णन करना तो कदाचित् यहाँ ठीक भी न होगा। इन रूपोंके विषयमें अभी सर्वसाधारण बहुत ही कम जानते हैं और यदि इनके चमत्कारोंका कुछ परिचय है भी तो कदाचित् यह बात नहीं मालूम है कि वे भी प्रकाशके रूपान्तर मात्र हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि नेत्रों द्वारा इन रूपोंके अस्तित्वका पता नहीं चलता, वे अदृश्य हैं। उन्हें अदृश्य प्रकाश कहते हैं! ताप जो सूर्यसे हमारे पास आता है वह भी प्रकाशका एक रूप है। आजकल बिना तारके समाचार जिन विद्युत्की लहरोंसे भेजे जाते हैं, वे भी इसी प्रकाशकी रूपान्तर हैं। उनमें और साधारण प्रकाशमें केवल परिमाणका भेद है, जाति दोनोंकी एक ही है। एक्स किरण (X-rays), जिनके द्वारा कई रोगोंको आराम कर देनेके अति-रिक्त हम लोग लकड़ी, चमड़ा आदि अपारदर्शक वस्तुओंमें हो कर भी देख सकते हैं, जिनके द्वारा शरीरके भीतरके अवयवोंकी हड्डी, नसों आदिको हम देख सकते और उनका चित्र भी उतार सकते हैं और जिनके द्वारा डाक्टर लोग शरीरमें घुसी हुई गोली आदिके ठीक ठीक स्थानका पता लगा कर आसानीसे उसे निकाल देते हैं, वह एक्स किरण भी एक प्रकारका प्रकाश ही है। एक और प्रकारके प्रकाशके द्वारा समुद्रकी तहमें रहनेवाले जानवर आदिका भी चित्र खींचा जा सकता है*। यही प्रकाश (पारेकी लम्पका)* रोगके कीटाणुओं-को भी बातकी बातमें नष्ट कर देता है। इन सबके विषयमें लिखनेका यहाँ स्थान नहीं है। इसी प्रकार हवाके झोकों बादलों, मेह, नदी, नालों आदिके विषयमें भी कुछ कहना प्रकाश विज्ञानसे असम्बद्ध जान पड़ेगा। किन्तु यह भूल न जाना चाहिये कि यह सब भी प्रकाशके द्वारा बने हैं। इनका भी मुख्य कारण प्रकाश ही है। इन सबसे मनुष्यको कितना लाभ होता है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं। हमारे सब कल कारखाने इन्हींपर निर्भर हैं। अतः यह कह देना कुछ अत्युक्ति नहीं कि कल कारखाने भी प्रकाशपर ही अवलम्बित हैं। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि कोयला तो हवा, नदी, नालों आदिसे भी अधिक उपयोगी है। क्योंकि चाहे कारखाना भापसे चले या बिजलीसे उसमें कोयलेकी तो आवश्यकता होती ही है। इसे प्रकाशसे क्या सम्बन्ध! किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि यह काला कोयला भी लाखों वर्ष पहले हरे भरे वृक्षों-का अंग था और वृक्षोंका बिना प्रकाशके जीना ही असम्भव है।

---

* देखो विज्ञान भाग १, संख्या ३ पृष्ठ ९७।

परन्तु हम इन सुखकी सामग्रीके विषयमें क्यों सोचें, जब हमारा भोजन ही प्रकाशके बिना उत्पन्न नहीं हो सकता? क्या अंधकारमें कोई पौधा उग सकता है? क्या घास, पौधोंके बिना कोई जन्तु या मनुष्य जीवित रह सकता है? सारांश यह कि प्रकाशके बिना और तो क्या हमारा जीना भी असम्भव है। यदि प्रकाश न होता तो संसारमें केवल निर्जीव पदार्थोंके अतिरिक्त और कुछ भी न होता।

जब प्रकाश इतनी आवश्यक वस्तु है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि उसके नियमोंके अध्ययनसे कुछ लाभ न होगा? यह कैसे समझा जा सकता है कि उसके नियमोंका मनन करनेवाले मनुष्यजीवनको अधिक सुखपूर्ण न बना सकेंगे?

किन्तु मानव संसारके लाभकी दृष्टिके अतिरिक्त एक और भी कारण है कि जो हमें इस प्रकाशके विषयमें अधिकाधिक जाननेको वाध्य करता है। मनुष्यकेलिए यह सर्वथा स्वाभाविक है कि वह इसके लाभोंको देखकर संतुष्ट नहीं हो सकता। किसी सरोवर अथवा दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर हमें खयाल आता है कि यह कैसे उत्पन्न हुआ। छड़ीका यदि कुछ भाग पानीमें और कुछ बाहर रहे तो वह टेढ़ी दिखलाई देती है। हमें आश्चर्य होता है, "क्यों?" हमलोग सुन्दर इन्द्र धनुषकी छटा देखते हैं, "क्यों?" आकाश नीलवर्ण दीख पड़ता है, परन्तु अरुणोदय और संध्या समय अलौकिक लालिमा आकाश देशमें फैलकर चित्तको चुराने लगती है, पर "क्यों?" चन्द्रमाके चारों ओर कुंडली (Halo) और रंग बिरंगे बादलोंको देखकर तीव्र इच्छा होती है कि मालूम करें "क्यों?" पद पदपर यह सर्वव्यापी "क्यों?" आ उपस्थित होता है। यदि हम इस जिज्ञासाका तिरस्कार करें और इसके बार बार पूंछनेपर भी इस प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न न करें तो मनुष्यों और पशुओंमें कोई अंतर न रह जाय।

किन्तु जब मनुष्यमात्रके विषयमें यह बात कही जा सकती है तब हम भारतवासियोंके विषयमें तो सहस्र गुणे अधिक बलपूर्वक कही जायगी। क्योंकि चाहे हम लोग कितने ही पतित क्यों न हो गये हों, आखिर हैं तो उन्हीं पूर्वजोंकी सन्तान कि जिनकी विचार शक्तिका आज भी संसार भरमें प्रकाश हो रहा है। और जिनके रचित सहस्रों ग्रन्थरत्न अब भी संस्कृत साहित्यमें विद्यमान हैं, जिनसे उनकी गूढ़ विषयोंपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करनेकी उत्कृष्ट शक्तिका पता लगता है। उन्हींके रक्त संचारके कारण आज भी हमारे मनमें यही भावना रहती है कि किसी वस्तुके लाभोंसे ही संतुष्ट न होकर हमारे लिए उसका यथार्थ स्वरूप जान लेनेकी चेष्टा करना ही सर्वथा स्वाभाविक है। वह क्या कर सकती है, इस प्रश्नसे हमें उतना आनन्द नहीं होता जितना कि यह जाननेसे कि "वह है क्या"? यही वास्तविक भारतीयता है और अब भी निश्चय कोई भारतवासी इस भावके प्रति अनिच्छा प्रगट करनेको प्रस्तुत नहीं है। यही क्यों हम लोग तो उस भावकी पुष्टि बहुत आग्रह पूर्वक करनेको तय्यार हैं। किन्तु जब हम अपने देशकी ओर देखते हैं, उसकी निर्धनताका विचार करते हैं, उसमें शिक्षाका अभाव पाते हैं और उसके दुःखका स्मरण करते हैं तब विवश होकर यही कहना पड़ता है कि अभी केवल उसी सर्वोच्चभावकी ओर झुक जानेका समय नहीं है। यद्यपि विज्ञानसे लाभ उठाकर धन धान्यका संचय करना मनुष्य ज्ञानकी वृद्धि करनेके प्रयत्नसे अधिक आदरणीय न भी हो, तथापि इस समय तो अधिकतर ध्यान उसी ओर देना होगा। इससे यह आशय कदापि नहीं है कि जो महानुभाव उदार चरित होकर वैज्ञानिक सत्यकी खोजमें अपना जीवन लगा देते हैं, उनसे कला कौशलको लाभ नहीं पहुंचता और वे धनवृद्धिमें कुछ सहायता नहीं करते। इसमें कोई सन्देह

नहीं कि जितनेकल कारखाने और कला कौशल आजकल संसारमें देख पड़ते हैं वे सब ऐसे ही महात्माओंके अनवरत परिश्रमके फल हैं। किन्तु ज़ोर इस बातपर दिया जाता है कि विज्ञानके अध्ययनमें हमें यह बात सदा अपने सामने रखनी चाहिये कि उससे उद्योग धंधोंकी उन्नति होगी। हम लोग वैज्ञानिक सत्यकी खोज अवश्य करेंगे, किन्तु ऐसा केवल इस कारण न करेंगे कि इससे हमारे मनको कुछ स्वाभाविक आनन्द मात्र मिलता है, किन्तु इस कारण कि हमारा देश, हमारा राष्ट्र और अंतमें सारा संसार हमारे ज्ञानसे लाभ उठा सके, क्योंकि वास्तवमें सेवा धर्ममें रत कर देना ही तो शिक्षाका मुख्य कार्य है। परन्तु जिन होनहार नवयुवकोंके हृदयमें हमारी मातृ-भूमि, प्यारी भारत माताका प्रेम भरा हुआ है, उनसे इस विषयमें अधिक कहना व्यर्थ है। वे तो स्वयं ही इस विज्ञानके अध्ययनकी आवश्यकताको भली भांति समझ सकते हैं।

किन्तु प्रकाश विज्ञानके अध्ययनकी आवश्यकता यहीं खतम नहीं हो जाती। पुद्गलके संगठनका प्रश्न लीजिये, जिसपर बहुत ही प्राचीन कालसे तत्ववेत्ता विचार करते आये हैं। दो तीन हज़ार वर्ष पहिलेके भी संस्कृत और अरबी भाषाके ग्रन्थोंमें इस विषयकी मीमांसा मिलती है। किन्तु वह सब कल्पना शक्तिका विकाश था। वर्तमान समयमें जब प्रत्येक बातकी प्रयोग-शालामें परीक्षा की जाती है तब केवल कल्पनासे काम नहीं चलता। अणुओं और परमाणुओंके विषयमें जब सर्वोत्कृष्ट शक्तिशाली परा-सूक्ष्मदर्शक (Ultra microscope) भी कुछ न कर सका तब भी इसी प्रकाश-विज्ञानने हमें वह दृश्य नेत्रोंसे दिखलाये हैं कि जिनसे हमारा परमाणु सम्बन्धी ज्ञान बहुत विस्तृत हो गया है। यद्यपि अब भी हम परमाणुको देख नहीं सकते, किन्तु उसमें जो कम्पन हो रहे हैं उनका बहुत कुछ ज्ञान हमें हो गया है। जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणोंका परमाणु बना है, उनके विषयमें भी हमें बहुत कुछ मालूम हो गया है। हमें परमाणु और उसके अवयवी विद्युत् कणोंके भारका भी कुछ अंदाजा होने लगा है। और यह सब प्रकाश-विज्ञानकी सहायतासे।

जब हम और भी आधुनिक आविष्कारोंका विचार करते हैं कि जिनसे हमें यह अद्भुत् बातें मालूम हुई हैं कि ताप, प्रकाश और विद्युत ऐसी पृथक् शक्तियोंका भी एकत्व प्रमाणित हो सका है तब क्या यह ध्यान नहीं आता कि यद्यपि अच्छे अच्छे तत्ववेत्ता संसारके पदार्थोंका एकत्व सिद्धकर हमें समझा देनेमें समर्थ न हुए किन्तु वही बात यह विज्ञान हमें प्रत्यक्ष दिखला देता है। इस दृष्टिसे क्या धर्म कर्ममें लगे हुए योगियोंकी भी यह इच्छा न होगी कि हाथकी माला ताकमें रख कर इन विषयोंका अध्ययन करें और जिस एकताका केवल कल्पना शक्ति द्वारा ही मन को अनुभव कराना चाहते थे, उसकी एक झलक हस्तामलकवत प्रत्यक्ष देख लें।

भारत-गीत नं० २१ *

प्रेमसे आपा जोड़ रे मूरख, अमर पदारथ पावैगा
द्वेषका स्यापा तोड़ रे लीचड़, नहिं आपा मिट जावैगा
आपा अटल प्रेमका पलमें, जगभरमें भर जावैगा
जहाँ पड़ैगी नज़र, एक ही नज़र नज़ारा आवैगा
पलभर हीको लगा परब है, पल बीते टल जावैगा
टलने न दे, नहीं फिर नाहक कर मल मल पछतावैगा
प्रेमसे आपा०

—श्रीधर पाठक

---

* यह पद्य "प्रतिभा" के गत अगस्तके अङ्कमें किंचित् भिन्न रूपमें छप चुका है। —श्री० पा०

रोग उसके कारण और उससे बचनेके उपाय

[लेखक—साहित्याचार्य परिडत विश्वेश्वरनाथ रेऊ]

(गताङ्कसे आगे)

रुधिर[१]

रुधिर देखनेमें जैसा लाल रंगका तरल पदार्थ प्रतीत होता है वास्तवमें वैसा नहीं है। रुधिरके तरल भागका रंग असलमें कुछ पीलापन लिये होता है। इसको प्लाज़मा (Plasma) कहते हैं। इसी पीले रंगके तरल पदार्थमें रक्ताणु तैरते रहते हैं। अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखनेसे इनमें मुख्यतः दो तरहके रक्ताणु दृष्टि आते हैं—एक लाल और दूसरे श्वेत वर्ण। यद्यपि रुधिरमें एक प्रकारके और भी सूक्ष्म रक्ताणु पाये जाते हैं, तथापि यहांपर उनके वर्णनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उक्त लाल रंगके रक्ताणुओंके कारण ही रुधिरका रंग लाल दिखाई देता है। यह रक्ताणु आकारमें गोल होते हैं और रुधिरकी एक बूंदमें क़रीब तीस करोड़के पाये जाते हैं[२]। इनका कार्य शरीरके कोषोंको ओषजन (oxygen) और अन्य पुष्टिकर पदार्थोंका पहुंचाना तथा कर्बनद्विओषिद्को (carbon dioxide) फैंफड़ों द्वारा शरीरके बाहर निकालना है। इन्हींकी कमीके कारण मनुष्यका शरीर पीला पड़ जाता है।

दूसरे श्वेत वर्णके रक्ताणु आकारमें गोल और दानेदार होते हैं, परन्तु यह लाल कणोंसे कुछ बड़े होते हैं और एक बूंद रुधिरमें करीब पांच लाखके पाये जाते हैं। इनका कार्य आक्रमण कारियोंसे शरीरकी रक्षा करना है। यह आक्रमण कारी कीटाणुओंको मार कर नष्ट कर देते हैं। यदि इनको शरीरके रक्षक, प्राकृतिक सैनिक कहें तो अनुचित न होगा। क्योंकि जैसे ही कोई आक्रमणकारी कीटाणु त्वचाके आवरणको भेद कर रुधिरमें आ पहुंचता है वैसे ही उक्त श्वेताणु उसपर चढ़ाई कर देते हैं और यथा सम्भव शत्रुओंके नाशकी चेष्टा करते हैं। परन्तु इसके लिए शरीरके श्वेताणुओंका पुष्ट और उचित संख्यामें होना आवश्यक है, क्योंकि इसीसे वे शत्रुओंका मुक़ाबिला कर सकते हैं और उनके नाशके लिए आवश्यकतानुसार संहारक रस (serum) बना सकते हैं।

यदि इस युद्धमें आक्रमणकारी कीटाणु हार गये तो शरीर रोगसे बच जाता है। परन्तु यदि आक्रमण कारी बलवान् और अधिक संख्यामें हुए और श्वेताणुओंको सफलता प्राप्त न हुई तो इनके नष्ट होनेकी बारी आती है। यह श्वेताणु ऐसे स्वामिभक्त और वीर होते हैं कि अपने पोषक शरीरकी रक्षाके लिए अपने प्राण तक देनेमें नहीं हिचकते और जैसे जैसे आक्रान्त अङ्गके श्वेताणु मरते जाते हैं वैसे वैसे अन्य अङ्गोंके श्वेताणु रक्तकी नालियों द्वारा उस स्थानपर अधिकाधिक संख्यामें आते जाते हैं। ऐसी अवस्थामें युद्धकी भीषणता बढ़ जाती है और इसीके कारण ज्वर, पीड़ा, सूजन आदि रोगके चिन्ह प्रकट होने लगते हैं, जिससे युद्धकी भयङ्करताका भी बोध होता रहता है। इतना आत्मत्याग करनेपर भी

---

१ रक्त अपारदर्शक और स्वादमें नमकीन होता है। इसका बोझ शरीरके बोझके $\frac{१}{२०}$ अंशके बराबर होता है। अर्थात् यदि कोई मनुष्य डेढ़ मनका हो तो उसके शरीरमें करीब ३ सेरके रुधिर होगा।

२ इनके देखने और गिननेकी यह रीति है कि जिस स्थानका रुधिर देखना हो पहिले उस स्थानको धोकर शुद्ध कर लेते हैं और पीछे एक सूई को तपाकर साफ करते हैं और उसीके द्वारा शरीरसे रुधिर निकालकर एक कांचकी पट्टी पर लगा देते हैं। यदि उनको गिनना हो तो यह पट्टी ऐसी लेते हैं जिस पर बहुत छोटे छोटे खाने बने होते हैं। इसपर एक दूसरी पट्टी रख देते हैं, जिससे अन्य पदार्थ रुधिरमें न मिल सकें। अन्तमें इसे अणुवीक्षण यन्त्र (microscope) द्वारा देखते हैं और यदि संख्याका पता लगाना हो तो एक खानेके कीटाणुओंको गिनकर अन्दाज़ कर लेते हैं। कभी कभी इन कीटाणुओंको पहिले विशेष रंगोंसे रंग लेते हैं और फिर देखते हैं।

शारीर शास्त्र physiology

यदि आक्रमणकारी कीटाणुओंने जय पाई तो शरीरपर उनका अधिकार हो जाता है, जिससे शीघ्र ही प्राणीकी मृत्यु हो जाती है।

इतना सब कुछ होनेपर भी एक बात ध्यान देने लायक होती है। जैसा कि इस कहावतसे प्रकट होता है:—

'खाड खिने जो और को ताको कूप तयार'

अर्थात् आक्रान्त शरीरके नष्ट हो जानेपर आक्रमणकारी कीटाणुओंको भी भोजन मिलना बंद हो जाता है और वे भी अपने कियेका फल पाते हैं (मर जाते हैं)। इससे इनका वंश वहीं समाप्त हो जाता है।

यदि युद्ध समाप्त होनेके पूर्व ही इन आक्रमणकारी कीटाणुओंमेंसे कुछ कीटाणु किसी प्रकार अन्य शरीरमें पहुंच जायं तो वहां भी यह ऐसा ही उपद्रव आरम्भ कर देते हैं। परन्तु यह स्वय एक शरीरसे दूसरे शरीरमें नहीं जा सकते। इस यात्रामें इनको वाहनकी आवश्यकता होती है। इन वाहनोंको अंगरेजीमें इण्टरमीजियरी होस्ट (Intermediary host) कहते हैं। यह बहुधा आक्रान्त प्राणीकी जातिसे भिन्न जातिके प्राणी होते हैं—जैसे मच्छर, मक्खी, पिस्सू आदि। जब मच्छर आदि किसी रोगीका रक्त चूसते हैं तब उस रक्तके साथ रोगके कीटाणु भी उनके मुखमें आ जाते हैं और वहांपर परवरिश पाते रहते हैं। जब वही मच्छर आदि किसी पासके अन्य नीरोग मनुष्यका रक्त चूसनेको उसकी त्वचामें अपना डंक घुसेड़ते हैं तो वे रोगके कीटाणु उस पुरुषके रक्तमें प्रविष्ट हो जाते हैं और वहांपर अपनी वंश-वृद्धिके साथ साथ रोगकी भी वृद्धि करते हैं। उपरोक्त कारणोंसे ही बुखार, प्लेग, आदिकी बीमारियां संक्रामक गिनी जाती हैं और जिन नगरोंमें पहुंच जाती हैं उनमें भयङ्कर संहार करती हैं।

पाठक यह पूछ सकते हैं कि जब रुधिरके साथ यह कीटाणु मच्छर आदिके मुखमें पहुंचते हैं तब उन्हींका संहार क्यों नहीं करते। वास्तवमें यह प्रश्न उचित है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो रोगोंकी संक्रामकताका भय बहुत कुछ घट जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता। जिस प्रकार सर्पका विष सर्पके मुखमें रात दिन रहनेपर भी उसको कुछ हानि नहीं पहुंचाता उसी प्रकार यह कीटाणु भी मच्छर आदिका नाश नहीं कर सकते।

मक्खियां भी विशूचिका आदि रोगोंसे आक्रान्त प्राणियोंके मलादिकपर बैठकर पासमें रखे भोजन आदिपर जा बैठती हैं और अपने पैरोंमें लगे कीटाणुओंको उनमें मिला देती हैं; जिससे उन पदार्थोंको खानेवाला भी उन्हीं रोगोंका शिकार बन जाता है।

कुछ रोग वायु द्वारा भी फैलते हैं, यथा क्षय आदि। इन रोगोंके कीटाणु रोगीके श्वासके साथ बाहर निकलते और आस पासकी हवामें फैलते रहते हैं। तथा उस हवामें श्वास लेनेवाले अन्य नीरोग प्राणियोंके फेफड़ोंमें प्रविष्ट होकर रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसी प्रकार खुजली, दाद, आदिके कीटाणु रोगीके या उसके कपड़ोंके स्पर्शसे अपना प्रभाव जमा लेते हैं।

रोगोंसे बचनेके उपाय

आशा है उपरोक्त बातोंको पढ़कर पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि रोगसे बचनेके दो ही उपाय हैं। एक तो रोग उत्पन्न करनेवाले कीटाणुओंसे बचना और दूसरे अपने रक्तके श्वेताणुओंको पुष्ट रखना, जिससे यदि शरीरपर रोगके कीटाणुओंका आक्रमण भी हो जाय तो यह उन्हें आसानीसे नष्ट कर सकें।

अब हम पहिले कीटाणुओंसे बचनेके उपायोंका वर्णन करते हैं। यह दो प्रकारके हैं। एक तो रोगके कीटाणुओंकी वृद्धि तथा आक्रमण रोकना, दूसरे उनके वाहनों (इण्टरमीजियरी होस्टस) का नाश करना, जैसा नीचे दी हुई बातोंसे स्पष्ट होगा।

नारू (बाला)

एक प्रकारके कीटाणुओंके (गिनीवर्म Guin-

eaworm) शरीरमें प्रविष्ट हो जानेसे यह रोग उत्पन्न होता है। यह कीटाणु रोगीके शरीरमें ही बच्चे दिया करते हैं, जो उसकी असावधानीके कारण मट्टी आदिके साथ आसपासके जलाशयोंमें पहुंच जाते हैं। वहां इनको (पहिले लेखमें वर्णित) साइक्लोप्स नामका कीड़ा निगल जाता है; जिसके यह उदरमें पुष्ट होते रहते हैं। साइक्लोप्स-को जलके साथ पीजानेसे यह कीटाणु फिर मनुष्य शरीरमें पहुंच जाते हैं और वहांपर अपने वंश और रोगकी वृद्धि प्रारम्भ कर देते हैं।

हम पहिले ही लिख चुके हैं कि साइक्लोप्स नामक कीड़ा बहुत ही सूक्ष्म होता है, अतः उसका पानीके साथ पिया जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

उपरोक्त रोगसे बचनेके उपाय यह हैं:—एक तो जब किसीके नारू हो जाय तो उसके रुग्ण अंग-पर बांधी जानेवाली पट्टी आदिको जलाकर नष्टकर दिया जाय, जिससे उक्त रोगके कीटाणु जलाशय तक न पहुंच सकें। दूसरे पीनेके पानीको साफ़ कर-के पिया जाय, जिससे साइक्लोप्स द्वारा इस रोगके बीज शरीरमें प्रविष्ट न हो सकें। साइक्लोप्स अधि-कतर सायेदार तालाबों और कूओंमें रहते हैं, अतः ऐसे जलाशयोंका पानी तो साफ़ करके ही पीना चाहिये। पानीके साफ करनेकी अनेक रीतियां हैं। परन्तु सबसे सहज और उत्तम रीति यह है कि जलको उबाल लिया जाय। परन्तु ऐसा करनेमें जलमेंसे ओषजन निकल जाता है और स्वाद कुछ बिगड़ जाता है। आजकल अनेक तरहके फिल्टर* बन गये हैं; जिनसे बिना स्वादके बिगड़े भी जल साफ हो सकता है।

सूर्यके प्रकाशसे भी कीटाणु मर जाते हैं। बहुतसे कीटाणु तो जलको डेढ़ घंटे धूपमें रखनेसे मर जाते हैं।

* देखो विज्ञान भाग ७ अङ्क ४ पृष्ठ १६०।

ज्वर

यह कई प्रकारका होता है। इसका कारण भी भिन्न भिन्न प्रकारके कीटाणुओंका शरीरमें प्रविष्ट होना ही है। जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं, यह कीटाणु भी स्वयं हमारे शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकते। इनका बाहन मच्छर है। पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि विशेषतर मादा मच्छर ही खूनकी प्यासी रहती है। यह जब किसी रोगीका रक्त चूसती है तब उसके रुधिरके साथ ही साथ रोगके कीटाणु भी इसके मुखमें आ पहुंचते हैं और वहींपर वे पुष्ट होते रहते हैं। जब वही मच्छर किसी नीरोग मनुष्यका रक्त चूसनेको उसकी त्वचापर काटता है, तब उक्त कीटाणु उसके मुखसे रुधिरमें प्रविष्ट हो जाते हैं और वहांपर अपनी वंशवृद्धिके साथ ही साथ रोगवृद्धि भी प्रारम्भ कर देते हैं। इससे बचनेका एकमात्र उपाय मच्छरोंकी उत्पत्तिका रोकना और कपड़े आदि द्वारा, उनसे बचकर रहना है।

मादा मच्छर जलकी सतहपर अंडे दिया करती है। दो तीन दिन बाद उनमेंसे एक कीड़ा निकलता है; जिसको 'लारवा' या 'ग्रब' कहते हैं। यह जलमें रहता है और इधर उधरसे अपना भोजन बटोरकर गुज़ारा करता है। इसी प्रकार ७ से १४ दिनोंके बीचमें इसकी लंबाई $\frac{१}{२}$ इंचके करीब हो जाती है। इसे अंगरेज़ीमें प्यूपा (Pupa) कहते हैं। इस अवस्थामें भी यह जलमें ही तैरता रहता है। परन्तु किसी भी प्रकारका भोजन नहीं करता। इसके बाद दो तीन दिनके बीचमें ही अनेक परि-वर्तनोंके अनन्तर परदार मच्छर बन जाता है और अपनी पुरानी खोलीसे (pupa case) निकल कर उड़ने लगता है। यद्यपि यह लारवा और प्यूपाकी अवस्थामें जलके भीतर लटकता रहता है, तथापि सांस लेनेकेलिए उलटा होकर अपनी दुमको पानी-की सतहके बाहर निकाले रहता है। क्योंकि उस अवस्थामें सांस लेनेकेलिए इसके शरीरके दोनों

तरफ दो नालियां होती हैं, जिनका मुख दुमके पास होता है। इसीलिए यह पानीमें उलटा लटका करता है। यदि किसी प्रकार इसकी दुममें हवाका प्रवेश रोक दिया जाय तो लारवा (Larva) और प्यूपा (pupa) तत्काल दम घुटकर मर जायं। विद्वानोंने अनेक तरहकी जांचके बाद यह पता लगाया है कि यदि तेलकी एक पतली तह पानीकी सतहपर बना दी जाय तो इनको हवा न मिल सके और यह दम घुटकर मर जायँ, क्योंकि तेलके हलके और चिकने होनेके कारण यह अपनी दुम उसके बाहर नहीं निकाल सकते। अतः मनुष्योंको चाहिये कि ऐसे छोटे छोटे जलाशयोंमें, जिनका जल विशेष काममें न आता हो और मच्छरोंका उत्पत्तिस्थान बन गया हो, इतना तेल डलवा दें कि उसकी सतहपर एक पतली तह बन जाय। इसके लिए विशेष दक्षताकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तेल जलसे हलका होता है, जलपर डालने मात्रसे ऊपर आकर तह बना लेता है।

वायुके जीवाणु

[ले०—प्रो० तेजशङ्कर कोचक, बी. ए. एस-सी.]

वायुमें विचरनेवाले जीवाणुओंकी जांच करनेकी बहुत सी विधि हैं। हम केवल एक सरल विधि बतलाते हैं, जिसमें सिजविक नलिकासे (Sedgwick tube) जाँच की जाती है। चित्र १० में च सिजविक नलिका है। इसका एक भाग मोटा है और शेष भाग पतला है। इसके पतले भागमें श स्थानपर स्वच्छ शक्करके रवे हैं। र स्थानपर धुनी हुई रुई है और उसके सिरेपर एक रबड़की नलिका न लगी हुई है, जिसका दूसरा सिरा ट ट्यूब-

Bacteriology कीटाणुशास्त्र]

में लगा है। यह ट्यूब व बोतलके मुँहकी कागमें लगी हुई है। बोतलमें एक टैप क लगा है। यदि बोतलमें हम पानी भर दें और टोंटी खोल दें, तो बोतलका पानी निकल जायगा और बोतलमें पानीके स्थानपर, च, श, र, में होती हुई वायु भर जायगी। यदि इस बोतलमें एक घन गज़ पानी अमाता हो तो पानी निकालनेपर सिजविक नलिका द्वारा एक घन गज़ वायु, छनकर, बोतलमें भर जायगी और इस वायुके जितने जीवाणु होंगे, वह च की शक्कर और रुईमें रह जायँगे। जाँच करनेकी विधि यह है कि जिस स्थानकी वायुकी जाँच करनी हो, वहाँकी एक घनमीटर वायु उपरोक्त विधिसे छान लेते हैं। इस सिजविक नलिकाको काममें लानेके पहिले १५०°श तक गरम करके शुद्ध कर लेते हैं। तत्पश्चात् वायुका प्रवेश कराते हैं और सिजविक नलिकाके
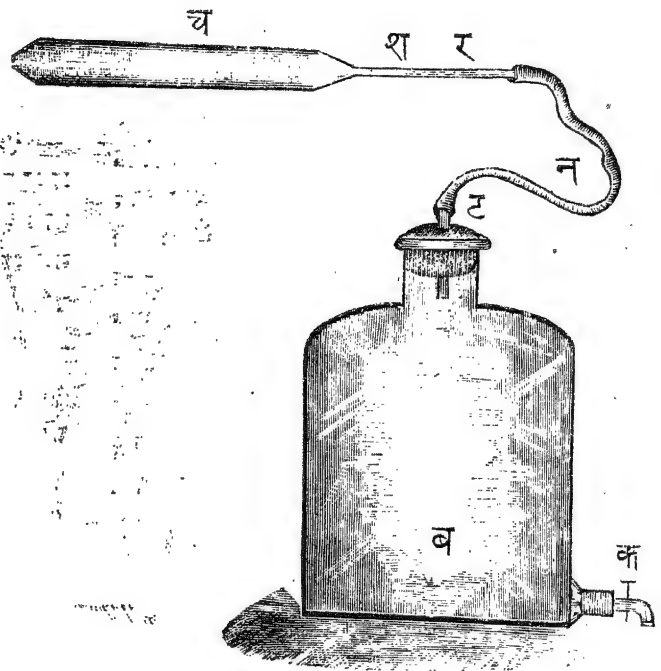
चित्र १०

मोटे सिरेसे इसमें शुद्ध की हुई गरम पतली जिलाटीन भर देते हैं। शक्कर जिलाटीनमें घुल जाती है और वायुके जीवाणु जो छनकर शक्करमें रह गये हैं, जिलाटीनमें आ जाते हैं। फिर इस नलिकाको, जिलाटीन समेत, बरफ़में रख देते हैं, जिससे जिलाटीन जम जाती है। अन्तमें पालन-यंत्रमें रख कर जीवाणुओंकी जिलाटीनमें वृद्धि कर अणुवीक्षण यंत्र द्वारा जाँच कर लेते हैं।

हम जीवाणुओंके रूपके विषयमें बतला चुके हैं कि इनके पंख नहीं होते, इस कारण यह वायुमें उड़ नहीं सकते और केवल मट्टी, कूड़ा, करकट इत्यादि जो हवाके झोकोंसे उड़ते हैं उन्हींके साथ साथ यह भी उड़े फिरते हैं। डाक्टर एटकिन ने हवामें कूड़े, करकटके, कणोंकी मात्रा जाननेकी एक अनोखी रीति निकाली है। (Transactions of the Royal Society of Edenburgh vol. 35)

हम जो ऊपर वर्णन कर आये हैं उससे पाठकगण भलीभांति सिद्ध कर सकते हैं कि वायुमें जितना ही कूड़ा अधिक होगा, उतने ही अधिक जीवाणु होंगे और उतना ही मनुष्योंके रोगी होनेका अधिक भय होगा। इस कारण भिन्न भिन्न नगरोंमें, वायुमें वर्तमान कूड़ा करकटके कणोंकी मात्रा जानना बड़ा आवश्यक है। यह बात याद रखनी चाहिये कि कूड़े करकटमें रोग फैलानेकी शक्ति नहीं है, रोग केवल उन जीवाणुओं द्वारा फैलतेहैं, जो कूड़े करकटके साथ उड़कर वायुमें फैल जाते हैं। जिन स्थानोंमें पानी होता है या धरती गीली होती है और वायु बहुत वेगसे नहीं चलती, वहाँ वायुमें जीवाणु कम होते हैं। जीवाणु गीली भूमिसे उड़कर वायुमण्डलमें नहीं आ सकते, न जलके द्वारा यह फैल सकते हैं।

इसी कारण जो हमारे मुंह और नाकसे सांस निकलती है उसमें, हमारी नाक और मुंहके तर होनेके कारण जीवाणु बहुत कम निकलते हैं। केवल जब हम खांसते हैं या छींकते हैं, तो नाक या थूकके किसी वस्तुपर पड़जानेसे उसपर जीवाणु पहुंच जाते हैं। कई रीतिसे यह सिद्ध कर लिया गया है कि

(१) वायुमें नाना प्रकारके जीवाणु होते हैं और वह सांस द्वारा हमारे शरीरमें प्रवेश कर सकते हैं। नाकके बाल और उसकी नमीके कारण अधिकतर जीवाणु नाकमें ही रह जाते हैं और देहमें उनका प्रवेश नहीं होने पाता।

(२) शरीर इनको नष्ट करनेकी चेष्टा कई प्रकारसे करता रहता है और इसीलिए इनकी संख्या घट जाती है।

(३) जो सांस हमारी नाकसे बाहर निकलती है, साधारण दशामें उसमें जीवाणु नहीं होते।

(४) मोरियों और नालियोंकी वायुमें, जब तक कि वह सूखती नहीं हैं, गीली रहती हैं, जीवाणु बहुत कम होते हैं।

(५) मोरियों और नालियोंकी कीचड़में नाना प्रकारके जीवाणु रहते हैं, जिनमेंसे बहुतसे ऐसे होते हैं कि वायुमें नहीं मिल सकते। जब कभी नालियोंका पानी छलकता या किसी अन्य प्रकारसे उसमें छींटे उड़ते हैं, तो छींटोंके द्वारा कभी कभी कुछ जीवाणु मोरीकी वायुमें आजाते हैं।

(६) मोरियोंमें नाना प्रकारके रोग फैलानेवाले जीवाणु मिलते हैं, परन्तु उनकी वायुमें साधारण दशामें नहीं होते।

[शेष फिर]

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी,

भाग—७

मेष—कन्या १९७५

April—September, 1918.

प्रकाशक

विज्ञान—परिषद्

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

स्वास्थ्य (Hygiene)

होमियोपैथी (Homeopathy)

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट, और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-कागज़ काम-रद्दीका उपयोग-), ७-केला—मूल्य -) ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ६-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

Telegram to be addressed thus :—
"DR. BHARGAVA", ALLAHABAD.

Ladies and Gentlemen desirous of gaining my advice in any case of Diseases, whether Acute or Chronic, should give a plain statement of their afflictions, when contracted, the present symptoms, &c., in fact everything should be made known to me precisely as would occur by personal interview.

All Letters will be treated as strictly Private and Confidential.

Invalids, on a visit to Allahabad, may call on me whenever convenient.

Office Hours, 6 to 8 in the morning and 4 to 5 in the Evening.

ADDRESS :—
DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,
235, BAHADURGANJ, ALLAHABAD, U. P.
or VIJNANA CHARITABLE DISPENSARY,
626, *Katra, Allahabad.*

परिषद्से प्राप्य कुछ पुस्तकें

१—बच्चा ... ... ॥=)

२—मारीभ्रम ... ... १।)

३—हमारे शरीरकी रचना भाग १ तथा २ २।), ३।)

मंगानेका पता—मंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

ललिता

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ नवजात सबसे सरस मासिक पत्रिका

औरोंकी दृष्टिमें

चित्रमय जगत्—पत्रिका सब प्रकारसे उच्च और अपने ढंगकी एक नई वस्तु है।

विश्वमित्र—हम इसे उच्च कोटिकी मानते हैं।

प्रकाश—'ललिता वास्तवमें रूप, गुण, माधुर्य तथा लालित्यकी खानि है। ललिता, सोलहों आने शृङ्गारसे है। इस पर भी मूल्य ५) वार्षिक कुछ अधिक नहीं। लेख एक से एक बढ़िया, सार गर्भित, विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरञ्जक हैं।

सद्धर्म प्रचारक—पत्रिकाका स्वरूप कुछ सरस्वतीसे घटिया नहीं दिखाई देता।

धर्माभ्युदय—बहिरंग मनोहर है और हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उसका अन्तरंग भी हृदयग्राही है।

वार्षिक मूल्य ५) छः मासका मूल्य ३॥) नमूनेकी प्रति ॥)

मेनेजर—ललिता, सेवा सदन मेरठ।

काश-नाशक

खांसी बहुत बुरा रोग है। इससे असावधान होनेपर अंतमें क्षयी आदि विकट रोगोंका शिकार बनना पड़ता है। जिसे दमा, ज्वर खांसी, स्वर भेद, कफ के साथ रक्त गिरना और कमज़ोरी हो उसके लिए काश नाशक अमृतके समान है। पीने में अमृतके ही समीन मीठा है। दाम ८ औंस की शीशी १)

स्त्री संजीवनी

स्त्रियों के लिये प्रदर रोग से अधिक हानिकारक और कोई रोग नहीं है। प्रदरवाली स्त्रियों-को अनेक रोग घेरे रहते हैं। सन्तान पैदा करना तो उनके लिए असंभव ही सा हो जाता है। स्त्री संजीवनी पीनेसे हरतरहका प्रदर आराम होता है। जैसे मासिकधर्म एक माससे कम या अधिक समयपर होना, अधिक दिनों तक जारी रहना या महीनेमें दो तीन बार होना, श्वेत पीला काला और गरम रक्त जारी होना और बहुत थोड़ा मासिक होना आदि रोग एकदम दूर हो जाते हैं और सन्तान पैदा करनेकी शक्ति भी आ जाती है। मूल्य आठ औंस की शीशीका १)

उदरामृत नमक

चाहे किसी तरहका पेटका दर्द क्यों न हो इसकी एक ख़ोराक तत्काल प्रभाव दिखलाती है। पेट फूलना; पेटका दर्द; वायुविकार, मन्दाग्नि, अनपच, खट्टी, डकार आदि पेट सम्बन्धी रोगों-की यह रामबाण औषध है। दाम बड़ी शीशी १), दर्जन ८)। छोटी शीशी ।), १ दर्जन २)

मिलने का पता—

मैनेजर लक्ष्मी औषधालय, चौक, गया

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषद-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाइ. चिन्तामणि द्वारा छपा।

The Fifth Anniversary

OF THE

VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY

WILL BE HELD

In the Senate Hall

AT 8 A. M.

On Sunday following Allahabad University Convocation.

THE HON'BLE RAJA SIR RAMPAL SINGH, K.C.I.E., will preside and DR. WALI MOHAMMAD, M.A., PH.D., will deliver a lecture on "Discoveries and Inventions—how they are made."

All are cordially invited. The exact date will be notified later on.

SECRETARY.

انجمن صنائع و فنون

کا

پانچواں سالانہ جلسہ الہ آباد یونیورسٹی کانوکیشن کے بعد آنیوالے اتوار کو بوقت ۸ بجے صبح سینٹ ہال میں زیر صدارت آنریبل راجہ رامپال سنگھہ صاحب بہادر - کے - سی - آئی - ای - منعقد ہوگا - ڈاکٹر ولی محمد صاحب - ایم - اے - پی - ایچ - ڈی - ذیل کے مضمون پر لکچر دینگے—" ایجادات و اختراعات کیونکر ہوتے ہیں "

سب صاحبوں سے التماس ہے کہ تشریف لاکر سرفراز فرمائیں - تاریخ معینہ سے بعد میں اطلاع دیجائیگی -

سکریٹری انجمن صنائع و فنون

विज्ञान परिषद् प्रयाग

का

पांचवाँ वार्षिकोत्सव
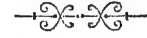
प्रयाग विश्वविद्यालयके कनवोकेशन (उपाधिपत्र वितरणोत्सव) के दूसरे दिन, इतवारको, सुबह आठ बजे, सेनेट हालमें होगा।

माननीय राजा सर रामपालसिंह, के. सी. आई. ई., सभापतिका आसन ग्रहण करेंगे और डा० वली मुहम्मद, एम. ए., पी. एच. डी—"खोज और गवेषणाएँ, किस प्रकार होती हैं" इस विषयपर व्याख्यान देंगे।

सर्व साधारणसे कृपाकर पधारनेकी प्रार्थना है।

ठीक तिथि पीछेसे समाचार पत्रोंमें प्रकाशित कर दी जायगी।

निवेदक

मंत्री

The Leader Press, Allahabad.

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

— संख्या ४३ Reg. No. A- 708

भाग ८ तुला १९७५ । अक्तूबर १९१८ संख्या १

Vol. VIII. No.1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३ ।] एक प्रतिका मूल्य ।)

ललिता

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ नवजात सबसे सरस मासिक पत्रिका

औरोंकी दृष्टिमें

चित्रमय जगत्—पत्रिका सब प्रकारसे उच्च और अपने ढंगकी एक नई वस्तु है।

विश्वमित्र—हम इसे उच्च कोटिकी मानते हैं।

प्रकाश—ललिता वास्तवमें रूप, गुण, माधुर्य तथा लालित्यकी खानि है। ललिता, सोलहों आने शृङ्गारसे है। इस पर भी मूल्य ५) वार्षिक कुछ अधिक नहीं। लेख एक से एक बढ़िया, सार गर्भित, विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरञ्जक हैं।

सद्धर्म प्रचारक—पत्रिकाका स्वरूप कुछ सरस्वतीसे घटिया नहीं दिखाई देता।

धर्माभ्युदय—बहिरंग मनोहर है और हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उसका अन्तरंग भी हृदयग्राही है।

वार्षिक मूल्य ५) छः मासका मूल्य २॥) नमूनेकी प्रति ।॥)

मेनेजर—ललिता, सेवा सदन मेरठ।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥।)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥।). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-काग़ज़ काम-रद्दीका उपयोग-).७-केला—मूल्य -). ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ८ } कन्या, संवत् १९७५। अक्तूबर, सन् १९१८। { संख्या १

मंगलाचरण

करो नित्य सत ज्ञान-अमृत-कन पान प्रेममय
धरो नित्य भगवान-भक्ति मन आन प्रेममय
दो सबको सम - मान स्व-जन-सन्मान प्रेममय
लो स्वदेशको जान स्व-जीवन-प्रान प्रेममय
बस यही विशद विज्ञानका लक्ष्य परम रमणीय है
जो मति इसके प्रतिकूल हो अतिव तिरस्करणीय है

श्रीपद्म-कोट, प्रयाग } —श्रीधर पाठक
३०-६-७५

वैज्ञानिक पद्धति

[ले०—श्री० गुलाबराय, एम. ए., एल-एल. बी]

विज्ञान विशेष ज्ञानको कहते हैं। विशेष और साधारण ज्ञानमें यही अन्तर है कि साधारण ज्ञान फुटकर पदार्थोंका होता है और उसमें कोई नियम वा व्यवस्था नहीं होती। विज्ञानका ज्ञान फुटकर बातोंका नहीं होता। वह ज्ञान सिद्धान्तोंका होता है और नियम और व्यवस्था ही उसका जीवन है। साधारण मनुष्य एक बातको देखकर सन्तुष्ट हो जाता है। वह देखता है कि पेड़ोंपरसे फल गिरते हैं, इस ज्ञानसे उसको केवल इतना ही प्रयोजन है कि पेड़के नीचे जाकर वह फल उठा लाये अथवा यह कि उसके तोड़नेमें उसे परिश्रम नहीं उठाना पड़ेगा। वैज्ञानिक इस तरहकी फुटकर बातोंके ज्ञानसे सन्तुष्ट नहीं

General साधारण]

होते। वह केवल फलोंके गिरनेके ऊपर ही विचार नहीं करते। वह सारे संसार भरके बोझ रखनेवाले पदार्थोंको एक ही नियमसे बंधा हुआ देखते हैं। जिस शक्तिके कारण वृक्षसे फल गिरता है, उसी शक्तिके कारण झरनेमेंसे पानी गिरता है और उसी शक्तिके वश छतसे कूदनेवाला मनुष्य गिरता है। साधारण मनुष्यके लिए फलका गिरना और छतपरसे कूद कर गिरना भिन्न भिन्न दृश्य हैं, किन्तु वैज्ञानिककेलिए यह दोनों ही घटनाएँ एक ही नियमका उदाहरण हैं। साधारण मनुष्य अनेकतासे सन्तुष्ट हो जाता है। वैज्ञानिक पण्डित अनेकतासे सन्तुष्ट नहीं होता। वह नियमकी खोज करता है। अनेकतामें एकता देखना ही सच्चा ज्ञान है। विभक्तमें अविभक्तको देखना इसीको श्रीमद्भगवद्गीतामें सात्विक ज्ञान कहा है। अनेक घटनाओंमें एक व्यापक नियमकी खोज करके ज्ञानमें एकता स्थापित करना, यही विज्ञानका कार्य है। इस व्यापक नियमको व्याप्ति ज्ञान-आगमन (इनडकशन induction) कहते हैं। उस व्याप्तिके स्थापन करनेमें जिस पद्धतिका प्रयोग होता है उसको वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। यह व्याप्ति दो गुणोंका एक आधेयमें सहचार (coexistence) बतलाती है अथवा दो गुणोंमें आनुपूर्वी (sequence) सम्बन्ध कर उनका कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित करती है। एक गुणको देखकर दूसरेका अनुमान होने लगता है। जो पदार्थ बने हुए हैं वह अनित्य हैं। जहां जहां बने हुएका गुण देखा जाता है, वहां वहां अनित्यताका भी गुण देखा जाता है। यह ज्ञान इन गुणोंके आकस्मिक संयोगका नहीं है। ऐसे आकस्मिक संयोगसे ज्ञानका लाभ नहीं होता और न यह ज्ञान क्रियामें फलदायक होता है। गरम किये जानेसे पदार्थ बढ़ते हैं। संसारमें बहुतसे काम इस ज्ञानके आधारपर किये जाते हैं। इन गुणोंका आनुपूर्वी सम्बन्ध आकस्मिक नहीं। संसारके सारे कार्य इन सम्बन्धोंके अटल होनेपर ही निर्भर हैं। यदि कल पानीको गरम करनेसे भापका बनना बन्द हो जाय तो मालूम नहीं संसारके कितने कार्य रुक जायं। गुणोंके आकस्मिक संयोगके ज्ञानसे कुछ लाभ नहीं होता। वैज्ञानिक पद्धतिसे यह निश्चय हो जाता है कि कौनसा संयोग आकस्मिक है और कौनसा कारण सम्बन्धी है। वैज्ञानिकोंको यह कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित करनेमें बड़ी खोज करनी पड़ती है।

इस क्रियाकी कई श्रेणियां हैं। सबसे पहिले तो होशियारीसे घटनाओंकी देख भाल होती है। इसको निरीक्षण (observation) कहते हैं। उनकी देख भालसे कल्पनाका (hypothesis) उदय होता है। यह तो निश्चित प्रकारसे नहीं कहा जा सकता कि कल्पनाका उदय निरीक्षणके पश्चात् ही होता है। कुछ थोड़ी बहुत कल्पना मनमें रख कर ही देख भाल की जाती है। निरीक्षणमें जो उद्देश्य होता है वही एक प्रकारकी कल्पना होती है। निरीक्षणके (observation) पश्चात कल्पना (hypothesis) बनाई जाती है। कल्पनाकी पूरी जांचके अर्थ उससे नये निगमन (deduction) निकाले जाते हैं और फिर उन निगमनोंकी अनुभवमें परीक्षा की जाती है। जब वह अनुभवसिद्ध हो जाते हैं तभी कल्पनाको नियम या सिद्धान्तकी (law) पदवी दी जाती है। विज्ञानके इतिहासमें इस परीक्षा पद्धतिके अच्छे अच्छे उदाहरण मिलते हैं। उनमेंसे एक यहांपर दिया जाता है। पहले जमानेके लोग पम्पमें पानी उठनेका कारण यह बतलाते थे कि प्रकृतिमें शून्यके लिए स्थान नहीं है (Nature abhors vacuum)। उन लोगोंको यह बात ज्ञात नहीं थी कि पम्पमें पानी ३३ फुटसे ज़्यादा ऊंचा नहीं उठता। इस बातको पहिले पहल गैलीलियोने (Galileo) देखा था। वह इसकी कुछ व्याख्या नहीं कर सका। उसकी मृत्युके पश्चात उसके मित्र टोरीसेलीने (Torricelli) इस विषयमें

विवेचन करना शुरु किया। उसने प्रश्न किया कि पानी ऊपर उठता ही क्यों है। तब उसके विचारमें आया कि वायुका कुछ न कुछ बोझ होगा और इसी बोझके कारण पम्पके शून्य स्थानमें पानी उठ जाता है। इस कल्पनाकी सत्यता जाननेके लिए इस कल्पनासे निगमनात्मक अनुमान किया। पारेका बोझ पानीसे चौदह गुना है। यदि कल्पना ठीक है तो हवाका बोझ पारेको ३३ फुटके चौदहवें हिस्से तक उठावेगा। उसने एक ३४ इंच लम्बी नलीमें पारा भरा और उसको पारेसे भरे हुए खुले बर्तनमें लौट दिया। पारा करीब ३० इंचकी ऊंचाईपर ठहर रहा। उसका अनुमान अनुभव-सिद्ध हो गया और उसने वायुका दबाव नापनेका यंत्र, जिसको बेरोमीटर कहते हैं बनाया। पेसकलने (Pascal) इस कल्पनाको और भी पुष्ट कर दिया। पहाड़पर हवाका बोझ कम होता है, वहांपर हवाकी, पारा वा पानीको उठानेकी, शक्ति और भी कम हो जानी चाहिये। यदि हवाके ही बोझसे पानी या पारा उठता है तो ऊंचे स्थानपर हवाकी कमीके कारण उसी अंशमें पारेका चढ़ना भी कम होना चाहिये। पहाड़ोंपर बेरोमीटर ले जानेसे यह बात अनुभवसिद्ध हो गई। कल्पनाकी पुष्टि हो गई। इसी प्रकार कल्पनाओंकी पुष्टि होती है। कल्पनाओंकी पुष्टिकी और भी कई रीतियां हैं। जिनका आगे संक्षेपतः वर्णन किया जावेगा। बहुत सी कल्पनाओंमेंसे ठीक कल्पनाको निकालना वैज्ञानिकका मुख्य कर्त्तव्य है। भावात्मक और निषेधात्मक उदाहरणों द्वारा योग्य कल्पनाओंकी पुष्टि और अयोग्य कल्पनाओंका निषेध होता रहता है। कभी ऐसा भी होता है कि दो ऐसी प्रतिद्वन्दनी कल्पनाएँ उठ खड़ी होती हैं, जो परीक्षित घटनाओंकी पूरी पूरी व्याख्या कर देती हैं। ऐसी अवस्थामें कोई ऐसी नई घटना ढूंढ़नी पड़ती है, जिसकी व्याख्या एक कल्पना कर सकती है और दूसरी नहीं। ऐसी घटना वा उदाहरणको निर्णायक उदाहरण (crucial test) कहते हैं। हमको ऐसे निर्णायक उदाहरणोंका प्रयोग साधारण जीवनकी घटनाओंमें अनेक बार करना पड़ता है।

विज्ञानमें भी निर्णायक उदाहरणोंका बहुत काम पड़ता है। प्रकाशके (light) विषयमें दो कल्पनाएँ की गई हैं। एक तो यह है कि प्रकाश एक प्रकारकी तरंगोंका (waves) फल है। यह तो तरङ्ग-सिद्धान्त (अनडुलेटरी थियेरी Undulatory theory) के नामसे प्रसिद्ध है। दूसरी कल्पनाके अनुसार प्रकाशके छोटे छोटे कण वा परमाणु होते हैं, जिनकी गतिसे प्रकाशका अनुभव होता है। इसको कण-सिद्धान्त (कोरपसक्यूलर Corpuscular theory) कहते हैं। यह दोनों ही कल्पनाएँ रेखागणितके नियमोंके अनुकूल पड़ती हैं और दोनों ही साधारणतया सन्तोषजनक हैं। इनमेंसे कौन वस्तुतः ठीक है, इस बातके निश्चय करनेके लिए निर्णायक उदाहरणोंकी आवश्यकता पड़ी। लोगोंने विचार किया कि यदि तरंगकी कल्पना ठीक है तो घने माध्यममें पतले माध्यमकी अपेक्षा प्रकाशकी गति घट जानी चाहिये और दूसरी कल्पनाके माननेवालोंका यह मत था कि घने माध्यममें आकर्षणके बलसे प्रकाशकी गति बढ़ जावेगी। जब कांचके लम्बे लम्बे टुकड़ोंको ऐसा रखा गया कि उनकी लम्बाईमें होकर प्रकाशकी किरणें निकलें तो देखा गया कि वास्तवमें प्रकाशकी गति घट गई। ऐसे ही प्रयोगको निर्णायक प्रयोग (experimentum crucis) कहते हैं। यह प्रयोग पहली कल्पनाके अनुकूल पड़ा और दूसरीके प्रतिकूल, इसीसे पहिली कल्पनाकी पुष्टि हुई और दूसरी कल्पनाका पक्ष गिर गया।

कल्पनाओंके बनाने और सिद्ध करने तथा कार्य्य-कारण सम्बन्धको पुष्ट करनेमें जो पद्धतियां काममें लाई जाती हैं उनका संक्षेपसे नीचे विवरण दिया जाता है। कारणकी परिभाषापर विचार-

करनेसे यह पद्धतियां स्वयं ही समझमें आ जाती हैं। तर्कभाषामें कारणकी परिभाषा इस प्रकार दी है:-"यस्य कार्यात्पूर्वभावो नियतोऽनन्यथा सिद्धश्चतत्कारणम्" अर्थात् जिसका भाव कार्य्यसे पहिले हो और जो नियत और अनन्यथा सिद्ध हो (हमेशा पहिले आता हो, आकस्मिक न हो और वृथा न हो)। जिसके होने या न होनेसे कार्यकी स्थितिमें कुछ अन्तर न पड़े उसे कारण नहीं कह सकते।

अन्वय रीति (method of agreement)

यदि किसी घटनाकी पहिले आनेवाली बातोंमें कोई एक बात उस घटनाके सब उदाहरणोंमें पाई जावे, तो अधिक सम्भावना है कि वह बात उस घटनाका कारण हो।

उदाहरण—यदि किसी मनुष्यका अनुभव ऐसा हो कि जब वह रातको चाय पिये तभी उसे रातको देरसे नींद आवे तो अन्वय रीतिसे यह अनुमान होगा कि चाय उसको निद्रा न आनेका कारण है। बहुत से लोगोंका विचार था कि सीपमें जो रंग दिखाई पड़ते हैं वह उसकी सामग्री विशेषका फल है। ब्रूस्टर ने (Brewster) एक बार सीपकी छाप मोम और रालपर ली, उसको वैसे ही रंग दिखाई पड़े। फिर उसने सीपकी छाप अन्य पदार्थोंपर उठाई, रंग वैसे ही दिखाई पड़े। पदार्थ बदलते रहे। आकार सीपका ही रहा। इससे यह निश्चय हो गया कि सीपमें रंगोंका कारण उसकी रासायनिक सामग्री नहीं, वरन् उसका आकार है।

व्यतिरेक रीति (method of difference)

अन्वय रीतिसे कल्पनाका उदय तो हो जाता है, किन्तु कल्पनाकी सिद्धि पूरी तौरसे नहीं होती। गुणोंका आनुपूर्वत्व आकस्मिक नहीं, इस बातकेलिए यह आवश्यक है कि पूर्व गुण व घटनासे उत्तर गुण वा घटनाका अभाव होता है या नहीं। सच्चा कारण वही समझा जायेगा जिसके अभावसे कार्य्यका भी अभाव हो। यदि ऐसा नहीं होगा तो उसमें अन्यथा सिद्ध होनेका दोष आ जावेगा। कौनसी बात किसी दूसरी बातके उत्पन्न करनेमें आवश्यक है, इस बातके जाननेके लिए एक एक बातका अभाव करके देखते हैं, जिसके अभावसे अभीष्ट गुण वा वस्तुका अभाव हो जावे वही कारण समझ लिया जाता है। यदि दो ऐसे उदाहरण लिये जावें कि एकमें किसी घटनाका भाव हो और दूसरेमें उसी घटनाका अभाव और भाव और अभावकी प्राग्भाविनी बातोंको मिलाकर देखनेपर उन बातोंमें एक ही भेद पाया जावे अर्थात् घटनाके भाववाले उदाहरणमें एक किसी बातका भाव और अभाववाले उदाहरणमें उसी बातका अभाव हो तो वह बात उस घटनाका कारण समझी जावेगी। यदि किसी बर्तनकी हवा निकाल ली जावे तो उसके भीतर घंटा बजानेसे शब्द नहीं होता है। वायुके अभावसे शब्दका भी अभाव हो जाता है, इस कारण वायु शब्दके संचारका कारण माना गया है। यह रीति प्रायः प्रयोगात्मक (experimental) है। इस रीतिमें प्रायः एक घटनाके दो ही उदाहरण लिये जाते हैं और उन दो उदाहरणोंमें केवल एक ही बातका भेद होता है। वही भेदकी बात कारण मानी जाती है।

अन्वय-व्यतिरेक रीति

इसमें ऊपर कही दोनों भावात्मक वा अभावात्मक रीतियां मिला दी जाती हैं। यदि हम कई ऐसे उदाहरण लेलें जिनमेंसे कुछमें तो किसी घटना विशेषका भाव हो और कुछमें अभाव होवे, फिर हम इन उदाहरणोंकी सब बातोंका विशेष निरीक्षण करें और यदि निरीक्षण करनेपर यह ज्ञात होवे कि जिन उदाहरणोंमें घटनाका भाव था उनमें और सब बातोंका भेद होनेपर भी एक बातकी समानता पाई जाती है और अभाववाले उदाहरणोंमें और बातोंका भेद होनेपर भी एक बातकी समानता पाई जाती है अर्थात् जिस बातका कि भाववाले उदाहरणोंमें भाव था उसी बातका अभाव सबमें

पाया जावे तो वह बात उस घटना विशेषका कारण समझी जायेगी।

उदाहरण—यदि हम कुछ ऐसे देश लें जो धनवान हैं और कुछ ऐसे लें जो धनहीन हैं और उन देशोंकी मुख्य बातोंको देखने और उनपर विचार करनेसे यह मालूम पड़े कि धनवान देशोंमें और सब बातोंका भेद होते हुए भी जो एक बात समान है वह यह है कि यहांपर शिक्षित लोगोंकी अधिकता है और धनहीन देशोंमें और बातोंका भेद होते हुए भी एक बातकी समानता है अर्थात् शिक्षित लोगोंकी अधिकताका अभाव है तो हमारा यह अनुमान होगा कि शिक्षित लोगोंकी अधिकता देशको धनवान बनाती है।

भेद-सहचार-रीति (Method of concommitant variation)

यह रीति पहिली रीतियोंसे भिन्न नहीं है। जो बातें कि पिछली रीतियोंमें पूर्णभाव और अभावसे सिद्ध की जाती हैं वही बातें दो चीज़ोंके साथ साथ घटने बढ़नेसे सिद्ध की जाती हैं। इस रीतिकी इस कारण और आवश्यकता पड़ती है कि प्रकृतिमें किसी चीजका पूर्ण भाव या अभाव बहुत कम होता है। जब एक चीज़के घटनेके साथ दूसरी चीज़ घटती और बढ़नेके साथ दूसरी चीज़ बढ़ती है तब उन दो चीज़ोंका कार्यकारण सम्बन्ध माना जाता है। यदि हम दो लकड़ीके टुकड़ोंको घिसें और जितने जोरसे घिसें उतने ही वह ज्यादह गरम होते जावें तो यह समझा जायेगा कि रगड़ गरमी पैदा करती है। व्यतिरेक रीतिमें बर्तनमें रखे हुए घंटेका उदाहरण दिया गया था। इस उदाहरणमें यह रीति भली प्रकार लग सकती है। जैसे जैसे बर्तनकी हवा कम होती जावेगी वैसे ही घंटेकी आवाज़ भी धीमी पड़ती जायेगी। इससे भी वायु और शब्द सञ्चारका कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

समुद्रमें ज्वार भाटोंका कारण भी इसी रीतिसे निश्चय किया गया है। चन्द्रमाके बढ़ने और घटनेके अनुकूल ही समुद्रके जलकी बाढ़ बढ़ती और घटती है। इससे लोगोंने निश्चय किया कि चन्द्रमा किसी न किसी प्रकारसे जलकी बाढ़का कारण है।

परिशिष्ट रीति (method of residues)

यदि किसी घटनाकी कुछ बातोंकी व्याख्या उसकी पूर्व भावनी बातोंसे हो जाती है तो उस घटनाकी बाकी दो एक बातोंकी व्याख्या बाकी पूर्व भाविनी बातोंसे हो जावेगी। मसलन एक घटना घ में म फ व तीन बातें शामिल हैं और उसकी पूर्व भाविनी च छ ज तीन मुख्य बातें हैं। हमको मालूम है प का कारण च है और फ का कारण छ तो सम्भवतः व का कारण ज है। किसी बड़े कमरेमें शामके वक्त ८० दर्जेकी गर्मी थी, फिर उसमें एक बड़ा भारी किटसन लम्प जलाया गया और बीस आदमियोंकी एक सभा हुई। घंटे भर बाद उस कमरेकी गर्मी नापी गई तो देखा गया कि ८०° से ८८° हो गई थी। उससे पहिले दिन भी उस कमरेमें घंटे भर किटसन लम्प जला था, लेकिन उस दिन आदमी एक भी न था। उस दिन घंटे भरमें कमरेकी गर्मी सिर्फ ४ दर्जे बढ़ी थी। एक दर्जे गर्मीका कारण और कुछ नहीं मालूम पड़ता। उस कमरेमें बीस आदमियोंकी उपस्थिति ही उसका कारण मालूम पड़ती है। यह परिशिष्ट रीति से ही ज्ञात हुआ। इसका एक अच्छा उदाहरण ज्योतिषसे मिलता है। सन् १८८१ में यूरेनस नामक ग्रह शनीचर ग्रहके बाहर पाया गया। फिर देखा गया कि वह आकर्षण शक्तिके नियमको पूर्णतया नहीं मानता है अर्थात् जिस कक्षामें उसको चलना चाहिये उससे थोड़ा हट कर चलता है और सब ग्रहोंके हिसाबसे जो उसकी कक्षा निर्धारित की गई थी, उससे यूरेनसकी कक्षा भिन्न थी। फिर सोचा गया कि शायद यूरेनसके बाहर कोई ऐसा ग्रह हो जो उसको खींचता है। फिर हिसाब लगाया गया कि अमुक

स्थानमें उस ग्रहकी स्थिति होनी चाहिये। दूरबीन लगा कर देखा गया तो इसी स्थानमें वह ग्रह पाया गया। यह ग्रह नेपट्यून (Neptune) के नामसे प्रसिद्ध है। यह परिशिष्ट रीतिका तो उदाहरण है ही, किन्तु इस बातका यह अच्छा उदाहरण है कि यदि हमारा अनुमान सर्वांश शुद्ध है तो वह अवश्य अनुभवसिद्ध पाया जावेगा।

यह सब रीतियां वैज्ञानिक आविष्कारों तथा सिद्धान्तोंके निरूपणमें सहायक मात्र हैं। इनके जान लेनेसे ही कोई वैज्ञानिक नहीं बन जाता है। इनके ज्ञानके साथ मनुष्यमें मौलिकता, कल्पना शक्ति, धैर्य्य, परिश्रम शीलता, द्वेषाभाव आदि अनेक गुण होने चाहिएँ जभी वह इस वैज्ञानिक पद्धतिसे पूर्ण लाभ उठा सकेगा।

चिकित्सा-परिचय।

[ले०—श्रीयुत सत्यभक्त,]

"शरीरम् रोग मंदिरम्"—यह अपने देशकी एक प्राचीन कहावत है। यद्यपि शरीरका रोगी रहना स्वाभाविक बात नहीं है और न प्रकृतिका ही ऐसा नियम है कि मनुष्य रोगी बना रहे, तथापि अपनी भूलों, कुपथ्य, दुराचार, अस्वाभाविक रहन सहन आदिका फलस्वरूप मनुष्यको रोग रूपी दण्ड भोगना पड़ता है। मनुष्यदेहका स्वाभाविक झुकाव आरोग्यताकी ओर ही है और प्रकृतिने भी उसे नीरोग रहनेका वर दिया है, पर मनुष्योंके आचार विचार तथा रहन सहनके नियम आदि वर्तमान समयमें, ऐसे खराब, अस्वाभाविक, अप्राकृत हो गये हैं, कि बीमारीसे उनका पीछा कदाचित ही कभी छूटता होगा। यही कारण है कि आजकल पूर्ण नीरोग मनुष्यका मिलना एक बड़ी कठिन बात हो गई है। जब सैकड़ों हज़ारों पुरुषोंकी खोज करेंगे तब उनमेंसे एकाध मनुष्य सब तरहसे नीरोग मिलेगा। नहीं तो किसीको बदहज़मीकी शिकायत होगी, किसीको खांसीकी, किसीको वीर्य सम्बन्धी रोगोंकी, किसीको शारीरिक कमजोरीकी, किसीको किसी दूसरे रोगकी। सारांश यह कि प्रायः सभी मनुष्य एक न एक रोगके शिकार बने हुए हैं। वास्तवमें यह सब प्रकृतिकी आज्ञा भंग करनेका दण्ड है, जिसका उस समयतक मिलते रहना अनिवार्य है, जब तक लोग अपनी रहन सहनकी खराबियोंका सुधार न करेंगे। अतएव उपरोक्त कहावत अस्वाभाविक होते हुए भी असत्य नहीं है।

जब रोगोंकी ऐसी दशा है तो उनका कुछ प्रतिकार भी होना चाहिये। यद्यपि मनुष्यमें अनेक दोष हैं, वह बड़ी बड़ी खराबियां कर डालता है, नाना प्रकारकी व्याधियोंको अपने पीछे लगा लेता है, पर वह अपनी बुद्धिद्वारा उनके कुफलोंके शांत करनेका उपाय भी ढूंढ़ लेता है, क्योंकि मनुष्यकी बुद्धि असीम शक्ति शालिनी है। उसके जोरसे मनुष्यने अपने दोषोंके फलस्वरूप नाना प्रकारके रोगोंके प्रतिकारार्थ उनकी चिकित्साका आविष्कार किया है, जिसके प्रभावसे वह रोगोंके आक्रमणोंको बहुत कुछ व्यर्थ करता रहता है।

पर वह चिकित्सापद्धति एक प्रकारकी नहीं है। मनुष्योंकी बुद्धि बहुत कुछ शक्ति रखनेवाली होनेपर भी प्रायःभिन्न होती हैं। हमारे देशमें प्रवाद भी है कि 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्न'। इस भिन्नताके प्रभावसे ही मनुष्योंने चिकित्साकी, एक दो नहीं, पच्चीसों प्रणालियां निकाल डाली हैं, जो एक दूसरेसे बहुत भिन्न हैं। किसी किसीमें तो इतना अधिक अंतर है कि उनके सिद्धान्त एक दूसरेसे बिलकुल उलटे हैं। इस प्रकार आजकल संसारमें मनुष्य अपने रोगोंके प्रतिकारार्थ—एकही उद्देश्यके लिए—अलग अलग चिकित्सा पद्धतियोंका अवलम्बन किये हुए हैं।

केवल मतिभिन्नता ही इस अंतरका कारण नहीं है। दूसरे भी कारण हैं। उनमें मुख्य देशकी प्राकृतिक स्थिति है। ठंडे और गर्म देशके निवासियोंको एक ही चिकित्सापद्धतिसे लाभ नहीं हो सकता। जो दवा शुष्कदेशके निवासियोंको अच्छा करनेकी शक्ति रखती है वह प्रचुर जलवाले देशके रहनेवालोंको वैसा ही लाभ नहीं पहुंचा सकती। इंगलैंडके लोग जिस चिकित्सा प्रणालीसे थोड़े ही समयमें चंगे हो जाते हैं वह भारत निवासियोंपर भी वैसा ही प्रभाव दिखा सके, यह सम्भव नहीं। कालभेदके कारण भी चिकित्सा पद्धतिमें अंतर पड़जाता है। जिस चिकित्साको लोग तीन चार हज़ार वर्ष पूर्व सर्वोत्तम समझते थे अबके मनुष्योंपर उसका वैसा ही प्रभाव हो सकना कठिन है। इनके अतिरिक्त जातिभेदके (मनुष्योंके आदि वंश) कारण भी चिकित्साके लाभोंमें अंतर पड़ सकता है।

इस भिन्नताका प्रभाव क्या होता है? संसारमें ऐसी ऐसी चिकित्सा पद्धतियां तथा ओषधियां प्रचलित हो गई हैं, जो अनेक मनुष्योंकी मृत्युका कारण होती हैं और जिनके जाननेसे बड़ा आश्चर्य होता है। उस आश्चर्यका कारण उन चिकित्साओंकी भिन्नता नहीं है, वरन आद्भुत्य है। संसारमें प्रचलित आयुर्वेदिक, यूनानी, एलोपैथिक (Allopathic) होमियोपैथिक (Homœopathic) जलचिकित्सा (Watercure) बायोकैमी (Biochemy) रंगचिकित्सा (Chromopathy) उपवासचिकित्सा (Fasting cure) यूनीपैथी (Unipathy) आदि चिकित्सा पद्धतियोंको तो प्रायः सभी जानते हैं और उनके भेदोंसे भी अनेक सज्जन परिचित हैं। पर कितने ही देशोंमें इनसे भिन्न, अनोखी चिकित्सा प्रणालियां प्रचलित हैं और वह आश्चर्यका कारण हैं। उदाहरणके लिए हमारे देशके कितने ही प्रान्तोंमें समस्त रोगोंका इलाज केवल झाड़ फूंक, मंत्र जंत्र और देवी देवताओंको भेट देनेके द्वारा किया जाता है। उन स्थानोंके लोग उपरोक्त सम्पूर्ण चिकित्साओंको अपने उपायोंके सामने एकदम रद्दी और अविश्वास योग्य मानते हैं। फिर दूसरे देशोंमें इनसे भी अद्भुत चिकित्सा तथा ओषधियोंका प्रचार है। चीनकी ओषधियां इनमें उल्लेख योग्य हैं। मरे हुए कीड़े मकोड़े, पशुओंके सींग, मैंढककी लार द्वारा बनी हुई गोलियां, बिच्छुओंकी पूंछ तथा बहुत से मंत्र जंत्र आदि हास्यजनक दवाओं द्वारा ही अपने बीमारोंकी चिकित्सा किया करते हैं। दूसरे असभ्य देशोंके निवासियोंमें भी चिकित्साकी बड़ी बड़ी अनोखी रीतियां प्रचलित हैं, जिन सबका यहां वर्णन करना कठिन है। कहीं रोगोंके देवी देवता मान कर उनकी पूजा की जाती है, कहीं भूतोंको बीमारियोंका कर्ता समझ कर उनको बकरे मुर्गे आदिकी भेट चढ़ाई जाती है, कहीं रोगीको एक कोठरीमें बन्द कर देते हैं, कहीं मंत्र और भजन गागा कर उसके आरोग्य लाभकी चेष्टा करते हैं। सारांश यह कि संसारमें भिन्न भिन्न प्रकारकी रंग बिरंगी चिकित्सा पद्धतियोंका प्रचार है और लोग बिना उनके गुणों तथा सिद्धान्तोंके समझे बूझे परम्परागत रीत्यानुसार उनका आश्रय लिये हुए हैं।

इन भिन्नताके उदाहरणोंमेंसे सबसे मज़ेदार बात तो रह गई, वह है तिब्बतकी ओषधियोंका वर्णन। तिब्बत इस नई रोशनीके ज़मानेमें भी सम्पूर्ण सभ्य संसारके निकट एक कौतुककी वस्तु हो रहा है। वहाँकी रहन सहन, शासन, न्याय, पढ़ने लिखने आदि सब बातोंके नियम बड़े विचित्र हैं। वहांके निवासी अपने देशमें विदेशियोंको आने नहीं देते, इसलिए उस देशका हाल सर्वसाधारणको बहुत ही थोड़ा मालूम है। पर कुछ दिन पहिले एक जापानी श्रमण (बौद्ध साधू) कावागुची छद्मवेषमें तिब्बत गये थे और उन्होंने वहांसे लौटकर यात्राके वर्णनकी Three years in Tibet (तिब्बतमें तीन वर्ष) नामक पुस्तक छपाई। उसीमें इन दो ओषधियोंका वर्णन है।

वह दोनों आश्चर्यजनक होनेके साथ साथ महा घृणित भी हैं। न मालूम तिब्बती कैसे उनका सेवन करते हैं और किस प्रकार उनके द्वारा आरोग्य प्राप्त करते हैं। जिस वस्तुके नाम सुननेसे ही दूसरे लोगोंको यहां घृणा होती है उन वस्तुओंको वे प्रसन्नतासे खा जाते हैं। उन दवाओंमें प्रथम मनुष्यकी देहसे निकला हुआ एक प्रकारका नमकीन रस होता है। उसे वे लोग सम्पूर्ण रोगोंकी रामवाण अव्यर्थ औषध समझते हैं। और दूसरी, वह तो एकदम अकथ्य है तथापि सुन लीजिये। दालाई लामा (तिब्बतके अधीश्वर) के मल मूत्रमें कुछ और वस्तुओंको मिलाकर गोली बनाई जाती हैं और फिर उनको रंग कर अथवा सोनेके वर्कोंमें लपेट कर दवाके रूपमें ग्रहण किया जाता है। इसके समान महान् औषध तिब्बतमें दूसरी नहीं है। उनके लिए यह गोली साक्षात अमृत स्वरूप हैं और बड़े भाग्य, महान उद्योग तथा बहुत सा धन खर्च करनेपर भी कठिनतासे प्राप्त होती हैं। तिब्बतियोंका विश्वास है कि यदि मरते हुये मनुष्यको भी इन गोलियोंमेंसे एक गोली दे दी जाय तो वह अच्छा हो सकता है। पाठको, क्या किसी दूसरे स्थानमें भी आपने ऐसी अद्भुत औषधियोंका प्रयोग होते देखा है?

इस प्रकार संसारमें नाना प्रकारकी चिकित्साएं प्रचलित हैं, जिनको उपभेदों और शाखाओं सहित गिनाना भी कठिन है। उनमेंसे अनेक मनुष्यकी प्रकृतिके अनुकूल हैं, अनेक प्रतिकूल। कितनी ही मनुष्यको शीघ्र नीरोग कर देती हैं, देहका बलवान और पुष्ट बनाती हैं, तथा कितनी ही मनुष्योंके लिए प्राणघातक हैं, तथा उनके बलवीर्यका क्षय करती हैं। इन चिकित्सा पद्धतियोंमेंसे कुछ विज्ञानानुकूल हैं, जैसे आयुर्वेदिक, यूनानी, एलोपैथिक आदि तथा कुछ उसके प्रतिकूल भी हैं, जैसे स्यानों नेवतोंका इलाज, मंत्रजंत्र टोना टोटका। कई चिकित्साएँ प्राकृतिक हैं; जैसे उपवास चिकित्सा, जलचिकित्सा आदि तथा कई अप्राकृतिक भी हैं जैसे एलोपैथिक, यूनानी आदि। सारांश इनके अनेक अनेक भेद हैं, जिनका पार पा सकना कठिन है।

यह बात प्रत्यक्ष है कि इस विषयका ज्ञान मनुष्यके लिए बड़ा उपकारी, लाभदायक और आवश्यक है, क्योंकि भिन्न भिन्न चिकित्सा पद्धतियोंमें भिन्न भिन्न गुण हैं। किसीको एकसे लाभ होता है, किसीको दूसरीसे आरोग्य प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न रोगोंपर भी उनका प्रभाव अलग अलग है। यद्यपि प्रत्येक चिकित्सापद्धतिके अनुयायी उसे यावत व्याधियोंकेलिए उपकारी और सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं और कदाचित किसी दृष्टिसे उनका कहना सत्य भी हो, पर निष्पक्षपातपूर्व विचार करनेसे हमें तो यही मालूम होता है कि विशेष रोगमें विशेष चिकित्सासे अधिक लाभ होता है। अतएव यदि सर्वसाधारणको सब प्रकारकी प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धतियोंका सामान्य ज्ञान हो जाय और वह उनके मूलसिद्धान्तोंसे अभिज्ञ हो जांय तो उन्हें अपनी प्रकृति तथा रोगके अनुकूल चिकित्सा पद्धतिके चुननेमें बड़ी सहायता मिले और वे शीघ्र और सहजमें रोगमुक्त होनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकें।

अभी तक हिन्दी भाषामें इस विषयकी विशेष चर्चा देखनेमें नहीं आती। यद्यपि मुख्य चिकित्सा पद्धतियोंके विषयमें कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, पर उनका प्रचार बहुत थोड़ा है और लोग उनसे अधिक लाभ नहीं उठाते। ऐसी दशामें इस विषयपर कुछ लिखना सर्वथा आवश्यक तथा हितकारी है। पर इन सबके विषयमें सर्वांग पूर्ण पुस्तकें लिख सकना तो बहुकालव्यापी कार्य है और उसका एक मनुष्य द्वारा हो सकना भी कठिन है। अतएव हम मुख्य मुख्य चिकित्सा पद्धतियोंका एक एक लेख द्वारा वर्णन करेंगे, जिससे पाठक

उनके संक्षिप्त विवरण, मूल सिद्धान्त तथा अन्य साधारण बातोंका ज्ञान प्राप्त कर सकें। फिर जिस चिकित्सा पद्धतिको वे पसन्द करें उसके लिए दूसरी बड़ी पुस्तकोंसे सहायता मिल जायगी।

प्राइवेट कम्पनी

(लेखक—श्रीयुत कस्तूरमल बांठिया, B. Com.

यह हम पहिले बतला चुके हैं कि साझेके व्यापारमें बहुतसे सुधार आवश्यक हैं। इस लेखमें उन्हीं सुधारोंपर कुछ विचार किया जायगा।

व्यापारिक सफलताके मुख्य साधनोंके जुटानेका एक सुलभ मार्ग साझा है। परन्तु साझेमें गुणोंके अतिरिक्त कुछ दोष भी हैं,जो साझा विशेषके अनुसार भिन्न भिन्न हुआ करते हैं। उदाहरणके लिए मान लो कि एक परिवारमें चार भाई हैं। मान लो कि कुटुम्बके भरण पोषणके लिए वे अपनी अविभक्त कौटुम्बिक सम्पत्तिसे एक व्यापार खड़ा करते हैं। यदि कुछ दिनोंके बाद उनमें-से कोई मर जाय तो साधारण साझा नीतिके प्रतिकूल भी साझेका काम ज्योंका त्यों चलता रहेगा। इसी प्रकार इस व्यापारके संचालनमें घर मालिकका (head man) अधिक अधिकार होगा। उसकी इच्छाके प्रतिकूल एक पत्ता भी न हिल सकेगा। इस अविभक्त कौटुम्बिक व्यापारसे (joint hindoo family firm) अपनी इच्छासे सम्बन्ध तोड़नेवाले भाईको साझीदारीके नियमानुकूल पिछले नफे नुकसानका (हानि लाभ) हिसाब पूछनेका भी कोई अधिकार न रहेगा। घरमालिक इस पेढ़ीके कार्यसंचालन निमित्त आवश्यकतानुसार कौटुम्बिक जमीन, जायदाद, ज़र व जवाहिरात आदि सब कुछ अपनी इच्छा से रहन व्यय कर सकता है। सामान्य साझीदारीके कोई भी नियम इस साझेको लागू नहीं होते।

उपर्युक्त विशेष प्रकारकी साझेदारियोंको छोड़ कर भी यह कहा जा सकता है कि साझेकी पद्धतिमें कई एक सुधारणीय दोष हैं। जब तक यह न सुधरें तब तक हमें उन दोषोंके हानिकारक परिणामोंसे बचे रहनेके लिए आईनकी उस शाखाका सहारा लेना चाहिये कि जो हमारी साझेकी सहूलियतोंको बनाये रख कर भी हमें उसके दोषोंसे बचा देती है और जिसकी वजहसे हमारे व्यापारकी सफलताका क्षेत्र बहुत ही सुविस्तृत एवम् सुदृढ़ हो जाता है। इस सबसे हमारा लक्ष्य सन् १९१३ के 'भारतीय कम्पनी आईन' की उस धारासे है कि जो हमें कम्पनियोंके रौटीनके झगड़ोंसे दूर रखकर साझेदारीके दोषोंसे रहित प्राइवेट कम्पनियां खोलनेकी आज्ञा देता है। सामान्यतः कम्पनी और साझेमें इतना ही अन्तर है कि साझेकी बनावट तथा आयु साझियोंके पारस्परिक विश्वास और आत्मिक सम्बन्धपर निर्भर रहती है। परन्तु कम्पनीकी बनावट एवम् आयु इन दोनोंमें-से किसी भी बातपर निर्भर नहीं होती। दूसरे साझेमें प्रत्येक साझीदार व्यापार-प्रबन्धका अधिकार रखता है। वह अपने इस अधिकारको पीछे बेच भी सकता है, यह बात यद्यपि सत्य है, परन्तु इस प्रकारका अधिकार कम्पनीके हिस्सेदारोंमेंसे किसीको आदिसे ही प्राप्त नहीं होता। उसका प्रबन्ध सदा वैतनिक अधिकारियोंके हाथमें ही रहता है।

साझेका मुख्य उद्देश्य आजकल व्यापार योग्य पूंजी जुटाना है। व्यापार चलाने योग्य पूंजी पासमें न होनेपर ही हमारे देसी व्यापारी किसी दूसरेसे साझा कर अपने नफेका भाग बंटाना स्वीकार करते हैं। पूंजी होते हुए देशहितके लिए वे किसीसे साझा करना नहीं चाहते। उनके व्यापारका नफा उनके अतिरिक्त अन्य किसीको हो, यह उनसे नहीं देखा जाता। इस प्रतिद्वन्दताके समयमें व्यापार करने योग्य शक्ति व पूंजी न हो तो कुछ चिंताकी बात नहीं। इससे चाहे वे विदेशियोंसे अपने मुंहकी खा जायं,

Economics अर्थ शास्त्र]

परन्तु अपने सहयोगी देसी व्यापारियोंसे 'येन केन प्रकारेण' बाज़ी मार लेना ही इनका मुख्य लक्ष्य रहता है। व्यक्तिगत स्वार्थके सामने हमारे देसी व्यापारियोंको देशका लाभ अभी तक तुच्छ दीख पड़ता है। अस्तु हिल मिलकर व्यापारका नफा आपसमें बांट, देशका व्यापार देशवासियोंके हाथोंमें फिरसे ले आने और कायम रखनेकी चिंता हमारे देसी व्यापारी नहीं करते। परन्तु हर्ष है कि समय अब पलटा है। देशकी दुर्दशा प्रत्येक हृदयमें खटकने लगी है। जहां तहां अपमानित हो और ठोकरें खा अब हममें स्वाभिमानका भाव उदय होने लगा है। इसलिए अब यह ज़रूरी है कि देशके व्यापारको देशियोंके हाथोंमें फिरसे ले आने और कायम रखनेके लिए लाखोंकी ही नहीं वरन् करोड़ों रुपयेकी पूंजी लगाई जाय। इतनी पूंजी जुटानेके लिए यदि विचार किया जाय, तो केवल दो ही साधन दीख पड़ते हैं। उनमेंसे पहला साधन साझा है और दूसरा है कर्ज़ा लेना। कर्ज़ अथवा उधार लेनेके लिए जमी हुई पैठ और अच्छी साख होनी चाहिये, यद्यपि बिना अच्छी आर्थिक स्थितिके पैठ नहीं जमती। परन्तु यह बात सत्य है कि अच्छी पैठ वाला शतपति बुरी पैठवाले सहस्रपतिकी अपेक्षा दस गुना व्यापार कर सकता है। इस देशमें यह स्वतः ही सिद्ध है कि आजकलके ज़मानेके उपयुक्त करोड़ोंकी पूंजीका व्यापार करनेके लिए ऐसा साझा बनाया जाय कि उपयुक्त पूंजी जुटानेमें समर्थ हो सके। प्रत्येक व्यक्तिको व्यापारके लिए करोड़की पूंजी नहीं मिल सकती और साझेमें आईनके अनुसार साझियोंकी संख्या नियमित रहती है। यह बताया जा चुका है कि सराफी साझेमें दस और व्यापारी साझेमें बीस साझियोंसे विशेष साझी रखनेके लिए कम्पनी आईनकी धारा ४ के अनुसार साझा रजिस्टर कराना चाहिये। यहांपर हम पब्लिक कम्पनियोंको छोड़ केवल प्राईवेट कम्पनीके रजिस्ट्रेशन आदिके विषयमें कुछ लिखेंगे।

कम्पनी आईन धारा २ में प्राइवेट* कम्पनीकी परिभाषा (व्याख्या) इस प्रकार दी गई है—

प्राइवेट कम्पनी वह है—

(१) जिसके नियमोंके अनुसार

(क) कोई हिस्सेदार अपने हिस्से किसी गैरको नहीं दे या बेच सकता है।

(ख) हिस्सेदार, नौकरोंको छोड़कर, पचाससे अधिक न हों।

(ग) सर्वसाधारणको हिस्से खरीदनेकेलिए उकसाया न जाय।

(२) जो ऊपर दिये हुये नियमोंका सदा पालन करती है।

इन प्राइवेट कम्पनियोंको निम्नलिखित अधिकार आईन द्वारा प्राप्त हैं:—

(१) इसके खोलनेके लिए केवल दो ही आदमी आवश्यक हैं।

(२) वार्षिक विवरण (Annual summary) के साथ, देन लेन, तथा नफे नुकसानका आंकड़ा (Balance sheet) और स्टेटूटरी रिपोर्ट (Statutory report) कम्पनियोंके रजिस्ट्रारको इन्हें नहीं भेजनी पड़ती।

---

*A private company is one that—

(1) by its articles

(a) restricts the right to transfer its shares;

(b) limits its number of members to fifty (exclusive of persons in the employment of the company);

(c) prohibits any invitation to the public to subscribe for shares or debentures; and

(2) continues to observe such restrictions, limitations and prohibitions.

(३) इसके डाइरेक्टरोंकी संख्या कमसे कम एक हो सकती है और उन्हें पूर्व स्वीकृति देने अथवा मेमोरेण्डम पर सही करने अथवा कुछ शेयर खरीद करनेकी भी कुछ आवश्यकता नहीं होती।

(४) किसी प्रकारका विवरण पत्र कम्पनियों के रजिस्ट्रारके पास इन्हें नहीं भेजना पड़ता।

(५) शेअरोंके बांटने अथवा व्यापार शुरू करनेके पहले कुछ (Minimum subscription) जमा होना भी आवश्यक नहीं है।

(६) प्रीफरेन्स शेअर तथा डिबेश्चर्स खरीदनेवालोंको कम्पनीकी बहियोंके देखनेका अधिकार नहीं प्राप्त है।

(७) लेखा परीक्षक (Auditor) भी कम्पनी एक्ट धारा १४ में लिखे हुए गुणोंवाला होना आवश्यक नहीं है।

ऐसी कम्पनी खोलनेवालेको सामान्य साझेकी अपेक्षा नीचे लिखे सुभीते रहते हैं।

(१) इसके साझियोंकी जोखिम परिमित हो सकती है।

(२) इसके डाइरेक्टर्स (संचालक या कार्यकर्ता) परिमित अधिकारवाले होते हैं। हिस्सेदारोंकी नाईं उन्हें इच्छानुसार काम करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

(३) ऐसी कम्पनीको पब्लिक कम्पनीकी तरह पूंजी बढ़ाने तथा उधार लेनेकी सब सहूलियत प्राप्त रहती हैं।

(४) जन साधारण ऐसी कम्पनीके अधिकारियोंको हिसाब किताब दिखानेको मजबूर नहीं कर सकते। अपने हिस्सेदारोंको ही उन्हें हिसाब दिखाना होता है।

(५) जब चाहे तब उपर्युक्त प्रकारकी कम्पनी पब्लिक कम्पनीके रूपमें परिवर्तित की जा सकती है।

प्राइवेट कम्पनीको पब्लिक कम्पनीका रूप देनेके लिए निम्नलिखित बातें करना पड़ती हैं।

(अ) ऐसी कम्पनीको पहले इस हेतुका अपने हिस्सेदारोंकी साधारण सभामें (General meeting of the shareholders) विशेष प्रस्ताव (Special Resolution) स्वीकृत कराना पड़ता है।

(आ) पब्लिक कम्पनी रजिस्टर करानेके लिए रजिस्ट्रारके पास, प्रोस्पेक्टस अथवा विवरण पत्र पेश करना पड़ता है।

(इ) इसके अतिरिक्त कम्पनियोंके रजिस्ट्रारके पास स्टेटूटरी डिक्लेरेशन (Statutory Declaratin) और विशेष प्रस्ताव (Special Resolution) की एक नकल भेजना ज़रूरी है।

इन तीनों बातोंके सम्पादन हो चुकनेपर ऐसी प्राइवेट कम्पनी पब्लिक कम्पनी बनाई जा सकती है।

प्राकृतिक जलस्रोत

[ले०—श्रीयुत सालिग्राम वर्मा]

गठिया आदि अनेक शरीरके रोगोंसे छुटकारा पानेकेलिए बहुत दिनोंसे मनुष्य प्राकृतिक जलस्रोतों (झरने या सोतों) का आश्रय लेते रहे हैं। हमारे देशमें ऐसे स्थान धर्मक्षेत्र अथवा तीर्थ स्थान बन गये हैं और हज़ारों भारतवासी बड़ी श्रद्धासे उनमें स्नान करते हैं। यूरोप और इङ्गलेण्डमें हर साल हज़ारों आदमी (Bath-season) स्नान-कालमें यहांपर जमा होते हैं और प्रायः दो मास तक यहांकी शुद्ध वायु सेवन कर स्वास्थ्य-संचय करते हैं। भारतवर्षमें बद्रिकाश्रम (सूर्य कुंड), पुष्कर इत्यादिक जल-स्रोत बहुत प्राचीन हैं। जोरडन तथा बेथिसडाके तालका (Pool of Bethesda) वर्णन बाइबिलमें मौजूद है। मिश्र देशमें हिल्यूअन नामी स्नानागार हज़ारों बरससे मशहूर है। हमारे देशकी जल चिकित्साका प्रादुर्भाव इन्हीं नैसर्गिक स्रोतोंके चमत्कारिक प्रभावोंपर अवलंबित प्रतीत होता है। आधुनिक यूरोपियन जलचिकित्साके आविष्कर्त्ता रोम देश-

General साधारण]

के निवासी माने जाते हैं। संभव है कि इन लोगोंमें भी इस चिकित्साका प्रचार इसी रीतिसे हुआ हो। परन्तु सैकड़ों बरसोंसे इस चिकित्साका आश्रय लेनेपर भी उस समयके मनुष्योंने इन जलस्रोतोंके इस आश्चर्य पूर्ण गुणका एक मात्र कारण यही समझ रखा था कि इसका उद्गमस्थान खानिक होनेसे इसमें विशेष गुण उत्पन्न हो गये हैं। बहुत लोगोंका मत था कि यह स्रोत पहाड़ी स्थानों या समुद्रके किनारोंपर इसलिए पाये जाते हैं कि यहांपर जलकी धाराका, फूट निकलनेके पूर्व, अनेकों खनिज तथा वानस्पतिक पदार्थोंसे संयोग होता रहता है। परन्तु यूरोपमें जैसे जैसे वैज्ञानिक उन्नति होती गई लोगोंने नये नये अनुसंधानों द्वारा इनका रहस्योद्घाटन प्रारंभ कर दिया।

पहिले पहल रसायन विद्याकी ही शरण ली गई। इसका कारण था वह लोकमत जिसके अनुसार किसी जलमें विशेष गुण होनेके कारण उसमें घुले हुए अनेक यौगिक पदार्थ होते हैं। इसीलिए विश्लेषण द्वारा इन यौगिकोंको निकालनेकी चेष्टा की जाने लगी। परन्तु जब यह घुले हुए यौगिक मालूम हो गये तो इन्हें उस जलके आश्चर्यजनक गुणोंका कारण समझ लेना असंभव हो गया। सोडियम, पोटासियम और मैगनीसियम इत्यादि धातुओंके गंधेत (sulphates), एल्यूमीनियम ओषिद आदि मट्टियां, गंधक तथा फास्फोरस आदि अधातु जलमें घुली हुई मिलीं। परन्तु जब इन पदार्थोंको उसी मात्रामें जलमें घुलाकर प्रयोग किया गया तो वह गुण न पाये गये। पहिले तो वैद्योंका यह खयाल था कि स्रोत जल इन पदार्थोंका बहुत हलका (dilute) घोल है, इसीलिए साधारण रीतिपर इन पदार्थोंको मिला देनेसे उन्हीं गुणोंका पैदा होना असंभव है। होमियोपैथिक चिकित्साके अनुयायी तो इस मतको मान बैठे, परन्तु दूसरे लोगोंने इस जलको अपने घर ले जाकर इसका सेवन करके देखा कि स्रोतसे दूर होते ही न सिर्फ इसके गुण ही जाते रहे वरन् जितने अधिक दिनों तक इसे बोतलमें भर कर रखा गया इसमें परिवर्तन होता गया और कुछ मासके बाद यह पीने योग्य भी न रहा। अथवा यों कहिये कि मनुष्यकृत बंधनोंमें पड़ कर यह जल भी अपने स्वाभाविक गुणोंको त्याग देता है।

जब यह कारण सर्वमान्य न हो सके तो वैज्ञानिकोंने (hygiene) आरोग्य शास्त्रका अवलंबन ले एक और नया मत दृढ़ करना चाहा। नगरोंका जल वायु सेवन करनेके पश्चात् इन स्थानोंपर नियमित आहार विहार, खुली हुई और शुद्ध जगहके रहन सहनसे तथा संयम और नियम पूर्ण जीवन बितानेसे ही इन जल स्रोतोंके जल सेवनका ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ता है। जर्मन डाक्टर तो इस मतके ऐसे कट्टर अनुयायी बने कि उन्होंने अपने मरीज़ोंके लिए इन स्थानोंमें रहनेका ऐसा कालक्रम बना दिया कि लोगोंको उसके अनुसार चलना असंभव मालूम होने लगा। परन्तु १९ वीं शताब्दीकी विलासप्रियताने इन स्थानोंपर भी दखल जमा लिया और फैशनेबिल जीवन बितानेवाले अनेक नवयुवकोंने यहांपर भी वही अंधाधुंधी जारी रखी। बहुत लोगोंने तो इन स्थानोंके इस आश्चर्यपूर्ण आरोग्यकारी गुणोंका बेजा फायदा उठाना शुरु कर दिया। होटलों और थियेटरोंकी यहां भी कोई कमी न रही। परन्तु फिर भी इन स्रोतोंके गुणसे लोगोंको लाभ ही पहुंचता रहा। अतः बहुत कुछ टीप टाप करनेपर भी उपरोक्त मतकी जीवनयात्रा समाप्त हो ही गई।

हालमें विज्ञानकी एक नई शाखाने अपनी सहायता द्वारा इस विषयपर नया प्रकाश डाला है। प्रयोगोंद्वारा ज्ञात हुआ है कि इङ्गलेण्ड तथा फ्रांसके कई जल स्रोतोंमें रश्मि-विकीरकता (radio-activity) मौजूद है और इनमेंसे (helium) हीलियम जैसी निष्क्रिय गैस (inertgas)

निकला करती हैं। अतः कई वैज्ञानिकोंके मतानुसार इन जल स्रोतोंके चमत्कार तथा रहस्यपूर्ण प्रभावोंका यही कारण है। (raduim) रेडियम तथा उसके साथी रश्मि-विकीरक (radio-active) मौलिकोंका मानवी शरीरपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, यह बात अब सभी वैज्ञानिकोंको मान्य है। यह मौलिक धीरे धीरे स्वयं टूटते रहते हैं और कुछ कालमें नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि इस पानीको बोतलोंमें भर कर रखनेसे इसमें वह पहिलेके गुण नहीं रहते हैं तथा इन स्थानोंपर थोड़े दिनोंके निवाससे ऐसे रोग दूर हो जाते हैं जो किसी अन्य औषध या चिकित्सा द्वारा निर्मूल होने असंभव थे। (radio-active) रश्मि विकीरक पदार्थोंके इस अद्भुत गुणका वर्णन हम फिर किसी समय करनेकी आशा करते हैं।

रोग, उसके कारण और उससे बचनेके उपाय

[लेखक—साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ शास्त्री रेऊ]

(गताङ्कसे आगे)

प्लेग

यह बीमारी भी एक प्रकारके कीटाणुओंके रुधिरमें प्रविष्ट होनेसे उत्पन्न होती है। अन्य बीमारियोंके कीटाणुओंकी तरह इन कीटाणुओंको भी वाहनकी आवश्यकता होती है। इनके वाहक (intermediary host) एक प्रकारके पिस्सू होते हैं; जो चूहोंके शरीरपर चिपटे रहते हैं। इसीलिए सबसे पहिले यह रोग चूहोंको ही हुआ करता है और उन्हींके द्वारा दूर दूर तक फैल जाता है। चूहोंके नष्ट हो जानेपर यही खूनके प्यासे पिस्सू आदमियों आदिपर हमला करते हैं। इसीसे जब कहीं प्लेगकी बीमारी आती है तो पहिले चूहे मरने लगते हैं और बादमें आदमियोंकी बारी आती है।

यह पिस्सू अपने अंडे पृथ्वीपर दिया करते हैं। दो तीन दिनके अनन्तर इनमेंसे कैटरपिलर (caterpillar), लारवा (larva) या ग्रब (grub) उत्पन्न होता है। इस अवस्थामें यह जमीनपरकी गर्द व गिलाज़त खाया करता है और १४ दिनके अन्दर $\frac{1}{8}$ इंच लंबा हो जाता है। तदनन्तर रेशमके कीड़ेकी तरह यह अपने इर्दगिर्द रेशमी कोया सा बुन लेता है। इस कोयेके तार चेपदार होते हैं। अतः इसपर रेतके कण चिपक जाया करते हैं; जिससे यह कोया स्वयं मैलका धब्बासा दिखाई देता है। १४ दिन तक यह कीड़ा इसमें रहता है और अनेक परिवर्तनोंके अनन्तर प्यूपा आदिकी योनि भुगत कर पिस्सू बन जाता है। कभी कभी यह कीड़ा उपयुक्त देशकालके अभावमें महीनों तक इसी कोयेमें बैठा रहता है और उपयुक्त समय पाकर निकल आता है।

यह पिस्सू विशेषतः चूहेके ही रुधिरको पसन्द करते हैं। हां, यदि चूहेका रुधिर न मिल सके तो लाचारीकी हालतमें अन्य प्राणियोंका रुधिर चूसते हैं। अतः यदि घरोंमें चूहोंके बिलोंको बंद रखा जाय, नाज या अन्य खाद्य पदार्थोंको बिखरने न दिया जाय और कूड़ा करकट न पड़ा रखा जाय तो न तो घरोंमें चूहे वास करेंगे, और न पिस्सुओंके बच्चे परवरिश पा सकेंगे। यदि गाँव या नगरके सब लोग इन बातोंपर ध्यान दें तो इस रोगकी संक्रामकता बहुत कुछ कम हो सकती है और धीरे धीरे इस रोगसे पीछा भी छूट सकता है।

उपरोक्त यत्न करनेपर भी यदि असावधानतासे यह रोग नगरमें आजाय तो नगरवासियोंको बाहर जाकर रहना उचित है और यदि कारण विशेषसे ऐसा न कर सकें तो कमसे कम मकानोंकी छतोंपर ऊपरकी मंजिलपर तो उन्हें अवश्य ही रहना चाहिये। मोहल्लेमें बीमारी फैलनेके पूर्व ही घरके चूहोंको नष्ट करनेका उपाय करना

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

चाहिये। शरीरपर कोई तेज़ गन्धवाला तेल आदि लगाये रहना चाहिये, ज़ीनोंपर बिना बुझा चूना आदि बिछा देना चाहिये। बाहर जानेका काम पड़े तो ऊंचे ऊंचे घुटनों तकके मोजे पहिन कर जाना चाहिये। बैठने उठनेमें पूरा पूरा एहतियात रखना चाहिये-और घरपर सब कपड़े रोज़ धूपमें डालने चाहियें।

प्लेगके कीटाणुओंके वाहक पिस्सू बहुत नाज़ुक होते हैं। अतः डेढ़ दो घंटे धूपमें रहनेसे ही मर जाते हैं। यह तेज़ गंधके पास भी नहीं जाते और दो फ़ुटसे ऊंचे नहीं उछल सकते।

हैज़ा, पेचिश, निकाला और मोतीझिरा

यह बीमारियां भी भिन्न भिन्न प्रकारके कीटाणुओंके शरीरमें प्रविष्ट होनेसे होती हैं। इनका आकार शलाकाका सा होता है। इनके शरीरमें बालसे निकले होते हैं, जिनको सीलिया (Cilia) कहते हैं। इन्हींके सहारे यह पानीमें तैरते रहते हैं। यह रोंए (Cilia) इतने सूक्ष्म होते हैं कि बिना कीड़ेके मरे और एक विशेष रंगसे रंगे अणुवीक्षण यन्त्रसे भी नहीं दीखते। यह कीटाणु जलके साथ पेटमें पहुंच जाते हैं और शरीरको रोगी बनाते हैं। इन्हीं रोगियोंके मलसे यह कीटाणु मक्खियों आदिकी टांगोंमें लिपट कर फिर खाने पीनेकी वस्तुओंमें जा मिलते हैं और इसी तरह उत्तरोत्तर रोगकी और अपने वंशकी वृद्धि करते रहते हैं।

मक्खी अपने अंडे सड़ी गली चीज़ोंपर देती है। इनकी संख्या करीब १०० के होती है। इनसे भी पहिले लारवा निकलता है। कुछ दिनोंमें बढ़कर क्रासेलिस (chrysalis) या प्यूपा (pupa) बन जाता है और वर्षाऋतु तक इसी अवस्थामें पड़ा रहता है। जब हवामें तरी और धूपमें गरमी रहने लगती है तब यह अपनी उक्त थैलीसे निकलकर मक्खीके रूपमें उड़ने लगता है।

उपरोक्त बीमारियां बहुधा लड़ाईके समय हुआ करती हैं, क्योंकि उस समय खाने पीनेकी वस्तुओंके बनाने आदिमें सफ़ाई नहीं रहती और इसी कारण मक्खियां आदि भी बहुत हो जाती हैं। ऐसे समय कभी कभी युद्धमें हत हुए पुरुषोंकी संख्यासे भी इन रोगोंके द्वारा मरनेवालोंकी संख्या बढ़ जाती है। दक्षिणी एफ्रिकाके युद्धमें पांच लाख सत्तावन हजार छःसौ त्रेपन (५५७६५३) योद्धा थे। इनमेंसे युद्धमें मरनेवाले और ज़ख्मी होकर मरनेवाले कुल योद्धाओंकी संख्या सात हज़ार पांचसौ बियासी (७५८२) थी। परन्तु उसी सेनामें सत्तावन हजार छः सौ चौंतीस (५७६३४) पुरुषोंको मोतीझिरेका बुखार आया और उनमेंसे आठ हज़ार दो सौ पच्चीस (८२२५) मर गये।

परन्तु आजकलके युद्धोंमें इन रोगोंकी वह पहिलेकी सी भयङ्करता देखनेमें नहीं आती। इसका कारण यह है कि विज्ञानीने इनकी उत्पत्तिके वास्तविक कारणोंको ढूंढ़ निकाला है। परन्तु यह बड़े खेदकी बात है कि हमारे देशमें बिना युद्धके ही जहां तहां यह रोग अपना प्रभाव दिखाते फिरते हैं और लाखों प्राणियोंको असमयमें ही कालके गालमें ढकेल देते हैं। अतः हमको भी चाहिये कि यथा साध्य जलको साफ करके पिया करें और भोजन आदिकी सामग्रियोंको ढकी रखा करें। विशेषत: बीमारीके दिनोंमें तो इन बातोंका अवश्य ध्यान रखना उचित है। ऐसे समय रोगीके मलादिकको भी पृथ्वीमें गाड़ देना चाहिये और मोहल्लों और घरोंके आसपास, भीतर बाहर, सब तरफ सफ़ाईका पूरा ध्यान रखना चाहिये, जिससे मक्खियां आदि विशेष उत्पन्न न हों। कुओं और जलाशयोंमें भी कीटाणुनाशक परमैंगनेट औफ पोटास (permanganate of potash) आदि डालकर जल शुद्ध करते रहना चाहिये और उनके आसपास भी कूड़ा कर्कट इकट्ठा न होने देना चाहिये।

उपरोक्त बीमारियोंका आक्रमण हुए बाद इनसे छुटकारा पाना आसान नहीं है। क्योंकि

इन बीमारियोंके मिटनेपर भी सौमेंसे चार बीमारोंके रुधिरमें उक्त रोगोंके कीटाणु बने रहते हैं; जो इनके मलादिकके साथ बाहर आकर मक्खियों आदिकी सहायतासे दूसरोंको भी रोगी बना सकते हैं। ऐसे रोगियोंको यदि इन कीटाणुओंका वाहक (carriers) कहें तो कुछ अनुचित न होगा।

इसी प्रकार पाठक अन्य बीमारियोंके विषयमें भी समझ सकते हैं। बहुत सी गरमी आदिकी बीमारियां ऐसी होती हैं कि जो तीन तीन पीढ़ी तक पीछा नहीं छोड़तीं। अस्तु, इन सब बातोंका सारांश यह है कि हमको इन सब रोगोंसे बचनेके लिए इनके उत्पादक कारणोंको जानकर वैज्ञानिक उपायों द्वारा उनसे बचने और उनकी बाढ़को रोकनेके उपाय बराबर करते रहना चाहिये। इन्हीं बातोंपर ध्यान न देनेसे भारतमें प्रतिवर्ष लाखों आदमी असमयमें संसार यात्रा समाप्त कर देते हैं। परन्तु इन्हीं बातोंपर विशेष ध्यान दे कर पाश्चात्य विद्वानोंने इनसे बचनेके बहुत कुछ उपाय ढूंढ़ निकाले हैं। पनामाकी नहर, जिसके बनानेमें अनेक व्यापारियोंको करोड़ों रुपयेका नुक़सान उठाना पड़ा था और फिर भी न बन सकी थी, वहांके पीतज्वर उत्पादक (yellow fever) मच्छरोंका भेद जान लेनेसे बनकर तैयार हो गई है। इसी प्रकार रोमन कैम्पैगना (Roman Compagna) जिसके बसानेमें बहुत कुछ उद्योग करनेपर भी सफलता नहीं हुई थी इन्हीं कारणोंके जान लेनेसे बस गया है।

कानकी बीमारियां

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव,]

कानका दर्द और सूजन

जुकाम, सर्दी, वेवक्त नहाने, नहानेके बाद कान पोंछने, दांतोंके निकलने, कानके कुरेदने, पेटकी खराबियों, कानके अन्दर किसी कीड़े या नाज आदिके दानेके चले आनेके कारण जब दर्द होता है तो हरारत, सूजन, कानमेंसे पानीका निकलना, कानका भारीपन, बहिरापन, भनभनाहटका मालूम होना आदि बातें मालूम होती हैं।

ऐसी दशामें गर्म पानीसे भपारा लेने, पुल्टिसके बांधने और एकोनाइट-लोशनके इस्तैमाल करनेसे फ़ायदा होता है।

अगर कानके परदेपर सूजन आजाय, हरारत हो, शोर गुलसे नफरत हो तो एकोनाइट दो दो घंटे बाद देना चाहिये।

अगर कानके दर्दके कारण सिरमें भी दर्द हो और रोगी बर्राता हो तो बैलेडोना देना चाहिये।

अगर मरीज़का एक गाल लाल और गर्म हो और कानमें दर्द हो तो कैमोमिला देना चाहिये।

अगर मंदा मंदा दर्द कानमें रहता हो तो पलसैटिला देना चाहिये।

अगर सूजन हो तो सल्फर की एक ख़ुराक और दो घंटे बाद बैलेडोना की एक ख़ुराक देनी चाहिये।

कानसे सफेद या लालरंगका पानी निकलना

यह मवाद कानकी सूजन, खसरा या लाल बुख़ारकी वजहसे जारी हो जाता है। इसमें पीनेकी दवाइयोंके अलावा मवादको खूब साफ़ करके कानके अन्दर साफ़ रुई लगा देनी चाहिये। मरीज़की आम तन्दुरुस्तीका ज्यादा ख्याल रखना चाहिये और कार्बोलिक एसिडलोशन (जो कार्बोलिक एसिड १ ड्राम और गिलसरीन १ औंस ५ औंस साफ़ पानीमें मिलाकर बनाया जाता है) की दो तीन

Homeopathy होमियोपैथी]

बूंद दिनमें तीन चार बार कानमें डाल दी जायँ।

अगर गाढ़ा बूंदार खूनकी रंगतका पानी निकले, दर्द हो, कानोंके पीछेकी गिल्टियां नर्म मालूम हों तो मरक्यूरियस दो दो घंटे बाद देना चाहिये।

अगर खून और मवाद निकले और मरक्यूरियससे फ़ायदा न हो तो हैपरसल्फ़ देना चाहिये।

अगर पतला पानी खसरेके बाद कानसे निकलने लगे तो पलसटिला देना चाहिये।

अगर लाल बुख़ारके बाद कानसे पानी निकले तो म्यूरियेटिक एसिड देना चाहिये।

कमज़ोर बच्चोंके कानसे अगर पानी निकले या ऐसा पानी निकले कि जिसके लगनेसे जगह जगह पकना शुरू हो जावे तो आरसेनिकम देना चाहिये।

आयोडियम, औरम, या मरक्यूरियस आयोडाइड, भी देते हैं।

अगर कोई चीज़ कानमें चली गई हो तो पहले उस चीज़को निकाल लेना चाहिये। निकालनेकी सहल तरकीब यह है कि एक लकड़ीके सिरेमें कपड़ेकी धज्जी बांधी जाय। उस कपड़ेका सिरा बट कर गर्म किये हुए सरेसमें डुबो दिया जाय और कानके अन्दर डाल कर आध घंटे बाद जब सरेस उस चीज़पर जो कानके अन्दर है छूकर सूख जाय तो धीरेसे घुमा कर खींच लिया जाय। दाना या जो कुछ होगा कपड़ेमें लिपट कर निकल आयेगा।

अगर कोई कीड़ा मकोड़ा कानमें चला गया हो तो ईथर और अगर ईथर न मिले तो ज़ैतूनका तेल (ओलैव ऑइल) दो तीन बूंद कानमें डाल दिया जाय। इसके डालनेसे कीड़ा मर जायगा या घबरा कर बाहर निकल आयेगा।

अक्सर लोग बच्चोंको कान पकड़ कर सज़ा देते हैं। इसका कभी कभी यह नतीजा होता है कि कानके अन्दरका ढोल फट जाता है और बच्चे कम सुनने लगते हैं या बहिरे हो जाते हैं।

अगर ऐसा करनेसे बहिरापन हो गया है तो तीन चार दिन तक दो तीन बार आरनिका लोशन कानमें डालना चाहिये और पलसैटिला दिनमें तीन बार पिलाना चाहिये।

खादका प्रचार

कृषि तथा पुष्प अथवा फल वाटिकाके सम्बन्धमें खादका प्रचार एक मुख्य अंग है। जो लोग यह व्यवसाय करना जानते हैं वह पहले खादका उचित प्रबन्ध कर लेते हैं। खादके बिना खेती करना उन महाशयोंके सदृश है, जो बिना भोजनके प्रबन्ध किये यात्राके लिए चल पड़ते हैं और अकस्मात जो कुछ मिल जाता है वही खापीकर पेट पूजा कर लेते हैं। कोई बिना उचित भोजनके नहीं बढ़ सकता, पौधे भी इस नियमके अन्तर्गत हैं।

धेनु बिना खिलाये पिलाये जिस प्रकार उचित मात्रामें दूध नहीं देती, उसी प्रकार धरतीमें, बिना उचित खादके दिये, पूरी पैदावार नहीं होती। अच्छी सी अच्छी पुष्प-वाटिका, सुन्दर स्वादिष्ट फलोंके बागीचे समयपर भोजन और देख भाल चाहते हैं। चतुर माली इसका प्रबन्ध कर के उनकी आवश्यकता पूरी करते हैं।

अच्छी खाद वह है जो सुलभ हो, कम दामोंमें हर जगह मिल सकती हो। इश्तहारी और अजान व्यापारियोंके विज्ञापन देखकर खादका प्रयोग सावधान होकर करना चाहिये। कुछ लोग नवीन खेती अथवा वाटिकाके प्रबन्धमें ऐसे खादोंमें रुपया फूंक निरुत्साही हो गये हैं। उनका विश्वास खादके ऊपरसे जाता रहा है। उनको सावधानीसे विचार करना चाहिये कि साधारण खादका भी, यदि अच्छी रीतिसे प्रयोग किया जाय, तो बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। पशुओंके गोबर, सूखी पत्ती, भेड़ बकरीकी मींगनी

से एक मूल्यवान खाद तैय्यार हो सकता है। हर एक कृषक अपनी पशुशालासे थोड़ी दूर, किसी ऊंची धरती पर, जहां पानी न भरता हो, एक जोड़ी बैल या गायके अनुसार, पांच फुट लम्बा, तीन फुट चौड़ा और पांच फुट गहरा एक गड्ढा खोद कर उसके चारों ओर मिट्टीसे मेएड बान्ध दे, जिससे पानी उसके भीतर न जाय। गड्ढेके ऊपर एक साधारण छप्पर फूस, सरपत, ऊखकी पत्ती अथवा पयालका डाल देवे कि आतप वर्षा, वातसे खादकी रक्षा हो। गोमूत्र इस प्रकारसे एकत्रित किया जावे कि यदि फर्श पक्का है तो मूत्र किसी बर्तनमें इकट्ठा कर, खादके गड्ढे में छोड़ते जावें। यदि फर्श कच्चा है तो उसपर मिट्टीकी तह डालदें, और जब मिट्टी तर हो जावे तो खादके गड्ढेमें जमा करें। सूखी हुई पत्तियों अथवा अन्य पदार्थोंकी बिचाली भी जब मूत्र जज़्ब करले, उस समय खादमें जमा कर दें*। सूखी हुई पेड़ोंकी पत्तियां, पशुशालाकी झाड़न बुहारन, खराब चारा, हड्डीका चूरा, गोबर, लीद ऊनके टुकड़े, मूत्र, भेड बकरियोंकी मेंगनी एक ही गड्ढेमें मिट्टीसे बन्द कर देनी चाहियें। ६ से ८ मासमें यह खाद सब प्रकारके फूलों फलों तरकारियों या नाजमें दी जा सकती है। यह साधारण खाद कहलाती है। विशेष आवश्यकताओंके लिए विशेष प्रकारके खादका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकारसे एकत्रित की हुई खाद हवा पानीमें पड़ी हुई खादसे मूल्यवान होती है। कारण कि हवा पानीमें पड़ी हुई खादके ढेरोंसे खाद्य पदार्थ उड़ जाते हैं, घुल जाते हैं अथवा अन्य प्रकारसे नष्ट हो जाते हैं।

---

* यह ख़्याल रहे कि मूत्रमें खादके उपयुक्त बहुत अंश होता है।—ले०

प्रकाशविज्ञान

परावर्तन और उसके नियम

[ले०—प्रोफेसर निहालकरन सेठी, एम. एस-सी.]

यह हम देख चुके हैं कि प्रकाशका अध्ययन बहुत आवश्यक और लाभदायक है, किन्तु अब एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है। इस विषयका अध्ययन करनेके लिए किस रीतिका अवलम्बन किया जाय? क्या हमें यह उचित है कि आंख मूंदकर और ध्यान लगाकर एक स्थानपर बैठ जायँ या अपने हाथोंसे नये नये प्रयोग करके इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करें? क्या हम लोग सन्यासी बन जंगलमें चले जायँ और वहां ध्यानके द्वारा ही उन नियमोंके जाननेका प्रयत्न करें जिनसे संसारका सब काम चलता है या प्रयोगशालामें वस्तुओंकी और घटनाओंकी प्रत्यक्ष जांच करके अपना ज्ञान भाण्डार बढ़ावें?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रकृतिके विषयमें हमें जो कुछ ज्ञात है वह सब अनुभव द्वारा ही ज्ञात हुआ है और पूर्वानुभवसे ही घटनाओंका कारण जाननेकी इच्छा उत्पन्न होती है। असभ्य जंगली मनुष्य जो प्राकृतिक घटनाओंको अपने ही समान, किन्तु अत्यधिक शक्तिशाली व्यक्तियों, भूत प्रेतादि द्वारा की हुई समझता है, वह भी अपनी शक्तिके अनुभवसे यह मत निश्चित करता है। बड़े बड़े तत्ववेत्ता भी वही किया करते हैं। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ है कि किसीने वह बातें सोची हों कि जिनका कुछ ज्ञान या अनुभव पहिलेसे प्राप्त न था। यह हो सकता है कि छोटी या साधारण बातका अनुभव है और उससे किसी बड़े महत्वकी बातकी कल्पना करली जावे, किन्तु यह सर्वथा असम्भव है कि ऐसी बातकी

कल्पना हो सके कि जो किसी पूर्वानुभवके आश्रित या उसपर अवलम्बित न हो। *

प्रकाश सम्बन्धी बहुतसी बातें मनुष्य अपने जन्मकालसे ही जानता है और तभीसे उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा भी करता रहा है। किन्तु यह प्रयत्न दो तीन शताब्दी पहिले कभी सुव्यवस्थित रीतिसे नहीं किया गया था और इसी कारण प्रकाशविज्ञानकी अधिक उन्नति न होसकी।

यह समझना कुछ कठिन नहीं है कि पल पलके अनुभवसे मनुष्यको यह बहुत शीघ्र मालूम हो गया होगा कि वस्तुएँ जिधर हमें दिखलाई देती हैं वास्तवमें वह हैं भी उधर ही। तीरसे निशाना लगाते समय तो यह बात स्पष्ट रूपसे उसके हृदयमें बैठ गई होगी और उसने समझ लिया होगा कि प्रकाश सदा सीधा ही चलता है। जब मनुष्यने यह देखा होगा कि यदि एक छोटी सी भी अपारदर्शक वस्तु आंख और दीपकके बीचमें रखदी जावे तो फिर वह दीपक नहीं दिखलाई देता, तब तो इस विषयमें कोई सन्देह ही शेष न रहा होगा।

हम लोग इस बातको और भी सरलतासे देख सकते हैं। किसी अंधेरे कमरेमें कुछ धुंआ अथवा धूल हो तो प्रकाशके चलनेका सीधा रास्ता प्रत्यक्ष दीख पड़ता है †।

यदि खिड़कीमें लोहेके छड़ लगे हों तो दृश्य और भी अधिक सुन्दर होता है। धुएं अथवा धूलके न होनेपर स्वच्छ वायुमें हम कुछ नहीं देख सकते। इसका कारण यह है कि प्रकाश जब तक हमारे नेत्रोंमें न पहुंचे तब तक हम किसी वस्तुको नहीं देख सकते। धुएंके कण सीधे जाते हुए प्रकाशका कुछ अंश हमारे नेत्रोंकी ओर भी फेंकते हैं और इस कारण हमें वह धुएंके कण दीखने लगते हैं। किरणोंके मार्गमें स्थित कण इस प्रकार दिखलाई देंगे। अतएव उनको देखकर प्रकाश किरणोंके मार्गका बोध हो जायगा।
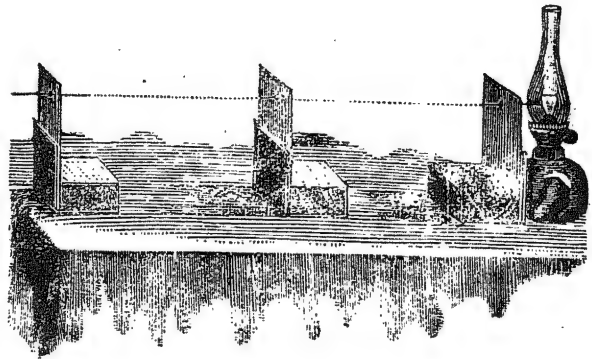
चित्र १

इसी बातको और भी अच्छी तरह देख लेनेके लिए मोटे कागजके तीन पुट्ठे (क, ख, ग,) लो और उनके बीचमें एक एक बहुत छोटा छिद्र बना दो। फिर तीनोंको एक दूसरेसे लगभग ४ इंचकी दूरीपर खड़े रखकर क (चित्र १) के पास एक दीपक या मोमबत्ती रख दो और ग मेंसे देखो। यदि बीचवाले पुट्ठे ख का छिद्र ऐसी जगह रखा होगा कि तीनों छिद्र एक सीधी रेखापर स्थित हों, तब तो दीपक दिखलाई देगा किन्तु यदि ज़रा भी फ़रक होगा तो वह कदापि न दीखेगा।

प्रकाशके सरलरेखात्मक गमन सम्बन्धी नियमका ज्ञान हो जानेपर भी किस प्रकार मनुष्य कई शताब्दियों तक यही समझता रहा कि प्रकाश

---

* पुराने तार्किकोंका मत था कि क्रिया सदा ज्ञानके आश्रित रहती है, बिना ज्ञानके क्रिया नहीं हो सकती, परन्तु यह भी सत्य है कि बिना क्रियाके ज्ञान नहीं प्राप्त होता। अस्तु, यद्यपि ज्ञानका साधन प्रयोग या परीक्षा है, तदपि प्रयोग या परीक्षा पूर्वानुभव बिना असम्भव है।—सं०

† राजपूतानेमें लड़कियां झांझीका खेल खेला करती हैं। झांझी एक छोटी सी हांडी होती है, जिसके पेटमें बहुतसे छिद्र बने रहते हैं। हांडी एक पालीसे ढकी रहती है, इसमें भी छेद रहते हैं। हांडीमें एक दीपक जलाकर रख देते हैं। झांझीको 'हँसाने' के लिए उसे राख बिछाकर रख दिया जाता है और गीत गा गाकर राखको हलकी थपकियोंसे उड़ाया जाता है। प्रकाशकी किरणें, जो छिद्रोंसे निकलकर चारों तरफ फैलती हैं, परन्तु अदृश्य हैं, राखके उड़नेसे दीख पड़ती हैं और दृश्य बड़ा मनोहर होता है।—सं०

दृष्टाके नेत्रोंसे निकल कर वस्तुपर गिरता है और तब वह दिखलाई देती है, जो अब समझमें भी आना कठिन है। उस समयके सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान पुरुष भी चक्षु इंद्रियको कीड़ोंकी मूंछोंके (tentacles) सदृश ही समझते थे और वस्तुको देख लेना भी वे एक प्रकारका स्पर्श करना ही मानते थे। प्रायः ईसाके ३५० वर्ष पहिले तक किसीने यह प्रश्न ही नहीं किया कि "यदि ऐसा है तो हम अंधकारमें क्यों नहीं देख सकते" अथवा "अंधकार ही क्या है ?" यह तो केवल ११ वीं शताब्दीमें अरबदेशके तत्ववेत्ता अलहसनकी (Alhazen) परीक्षाओं द्वारा निश्चित हुआ था कि प्रकाश नेत्रोंसे नहीं निकल सकता है। इसमें कुछ अधिक आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि जो लोग केवल विचार मात्रसे, बिना प्रत्यक्षपरीक्षा किये ही, सिद्धान्त निश्चय करनेका प्रयत्न करें उनसे ऐसी ग़लती हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। किन्तु अब प्रयोगों द्वारा हमारे विचार इतने अधिक विस्तृत हो गये हैं कि पल भर भी ऐसी कल्पना हमारे निकट नहीं टिक सकती।

निश्चल जलमें मनुष्यने अपना प्रतिबिम्ब भी बहुत ही प्राचीन कालमें देखा होगा। छोटे तालाबके किनारे खड़े होकर उस पारके वृक्षों और पर्वतोंको पानीमें उलटे लटकते देखकर अवश्य ही उसे आनन्द और विस्मय हुआ होगा। घरके चमकदार पीतलके बर्तनोंमें अपना विकृत रूप भी उसने अवश्य ही देखा होगा। दर्पणका प्रयोग भी बहुत पुराना है। इन बातोंका रहस्य जान लेनेका प्रयत्न किये बिना भी वह संतुष्ट नहीं रह सकता था। वह अवश्य जानता था कि यह सब दृश्य प्रकाशके परा- वर्तनके (reflection) कारण दीख पड़ते हैं। जब प्रकाश सामनेके वृक्षोंसे चलकर पानीपर पड़ता है तो उसका कुछ अंश पानीमें न घुसकर पुनः ऊपरकी ही ओर चला जाता है। यदि यह मुड़कर आया हुआ प्रकाश, यह परावर्तित किरणें, हमारे नेत्रोंमें प्रवेश कर जाती हैं तो सरल रेखात्मक गमनके अनुभवके कारण हमें ऐसा भास होने लगता है कि वृक्ष वास्तवमें जलके अन्दर ही हैं। चमकदार बर्तन और दर्पण भी प्रकाशका इसी प्रकार परावर्तन किया करते हैं। यह बात प्रत्यक्ष देखनेके लिए सूर्यका प्रकाश अंधेरे कमरेमें प्रविष्ट कराके एक दर्पणपर डालिये। तब वह परावर्तित होके दूसरी ओरकी दीवारपर पड़ेगा। अब यदि धूलसे पूर्ण एक कपड़ा वहां दर्पणके सामने झाड़ दें तो जो किरणें छिद्रमेंसे आकर दर्पणपर गिरती हैं और जो दर्पणसे चलकर सामनेकी दीवारपर गिरती हैं दोनों दीख पड़ेंगी।
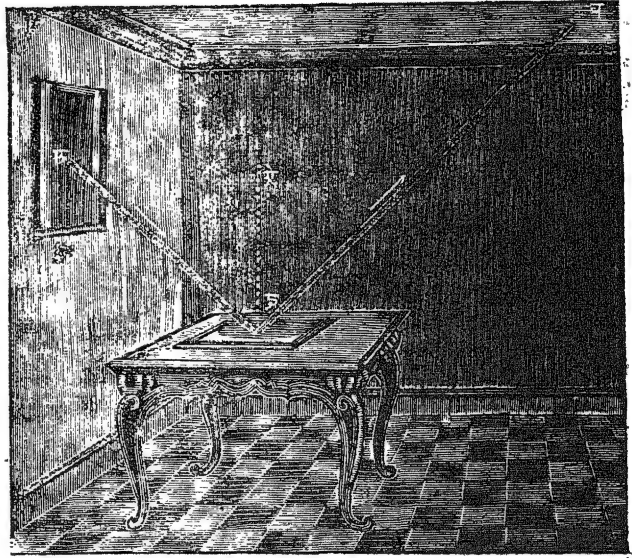
चित्र २

दर्पणपर पड़नेवाली किरणको आपात

किरण (incident ray) कहते हैं और वहांसे मुड़कर दूसरी ओर जानेवाली किरणको परावर्तित किरण (reflected ray) कहते हैं। किन्तु केवल इतना ज्ञान हो जानेसे ही काम नहीं चलता। प्रश्न होता है कि क्या परावर्तित किरण किसी नियमके अनुसार मुड़ती है अथवा यों ही जिधर जी चाहा मुड़ गई? प्रथम तो हमें यह पूर्ण विश्वास है कि प्रकृतिके जितने कार्य होते हैं वह सब नियम पूर्वक होते हैं और दूसरे यह देख लेना भी कोई कठिन काम नहीं कि इस परावर्तनके भी नियम अवश्य हैं, क्योंकि यदि दर्पणको स्थिर करके जिस छिद्रमेंसे प्रकाश आता है उसे बन्द करके पुनः खोलें तो भी परावर्तित किरण दीवारपर ठीक उसी स्थानपर पड़ती है जहां पहले पड़ी थी। चाहे कितनी ही बार प्रयोग करिये, किन्तु जब तक आपात किरणका मार्ग नहीं बदलता अथवा दर्पणको कुछ घुमाया नहीं जाता तब तक परावर्तित किरण भी ज्योंकी त्यों रहती है। हां, यदि उसका मार्ग बदल दिया जावे अथवा दर्पणको घुमा दिया जावे तब अवश्य ही इसमें भी परिवर्तन हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि यह व्यापार नियमबद्ध अवश्य है। नियम क्या है, यह जान लेना भी कोई कठिन कार्य नहीं है।

ऊपर हम देख चुके हैं कि जो कार्य आपात किरणके मार्गके परिवर्तनसे होता है वही कार्य दर्पणके घुमा देनेसे भी हो सकता है। इससे परिणाम यह निकला कि आवश्यकता केवल इस बातकी है कि दर्पण और किरणके बीचका कोण बदल दिया जाय। किन्तु दर्पणसे किसी रेखाका कोण किस प्रकार नापा जावे! दो सरल रेखाओंके बीचका कोण तो नाप सकते हैं, किन्तु एक रेखा और एक धरातलका कोण कैसे नापा जावे? इस कामके लिए गणितज्ञोंने उस धरातलसे सम्बन्ध रखनेवाली एक ऐसी रेखाका पता लगाया है, जो उस धरातलमें खिंची हुई समस्त रेखाओंसे समकोण बनाती है और स्वयं उस धरातलमें नहीं होती। इसे मुख्य लंब (normal) कहते हैं। अतः आपात किरण और दर्पणके बीचका कोण नापनेके लिए भी ऐसे ही मुख्यलंबका प्रयोग किया जाता है और जो कोण आपात किरण दर्पणके मुख्यलंबसे बनाती है उसे आपतन कोण (angle of incidence) कहते हैं। दर्पणको घुमानेसे, अथवा आपात किरणका मार्ग बदल देनेसे यह कोण बदल जाता है। इसे नापनेके लिए उस दर्पणपर एक लकड़ी मुख्यलंब रूप लगा देनी चाहिये।

जब यह कोण नप गया, तब स्वभावतः इसी मुख्यलंबसे परावर्त्तित किरण जो कोण बनाती है उसे भी नापनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। इस कोणको परावर्तन कोण (angle of reflection) कहते हैं। इसके नपते ही परावर्तनका सर्वोत्कृष्ट नियम ज्ञात हो गया कि आपतन कोण सदा परावर्तन कोणके बराबर होता है। जब पहिला बड़ा होता है तब दूसरा भी बड़ा होता है और जब पहिला छोटा होता है, दूसरा भी छोटा हो जाता है। यहां तक कि जब आपतन कोण ०° शून्य अंशका हो जाता है तब परावर्तन कोण भी उतना ही हो जाता है। अर्थात् जब आपात किरण मुख्यलंब होकर दर्पणपर पड़ती है तब परावर्तित होकर ठीक उसी मार्गसे लौट जाती है।

किन्तु केवल यह जान लेनेसे कि परावर्त्तन कोण इतने अंशका होगा हम परावर्त्तित किरणका पथ नहीं बतला सकते, क्योंकि मुख्यलंबसे उतना कोण बनानेवाली तो असंख्य रेखाएँ खींची जा सकती हैं। इन अगिणत रेखाओंमेंसे किस रेखाके मार्गसे परावर्त्तित किरण जावेगी, यह कैसे मालूम हो? इस प्रश्नका उत्तर एक समतल लकड़ीका तख़्ता दर्पणके सन्मुख रखनेसे मिल जाता है। यदि तख़्ता इस प्रकार रखा जावे कि आपात किरण और मुख्यलंब दोनों उससे समानान्तर हों तो मालूम होगा कि परावर्त्तित किरण भी उससे समानान्तर ही है। यदि हटाकर तख़्ता आपात

किरण और मुख्य लंबसे लगा दिया जाय तब परावर्त्तित किरण भी उसे छूती हुई जाती है अथवा यों कहना चाहिये कि आपात किरण, परावर्तित किरण और मुख्यलंब तीनों सदा एक ही धरातलमें होते हैं।

इन दोनों नियमोंकी अधिक बारीकीसे परीक्षा करनेका निम्नलिखित एक सुगम मार्ग है।

एक ड्राइंग तख्तेपर (drawing-board) एक सफेद कागज़ रखकर पिनोंसे उसे स्थिर कर दो। फिर उससे समकोण बनाता हुआ एक समतल दर्पण उसपर इस प्रकार रखो कि उसका पृष्ठ भाग जहाँसे प्रकाशका परावर्तन होता हो उस कागज़पर खिंची हुई एक रेखा पर रखा हो (चित्र ३)। तब उस दर्पणके निकट मध्यभागके सामने एक पिन (P) गाड़ दो और दूसरा पिन (Q) एक ओर हटकर पहिले पिनसे जितना दूर हो सके गाड़ दो। तब दूसरी ओरसे देखनेसे दोनोंके प्रतिबिम्ब दर्पणमें दिखलाई देने लगेंगे। आंखको इधर उधर हटानेसे एक प्रतिबिम्ब दूसरेके ठीक पीछे आजायगा और अब एक ही प्रतिबिम्ब दिखलाई देने लगेगा। तब आंखको वहीं स्थिर करके तीसरा पिन (R) दर्पणके सन्मुख इस प्रकार गाड़ दो कि वह उस एक प्रतिबिम्बको भी छिपाले। इसके पश्चात् चौथा पिन (S) दर्पणसे कुछ
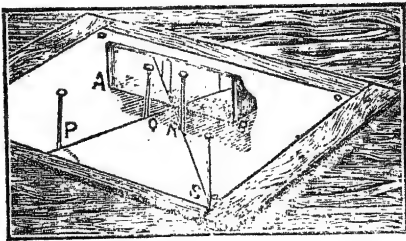
चित्र ३—A B दर्पण है, P, Q, R, S, पिन हैं।

दूर ऐसे गाड़ो कि यह उस तीसरे पिनको भा न दीखने दे। अब तीसरा और चौथा पिन और पहिले और दूसरे पिनोंके प्रतिबिम्ब चारों एक ही सरल रेखापर स्थित जान पड़ेंगे। इससे स्पष्ट है कि जो प्रकाश पहिले पिनसे चलकर दर्पण द्वारा परावर्तित होता है उसे दूसरे पिनने रोक लिया। अर्थात् यदि पहले और दूसरे पिनको एक सीधी रेखासे जोड़ दें तो वह आपात किरणका मार्ग बतलावेंगे। किन्तु तीसरे और चौथे पिनोंने भी इसी प्रकार परावर्तित किरणका मार्ग रोका है। अतः उन्हें जोड़नेवाली रेखा परावर्त्तित किरणका मार्ग बतलावेगी। इसलिए अब पिन उखाड़ कर उनसे उपरोक्त रेखाएँ खींचो तो दोनों रेखाएँ प्रायः उस रेखापर मिल जावेंगी जिसपर कि दर्पण रखा है। जहां वे मिलें यदि वहां एक लंब खींचो और आपतन कोण, और परावर्तन कोणको कोणमापक (protractor) द्वारा नापो तो ज्ञात होगा कि दोनों प्रायः बराबर हैं। इसी प्रकार तीन चार बार करनेसे नियमकी सत्यता सिद्ध हो जायेगी।

इसके साथ ही यह बात भूल न जानी चाहिये कि प्रत्येक वस्तुसे परावर्त्तन नहीं होता। जब तक पीतलके बर्तन खूब साफ़ रगड़े न जावें तब तक उनमें मुंह नहीं दिखलाई देता। पानी जब तक निश्चल नहीं होता तब तक उससे भी परावर्त्तन नहीं हो सकता। कागज़में भी प्रतिबिम्ब नहीं दिखलाई पड़ता। किन्तु वस्तु चिकनी न होनेपर भी उसपर पड़कर प्रकाश मुड़ अवश्य जाता है और चारों ओर फैल भी जाता है। अंधेरे कमरेमें सूर्यके प्रकाशके सामने सफेद कागज़ रखनेसे कमरे भरमें उजाला हो जाता है। लाल कागज़ रख देनेसे कमरेकी प्रत्येक वस्तुपर कुछ कुछ लाली आजाती है। यह मुड़ना कुछ नियम पूर्वक नहीं है, क्योंकि ऐसी दशामें प्रकाश मुड़कर किसी विशेष दिशामें नहीं जाता। वह तो सर्वत्र ही फैल जाता है। अतः इस मुड़नेको परावर्तन न कहकर फैलना (diffusion) कहते हैं। वस्तुके चिकने होनेपर यही फैल जानेवाला प्रकाश एकत्रित होकर नियमित दिशामें चला जाता है।

हमारी चित्र-कला

निज चित्रकारीके विषयमें क्या कहें क्या क्रम रहा।
प्रत्यक्ष है या चित्र है यों दर्शकोंको भ्रम रहा॥
इतिहास, काव्य, पुराण, नाटक ग्रन्थ जितने दीखते।
सबसे विदित है चित्र-रचना थे यहां सब सीखते॥
(म० श० गु०)

बीस वर्षसे भी कम हुए कि यूरोप-वासियोंमें यह भाव पूर्णरूपसे फैला हुआ था कि सच्ची चित्रकला भारतवर्षमें कभी थी ही नहीं। उस समयके पहिले पश्चिमी लेखकोंने भारतवर्षीय चित्रविद्याके विषयमें जितनी पुस्तकें लिखी थीं उन सभीसे यह स्पष्ट झलकता है कि भारत अन्यान्य देशोंसे चित्रकलामें बहुत पिछड़ा हुआ है। इस स्थिर वचनकी स्वीकृतिने सारे विषयोंको अति सरल कर दिया। यूरोपवासियोंने उस समय तक यहांके बने चित्रोंको नहीं देखा था, यह बात कभी नहीं कही जा सकती। यहांके कुछ बेल बूटों-से सुशोभित रंगीन सूक्ष्म चित्र उन लोगोंने अवश्य प्राप्त किये थे, परन्तु यह चित्र वहांके संग्रहालयोंमें भारतवर्षीय न कहे जाकर, पारसी तथा चीनी नामसे विख्यात थे। वहांके लोग इन-को चित्र-कलाके नमूने कहनेमें हिचकते थे। भला यह प्रतिष्ठा तो बहुत ही दुर्लभ है; इनकी गणना वे लोग चित्रोंमें भी न करते थे।

विचार करनेपर इन बातोंका कारण शीघ्र ही मिल सकता है। आजसे बीस वर्ष पूर्व यूरोप-वासी उसी चित्र-कलाको सच्ची 'चित्र-कला' कहते थे जो उनके विचारोंके अनुसार हो। जब तक कोई चित्र अथवा मूर्ति पश्चिमी चित्र-कला संबन्धी नियमोंसे परिपूर्ण न हो और जब तक उसके पर्सपेक्टिव* (perspective) तथा एनोटमी (anatomy) पश्चिमी चित्र-कला संबन्धी पुस्तकोंमें बताई भिन्न भिन्न बातोंके अनुकूल न हों तब तक वह तसवीर अथवा मूर्त्ति उनकी दृष्टिमें जमती न थी। वह ऐसे चित्रोंको मनोरंजनके लिए एक अद्भुत पदार्थ समझा करते थे।

कुछ दिन हुए कि 'जापानी चित्रकला' के विषयमें यूरोपवासियोंका मत बदल गया। वह लोग यह विचारने लगे कि इस बिलग प्रणाली-की कलामें भी बहुत से उत्तम तथा प्रशंसनीय गुण हैं। सत्य कहा है कि 'संसारमें किसका समय है एक सा रहता सदा। है निशिदिवस सी घूमती सर्वत्र विपदा संपदा'। जिस पूर्वीय कलाके विषयमें नाना प्रकारके कटाक्ष तथा आक्षेप हुआ करते थे, अन्तमें उसके सच्चे गुण प्रगट हो ही गये। यूरोपवासियोंके नेत्रोंपरसे अन्धकारका परदा उठ गया। वह लोग इस कलाके चमत्कारों-को देखकर चकित हो गये। उनके हृदयोंमें यह विचार उत्पन्न होने लगा कि पूर्वीय चित्र-विद्यामें भी बहुत से ग्रहण करने योग्य गुण हैं। नेत्रोंपर अन्धकारका पट पड़े रहनेके कारण वह लोग इसकी अद्वितीय प्रभाका निरीक्षण नहीं कर सकते थे। घृणा तथा आत्माभिमानके कारण विदे-शीय वस्तुओंकी प्रशंसा उनसे नहीं की जा सकती थी। परन्तु इस संसारमें किसी पदार्थका गुण बहुत काल तक नहीं छिपा रह सकता। उदार हृदयवाले महज्जनोंने पूर्वीय चित्र-कलाके अगाध समुद्रमें गोते लगाये और अन्वेषणोपरान्त ढके हुए अमूल्य रत्नोंका पता पाया। जापानी चित्र-कलाकी यूरोपमें स्वीकृति होनेके कुछ ही दिन बाद हिन्दुस्तानी चित्रकला भी वहांवालोंपर अपनी अनोखी प्रभा डालने लगी। क्रमशः यूरोपवालों-ने इस कलाका भी स्वागत किया। यहांके बने चित्र यूरोपमें महत्वके पदको प्राप्त करने लगे। पहिले वहांवालोंके मनमें यह भाव भरा था कि उत्तम चित्र वही है जो केन्वसके कपड़ेपर तेलके रंगोंसे बनाया जाता है तथा सुनहले चौखटोंमें

* एक ही स्थानसे देखी जानेवाली, समभूमिपर वर्त्त-मान अनेक वस्तुएँ जिस प्रकार नेत्रोंको प्रतीत होती हैं, ठीक उसी भांति उनके अंकित करनेकी कलाका नाम अंग्रेजी भाषा-में पर्सपेक्टिव है। शरीरके अवयवोंकी नापको एनोटमी (anatomy) कहते हैं।

Painting चित्रकला]

मढ़ा रहता है। परन्तु उनका यह भाव धीरे धीरे लोप होने लगा। बौद्धों द्वारा निर्मित दीवारोंपरके चित्र तथा मुगल सम्राटोंके समयके बने सूक्ष्म-चित्र यूरोपमें भारतीय चित्र-विद्याके प्रतिनिधि स्वरूप समझे जाने लगे।

पश्चिमी लोगों और यहाँवालोंके विचारोंमें घोर अन्तर होनेपर तथा प्रत्येकके चित्रकला संबन्धी स्वाभाविक ज्ञान विलग तथा सुदृढ़ होनेपर भी दोनोंने अन्ततोगत्वा कलाके समतलपर एक दूसरेका स्वागत किया। इस बातके कहनेका तात्पर्य्य यह नहीं है कि इस विषयमें दोनोंका एक मत है। एक उदाहरण लीजिये। भारतवर्षीय चित्र-कलाका ज्ञाता यदि किसी चित्रमें उत्तम भाव देखेगा तो वह उसकी प्रशंसा अवश्यमेव करेगा, चाहे वह चित्र अन्य सौन्दर्य्योंसे युक्त न हो, परन्तु पश्चिमी पुरोभागी उस चित्रको अवश्य घृणाकी दृष्टिसे देखेगा। इन बातोंका मुख्य तात्पर्य्य यह है कि हिन्दुस्तानी चितेरा पहिले तत्वज्ञानी होता है और पुनः चित्रकार, परन्तु पश्चिमी पहिले चित्र-कार बनता है और पुनः तत्वज्ञानी। इधर कुछ वर्षोंसे यूरोपमें हिन्दुस्तानी चित्र-कलाने जो रंगत दिखाई है, उससे दोनों देशवालोंके मत प्रायः एक ही हो चले हैं।

वास्तवमें जिस प्रकार दो सभ्य देशोंके आदर्श तथा विचार भिन्न भिन्न होते हैं, उसी प्रकार पश्चिमी और पूर्वीय चित्र-कला भी एक दूसरेसे भिन्न हैं। पश्चिमी चित्र-विद्याकी प्रणाली, आदर्श, तथा लक्ष्य कुछ दूसरे ही हैं और भारतवर्षीय चित्र-विद्याके कुछ दूसरे ही। इनमें जो असादृश्य है उसको भली भाँति समझ लेनेपर हमारी चित्र-कलाके गुण शीघ्र ही प्रगट हो जायँगे।

पश्चिमी चितेरे भाँत भाँतिके रंगोंके ढेरसे अपने चित्रोंमें भिन्न भिन्न आकारोंका ज्ञान कराते हैं, परन्तु यह बात यहाँके चित्र-कारोंमें नहीं है। इनकी प्रणाली बिलकुल ही विलग है। यह गाढ़ी लकीरों द्वारा आकारका बोध कराते हैं। विलायतके चित्रकार लाइट् (रोशनी) और शेड (अँधेरा) देकर तथा रंगोंमें उभाड़ दिखा कर चित्र बनाते हैं। वह भाँति भाँतिके हलके तथा गाढ़े रंगोंके प्रयोगसे और पर्सपेक्टिव द्वारा चित्रोंमें नज़दीकी और दूरी दिखाते हैं। विलायती चित्र यदि निकटसे देखे जायँ तो उनमें गाढ़ी लकीरें नहीं दिखाई पड़ेंगी, क्योंकि वहाँके चितेरे चित्रोंमें आकारका ज्ञान करानेके लिए किसी पदार्थको रेखाद्वारा परिवृत नहीं करते और न प्रत्येक विभागको उनसे बाँटते हैं। जब यह चित्र दूरसे देखे जाते हैं तब इनके अन्तर्गत वस्तुओंको आकारका बोध होता है और हरएक विभाग स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। विलायतके चित्रकारोंकी यही कारीगरी है कि भाँति भाँतिके आकारोंको निश्चित रूपसे न बनानेपर भी वे दर्शकोंको प्रत्येक पदार्थके आकारका बोध करा देते हैं। परन्तु पूर्वीय चित्रकारोंकी प्रणाली इससे बिलकुल विपरीत है। उनकी सबसे उत्तम कारीगरी इस बातमें है कि वे गाढ़ी लकीरोंसे अपने चित्रोंमें प्रत्येक पदार्थको घेर देते हैं। यह लकीरें कुछ भद्दी रीतिसे नहीं बनाई जाती हैं। इनको सफाईसे खींचना ही भारतके चित्रकारोंकी निपुणता है। पश्चिमी संगीतकी भाँति पश्चिमी चित्रकलाका भी आनन्दरस बहुत से लोग एक साथ ही पान कर सकते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि वहाँका संगीत हमारे यहाँके संगीतकी तरह कोमल स्वरमें नहीं होता। वह इतने घोर ध्वनिके साथ होता है कि बहुत से एकत्रित लोग उसको अच्छी तरह दूर बैठे रहनेपर भी सुन सकते हैं। परन्तु हमारे यहाँके संगीतमें यह बात नहीं है। यह इतने कोमल स्वरमें होता है कि यदि अधिक श्रोतागण उपस्थित रहें तो कदाचित् किसीको भी इसका आनन्द न प्राप्त हो सके। ठीक यही बात यहाँकी चित्र-कलामें भी है। यूरोपके चित्रकार प्रायः बड़े ही बड़े चित्र बनाते

हैं। इनको सैकड़ों आदमी एक साथ ही खड़े होकर देख सकते हैं, परन्तु हमारे यहाँके चित्र इतने छोटे बनते हैं कि उन्हें एक ही दो व्यक्ति भली प्रकार देख सकते हैं। यदि इनके देखनेके हेतु बहुत से लोग एकत्रित हो जायँ तो संभव है कि किसीको भी इनके देखनेका आनन्द न मिले। बौद्धकालके बने दीवारोंपरके कुछ चित्र ही यहाँ ऐसे हैं जो बहुत दर्शकोंपर अपनी प्रभा एक साथ ही डाल सकते हैं। इन चित्रोंको छोड़कर यहाँके प्रायः प्राचीन चित्र छोटे ही छोटे बनाये जाते थे। भारतवर्षकी धर्म क्रियाओंमें, संगीतमें, तथा कलाओंमें यही तो एक विचित्रता है कि इनमें थोड़े ही लोग एक साथ शरीक हो सकते हैं तथा इनका पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

भारतवर्षकी प्राचीन चित्रकला सामान्य रीतिसे बौद्ध, हिन्दू, तथा यवन तीन धार्म्मिक विभागोंमें विभक्त की जा सकती है। हिन्दू चित्र-कलाको 'राजपूत चित्रकला' भी कहते हैं। इस भिन्न प्रणालीकी कलाका अभ्यास प्रायः राजस्थानवासी और पञ्जाबके पहाड़ी राजपूत ही करते थे। इसी कारणसे यह 'राजपूत चित्रकला' के नामसे प्रसिद्ध है। यवनोंके शासनकालमें मुग़ल सम्राटों द्वारा यवन कला उत्साहित की गई, इससे वह मुग़ल चित्रकला भी कही जाती है। बौद्ध और राजपूत चित्रकला धार्म्मिक विषयोंसे सम्बन्ध रखती थीं। इन दोनों प्रणालियोंके चित्र अधिकतर धार्म्मिक कथाओंपर ही बनाये जाते थे। यह चित्र मनुष्यको मुक्ति-पथका दर्शन करा देते थे तथा आध्यात्मिक भावोंसे परिपूर्ण होते थे। मुग़ल चित्रकलाका उद्देश्य इनसे बिलकुल विलग था। सांसारिक विषयोंपर ही इस प्रणालीके प्रायः सब चित्र बनते थे।

बौद्ध चित्रकारका उद्देश्य अपने धर्म्मके आदर्शोंको प्रगट करना था और वह सर्वदा इस बातका प्रयत्न करता था कि बौद्धमतके उत्तमोत्तम विचारोंको वह चित्रों द्वारा लोगोंके हृदय पटपर अङ्कित करदे। यह चित्र इस लक्ष्यसे बनाये जाते थे कि अन्य देशवासी तथा अपढ़ लोग इनको देखते ही मुग्ध हो कर बौद्ध मतावलम्बी हो जायँ। चित्रकारको अपने नाम पैदा करनेका लालच न रहता था। उसका लक्ष्य कुछ अन्य ही होता था। वह यह समझता था कि चित्रोंको बनाकर वह अपने धर्म्मकी उन्नति कर रहा है तथा उसे इस सुकृतिके बदलेमें मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी। बौद्ध कालीन दीवारोंपर अङ्कित चित्रोंको देखकर यह तुरन्त ध्यानमें आता है कि उनके निर्म्माण कर्ताओंके मनोरथ अवश्य सिद्ध हुए होंगे। इन चित्रोंको देखते ही दर्शक अपनेको स्वर्गमें समझने लगते हैं। उनका मन शुद्ध हो जाता है। पापकी भावनाएँ उनके हृदयसे शीघ्र ही प्रयाण कर जाती हैं। इनको देखते ही फाहियान नामक चीनी यात्रीका वचन स्मरण आजाता है कि—

"यह काम देवोंका किया है मनुज कर सकते नहीं।
दृग देखकर जिसको कभी श्रम मानकर थकते नहीं॥"

(मैथिलीशरण गुप्त)

धन्य थे वे चित्रकार जिनकी कूंचियोंने ऐसे अद्भुत तथा हृदयहारी चित्र बनाये।

यद्यपि राजपूत कालीन चित्रकलाके भी यही उद्देश्य थे, तथापि वह बहुत सी अन्य सामाजिक बातोंसे भी सम्बन्ध रखती थी। धार्म्मिक नाटकोंकी घटनाओंके चित्रोंको छोड़कर राजपूत चितेरे अपने चित्रोंमें स्वजातिके व्यवहारोंके दिखानेका भी प्रयत्न करते थे, परन्तु उनका मुख्य उद्देश्य सूक्ष्मरूपमें धार्म्मिक चित्रोंके बनानेका था, जिनको कि सब लोग सुगमतासे ले जाकर अपने गृहोंमें रख सकें और उनको देख अपने धर्म्मसे कुछ अभिज्ञ हो जायँ। इसका परिणाम यह हुआ कि यहां इन्हींकी देखा देखी सूक्ष्म चित्रोंके बनानेकी प्रथा प्रचलित हो गई। इस समय भी भारतीय प्रणालीके चित्र अधिकतर सूक्ष्मरूपमें ही बनते हैं।

राजपूत प्रणालीकी भाँति, मुगल, प्रणालीमें भी सूक्ष्म चित्र ही बनाये जाते थे, परन्तु इसका

उद्देश्य उससे विपरीत था। इनमें धार्मिक बातें नहीं दिखाई जाती थीं। सांसारिक विषयोंसे ही इसका मुख्य संबन्ध था। जिस प्रकार उपरोक्त प्रणालियोंकी उन्नतिमें धर्मने बहुत कुछ सहायता की थी, उस प्रकार मुग़ल प्रणालीकी चित्रकला-की उन्नतिमें इस्लामने नहीं की। मुग़ल प्रणालीकी चित्रकलामें प्रायः मनुष्योंके चित्र बनाये जाते थे। इन चित्रोंमें सबसे उत्तम गुण यह होता था कि दर्शक किसी व्यक्तिका चित्र देखते ही उसके आन्तरिक स्वभावको समझ लेता था। इस भिन्न प्रणालीके चित्रकारोंकी यही कारीगरी थी कि वह कागजपर केवल किसीके चेहरेकी ही प्रतिकृति नहीं बनाते थे वरन् उसके स्वभावकी भी झलक चेहरेपर प्रकट-कर देते थे।

यदि आज दिन इस बातका प्रयत्न किया जाय कि प्राचीन समयके किसी भी चित्रकारका पूर्ण जीवनचरित्र हम लोगोंको प्राप्त हो तो यह संभव नहीं। अन्य देशीय चित्रकारोंके विषय-में बहुत कुछ मिल सकता है। हम लोग उनके जीवनके सारे वृत्तान्तको पढ़ सकते हैं। उनके नाम तथा ग्रामका ठीक ठीक पता पा सकते हैं। उनकी प्रणाली तथा उनके गुणों और दोषोंका वर्णन पुस्तकोंमें उल्लिखित है। परन्तु शोकसे लिखना पड़ता है कि हम लोग अपने यहांके प्राचीन धुरन्धर चित्रकारोंके विषयमें बिलकुल अनभिज्ञ हैं। केवल उनके बनाये चित्रोंके निरीक्षणसे उनकी कारीगरी मालूम होती है। वही उनके घोर परिश्रमके साक्षी हैं। यदि हम लोग किसी संग्रहालयमें जाकर प्राचीन चित्रोंको देखें तो शीघ्र ही विदित हो जायगा कि वह अन्य अन्य चित्रकारोंके बनाये हैं, परन्तु उनमेंसे कुछ चित्र ध्यान पूर्वक देखनेसे एक ही व्यक्तिके हाथके बने प्रतीत होंगे। उनके निर्माणकर्ताओंकी प्रशंसा अचानक मुखसे निकल पड़ेगी, परन्तु उनका नाम न जाननेसे हृदय भीतर ही मसोस कर रह जाना पड़ेगा।

बौद्ध चित्रकारोंके विषयमें हम लोगोंको पूर्ण प्रमाण मिला है कि वे अधिकतर पुरोहित ही होते थे। प्रथम वे बौद्ध मतके ग्रन्थोंमें पाण्डित्य प्राप्त करते थे, पुनः चित्रकला सीखते थे। उनकी चित्रकलाकी प्रणाली वैसी ही थी जैसी कि आजकल तिब्बतमें प्रचलित है। बौद्ध कालमें जब कोई मठ चित्रोंसे विभूषित किया जानेको होता था अथवा कोई उत्तम मूर्त्ति बनने-की होती थी तब आसपासके बड़े बड़े मठोंसे चित्रकार बुलवाये जाते थे और पुरोहितों-की भांति सत्कारसे रखे जाते थे। जब तक उनका कार्य समाप्त नहीं होता था, तब तक वे पुरोहितोंके साथ ही भोजन करते थे और या-जकीय संस्थाके सभासदोंमें गिने जाते थे। मूर्त्तिकारोंका पद भी चित्रकारोंके समान होता था, परन्तु प्रायः एक ही व्यक्ति दोनों कलाओंमें दक्ष होता था। कार्य्य समाप्त होनेपर यह चित्रकार या तो पुनः अपने मठको अथवा जहाँ उनकी आवश्यकता होती चले जाते थे। यह चित्रकार बड़े ही चावसे चित्र बनाया करते थे, क्योंकि उनकी समझमें मठोंको चित्रोंसे विभूषित करना उनका धर्म था।

राजपूत चित्रकार कसेरों, संगतराशों तथा कपड़ा बुननेवालोंकी श्रेणीमें होते थे। उन्हींको भाँति यह भी गाँवोंमें रहा करते तथा ग्राम-वासियोंके गृहोंको चित्रोंसे विभूषित किया करते थे। जब कभी किसी समीपवर्त्ती राजाको अपने महलको चित्रोंसे सजवानेकी आवश्यकता पड़ती थी तब यह चित्रकार वहाँ बुलाये जाते थे। इनकी रहन सहनका ढंग अति साधारण होता था। कुछ ही मज़दूरी पानेपर यह सन्तुष्ट हो जाया करते थे। न तो इन बिचारोंको नामकी तृष्णा थी और न अधिक धनकी।

मुग़ल चित्रकार एक निराले ही ढंगके होते थे। मुग़ल सम्राटोंके यहाँ यह दरबारियोंकी तरह रखे जाते थे। यह लोग एक प्रकारके

मुसाहिब ही होते थे। जब यह किसी राजा अथवा उमराके यहां रहते थे तो सर्वदा अपने अन्नदाताकी इच्छानुकूल काम करते थे। इन लोगोंको सेवकोंकी भाँति वेतन इत्यादि नहीं मिलता था। जब यह कोई उत्तम चित्र बनाकर अपने स्वामीको दिखाते थे तब पारितोषकके रूपमें इन्हें लम्बी रक़म प्रदान की जाती थी।

जितने प्राचीन चित्र मिले हैं प्रायः उनमेंसे किसीके बनानेवालेका पता नहीं लगता है। खास करके बौद्ध और राजपूत कालके बने चित्र तो बिलकुल ही गुमनाम हैं। मुग़लकालके बने कुछ थोड़ेसे चित्रोंपर बनानेवालोंका नाम लिखा है। उस समयके कुछ प्रसिद्ध चित्रकारोंका नाम 'आईन अकबरी' नामक अबुलफ़ज़लकी किताबमें दिये हुए हैं, परन्तु इनकी जीवनीके विषयमें कुछ पता नहीं लगता।

भारतवर्षमें केवल पुरुष ही नहीं वरन् स्त्रियाँ भी चित्रकारी सीखती थीं। यहाँ जितने चित्रकार हुए उन सबसे अग्रसर नाम चित्रलेखाका ही मिलता है। पौराणिक कालके बने 'सारिका लीला' नामक ग्रंथमें चित्र लेखाका वर्णन पाया जाता है। वाणासुर नामक एक दैत्य शोणितपुर नामक नगरमें राज्य करता था। उसकी कन्या ऊषा एक दिन कैलाशको गई। वहाँ उसने शंकर और पार्वतीको पांसा खेलते हुए देखा। उसे भी इच्छा हुई कि मेरा भी विवाह हो और मैं भी अपने पतिके साथ इसी प्रकार पांसा खेलूं। कुछ दिन उपरान्त पार्वतीके वरके अनुसार कुमार अनिरुद्ध उसे स्वप्नमें दीख पड़ा। ऊषाने उसीको अपना पति समझकर उसका पता लगानेका प्रयत्न किया। उसकी दासी चित्रलेखा चित्रकलामें बड़ी कुशला थी। उसने पृथ्वीतलके अनेक राजपुत्रोंके चित्र बनाये। अन्तमें जब उसने अनिरुद्धका चित्र बनाया तब ऊषा समझ गई कि इसी राज कुमारने स्वप्नमें मेरा चुम्बन किया था। उसके बाद चित्रलेखा योगमार्गसे (?) द्वारिकाको गई, और अनिरुद्धको लाकर ऊषासे मिला दिया। दोनोंका गान्धर्व विवाह हो गया। कुछ दिन बाद यह बात वाणासुरको ज्ञात हुई। उसने अनिरुद्धको मारनेके हेतु अनेक दैत्य भेजे। द्वारिकासे भी कृष्ण और अनेक यादव अनिरुद्धकी सहायता करने आये कैलाशसे शंकर और स्वामि कार्तिक वाणासुरकी ओरसे आये। बड़ा घोर युद्ध हुआ, पर अन्तमें सन्धि हो गई और ऊषाके साथ अनिरुद्धका विवाह हो गया। ध्यान करनेसे यह विदित होता है कि चित्रकलाने ही इस घटनामें सबसे मुख्य कार्य्य किया था।

चित्रलेखाके बाद किसी चित्रकारका नाम नहीं मिलता है। तारादास नामक सत्रहवीं सदीके एक इतिहास रचयिताने कुछ बौद्ध चित्रकारोंके नाम दिये हैं। इनके लेखोंको देखनेसे इस बातका पता लगता है कि यह चित्रकार घूम घूम कर काम बनाते थे और प्रायः मूर्तियाँ भी भली भाँति बनाना जानते थे। चीनके कुछ लेखोंसे प्रारंभिक बौद्धकालके दो चार चित्रकारोंका नाम आना जाता है। यह चित्रकार भारतसे चीनमें चले गये थे। इनकी कारीगरीका भी वर्णन उक्त लेखोंमें मिलता है। परन्तु बहुत काल तक चीनमें रहनेके कारण यह चित्रकार प्रायः चीनके ही हो गये थे तथा उनके कामोंमें भी कुछ उसी देशकी छाया आगई थी। इस कारण भारतीय चित्रकलासे इनका कुछ संबन्ध न था। राजपूत चित्रकारोंके विषयमें भी बहुत ही कम मालूम है। पञ्जाबमें इस समय दो चार कुटुम्ब ऐसे हैं जो इस बातका गर्व करते हैं कि बहुत पीढ़ीसे चित्रकारीका काम उनके यहाँ होता आया है। इसके सिवाय 'आईन अकबरीमें' भी हिन्दुस्तानी चित्रकारोंके कुछ नाम तथा उनके कामोंकी तारीफ़ दी हुई है, जिससे उनके संबन्धमें हम लोग थोड़ा बहुत जान सकते हैं। उपरोक्त पुस्तकमें अकबरके समयके चित्रकारोंका वर्णन पढ़नेसे यह विदित होता है कि उस समय कलाके लिए 'ऊँच नीच पूछे

नहि कोई' वाली कहावत चरितार्थ थी। बड़ेसे बड़े अनेक चित्रकार छोटीसे छोटी जातिके थे। परन्तु छोटी जातिके होनेके कारण मुगल सम्राटके दरबारमें इनकी प्रतिष्ठा कम न थी। सुप्रसिद्ध 'दसवन्थ' और दो केशव नामके चित्रकार, जो अकबरके समयमें बहुत ही चढ़े बढ़े थे पहिलेके सामान्य पालकी उठानेवाले कहार थे।

भारतवर्षीय चित्रकलाके वेत्ताओंने यहांकी कलाको कई भागोंमें विभक्त किया है। भिन्न भिन्न प्रदेशोंकी चित्रकलाका भिन्न भिन्न नाम रखा है, परन्तु खासकर यह नाम विविध प्रणालियोंसे ही सम्बन्ध रखते हैं। प्रत्येक प्रणाली अमुक 'कलम'के नामसे सम्बोधन की जाती है। वास्तवमें इस 'कलम' शब्दका अर्थ तो 'लेखनी' है, परन्तु इस प्रकरणमें इसका अर्थ 'चित्र बनानेकी कूंची' ही है। इन विविध प्रणालियोंके नाम देहली दक्षिणी अथवा कांग्रा कलम इत्यादि बताये गये हैं। इन स्थानोंके चित्रकारोंकी चित्रलेखन शैली विलग विलग प्रकारकी होती थी। साधारणतः सब लोग उनके भेदोंको नहीं जान सकते। केवल वही चित्रकार, जिसके यहां कई पीढ़ीसे चित्रकारीका काम होता आया है और जो स्वयं भी यहांकी चित्रकलामें प्रवीण है इन चित्रोंको देखकर निश्चय रूपसे कह सकता है कि वे किन किन प्रदेशोंके और किन किन प्रणालियोंके बने हैं। इस सम्बन्धमें बौद्ध कालके बने दीवारोंपरके चित्रोंके विषयमें यह नहीं बतलाया जा सकता कि किस प्रणालीके हैं। यह संभव हो सकता है कि उस समयमें भी बौद्धकलाकी भिन्न भिन्न शैली रही हों, परन्तु उन शैलियोंका नाम क्या था, इसका अब पता लगाना अति दुष्कर है। यहांकी चित्रकलाके ज्ञाताओंने भी इनका विभाग निश्चय रूपसे नहीं किया है। अभी तक केवल राजपूत तथा मुगल कालके बने सूक्ष्म-चित्रोंके ही विभागोंका उल्लेख किया जा सकता है। राजपूत चित्रकलाकी दो विलग प्रणालियां थीं, एक तो जयपूर'कलम' और दूसरी कांग्रा 'कलम'। मुग़ल चित्रकलाके बहुतसे विभाग हैं। यह अनेक स्थानों तथा नगरोंमें प्रचलित थी। मुग़ल सम्राटोंने कई स्थानोंपर अपनी अपनी राजधानी स्थापित की थीं। जहां जहां राजधानी लेजाई जाती थी, वहां वहां दरबारके चित्रकार भी एकत्रित होते थे। उनकी कला भी वहीं प्रचलित हो जाती थी। उस समय अधिकतर चित्रकार देहली, लखनऊ, दक्षिण, ईरान, काश्मीर पटना, तथा जयपूरके ही होते थे। इनकी प्रणाली भी अलग अलग होती थीं। यह देहली, लखनऊ, दक्षिण, इत्यादि 'कलम' के नामसे प्रसिद्ध थीं। अवसर मिलनेपर इन विविध प्रणालियोंका पूरा वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

औरंगाबाद, काशी
२४ जुलाई १९१८　　—भगवतीप्रसाद मिश्र।

वायुके जीवाणु

(गताङ्कसे सम्मिलित)

[ले०—प्रो० तेजशङ्कर कोचक, बी. ए, एस-सी.]

जीवाणुओंमें घनत्व होता है और इस कारण धरातलके निकट वायुमें जीवाणुओंकी संख्या अधिक होती है और ज्यों ज्यों ऊंचे जाइये उनकी संख्या कम होती जाती है। पहाड़ोंपरकी वायु बिलकुल शुद्ध और निर्मल होती है। जब पानी बरसता है तो वर्षाके पानीसे हवा धुल जाती है और जीवाणु सब पृथ्वीपर आ जाते हैं और कुछ समयकेलिए वायुमंडलमें जीवाणुओंकी मात्रा बहुत कम हो जाती है। खुले मैदानमें नगर और गांवकी अपेक्षा वायुमें जीवाणुओंकी मात्रा बहुत कम होती है। जिन ऋतुओं और स्थानोंमें धूल बहुत उड़ा करती है, वायुमें जीवाणु अधिक होते हैं।

समुद्र, बड़ी बड़ी झीलों और नदियोंके तटपर वायुमें बहुत कम जीवाणु होते हैं। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जीवाणु केवल वायुका आहार करके जीवित नहीं रह सकते। इस कारण जिस वायुमें कुछ कण उनके आहार करने योग्य नहीं होंगे जीवाणु जीवित नहीं रह सकते। उनकी संख्या ऐसी वायुमें सदैव कम रहेगी।

किसी भी स्थानकी वायु साधारणतः जीवाणु-शून्य नहीं रह सकती। थोड़े बहुत जीवाणु उसमें अवश्य होंगे। अब जानना यह है कि वायुमें कितने जीवाणु रहते हुए हम निर्भय रह सकते हैं। इसकी कोई संख्या नियत नहीं है, पर डाक्टरोंकी राय यह है कि जिस वायुमें एक घन गज पीछे १०० या कम जीवाणु हों उसको स्वच्छ और निर्मल समझना चाहिये।

आर्य्य ऋषि जीवाणु शास्त्रमें बड़े निपुण थे और जो सिद्धांत उन्होंने निकाले हैं, वैसे उत्तम सिद्धान्त यूरोपमें अभी तक नहीं निकले हैं। वायुको स्वच्छ और निर्मल करनेकी कोई सरल रीति यूरोपवालोंको अभी तक नहीं मालूम हुई है। आर्य्य ऋषि यह जानते थे कि स्वास्थ्यरक्षाके लिए वायुको स्वच्छ और निर्मल रखना, नियत समयपर भोजन करना, व्रत रखना, हवन करना, प्रति दिन पंचामृत ग्रहण करना, परम आवश्यक है। आगे चलकर इन सब विषयोंपर विस्तार पूर्वक विचार करेंगे, यहांपर हम केवल हवनकी उपयोगिताके विषयमें कुछ लिखते हैं। निम्न लिखित पदार्थ बराबर मात्रामें लो और उनको घी मिलाकर कुछ चिकना कर लो, फिर आगपर थोड़ा थोड़ा डालकर हलकी लौमें जलाओः—

शक्कर, मुश्क, सफेद चंदन, लाल चंदन, तगर, जायफल, जावित्री, लौंग, इलायची, दारचीनी, अगर, तेजपात, केसर, श्रीवास, काफूर, गूगल, नागकेसर, धूपसरल, बालछड़, मूरछरीला, नागरमोथा, तालीसपत्र, खस, छरीला। इस लेखकने एक समय परीक्षा की थी और उपरोक्त सामग्रीसे हवन किया था, पर केसर और मुश्क थोड़ी मात्रामें ली थी। प्रयोगशालामें गैसोंकी परीक्षा (पृथक्करण या विश्लेषण) करनेपर लेखकको तरपिस, (terpenes), फीनोल्स (phenols) और फारमेलडीहाइड (formaldehyde) इत्यादि पदार्थ बहुत थोड़ी सी मात्रामें मिले। इसके पश्चात् यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि थोड़ी सी मात्रा इन पदार्थोंकी वायुके जीवाणुओंपर कुछ प्रभाव डाल सकती है या नहीं। इस बातके सिद्ध करनेकेलिए लेखकने निम्न लिखित परीक्षाएँ कीं। कु शीशेकी एक कुप्पी है, इसमें र एक रबड़की डाट लगी है, इस काकमें नलिकाएँ प, फ लगी हैं, जिनके मुंह, रबड़ नलिकाके टुकड़ों और चुटकियोंसे (clip) बन्द हैं। स स्थानपर शरबत, अन्डा टूटा
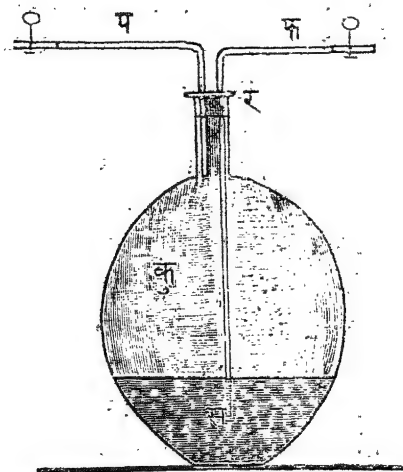
चित्र ४

हुआ, मक्खन, दूध इत्यादि अलग अलग कुप्पियोंमें रखे गये और हर एक पदार्थके दो दो फ्लास्क तैय्यार किये गये। उदाहरणार्थ दो फ्लास्क लेकर उनमें दूध भर दो। दोनोंके क्लिप खोल लो और आगपर रखकर दोनोंमें दूध उबालो। आध घंटे तक दूध उबलने दो, इसके

बाद एक फ्लास्क उतार कर अलग रख दो, ठण्डा होने दो और क्लिप खुले रहने दो। ठंडा होनेपर कमरेकी वायु उसमें भर जायगी और उसके जीवाणु भी इसमें आजावेंगे। जब फ्लास्क भली भांति ठण्डा हो जाय तो उसके क्लिप बंद कर दो।

अब दूसरे फ्लास्कको आगपरसे उतारनेके पहिले दोनों क्लिप बंदकर दो और ठंडा होने दो। जब ठंडा हो जाय तब हवन-वायुके यंत्रसे फ नलिकाका सम्बन्ध कर फ्लास्कमें हवन वायु भर लो और क्लिप बंद करके पहिले फ्लास्कके पास रख दो। इन दोनों फ्लास्कोंको एक दूसरेके पास रहने दो और प्रति दिन परीक्षा करते रहो। मालूम होगा कि उस फ्लास्ककी अपेक्षा, जिसमें केवल कमरेकी वायु भरी है, दूसरी फ्लास्कमें, जिसमें हवन वायु भरी है, दूध देरमें सड़ेगा और जब सड़ना आरम्भ होगा तो धीरे धीरे सड़ेगा। इसी भांति उपरोक्त पदार्थोंके दो दो फ्लास्क लेकर परीक्षा की गई थी और सदैव यह ज्ञात हुआ कि हवन वायुवाले फ्लास्कोंमें वस्तुएँ देरमें और धीरे धीरे सड़ती, गलती, और खराब होती हैं।

हवनके द्वारा वायु शुद्ध करना बहुत ही सरल है।

१—इसकी सामग्री हर जगह मिल सकती है जर्मनी या अमेरिकासे मंगानी नहीं पड़ती।

२—इसके प्रयोगकेलिए किसी विशेष यंत्रकी आवश्यकता नहीं होती, न मात्राके घट बढ़ जानेसे कोई हानि हो सकती है।

३—मूर्खसे मूर्ख मनुष्य इसका प्रयोग कर सकता है।

४—जैसे नवीन रासायनिक पदार्थोंके अधिक मात्रामें प्रयोग करनेसे हानि पहुंचती है और स्वच्छ करनेवाले पदार्थ प्राणघातक हो जाते हैं, हवनसे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती, प्रत्युत् सदैव लाभ ही होता है।

होमियोपैथिक टिञ्चरों आदिका इस्तैमाल

[लेखक–पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

एकोनाइटम टिञ्चर

हर किस्मके न्यूरेलजियामें और ऐसे दर्दमें, जो पसीना रुकनेसे बदनके किसी हिस्सेमें उत्पन्न हो गया हो, लाभदायक है। एक बूंद टिंचर १० बूंद पानी, तेल या ग्लिसरीनमें मिलाकर, जिस जगह दर्द हो, धीरे धीरे रगड़ना चाहिये।

आरनिका टिंचर

इस औषधको जख्म, रगड़ और सूजनपर लगाते हैं। अगर ऊपरकी खालपर चोट न पहुंची हो तो इसको बिना किसी चीज़में मिलाये लगाना चाहिये। रगड़ वगैरामें इस दवामें कपड़ा भिगो कर रख देना चाहिये। इससे फ़ायदा होता है। लेकिन अगर खालपर चोट आगई हो तो कुनकुने पानीमें १० बून्द पीछे १ बून्द टिञ्चर डालकर चोटपर धीरे धीरे रगड़ना चाहिये। ज़्यादा चलनेसे पैरमें फलक पड़ जाते हैं, जांघ छिल जाती है, या घोड़ेकी सवारीमें रान और चूतड़की हड्डियोंमें जख़्म हो जाते हैं। ऐसी हालतमें भी इस टिञ्चरको लगाना चाहिये। औरतोंके स्तन (छाती) में जख्म पड़ जाय, चारपाईपर पड़े रहनेसे जख़्म हो जाय, बिवाई फट जाय या गट्ठा या डकी हो जाय तो इसी दवाको लगाना चाहिये। मनुष्योंको तो यह दवा फ़ायदा करती ही है, पर पालतू जानवरोंको भी फ़ायदा करती है। जब कभी बोझ उठाने, काठी वा साजकी रगड़, कोड़ेकी मार या किसी अन्य कारणसे रगड़ लग जाय या जख्म हो जाय, तो एक हिस्सा दवा और दो हिस्से पानी मिलाकर सेकना चाहिये। अगर घुटने, पैर या ऐड़ीमें जख्म हो, या कमर वा चूतड़के दर्दके कारण लंगड़ापन मालूम हो, या पैरमें सूजन हो, टखने

Homeopathy होमियोपैथी]

या कमरमें सूजन हो या घोड़ेके सुममें चोट आनेके कारण दर्द हो जैसा कि कड़ी और पथरीली ज़मीनपर तेज़ चलनेसे हो जाता है तो यही दवा मल देनी चाहिये।

एपिस टिंचर

शहदकी मक्खी, बर्र और दूसरे छोटे ज़हरीले कीड़ोंके काटनेसे जब जलन और सूजन पैदा हो तो इस दवाके लगा देनेसे फ़ायदा होता है।

बैलैडोना टिंचर

गलेकी खुरखुराहट भारीपन आवाज़का धीमा पड़ जाना, सूखी खांसी, गलसुएका सूज आना, कौवेका हट जाना और पेटके दर्दमें, इस दवाको देते हैं। अगर कौवे और गलेपर लगा दिया जाय तो वही फ़ायदा होगा जो खानेसे होता है।

बेलिस टिंचर

इस टिंचरको किसी चीज़में नहीं मिलाते, बल्कि खाली लगानेसे मस्से और बेकार मांस जो कहीं बढ़ गया हो दूर हो जाता है।

ब्राइनिया टिंचर

अगर गलेमें कड़ापन मालुम हो, बाईकी बीमारी, कमरका दर्द, अकड़न और जोड़ोंमें दर्द हो तो इस टिंचरको दिनमें दो तीन बार लगानेसे फ़ायदा होगा। जिस अंगपर यह लगाया जाय उसे ठंडी हवासे बचाना चाहिये।

कैलनड्यूला टिंचर

१०० बूंद पानीमें १० बूंद टिंचर मिलाकर काममें लाना चाहिये। ज़ख्मोंपर और खास कर नासूरमें इस प्रकार बनाये हुए टिंचरको लगाना चाहिये। हर तरहके फोड़े और खुले हुये जख्मोंको रोज़ इस टिंचरसे धोनेसे जल्द फ़ायदा होता है।

कैनथ्राईडीज़ टिंचर

इस टिंचरकी १ बूंद ६ बून्द पानीमें मिलाकर इस्तेमाल करना चाहिये। जिस जगहपर जल गया हो या दाग पड़ गया हो वहां मसल देने या रुईके गालेसे लगा देनेसे फ़ायदा होता है।

जले हुए आदमीको बुख़ार रोकनेके लिए एकोनाइट देना चाहिये और अगर कुछ सिरमें दर्द भी हो तो बैलेडोना देना चाहिये। भीतरकी जलन दूर करनेके लिए कैनथ्राईडीज़ और कौसटिकम दो दो घंटे बाद जब तक जलन कम न हो देना चाहिये। टिंचर कौसटिकमको भी इसी तरहसे जैसे टिंचर कैनथ्राईडीज़ लगाते हैं, जले हुए स्थानपर लगा देनेसे जल्द फ़ायदा होता है।

टिंचर सिनोथस

मैलेरिया बुख़ारमें यानी उस बुख़ारमें जो तराईमें रहनेसे या गीली जगहोंमें रहनेसे आ जाता है और जिसकी वजहसे तिल्ली बढ़ जाती है, या किसी और कारणसे जब फेंफड़ा या तिल्ली बढ़ जाय तो इसको मलनेसे तिल्ली और फेंफड़ा बढ़ा हुआ कम हो जायगा।

टिंचर यूफ्रेशिया

जब आंखमें सुर्खी, दर्द या जलन मालूम हो या सो जानेके बाद आँखमें ज़्यादा कीचड़ आ जाती हो या आंखकी पलक चिपक जाती हो तो ५ बूंद आधी छटांक कुनकुने पानीमें मिलाकर आंखोंको धोना चाहिये। यूफ्रेशिया सुबह और शाम खानेसे भी आंखोंकी बीमारियोंमें फ़ायदा होता है। टिंचर सिर्फ़ धोनेके काममें और यूफ्रेशियाकी गोली या अर्क खानेके काममें लाना चाहिये।

फ़ैरमम्यूरियेटिकम—अगर किसी जगह जख़्म हो गया हो और खून बहता हो तो इस दवाकी दो चार बूंद जख्मपर टपका देनेसे खूनका बहना बन्द हो जायगा।

टिंचर हैमेमिलिस

खूनी बवासीर, जोड़ोंके दर्द, सूजन, नसोंके दर्दमें यह दवा फ़ायदा करती है। जख्मसे नाक-

से या बदनके किसी और हिस्सेसे खून निकलता हो और बन्द करना हो तो एक बूंद इस टिंचरकी २० बूंद गुनगुने पानीमें मिलाकर लगानेसे खून बन्द हो जायगा।

टिंचर ड्रोस्टिस

२ बूंद इस टिंचरकी १ तोला पानीमें मिला कर चेचकके ज़ख्म, नासूर और दूसरे जख्मोंमें लगानेसे फ़ायदा होगा और अगर पेटकी बीमारीमें मर्द या औरतोंको पिचकारीके ज़रियेसे लगाया जाय तो अन्दरके जख़्म बहुत शीघ्र सूख जाते हैं।

टिंचर हैपैरिकम

यह एक मशहूर दवा ऐसे जख्मोंके लिए है जो कुचले हुये या कटे हुये हों और जिनमें दर्द ज्यादा होता हो। १ बूँद इस टिंचरकी १० बूंद कुनकुने पानीमें मिला कर जखमपर लगाना चाहिये और अगर साथ ही साथ हैपैरिक ३ x खिला दिया जाय तो और भी जल्द फ़ायदा होगा।

टिंचर आयोडियम

गलेकी सूजन, छाती, दिल, फेंफड़े, पोते, टांग और बदनके दूसरे हिस्सोंमें खाली टिंचर ३,३ घंटे बाद मला जाय तो सूजन जाती रहती है।

टिंचर लेडम

अगर गठियाके कारण जोड़ोंमें सूजन या सख़्ती आगई हो तो इस टिंचरको मलनेसे फ़ायदा होगा। ज़हरीले कीड़ों, कुत्ते, बिल्ली और दूसरे जानवरोंके काटने या पंजा मार देनेसे अगर ज़हर शरीरमें पहुंच गया हो या जख़्म हो गया हो तो १ बूंद पानीमें मिलाकर लगा देनेसे फ़ायदा होगा।

टिंचर फाईटोलिका

अगर गलसुआ, गलेकी गांठ, जंघासे की गांठ, या बग़लकी गांठ सूजगई हो या बढ़ गई हो या छाती सूज गई हो तो १ बूंद टिंचरमें ६ बूंद पानी मिलाकर सूजी हुई जगहपर मलदेनेसे फ़ायदा होगा।

टिंचर थुइय्या

इस टिंचरको मसा, गुमड़ी, गोखरू और दानोंपर दिनमें दो बार लगानेसे कुछ दिन बाद आराम हो जायगा।

टिंचर रूटा

यह टिंचर आरनिका और टिंचर कैलनड्यूला-की तरह एक जरूरी और कारामद दवा होमियो-पैथिक दवाओंमें समझी जाती है। ऐसे जख़्मोंमें जो पड़े पड़े पीठमें हो जाते हैं, इस टिंचरकी २० बूंद आधपाव पानीमें मिलाकर और इस पानीमें कपड़ेकी गद्दी तर करके पीठके जख़्मोंमें लगानी चाहिये। इसी तरह अगर ज़्यादा चलने या घोड़े-की सवारीसे जो जख़्म पड़ जायँ उनपर भी लगाना चाहिये। चोट और रगड़में, ऐसे जख्मोंमें जो नाख़ूनके मांसके भीतर घुस जानेके कारण हो गये हों और मवाद पड़ गया हो तो इस टिंचर-को लगानेसे जल्द फ़ायदा होगा। अधिक मिहनत करनेसे आँखोंमें दर्द और कमज़ोरी आगई हो तो चाहिये कि २ बूंद इस टिंचरकी १ तोला पानीमें मिलाकर आंखोंको धोएँ, फ़ायदा होगा। खाली टिंचर अगर सूजी हुई जगहपर, हड्डियोंपर और टूटी हुई नसोंपर, ख़ासकर कलाई और पैरकी हड्डियोंपर मला जाय तो जल्द आराम होता है। रूटा ३ x पानीमें मिलाकर अगर पिया जाय और साथ ही साथ ऊपर लिखी बीमारियोंमें रूटा टिंचर लगाया जाय तो और भी जल्द फ़ायदा होता है।

टिंचर सिमफाईटम

हड्डियोंके टूटने और हर किस्मकी चोटके दर्द-में काम आता है। एक हिस्सा इस टिंचरका ५ हिस्से गुनगुने पानीमें मिलाकर और कपड़ा तर करके चोटपर लगाना चाहिये। अगर हड्डी जगह-से हट गई हो तो टिंचर लगानेसे पहले उसे बैठवा लेना चाहिये। अगर चोटमें मवाद आना शुरु हो गया हो तो इस टिंचरका इस्तैमाल बन्द कर देना चाहिये।

मुलियन तेल (mullein oil)

कानके दर्द और हर तरहके बहिरेपनमें काम आता है। अगर कानमें सूजन हो, फुड़िया हो या मवाद आता हो तो इस तेलकी एक या दो बूंद रोज़ कानमें डालना चाहिये। अगर कानमें सूजनके कारण, नहानेमें पानी चले जानेके कारण या मैल जमा हो जानेके कारण, भनभनाहट, सुनपन या बहिरापन हो गया हो तो इस तेलकी एक दो बूंद दिनमें दो या तीन बार डालनेसे फायदा होगा।

अगर कानके चारों ओर या कानकी वजहसे मुंहके किसी हिस्सेमें दर्द होता हो तो थोड़ीसी ग्लिसरीन या ख़ालिस अलसीके तेलमें मुलियनतेल की चंद बूंद मिलाकर दिनमें कई बार मसलना चाहिये, दर्द कम हो जायगा।

मसानेकी सूजनपर, जिसमें जलन और बार बार पेशाब करनेकी ख़ाहिश मालूम हो ४० बूंद औलाइवऔइल यानी जैतूनके तेलमें सौ बूंद मुलियन औइल मिलाकर दर्दकी जगहपर मलना चाहिये।

बुड्ढे या बच्चोंको प्रायः ऐसा रोग हो जाता है कि पेशाब निकल जाता है या रातको बिना मालूम हुए पेशाब हो जाता है या बूंद बूंद करके होता है या बार बार पेशाबकी ख़ाहिश बनी रहती है। ऐसे मरीज़को २ बूंदसे ५ बूंद तक एक चम्मच पानीमें मिला कर दिनमें चार बार देना चाहिये। जिन मनुष्योंके फोते सूज आते हैं, उनके लिए एक औंस अर्थात् आधी छटांक जैतूनके तेलमें ३० बूंद मुलियन औइल मिलाकर एक कपड़ा तर करके सूजी हुई जगहपर लगा देना चाहिये और उस जगहमें कई बार मलना चाहिये। अगर तेल न हो तो पानीमें ही मिला कर लगा सकते हैं। दर्द और सूजनके कम करनेमें मुलियन औइल अकसीर है, यहां तक कि गर्दनकी सूजन, खांसी, फेफड़ेके दर्द और तपेदिककी बीमारीमें रोगियोंकी गर्दन और छातीपर इस तेलके मलनेसे बहुत फ़ायदा होता है।

कारबोलिक तेज़ाब (एसिड)

मीठे तेल या ज़ैतूनके तेलकी ६० बूंदमें ५ बूंद कारबोलिक एसिड मिलानी चाहिये। ऐसे ज़ख्म और नासूरोंमें जिनमें मवाद आ गया हो, कालापन लिये हुये नीलापन दिखाई पड़े और दुर्गंधि भी आती हो, दिनमें कई बार लगानेसे फ़ायदा होगा। लेकिन दवा लगानेसे पहिले ज़ख्मको कारबोलिक एसिडके पानीसे धो देना चाहिये। कारबोलिक एसिडका पानी, एक छटांक पानीमें दस बूंद कारबोलिक एसिड डाल कर, गर्म करनेसे तैय्यार होता है। गुनगुने पानीको ज़ख्मपर ऊपरसे बूंद बूंद टपकाकर रूईके फाये या परसे धोना चाहिये।

ज़ख्मके धोनेमें इस बातका ध्यान अधिक रहना चाहिये कि बाहरी गर्द या कपड़ेका मैल ज़ख्मपर न पड़े। हाथको, ज़ख्म धोनेसे पहिले, साबुन और गर्म पानीसे साफ़ कर लेना चाहिये। पट्टीके नीचे रूईकी तह अवश्य देनी चाहिये कि बाहरकी हवा ज़ख्ममें न लगे।

क्रीसैटोबीन पौडर

इसको दाद, खुजली और खालकी ऐसी बीमारियोंमें जिनमें दाने पड़कर खुजली पैदा होती हो मलते हैं। पौडरको दो चार बूंद पानी तेल या चर्बीमें मिला कर मलते हैं। जिस जगह बीमारी हो, उसके आध इंच आगे तक दवा लगानी चाहिये। हफ़्तेमें २ या ३ बार मलनेसे फ़ायदा होगा, रोज न मला जाय क्योंकि इससे एक क़िस्मकी जलन पैदा होती है।

ग्लिसरीन

यह दवा खाने और लगानेके काममें आती है। अगर कहींसे पैर और हाथ या बदनका कोई हिस्सा फट गया हो जैसे कि बिवाई फट जाती हैं तो चन्द बूंद रोज़ मलनेसे फ़ायदा होगा।

स्टोरेक्स बाम

यह दवा हर तरहकी खुजली और जिल्दकी बीमारियोंमें लगाई जाती है।

वॅसेलीन

यह होमियोपैथिक इलाजमें भी काम आती है। बदनकी खुजली, आवले (फालक) और जलनेमें इसको लगाते हैं। जितनी दवा लगानी हो उतनी किसी साफ़ बर्तनमें रखकर आगपर इतनी गर्म करनी चाहिये कि खौलने लगे। फिर उतार कर गुनगुना या ठंडा करके एक फायेपर रख कर या ऐसे ही लगाएँ तो ज़ख्म धीरे धीरे पुर जायगा और जलन कम हो जायगी।

भारत गीत नं० २३

जहां विश्व-मात्रके विषें प्रेम-मय
आत्मिक भाव अधिष्ठित है।
जहां व्यक्ति व्यक्तिके बीच
नेह–निजता–सम्बन्ध घनिष्ठित है।
जहां निज - परता - भ्रम - शून्य
द्वेष - दूषित दुर्भाव बहिष्कृत है।
जहां सकल - सुखद साहाय्य हेतु
प्रति हृदय - प्रवृत्ति परिष्कृत है।
जहां केवल अपने अधम स्वार्थका
दास कदापि न कश्चित है।
बस वहां धन्य नर - जन्म, तथा
नर–जीवन, सफल सुनिश्चित है।

श्रीपद्म कोट, - प्रयाग अक्टो० १९१६ } —श्रीधर पाठक।

आग और जलना*

[ले०—प्रो० शतीशचन्द्र देव, एम. ए.]

जिस ज़मानेसे हज़रत इन्सान (मनुष्य) को आगका इस्तैमाल मालूम है, यह कहना मुबालिग़ा (अतिशयोक्ति) न होगा कि इन्सानको उसी ज़मानेसे तमाम जानदारोंपर शर्फ़ (श्रेष्ठता) हासिल (प्राप्त) है, क्योंकि आगका इस्तैमाल इन्सान ही जानता है। यह कहना निहायत मुशकिल है कि वह (समय) ज़माना कब था मगर दुनियाकी सबसे पहिली किताब ऋग्वेदका पहिला लफ़्ज़ (शब्द) अग्नि है और उसके तसनीफ़का ज़माना (रचनाकाल) यूरोपके उलमा (विद्वान) कमसे कम हज़रत ईसासे आठ हज़ार वर्ष क़ब्ल (पहले) बतलाते हैं, यानी दस हजार वर्ष पहिले भी इन्सान आगसे (परिचित) वाकिफ़ था। यूनानियोंमें यह रवायत (जनश्रुति) निहायत पुरानी है कि प्रोमेथियस (Prometheus) नामी एक शख्स देवताओंके पाससे आग चुरा लाया। लफ़्ज़ प्रोमेथियस संस्कृतके शब्द प्रमथसे बहुत मिलता है और जिस तरह बरमीसे आज बढ़ई लकड़ीमें छेद करता है उसी तरह अगले लोग भी बरमीके बजाय एक दूसरी लकड़ीसे किसी छेदमें रगड़ पैदा करके आग निकालते थे। यह एक तरहका मथना हुआ। यूनानी रवायत (लोकोक्ति) के प्रोमेथियसके मआनी (अर्थ) महज़ (केवल) मथनेवालेके हैं, जिसने पहिले पहल लकड़ी मथकर आग निकाली। यूरोपके उलमाका (विद्वानों) ख़याल है कि जंगलोंमें खुद ब खुद आग लग जाया करती है। इस बातको इन्सानने देखकर खौफ़ और ताअज्जुब (अचरज) किया

* प्रोफेसर शतीशचन्द्र देव महोदयने इस विषयपर परिषद्के एक अधिवेशनमें सप्रयोग व्याख्यान दिया था। वही अब विज्ञानमें प्रकाशित किया जाता है।—सं०

होगा, जिससे यह ख़याल पैदा हुआ कि आग कोई ताक़तवर (बलवान) देवता है और यही आतिश परस्तीकी बुनियाद है। बादको जब इन्सान आग बनाना सीख गया, उसकी ज़िन्दगी जब आग बनानेपर मौक़ूफ़ (निर्भर) हो गई, जबसे अपने नितके कामोंमें वह आग इस्तैमाल करने लगा उसे बार बार यह ख़याल होने लगा कि यह शय (पदार्थ) क्या है ? इसकी असलियत क्या है ? लकड़ीकी रगड़से बार बार पैदा होते देख उसे यह ख़याल हुआ कि आग लकड़ीके अन्दर मौजूद होती हैं और रगड़से बाहर निकल आती है।

हिंदुओंका यह ख़याल था कि आग निकलकर लकड़ीको अपनी ताक़तसे जला डालती है। यहांके आलिम यह कहते थे कि ज़मीनपर जिस क़दर गरमी ज़ाहिर या बातिन है सबका मख़रिज सूरज है। मगर यूरोपके पुराने उलमा यह ख़याल करते थे कि लकड़ी जलनेपर जो राख बच रहती है उसके सिवा लकड़ीमें आग ही आग थी जो अलग हो गयी।

अठारहवीं सदीके शुरूमें यूरोपके एक आलिम स्टाल (Stahl) ने यह असूल कायम किया कि जितनी चीज़ें जलती हैं उन सबमें एक शय मौजूद होती है, जिसे फ़्लोजिस्टन (phlogiston) कहते हैं। जलना या आग इसी फ़्लोजिस्टनके निकलनेको कहते हैं। लकड़ी, कोयला, तेल वग़ैरहमें फ्लोजिस्टन कसरतसे है। कच्ची धातुको इनके साथ जलानेसे, फ्लोजिस्टन ईंधनसे निकल कर कच्ची धातुमें मिल जाता है। कच्ची धातु और फ़्लोजिस्टनके मिलनेसे साफ धातु बन जाती है। इस असूल के (सिद्धान्त) पैरो (मानने वाले) सदी ख़तम होते होते यूरोपके सारे उलमा हो गये थे, मगर अठारहवींसदीके अख़ीरमें लवोसियरने (Lavosier) तोल तोल कर आजमाइशें कीं तो मालूम हुआ कि कच्ची धातु और फ़्लोजिस्टनके मेलसे जो धातु निकलती है वह वज़नमें कच्ची धातुसे भी कम होती है, हालां कि वज़न बढ़ जाना चाहिये। इसलिए उसने फ़्लोजिस्टनके असूलको ग़लत ठहराया था। इसपर बहुत बहस (वाद विवाद) हुई, यहां तक कि लोगोंने फ़्लोजिस्टनका यह ख़ास्सा (गुण) क़ायम किया कि इसका वज़न मुन्फ़ी (ऋणात्मक) है। जिससे मिलता है उसका वज़न कम करता है, मगर ऐसी बातका समझमें आना ग़ैरमुमकिन था। लवोसियरने यह असूल ठहराया कि जब कोई शय (पदार्थ) जलती है हवाके एक जुज़ (अवयव, हिस्सा) ओषजन (oxygen) से मिल जाती है। इसीसे वज़न बढ़ जाता है। इस असूलको दुनियाने क़बूल कर लिया और आज़माइशोंसे भी यह असूल अब तक ठीक पाया गया है।

यह बात आम तौरपर ज़माने क़दीमसे मालूम है कि हवाकी मौजूदगीमें ही चीज़ें जलती हैं। हवा न हो तो जलना बंद हो जाता है। मगर जबसे तरह तरहकी गैसें मालूम हुई हैं यह भी साथ ही मालूम हुआ है कि जिस तरह जलनेवाली चीज़ हवाके जुज़से मिल जाती है, उसी तरह अगर जलनेवाली चीज़के मिलनेकेलिए दूसरे जुज़-दूसरी चीज़ें-मौजूद हों तो भी जलना नहीं रुक सकता। इसकी चंद आज़माइशें आप लोगोंको दिखलाई जाती हैं। मैंने एक गुज़िश्तःलेकचरमें बयान किया था कि हवामें पंजुम हिस्सा ओषजन का है। इसीसे तमाम चीज़ें जलती हैं यानी इसीसे मिल जाती हैं, जैसेः—

[नोट—यहां पर व्याख्याताने नीचे दी हुई चीज़ें हवामें और शुद्ध ओषजन (Pure Oxygen) से भरे हुए वायु घटोंमें जला कर दिखलाया कि ओषजनमें जलनेकी तेज़ी कितनी ज्यादा हो जाती हैः—(१) फलीता (२) मोमबत्ती (३) सोडियम (४) फास्फोरस (५) हवामें उज्जन और ओषजनमें कोलगैस।]

हवामें महज़ पंजुम हिस्से होनेसे तेज़ीमें बहुत कमी है, मगर जलनेकी कैफियत वही है। इसी तरह एक दूसरी तरहकी हवा (chlorine) हरिन-

में भी वही आज़माइशें करता हूं। यह गैस रंगमें ज़र्दी माइल सब्ज़ है। निहायत ज़हरीली है। इंसान अगर कुछ मिली जुली भी सूंघे तो हलकमें खराश और बलगमी आर्ज़ें पैदा हो जायं। इसे नमकके तेज़ाब और मंगनीज द्विओषिद गरम करके तैयार करते हैं, इसमें भी चीज़ें जलती हैं।

[नोट—यहांपर फलीता, मोमबत्ती, सोडियम, फास्फोरस, सुर्मा, उज्जन, आदि पदार्थ हरिनमें जलाकर दिख लाये गये।]

आप सब साहिबोंने मुलाहिज़ा फ़रमाया कि इन अशियाके जलानेको जिस तरह मामूली हवा काम देती थी उसी तरह Cl (हरिन) भी काम देती है। इससे ज़ाहिर हुआ कि हवाके सिवा और चीज़ोंमें भी मामूली चीज़ें जल सकती हैं। अब हमें यह इमतिहान करना है कि जब कोई चीज़ जलती है वह दर असल हवासे मिल जाती है, इसलिए उसका वज़न जरूर बढ़ जाना चाहिये। इस कांचकी कुप्पीमें जो हर तरफ़से बन्द है ज़रा सा फिसफोर मैं रखकर तोलता हूं। यह थोड़ी देरमें ख़ुद ब ख़ुद जल जायगा।

[नोट—यहां व्याख्याताने फास्फोरस कुप्पीमें रखकर तोला]

अब मैं इसे इसी तरह रहने देता हूं। जब जल जायगा फिर ज्योंका त्यों तोलूंगा और फिर खोल कर इसमें हवा जाने दूंगा और फिर तोलूंगा। वज़नका बढ़ना इस बातका सबूत है कि जलनेवाली चीज़मेंसे कुछ निकल नहीं गई बल्कि उसके साथ कोई चीज़ मिल गई। मगर कभी कभी हवाके साथ जलनेवाली चीज़ मिलकर फिर भी हवाई चीज़ बनकर उड़ जाती है। उसे हम देख नहीं सकते। इससे हमको समझनेमें दिक़्क़त होती है। लकड़ी, कोयला, तेल, वगैरह जलकर हवा बन जाती है, इसलिए हम समझते हैं कि लकड़ी तो उड़ गई, गायब हो गई। अगर किसी तरह उस हवाको हम क़ैद कर लेते तो हमें मालूम होता कि वज़न बढ़ गया है। ऐसा किया गया है और यह ख़याल दुरुस्त पाया गया है कि जो हवा बनती है वह लकड़ीसे वज़नमें ज़्यादा होती है। अगले लोग इस बातसे वाकिफ़ नहीं थे। पस ख़याल करते थे कि लकड़ीमें आग और राख यही दो चीज़ें हैं। मगर अब हम यह जानते हैं कि आग महज़ हवा और जलनेवाली चीज़के मेलसे पैदा होती है। अक्सर दो चीज़ोंके मिलनेमें आग पैदा होती है और तीसरी चीज़ बन जाती है, चाहे दिखाई दे या न दे, शौला निकले या न निकले। देखिये गन्धकके तेज़ाबको ज़रा से पानीमें डालते हैं। यह इस क़दर गरम हो जाता है कि हम उसमें पानी खौला सकते हैं।

[नोट—यहांपर व्याख्याताने पानीमें गंधकका तेज़ाब मिला कर दिखलाया।]

या देखिये पोटास और शक्कर मिलाकर रखते हैं। उसपर एक कतरा गन्धकका तेज़ाब डाल देनेसे शौला निकल आता है। पहिली सूरतमें गरमी मालूम हुई, दूसरीमें शौला निकल आया। दोनों सूरतोंमें कई चीज़ोंके मिल जानेसे गरमी पैदा हुई। चुनाचे आपने मुलाहिज़ा फ़रमाया कि गरमी दो चीज़ोंके मिलजानेसे पैदा होती है। सो आगका जलना दर असल क्या है? दो चीज़ोंका आपसमें मिलकर तीसरी चीज़ बनाना। यह तीसरी चीज़ वज़नमें मिलनेवाली दोनों चीज़ोंके मजमूई वजनके (इकट्ठे बोझ) बराबर होनी चाहिये। अब मैं इस फास्फोरस वाली कुप्पीको ज्योंका त्यों तोलता हूं। (तोलकर) वज़न वही है यानी हवा जो अन्दर फास्फोरससे अलग मौजूद थी फास्फोरससे मिलकर वहीं मौजूद है, फिर वज़नमें फर्क क्यों आने लगा। अब मैं इसमें हवा जाने देता हूं, कुप्पीकामुंह खोलकर और फिर बन्द करके वज़न करता हूं। [मुंह बन्द करके फिर तोलते हैं] देखिये वज़न बढ़ गया यानी अन्दर जो हवा अपनी जगह छोड़कर फास्फोरससे मिल गई थी, उस जगह बाहरी हवा आकर भर गयी। जगह खाली नहीं रह सकती। लिहाज़ा जो शय जल कर तैयार हुई वह फास्फोरससे वज़नमें भारी है।

ज़ाहिरा यह मालूम होता है कि हवा जलनेमें मदद देती है या जलनेवाली चीज़ोंको जलाती है। मगर ग़ौर और तजुर्बेके बाद यह कहना मुशकिल हो जाता है कि कौन सी चीज़ दरअसल जलाती है और कौन सा दरअसल जलती है। वाक़ई बात यह है कि जलती दोनों हैं और जलाती भी दोनों हैं। आप अब तक यह देखते रहे हैं कि यह गैस हवामें जलती है। मैं अभी आपको यह दिखला देता हूं कि हवा इस गैसमें जलती है।

[यहांपर व्याख्याताने कोल गैसमें हवा जलाई।]
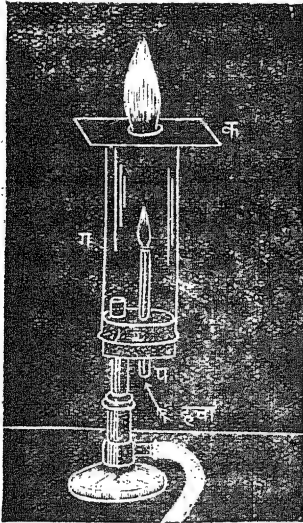
चित्र ४—बरनरमेंसे कोल गैस ग नलीमें जाती है, जिसके निचले सिरेमें एक पतली नली प लगी है और ऊपरी सिरा क तख्तीसे ढका है। तख्तीके बीचमें एक छेद है, इसीके द्वारा गैस बाहर निकलती है और दियासलाई दिखलानेसे जलाई जा सकती है। जब गैस जलने लगेगी तो प द्वारा हवा ग में प्रवेश करेगी और प के ऊपरी सिरेपर जलने लगेगी। 'क' के ऊपर कोल गैस हवामें जलती रहेगी और प के ऊपरी छोर पर हवा कोल गैसमें जलती रहेगी।

इस आज़माइशमें आपने मुलाहिज़ा फ़रमाया कि हवाके अंदर यह गैस जलती है और इस गैसके अंदर हवा जलती है। मतलब यह निकला कि अगर दो हवाएँ आपसमें मिल सकती हों तो एक दूसरेके अंदर जल सकती है। H और O (उज्जन और ओषजन) दो हवाएँ हैं। यह दोनों मिलकर पानी पैदा करती हैं। इन्हें भी एक दूसरेके अंदर इसी तरीक़ेपर जला सकते हैं। O में H की लौ जलती है। इसी तरह H के अन्दर O की लौ जलती है। इससे यह भी नतीजा निकला कि जो गैस ज़्यादा हो, चारों तरफ़ हो, उसके अन्दर अगर थोड़ी मिक़दार में आनेवाली हवा मिलकर आग पैदा करे तो थोड़ी मिक़दारवाली हवा जलती हुई मालूम होती है। मगर वाक़ई बात यह है कि जिस क़दर मिक़दारमें वह थोड़ी हवा है उसी क़दर मुनासिब मिक़दारमें चारों तरफ़ फैली हुई हवा भी उसके साथ मिलकर जलती है।

आप लोगोंने देखा कि हवामें जो चीज़ें ज़रा ज़रा जलती हैं O (ओषजन) में बहुत तेज़ जल जाती हैं। बहुत सी चीज़ें बहुत आहिस्ता आहिस्ता जलती हैं और बहुतेरी बहुत तेज़ीसे जल जाती हैं। बाज़ हालतोंमें जलन निहायत आहिस्ता होती है, जिसमें वर्षों लग सकते हैं और बाज़ हालतोंमें जलनेमें इस क़दर तेज़ी होती है कि एक सेकंडके हज़ारवें हिस्सेमें जलना ख़तम हो जाता है। लोहेपर मोर्चा या ज़ंग लगना लोहेका जलना है, जो बहुत अर्सेमें होता है, बहुत धीरे धीरे होता है। इंसान भी आहिस्ता आहिस्ता जलता जाता है। दुनियामें जितनी चीज़ें हैं, क़रीब क़रीब सब आहिस्ता आहिस्ता जलती हैं। साथ ही आप बहुत से ईंधनसे वाक़िफ़ हैं, जिनमें सूखी घास, पत्ती, रुई, वग़ैरह फ़ौरन जल जाती हैं और लकड़ी और कोयलेमें देर लगती है। बारूदके जलनेमें ज़रा भी देर नहीं लगती बल्कि इस क़दर तेज़ीके साथ जलती है कि आवाज़ निकलती है। आवाज़का सबब यह है कि जलनेमें हवाके रेज़े बड़ी तेज़ीसे टकराते हैं। अगर जगह काफ़ी हुई तो आवाज़ कम होती है और कम हुई तो टक्करके सबबसे

आवाज़ भी होती है और धक्का लगता है, चोट लगती है। बंदूक, तोप, वगैरहमें यही बात होती है। देखिये यह Hydrogen (उज्जन) की लौ है। ज़ाहिरा चुप चाप हवामें जल रही है। मगर इसमें भी आवाज़ निकलती है। इसे मैं एक लम्बी नलीमें दाख़िल करता हूं, ताकि जगह कम हो जाय। आवाज़ गूंजती है। अगर जगह और तंग हो और हवाके बजाय मुनासिब मिक़दारमें ओषजन दिया जाय तब बहुत तेज़ आवाज़ होगी। इस बोतलमें मैंने H और O मुनासिब मिक़दारमें भर रक्खी हैं। देखिये इसमें कैसी आवाज़ होती है।

[नोट—बोतलके मुंहके पास लौ लानेसे ज़ोरका धड़ाका हुआ, जैसे बन्दूक़ चलने पर होता है।]

इस आज़माइशसे आप यह नतीजा निकाल सकते हैं कि अगर किसी बंद जगहमें कोई जलनेवाली हवासे मामूली हवा मिली हो और इत्फ़ाक़से जल जाय तो बड़ा भारी हादिसा हो सकता है और इंसान और जानदारोंको नुक़सान पहुंच सकता है। कोयलेकी खानोंमें एक जलनेवाली हवा अकसर निकल आती है। सौ वर्ष हुए खानोंके भीतर इस हवाके भकसे जल जानेसे जितने आदमी खानके अंदर होते थे सब मर जाते थे। खानके अंधेरेमें बत्ती ले जाना ज़रूरी था और बत्तीसे आग लगा करती थी। चुनांचे डेवी साहबने ठीक सौ वर्ष हुए एक ऐसा लम्प बनाया जिसके अंदरसे लौके बाहर निकलनेमें देर लगती है और जलनेवाली हवा ज्यों ही खानके अंदर फैलती है लम्पके अन्दर शोला भक भक करने लगता है। इसका उसूल यह है—

चित्र ६—७ एक बरनर, स्पिरिट लेम्प या मामूली डिब्बी जलाओ। लौ पर एक तारकी जाली रखो। लौ जाली को भेदकर न निकलेगी, जब तक कि जाली बहुत गरम न हो जायगी। अब एक दियासलाई या फलीता जलाकर जाली की ऊपरी तरफ़ लौके ठीक ऊपर थामो। लौ ऊपरकी तरफ़ भी फूट निकलेगी। पहले लौकी गरमी तार द्वारा चारों ओर फैल जाती थी। इससे जो गैस जालीके ऊपर
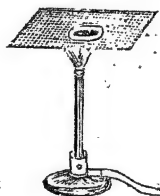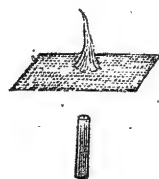
पहुंच जाती थी, काफी गरमी न पाकर जलती न थी, पर दिया सलाई दिखाने से, गरमी पाकर जल उठती है। अब बरनर या लेम्पको बुझा दो और जलती हुई सलाई जालीके ऊपर लाओ। गैस जलने लगेगी, पर जालीके नीचे लौ न पहुंच सकेगी। कारण वही है, जो ऊपर बतला चुके हैं। देखो चित्र ७। प्रत्येक पदार्थ, ज्वलन विन्दु Ignition temp. तक गरम हुए बिना नहीं जलता।

[नोट—दो प्रयोग दिखलाये गये जिनका वर्णन चित्रमें देखिये]

खानवालोंको यह मालूम हो जाता है कि अब खतरा है और वह भाग जाते हैं। कहीं अगर यह हवा जल उठी तो एक तो जलनेसे ही आदमी मर जाता है और जो जलनेसे बचते हैं उनका दम घुट जाता है, क्योंकि सांस लेनेवाली हवा खर्च हो चुकी रहती है। ऐसी सूरतमें इन आदमियोंको बचानेवाले, ओषजनवाली पोशाक पहिन कर अंदर जाते हैं और बेहोश आदमियोंको निकाल लाते हैं।

मैं दिखला चुका हूं कि जब दो चीज़ मिलकर तीसरी चीज़ बनाते हैं तो गरमी पैदा होती है। अकसर यह गरमी इस दरजेकी होती है कि रोशनी मालूम होती है। मगर इससे यह न समझ लेना चाहिये कि रोशनीका सबब हमेशा जलना ही होता है। बहुत सी चीजें बे इन्तहा गर्मीसे तेज़ चमकने लगती हैं, मगर जलती नहीं, जैसे बिजलीके लेम्प या जालीदार लेम्प जिनमें तार या जाली चमक रही हैं। गरमी इस क़दर तेज़ है कि सुर्ख या सफ़ेद होकर चमकने लगी मगर जल

नहीं जाती। इसी तरह सूरज भी बहुत तेज़ गरमीसे चमक रहा है। इसका मादा जल नहीं जाता, इसकी गरमी इस क़दर तेज़ है कि ज़मीनके सिवा और भी बहुत से सैयारे इसकी गरमीसे अपनी ज़िन्दगी क़ायम रखते हैं। सूरज न होता तो ज़मीनपर गरमी न होती। (Udyana) उदयन नामी क़दीम हिन्दू आलिमने जो यह कहा था कि जिस क़दर गरमी दुनियामें कीमयाई कैफ़ियतसे पैदा होती है सब सूरजसे आई हुई है, आज भी सायंसकी रूसे ठीक और बहुत सही समझा जाता है।

भूकम्प

(१)

भूकम्प संबंधी प्राकृतिक घटनाओं-पर यदि ध्यान दिया जाय तो उनमेंसे कुछ आवश्यक और कुछ अनावश्यक प्रतीत होंगी। कुछका तो भूकम्पके मूल कारणसे घनिष्ठ संबंध है और कुछ केवल भूकम्पकी परिणामरूप हैं। इन दो प्रकार-की घटनाओंमें कोई निश्चित अन्तर बताना कठिन क्या, असम्भव ही है। तो भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ घटनाओंपर विचार करने-की तब कुछ भी आवश्यकता नहीं होती जब केवल भूकम्पके जन्मकी विवेचना करनी होती है। जैसे ढालुओं और नदीके तटकी भूमिका फट जाना, पृथ्वीसे जलका निकल आना, पर्वतके किनारेसे उसके एक अंशका गिर जाना, इत्यादि दृश्योंपर यहां विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। अभी उन्हींका वर्णन किया जायगा, जिनको किसी सिद्धान्त विशेषके अनुसार भूकम्पके जन्मसे संबंध रखनेवाले सिद्ध करना अभीष्ट है।

यह देखा जाता है कि पृथिवी मंडलपर भूकम्प सभी जगह नहीं होते। कहीं तो बहुत भूकम्प होते हैं, पर हलके और अन्य स्थानोंमें थोड़े परन्तु अति प्रबल। ज्वालामुखी पर्वतोंके निकटवाले भूकम्प एक प्रकारके कहे जा सकते हैं और लिस्बन (१७५५) भारतवर्ष (१८९७ और १९०५) कैलिफो-र्निया (१९०६) और मैसीना (१९०८) में जो भूकम्प होते हैं वे दूसरे प्रकारके कहे जा सकते हैं। पहले प्रकारके भूकम्पोंका संबंध उन भूगर्भस्थित परिव-र्तनोंसे है, जिनके कारण ज्वालामुखी पर्वतोंका जन्म होता है। परन्तु दूसरे प्रकारके भूकम्पोंका ज्वाला-मुखी पर्वतोंसे कुछ भी संबंध नहीं है। साधारण-तया ज्वालामुखी पर्वतोंके पासके भूकम्प हानि-कारक नहीं होते। इटलीमें एटना और वेसूवियस नामक ज्वालामुखी पर्वतोंके पास कभी कभी प्रबल भूकम्प आ जाते हैं, परन्तु प्रसिद्ध कलेब्रियाके भूकम्पोंका कुछ भी ज्वालामुखी पर्वतोंसे संबंध नहीं है। जापानमें उन स्थानोंमें भूकम्प कम होते हैं जहां ज्वालामुखी पर्वत हैं। विनाशकारी भूकंप वहीं होते हैं, जहां ज्वालामुखी पर्वतोंका अभाव है। जापाना साम्राज्यके पूर्वीय ढालुओं समुद्रके किनारोंपर ऐसे भूकंप विशेषतः आते हैं। इसी प्रकार दक्षिणी अमे-रिकाके नाशकारक भूकम्पोंका जन्म प्रशान्त महा-सागरके गर्भसे होता है और यह स्थान ऐन्डीज़ नामक ज्वालामुखी पर्वत श्रेणीसे बहुत दूर है। भारतवर्ष और तुरकिस्तानके भूकम्प वहीं होते हैं जहां अब ज्वालामुखी पर्वतोंका नाम तक भी नहीं है।

इस अन्तरके अतिरिक्त एक अन्तर और विचारणीय है। कुछ भूकंपोंका प्रभाव बहुत दूर तक होता है और कुछ का थोड़ी ही भूमि-पर। दृष्टान्तके लिए १८९७ और १९०५ के भारत-वर्षीय भूकंपोंको लीजिये। पहलेका प्रभाव २० लाख वर्गमील तक हुआ और दूसरेका ५०० कोस तक। इसके विरुद्ध इङ्गलैंडके भकम्पोंको लीजिये। इनका प्रभाव २५ वर्ग कोससे भी कम भूमिपर पड़ता है और कुछ कोसोंके आगे मालूम ही नहीं देता। कहीं कहीं तो केवल शब्द ही होकर रह जाता

Physiography सैद्धान्तिक भूगोल]

है और किसी प्रकारका भूमिसंचालन नहीं होता। इस प्रकारके अन्तरके कारण यह न समझना चाहिये कि बड़े और छोटे भूकंपोंके कारण भी भिन्न हैं। यदि हम एक ऐसी बातका पता लगा सकें, जिससे भिन्न प्रकारके भूकंपोंका मूल कारण एक ही सिद्ध हो तो हमें भारतवर्षीय और मध्य एशियाई नाशकारक भूकंपोंकेलिए एक और नार्वे और ग्रेटब्रिटेनमें होनेवाले निर्बल भूकंपोंकेलिए दूसरे कारण बतानेकी क्या आवश्यकता है ?

आजकल सभी बातें मान चित्रोंके द्वारा समझी जाती हैं। हर एक भूकंपको दिखानेके लिए उसके नक़्शे बनते हैं। इनको देखनेसे यह मालूम होता है कि भूकंपोंको हम इकहरे, दोहरे और पेचीले नामक तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं।

इकहरे भूकंपोंमें प्रारम्भिक धक्के वैसे ही होते हैं जैसे किसी भारी गाड़ीके चलनेके आरंभमें बहुत हल्के परंतु शीघ्रगामी कंप होते हैं। प्रति सेकंड ४ अथवा ५ कंप होते हैं और थोड़े समयके उपरान्त कंपोंका बल बढ़ने लगता है। शीघ्र ही वे और दूर-तक फैल जाते हैं और देरतक रहते हैं। ऐसी अवस्थामें प्रति सेकंड दो अथवा तीन कंपसे अधिक, नहीं होते। परन्तु प्रबल भूकंपोंमें एक एक कंप एक अथवा दो सेकंड तक रहता है। इन कंपोंमें बलकी अधिकता अथवा कमी तो रहती ही है, परन्तु साधारणतया जब कंप अपनी कोटितक पहुंच जाते हैं तो जैसे जैसे प्रारम्भिक दशासे आगे सबलता आती गई थी वैसे ही धीरे धीरे बल घटने लगता है और अन्तमें धक्के वैसे ही निर्बल हो जाते हैं जैसे आरम्भमें रहते हैं। इकहरे भूकंपोंका काल देश देशमें घटता बढ़ता है। ग्रेट ब्रिटेनमें ४ अथवा ५ सेकंड, अधिकसे अधिक ७ अथवा ८ सेकंड। और देशोंमें इससे अधिक समयतक कंप रहता है।

दोहरे भूकंपोंमें संचालन वैसा ही होता है जैसा इकहरेमें परन्तु २, ३ सेकंडका अन्तर देकर बार बार कंप होता है अर्थात् एक बार कंप हुआ और फिर २, ३ सेकंडकेलिए बिलकुल बन्द हो गया और फिर कंप आरम्भ हुआ। कहीं कहीं इस अन्तरके समयमें अत्यन्त सूक्ष्म कंपका अनुभव होता है परन्तु ऐसी दशामें भी केन्द्रसे थोड़ी दूरपर यह सूक्ष्म अनुभव भी नहीं होता और मूल कंप केवल दो विभागोंमें ज्ञात होता है। कहीं कहीं इन दो भागोंमें भी बल और कालमें अन्तर पड़ता है। कभी तो पहली कंप श्रेणी दूसरीसे अधिक प्रबल और अधिक कालवाली होती है और कभी इसके विरुद्ध भी होता है। इकहरे भूकंपोंसे इन दोहरे भूकंपोंका काल अधिक रहता है। ग्रेट ब्रिटेनमें १ सेकंडसे १५ सेकंडतक और अन्य देशोंमें एक एक मिनटतक और कभी कभी इससे भी अधिक समयतक रहते हैं।

पेचीले भूकंप बहुत बड़े होते हैं। वे ३, ४ मिनट तक रहते हैं। इतने ही समयमें कभी निर्बल, कभी प्रबल हो जाते हैं। कंप दिशामें भी परिवर्तन होता रहता है। कभी कभी इतना प्रबल धक्का होता है कि लोग खड़े नहीं रह सकते। भूमिपर कंपकी लहरें दिखाई देती हैं। जैसे जैसे लहरें आती जाती हैं वैसे वैसे भूमिमें दरारें पड़ती हैं और बन्द होती हैं। बड़े कंपोंमें ज़मीन फट जाती है, दरारें एक ही दिशामें मीलोंतक हो जाती हैं। भूमि कहीं उठ जाती है, कहीं दब जाती है।

भूकंपका सबसे पहला चिह्न धीमा गड़गड़ाहटका शब्द होता है। वह इतना धीमा होता है कि बहुतसे लोगोंको तो सुन भी नहीं पड़ता। वह शब्द धीरे धीरे बढ़ता है और साथ ही साथ कंप भी मालूम होने लगता है। फिर दोनों साथ साथ बढ़ते हैं, यहां तक कि मूलकंपका अनुभव होने लगता है और गहरे फटनेके शब्द भी सुन पड़ते हैं। अन्तमें शब्द और कंप दोनों एक साथ ही बन्द हो जाते हैं, पर कभी कभी शब्द कंपके बाद कुछ क्षणतक रहता है।

१६०८ के मैसीनाके वृहत कंपके समान बड़े कंप बिना किसी पूर्व सूचनाके ही आ जाते हैं। सभी बड़े कंपोंके बाद हलके कंप रहते हैं और केन्द्र भूमि कुछ दिनोंतक शान्त नहीं होती। यह पीछे रहनेवाले धक्के महीनों और वर्षोंतक रहते हैं। कभी कभी इनमें भी प्रबल धक्के आ जाते हैं, जो मूल भूकंपकी याद दिलाते हैं। इनके पीछे भी हल्के धक्के बने रहते हैं।

जिस समय एक स्थानपर भूकंप हो रहा है, सम्भव है कि उसी समय दूसरे स्थानपर कुछ ही दूर हटकर एक और भूकंप हो। इस प्रकारके भूकंपोंके केन्द्रोंमें अधिकतर आभ्यांतरिक सम्बन्ध रहता है और वस्तुतः ऐसे दो अथवा अधिक भिन्न भिन्न कंपोंका मूल कारण एक ही होता है। यह कोई नियम नहीं है कि एक मूल भूकंपके कई विभाग एक ही समयपर हों। ऐसा भी होता है कि वे कुछ समयका अन्तर देकर भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न समयपर हों। यह बात कई प्रसिद्ध भूकंपोंसे सिद्ध हो चुकी है।

यद्यपि अनेक उपाय इस बातके जाननेकेलिए किये गये कि भूकंपोंका आरम्भ कितनी गहराईपर होता है तथापि अभीतक इसको निश्चित रूपसे मालूम करनेमें सफलता नहीं हुई है। इतना अवश्य सिद्ध हुआ है कि भूकंप कुछ ही मील नीचे होते हैं। यदि २० मील गहराईपर कंप होते तो जैसे जैसे केन्द्रसे दूरी होती जाती वैसे वैसे कंपका बल घटता जाता। देखा यह जाता है कि जितनी भूमिपर हलके धक्केका अनुभव होता है वह सर्वदा थोड़ी ही होती है। अतएव यही निश्चय होता है कि यदि धक्का निर्बल हो अथवा प्रबल, साधारणतया भूकंपका आरम्भ ऊपरकी भूमिसे थोड़ी ही गहराईपर होता है। परन्तु इस लेखमें यह वाद विवाद करना हमें अभीष्ट नहीं हैं कि भूकंपकी गहराई कितनी होती है। आवश्यक बात यह है कि इसकी सीमा पृथ्वीके ऊपरी तल (crest) तक ही है। अब यदि पृथिवीके आभ्यांतरिक अवस्था सम्बन्धी ज्ञानकी परिमिति ६ मील गहरे तलोंतक होती तो हमें ऐसी शक्तियोंके कामोंको मान लेना पड़ता, जिनका वास्तविक ज्ञान हमें नहीं है। परन्तु वे बहुतसे चट्टान जो आजकल भूतलपर हैं पहले किसी प्राचीन समयमें कई मील गहरे गड़े थे और उनकी बनावटसे हम अनुमान कर सकते हैं कि पृथ्वीके और गहरे स्तरोंकी कैसी बनावट है? यह नहीं कहा जा सकता कि उन शक्तियोंने अब अपना काम बन्द कर दिया है, जिनके कारण भगर्भ विद्या संबंधी प्राचीन कालमें वे तल बने थे जिनकी बनावटके विषयमें हम वर्तमान चट्टानोंको देखकर अनुमान करते हैं। कदाचित उन शक्तियोंका काम आज पहलेसे धीमा है, परन्तु मानना यही चाहिये कि वे शक्तियां अभी तक उसी प्रकार और वैसे ही परिणामोंके सहित काम कर रही हैं। इससे पहले कि हम उन शक्तियोंका उल्लेख करें हमें यह भी जान लेना चाहिये कि क्या वे शक्तियां, जिन्होंने पहाड़ोंको ऊपर निकाल दिया है और जिन्होंने भूतलके चट्टानोंको पीसकर उनका रूप ही बदल दिया है, यह सब काम बिना बड़े भूकम्पों और अनन्त छोटे छोटे कम्पोंके हुए ही कर सकती हैं, क्योंकि कोई भी कल बिना कुछ शब्द और हलचल किये नहीं चल सकती, चाहे वह कितनी ही पूर्ण क्यों न हो।

विश्वेश्वर प्रसाद

भारत-गीत नं० २२

समझ मनरे मूरख नादान
अपना और पराया जगमें हित अनहित पहँचान
अपनोंका तुझे ज्ञान नहीं है ग़ैरों पर है ध्यान
जिनको कुछ परवाह नहीं तेरी, उन पर तू क़ुरबान
अपनों और परायोंमें जो रखता ग़लत गुमान
खाता ख़ता एक दिन भारी खोता सारी शान
हित अनहितकी समझ समस्या होजा सजग सुजान
अगर पार करना हो जीवनका अपार मैदान
समझ मनरे मूरख नादान

श्रीपद्मकोट, प्रयाग २०—६—१८ —श्रीधर पाठक।

बाटरियोंका जोड़

[ले०—प्रोफ़ेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

जिनको बाटरियोंसे काम पड़ा है वह अच्छी तरह जानते हैं कि बड़ेसे बड़ा अवस्थाभेद जो किसी बाटरीके सिरोंमें होता है वह २ अथवा २·२५ वोल्ट है। कमसे कम अवस्थाभेदपर जलनेवाले लम्पको भी ४ वोल्टका अवस्थाभेद चाहिये। इससे कम अवस्थाभेदपर चलनेवाले बिजलीके पंखे भी नहीं मिलते हैं। जिन शहरोंमें बिजली लगी हैं वहांके रहनेवाले यह भी जानते हैं कि उनके तारोंका अवस्थाभेद २२० या ४४० वोल्ट है। इन बातोंको देखकर यह प्रश्न उठता है कि इतना अवस्थाभेद किस प्रकार पैदा किया जाता है? मानलो कि जितनी चाहे उतनी हम ऐसी बाटरियां खरीद सकते हैं, जिनके सिरोंमें २ वोल्टका अवस्था भेद है। अब २२० वोल्टका अवस्थाभेद उत्पन्न करनेके लिए हमको कितनी बाटरियां खरीदनी चाहिएँ और खरीद कर उनको किस प्रकार जोड़ना चाहिये, जिससे २२० वोल्टके बराबर अवस्था भेद मिल सके। प्रत्येक बाटरीका धनात्मक सिरा उच्च अवस्थाका और ऋणात्मक सिरा नीची अवस्थाका माना जाता है। चित्र ८ में

Electricity विद्युत्शास्त्र]

चित्र ८ चित्र ९
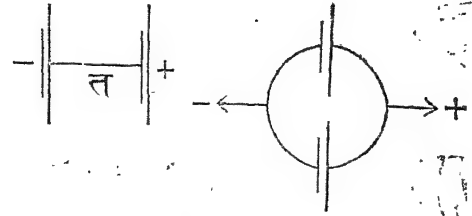
दो बाटरियां दी हुई हैं। इनके ऋणात्मक सिरे छोटी और मोटी लकीरोंसे और धनात्मक सिरे लम्बी और बारीक लकीरोंसे सूचित किये गये हैं। मानलो कि पहली बाटरीके सिरोंमें अवस्थाभेद अ वोल्ट और दूसरी बाटरीके सिरोंमें $अ_१$ वोल्ट है। अब यदि कोई ऐसी विधि हो कि हम पहली बाटरीके ऋणात्मक सिरे और दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेकी अवस्था एक कर सकें तो पहली बाटरीके धनात्मक सिरे और दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेमें अ वोल्टोंका अवस्था भेद होगा और चूंकि दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरे और ऋणात्मक सिरेमें $अ_१$ वोल्टोंका अवस्था भेद है। इसलिए पहली बाटरीके धनात्मक और दूसरी बाटरीके ऋणात्मक सिरेमें $अ+अ_१$ वोल्टोंका अवस्था भेद होगा। वह विधि कौनसी है, जिससे पहली बाटरीके ऋणात्मक और दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेकी अवस्था एक हो जाय। वह विधि इन दोनों सिरोंको धातुके तारसे जोड़ देना है। यह तार चित्रमें त लकीरसे सूचित किया गया है। यदि दोनों बाटरियां समान हों तो उनके सिरोंमें अवस्थाभेद बराबर ही होगा और यदि इन दोनोंको ऊपर दी हुई विधिसे जोड़ें तो

पहली बाटरीके धनात्मक और दूसरीके ऋणात्मक सिरेमें २ अ वोल्टोंका अवस्था भेद होगा अर्थात् इस प्रकार जोड़नेसे हमको दुगने अवस्था भेदकी बाटरी मिल गयी।

अब यदि उसी तरहकी एक तीसरी बाटरी ले कर इसका धनात्मक सिरा इस जोड़के ऋणात्मक सिरेसे जोड़ दें तो तीसरीके ऋणात्मक और पहली बाटरीके धनात्मक सिरेमें ३ अ वोल्टोंका अवस्था भेद हो जायगा। इस विधिके अनुसार बाटरियोंको जोड़ कर जितना अवस्थाभेद चाहें उत्पन्न कर सकते हैं। २२० वोल्टोंके बराबर अवस्थाभेद उत्पन्न करनेके लिए हमको २ वोल्टोंके अवस्थाभेदवाली ११० बाटरियां चाहिएं और उनमेंसे एक बाटरी लेकर उसके ऋणात्मक सिरेको दूसरी बाटरीके धनात्मक सिरेसे जोड़ देना चाहिये। दूसरी बाटरीके ऋणात्मक सिरेको तीसरी बाटरीके धनात्मक सिरेसे जोड़ना चाहिये और इसी प्रकार बाटरियोंको जोडते हुए चले जाना चाहिये। अन्तमें ११० वीं बाटरीका ऋणात्मक सिरा खुला रह जायेगा। इसमें और पहली बाटरीके धनात्मक सिरे में २२० वोल्टोंके बराबर अवस्थाभेद मिलेगा। ऐसा मान सकते हैं कि ११० बाटरियोंका समूह ऐसे जोड़से एक ही बाटरी हो गया है। इस बाटरीका धनात्मक सिरा पहली बाटरीका धनात्मक सिरा है और इसका ऋणात्मक सिरा ११० वीं बाटरीका ऋणात्मक सिरा है। इस प्रकार जुड़ी हुई बाटरियोंको शृंखलाबद्ध कहते हैं। शृङ्खलाबद्ध बाटरियोंके समूहके सिरोंमें अवस्था भेद समूहकी बाटरियोंके अवस्थाभेदोंके जोड़ के बराबर होता है। शृङ्खलाबद्ध बाटरियोंके समूहको इस प्रकार सूचित किया करेंगे। [चित्र १०]

अब यदि इस समूहके दोनों सिरे किसी लम्पसे जोड़ दिये जावें तो ऐसा मान सकते हैं कि धारा धनात्मक सिरेसे लम्पमें प्रवेश करेगी और लम्पमें होती हुई ऋणात्मक सिरेसे समूहमें दाखिल होगी और प्रत्येक बाटरीमें होती हुई धनात्मक सिरेको लौट जावेगी। इस उदाहरणसे यह मतलब निकला कि जो धारा बाहिरी चक्करमें बहती है वही धारा प्रत्येक बाटरीमें होकर बहती है।

एक प्रकारकी बाटरियोंके सिरोंका अवस्थाभेद तो एक ही होता है किन्तु उनकी बनावटके अनुसार उनसे भिन्न भिन्न प्रबलताकी धाराएँ उत्पन्न की जा सकती हैं। एक बाटरी ऐसी हो सकती है जिससे ५ एम्पकी धारा ली जा सकती है। दूसरी ऐसी हो सकती है कि उससे आप १० एम्पकी धारा ले सकते हैं। पर यह धाराएं उनसे एक नियत समय तक ही ले सकते हैं। कोई बाटरी ५ एम्पकी धारा १० घंटे तक दे सकती है और कोई १० एम्पकी धारा ३० घंटे तक दे सकती है। घंटों और एम्पोंके गुणनफलको बाटरीकी समाई कहते हैं। एक बाटरीकी ५० एम्प-घंटे समाई हुई, और
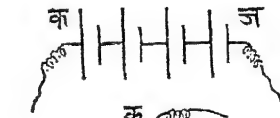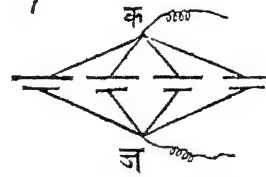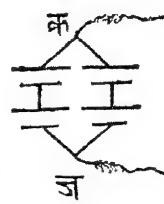
चित्र १०—चार शृङ्खलाबद्ध बाटरियां
चित्र ११—चार बाटरियोंका हार बन्धन
चित्र १२—चार बाटरियोंका हार-शृंखला बंधन

दूसरीकी ३०० एम्प घंटे। यदि समूहमें भिन्न भिन्न समाईवाली बाटरी लगा दी जाएँ तो कोई जल्द ही

खाली हो जायगी और कोई देर में। जो खाली हो जाएँगी उनसे धारा मिलना बंद हो जायगा। वह बाटरियां बेकार हो गयीं अर्थात् समूहमें बाटरियों की संख्या कम हो गयी। अवस्थाभेद भी कम हो जायगा। लम्पका जलना भी बंद हो जायगा। इससे यही नतीजा निकला कि शृंखलामें उन्हीं बाटरियोंको जोड़ना चाहिये जिनमेंसे एक समान धारा ली जा सके और जिनकी एक ही समाई हो। इन बाटरियोंके सिरोंमें एकही अवस्थाभेद होना आवश्यक नहीं है। अवस्था-भेद भिन्न होनेसे बाटरियोंकी संख्यामें भेद पड़ जायगा।

कभी ऐसा भी हो सकता है कि हमारे पास ५ एम्पकी धारा देनेवाली बाटरियां हों और हम-को १० एम्पकी धाराकी आवश्यकता हो तो क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि हमको इन्हीं बाटरियोंसे १० एम्पकी धारा मिल जाय। उपाय अवश्य ही है और वह बाटरियोंको नीचे दी हुई विधिसे जोड़ना है। दो बाटरियां लो। एक-का धनात्मक सिरा दूसरीके धनात्मक सिरेसे और ऋणात्मक सिरा ऋणात्मक सिरेसे जोड़ दो, जैसा चित्र९में दिखलाया गया है। बाटरि-योंके ऐसे जोड़में इन बातोंपर ध्यान आवश्यक है। एक बाटरीका चक्र दूसरी बाटरीमें होकर पूरा हो गया है। पर यदि ऊपरवाली बाटरी धारा बहावे तो नीचेवाली बाटरीमें दाएँसे बाएँ को होती हुई जायगी, और यदि नीचे-वाली बाटरी धारा बहावे तो ऊपरवाली बाटरी-में भी दाएँसे बाएँ को ही बहायेगी, जिससे यह मालूम हो गया कि जिन तारोंसे बाटरियां जुड़ी हुई हैं उनमें धाराओंकी दिशा एक दूसरेके विरुद्ध होगी। इसलिए यदि दोनों बाटरियोंकी धारा बहानेकी शक्ति बराबर हो तो दोनोंमें कोई सी भी धारा न बहा सकेगी। एक बाटरीसे दूसरी बाटरीमें धारा जाना बेफायदा ही है, इसी कारण इस प्रकार जोड़नेके लिए बाटरियां समान विद्युत-संचालक-शक्तिकी होनी चाहिएँ। बाहरी चक्रमें धारा दोनों बाटरियां मिलकर बहावेंगी। इस कारण यदि एक एकसे ५ एम्पकी धारा मिल सकती है तो दोनों मिलकर १० एम्प-की धारा बाहरी चक्रमें बहा सकती हैं। यह बाटरियोंका हार बंधन कहलाता है। इस बातका ध्यान रहे कि इस प्रकारके बंधनमें समूहका अवस्था भेद एक बाटरीके अवस्था भेदके बराबर है, क्योंकि समान अवस्थावाले सिरे ही जोड़े गये हैं।

उन्निद्रता वा नींदका न आना

(Insomnia.)

[ले०—प्रो० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए.]

दिनमें इस समय भी पुरानी चालके रईस ३, ४ घंटे सो लिया करते हैं। इसके बदले रातको नाच-रंग या सैर-सपाटेमें कहीं एक दो बजे तक चारपाईपर जानेकी नौबत आती है। ऐसे लोगोंके विषयमें क्या कहना है, उनका तो जीवन ही आलस्य और निद्रामें बीतता है, परन्तु वकील, डाक्टर, बैरिस्टर तथा दैनिक पत्रोंके सम्पादक इत्यादि कई श्रेणीके मनुष्य जो दिन भर काममें फंसे रहते हैं और इस कारण रातको विश्राम लेनेकी भी जिन्हें बड़ी आवश्यकता होती है, अनेक यत्न करनेपर भी या तो बिलकुल नहीं सो सकते या सोते हैं तो आधी नींद। जहां कोई शब्द हुआ नहीं कि उनकी आखें खुलीं, फिर वह कोट उपाय करें, गहरी नींद नहीं आती।

इससे बड़ा नुकसान होता है, क्योंकि दिनमें जो थकावट होती है वह नींद न लगनेके कारण दूर नहीं होने पाती। रात भर चारपाईपर छट पट करनेके बाद प्रातःकाल शरीर पहलेसे अधिक

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

भारी और तबियत सुस्त मालूम होती है। ज़रा ज़रामें मनुष्य चौंकने लगता है और उससे मस्तिष्कका कोई काम ठीक ठीक नहीं सपर सकता।

साधारणतः देखनेमें आता है कि जब हमारे चित्तमें स्थिरता और शान्ति आती है और मस्तिष्क कुछ शिथिल सा हो जाता है तभी नींद आती है। शारीर विज्ञानका कथन है कि यह दोनों लक्षण तभी देखनेमें आते हैं जब मस्तिष्ककी ओर रुधिर कम पहुंचता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि जिन उपायोंसे हमारे शरीर और मस्तिष्ककी यह अवस्था हो उन्हींसे नींद उचटनेका रोग भी दूर हो सकता है, इसलिए जिन लोगोंको पूरी नींद न आती हो उन्हें चाहिये कि संध्या समय बराबर कोई नियमित काममें सदा एक ही प्रकार लगे रहें और कुछ दिनोंके लिए मिलने मिलानेके अभिप्रायसे बाहर जाना तथा कोई ऐसा काम करना जिससे मनको उद्वेग हो बन्द कर दें। परन्तु अधिक बैठे या लेटे रहनेसे भी रुधिरका संचालन ठीक ठीक नहीं होता, इस कारण इसका ध्यान भी होना चाहिये कि यथोचित व्यायाम इत्यादिका अभ्यास रहे।

कहना असंगत न होगा कि इस विषयमें सभी भारतवासी एक से दोषी होते हैं। विशेषकर जिनको सभ्य और शिक्षित होनेका दावा है वह जहां तक बन पड़ता है जोड़ी-फिटनपर उड़े फिरते हैं, सड़कोंपर साधारण मनुष्योंके बीच पांव पांव चलना एक अपमान समझते हैं। वैसे कोई उपयोगी शारीरिक परिश्रमका काम भी जहां तक होता है थोड़ा करते हैं। टेनिस, बैडमिन्टन इत्यादि सभ्य खेलोंके द्वारा कसरतका जो बहाना होता है उससे भी बदन ढीलाका ढीला ही रह जाता है।

जिन्हें नींदकी कमीकी कुछ भी शिकायत हो वह संध्या समय यदि उष्ण जलसे विधिपूर्वक स्नान किया करें तो नींद न लगनेका रोग शीघ्र छूट जाता है।

यह स्नान एक ऐसे बन्द कमरेमें करते हैं, जिसमें वायुका तापमान ६५° और ७०° फाके बीच हो। रोगी झुककर टबमें अपना शिर और मुंह कमसे कम १००° फा तकके गरम जलमें डुबोता है। वायुके स्पर्शसे शरीर जब ठंडा हो जाता है और शिरपर गरम जल छोड़ने और मलनेसे वेगके साथ रुधिर मस्तिष्ककी ओर दौड़ता है उस समय शिरसे नीचेका भाग पहले तो ९८° गरम पानीमें और फिर थोड़ी देर पीछे १०५° या ११०° तक उष्ण जलमें ५,७ मिनट भिगोना होता है। इसके पश्चात् एक कम्बल ओढ़ धीरेसे बदन पोंछकर रोगी सोनेका वस्त्र पहिर लेता है और चारपाईपर लेट जाता है। इतनेमें कोई नौकर वा घरका आदमी उसके पैरके तलवोंपर गरम पानीसे भरी बोतल रख देता है। इसके अनन्तर थोड़ा सा गरम दूध वा शोरबा पीनेको दिया जाता है। प्रायः इससे रोगीको बड़ा आराम मालूम होने लगता है और वह बड़ी मधुर सुख-नींदमें डूब जाता है।

दूसरा उपाय नींद बुलानेका यह है कि रोगी बिस्तरपर बोतलोंमें गरम पानी भरकर रखले और सोते समय ऐसा लेटे जिसमें गरदनके पीछेका भाग बोतलोंके ऊपर ठहरे। इससे भी रुधिरका प्रवाह मस्तिष्ककी ओर अधिक न जाकर गरदनकी तरफ लौट पड़ता है। मस्तिष्क हलका मालूम होने लगता है और थोड़ी देरमें अच्छी नींद आ जाती है। इसमें सिद्धान्त इतना ही है कि उष्णता पहुंचाकर जब किसी विशेष अंगमें रुधिरकी चाल तेज़ कर दी जाती है तो शरीरमें रुधिरका वही परिमाण होते हुए भी उसकी गति शेष अंगोंमें धीमी हो जाती है और वह सुस्त पड़ जाता है। इसी नियमके अनुसार जब कभी केवल गरदनके नीचे गरम पानीकी बोतल रखनेसे काम नहीं चलता तो सारे शरीरको कम्बल, लिहाफ

इत्यादि गरम वस्त्रसे खूब लपेटते हैं। इस क्रियासे मस्तिष्कको छोड़कर बाकी बदनको ओर बड़े ज़ोरसे लहू आने जाने लगता है। इन हिस्सोंमें लहूकी चालका वेग इतना बढ़ जाता है कि धमनियां फूल उठती हैं, या यों कहिये कि शरीर भरमें चमड़ेके नीचे नीचे लहूसे तनाव आ जाता है। उस समय दिमाग़ लहूसे खाली हो जाता है और झट नींद लग आती है।

जिन लोगोंको अच्छी नींद नहीं लगती उन्हें चाहिये कि रातका भोजन जान बूझकर हलका करें परन्तु करें अवश्य। इससे आमाशयकी ओर थोड़ा थोड़ा रुधिरका प्रवाह होने लगता है और मस्तिष्क सूना पड़ जाता है। रोगी वा निर्बल मनुष्यके लिए इतनेसे ही पूरी नींद आने लगती है।

यह स्पष्ट है कि रातको कोई कड़ी चीज़ तथा अन्दाज़से ज़्यादा खा लेनेसे पेटपर बहुत बोझ पड़ जाता है और वहांपर सड़ायन होने लगती है, जिससे स्वास्थ्य तो बिगड़ता ही है, ऊपरसे, बहुत बुरे और भयावने स्वप्न देखनेमें आते हैं, जिनके कारण गाढ़ी नींद नहीं आती।

दूसरी बात स्मरण रखने योग्य यह है कि जिस समय आमाशय और आंतोंमें सड़ा अन्न या मल भर जाता है उस समय छाती और दोनों ओरकी पसलियोंके बीचकी हड्डी (diaphragm) दबावके कारण ऊपर उठ जाती है और उससे फेफड़ोंको साधारणतः फैलनेके लिए जितनी जगह मिलनी चाहिये उतनी नहीं मिलती। यहां तक कि एक साहबने इस बातकी जाँच करके हिसाब लगाया है कि पेटके अन्दर २४ घन इंच कोई तरल पदार्थ छोड़नेपर फेफड़ोंको जगहकी तंगीके मारे १ घन इंच सिकुड़ जाना होता है। दूसरे वैज्ञानिक महाशयने इसीके साथ यह भी सिद्ध कर दिया है कि स्वस्थ मनुष्य जब जुल्लाब लेता है तब फेफड़ों का आयतन आप ही आप बढ़ जाता है। यहाँपर अब इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि फेफड़ोंके विस्तार और निद्रासे बड़ा गहरा सम्बन्ध है और वह इस तरह कि जब फेफड़े दबकर सिकुड़ जाते हैं तो उनके द्वारा बाहरके वायुमण्डलसे औक्सीजन जितने परिमाणमें खिंचकर शरीरमें पहले घुलता था फिर उतना नहीं घुलता। और यह एक मानी बात है कि निद्रावस्थामें ही देह दिन रातकी जरूरत भर औक्सीजन संचय करती है। जहां इसमें विघ्न आया कि समझिये शरीरकी पुष्टिमें गड़बड़ी आयी और उसके सभी अंग निर्बल पड़ गये। बस स्पष्ट है कि जब तक पेट साफ़ नहीं रखा जाता अच्छी नींद नहीं हो सकती। यदि थोड़ी बहुत तन्द्रा सी हुई भी तो उससे मनुष्यको फुरती वा ताज़गी नहीं प्राप्त होती।

संक्षेपमें, अच्छी नींद लानेके लिए नीचे लिखे नियमोंपर चलना चाहिये।

(१) यदि शरीरमें रुधिर कम होने और निर्बलताके कारण नींद नहीं आती हो तो पुष्ट भोजन और व्यायाम इत्यादिसे पहले उसकी चिकित्सा कीजिये।

(२) पाचन शक्तिकी गड़बड़ीसे नींदका रोग हो तो संझाका भोजन करनेके बाद तुरंत ही न सो जाइये। कमसे कम २ घंटेका अंतर दीजिये।

(३) दिनमें घूमने, फिरने और हलकी कसरत आदिसे शरीरमें कुछ थकान लाइये।

(४) रातको उपन्यास इत्यादि कोई अत्यंत रोचक पुस्तक न पढ़िये। ताश, शतरंज, पच्चीसी खेलने और नाटक, रहस देखनेकी बान छोड़िये।

(५) भूलेसे भी रातको चाय, काफी न पीजिये।

(६) सोनेके पहले बहस्, दलील न कीजिये। तबियतमें रंज न लाइये। किसीपर चिढ़ने और गुस्सा करनेसे भी बचिये।

(७) रातको बीचमें नींद खुलनेपर थोड़ा गरम दूध, एक या दो मठरी वा बिस्कुट खा लीजिये।

(८) सोनेका कमरा गरम न होने पाये।

(९) चारपाईपर पड़े रहनेसे भी आंखें न लगें तो मन ही मन बहते स्रोत वा झरनेका शब्द, मधुमक्खियोंकी भनभनाहट, नदीकी धारामें नावकी चाल, खेतोंमें हवाके झकोरोंसे जौ, गेहूं वा धानकी फसलके हिलनेपर बार बार ध्यान कीजिये। तकियेके नीचे धरी हुई घड़ीकी खुट खुराहटपर मन ठहरानेसे भी नींद आ जाती है।

(१०) मेदा कमज़ोर हो तो हलका जुलाव ले लेनेसे भी नींद लगती है।

भूमिके जीवाणु

[ले०—प्रोफेसर तेजशङ्कर कोचक, बी. ए. एस- सी.]

धरतीमें तरह तरहके जीवाणु होते हैं, जो बहुत करके ऊपरकी दो फुट मट्टीमें ही पाये जाते हैं। छः फुट नीचे इनकी संख्या बहुत कम हो जाती है और दस फुट नीचे अर्थात् चुवान तक पहुंचनेमें बिलकुल नहीं रहते। इसका कारण यह है कि जो पानी ऊपरसे रिसकर जाता है उसमेंसे मट्टीकी ऊपरी परतें जीवाणु छान लेती हैं। कितनी मट्टीमें कितने जीवाणु होते हैं, इसका कुछ ठीक नहीं है, पन्द्रह ग्रेन मट्टीमें दस हज़ारसे लेकर दस करोड़ तक जीवाणु मिले हैं। नौतोड़ ज़मीनमें, जो कभी जोती बोई नहीं गई है,काश्त की गई धरतीकी अपेक्षा, बहुत कम जीवाणु होते हैं और उन ज़मीनोंकी अपेक्षा जिनपर खेती किसानी हो रही है, शहरोंकी भूमिमें बहुत जीवाणु होते हैं। जिस धरतीमें जितनी ही खाद पांस दी जाती है और जितनी ज़्यादा गुड़ाई जोताई होती है, जीवाणुओंकी संख्या उतनी ही अधिक हो जाती है। सबसे अधिक जीवाणु भूमिमें जुलाई और अगस्तमें मिलते हैं। मुख्य बात यह है कि भूमिमें जितना अधिक अंश जैव पदार्थोंका (जो पेड़ों या पशुओंसे प्राप्त होते हैं, जैसे गोबर, पत्ती आदि) होता है उतने ही अधिक जीवाणु उसमें पाये जाते हैं। भूमिके जीवाणुओंकी जांच करनेकी एक सीधी सादी रीति है, पर एक बातका यहां ध्यान रखना पड़ता है। भूमिमें (aerolic and anaerolic) वायव और अवायव दो प्रकारके जीवाणु होते हैं। इस कारण इनका पालन दो प्रकारसे होता है। वायव जीवाणु वह हैं जो वायुमण्डलमें साधारण दशामें पल सकते हैं और अवायव जीवाणु वह हैं जिनके पालनमें वायु हानिकारक होती है। अवायव जीवाणु पालनेकी बहुत सी रीति हैं, जिनमेंसे दो यह हैं—

Bacteriology जीवाणु शास्त्र]

१—एक कुप्पीमें इनका आहार रखकर टीका लगा देते हैं (inoculate) और फिर उज्जन कुप्पीमें भर देते हैं।
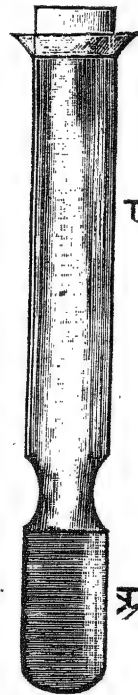
चित्र १३

२—जैसा चित्र १३ में दिखाया गया है एक परख नली लेकर, इसके अ भागमें एक हिस्सा पैरागेलिक अम्ल, पांच हिस्से पानी और एक हिस्सा कास्टिक पोटास (दाहक पोटास) भर देते हैं। फिर एक तालपर जिलाटीन रख कर जिलाटीनको टीका लगाते हैं और तालको प भागमें खड़ा करके परख नलीमें काग लगा देते हैं। इसके पश्चात् पालन यंत्रमें रखकर अवायव जीवाणुओंकी वृद्धि कर ली जाती है।

भूमिमें जीवाणु कई जातिके होते हैं, जिनको कि हम पांच वर्णमें रख सकते हैं—

(१) अनत्रीकर जीवाणु—इनके द्वारा भूमिमें शोरेका अंश नष्ट हो जाता है और सड़ना गलना बहुत कुछ इनके द्वारा होता है।

(२) नत्रीकर जीवाणु—इनके द्वारा भूमिमें शोरेका अंश उत्पन्न होता है।

(३) नत्रजन जीवाणु—इनके द्वारा फलीदार पौदों अर्थात् उरद, मूंग, चना, लोबिया, सनई इत्यादिकी जड़ें वायुमण्डलसे नत्रजन ग्रहण करती हैं।

(४) रोगके जीवाणु।

(५) बहुरूपिये जीवाणु।

हम यहांपर यह मान लेते हैं कि पाठकगण केमिस्ट्री अर्थात् रसायन शास्त्र जानते हैं।

वृक्ष, पशु और मनुष्योंको अपने आहारकेलिए जल, खनिजपदार्थ और गैसोंकी आवश्यकता होती है। मनुष्य और पशुओंको खनिज पदार्थोंके अतिरिक्त मांस और साग इत्यादिकी भी आवश्यकता होती है। वृक्षोंको जल द्वारा एक प्रकारका आहार मिलता है और खनिज पदार्थ केवल जलमें घुलकर वृक्षोंके आहारके योग्य होते हैं। इसके अतिरिक्त उज्जन और ओषजन गैस भी जलसे वृक्षोंको मिलती हैं। खनिज पदार्थोंमें जिन मुख्य तत्त्वोंकी वृक्षोंको आवश्यकता होती है, यह हैं-पोटासियम, मैगनीसियम, खटिक, लोहा, फास्फोरस, गंधक।

पोटासियम, मैगनीसियम, कैलसियम केवल नत्रेत, फास्फेत, और कर्बनेतके रूपमें वृक्ष ग्रहण करते हैं। लोहेके कारण वृक्षोंकी हरियाली होती है। फास्फोरस और गंधक वृक्षोंमें न्यूकिलियस और अलबूमेन बनाते हैं। उपरोक्त तत्त्वोंके अतिरिक्त सिलाकन, सोडियम, क्लोरीन, आयोडीन, ब्रोमीन, इत्यादि भी कुछ थोड़ी सी मात्रामें ज़रूरी हैं।

गैसें, जिनकी वृक्षोंको आवश्यकता होती है, चार हैं:—

कर्बनद्विओषिद, ओषजन, उज्जन, और नत्रजन। सूर्यके प्रकाशमें वृक्षोंका हरा भाग कर्बनद्विओषिदसे कर्बन ग्रहण कर लेता है। वृक्ष जड़ों और पत्तियोंके द्वारा ओषजन ग्रहण करते हैं। नत्रजनकी तो लीला ही विचित्र है। वृक्षोंके ग्रहण करनेके योग्य होनेके पहले जो जो रूप यह पलटती है, उनका जानना परमावश्यक है।

वायु मंडलमें पांच हिस्से वायुमें चार हिस्से नत्रजन है—पर पेड़ इसको वायुसे लेकर ग्रहण नहीं कर सकते। यह वृक्षोंके काम तभी आसकती है, जबयह शोरेके रूपमें हो। शोरेका रूप यह इस प्रकारसे धारण करती है:-जब बादल गरजता है और बिजली चमकतीहै तब वायुकी नत्रजन और ओषजन मिलकर और जलकी भाप में गलकर नत्रिक अम्ल बना लेती हैं। यह अम्ल वर्षाके पानीके साथ पृथ्वीपर गिरकर भूमिके खनिज पदार्थोंसे मिलकर शोरा बनाता है। परन्तु इस प्रकार पैदा हुए शोरेकी मात्रा इतनी थोड़ी होती है कि केवल इसीके आधारपर पृथ्वीपर वृक्ष जीवित नहीं रह सकते। हम आगे चलकर बतलायेंगे कि अधिकांश शोरेकी मात्रा जीवाणुओंके द्वारा भूमिमें उत्पन्न होती है। पशु, पक्षी और मनुष्य वनस्पतिका आहार करके नत्रजनका अंश ग्रहण करते हैं। इनके मल, मूत्र या इनके मृतक शरीर जब गलते या सड़ते हैं तो उसी नत्रजनसे, जीवाणुओंकी सहायतासे, अमोनिया या शोरा पैदा होता है, जो वृक्षोंकी वृद्धिमें और स्थितिमें काम आता है और अन्तमें पशु, पक्षी और मनुष्यके लिए उपयोगी होता है।

फलीदार वृक्ष, जैसे उरद, मूंग, अरहर, लोबिया, सेम, मटर चना सनई इत्यादि जिस भूमिमें नत्रेत (शोरा आदि) या अमोनिया न हो उस भूमिपर भी बोये जा सकते हैं, परन्तु और कोई जातिके पेड़ ऐसी भूमिपर नहीं उगते। इसका अर्थ यह हुआ कि फलीदार पेड़ वायु मंडल-

को नत्रजन किसी प्रकारसे ग्रहण करनेकी शक्ति रखते हैं। यह कैसे होता है हम आगे चलकर

चित्र १४—मटरकी जड़। जो गोल दाने से दीखते हैं, वही नत्रजन जीवाणु के घर हैं।

बतलायँगे। वृक्ष भूमिमेंसे केवल खनिज पदार्थ ग्रहण करके शक्कर, तेल, माड़, निशास्ता इत्यादि बनाते हैं, पर मनुष्य और पशु और पक्षी इनको भूमिसे खनिज पदार्थ ग्रहण करके नहीं बना सकते। यह वृक्षोंका बनाया हुआ माल अपने काममें लाते हैं और इनका आहार करके, कुछ काल तक इनसे शरीरमें काम ले कर त्याग देते हैं और जल, कर्बनद्विओषिद और नत्रजनके यौगिकोंके रूपमें लौटा देते हैं। नत्रजनके यौगिक भूमिमें पहुंचनेपर वृक्षोंके आहारके योग्य नहीं होते, जब तक कि जीवाणुओंके द्वारा संशोधित होकर यह फिर शोरे और खनिज पदार्थोंका रूप धारण नहीं कर लेते। जीवाणुओंके द्वारा परिवर्तन कैसे होते हैं वह अब हम बतलाते हैं।

अनत्रीकर जीवाणु

हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि जब पशु और मनुष्यका मल, मूत्र अथवा शव मट्टीमें डालदिया जाता है तो गलना, सड़ना शुरु हो जाता है। अनत्रीकर जीवाणुओंके द्वारा इनमें परिवर्तन होता है। इन जीवाणुओंकी कई जाति हैं। हरएक जातिके जीवाणु अलग अलग काम करते हैं। यह जीवाणु खेतकी मट्टीमें, मोरियोंकी कीचड़में और खाद पांसमें मिलते हैं। इन पदार्थोंमें उक्त जीवाणु वायुके द्वारा पहुंच जाते हैं। यदि मट्टी कीचड़, खाद, पांस आदिमें कोई ऐसा विष डाल दिया जाय जो इन जीवाणुओंको मार दे तो गलना सड़ना बंद हो जायगा। मैंने स्वयम् परीक्षा करनेकेलिए बहुत से बर्तनोंमें अलग अलग मट्टी भर दी और एक एक टुकड़ा हरे अरहरका उनमें दबा दिया। साधारण रीतिसे पानीसे यह बर्तन सींच दिये जाते थे, पर इनमेंसे एक बर्तन मरकरी लोशनसे सींचा जाता था। दो वर्षमें अरहरके टुकड़े लगभग सब बर्तनोंमें सड़ गये और मट्टीमें मिल गये, परन्तु जो बर्तन मरकरी लोशनसे सींचा जाता था उसमें अरहरके टुकड़ेमें बहुत ही कम परिवर्तन हुआ। इसका कारण यह है कि इस बर्तनमें मरकरी लोशनने जीवाणुओंको जीवित नहीं रखा। अनत्रीकर जीवाणुओंकी एक जाति नत्रजनके यौगिकोंको सड़ा कर नत्रित (nitrites) बनाती है और दूसरी नत्रितोंको नत्रजनमें बदल देती है। नत्रजन उड़कर वायुमें मिलजाती है। पस इस प्रकारसे भूमिका शोरा कम हो जाता है और भूमिमें उपजाऊ शक्ति नहीं रहती। अनत्रीकर जीवाणुओंके कामकेलिए निम्नलिखित बातोंका होना आवश्यक है।

१—मुख्य जातिके जीवाणुओंका भूमिमें होना।
२—शोरे और जैवअंशका भूमिमें होना।
३—वायुका अधिक प्रवेश न होना।
४—नमी और साधारण तापका होना।

(शेष आगे)

हिन्दी साहित्यमें युगान्तर उपस्थित करनेवाली

" नवजीवन-ग्रन्थमाला "

तथा

" नवजीवन-निबन्धमाला "

इस समय हिन्दी में ग्रन्थमालाओं की कमी नहीं है। जिस प्रकार से थोड़े ही दिन हुये सामयिक पत्रों की बरसाती जीवों की तरह सृष्टि हुई थी, उसी प्रकार से आजकल ग्रन्थमालाओं के विज्ञापन चारों ओर से निकल रहे हैं। किन्तु यदि हमें सत्य सत्य कहने की आज्ञा दी जाय तो हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि २, ३ ग्रन्थमालाओं को छोड़कर शेष ग्रन्थ-मालायें सिवाय संख्या वृद्धि के हिन्दी साहित्य का और कोई विशेष उपकार नहीं कर रही हैं। इनकी भी वही दशा होगी जो कि क्षणिक उत्साह के साथ निकाले हुये सामयिक पत्रों की थोड़े ही दिन हुये हो चुकी है। आज कल इस घोर महंगाई के समय में जब कि न केवल छपाई और काग़ज़ का भाव ही बहुत चढ़गया है वरन् बाज़ार में तिगुने चौगुने दाम देकर भी इच्छानुसार चीज़ का मिलना क़रीब क़रीब असंभव हो रहा है, पुस्तक प्रकाशन और विशेष रूप से हिन्दी में पुस्तक प्रकाशन का काम करना जहां पर कि अच्छी पुस्तकों की बिक्री अति न्यून होती है हर किसीका काम नहीं है। बिना पर्याप्त स्थायी प्रबन्ध हुये जो व्यक्ति कार्य्य प्रारंभ कर देते हैं उन के साहस की प्रशंसा करनेके सिवाय और क्या कहा जासकता है। इसके सिवाय राष्ट्रभाषा की उन्नति और प्रसार करने तथा उसके गौरव और महत्व बढ़ाने के लिये गम्भीर विचार युक्त और महत्व पूर्ण मौलिक ग्रन्थों की आवश्यकत्ता है। इसी अभाव की किसी हद तक पूर्ति करने के लिये दीर्घ समयके विचार पश्चात् हमने " **नवजीवन--ग्रन्थमाला** " का आरंभ किया है। इस " **ग्रन्थमाला** " के ग्रन्थों के लेखक अपने अपने विषयों के पंडित होंगे। प्रत्येक विषय की पुस्तक का चुनाव बड़ी सावधानी के साथ किया जायगा। पुस्तकें अधिकांश मौलिक ही प्रकाशित की जायंगी। कोई भी पुस्तक १०० पृष्ठों से कम नहीं होगी, सब पुस्तकों की साईज़-आकार--एकसाही, डब्ल क्राऊन १६ पेजी रहेगा। हमारा उद्देश्य छोटी बड़ी, महत्वपूर्ण और साधारण सभी तरह की पुस्तकें प्रकाशित करके संख्या बढ़ाना कदापि नहीं है। हमने यह प्रयत्न राष्ट्रभाषा हिन्दीके द्वारा केवल राष्ट्रीयभावों के प्रचारार्थ ही प्रारंभ किया है।

इसके साथ ही हमारा निश्चय है कि हम " **नवजीवन-निबंधमाला** " भी प्रकाशित करेंगे। इस माला में वह उपयोगी और महत्व पूर्ण सौ, सौ; डेढ़ डेढ़ सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित की जायंगी जिन्हें कि कम पृष्ठों की होने के कारण ग्रन्थमाला में प्रकाशित नहीं किया जायगा। इस निबन्धमाला में भी एक से एक महत्व पूर्ण और उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित होंगी; इन पुस्तकों की उपयोग्यता इनके देखने से ही प्रगट होगी। हमने निश्चय किया है कि "**नवजीवन-ग्रंथमाला**" के ग्राहकोंको जो आठ आना प्रवेश शुल्क देकर स्थायी ग्राहक बनेंगे उन्हें " **नवजीवन-निबंधमाला**" की प्रत्येक पुस्तक सर्वथा बिना मूल्य भेन्ट दी जायगी। **ग्रंथमाला** के प्रत्येक ग्रन्थ के साथ **निबंधमाला** की भी एक पुस्तक भेज दी जाया करेगी। दोनों मालाओं के ग्रन्थ भी एक ही साथ छपा करेंगे। स्थायी ग्राहकों को, उनके स्थायी ग्राहक हो जाने के बाद जितने ग्रन्थ छपेंगे वह सब ही लेना आवश्यक होगा। पहिले छपे ग्रन्थ लेना या न लेना उनकी इच्छा पर निर्भर है। अनुमानतः वर्षभर में छः और आठ रुपये के दर्मियान मूल्य के दो या तीन अथवा चार या पांच ग्रन्थ प्रकाशित हुआ करेंगे। किसीके स्थायी ग्राहक न रहनेपर उनकी भेजी आठ आना प्रवेश फ़ी लौटाई कदापि नहीं जायगी। प्रवेश शुल्क मनीआर्डर या आध आध आने अथवा एक एक आने वाले टिकिटों के द्वारा भेजना चाहिये।

हमें पूर्ण आशा ही नहीं, किन्तु दृढ़ विश्वास है कि आप इस **ग्रन्थमाला** के स्थायी ग्राहक बनकर और अपनी गुणग्राहकता तथा विवेकबुद्धि का परिचय देकर हमें उत्साहित करेंगे कि हम राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के साथ साथ ही देश में राष्ट्रीय भावों का प्रचार भी कर सकें। जैसा कि हमें दृढ़ विश्वास है—यदि हिन्दी साहित्य प्रेमियोंने हमारी सेवाका कुछ भी आदर किया तो हम कितने ही अनुपम ग्रन्थ रत्नों को प्रकाशित करके आप की सेवा में शीघ्र ही उपस्थित कर सकेंगे।

ऐसा भी शुभ समय कभी हम देख सकेंगे—जब हिन्दी साहित्य समुन्नत लेख सकेंगे।
आओ, इसके लिए करें हम यत्न हृदय से, डरें न हरगिज़ कभी कोटि विघ्नोंके भय से, [मैथ० गु०]

विनम्र निवेदक, आपका चिर परिचित

द्वारिका प्रसाद सेवक—
सरस्वती-सदन, इन्दौर (मध्यभारत)

"नवजीवन-ग्रन्थमाला"

प्रथम, अनुपम और अद्वितीय ग्रन्थ 'एक भारतीय हृदय' द्वारा लिखित

प्रवासी भारतवासी

(प्रकाशित हो गया)

यह पुस्तक एक ऐसे 'भारतीय हृदय' की लिखी हुई है, जिसने कि प्रवासी भारतवासियों के इतिहास और प्रश्नों का कठिन परिश्रम के साथ अच्छी तरह अध्ययन व मनन किया है। इस पुस्तकके पढ़ने से आपको ज्ञात हो जायगा कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने विदेशों में कहां कहां भारतीय उपनिवेश स्थापित किये थे और उस समय विदेशी लोग भारतियों को किस सम्मान की दृष्टि से देखते थे। प्रवासी भाईयों के विषय में ऐसी पुस्तक हिन्दी में तो क्या, भारत की किसी भी भाषामें नहीं निकली है। प्रवासी भाईयों की दुर्दशा का हाल पढ़कर कठोर से कठोर हृदय भी पसीज जायगा। प्रवासी भगिनियों की दुर्गति को पढ़कर आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगेगी। आरकाटियों की पोलें इस में बड़े सुदृढ़ प्रमाणों के द्वारा खोली गई हैं और कुली प्रथा के दोष इसमें बड़ी खूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

फ़िजी, ट्रिनीडाड, ब्रिटिश गायना, डच गायना, जमेका, मोरीशस, सुमात्रा, मलाया, दक्षिण अफ्रिका, कनाडा, अमेरिका आदि में भारतवासियों की क्या दशा है-यदि यह जानना हो तो यह पुस्तक अवश्य ही पढ़िये। प्रवासी भाईयों की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति कैसी है-यदि इस विषय में कुछ भी जाननेकी इच्छा आप के हृदय में है तो यह पुस्तक आपको अवश्य ही पढ़नी चाहिये। प्रवासी भाईयों की धार्मिक उन्नति के लिये अब तक क्या क्या प्रयत्न किये गये हैं और अब क्या क्या प्रयत्न होने चाहिये-इन बातोंके जानने के लिये यह पुस्तक अति आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य्य भी है।

इस पुस्तक की 'भूमिका' सुप्रसिद्ध भारत हितैषी मि. सी. एफ़. एण्ड्रूज़ एम. ए. ने-लिखी है। 'प्रस्तावना' "भारत मित्र" के विद्वान् सम्पादक श्री पंडित अम्बिका प्रसाद जी वाजपेयी ने लिखी है और फ़िजी प्रवासी सुप्रसिद्ध पंडित तोतारामजी सनाढ्य ने 'चार शब्द' लिखे हैं। इससे अधिक इस पुस्तक की उपयोग्यताके लिये और क्या कहा जा सकता है। आप एक सरसरी नज़र से ही पढ़ने से इसका महत्व समझ जायंगे।

यह अपने विषय की 'अप टू डेट' पुस्तक है

भारत माता के प्रत्येक सेवक को यह पुस्तक एक बार अवश्य ही पढ़नी चाहिये। इस काग़ज़ और छपाई की असाधारण महंगाई के समय में बढ़िया छपाई के लगभग साढ़े सात सौ पृष्ठों की, ८ हाफटोन सुन्दर चित्रों से सुसज्जित, स्वर्णाङ्कित दर्शनीय बाईन्डिङ्ग के साथ लेखक और प्रकाशक के कठिन परिश्रम तथा धन व्यय के सामने इस अपूर्व और वृहद् महत्व पूर्ण ग्रन्थ का मूल्य भारत में ४।) रु० और विदेशों में ७ शिलिंग या ४॥।-) कुछ भी नहीं है।

वीर सत्याग्रही, दक्षिण अफ्रिका प्रवासी, श्रीयुत भवानी दयाल जी लिखित

'नवजीवन-निबन्धमाला' की प्रथम, सचित्र, पुस्तक

हमारी कारावास कहानी

भी प्रकाशित हो गई है, जो कि 'नवजीवन-ग्रन्थमाला' के स्थायी ग्रहकों को सर्वथा बिना मूल्य दी जाती है। अन्यों के लिये मूल्य ॥) है।

आठ आना भेजकर शीघ्र ही 'ग्रंथमाला' के स्थायी ग्राहक बनिये।

व्यवस्थापक—सरस्वती-सदन, इन्दौर (मध्य भारत)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ४४ Reg. No. A- 708

भाग ८ वृश्चिक १९७५ । नवम्बर १९१८ संख्या २

Vol. VIII. No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३ ।] एक प्रतिका मूल्य ।]

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,

Telegram to be addressed thus :—
"DR. BHARGAVA", ALLAHABAD.

Ladies and Gentlemen desirous of gaining my advice in any case of Diseases, whether Acute or Chronic, should give a plain statement of their afflictions, when contracted, the present symptoms, &c., in fact everything should be made known to me precisely as would occur by personal interview.

All Letters will be treated as strictly Private and Confidential.

Invalids, on a visit to Allahabad, may call on me whenever convenient.

Office Hours, 6 to 8 in the morning and 4 to 5 in the Evening.

ADDRESS :—

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,
235, BAHADURGANJ, ALLAHABAD, U. P.
or VIJNANA CHARITABLE DISPENSARY,
626, *Katra*, *Allahabad*.

बच्चा

[लें० कप्तान कुरेशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम० ए.]

देशभक्तो! आपको मालूम है कि सं० १६११ में ६१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८$\frac{3}{4}$ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये। इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी। अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है।

अनुवादकको पंजाब के छोटे लाठ ने १००) इनाम दिया है।

पुस्तकका मूल्य १), विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥=) में मिलेगी।

मंगानेका पताः—

प्रोफ़ेसर करमनारायण,
एम. एस-सी.,
ज्योर्ज टौन, प्रयाग।

विज्ञानसे

विद्यार्थियोंको सुभोता

जो विद्यार्थी विज्ञानके छः ग्राहक बनाकर उनके चन्देके १८) भिजवा देंगे उनके नाम साल भर विज्ञान बिना मूल्य जायगा और उस वर्ष छपनेवाली किसी पुस्तकको बिना मूल्य पानेका उसे अधिकार होगा।

विज्ञानकी ग्राहक संख्या बढ़ाना वास्तवमें विद्याका प्रचार करना और हिन्दी भाषियोंका आनन्द बढ़ाना है। इसमें विद्यार्थियोंको यत्नवान होना दूने लाभका कारण है।

—मंत्री, विज्ञानपरिषद्।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ८ } वृश्चिक, संवत् १९७५ । नवम्बर, सन् १९१८ । { संख्या २

मंगलाचरण

जय कर्मण्य किसान, सर्व-जग-धन्य-मान्यवर
जयति सर्व-सामान्य-प्रवर, पुंवर, वदान्यवर
जय जीवन-सुख-सिद्धि-विविध-सुविधा-विधान-कर
जय धन - धान्य-समृद्धि-सम्पदा-सम्प्रदान-कर
जय प्रसव-ज्ञान-पार्थिव प्रगट अज्ञ-प्रजा-मन-मुग्ध-कर
जय जयति प्राथमिक भू-प्रभू, भू-विज्ञान-विदग्ध-वर

श्रीपद्म कोट, प्रयाग, १०-७-७५ } —श्रीधर पाठक।

उच्च शिक्षा और स्वास्थ्यहानि

[ले०—अध्या० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए.]

भारतवर्षमें उच्च शिक्षाकी निन्दा करनेवाले कई एक वर्गके हैं। कृपण, रक्षण-शील, अदूरदर्शी, पुरातनी, खट्टे-अंगूर-कौन-खाय-कहनेवाले तथा निपट अनाड़ी हिन्दुस्तानियोंके सदाके लिए मा-बाप बननेवाले ज़मींदार इत्यादि इत्यादि। यही कारण है कि जब हम किसीके आक्षेपपर कान देने लगें तो यह ज़रूर सोच लें कि हमारी शिक्षा पद्धतिके छिद्र बतानेवाले तथा विश्व-विद्यालयोंसे निकले हुए उपाधि-धारियोंको जली-कटी कहनेवाले यह कौनसे स्वार्थशून्य महाशय हैं। यदि वह वास्तवमें निष्पक्ष कहनेवाले हैं तो कोई भय नहीं है। उनसे कुछ तत्वकी बात ज़रूर मिलेगी। उनकी आलोचनाएँ शिरोधार्य हैं।

अब वर्तमान समयमें इस प्रकार उच्च शिक्षा-

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

का प्रसार कहां तक मंगलजनक हुआ है और कहां तक अमंगलजनक, इस सूत्रमें जितने ही विचार उपस्थित हुए हैं उनमें उच्च शिक्षाके विरुद्ध दो बड़ी ही दृढ और महत्व रखनेवाली आपत्तियाँ हैं। एक तो यह कि वर्तमान शिक्षा हमारे प्राचीन जातीय संस्कारोंको पृथक् छोड़ देती है और दूसरी यह कि इसके अनुशीलनमें नवयुवकोंकी शारीरिक अवस्था बहुत ही शोचनीय हो जाती है। हम मानते हैं कि यह कोई साधारण अड़चनें नहीं हैं, परन्तु विचारनेका स्थल है कि इन्हीं दो विपात्तयोंके कारण क्या उच्च शिक्षाका ही तिरस्कार करना बुद्धिमानीका काम है?

आपने कहावत सुनी होगी कि किसीके सोना छूते मिट्टी होती है और किसीके मिट्टी छूते सोना। यह संभव ही नहीं, एक अनुभव गत बात भी है, कि हिन्दुस्तानियोंको स्कूल कौलेजसे जो अनिष्ट और अपकार होता है वह उन संस्थाओंके दोषसे नहीं, वरन् अपने चरित्रकी त्रुटियोंके मारे। यदि हम अपने स्वभाव और अभ्यासका संशोधन न करें और उलटे उच्च शिक्षाको बुराई करने लगें तो इससे बढ़कर भूल क्या होगी?

हम मानते हैं कि अभी तक भारतवर्षमें उच्च शिक्षाका दृश्य और प्रत्यक्ष फल बहुत उत्साहजनक नहीं हुआ है। इसके अनेक कारण हैं, परन्तु मेरा मत है कि भविष्यमें यदि इस देशमें इस शिक्षाके प्रसारकी गति मन्द होगी वा किसी समय यदि हमारे विचारशील देश सेवकोंका भी इस परसे सर्वथा विश्वास उठ जायगा तो केवल शिक्षित नवयुवकोंकी शारीरिक हीनता देखकर। यह कुछ असंभव बात नहीं है। अब भी हमारे कितने ही सुयोग्य परन्तु अधीर मित्र कह डालते हैं—"मैं तो अपने लड़कोंको स्कूल कौलेजके कोल्हूमें न पेरूंगा। धुरन्धर विद्वान न सही, शरीरसे तो सुखी रहेगा।"

यह कितनी भयानक बात है कि शारीरिक ह्रास और उच्च शिक्षाको लोग एक समझने लगे हैं, परन्तु आजकलके नवयुवकोंकी अस्थि और पेशी देखकर लोग और क्या कह सकते हैं? कौलेज और यूनीवर्सिटी क्या है? अजीर्ण और उन्मादका सीधा रास्ता। ईश्वर! ईश्वर! यह अन्धेर!

परन्तु इसमें सचमुच कोई भ्रम है तो इस समय प्रत्येक शिक्षित भारतवासी इस भ्रमको अपने प्रतिदिनके जीवन और व्यवहार द्वारा निर्मूल साबित करें और यह दिखलावें कि उच्च कोटिकी शिक्षा पानेपर भी आदमी हट्टा कट्टा रह सकता है। दिमाग़के तेज़ होनेपर यह ज़रूरी नहीं है कि उसके पुट्ठे ढोले पड़ जायं। बी. ए., एम. ए, का पुछल्ला लग जानेसे ही आदमीकी खुराक नहीं कम हो जाती। वक्तृता देनेवाले या अख़बारके एडीटर भी अवसर पड़नेपर अपनी मन डेढ़ मनकी गठरी ढो स ते हैं। यह भी नियम नहीं कि मार्गमें प्रोफ़ेसर और अध्यापककी आँखोंकी ऐनक टूट जाय तो उस दिन वह अपने घर लौटे ही नहीं।

इन अपवादोंको दूर करनेमें कई बातें सहायक हो सकती हैं। प्रथम तो हमारे रहन सहनमें कुछ परिवर्तन नितान्त आवश्यक है, दूसरे किसी अंशमें अपने सामाजिक रीति रिवाजको वर्तमान काल और अवस्थाके अनुकूल बना लेना चाहिये। यहाँपर उनका संकेतमात्र करता हूं।

(१) यदि आपको स्वयं नहीं मालूम कि आज किस समय आप रोटी खायेंगे, किस समय अपना काम आरम्भ करेंगे तथा किस समय विश्राम और मनोरञ्जन करेंगे तो दूसरोंको क्या ख़बर हो सकती है? बात बातमें विघ्न और बाधाएँ उपस्थित होयंगी ही, जीवन अव्यवस्थित रहेगा ही। यदि आप चौकेपर खानेके लिए बैठ गये हों और द्वारपर कोई पुकारता है तो लौटने दीजिये, कहीं बाहर हों और खानेका समय हो तो सौ काम छोड़कर

दौड़ पड़िये। सोते समय कोई छेड़ता हो तो डाट बताइये। रुचिके विरुद्ध कोई ज़बरदस्ती कुछ खिलाता हो तो साफ़ इनकार कीजिये। बेसमय घूमने फिरने या खेल तमाशेका लालच दिखाता हो तो बात न कीजिये। हिन्दुस्तानियोंके लिए यह व्यवहार कठिन है। परन्तु भविष्यमें उन्नतिशील भारतवासियोंका इसके बिना काम नहीं चल सकता।

(२) बार बार लोगोंपर अपनी यह सम्मति प्रकट कीजिये और उसीके अनुसार आप भी बर्तिये कि पूरी मिठाई महा दरिद्र भोजनोंमें हैं। बिना घर गृहस्थीका आदमी भी बाज़ारमें ४ पैसे देकर पूरी मिठाई खा सकता है। इसलिए किसी-को पूरी मिठाई खिलाना वा आप खाना बड़ा ही अपमान और मूर्खताका चिह्न है। सबसे श्रेष्ठ भोजन है वह जो नित खाते हैं। उनमें अच्छे अच्छे प्रकार बनवाइये। भांति भांतिकी तर-कारियां, कढ़ी, पापड़, दूधकी चीज़ें, मीठे वा नम-कीन चावल, बेसन और सूजी इत्यादिकी रोटियां, स्वाद इन व्यञ्जनोंमें हैं, पूरी कचौरीका नाम भूल जाइये। कच्ची दावतोंकी परिपाटी चलाइये। घरमें नित जो आप खाते हों उन्हींसे आये-गयेका भी सत्कार कीजिये, देवी देवताओंका भोग लगाइये।

(३) भारतवर्षमें समग्र एक ही भोजनका यथासाध्य प्रचार होना चाहिये। जब हम आचार-विचार, वेश-भूषा, उद्देश्य और आकांक्षा-ओंमें एक हो रहे हैं तो आहारमें क्यों न सादृश्य-ताका भाव रखें। भिन्न भिन्न प्रान्तके निवासियोंके अधिकतर मिलने जुलने तथा परस्परका व्यवहार बढ़ानेके लिए इसका होना आवश्यक है। शिलौं-गका निवासी भी यदि लाहौरमें पहुंचे तो वहां वही भोजन पा सके, जो अपने घर खाता था। और यह व्यवहार-साध्य भी है। इससे भारतके दूर-स्थित नगरोंमें जानेपर भी हम लोग अपनेको प्रवासी न समझेंगे। स्वास्थ्य बिगड़नेका कोई भय न रहेगा तो हम यात्राओंमें भी ख़ूब निकल सकेंगे, व्यवसाय और व्यापारके अवसरके लिए कराचीसे रंगून तक सारे भारतको अपना घर आंगन समझेंगे और बराबर आते जाते रहेंगे। परन्तु इतना हो कि पंजाबी, सिंधी, बर्मी और मद्रासी सभी शिक्षित भारतवासी अपना एक विशिष्ट (standard) सादा भोजन तै कर लें जो सबके अनुकूल हो। फिर ग़रीब अमीर, हिन्दू और मुसलमान मुख्यतः उसीसे काम निकालें। आज हम लोगोंको कितनी ईर्षा होती है जब हम देखते हैं कि देहरादूनसे लेकर कलकत्ते तक अंग्रेज़ हर जगह एक ही भोजन करते हैं। उनके बावर्ची और ख़ानसामोंको मालूम रहता है कि चाहे साहब इंजीनियर हों वा डाक्टर, स्कूलके मास्टर हों वा कम्पनीके मैनेजर, सब एक ही खाना खाते हैं। वही उनके लिए तैयार रहता है। यह कितनी सुविधा है।

(४) इस देशमें अभी तक यात्री, व्यापारी और विद्यार्थियोंके लिए अपना घर छोड़नेके बाद दूसरे भले आदमियोंके परिवारमें ठहरनेका रिवाज शुरू भी नहीं हुआ है। अपने शहरसे बाहर कहीं कोई गया तो लोग झट उसे धर्मशाला और बनि-येकी दूकानका पता देने लगते हैं। अपने घरमें किसी कुलीन और परिचित आदमीको भी ठहराना मर्यादाके विरुद्ध है। इससे पढ़े लिखे आदमियोंको कार्यवश दूसरे नगरमें जानेपर बहुत क्लेश उठाने पड़ते हैं। यदि किसीने उनकी कुछ मिहमानदारी की भी तो इस धूम धामके साथ जो दो दिनके बाद तीसरे दिन नहीं संभव है। समझनेवाले समझ जाते हैं कि बस यह ख़ातिर नहीं है, दरवा-ज़ेका रास्ता (notice to quit) दिखानेके तरीके हैं। फिर विचारे सीधे हलवाईकी दूकानकी शरण लेते हैं। कई साल पहले हम ५, ७ विद्यार्थियोंको दो अं-ग्रेज़ प्रोफेसरोंके साथ कानपुर जानेका संयोग हुआ। स्टेशन पहुंचते ही प्रोफ़ेसरोंने कानपूर निवासी अपने एक अंग्रेज़ मित्रको टेलीफ़ोन कर दिया कि

अमुक समय हम दो जनेके लिए भोजन तैयार रहे। यह प्रबन्ध कर वह हम लोगोंके साथ कारख़ाना देखने चल दिये। जब १ बजेका समय हुआ ट्रैमपर चढ़कर साहब खाना खानेके लिए बंगले पहुंचे। हम लोग इधर सड़कपर खड़े खड़े मूंग फलियोंके छिलके उतारते रह गये!

अंग्रेज़ोंके खाने और ठहरनेका प्रबन्ध मित्रोंके घर इसलिए सहजमें ही हो जाता है कि वहांपर उनसे खाने पीनेका खर्च लेनेमें मिथ्या संकोच नहीं किया जाता। यही कारण है कि उनका आना जाना किसीको नहीं खलता। अंग्रेज़ समझते हैं कि किसी अभ्यागत मित्रके लिए आवश्यक सामग्री जुटा देना और नौकरोंके द्वारा सब प्रबन्ध करा देना ही कुछ कम नहीं। व्यर्थकी आव-भगत बढ़ाना जिसमें इस सुख और सुविधासे भी यात्री वंचित रह जाय, दया नहीं कठोरता है। बात भी ऐसी है।

हमारे हिन्दुस्तानी भाई या तो अपने मित्रों को "सरपै, आखों पै" बिठाना जानते हैं या कुछ ऐसा आडम्बर करते हैं कि वृक्षके नीचे आदमी भले ही ठहर जाय उनके द्वारपर नहीं आता। इसके पीछे कितना कष्ट और रोग सहन करना पड़ता है, वही जानते हैं जो कुछ कालतक बाहर रह चुके हैं।

(५) भारतमें भोजन करनेका समय परम्परासे दोपहर रहा है। क्या राजा और क्या किसान पेटभर उसी समय खाते आये हैं। अबके, आधुनिक वैज्ञानिक भी बताते हैं कि मनुष्यके मुख्य भोजनका सबसे उत्तम समय १२ और ३ बजे दिनके बीचमें है। परन्तु इस समय काम करनेका जो प्रचलित क्रम है उसमें सिवा कुलियों या बड़े अफसरोंके दूसरोंको अवकाश नहीं कि दोपहरको घर जाकर रोटी खायें। इससे वर्तमान समयमें स्वास्थ्यकी अनेक गड़बड़ें देखनेमें आती हैं। जैसे भी हो स्वतंत्र जीविकावाले भारतवासी यदि अपनी पुरानी प्रथापर चलें और उद्योग धन्धेके लिए प्रातःकाल इधर ४, ५ घंटे और तीसरे पहर उधर उतना ही समय निकाल लें जिसमें बीचमें ३, ४ घंटे भोजन और विश्रामकेलिए बच रहें तो केवल उनका ही कल्याण न हो, औरोंकी भी आँखें खुल जायँ। बहुत थोड़े दिनोंके भीतर यह स्पष्ट हो जाय कि भारत जैसे ग्रीष्म प्रधान देशमें, जहाँ सहस्रों वर्षसे मनुष्य समाज ठंडेमें प्रातः संध्या केवल आधे दिन काम करता आयाहै, इससे बढ़कर कुत्सित रीति दूसरी नहीं हो सकती कि १० से ४ तक रोटी खाकर परिश्रम किया जाय।

सरल त्रिकोणमिति

१-त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां और उनके सम्बन्ध

[ले०—प्रो० मनोहर लाल भार्गव, एम० ए०]

१—कोण नापनेकी साधारण रीति

दो रेखाओंके मिलनेसे कोण बनता है। इन रेखाओंको बने हुए कोणकी भुजाएं और जिस विन्दुपर यह मिलती हैं उसे शीर्ष कहते हैं। मान लीजिये कि अक एक स्थिर रेखा है और एक दूसरी रेखा अब, आरम्भमें अक स्थितिसे चलकर अ की परिक्रमा करना आरम्भ करती है। अतएव वह अख, अग, आदि स्थितियोंमें होती हुई जायगी। अब देखिये कि अख स्थितिमें, घूमनेवाली रेखा
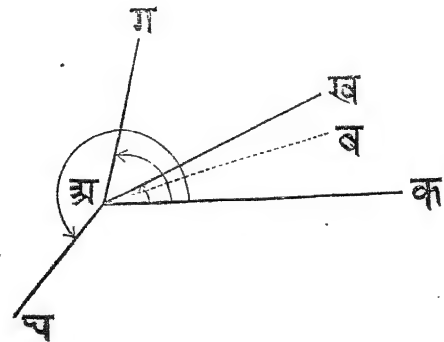
चित्र १

अक के साथ क अख और अग स्थितिमें कअग कोण बनाती है। इन दोनों कोणोंमेंसे कौनसा बड़ा और कौनसा छोटा है और प्रत्येकका परिमाण क्या है? यह तो स्पष्ट ही है कि कअग कोण बड़ा है। अब रही उनके परिमाणके निश्चित करनेकी यानी नापनेकी रीति सो नीचे दी जाती है।

उत्पादक रेखाको असली, प्राथमिक, स्थितिसे चलकर अपनी प्रस्तुत स्थिति तक आने जितना घूमना पड़ता है, उस घुमावसे ही वह कोण नापा जाता है, जो उसकी दोनों स्थितियोंके बीचमें होता है।

मान लो कि कअख कोणका परिमाण जानना है, तो अब रेखाको अक से चलकर अख तक पहुंचनेमें जितना घूमना पड़े वह घुमाव इस कोणका सूचक होगा। परन्तु अभी तक हमने केवल सिद्धान्तका निरूपण किया है, वास्तविक रीति नहीं बतलाई है। वह यह है कि अ को केन्द्र और अब को अर्धव्यास मान कर एक वृत्त खींच लो। वृत्तकी पूरी परिधि अब के एक पूरे चक्करमें बनती है। इसलिए अब के घुमावका अन्दाज़ परिधिपर ब की स्थिति देख कर लगाया जा सकता है। इसी सिद्धान्तपर कोण मापक (protractor) यंत्र बने हैं। देखिये चित्र २।

चित्र २

[कोणमापकमें केवल अर्धपरिधि ही बनाई जाती है। पूरी परिधिका बनाना व्यर्थ है। मान लीजिये कि क अ घ कोण नापना है, जो दो समकोणसे बड़ा है। कोणमापकके केन्द्रको अ-पर रख कर अब को अक पर रखिये। अब $\angle$ कअघ = $\angle$ क अस + $\angle$ स अ घ = २ समकोण + $\angle$ स अ घ। अब उलट कर कोणमापकको इस प्रकार रखिये कि केन्द्र अ पर और अ स, अ क पर हो, फिर स अ घ को नाप लो। कोण मापकको पहली स्थितिमें रखना ही व्यर्थ है, यदि कोण दो समकोणसे बड़ा हो तो।]

अब के एक पूरे चक्करमें कुछ स्थितियां ध्यान देने योग्य हैं। यह स्थितियां चित्र ३, ४, ५ और ६ में दिखलाई गई हैं। अपनी असली स्थितिसे चलनेके बाद अब, एक स्थितिमें पहुंचेगी जहां वह अक पर सीधी, अलिफ, खड़ी होगी। फिर दूसरी तरफ झुकने लगेगी, यहां तक कि कुछ देर बाद वह अक रेखाका बढ़ाव हो जायगी [चित्र ४]। इस स्थितिसे चलकर वह नीचेकी ओर बढ़ने लगेगी, यहां तक कि बिलकुल सीधी नीचेकी ओर लटकती होगी [चित्र ५]। इसके बाद वह फिर ऊपरकी ओर उठने लगेगी, यहां तक कि वह अक से फिर आन मिलेगी [चित्र ६]। विचार करनेसे मालूम हो जायगा कि स्थिति ३ में अब का चौथाई चक्कर

पूरा होगा। इसी प्रकार स्थिति ४ में आधा, स्थिति ५ में पौन और स्थिति ५ में एक चक्कर पूरा हो जायगा। इन स्थितियोंमें जो कोण कि अक, अब के बीचमें हैं वह तीरोंद्वारा दिखलाये गये हैं।

चित्र ३ चित्र ४
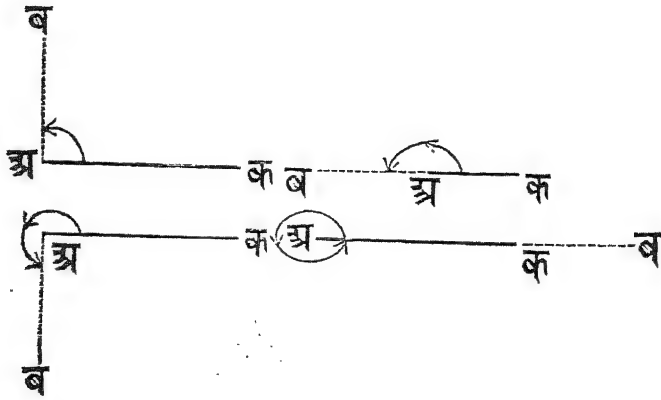
चित्र ५ चित्र ६

दो पद्धतियोंमें कोण नापनेकी इकाई समकोण मानी जाती है। स्थिति ३ में दोनों रेखाओंके बीचमें जो कोण है वह समकोण है। यह प्रकट है कि स्थिति ४ में उन दोनोंके बीचका कोण २ समकोणके बराबर है और ५ वीं और ६ ठी स्थितियोंमें ३ और ४ समकोणके बराबर है।

यदि अ ब यहां न रुक कर आगे बढ़े और चक्कर लगाती चली जाय तो कोण ४ समकोणसे भी बड़ा बनेगा।

२—षष्ट्यांश पद्धति

समकोणको कोण नापनेकी इकाई तो मान ली, परन्तु यह इकाई बहुत बड़ी है। इसलिए इस इकाईसे छोटी इकाइयां अंश, मिनट (कला) और सेकंड (विकला) भी माननी पड़ीं। इनका आपसका संबंध इस तरह है।

१ समकोण = ९० (डिग्री) अंश

१ अंश = ६० मिनट (कला)

१ मिनट (कला) = ६० सेकण्ड (विकला)

इस पद्धतिमें एक बड़ी भारी कठिनाई यह है कि छोटीसे बड़ी और बड़ीसे छोटी इकाइयां बनानेमें बेडौल गुणा और भाग करने पड़ते हैं। इसीलिए एक नई पद्धति निकाली गई जिसे

३—शतांश पद्धति

कहते हैं। इस पद्धतिमें कोणकी इकाई समकोण ही है, परन्तु छोटी इकाइयां ग्रेड, मिनट और सेकण्ड हैं, जिनका सम्बन्ध यह है।

१ समकोण = १०० ग्रेड

१ ग्रेड = १०० मिनट

१ मिनट = १०० सेकण्ड

स्पष्ट है कि इस पद्धतिमें छोटीसे बड़ी और बड़ीसे छोटी इकाइयां बनाना बहुतही आसान है। परन्तु, इस सुभीतेके होते हुए भी यह पद्धति काममें बहुत कम आती है। नापमें, पैमाइशमें षष्ट्यांश पद्धति ही काम आती है। शुद्ध गणितमें दोनों पद्धतिसे अलग एक तीसरी ही पद्धति काम आती है। इसका नाम चापीय मान (Circular measure) है।

४—चापीय मान

इस पद्धतिमें कोणकी इकाई समकोण न होकर, रेडियन है। यदि किसी वृत्तकी परिधिमेंसे एक चाप अर्धव्यासके बराबर काट लें और उसके सिरोंको केन्द्रसे जोड़ दें, तो जो कोण केन्द्रपर बनेगा, वह एक रेडियन* है।
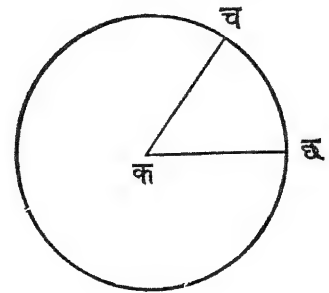
चित्र ७—चछ=कच=अर्धव्यास या त्रिज्या। इसलिए चकछ=त्रिज्याकोण।

* रेडियनको त्रिज्याकोण कहते हैं

होगा। इस इकाईके अनुसार

$$४ \text{ समकोण} = \frac{\text{परिधि}}{\text{अर्धव्यास}} = \frac{२\pi \times \text{अर्धव्यास}}{\text{अर्धव्यास}}$$

$$= २\pi \text{ रेडियन}$$

क्योंकि पूरी परिधि केन्द्रपर चार समकोणके बराबर कोण बनाती है और यह कोण उतनी रेडियनके बराबर होगा, जितने अर्धव्यासके बराबरके टुकड़े परिधिमेंसे कट सकेंगे। इन टुकड़ोंकी संख्या सदा २π होगी, चाहे अर्धव्यासका परिमाण कुछ ही हो †।

५—तीनों पद्धतियोंका पारस्परिक सम्बन्ध

स्पष्ट है कि १ समकोण = ९० डिग्री = १०० ग्रेड = $\frac{\pi}{२}$ रेडियन। इस सम्बन्धसे किसी कोणकी नाप अगर एक तरहकी इकाइयोंमें दी है तो दूसरी तरहकी इकाइयोंमें निकाल लेना आसान है।

मान लीजिये कि किसी कोणकी नाप डिग्रियोंमें डि, ग्रेडोंमें ग्रे और रेडियनोंमें रे है, तो उसकी नाप समकोणमें निकालनेसे यह समीकरण मिलेगा—

$$\text{कोण} = \frac{\text{डि}}{९०} \text{समकोण} = \frac{\text{ग्रे}}{१००} \text{ समकोण} = \frac{२\text{रे}}{\pi} \text{स०को०}$$

अतएव यदि डि या ग्रे या रे मालूम हो तो अन्य दो मालूम हो सकते हैं।

६—त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां

ख क ग एक कोण है। इसके किसी भुजमें कोई विन्दु ट लेलो और ट से दूसरे भुजपर ट ठ लम्ब गिराओ। ख क ग कोणको केवल कोण क भी कह सकते हैं। इसकी त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां और सांकेतिक अक्षर नीचे दिये जाते हैं:—
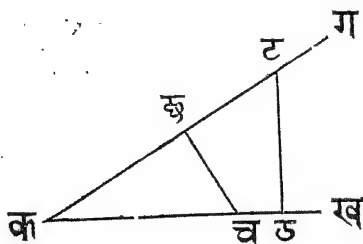
नाम	परिमाण	संकेत
क का ज्या	$\frac{\text{ट ठ}}{\text{क ट}} = \frac{\text{सामनेका भुज}}{\text{कर्ण}}$	ज्या क
क का कोटिज्या	$\frac{\text{आसन्न भुज}}{\text{कर्ण}} = \frac{\text{क ठ}}{\text{क ट}}$	कोज्या क
क की स्पर्शरेखा	$\frac{\text{सामनेका भुज}}{\text{आसन्न भुज}} = \frac{\text{ट ठ}}{\text{क ठ}}$	स्प क
क की कोटिस्पर्शरेखा	$\frac{\text{आसन्न भुज}}{\text{सामनेकी भुज}} = \frac{\text{क ठ}}{\text{ट ठ}}$	कोस्प क
क की कोटिच्छेदनरेखा	$\frac{\text{कर्ण}}{\text{सामनेकी भुज}} = \frac{\text{क ट}}{\text{ट ठ}}$	कोछे क
क की छेदन रेखा	$\frac{\text{कर्ण}}{\text{आसन्न भुज}} = \frac{\text{क ट}}{\text{क ठ}}$	छे क

स्मरण रहे कि यह निष्पत्तियां कोण क के परिमाणपर निभर्र हैं, न कि विन्दु ट की स्थितिपर। लम्ब किसी अन्य विन्दु, मसलन च, से भी गिरा सकते हैं।

यहां कोज्या क $= \frac{\text{क छ}}{\text{क च}}$; परन्तु क च छ और क ट ठ त्रिभुजोंके सजातीय होने से $\frac{\text{क छ}}{\text{क च}} = \frac{\text{क ठ}}{\text{क ट}}$ इसलिए कोज्या क का मान वही रहा, बदला नहीं। और निष्पत्तियोंकेलिए भी यह बात ठीक ठीक है।

चित्र ८

७—समकोण त्रिभुजकी भुजाओंमें सम्बन्ध

क ख ग एक समकोण त्रिभुज है। इसकी भुजाओंमें यह सम्बन्ध याद रखना चाहिये:—
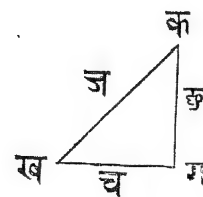
चित्र ९

$\text{कख}^२ = \text{कग}^२ + \text{खग}^२$, यानी

[† देखिये विज्ञान प्रवेशिका भाग २ पृष्ठ १७]

$(\text{कर्ण})^2 = (\text{आसन्न भुज})^2 + (\text{लम्ब})^2$

८—कुछ निष्पत्तियोंके व्युत्क्रम सम्बन्ध। व्युत्क्रम कहते हैं उलटेको, जैसे २ का व्युत्क्रम $\frac{१}{२}$, ३ का $\frac{१}{३}$, इत्यादि।

नोट—यदि किसी त्रिभुजको हम क ख ग अक्षरोंसे व्यक्त करेंगे, तो क, ख, ग, के सामनेके भुजोंको च, छ, ज, अक्षरोंसे व्यक्त किया करेंगे। चित्रमें क के सामनेकी रेखा खग है, खग की लम्बाई-सूचक च होगा। इसी प्रकार कख और कग की लम्बाई ज और छ मान लिया करेंगे। अब हम व्युत्क्रम सम्बन्धोंका अनुसंधान करेंगे।

(१) $\text{ज्या ख} = \frac{\text{कग}}{\text{कख}} = \frac{\text{छ}}{\text{ज}}$

और $\text{कोछे ख} = \frac{\text{कख}}{\text{कग}} = \frac{\text{ज}}{\text{छ}}$

$\therefore \text{ज्या ख} \times \text{कोछे ख} = \frac{\text{छ}}{\text{ज}} \times \frac{\text{ज}}{\text{छ}}$

अतएव ज्या ख और कोछे ख परस्पर व्युतक्रम हैं।

$\therefore \text{ज्या ख} = \frac{१}{\text{कोछे ख}}$

और $\text{कोछे ख} = \frac{१}{\text{ज्या ख}}$

(२) $\text{कोज्या ख} = \frac{\text{खग}}{\text{खक}} = \frac{\text{च}}{\text{ज}}$

और $\text{छे ख} = \frac{\text{कख}}{\text{खग}} = \frac{\text{ज}}{\text{च}}$

$\therefore \text{कोज्या ख} \times \text{छे ख} = \frac{\text{च}}{\text{ज}} \times \frac{\text{ज}}{\text{च}} = १$

$\therefore \text{कोज्या ख} = \frac{१}{\text{छे ख}}$

और $\text{छे ख} = \frac{१}{\text{को ज्या ख}}$

(३) $\text{स्प ख} = \frac{\text{कग}}{\text{खग}} = \frac{\text{छ}}{\text{च}}$

और $\text{कोस्प ख} = \frac{\text{खग}}{\text{कग}} = \frac{\text{च}}{\text{छ}}$

$\therefore \text{स्प ख} \times \text{कोस्प ख} = \frac{\text{छ}}{\text{च}} \times \frac{\text{च}}{\text{छ}} = १$

$\therefore \text{स्प ख} = \frac{१}{\text{कोस्प ख}}$

और $\text{कोस्प ख} = \frac{१}{\text{स्प ख}}$

९—ज्या ख और कोज्या ख का स्प ख और कोस्प ख से सम्बन्ध

$\text{स्प ख} = \frac{\text{कग}}{\text{खग}} = \frac{\text{छ}}{\text{च}} = \frac{\text{छ}}{\text{ज}} \div \frac{\text{च}}{\text{ज}} =$

$\text{ज्या ख} \div \text{कोज्या ख} = \frac{\text{ज्या ख}}{\text{कोज्या ख}}$

और $\text{कोस्प ख} = \frac{\text{कोज्या ख}}{\text{कज्या ख}}$, क्योंकि $\text{कोस्प ख} = \frac{१}{\text{स्प ख}}$

अभ्यासार्थ प्रश्न—१

१—५ समकोण ८५ डिग्री ५५ मिनट ३४ सेकण्डको किस प्रकारसे व्यक्त करते हैं?

[उत्तर—५ समको० ८५° ५५' ३४'']

२—३ समको० ३२° २७' १८'' के सेकण्ड बनाओ।

३—ग्रेड, मिनट और सेकंडके क्या संकेत हैं?

[उत्तर—ग्रेडका ग्रे०, मिनटका ' और सेकंडका '' चिन्ह है]

४—२५ समको० ४५ ग्रे०२८' ८७'' के सेकण्ड बनाओ। अंश, कला, और विकला का परस्पर क्या सम्बन्ध है?

५—दो कोणोंका योग ८० ग्रेड और उनका अन्तर १८° है। उनका मान डिग्रियोंमें बताओ।

किसी कोणकी डिग्रियोंकी संख्यामें यदि उसके ग्रेडकी संख्या जोड़ दें तो योगफल १५२ होता है, तो उस कोणका मान क्या है?

७—५° ३७' ३०'' का चापीय मान बतलाओ।

८—तीन कोण हैं, जिनमेंसे पहले और दूसरेके चापीय मानोंका अन्तर $\frac{\pi}{१०}$ है, दूसरे और ती-

सरेका योग ३० ग्रेड है और पहले और दूसरेका योग ३६° है।

तीनों कोणोंका मान रेडियनोंमें बताओ।

९—एक वृत्तका अर्धव्यास १० फुट है। उस कोणका मान बताओ, जो ५ इंच लम्बा चाप इसके केन्द्रपर बनायेगा।

१०- एक रेडियन कितनी डिग्रीके बराबर होता है?

[π = ३·१४१५, उ० १ रेडियन = ५७·२९५९°]

११—एक सम कोण त्रिभुजकी भुजाएं १३, १२ और ५ इंच लम्बी हैं। १२ इंच लम्बी भुजके सामनेके कोणकी त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां बताओ।

१२—एक सत्रह फुट लम्बी सीढ़ी एक दीवारके सहारे, ठीक खिड़कीके नीचे लगी है। सीढ़ीका निचला छोर धरतीपर, दीवारसे ८ फुटकी दूरीपर है। खिड़कीकी ऊंचाई बताओ। जो कोण कि सीढी दीवारसे बनाती है, उसका स्प और कोस्प बतलाओ।

१३—समभुजीय त्रिभुज बनाकर और उसके एक शीर्षसे सामनेवाली रेखापर लम्ब गिरा कर ६०° और ३०° की त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां निकालो।
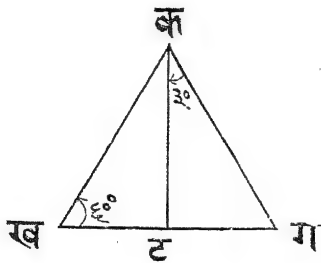
चित्र १०

[किसी भी त्रिभुजके तीनों कोणोंका योगफल १८०° होता है। समभुजीय त्रिभुजमें तीनों कोण बराबर होते हैं। इसलिए हर एक कोण ६०° का होगा। लम्ब कट भी कोण खकग के दो बराबरके हिस्से कर देगा। इसलिए खकट या गकट = ३०°। ट भी खग का मध्यविन्दु होगा।

यह तो स्पष्ट है कि $कख^२ = खट^२ + कट^२$

$$\therefore कट^२ = कख^२ - खट^२$$

$$= कख^२ - \left[\frac{कख}{२}\right]^२$$

$$= कख^२ - \frac{कख^२}{४} = \frac{३ कख^२}{४}$$

$$\therefore कट = \sqrt{\frac{३ कख^२}{४}}$$

$$= \frac{\sqrt{३}}{२} कख$$

इस सम्बन्ध के जान लेनेके बाद, सब बातें आसान हैं।

$$ज्या\ ६०° = ज्या\ ख = \frac{कट}{कख} = \frac{\frac{\sqrt{३}}{२} कख}{कख} = \frac{\sqrt{३}}{२}$$

$$कोज्या\ ६०° = कोज्या\ ख = \frac{खट}{कख} = \frac{१}{२}$$

$$स्प\ ६०° = \frac{ज्या\ ६०°}{कोज्या\ ६०°} = \frac{\sqrt{३}}{२} \div \frac{१}{२} = \sqrt{३}$$

$$कोस्प\ ६०° = \frac{१}{स्प\ ६०°} = \frac{१}{\sqrt{३}}$$

$$छे\ ६०° = \frac{१}{कोज्या\ ६०°} = \frac{१}{\frac{१}{२}} = २$$

$$कोछे\ ६०° = \frac{१}{ज्या\ ६०°} = \frac{१}{\frac{\sqrt{३}}{२}} = \frac{२}{\sqrt{३}}$$ इत्यादि]

पदार्थोंकी विशिष्ट बाधा

[ले०—प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

कुछ पदार्थोंकी विशिष्ट बाधाएं नीचे दी जाती हैं। कन्याके अङ्कमें यह बतलाया गया था कि किसी पदार्थकी विशिष्ट बाधा उसके एक-सेंटीमीटर-घन (अर्थात् उस घनकी जिसका प्रत्येक भुज १ सेंटीमीटर हो) की बाधा होती है। बाधाकी इकाई ओह्म है, अतएव विशिष्ट बाधाएँ ओह्म-सेंटीमीटरोंमें दी गई हैं। विशिष्ट बाधासे किसी दिये हुए तारकी बाधा निकालनेकी रीति पहले बतला चुके हैं। धातु और धातु-मिश्रणोंकी बाधा तीसरे स्तम्भमें दी हुई संख्याको $१०^{-६}$ से गुणा करनेसे ज्ञात होगी। विशिष्ट बाधा पदार्थकी अवस्थाके अनुसार बदलती रहती है। पदार्थका तार खींचनेसे बाधा बढ़ जाती है, गरम करके ठंडा करनेसे घट जाती है। तारको यदि मोड़कर कुण्डली बना ली जाय तो भी बाधा बढ़ जाती है।

तापक्रमके अनुसार धातुओंकी बाधा बढ़ती घटती रहती है। शुद्ध धातुओंकी बाधाका केवल-शून्यपर शून्य हो जाना सम्भव है। धातु मिश्रणोंके विषयमें यह नियम मालूम नहीं है। सूचीसे स्पष्ट होगा कि मैंगेनिनकी बाधा ३०°–४०° श तक एक ही बनी रहती है। इसी लिए इसका प्रयोग बाधा कुण्डलियोंके बनानेमें होता है।

पदार्थ	तापक्रम °श	विशिष्ट बाधा
अधातु		
गैसकार्बन	साधारण (१५)	·००४–·००५
गंधक	७०	$४·१०^{१५}$
ग्रेफाइट	साधा० (१५)	·००३
सिलिकन	,,	·०६
सेलिनियम	,,	$२·१०^{१६}$

पदार्थ	तापक्रम °श	विशिष्टबाधा
धातु	°श	$\times १०^{-६}$
अलूमिनम	१८	२·९४
इस्पात [१% क]	१८	१९·९
,,	१००	२५·६
इरिदियम (इन्द्र)	१८	५·३
कादमियम (खिंचा हुआ)	–१६०	२·७२
,,	१८	७·५४
,,	१००	९·८२
केलसियम	२०	१०·५
कोबाल्ट	२०	९·७१
चांदी (९९·९%)	–१६०	०·५६
,,	१८	१·६६
,,	१००	२·१३
जस्ता (शुद्ध)	–१६०	२·२
,,	१८	६·१
,,	१००	७·९
तंतलम	१८	६·१
तांबा (खिंचा हुआ)	–१६०	०·४९
,,	१८	१·७८
,,	१००	२·३६
,, (तपाकर ठण्डा किया हुआ)	१८	१·५९
तेलूरियम	२०	२१
थेलियम	०	१७·६
तुङ्गस्त	२५	५·०
निकिल	१८	११·८
,,	–१६०	५·९
,,	१००	१५·७
पारा	०	९४·०७
,,	२०	९५·७६
बङ्ग (रांगा)	–१६०	३·५
,, खिंचा हुआ	१८	११·३

Physics भौतिकशास्त्र]

पदार्थ	तापक्रम °श	विशिष्टबाधा
”	१००	१५·३
पोटासियम	०	६.६४
प्लाटिनम	–२०३	२·४
”	१८	११०
”	१००	१४·०
मग्नीसियम	०	४·३५
रोडियम	१८	६·०
लोहा	१८	९–१५
” [१%क]	१८	१२
”	१००	१६·८
लीथियम	०	८·४
सीसा (खिंचाहुआ)	–१६०	७·४३
”	१८	२०·८
”	१००	२७·७
धातुमिश्रण	°श	$\times १०^{-६}$
कोंस्तनतन	१८	४९·
”	१००	४९·१
जर्मन सिलवर	१८	१६·४०
”	०	२६·६
”	१००	२७·६
पीतल	–१६०	४·१
”	१७	६·६
”	१८	६·९
प्लाटीनोइड	–१६०	३२·५
”	१८	३४·४
फोस्फार ब्रोंज़	१८	५·१०
मैंगेनिन	–१६०	४३·१३
”	१८	४४·५
”	१००	४२·११
रोधक	°श	
इबोनाइट	साधारण (१५)	२×१०^{१५}
कार्ट्ज़	”	$१·२ \times १०^{१४}$
गटापर्चा	”	२×१०^{९}
पाराफीन मोम	”	३×१०^{१८}
पोरसिलेन	५०°	२×१०^{१५}
स्लेट	साधारण	९×१०^{१५}

नत्रजनकी कहानी

[ले०—प्रोफेसर रामसरनदास सकसेना, एम. एस-सी.]

संसारमें बहुत से ऐसे पदार्थ हैं, जिनको यदि साधारण दृष्टिसे देखा जाय तो उनमें न तो कोई विशेष गुण है और न वे कुछ उपयोगी ही दिखाई पड़ते हैं। परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्यका ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों त्यों उनकी उपयोगिता मालूम होती जाती है। ऐसे ही पदार्थोंमेंसे एक नत्रजन (nitrogen) भी है। विद्यार्थी जब इस गैस-को प्रयोगशालामें बनाने लगते हैं तो सोडियम नत्रित और अमोनियम हरिद्को उनके मात्रिक भारोंके अनुपातमें मिलाकर घोलके रूपमें गरम करते हैं। तब निम्न लिखित क्रियासे नत्रजन प्राप्त होती है।

$$\text{सो न ओ}_{\text{२}} + \text{न उ}_{\text{४}}\text{ह} = \text{सोह} + \text{२ उ}_{\text{२}}\text{ओ} + \text{न}_{\text{२}}$$

इसके दो चार मर्तबान जब भर गये और परीक्षण करनेकी बारी आई तो वे यह देखकर बड़ा आश्चर्य करते हैं कि उसमें कोई ऐसा गुण नहीं है, जिसको हांके रूपमें बता सकें अर्थात् यह गैस ऐसी है जिसका न तो कोई रंग है, न कोई गंध, न स्वयं जलती है, न जलते हुए पदार्थ इसमें साधारणतः जल सकते हैं, जैसे जलती हुई तेली इसमें लावें तो वह तत्काल बुझ जायगी और न यह किसी धातसे मिलकर

Chemistry रसायन शास्त्र |

सुगमतासे यौगिक बनाती है। यह देखकर यदि पाठकगण यह समझ लें कि रासायनिक पदार्थोंमें यदि कोई अनुपयोगी पदार्थ है तो वह नत्रजन ही है तो कुछ अनुचित न होगा। परन्तु हमको इस लेखमें यह बताना है कि जिन पदार्थोंको हम घृणाकी निगाहसे देखते हैं वह प्रायः बड़े उपयोगी सिद्ध हुआ करते हैं। एक वह समय था कि जीवनके लिए केवल ओषजन ही आवश्यक समझी जाती थी और मनुष्य उसको अत्यंत उपयोगी समझते थे। इस कारण उसको किसी किसीने अमृतजन भी कहा है। हमको यह बताना है कि नत्रजन भी ओषजनसे कुछ कम उपयोगी नहीं है। यदि यह भी कहा जावे कि नत्रजन और उसके यौगिक ओषजनसे बढ़कर उपयोगी हैं तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी।

यह गैस स्वतंत्र अवस्थामें वायुमें उपस्थित है। पांच भाग वायुके लिये जावें तो उसमें ४ भाग नत्रजन और १ भाग ओषजन होगी। यह दोनों गैसें वायुमें मिश्रित रहती हैं। इनमें रासायनिक मेल नहींहै, क्योंकि इन दोनों गैसोंको बड़ी सुगमतासे अलग कर सकते हैं। यदि एक साधारण नत्रोमापक (nitrometer) में ७० घन से० वायु लेकर पाइरोगैलिक अम्लका चारीय घोल (alkaline solution of pyrogallic acid) मिला कर खूब हिलाया जावे तो वायुकी ओषजन इस घोलमें घुल जायगी और केवल नत्रजन रह जायगी इस यंत्रके खुले मुंहको जलके ऊपर उलट कर किसी जलपात्रमें रख दें तो ओषजनके स्थानमें जल चढ़ जायगा और अन्तमें केवल ५६ घ०से० नत्रजन शेष रह जायगी। यदि वायुमें नत्रजन न होती और केवल ओषजन ही होती तो मनुष्यका जीवित रहना कठिन था। वायुमें नत्रजन मिलावट या पतला करनेवालेका (diluent) काम करती है। केवल वायुमें ही नहीं चट्टानों और कुछ कच्ची धातुओंमें यह छिपी हुई पाई जाती है। इसके यौगिकोंकी संख्या और उनकी उपयोगिता इतनी बड़ी है कि उनके विषयमें जितना कहा जाय थोड़ा है।

नत्रजनका साधारण यौगिक पोटासियम नत्रेत या शोरा (न ओ३) है, जो उत्तम खाद माना जाता है। यह भारतवर्षमें नूनिया मिट्टीमें बहुत मिलता है, जिसमेंसे वह सहज ही निकल आता है। पहिले तो जब लोगोंको इसकी आवश्यकता होती थी तो नूनिया मिट्टीको इकट्ठा कर, पानीमें घोल, छान लेते और जल उड़ा देते थे। बाकी शोरा और नमक बच रहता था। परन्तु जबसे सरकारने सर्वसाधारणको नमक और शोरा बनानेसे रोक दिया है, बड़े बड़े नगरोंमें शोरा बनानेके कारखाने खुल गये हैं, जहाँ शोरा नूनिया मिट्टीसे बनाया जाता है। अब तो कई जगह ऐसा प्रबन्ध हो गया है कि कुल नगरका मल, मूत्र आदि जो पहिले थोड़ा बहुत खाद बनानेके काम आता था, अब शोरा बनानेके काम आता है। भारतवर्षके अतिरिक्त भिन्न भिन्न देशोंमें इसकी खानें भी हैं।

इस भूमण्डलपर जितनी बनस्पतियां हैं उनके जीवनकेलिए नत्रजन बहुत आवश्यक है। परन्तु पौदे इस गैसको गैसकी अवस्थामें ग्रहण नहीं कर सकते। सोडियम नत्रेत, पोटासियम नत्रेत और खटिक नत्रेत जो जलमें घुल जाते हैं, पौदे सहज ही ग्रहण करते हैं। इस कारण यह खादमें काम आते हैं। हर साल इन यौगिकोंकी बड़ी खपत होती है। यही देखकर सर विलियम क्रुक्सको (Sir William Crookes) यह भय उत्पन्न हुआ था कि जब इतना सोडा नत्रेत काममें आता है तो बहुत शीघ्र अमेरिकाकी खानोंमें चुक जायगा और फिर बड़ी कठिनाई होगी। इन महाशयने यह भी कहा था कि यदि वायुकी नत्रजनसे किसी प्रकार काम लिया जा सके और उससे शोरा आदि कामके पदार्थ बनाये जासकें तो फिर कोई भयकी बात नहीं रहेगी। उनका यह विचार वैज्ञानिकोंके दिलमें भर गया और बड़े परिश्रमसे थोड़े ही दिनमें,

उन्होंने नत्रजन काममें लानेकी विधि निकाल ही ली, जिसे हम संक्षिप्त रूपसे आगे बतायेंगे।

नत्रजनके यौगिकोंका उपयोग (अ) कृषीमें (ब) औषधियोंमें (स) रंगोंके बनानेमें (द) भकसे उड़ जानेवाले स्फोटक पदार्थोंमें होता है।

यह कहा जा चुका है कि वनस्पतियां नत्रजन गैसकी अवस्थामें नहीं लेतीं। इससे जो नत्रेत सोडियम, पोटासियम और खटिक आदिके बनते हैं वह घोलके रूपमें पौदोंकी जड़ों द्वारा अन्दर पहुंच कर पौदोंका भोजन बनते हैं। इस प्रकार जो नत्रेत पौदेके अन्दर पहुंचते हैं उनमें बड़े बड़े रासायनिक परिवर्तन होते हैं। अन्तमें उनसे तरह तरहके आङ्गारक यौगिक बन जाते हैं। पौदोंमें नत्रेतकी नत्रजन उज्जनसे मिलकर अमीनो समूह (न उ$_2$) में परिवर्तित हो जाती है और पौदों-के अन्य अवयवोंसे मिलकर आङ्गारक क्षार (alkaloids), प्रोटीड (proteid) और अमीनो-अम्ल (aminoacids) इत्यादि बनाती है। पौदोंके फलोंमें जो उत्तम और पुष्टिकारक खाद्यांश समझे जाते हैं उनमेंसे प्रोटीड भी है, जो पौधोंके फल और बीजोंमें तो अधिक और अन्य भागोंमें कम मात्रामें मिलता है। जब मनुष्य या कोई पशु पौधोंको खाता है तो यही अवयव उनके शरीरको पुष्ट करता है। यदि पौधा खानेके काममें न आय और पृथ्वीपर ही पड़ा रहे तो फिर तरह तरहके जीवाणुओंका भोजन बनता है, जिसे वे सड़ाकर भिन्न भिन्न पदार्थ बना देते हैं। कर्बन ओषजनसे मिलकर कर्बनद्विओषिद (क ओ$_2$) के रूपमें निकल पड़ता है। प्रोटीडमेंकी नत्रजन अमोनिया और कभी कभी स्वतंत्र गैसके रूपमें निकल आती है। इस प्रकार जो नत्रजन नत्रेतके रूपमें एक समय पौधोंका भोजन हुई थी और कुछ समय तक प्रोटीड इत्यादिके रूपमें उनके फलोंमें रही अन्तमें जीवाणुओंकी क्रियासे फिर गैसके रूपमें वायुमें जा मिली।

जो पौदे, फल, फूल आदि प्राणियों द्वारा खा लिये जाते हैं, उनका नत्रजनका अंश भी मल, मूत्र या मृत शवके रूपमें पृथ्वीमें पहुंच जाता है और नत्रेत या शुद्ध नत्रजनमें परिणत हो जाता है।

यद्यपि पौदे नत्रजनको उसकी वायव्य अव-स्थामें भोजनके लिए स्वीकार नहीं करते, परन्तु, धन्यवाद है परमात्माको जिसने प्राणियोंको आराम पहुंचानेके लिए ऐसे ऐसे सामान कर रखे हैं, जिनका मनुष्यको, कुछ दिन हुए, ज्ञान तक भी नहीं था, पृथ्वीमें कुछ जीवाणु ऐसे उपस्थित होते हैं जो वायुकी नत्रजनको लेकर कुछ पौधोंकी जड़ोंमें इकट्ठा करते रहते हैं। जैसे चना और मटर आदि की जड़ें गँठीली होती हैं। इन जड़ोंमें वह जीवाणु देखे गये हैं जो पौधेके भोजनके लिए नत्रजनका भांडार उपस्थित रखते हैं। यह नत्रजन और प्रकारके जीवाणुओं द्वारा नत्रेतके रूपमें परिवर्तित होकर पौधेका भोजन बनती है।

यहांपर यह बतला देना ठीक होगा कि ऐसे पदार्थ, जिनकी जड़ोंमें नत्रजन एकत्र करनेवाले जीवाणु अर्थात् नत्रजन जीवाणु उपस्थित होते हैं, पृथ्वीमें, धरतीमें, बिना खाद दिये भी बोनेसे उग सकते हैं। जमीन कैसी ही निर्बल हो उसमें चना बो दो और जब वह फलने लगे तो खड़ी फसलमें हल चला दो, जिससे चनेके सब पौदे ज़मीनमें मिल जावें। यह एक प्रकारका बड़ा उत्तम खाद होगा। इस प्रकारका खाद हरा खाद (green manure) कहलाता है। जो रासायनिक क्रियाएं जीवाणुओं द्वाराजमीनमें होती हैं वह यह हैं। जो प्रोटीड पौदों-में उपस्थित था वह पहिले एक प्रकारके जीवाणुओं द्वारा अमोनिया और उसके यौगिकोंमें परिवर्तित होता है, फिर दूसरी प्रकारके जीवाणुओंकी क्रिया-से, जिनको नत्रीजतक जीवाणु (nitrosomonas and nitroso-coccus) अर्थात् नत्रस जीवाणु (nitrous organisms) कहते हैं अमोनिया आदि नत्रितोंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। इसके पश्चात् तीसरी प्रकारके जीवाणु, जिनको नत्रीकर जीवाणु

(nitrobacteria or nitric organism) कहते हैं, नत्रितोंको नत्रेतोंमें परिवर्तित करके पौदेका भोजन तैयार करते हैं। इस प्रकार नत्रीकर जीवाणु चुपके चुपके सदा यह कार्य्य करते रहते हैं।

मनुष्य और अन्य प्राणी, जिन पौधों, फलों, बीजों, इत्यादिको जिस किसी रूपमें भी खाते हैं, उनसे शरीर प्रोटीड ग्रहण करता है और पुष्ट होता है। इसी प्रोटीडके विकारसे पैदा हुआ यूरिया $\text{ओ} = \text{क} <^{\text{न उ}_2}_{\text{न उ}_2}$ (urea) मनुष्यादि प्राणियोंके मूत्रमें निकलता रहता है और पृथ्वीमें पहुंच कर या तो अमोनियाके रूपमें वायुमें उड़ जाता है या, यदि वहां कोई अम्ल (acid) उपस्थित होता है तो उससे लवण बना कर ज़मीनमें रह जाता है। इन अमोनियाके लवणोंपर वही जीवाणुओंकी क्रिया होती है जो ऊपर बताई जा चुकी है और अंतमें नत्रेतके रूपमें पौधेका भोजन बनकर तैयार होता है। मलमें भी वे पचा प्रोटीडका अंश या उसके विकारसे पैदा हुए पदार्थ निकलते रहते हैं। जब प्राणियोंका देहान्त होता है उनके मृत देहोंपर पृथ्वीमें पहुंच कर वही क्रियाएँ होती हैं जो पौधोंपर होती हैं। जटिल अङ्गारक यौगिक जीवाणुओंकी क्रियासे छिन्न भिन्न होकर सरल यौगिकोंमें परिणत हो जाते हैं। कुछ नत्रजन स्वतंत्र अवस्थामें वायुमें जा मिलती है। कुछका अमोनिया बन जाता है। अमोनियासे नत्रित और अन्तमें नत्रेत बन जाते हैं,सारांश यह कि यह क्रिया प्रकृतिमें बड़े पैमानेमें होती रहती है। यह सदासे हो रही है और होती रहेगी।

जब जब बिजली कौंधती है और वायुमें विद्युत् विसर्ग होता है, तब तब हवाका कुछ नत्रजन ओषजनसे मिलकर नत्रजन द्विओषिद और नत्रिकाम्ल (न ओ_2 और उ न ओ_3) और उज्जनसे मिलकर अमोनिया बना लेती है। वर्षा होनेपर अमोनिया, नत्रिकाम्ल और नत्रजन द्विओषिद पानीमें घुलकर पृथ्वीपर आ गिरते हैं। नत्रजन द्विओषिद और पानीकी क्रियासे नत्रस और नत्रिक अम्ल बन जाते हैं। नत्रिक अम्ल तो पृथ्वीमेंके क्षारोंसे मिलकर लवण (नत्रेत) बना लेता है, परन्तु अमोनिया और नत्रसाम्लपर जीवाणुओंका प्रहार होने लगता है। इनका कुछ अंश तो नत्रजनमें परिणत हो वायुमें जा मिलता है, परन्तु अधिकांश पहले नत्रित और अन्तमें नत्रेतमें परिणत हो जाता है, जो पौधोंके काम आता है।

धरतीमें नत्रजनके यौगिकोंके पहुंचनेकी यह एक राह हुई। दूसरी राह है नत्रजन जीवाणुओंका करम-कौशल, जिसका हाल हम पहले लिख चुके हैं। तीसरी राह वह है, जिसका आगे वर्णन करेंगे। पौदोंमें पहुंच कर नत्रेत प्रोटीडमें परिणत होता है,जो फलों, बीजों आदिमें विशेष परिमाणमें इकट्ठा हो जाता है। पौधोंसे प्रोटीड मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंके पेटमें पहुंच कर कुछ अपने ही रूपमें रह जाता है और कुछ यूरियाके रूपमें पृथ्वीमें पहुंच जाता है। यहांसे कुछ नत्रजन तो स्वतंत्र अवस्थामें वायुमें चली जाती है और कुछ पौधेके काममें आ जाती है। पौधे और मनुष्य इत्यादि जब अपना जीवन पूरा कर चुकते हैं तो फिर जीवाणुओंकी क्रियासे कुछ नत्रजन वायुमें जा मिलती है और कुछ नत्रेतके रूपमें पौधेमें फिर जा पहुंचती है। वायुमें पहुंच कर फिर वही चक्र आरम्भ होता है।

कूड़ा, करकट, मैलमक्कड़, फटे टूटे कपड़े जूते, लकड़ी, कागज,बाल,सुम, चमड़ा और अन्य पदार्थ जितने भी पृथ्वीमें पहुंचते हैं उनमें नत्रजन किसी न किसी रूपमें और मात्रामें अवश्य होती है। यही जीवाणुओंकी क्रिया द्वारा पृथ्वीमें ऐसे ऐसे पदार्थोंके रूपमें बदल जाती है, जिनसे पृथ्वीकी उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है और अच्छी फसल पैदा होती है।

ऊपर जो कुछ पाठकोंने पढ़ा उससे स्पष्ट है

कि भूमिकी नत्रजन प्रतिवर्ष निकलती रहती है और फिर उसमें प्राकृतिक साधनों द्वारा पहुंचती रहती है। परन्तु जबसे संसारमें मनुष्योंकी संख्या बढ़ी और खेती कसरतसे होने लगी तबसे पृथ्वीकी नत्रजन अधिक मात्रामें निकल जाती है और प्राकृतिक साधनोंसे लौटती कम है। इसी कारण धरतीकी उपजाऊ शक्ति कम हो रही है। इस क्रमीको पूरा करनेके लिए ही मनुष्यने खादका प्रयोग आरम्भ किया। अभाग्यवश हमारे देशमें उतने अच्छे खाद प्रचलित नहीं, जितने अन्य देशोंमें हैं। इसीसे यहां दिन बदिन धरतीकी उपजाऊ शक्ति घटती जाती है।

जो खाद मनुष्यने वैज्ञानिक विधियोंसे पौदोंके भोजनार्थ बनाये हैं, उनमें जो नत्रजन समास हैं वह सोडियम, पोटासियम, खटिक और अमोनियम नत्रेत, अमोनियम गंधेत, खटिक स्यानअमिद (Calcium cyanamide) इत्यादि हैं। इनके बनानेके लिए जैसा श्रीमान क्रुक्स महोदय ने विचारा था वैज्ञानिक लोगोंने विद्युतकी भिन्न भिन्न प्रकारकी भट्टियां बनाई हैं, जिनमें ६००-७०० शतांश तकका तापमान सुगमतासे प्राप्त हो सकताहै। इन सबमें क्रिया तो एक ही है परन्तु बनावटमें आवश्यकतानुसार भिन्नता है। इस प्रकारकी भट्टियां वहां अच्छा और सस्ता काम करती हैं, जहां बिजली सस्ती बन सकती है। बिर्कलेंड और आईड (Birkeland and Eyde) की भट्टी प्रसिद्ध है। इस भट्टीमें हो कर जब वायुका (जो नत्रजन और ओषजनका मिश्रणमात्र है) प्रवाह होता है, तो ६००°—७००° श तापक्रमपर यह दोनों गैस रासायनिक मेल करके ओषिद बनाती हैं—

$$न_2 + ओ_2 \rightleftharpoons २\,न\,ओ$$
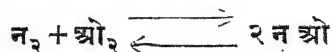
जितना तापक्रम अधिक हो उतना ही अच्छा है, परन्तु जब न ओ की मात्रा बढ़ जाती है तो उसका टूटना आरम्भ हो जाता है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए यह तरकीब की गई है कि जैसे जैसे न ओ बनता जाता है, शीघ्र ही उसे ठंडा करते जाते हैं:—

$$२\,न\,ओ + ओ_2 = २\,न\,ओ_2$$
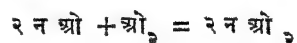
नत्रजन द्विओषिद जब ठंडे कमरोंमें पहुंचता है, जहां जल वाष्प उपस्थित होती है तो इसका नत्रिकाम्ल (nitric acid) बन जाता है।

$$३\,न\,ओ_2 + उ_2\,ओ = २\,उन\,ओ_3 + न\,ओ$$

(नत्रजनद्विओषिद + (पानी) = (नत्रिकाम्ल + नत्रजन एकौषिद)

इन कमरोंकी तलीमें खटिक कार्बनेत या खड़िया बिछी होती है, जिसपर नत्रिकाम्लकी क्रियासे खटिक नत्रेत बन जाता है:—

$$ख\,क\,ओ_3 + २\,उन\,ओ_3 = ख\,(न\,ओ_3)_2 + क\,ओ_2 + उ_2\,ओ$$
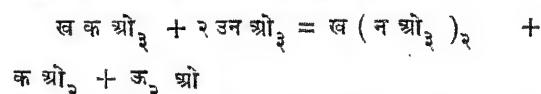
(खड़िया) + (नत्रिकाम्ल) = (खटिक नत्रेत) + (कर्बनद्विओषिद) + (पानी)

इस प्रकार जब खटिक नत्रेतका घोल बन जाता है तो उसे कढ़ाईमें उड़ाकर रवे (crystals) बना लेते हैं।

जो गैसें नत्रिकाम्लमें परिवर्तित नहीं हो पातीं, दूसरे कमरोंमें पहुंच कर, जहां पक्के कांचके टुकड़े सोडियम उदितके घोलसे भीगे होते हैं, सोडियम नत्रित बनाती हैं।

$$२\,सो\,उ\,ओ + न\,ओ + न\,ओ_2 = २\,सो\,न\,ओ_2 + उ_2\,ओ$$
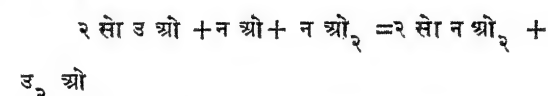
इस प्रकार कोई गैस खराब नहीं हो पाती।

खटिक नत्रेत जो इस प्रकार प्राप्त होता है, वह खादके काममें आता है और जो सोडियम नत्रित (nitrite) बनता है वह जर्मनी इत्यादि देशोंमें रंग बनानेके काममें आता है।

(असमाप्त)

दृष्टि विभ्रम

[ले०—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद]

एक लेखमें मैं बतला चुका हूं कि साधारण सी बातोंमें भी प्रकृति देवीकी कोई ऐसी नीति छिपी रहती है, जिसके न जाननेसे मनुष्य व्यावहारिक-बुद्धि-विहीन तथा गंवार समझा जाता है। इस व्यावहारिक-बुद्धि-विहीनता-की मात्रा जब बहुत बढ़ जाती है और किसी घटनाका कारण अंटका संट गढ़ लिया जाता है तब उसीका नाम मिथ्या कल्पना या अन्ध विश्वास पड़ जाता है। मैंने उसी लेखमें बतलाया है कि यह सब विषमताएं और मिथ्या कल्पनाएं तभी दूर हो सकती हैं जब सब लोगोंको, बालक बालिकाको, ऊंच नीचको, शिक्षा दी जाय, नहीं तो समाज सुधारक लाख सिर पटके, राज्य नियम कठोरसे कठोर कर दिये जायं, लोग डरसे या संकोचसे विचार बदले हुए दिखाई पड़ेंगे, परन्तु दिलसे उसी मिथ्या कल्पना और दृष्टि विभ्रमके शिकार बने रहेंगे।

हमारे देशमें लोगोंकी अधिकांश सम्मति है कि स्त्रियोंके विचार तो कभी बदल ही नहीं सकते, इनकी मिथ्या कल्पनाएं कभी दूर ही नहीं की जा सकतीं, क्योंकि इनका तो ऐसा स्वभाव ही होता है। मैंने अभी लेखमें दिखलाया है कि स्वभावकी दशा परिस्थिति पर निर्भर रहती है। यदि साथ मिथ्या कल्पना करनेवालोंका पड़ा तो मिथ्या कल्पना करनेका ही स्वभाव पड़ जाता है, झाड़ फूंक ही रोग दूर करनेका साधन समझा जाता है। और यदि साथ बुद्धिमानों और विद्वानोंका पड़ा तो वही स्त्रियां युक्तिके साथ तर्क करनेवाली और बुद्धिमती हो जाती हैं। पुराने भारतमें एक नहीं सैकड़ों उदाहरण ऐसी स्त्रियोंके मौजूद हैं। नवीन और मध्यकालीन भारतमें इनकी कमी नहीं। बहुत सी ऐसी महिलाएं हो गयी हैं, जिन्होंने घरका उत्तम प्रबन्ध करनेके साथ साथ राज्य प्रबन्ध, सेनाका प्रबन्ध और शास्त्रार्थोंका प्रबन्ध करनेमें नाम पैदा कर लिया है। इसलिए 'सब धान बाईस पसेरी' वाली कहावतके अनुसार सब स्त्रियोंको अंध विश्वासपर चलनेवाली कहना उचित नहीं। यदि इनकी अधिकांश संख्या ऐसी हो तो भी साधारण नियम नहीं बनाया जा सकता कि स्त्री जाति ही ऐसी होती है, क्योंकि आजकल या अतीत कालमें स्त्रियोंकी अधिकांश संख्या ऐसी ही रही है, तो इसका कारण यह है कि उनकी बुद्धि शुद्ध करनेका कोई साधन ही नहीं बतलाया गया, जिसके अभावसे स्त्रियोंकी ही नहीं वरन् पुरुषोंकी भी अधिकांश संख्या मिथ्या कल्पनाओं-से पूर्ण पायी जाती है।

General साधारण]

मिथ्या कल्पना और अन्ध विश्वासका कारण होती है विज्ञान--विहीनता अथवा विद्या विही-नता। दो तीन बरसकी बात है कि मेरे कुटुम्बमें एक बालकको अतीसार रोग हो गया था। बालक देहातमें था जहां कोई वैद्य हकीम नहीं मिलता। रोगी या तो परमेश्वरके ही अधीन रहता है या बूढ़ोंके अनुभवमें आयी हुई जड़ी बूटियोंका प्रयोग करता है। कहीं कहीं झाड़ फूंक और मंत्र यन्त्रसे ही काम निकाला जाता है क्योंकि डूबतेको तिनकेका सहारा भी बहुत कुछ ढाढ़स दिलाता है। उधरके गांवोंमें यह बात सब औरतें जानती हैं कि अतीसार रोग एक प्रकारके मन्त्र यन्त्रसे भी अच्छा होता है। इसी विश्वासके बलपर एक बूढ़ी मालिन बुलायी गयी, जो इस बातमें बड़ी सिद्धहस्त समझी जाती थी। उसने झाड़ना आरम्भ किया। मैं भी कुतूहलसे देखने लगा कि यह क्या युक्ति करती है और इस युक्तिसे रोग अच्छा हो जाता है कि नहीं। जो कुछ युक्ति की गयी थी वह नीचे लिखी जाती है—

मिट्टीका एक घड़ा पुराना या नया, चाहे जैसा हो, मंगाया गया। एक बड़ी थाली मंगायी गयी, जिसमें आधेके लगभग पानी भरा गया। कुछ घास या सरपत जलाकर घड़ेके अन्दर छोड़ दिया गया और जलती घास घड़ेमें छोड़नेके बाद ही घड़ा थालीके पानीमें औंधा रख दिया गया। रोगी बालकसे कहा गया कि थालीके पास बैठकर घड़ेके पेंदेको हाथसे छुए रहे। इतना करके मालिन लगी मंत्र पढ़ने। जैसे जैसे वह मंत्र पढ़ती जाती थी घड़ेमें पानी चढ़ता जाता था और स्त्रियां कहती जाती थीं कि देखो रोग पानी पी रहा है और शान्त हुआ जाता है, मंत्रका असर बड़ा भारी है, इत्यादि इत्यादि।

मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि इसमें मन्त्रका क्या प्रभाव है, मैं तो बिना मंत्र पढ़े घड़ेसे पानी पिलवा सकता हूं और घड़ा ही क्यों किसी लोटे, गिलाससे भी यही बात करायी जा सकती है। मैंने उसी समय एक लोटा लेकर उसमें रद्दी काग़ज़ जलाकर छोड़ दिया और इसी गरम लोटेको औंधे मुंह दूसरी थालीमें पानी भरकर रख दिया। थोड़ी देरमें लोटेमें भी पानी चढ़ने लगा। थालमें मैंने पानी थोड़ा ही रखा था, इसलिए लोटेने सब पानी सुड़क लिया और पीछेसे सुड़कनेकी आवाज़ भी आने लगी। इसपर मालिन कहने लगी कि हां, हां कोई कोई काग़ज़ जलाकर भी यह मन्त्र जगाते हैं और इसका असर और भी प्रबल होता है। देखो बाबूजीका लोटा तो कुल पानी सुड़क गया। इससे परीक्षा हो जाती है कि रोग जड़ मूलसे भग गया। बाबूजी ज़रूर मन्त्र जानते हैं।

इतनी बातें सुनकर मैंने कहा कि इसमें मन्त्र पढ़नेकी तो कोई ज़रूरत ही नहीं है, मैं ऐसी बातें प्रति दिन विद्यार्थियोंको पढ़ाया करता हूं और इसका कारण भी जानता हूं, जो यह है—जलता हुआ काग़ज़, कपड़ा, घास, फूस या आग ही किसी बर्तनमें रखनेसे बर्तनके भीतरकी हवा गरम होकर बहुत कुछ निकल जाती है। जब इस दशामें बर्तन औंधाकर पानीमें रखा जाता है, पानीके कारण और आगके बुझ जानेके कारण भीतरकी हवा ठंडी हो जाती है और उसका जोर उतना नहीं रहता जितना गरम हवाका होता है। इसीसे पानी चढ़ जाता है। यही बात दूसरी तरह भी दिखलायी जा सकती है अर्थात् जलता हुआ काग़ज़ या फूस बर्तनके भीतर छोड़नेकी जगह बर्तनको ही आगपर रखकर थोड़ी देर तक गरम कर लिया जाय और फिर औंधे मुंह पानीमें रखा जाय तो भी पानी बर्तनमें चढ़ जाता है।

इसपर सब औरतें हँस पड़ीं। मालिन कहने लगी—"भैया ऐसे ही कहते हैं इनकी बातपर विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि पढ़े लिखे आदमी इसी तरह सब बातोंको झूठ मानते हैं। न तो यह कभी माताकी पूजा करने जाते हैं और न बहुत दान बान ही करते हैं।"

बस बात ख़तम हो गयी मालिन अपने घर गयी। लड़का जैसे पहले था वैसा ही अब भी। पीछे एक वैद्यकी शरण ली गयी तब कहीं रोग अच्छा हुआ। यदि यह वैद्य पहले ही मिल जाते तो शायद झाड़ फूंक न होने पाती और न रोग कष्ट साध्य होने पाता, परन्तु किया क्या जाय? जहां पेड़ नहीं होते वहां अरंड ही रूख समझा जाता है। सार यह कि मिथ्या कल्पनाएं अथवा अन्धविश्वास बातोंसे दूर नहीं हो सकते और न इनके साथ कड़ाई करनेसे ही उपकार हो सकता है। इनको हटानेके लिए सबसे सरल और वैज्ञानिक युक्ति यही है कि जिन जिन अभावोंसे ऐसी कल्पनाएं होती हैं उनका प्रबन्ध किया जाय। यदि रोग दूर करनेमें चाहा जाय कि स्त्रियां झाड़ फूंक न करने पावें तो उचित है कि ऐसी ओषधियोंका समुचित प्रबन्ध किया जाय जो रोगोंमें लाभ पहुंचावें। यदि यह चाहा जाय कि मिथ्या कल्पनाएं दूर हों तो वैज्ञानिक शिक्षा ऐसी दी जाय कि भ्रम दूर हो जाय। यह समझ लेना चाहिये कि मिथ्या कल्प-

ना उसी समय की जाती है जब कोई बात आश्चर्य-जनक दिखाई पड़ती है और उसका कारण मालूम नहीं रहता। इसी समय लोग समझने लगते हैं कि इसका कारण दैवी या पैशाचिक है, जो मनुष्योंके अधिकारके सर्वथा बाहर है। स्त्रियोंको बाहरी संसारका बहुत कम अनुभव रहता है। इस कारण जो बात बाहर आने जानेवाले लोगोंको साधारण सी मालूम पड़ती हैं, वही स्त्रियोंको दैवी या पैशाचिक। इसमें स्त्रियोंका कोई दोष नहीं है, दोष है उनकी विद्या--विहीनताका।

पाठको, चला था दृष्टिविभ्रम (optical illusion) पर कुछ कहने परन्तु दूसरे ही विभ्रमकी कथा छिड़ गयी। आशा है कि अगले लेखोंमें उस विभ्रमपर भी आप लोगोंसे कुछ कहूंगा जो प्रकाशकी किरणोंके टेढ़े हो जानेसे हो जाता है, जैसे सूर्य्योदय या सूर्य्यास्तके समय सूरजका बड़ा और कुछ कुछ चपटा दिखाई पड़ना, सूरजका रंग लाल दिखाई पड़ना, पानीकी गहराई जितनी वास्तवमें होती है उससे कम जान पड़ना, रेतीले मैदानोंमें पानीका मैदान जान पड़ना इत्यादि। इससे आपको मालूम पड़ेगा कि स्त्रियां ही दृष्टिविभ्रमका आखेट नहीं होतीं, वरन् पुरुष भी हो सकते हैं।

धनुष्टङ्कार अथवा टिटानसके जीवाणु

[ले०—श्री० मुकट विहारीलाल दर, बी. एस-सी.]

धनुष्टङ्कार अथवा टिटानस (tetanus), जिसको lock-jaw या दन्ती बंध जाना भी कहते हैं, प्रायः कम होने पर भी, बड़ा भयंकर रोग है। यद्यपि यह रोग और जानवरोंको भी हो सकता है, परन्तु विशेषतः यह मनुष्य तथा घोड़ेको होता है। इस रोगकी अवधि (जीवाणुओंके शरीरमें प्रवेश करनेके समयसे लेकर रोगके विकास होनेके समय तक) बहुधा ४ से १४ दिन तक हुआ करती है।

Bacteriology जीवाणु शास्त्र]

धनुष्टङ्कारका जीवाणु एक लंबी सी शलाका (bacillus) होती है। इसके स्पोर्स (spores) अर्थात् दानोंका नाश करना बहुत मुश्किल है। धनुष्टङ्कार-शलाकाका स्वाभाविक घर धरती ही है, लेकिन उसे घास खानेवाले जानवर—जैसे घोड़ा, गाय, भेड़—निगल जाते हैं और वह प्रायः इन्हीं जानवरोंकी आंतोंमें, खासकर घोड़ेकी आंतों में, बिना रोग पैदा किये वृद्धि पाती है। इसीलिए यह अस्तबलके आस पास अधिक पाई जाती है।

चित्र ११ = धनुष्टङ्कारके जीवाणु और इनके दाने।

कुछ प्रकारकी धरतीमें तो धनुष्टङ्कारके जीवाणु बहुत पाये जाते हैं। न्यू हेब्रिडीज़ द्वीपकी जंगली जातियां अपने तीरोंको, दलदलमें बने हुए केकड़ोंके बिलोंमें डालकर, धनुष्टङ्कारके जीवाणुओंसे विषैला बनाते हैं।

इनमें एक विशेषता यह है कि, यदि और प्रकारकी शलाका साथ न हों, यह हवाकी अनुपस्थितिमें भी अपनी वृद्धि कर सकते हैं। और जीवाणुओंके साथ तो प्रायः खुले घावमें भी बढ़ने लगते हैं।

धनुष्टङ्कारके जीवाणु घावके द्वारा शरीरमें घुसते हैं और कभी कभी यह ऐसे छोटे घावों द्वारा भी प्रवेश कर जाते हैं, जिनकी कभी कुछ फिक्र भी नहीं होती। यह प्रायः ऐसे ही घावोंमें ज्यादा पाये जाते हैं, जो किसी मैले (दूषित) अस्त्र द्वारा हुए हों, क्योंकि धूल और मैलमेंके बैक्टीरिया ऐसे ही घावोंमें रह जाते हैं। यह तंग गहरे घावोंमें, जैसा कि किसी गंदी कीलसे हो जाता है, सबसे मज़ेमें बढ़ता है, क्योंकि ऐसा घाव जल्दी भर जाता है और धनुष्टङ्कार आदिके जीवाणु धूलके साथ त्वचाके नीचे, गहराईपर, रह जाते हैं। कारतूस और आतिशबाज़ीके घाव भी बड़े भयानक होते हैं। धनुष्टङ्कारके दाने

खालके ऊपरकी धूलमें रहते हैं और छोटे तेज़ बारूदके रेज़े व आतिशबाज़ीके टुकड़े मांसमें गहरा घाव करके इन दानोंको तथा अन्य जीवाणुओंको, जो वहां प्रस्तुत हों, मांसमें घुसेड़ देते हैं।

धनुष्टङ्कारकी शलाका इतनी सामान्य है कि बहुधा वह ऐसे घावोंमें भी प्रवेश कर जाती है, जहां कि वह बढ़ भी नहीं सकती, क्योंकि वास्तवमें उसका घर तो धरती ही है और मनुष्यके शरीरमें वह तभी वृद्धि करती है जब कि सब बातें उसके अनुकूल होती हैं। यह रोग ऐसा भयंकर है कि बुद्धिमानी इसीमें है कि हर एक घावकी खूब देख भाल तथा बचाव किया जाय। इससे एक पंथ दो काज—धनुष्टङ्कार-जीवाणुओंसे रक्षा होनेके साथ ही साथ मवाद उत्पादक बैक्टीरियासे भी बचाव हो गया। इसी लिए गंदी चीज़ों द्वारा हुए घावोंको कृमिघ्न (जीवाणुनाशक पदार्थसे disinfectant) अच्छी तरह धोना चाहिये। बच्चोंके नंगे पैरोंपरके घावोंकी भी खूब ख़बरगीरी करनी चाहिये, क्योंकि यह अकसर (प्रायः) ज़मीनपर लगते रहते हैं, जिससे धनुष्टङ्कारके जीवाणुओंके पहुंच जानेकी अधिक संभावना रहती है। जब कभी ऐसा घाव लग जाय, जिसमें धनुष्टङ्कारके जीवाणुओंके घुसने और बढ़नेकी अधिक संभावना हो, तो सबसे अच्छा तो यह है कि उसका डाक्टरसे ही इलाज कराया जाय। क्योंकि यह रोग यकायक हो जाता है और कभी कभी घाव ठीक भरा हुआ मालूम देनेके कई दिन बाद भी हो आता है।

धनुष्टङ्कारका जीवाणु शरीरमें बहुत नहीं बढ़ता, परन्तु उससे जो जीवाणुविष (toxin) पैदा होता है वह बहुत ही तेज़ होता है। यह विष मनुष्यके लिए, सुखाये हुए काले कोबरा (cobra) सांपके विषसे बीस गुना ज़्यादा तेज़ होता है। यह स्नायुमंडल (nervous system) को विषैला कर देता है और तमाम पट्ठोंको (पेशियां) तान देता है। धनुष्टङ्कारका एक पहिला लक्षण यह है कि मुख मंडल और गरदनकी पेशियां (पट्ठे) सख़्त हो जाती हैं।

धनुष्टङ्कारकेलिए ऐन्टीटाक्सिन (antitoxin) अर्थात् प्रतिविष घोड़ेके खूनसे बनाया जाता है। परन्तु यह रोगके अच्छा करनेमें बहुत शक्तिशाली नहीं जान पड़ा है, जब तक कि रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें तथा अधिक परिमाणमें न दिया जाय। यह रोगके रोकनेकेलिए बहुत अच्छा है और इसलिए जब किसी मनुष्यको ऐसा घाव हो जाय जिससे धनुष्टङ्कार हो जानेका भय हो तो ऐन्टीटाक्सिनका (anti toxin) प्रयोग करना चाहिये। अगर ऐसा किया जायगा तो रोग प्रायः कभी न होगा।

भारतमेंकी धनुष्टङ्कारकी मृत्युसंख्या प्राप्त नहीं है, लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका (United States of America) में सन् १९०३ में ४४४९ घायल मनुष्योंमेंसे ४०६ धनुष्टङ्कारसे मरे, परन्तु सन् १९०७ में जब कि प्रतिविषका (antitoxin) बहुत ज्यादा प्रयोग किया गया था ४४१३ घायलोंमेंसे केवल ६२ मरे!

कई अन्य प्रकारके जीवाणु जो कि धनुष्टङ्कार जीवाणुके संबंधी हैं धरती और गंदे पानीमें रहते हैं। इनमेंसे एकका नाम (bacillus ærogenes capsulatus) है जो सख़्त सूजन पैदा कर देता है। जब यह जीवाणु घावमें असर कर लेते हैं तो वे गैससे (gas) भर जाते हैं और उनमें बहुत ख़राब बदबू आने लगती है। कभी कभी यह सूजन बढ़ते बढ़ते गैन्ग्रीन (gangrene) हो जाती है। यह बैसिलस धनुष्टङ्कार बैसिलसका तरह प्रायः खुले मुंहके घावोंमें नहीं होते, इसीलिए हम लोगोंको अपने घावोंकी और भी रक्षा करनी चाहिये।

रोग उसके कारण और उससे बचनेके उपाय

[ले०—साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ शास्त्री रेऊ]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

हम पहिले लिख चुके हैं कि रोगसे बचनेके दो ही उपाय हैं। एक तो रोग उत्पन्न करनेवाले कीटाणुओंसे बचना और दूसरे अपने रक्तके श्वेताणुओंको पुष्ट रखना। इनमेंसे पहिले उपायका तो वर्णन हो चुका। अब दूसरे उपायका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

पाठकोंने रक्तके श्वेताणुओंके वर्णनमें यह भी पढ़ा होगा कि पुष्ट श्वेताणु ही आक्रमणकारी कीटाणुओंका अच्छी तरह मुकाबिला कर सकते हैं और आवश्यकतानुसार रोग संहारक रस (serum) भी बना सकते हैं। अतः यहांपर हम पहिले रुधिरके श्वेताणुओंकी पुष्टताका वर्णन करके अन्तमें उक्त रोग संहारक रस (serum) का वर्णन करेंगे।

जिस समय रोगके कीटाणु शरीरमें प्रविष्ट होकर श्वेताणुओंसे युद्ध आरम्भ कर देते हैं उस समय वैद्य और डाक्टर लोग रोगीको ऐसी औषधियोंका सेवन कराते हैं, जो रुधिरमें पहुंचकर श्वेताणुओंके बलको बढ़ाती और आक्रमणकारी कीटाणुओंको शिथिल कर देती हैं। तथा पाचन क्रियाको सुधार कर शरीरमें एकत्रित हुए मलको बाहर निकाल देती हैं। इससे रुधिरके श्वेताणु शत्रुओंको नष्ट करनेमें समर्थ हो जाते हैं और शरीर नीरोग हो जाता है। विद्वानोंने कुछ ऐसी औषधियोंका भी पता लगाया है, जो श्वेताणुओंको भिन्न भिन्न प्रकारके रोगके कीटाणुओंके लिए भिन्न भिन्न प्रकारके संहारक रस बनानेमें सहायता देती हैं। जैसे मौसमी बुखारमें कुनैन। गरमीकी (आतशक) बीमारीमें पारेके यौगिक अथवा सालवर्सान। (यह सालवर्सान नामक औषधि संखियेका यौगिक है) आमातिसारमें इमेटीन, और काला आज़ारज्वरमें एण्टीमनी टार्ट्रेट। परन्तु अभी तक ऐसी बहुत ही कम औषधियोंका पता लगा है जो खास खास रोगोंके कीटाणुओंको नाश करनेमें अमोघ हों। अतः बहुधा रोगीको उपरोक्त श्वेताणुओंके बलको बढ़ानेवाली औषधियां ही दी जाती हैं।

बहुत से कीटाणु ऐसे होते हैं कि उनके नाश करनेके लिए उनके संहारकारी रसका एक विशेष मात्रामें होना आवश्यक है और उक्त रसके नियत परिमाणमें बननेके लिए एक नियत समयकी भी आवश्यकता होती है। अतः उस नियत समयके पहिले ऐसे रोगोंके कीटाणु नहीं मर सकते। इसीसे उतने दिन तक आक्रान्त प्राणीका शरीर श्वेताणुओं और कीटाणुओंकी संग्रामभूमि बना रहता है और उक्त संग्रामके चलते रहने तक उस प्राणीको ज्वर आदि सताते रहते हैं। ऐसे रोगोंमें निकाला, मोतीजिरा, चेचक आदि हैं।

बहुत सी बीमारियां ऐसी होती हैं कि एक बार होनेपर उनके दुबारा होनेका भय बहुत ही कम रहता है। इसका यह कारण है कि शरीरमें जो उनके नाशके लिए रस बनता है उसकी कुछ मात्रा रुधिरमें सदैव बनी रहती है और जब कभी उस रोगके कीटाणु दुबारा शरीरमें पहुंचते हैं तो रुधिरके श्वेताणु उस बचे हुए संहारक रसकी सहायतासे इनका नाश कर देते हैं। ऐसी बीमारियोंमें निकाला और चेचक आदि हैं।

बहुत सी बीमारियां ऐसी भी होती हैं कि एक बार आक्रमण करनेके बाद नियत समयतक उनका भय नहीं रहता। इसका भी यही कारण है कि उनका नाशक रस प्राणीके शरीरमें उस समय तक विद्यमान रहता है।

कई बीमारियां ऐसी भी होती हैं कि वे एक विशेष जातिके पुरुषोंपर आक्रमण नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनके रुधिरमें उक्त बीमारियोंके उत्पादक कीटाणुओंके नाशकरनेकी शक्ति वंशपरम्परासे

Hygiene स्वास्थ्य रक्षा]

चली आती है। जैसे पनामाकी नहरके आस पासके प्रदेशोंमें रहनेवाले वहांके आदिम निवासियोंपर पीतज्वरके कीटाणुओंका असर नहीं होता। अफ्रीकाकी बहुत सी जंगली जातियां कई रोगोंसे रोगाक्षम हैं।

इसी प्रकार एक ही प्रकारके रोगके कीटाणुओंका प्रभाव भी भिन्न भिन्न पुरुषोंपर भिन्न भिन्न प्रकारका होता है अर्थात् किसीको वही रोग अधिक दुःख देता है और किसीको कम। यह बात भी शरीरस्थ भिन्न भिन्न कीटाणु नाशक रसोंकी मात्रा और श्वेताणुओंकी सबलता और निर्बलतापर ही निर्भर है।

पाश्चात्य विद्वानोंने इन रोगनाशक रसोंकी वृद्धिकेलिए सीरम (serum) चिकित्साकी प्रणाली आविष्कृत की है। इससे शरीरमें अनेक रोगनाशक रस शीघ्र उत्पन्न किये जा सकते हैं, जिनसे मनुष्य एक नियत समय तक (जब तक कि उक्त रस शरीरमें विद्यमान रहे) उन उन रोगोंसे बच सकते हैं। इसको टीका लगाना कहते हैं। यह टीका प्रत्येक रोगकेलिए भिन्न भिन्न प्रकारका होता है और इसका असर भी भिन्न भिन्न समय तक ही रहता है। जैसे चेचकके टीकेका असर दस बारह वर्ष तक रहता है और यदि उक्त समयके बाद दुबारा लगवा लिया जाय तो सारी उम्रके लिए निश्चिन्तता हो जाती है। प्लेगके टीकेका असर तीन चार मास तक रहता है। इसी प्रकार निकाले आदिका भी समझना चाहिये।

यद्यपि कभी कभी ऐसा भी देखनेमें आता है कि चेचक आदिका टीका लगवानेपर भी यह बीमारियां हो जाती हैं। तथापि उनकी भीषणता घट जाती है और किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना नहीं रहती, क्योंकि इन रोगोंका नाशक रस रुधिरमें विद्यमान होता है।

सीरमके बनानेकी विधि

जिस प्रकार अफीम खानेवाला पुरुष प्रारम्भमें थोड़ी मात्रासे अफीम खाना आरम्भ करके कुछ समयके बाद बड़ी मात्रा भी खाने लगता है और उससे उसके मरनेका भय नहीं रहता। परन्तु यदि वही बड़ी मात्रा किसी अफीम नहीं खानेवालेको खिला दी जाय,तो वह शीघ्र ही मर जाता है। उसी प्रकार विशेष विशेष युक्तियों द्वारा जिलेटीन आदिके मिश्रणमें रोगके कीटाणुओंको उत्पन्न करके उनसे उत्पन्न हुए विषको छांटकर थोड़ा थोड़ा घोड़ेके शरीरमें प्रविष्ट करते हैं और धीरे धीरे मात्रा बढ़ाते जाते हैं। इस प्रकार कुछ समयमें वह घोड़ा एक बहुत बड़ी मात्राको सहन करने लायक हो जाता है; जो यदि उपरोक्त प्रकारसे बिना साधे घोड़ोंको दी जाती तो एक ही नहीं अनेक घोड़ोंके प्राणनाश करनेमें समर्थ होती। इसका कारण यह होता है कि उक्त विषमय रसमेंसे रोगके कीटाणु तो पहिले ही निकाल लेते हैं और केवल वह रस थोड़ा थोड़ा करके घोड़ेके शरीरमें प्रविष्ट करते हैं। उस विषमय रसके रुधिरमें प्रविष्ट होते ही उसके नाशकेलिए श्वेताणु प्रतिविष बनाना प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे शीघ्र ही विषका प्रभाव नष्ट हो जाता है। उसमें जीवित कीटाणुओंके न होनेसे श्वेताणुओंको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता और न रोगके बढ़नेकी ही सम्भावना रहती है। इसी प्रकार थोड़ा थोड़ा विष बढ़ाते जानेसे उसका संहारक रस भी रुधिरमें अधिकाधिक मात्रामें एकत्रित होता रहता है और जब यह विषनाशक रस बहुत अधिक मात्रामें घोड़ेके रुधिरमें एकत्रित हो जाता है तब वह घोड़ा पुराने अफीमचीकी तरह एक बहुत बड़ी विषकी मात्राको भी पचाने लगता है। ऐसी अवस्थामें कीटाणु-विषका देना बंद कर दिया जाता है, क्योंकि इस समय उस घोड़ेके रुधिरमें एक विशेष रोगके, जिसका कि विष उसके शरीरमें प्रविष्ट किया गया था, नाश करनेवाला रस अभीष्ट परिमाणमें एकत्रित हो चुकता है। इस रसको प्राप्त करनेकी रीति यह है कि उक्त घोड़ेकी एक बड़ी रुधिरवाहिनी शिरामें चीरा

लगाकर आवश्यकतानुसार रुधिर निकाल लेते हैं और उस शिराको पीछे सी देते हैं। निकाले हुए रुधिरको शुद्ध स्थानमें रख देते हैं, जिससे थोड़ी ही देरमें उसमेंके रक्ताणु आदि जमकर अलग हो जाते हैं और केवल हलके पीतवर्णका रस (serum) रह जाता है। इसीको विशेष क्रियाओं द्वारा शुद्ध करके और कांचकी नलियोंमें भरके शफाखानों आदिमें पहुंचाते हैं। परन्तु इसके प्रविष्ट करनेके लिए पिचकारीको पहिले साफ कर लेते हैं। यदि इसमें थोड़ी सी भी असावधानता की जाय तो उसकी अग्रभागकी सूईके साथ अन्य अनेक प्रकारके कीटाणु रुधिरमें घुस जायँगे। अतः प्रत्येक वार (प्रत्येक मनुष्यके लगानेके पूर्व उसके मुखको कृमिघ्न पदार्थोंमें धोकर शुद्ध कर लेते हैं।

सीरम (serum) रुधिरमें पहुंच कर अपने समान विषनाशक रस बनानेमें सहायता देता है; जिससे शरीरमें उक्त प्रकारका रस पहिलेसे ही अधिक मात्रामें एकत्रित हो जाता है। अतः उसपर रोगके कीटाणु अपना प्रभाव नहीं जमा सकते और जब तक यह रस रुधिरमें मौजूद रहता है रोगके होनेका डर नहीं रहता। इसीसे प्लेग आदिके दिनोंमें लोग पहिलेसे ही टीका लगवाकर बहुत कुछ रक्षाका उपाय कर सकते हैं।

हमारा कल्याण इसीमें है

[ले०— महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद]

प्रकृतिके कुछ दृश्य ऐसे होते हैं, जिनमें वस्तुकी दशा वैसी नहीं दिखाई पड़ती जैसी सचमुच होती है। ऐसे दृश्य प्रतिदिन देखनेमें आते हैं, परन्तु इनके सम्बन्धमें बहुत कम ऐसे होते हैं जिनके चित्तमें यह प्रश्न उठता है कि ऐसी घटनाएं क्यों होती हैं। इसका कारण यह है कि जो वस्तु प्रति दिन या बहुधा देखनेमें आती है उसमें नयापन कुछ नहीं रहता और प्रश्न उठते हैं उन घटनाओंपर जो पहले कभी नहीं दिखाई पड़ी हैं या जो बहुत कम देख पड़ती हैं।

General साधारण]

हर देश और हर कालमें इसी नयेपनको बार बार सामने लाकर शिक्षा देनेके लिए और मनुष्यकी बुद्धि बढ़ानेके लिए तरह तरहकी मन बहलानेवाली तर्कीबें सोची गयी हैं। आज कल जितने उन्नत देश हैं सबमें यह नियम सा हो गया है कि जब तक वहांके देशवासी दूसरे देशमें जाकर नयी नयी चीज़ोंको न देख लें तब तक उनकी शिक्षा अपूर्ण समझी जाती है। यही कारण है कि अमेरिका यूरोप और जापानके छात्र हज़ारोंकी संख्यामें दूसरे देशोंमें जाकर वहांकी अद्भुत अद्भुत वस्तुएं देखते हैं। इसी कारण वहांके प्रत्येक स्कूल और कालेजमें कुछ संग्रह ऐसा होता है जिसमें वे सब वस्तुएं रखी जाती हैं, जो साधारण लड़कोंकी निगाहके सामने कभी नहीं पड़ सकतीं। इस संग्रहसे बड़ा भारी लाभ यह होता है कि छोटे छोटे बच्चोंके भीतर कुतूहल बढ़ता है और वे उसके सम्बन्धमें तरह तरहके प्रश्न करते हैं, जिनके उत्तरमें सहज ही ऐसी बातें मालूम हो जाती हैं जो बरसोंके कठिन परिश्रम और डाट डपटसे भी नहीं मालूम हो सकतीं और यदि मालूम भी हो जाती हैं तो उनका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता, क्योंकि वे चीज़ें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई जातीं।

भारतवर्षमें तो ऐसे संग्रहालय बड़े बड़े नगरोंमें ही कहीं कहीं देखे जाते हैं। जहां हैं भी वहां बड़े बड़े शौकीन तमाशा देखनेके विचारसे जाते हैं। छोटे छोटे बच्चों या छात्रोंके लिए वहां तक पहुंचनेका अवसर ही नहीं मिलता। ये जब कभी बड़ोंके साथ जाते भी हैं तो देखनेके लिए इतनी सामग्री मौजूद रहती है कि जल्दी करनी पड़ती है और किसी चीज़को वे इस प्रकार नहीं देख पाते कि कुछ शिक्षा मिले।

बालकोंका तो यह स्वभाव होता है कि छुटपनमें वे जितनी नयी चीज़ें देखते हैं उतने ही

प्रश्न नहीं वरन् उनके कई गुने प्रश्न करते हैं और जब तक किसी चीज़को मनभरके जान नहीं जाते तब तक उसपर प्रश्न करते रहते हैं। जो माता पिता या अन्य सम्बन्धी सुशिक्षित होते हैं वे तो बालकोंके प्रश्नोंके उत्तर जहां तक होता है इस प्रकार देते हैं कि उनकी जिज्ञासा बढ़ती है और इसीसे धीरे धीरे उनकी शिक्षा भी होती जाती है। परन्तु जो माता पिता या पड़ोसी गंवार, निपढ़ और मूर्ख होते हैं वे उचित उत्तर देनेकी जगह डाट डपटसे काम लेते हैं, जिसका फल यह होता है कि लड़के प्रश्न करना छोड़ देते हैं। वही लड़के जब बढ़ते हैं तब ऐसे हो जाते हैं मानों उन्होंने दुनिया कभी देखी ही नहीं है। इसपर लोग कहते हैं कि इसमें व्यावहारिक बुद्धिका तो नाम नहीं है। ऐसे महानुभाव यह नहीं समझते कि व्यावहारिक बुद्धि बच्चा माके पेटसे नहीं ले आता वरन् यह उस अनुभवका नाम है जो व्यवहारसे प्राप्त होता है, जिसके कारण ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां भी सजग और चैतन्य हो जाती हैं। व्यवहारमें जो वस्तुएं बहुधा आती हैं, उन्हींके बारेमें बतलाया जा सकता है और जिन वस्तुओंको किसीने कभी देखा ही नहीं उनके सम्बन्धमें वह बतला ही क्या सकता है और उसके व्यावहारिक बुद्धिकी परीक्षा ही कैसे ली जा सकती है।

नगरनिवासी बहुधा गांववासियोंको गंवार कहते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टिमें गांववाले उतनी चतुराई नहीं दिखा सकते जितनी नगरनिवासी दिखा सकते हैं। उसका भी कारण यही है कि नगर निवासियोंके बहुत सो ऐसी चीज़ें देखनेमें आती हैं जिनका दर्शन गांववालोंको कभी स्वप्नमें भी नहीं हुआ था। फिर भला जब कभी गांववालोंको नगरकी चीज़ोंका व्यवहार करना पड़े तो वे बिचारे उतनी चातुरी कैसे दिखा सकते हैं। इसके प्रतिकूल गांववालोंको लीजिये। इनके मुकाबिलेमें शहरवालोंको जब कभी गांवमें काम पड़ता है तब यह पग पगपर मुहकी खाते हैं। यहां तक कि नगरनिवासी बिचारे उन चीज़ों तकको नहीं पहचान सकते जिनकी इन्हें प्रतिदिन ज़रूरत पड़ती है। यदि इनको किसी जड़ी बूटीकी ज़रूरत पड़े तो मालीसे कहेंगे, परन्तु सामने रहते हुए भी स्वयम् उसके पहचाननेमें असमर्थ हैं। जौ और गेहूंके पौधे उगते समय कैसे होते हैं और बाली निकलनेके पहले तक इनमें कौन सी भिन्नताएं ऐसी होती हैं, जिनके द्वारा भेद बतलाया जा सके, यह कुछ भी नहीं जानते। तो गांववालोंकी समझमें नगरनिवासी वे पेंदीके बर्तन हैं, क्योंकि यदि गांववालोंको नगरकी कृत्रिम वस्तुओंका व्यवहारिक ज्ञान नहीं है तो नगर निवासियोंको उन वस्तुओंका ही ज्ञान नहीं है जिनपर सारा जीवन निर्भर होता है। खुलासा यह कि इस दृष्टि विभ्रमसे गाँववालों और शहरवालोंकी दुनिया न्यारी न्यारी होती है।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो यही विषमता उन बच्चोंके पालने पोसनेमें होती है जो श्रेष्ठ या निकृष्ट कुलमें पैदा होते हैं। श्रेष्ठ कुलमें पैदा होनेके कारण पालने पोसने, रहन सहनका ढंग ऐसा होता है कि बच्चोंको बहुत सी बातें बिना परिश्रमके ऐसे ही मालूम हो जाती हैं। इसके प्रतिकूल निकृष्ट कुलमें पैदा होकर बच्चे गाली गलौज, चोरी, झूठ तथा ऐसी ही और बहुत सी बुराइयां सीख लेते हैं, क्योंकि नित्य प्रति उनको ऐसी ही बातें सीखनेका अवसर मिलता है। इसमें उन बच्चोंका कोई अपराध नहीं है और न यही कहा जा सकता है कि यह बच्चे जन्मसे ही ऐसे होते हैं या इनपर सत्संगका कुछ भी असर नहीं हो सकता। प्रमाणकेलिए यदि कहावतें या पद पेश भी किये जायँ तो इनमें बल नहीं हो सकता। 'कोयला होय न ऊजरो नौ मन साबुन खाय' की भांति दोहे या छंद कहनेवाले भोले भाले भाई यह नहीं समझते कि बीसवीं सदीमें, विज्ञानके प्रकाशमें अब यह उक्ति बिलकुल असत्य सिद्ध हो गयी है। कोयला उजला ही नहीं

वरन् उजाला कर देनेवाला भी सिद्ध हो गया है। हां, संस्कार और विधि सब चीज़ोंकेलिए एक ही सी नहीं हो सकती। कपड़ा उजला करनेकेलिए साबुनकी आवश्यकता पड़ती है। कोयला उजला करनेकेलिए दूसरे संस्कारकी अर्थात् गर्मीकी।

इसी जगह में यह बतला देना चाहता हूं कि कोयला उजाला कैसे कर सकता है। यह तो मालूम ही होगा कि आगसे या दीपकसे जो प्रकाश आता है वह कोयलेसे ही आता है। कोयलेके छोटे छोटे कण गर्म होकर बड़े ऊंचे तापक्रमपर उड़ने लगते हैं और ऊपर उठते हैं यही लौके कारण होते हैं। यदि किसी प्रकार इनका तापक्रम कम कर दिया तो यह फिर काले हो जाते हैं। यदि कोई ठंडी वस्तु इस लौमें रखी जाती है तो यही काला कोयला जम जाता है और कज्जल तैयार होता है। स्त्रियां बच्चोंको कज्जल लगानेके लिए दियेकी टेमसे इसी प्रकार कज्जल तैयार करती हैं। वे चाहें यह न बतला सकें कि कज्जल क्यों इकट्ठा हो जाता है और यह कहांसे आता है, परन्तु व्यवहार भरकेलिए वह जानती हैं। इसका विज्ञान न जाननेसे स्त्रियां या पुरुष यह नहीं बतला सकते कि दियेका धुआं कैसे बन्द किया जा सकता है। इसके प्रतिकूल इस विषयका विज्ञान जाननेवालोंने ऐसी युक्तियां सोचीं कि धुएंका निकलना ही नहीं बन्द कर दिया वरन् खर्चमें भी किफायत कर दी। पहले जो धुआं (काजल) व्यर्थ नष्ट हो जाता था उसे भी लालटेनकी चिमनियोंसे कैद करके जला डाला, आमके आम और गुठलियोंके दाम। स्वयम् बहुत सा रुपया पेटेंट कराके वसूल कर लिया और लोगोंकेलिए किफायत भी हो गयी। इसीको कहते हैं उत्पादनीय परिश्रम (productive labour)। अनुत्पादनीय परिश्रम वह है जिसमें रुपया तो वसूल हो जाता है परन्तु औरोंको हानि पहुंचती है। चोरी करना, डाका डालना, धोका फरेबसे रुपया कमाना, दूसरी श्रेणीवालोंके काम हैं।

कहनेका सार यह कि कोई वस्तु स्वयम् श्रेष्ठ या निकृष्ट नहीं होती वरन् (combination) संयोगके प्रभावसे श्रेष्ठ या निकृष्ट हो जाती है। वही नत्रजन जो हवामें १०० भागमें ८० भाग मिली रहती है, कुछ भी हानि नहीं पहुंचाती। उसीसे पेड़ पौधे ऐसी चीज़ें बना लेते हैं जिनके बिना मनुष्यका जीवन ही असम्भव है। वही नत्रजन नैट्रिक एसिड तथा बहुत से विस्फोटकोंके बनानेके काममें भी ली जाती है। इसलिए यह कहना कि नत्रजन बुरी चीज़ है सत्य नहीं है। जैसे नत्रजनके विषयमें कहा गया है वैसे ही मनुष्योंके विषयमें भी कहा जा सकता है कि कोई मनुष्य स्वभावसे ही लीन या श्रेष्ठ नहीं है, परिस्थितिके कारण वह ऐसा बन जाता है।

जिस देशमें परिस्थिति ऐसी होती है कि सब बिना किसी रुकावटके बढ़ सकते हैं, उसमें श्रेष्ठोंकी संख्या अधिक होती है और उसमें नैतिक बुराइयां भी कम होती हैं। इसके प्रतिकूल जिस देशमें सबको अवसर नहीं दिया जाता, उसमें जितनी उन्नति साधारणतः होनी चाहिये वह भी नहीं होने पाती, क्योंकि प्रकृतिका नियम है कि यदि कृत्रिम नियमोंसे किसीकी उन्नतिमें बाधा पहुंचायी जायगी तो बाधा पहुंचानेवाला भी पूर्णतः उन्नति नहीं कर सकता और धीरे धीरे नीचे गिरता जाता है। विचार करनेवाले भाई इस नीतिको सामने रखकर भारतवर्षकी परिस्थितिकी तुलना करें। उनको मालूम पड़ेगा कि आपसकी बहुत सी विषमताएं इस नीतिके न पालनेसे हुई हैं।

इस नीतिका व्यावहारिक पालन उस समय होगा जब हम लोग सच्चे दिलसे, तन मन धनसे, सबको, ऊंच नीच नर नारीका ध्यान न करते हुए, शिक्षा देनेका प्रबन्ध करें और सबको अपना चरित्र, अपनी आत्मा, तथा अपने इस लोक और परलोकको सुधारनेका अवसर दें। इसीमें हमारा कल्याण होगा, अन्य था नहीं, अन्यथा नहीं।

प्रकाशविज्ञान

वर्तनके नियम

[ले०—प्रोफेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

प्रकाश परावर्तनके नियमोंके ज्ञात हो जानेके अतिरिक्त प्रायः १००० वर्ष तक इस विज्ञानमें कुछ उन्नति न हो सकी। इसका एक कारण तो यह था कि प्रयोगोंके अनुभवकी सहायता लिये बिना प्राकृतिक नियमोंका जानना प्रायः असम्भव है और दूसरे उस समयके पण्डित इस मर्त्यलोक सम्बंधी सभी बातोंको तुच्छ समझ कर उनकी ओर ध्यान नहीं देते थे। क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य पारमार्थिक बातोंको जानना था। वे लोग बहुधा कहा करते थे कि प्राकृतिक बातोंका कारण जाननेका प्रयत्न करना सर्वथा व्यर्थ है। सूर्य जितना बड़ा दिखलाई देता है उतना ही है या उससे बड़ा? चन्द्रमा नतोदर है अथवा उन्नतोदर, तारे आकाशमें स्थिर हैं अथवा इधर उधर घूमते हैं? नभोमंडल कितना बड़ा है? क्या यह सर्वथा गतिहीन है? पृथ्वी किस वस्तुपर ठहरी है? इत्यादि प्रश्नोंपर विचार करना वैसा ही है जैसे किसी अज्ञात नाम नगरके विषयमें स्थिर करना कि वह सुन्दर है अथवा नहीं।

किन्तु इसपर भी प्रकृति धीरेधीरे मनुष्यको अपना गुप्त रहस्य सिखाती गई। यह मालूम होनेमें अधिक कठिनाई न हुई कि सभी पदार्थ ऐसे नहीं हैं कि जो प्रकाशको रोक लें। किन्तु ऐसे भी बहुत से पदार्थ हैं जिनमें होकर प्रकाशकिरण स्वच्छन्दतासे निकल जाती हैं। इन्हें पारदर्शक (transparent) पदार्थ कहते हैं जैसे पानी, कांच इत्यादि। जब प्रकाश इन पदार्थोंमें घुसता है तब क्या उसके मार्गमें परिवर्तन होता है? अथवा वह सीधा ही चला जाता है? यह प्रश्न भी अब उपस्थित हुआ।

यह सभी जानते हैं कि यदि एक सीधी लकड़ी पानीमें तिरछी पकड़ी जावे तो वह मुड़ी हुई मालूम होती है और मोड़ ठीक पानीकी सतहपर दिखलाई देता है (चित्र १२)। यह भी बहुतोंने
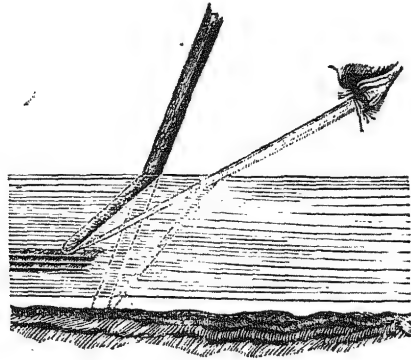
चित्र १२

देखा होगा कि कटोरेमें रखा हुआ रुपया पैसा पानी डालनेसे कुछ ऊंचा नज़र आता है। इस बातको स्पष्टतासे देखनेके लिए कटोरेमें रुपया रखकर उससे इतनी दूर खड़े हो कि रुपयां दिखलाई न दे, किन्तु यदि ज़रा भी आगे बढ़ो तो वह दिखलाई देने लगे। (चित्र १३) अब यदि कोई उस
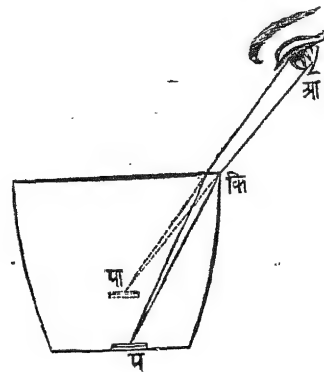
चित्र १३

कटोरेमें धीरेसे पानी भर दे तो रुपया दिखलाई देने लगेगा। इन बातोंसे शीघ्र ही ज्ञात हो गया था कि प्रकाश जब एक पदार्थसे दूसरेमें प्रयाण करता

है तब उसके मार्गमें कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है। वह सीधा न जाकर कुछ घूम जाता है। इस घूम जानेको वर्तन (refraction) कहते हैं। एक टीनका बर्तन जिसमें एक तरफ कांच लगा हो अथवा हो सके तो कांच ही का बर्त्तन लो। उसमें पानी भर कर कुछ लाल स्याही छोड़ दो। फिर अंधेरे कमरेमें एक छोटे छिद्र द्वारा आया हुआ सूर्यका प्रकाश दर्पण द्वारा उस पानीपर डालो (चित्र १४)। प्रकाश पानीमें जाता हुआ दीख पड़ेगा।
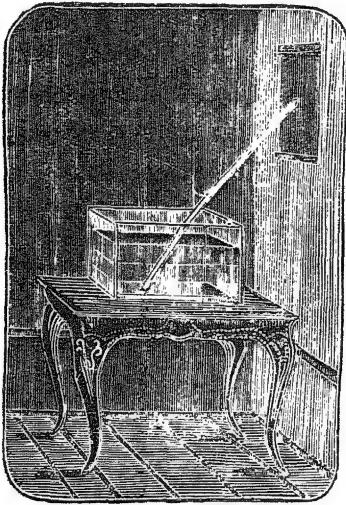
चित्र १४

पानीके ऊपर एक धूलसे भरा कपड़ा झाड़नेसे स्पष्ट देख पड़ेगा कि पानीमें घुसनेके साथ ही प्रकाश मुड़ गया। यह भी स्पष्ट हो जायगा कि जैसे प्रकाश हवामें सीधा चलता है वैसे जल अथवा अन्य पारदर्शक पदार्थोंमें भी सीधा ही चलता है। केवल एक पदार्थसे दूसरेमें घुसते समय घूम जाता है।

जो किरण पानीपर पड़ी उसे आपात किरण (incident ray) कहते हैं। जो पानीमें घुस गई उसका नाम वर्तित किरण (refracted ray) है। परावर्तनके समान फिर वही प्रश्न होता है कि इस मुड़नेका क्या नियम है? किन्तु इस बार परावर्तनके अनुभवके कारण कुछ सुगमता है। ठीक पहलेकी ही भांति जलकी सतहपर मुख्य-लंब मान कर उससे आपात किरण जो कोण बनाती है उसे आपतन कोण (angle of incidence) और वर्तित जो कोण बनाती है उसे वर्तन कोण (angle of refraction) कहते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि यह कोण बराबर नहीं हैं। जलमेंका वर्तनकोण आपतनकोणसे छोटा है। जैसे जैसे आपतनकोण बदला जाता है वैसे वैसे वर्तनकोण भी बदलता जाता है, किन्तु रहता है सदा छोटा ही। फिर भी पहलेकी ही भांति लकड़ीका तख़्ता या टीन-का टुकड़ा पानीमें डुबो कर इन कोणोंके नापनेका उद्योग कर सकते हैं। किन्तु यदि बर्तन गोल हो, कांचका बना हो और उसके किनारेपर कोण नापनेके निशान बने हों और जिस छिद्र द्वारा प्रकाश किरण आती हो वह केन्द्रपर हो तो बहुत सरलता हो सकती है (चित्र १५)। ऐसे ही उप-करणसे एक बार कोण नापे गये और निम्नलिखित परिणाम निकला।
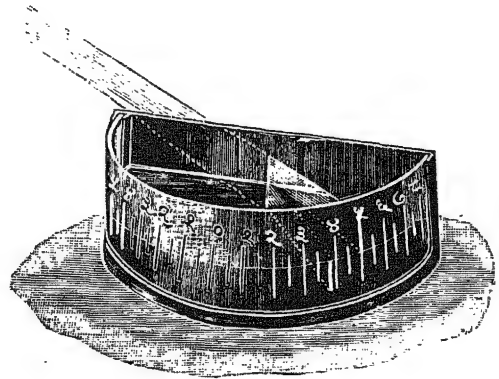
त्रि १५—यदि इस नांदको आधा भरा जाय तो किरण समूहका आधा अंश तो हवामें होगा और नीचेका आधा पानीमें, जैसा चित्रमें दिखाया है। दोनोंके मार्गका अन्तर देखिये।

पिनोंवाली विधिसे कांचमें जो वर्तन होता है, उसके कोण हम बहुत सुगमतासे नाप सकते

आपतनकोण	वर्त्तनकोण
१२°	९°
२४½°	१८°
३१°	२२°
४८°	३४°
६५°	४३°
७६½°	४७°

हैं। ड्राइंग बोर्डपर कागज रख कर उसपर कांचका एक समचतुरस्त्र (rectangular block) टुकड़ा रख दो (चित्र १६)। पैंसिलसे उसका स्थान निर्दिष्ट करनेको रेखाएँ खींच दो। फिर दो पिन आपात किरण बतलानेको ठीक परावर्तनवाले प्रयोगकी भांति ही गाड़ दो। अब दूसरी ओरसे देख कर दो पिन और इस प्रकार गाड़ो कि चारों पिन एक ही सरल रेखापर स्थित मालूम हों, अर्थात् देखनेसे केवल एक ही पिन दिखाई दे।

चित्र १६—आपतन कोण = पफल, वर्तनकोण = बफल'। दूसरे ओर निकलनेवाली किरण आपतन किरणके समानान्तर है।

पिनोंको उखाड़ कर पहिले दो पिनोंको जोड़ती हुई एक रेखा खींचो और दूसरे दोको भी इसी प्रकार एक रेखासे जोड़ दो। यह रेखाएँ उस कांचके टुकड़ेवाली रेखासे जहां मिलें उन दो विन्दुओंको भी एक रेखा द्वारा जोड़ दो। अब स्पष्ट है कि यह रेखाएँ प्रकाशका मार्ग बतलाती हैं। मुख्यलंब खींच कर आपतनकोण और वर्तनकोणको नाप लो और इसी प्रकार चार पांच बार करो। एक प्रयोगमें निम्नलिखित परिणाम निकला।

आपतनकोण	वर्तनकोण
१४°	९°
२७½°	१७½°
४०½°	२५°
५२°	३१½°
६४½°	३३½°

इन प्रयोगोंसे यह तो ज्ञात हो गया था कि परावर्तनके द्वितीय नियमके समान ही वर्तनका भी एक नियम है। अर्थात् आपातकिरण, वर्तितकिरण और मुख्यलंब तीनों एक ही धरातलमें होते हैं। और ऐसी सारणियोंसे यह भी मालूम हो गया था कि यदि कांच और पानीपर एक ही आपतनकोण बनाती हुई किरणें पड़ें तो भी कांचमेंका वर्तनकोण पानीमेंके वर्तनकोणसे सदा छोटा होता है। अर्थात् कांचमें जानेसे प्रकाश पानीकी अपेक्षा कुछ अधिक मुड़ जाता है। किन्तु उनसे कोणोंकी नापके सम्बन्धमें किसी नियमका पता न चल सका। अलहसन, विटैलियो (Vitallio) और राजर बेकन (Roger Bacon) इत्यादि विद्वानोंने इनसे नियम जाननेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु सफलता न हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समयके पहिले जो जो बातें बड़े बड़े विद्वानोंने कही थीं उन्हें इन महाशयोंने सर्वदा सत्य और निर्विवाद समझ लिया और उनकी परीक्षा करनेका प्रयत्न भी न किया। यद्यपि बेकन इतना बड़ा विद्वान था और प्रकाश

विज्ञानपर उसने परिश्रम भी बहुत किया, किन्तु पुराने विद्वानोंकी बहुत सी असंभव और निर्मूल बातोंपर भी उसका अटल विश्वास था। यदि ऐसा न होता तो वह और उसके अनुयायी बहुत सी नई बातें जान जाते। यहां यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि बड़े विद्वानोंका अमुक मत है, अतः यह सत्य ही है, ऐसा बिना परीक्षाके मान लेना विज्ञानके लिए बहुत हानिकर है और विज्ञान सीखने और उसकी सेवा करनेके इच्छुकको इससे सदा होशियार रहना चाहिये। अमुक विद्वानने अमुक बात आंखसे देखी है, उसका विश्वास कर लेनेमें कोई हानि नहीं, किन्तु उस बातपर उन्होंने जो सिद्धान्त खड़ा किया है उसको माननेमें ज़रा सोच विचारकी आवश्यकता है।

जो कार्य बेकन आदि विद्वान न कर सके वही सम् १६८८ विक्रमीमें स्नेलियस (W. Snelius) नामी विद्वानने कर दिया। उसने उन कोण-सारणियोंसे वर्तनके नियमका पता चला लिया। उसने कहा कि इन कोणोंमें न सही किन्तु इन कोणोंकी ज्याओं (sines) में अवश्य सम्बन्ध है। (चित्र १७)* कख, और क ग, रेखाएं एक कोण

(१)

आपतनकोण	वर्तनकोण	आपतनकोणकी ज्या	वर्तनकोणकी ज्या	ज्याओंकी निष्पत्ति
१२°	९°	·२१	·१६	१·३१
२४½°	१८°	·४१	·३१	१·३२
३१°	२२°	·५१	·३७	१·३४
४८°	३४°	·७४	·५६	१·३२
६५°	४३°	·९१	·६७	१·३४
७६½°	४७°	·९७	·७३	१·३३

(२)

आपतनकोण	वर्तनकोण	आपतनकोणकी ज्या	वर्तनकोणकी ज्या	ज्याओंकी निष्पत्ति
१४°	९°	·२४	·१६	१·५०
२७½°	१७½°	·४६	·३०	१·५३
४०½°	२५°	·६५	·४२	१·५५
५२°	३१½°	·७९	·५२	१·५२
६४½°	३६½°	·९०	·५९	१·५३

* देखिये विज्ञान भाग ५ अङ्क १ पृष्ठ ३, चित्र ३। यह बात विज्ञानके प्रस्तुत अङ्कमें पृष्ठ ५५ पर चित्र ८ द्वारा सिद्ध की गई है।

बनाती हैं। इसके किसी भी एक भुजपर एक विन्दु ग लो और उससे दूसरे भुजपर ग ख लंब डालो तब इस लंबकी और इस समकोण त्रिभुजके कर्ण (hypotenuse) की निष्पत्ति (ratio) $\frac{गख}{कग}$ स्थिर (constant) रहती है अर्थात् विन्दु ग चाहे कहीं लिया जाय उक्त निष्पत्तिका मान सदा वही निकलेगा। जिस प्रकार कोण अंशों द्वारा नापा जाता है उसी प्रकार इस निष्पत्तिके द्वारा भी नापा जा सकता है। इसे उस कोणकी ज्या (sine) कहते हैं। ऊपर दी हुई सारणियोंमें 'ज्या' लिख देनेसे निम्न लिखित रूप हो जाता है। [७६वें पृष्ठ पर देखिये]

अन्तकी खड़ी पंक्तिमें आपतनकोण और वर्तनकोणकी ज्याओंकी निष्पत्ति दी गई है। उससे स्पष्ट है कि प्रकाश चाहे कितना ही तिरछा पड़े, किन्तु यह निष्पत्ति सदा स्थिर रहती है। यही वर्तनका मुख्य नियम हुआ। आपतनकोण और वर्तनकोणकी ज्याओंको निष्पत्ति स्थिर होती है। यह भी स्पष्ट है कि इस निष्पत्तिका जो मूल्य हवासे कांचमें जानेवाले प्रकाशके लिए है वह हवासे पानीमें जानेवाले प्रकाशके लिए नहीं है। पहिला दूसरेसे कुछ अधिक है। यह पहिले लिखा जा चुका है कि कांचमें प्रकाश पानीकी अपेक्षा कुछ अधिक मुड़ जाता है। अतः यह परिणाम निकला कि उपरोक्त निष्पत्तिकी बड़ाई छुटाईसे यह ज्ञात हो सकता है कि प्रकाश अधिक मुड़ेगा अथवा कम। इसी कारण इस निष्पत्तिको वर्तनीयसंख्या (refractive Index) कहते हैं। यह संख्या भिन्न भिन्न पदार्थोंकेलिए भिन्न भिन्न है।

पदार्थ	वर्तनीय संख्या	पदार्थ	वर्तनीय संख्या
हीरा	२·४६—२·७५	कड़वे बादामका तेल	१·६३
माणिक (लाल)	१·७८	अलसीका तेल	१·४६
पन्ना	१·५८	तारपीनका तेल	१·४७
नमक (Rock-salt)	१·५५	गंधकका तेज़ाब	१·४३
मिश्री	१·५४	शोरेका तेज़ाब	१·४१
कांच	१·५०—१·५८	एलकोहोल (Alcohol)	१·३७
बर्फ	१·३१	मनुष्यका रक्त	१·३५
		पानी	१·३३६

इसके अतिरिक्त यह समझ लेनेमें भी अधिक कठिनाई नहीं कि यदि आपातकिरण पानी या कांचमें हो और वर्तितकिरण वायुमें, तब आपतन किरणकी ज्याओंकी निष्पत्ति उतनी नहीं हो सकती जितनी कि ऊपर लिखी है। क्योंकि इस बार आपतनकोण छोटा और वर्तनकोण बड़ा होगा। वास्तवमें जो पहिली दशामें वर्तनकोण था उसे ही अब आपतनकोण बना देनेपर वर्तनकोण उतना ही हो जायगा जितना कि पहिले आपतनकोण था। अर्थात् यदि प्रकाशको पानीमेंसे लौटा दिया जाय तो वह जिस मार्गसे आया था उसीसे वापिस लौट जायगा। वर्तनीय संख्या अब $\frac{१}{१.३३६}$ होगी।

इस नियमके एक परिणामकी परीक्षा कर लेना बहुत ही सरल है। यदि आपतनकिरण पानीपर या कांचपर लंब रूप पड़े तब आपतन कोण शून्य अंशका बनेगा। अतः वर्तनकोण भी शून्य

अंशका बनना चाहिये, नहीं तो वर्तनीयसंख्या-का मूल्य भी शून्य हो जायगा। अर्थात् वर्तित किरण भी लंब रूप ही होगी। अथवा प्रकाश ऐसी दशामें बिना मुड़े ही चला जायगा।

यहां एक और बात भी ध्यान पूर्वक समझ लेनी चाहिये। यद्यपि पानी और कांचमें प्रकाश-का वर्तन होता है किन्तु कुछ थोड़ा प्रकाश परा-वर्तित भी हो जाता है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं मिल सकता जिसमें वर्तन हो और परावर्तन न हो। यह दोनों कार्य सदा साथ ही साथ होते हैं। धातुके वर्तनसे जब परावर्तन होता है तब भी थोड़ा प्रकाश उस धातुके अन्दर अवश्य चला जाता है। किन्तु इस नियमका एक अपवाद है। वायुमेंसे प्रकाश जब पानीमें जाता है तब वर्तनीय संख्या १.३३६ होती है। इस हिसाबसे यदि आपतनकोण ९०° का हो तो वर्तनकोण प्रायः ४८$\frac{१^\circ}{२}$ का होगा। अतः यदि प्रकाश पानीमें-से हवामें जावे तो स्पष्ट है कि आपतनकोण ४८$\frac{१^\circ}{२}$ का होनेपर वर्तन कोण ९०° का हो जावेगा। यहां तक तो ठीक है, किन्तु यदि आपतन-कोण ४९° का हो गया तब तो वर्तन असम्भव है क्योंकि ९०° से अधिक तो वर्तनकोण हो ही नहीं सकता। अतः ऐसी अवस्थामें प्रकाशका केवल परावर्तन ही होगा, वर्तन नहीं। इस घटना-को पूर्ण परावर्तन (total reflection) कहते हैं, और वर्तनके लिए बड़ेसे बड़ा जो आपतनकोण बन सकता है उसे चरमकोण (critical angle) कहते हैं।

भारत-गीत नं० ३२

(१)

जय जय भारत-भूमि हमारी,
जय जग-रंजिनि, जय अघ-गंजिनि,
सम्पति-सुमति-सुकृत-सुख-पुंजिनि,
बुध-जन-हृदय-सरोवर-कंजिनि,
सकल सुकर्मन की महतारी
जय जय भारत-भूमि हमारी।

(२)

जय हिम-शृङ्ग, सुर-सरि गंगा,
साधु-समाज-सुजन-सतसंगा,
जय जग-क्लेश-प्रनाश-प्रसंगा,
सुमिरत भरत मोद मन भारी
जय जय भारत-भूमि हमारी।

(३)

जय भुवि-शम्बिनि, सिन्धु-नितम्बिनि,
त्रिभुवन-प्रेयसि, प्रेम-प्रलम्बिनि,
जयति जननि निज-जन-अवलम्बिनि,
जय तुअ सुअन तपोबल-धारी
जय जय भारत-भूमि हमारी।

(४)

जय अति सुन्दरि, जय सुख-कन्दरि
सती स्वधर्म-अतीव-अतन्दरि
जगत-जोति, जग-सृष्टि-धुरंधरि,
श्रीधर प्रनत प्रान बलिहारी
जय जय भारत-भूमि हमारी।

श्री पद्मकोट,
प्रयाग, २९-७-७५ } —श्रीधर पाठक।

प्रकृतिकी अटूट ईंट और खिलौने ❀

[ले० — 'रसायन']

पिछले लेखमें हम दिखला चुके हैं कि प्रकृतिकी अटूट ईंटें, जिन्हें वैज्ञानिक भाषामें परमाणु कहते हैं, सत्तर प्रकारकी होती हैं। इनकी जातियां मौलिक कहलाती हैं। एक ही या भिन्न भिन्न जातिकी ईंटोंके दो या अधिक संख्यामें मिलनेसे जो खिलौने बनते हैं, उन्हें अणु कहते हैं।

ईंटोंका स्वभाव

कुछ ईंटोंको छोड़कर, प्रायः यह देखा जाता है कि वे दो दो, तीन तीन या चार चारके जुट्टों-में (समूहों) रहना ही पसन्द करती हैं। यदि अन्य जातिकी ईंटोंसे परिचय होनेका अवसर न मिला तो एक ही प्रकारकी ईंटें मिलकर अपनी गोष्ठी बना लेती हैं। यह उनका स्वभाव ही है। इसी चित्तवृत्तिका नाम युयुत्सा अर्थात् मिलनेकी इच्छा है। कौन कौन सी ईंटें मिलकर खिलौने बनाना पसन्द करेंगी, यह उनकी पारस्परिक युयुत्सा और देश कालकी अवस्थापर निर्भर है।

क्या मौलिक शुद्धावस्थामें मिलते हैं ?

प्रायः प्रकृतिमें मौलिक शुद्ध अवस्थामें नहीं मिलते। सोना, चांदी आदि थोड़ेसे मौलिक तो स्वतंत्रावस्थामें मिल जाते हैं, परन्तु अधिकांश मौलिक आपसमें मिले हुए ही पाये जाते हैं। इसका कारण उनकी प्रबल युयुत्सा ही है। मामूली तौरसे बहुत से मौलिकोंको शुद्ध रूपमें बना लेनेके बाद भी बड़ी हुशियारीसे रखना पड़ता है। फास्फोरसको पानीके अन्दर डुबोये रखते हैं, परन्तु तब भी जब कभी उसकी बोतलकी डाट खोलते हैं तो धुआं निकलती रहती है। सोडियम, पोटासियम, रुबीडियम, सीज़ियम, केलसियम आदि धातुओंको तो मट्टीके तेलमें डुबोकर रखते हैं, तब भी उनपर कड़ी पर्त (कर्बनेतकी) जम जाती है। तांबेका बर्तन साफ़ करके रखिये। कल ही देखियेगा कि उसकी चमक दमकपर एक हलकी श्याम रंग-की चादर ढकी हुई है। लोहेकी चमक भी ज़ंगकी जंगमें हार मान भाग जाती है और रक्तवर्ण दृश्य रह जाता है। यही हालत प्रायः सभी धातोंकी है। चांदीके बर्तन तो काले पड़ जाते हैं। इन सब घटनाओंका कारण भी हवाके जुज़ (अवयव) ओषजन, पानीकी वाष्प (नमी), आदि हैं।

* विज्ञान भाग ७ अङ्क ५ पृष्ठ १९३।

Chemistry रसायन शास्त्र]

पदार्थकी तीन अवस्था

संसारमें पदार्थमात्र तीन अवस्थाओंमें पाये जाते हैं — अर्थात् ठोस, द्रव और वायव्य। मौलिक भी इन तीनों अवस्थाओंमें पाये जाते हैं। सोना, चांदी आदि ठोस होते हैं। पारा और ब्रम (ब्रमीन) दो द्रव रूप हैं। ओषजन, उज्जन आदि वायव्य हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि यह अवस्थाएँ परिवर्तन शील हैं और तापक्रम बढ़ने घटनेसे ठोसका द्रव, द्रवका ठोस, द्रवका वायव्य, वायव्यका द्रव या ठोस रूप हो जा सकता है। सूर्यके पिण्डमें तो लोहा आदि पदार्थ वायव्यके रूपमें वर्तमान हैं।

खिलौनोंकी कुछ चर्चा

यह हम देख चुके हैं कि ईंटोंकी अन्तरात्मा उन्हें जुट्ट बना कर रहनेकी प्रेरणा करती रहती है। इसीसे एक ही प्रकारकी या भिन्न भिन्न प्रकारकी ईंटें मिलकर खिलौने बना लिया करता हैं। धातुओं-के परमाणु स्वतंत्र ही रहते हैं। वह मिल मिलकर अणु नहीं बनाते। परन्तु वायव्य मौलिकोंमें प्रायः दो दो परमाणु मिलकर अणु बना लेते हैं, जैसे उज्जन, ओषजन, नत्रजन आदिके अणु दो दो परमाणुओंके बने होते हैं। उनको हम इन चिन्होंसे व्यक्त कर सकते हैं—$उ_२$, $ओ_२$, $न_२$ । अतएव जब कभी हम इन वायव्योंकी परीक्षा करते हैं तो उनके अणुओंकी, न कि परमाणुओंको, परीक्षा करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि स्वतंत्र परमाणुओंकी युयुत्सा और तेज़ी (activity) अधिक होती है।

संखियाके अणुमें तीन, फास्फोरसके अणुमें चार, गंधकके अणुमें छः और कर्बनके अणुमें बारह परमाणु पाये जाते हैं।

अणुओंको एक-परमाणुक, द्वि-परमाणुक, त्रि-परमाणुक आदि उपाधियां, उनमें विद्यमान परमाणुओंकी संख्याके अनुसार दी जाती हैं, जैसे कर्बनका अणु द्वादश-परमाणुक कहा जाता है।

यौगिक और उनके अणु

अब दो या अधिक भिन्न भिन्न प्रकारके परमाणु मिलकर जुट्ट बनाते हैं, तो कहा जाता है कि एक नया यौगिक बन गया। जैसे उज्जनके दो परमाणु, ओषजनके एक परमाणुसे मिलते हैं और एक नया अणु बनाते हैं, यह अणु पानीका होता है। इसीलिए पानी उज्जन और ओषजनका यौगिक हुआ। यौगिकोंके अणुओंमें कितने परमाणु होने चाहियें, इसका कुछ ठीक नहीं। सरलतम अणुओंमें दो परमाणु हो सकते हैं। इससे कम होना सम्भव नहीं, परन्तु जटिल अणुओंमें सैकड़ोंपर नौबत पहुंचती है। एक अमीनो-अम्लके अणुमें ४० कर्बनके, ८० उज्जनके, १९ ओषजनके और १८ नत्रजनके परमाणु होते हैं। इसका अणुसूत्र हुआ $क_{४०}$ $उ_{८०}$ $ओ_{१९}$ $न_{१८}$

यौगिक और मिश्रण

यहांपर हम इस बातसे सावधान कर देना चाहते हैं कि मिश्रणों और यौगिकोंमें बड़ा अन्तर है। केवल दो चीज़ोंको मिला देने भरसे ही यौगिक नहीं बन जाता। मिश्रणोंमें अवयवोंके सभी गुण पाये जाते हैं। जो गुण एक अवयवमें हो और दूसरेमें न हो, उसकी सहायतासे दोनों अवयवोंको अलग कर सकते हैं। परन्तु यौगिकोंमें अवयवोंके गुणोंका नाम निशान तक नहीं रहता। एक बिलकुल नई और भिन्न चीज़ बन जाती है। उसके सभी गुण—रंग, रूप, घुलनशीलता, गुरुत्व, आदि भिन्न होते हैं। यों समझिये कि जिन इंटोंको लिया है वह केवल पास पास ही नहीं रखी रहतीं, जिसमें उनका रंग रूप अलग अलग दीखता रहे; परन्तु घुल मिलकर एक जिगर हो जाती हैं, एक दूसरीमें ऐसी तल्लीन हो जाती हैं कि उनमेंसे किसीका भी पता नहीं रहता। यही रासायनिक प्रीतिका (युयुत्सा) परिणाम है। प्रीति ही क्या जिसमें दुई रह जाय।

उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। उज्जन और ओषजनके गुणोंपर विचार कीजिये और उनका मिलान पानीके गुणोंसे कीजिये। उज्जन ज्वलनशील (जलनेवाला) पदार्थ है, ओषजनमें सभी चीज़ें तेज़ीसे जलती हैं। अब यदि हम पानीमें आग, यह समझकर, लगायें कि इसमें उज्जन है, जल उठेगी, तो क्या परिणाम होगा। यदि हम जलता हुआ फलीता पानीमें यह समझ कर डुबोएँ कि वह वेगसे जलने लगेगा, तो हमें निराश होना पड़ेगा। फिर विचार कीजिये कि कहां तो उज्जन और ओषजन—दो हवाएँ-और कहां पानी।

मामूली नमक, सोडियम और हरिनका यौगिक है। साधारणतः आप दो तोला नमक दिन भरमें खा लेते हैं, पर ज़रा सोचिये कि इसमें जो मात्राएँ सोडियम (लगभग पौन तोला) और हरिन (लगभग सवा तोला) की हैं, उन्हें अलग अलग खालें, तो, याद रखिये, कि गला, फेफड़े और दिमाग फिर चिरसमाधिष्ठ हो जायंगे!

एक नया उदाहरण

लोहेका बुरादा और गंधकका चूर्ण लो। एकका रंग भूरा और दूसरेका पीला है। दोनोंको मिला दो। मेल (मिश्रण) का रंग भूरी और पीली झाईं लिए होगा। उनका गुरुत्व भी, जिस परिमाणमें वह मिलाये गये हैं, उससे जाना जा सकता है। इस मिश्रणका थोड़ा अंश लो और उसके पास एक अच्छा ज़ोरदार चुम्बक थामो। लोहेके कण चुम्बकसे आ चिपटेंगे।

इस प्रकार यदि आप चाहें तो लोहा अलग कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि इस मिश्रणका कुछ अंश आप कर्बन द्विगंधिद में, जो एक प्रकार-

का द्रव है डाल दें और हिलाएँ, तो गंधक तो घुल जायगा और लोहा रह जायगा। छाननेसे लोहा अलग हो जायगा। कर्बन द्विगंधिद भी थोड़ी देरमें उड़ जायगा और गंधकके रवे रह जायंगे।

उक्त मिश्रणका कुछ अंश लो और एक परख नलीमें रखकर नीचेसे गरम करो। जब खूब गरम हो जायगा तो देखोगे कि सहसा बड़ी गरमी उसमें पैदा होती है। गरम करना बन्द कर दिया जाय तो भी क्रमशः यह गरमी ऊपर तक फैल जायगी और ऊपरका ठंडा हिस्सा भी लाल सुर्ख हो जायगा। बात क्या है? पहले कुछ गरमीकी ज़रूरत थी कि लोहे और गंधकका यौगिक बनना शुरू हो जाय। फिर तो यौगिक बननेमें ही इतनी गरमी पैदा होती है कि शेष भागमें यौगिक बनता चला जाता है। परख नलीको ठंडा हो जाने दो और फिर चुम्बक और कर्बनद्विगंधिदसे परीक्षा करके देखो। न गंधकका पता चलेगा और न लोहेका। रंग भी बिलकुल काला होगा। भारीपन भी अधिक होगा।

दो एक ध्यान देने योग्य बातें

यह तो हम देख चुके हैं कि मौलिक प्रायः बड़े मिलनसार होते हैं, परन्तु जैसा साधारणतः होता है मित्रता तबीयत मिलनेपर निर्भर होती है। यदि तबीयतें न मिलीं तो मित्रताका संगठन (यौगिकोंका बनना) असम्भव होता है। यह तो बातें हुईं साधारण अवस्थाकी, परन्तु कभी कभी मक्कारीसे या दबावके कारण मित्रता करनी पड़ती है। यह दशा है स्फोटकोंकी। बाज़े स्फोटकोंके अवयव बिलग होनेके लिए तय्यार ही रहते हैं। कोई ज़रासा बहाना चाहिये कि फिर देखिये तमाशा। बाज़ी दफा मक्खीके बैठ जाने या परसे छू देने या कमरेमें दूरपर चरमर करके चलनेसे ही धड़ाका होता है और बिगड़े दिल यौगिकोंके अवयव अलग हो जाते हैं।

जो मौलिक आपसमें मिलकर यौगिक बनाते हैं, उनमें भी यह बात देखी जाती है कि वे 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का अनुशीलन करते हैं। आपसमें मिलनेमें वे सदा नियमित व्यवहार करते हैं अर्थात् जब यौगिक बनायँगे तो नियमित अनुपातमें मिलेंगे। लोहे और गंधकका जब संयोग होगा तो ७ और ४ के अनुपातमें उनकी मात्राएँ मिलेंगी। यदि ८ भाग लोहा ४ भाग गंधकके साथ गरम किया जायगा तो १ भाग लोहा बच रहेगा। आपके लाख प्रयत्न करनेपर भी इस अनुपातमें कमी बेशी नहीं हो सकती। [लोहे और गंधकके संयोगसे जो यौगिक बना उसे लौह गंधिद कहते हैं।] लौहगंधिद जहां कहीं और किसी भी विधिसे बनाया जायगा यही अनुपात रहेगा। अतएव यह कह सकते हैं कि प्रत्येक यौगिक सदा उन्हीं मौलिकोंके उसी अनुपातमें संयोग होनेसे बनता है। इस नियमको निश्चित अनुपातका नियम कहते हैं।

तीन सौ वर्ष हुए विद्वान प्रयोग करना बहुत नीच कर्म समझते थे। मन गढ़न्त करनेके सिवा वास्तविक परीक्षा करके सिद्धान्तोंका निश्चित करना वे अनुचित समझते थे। परन्तु धीरे धीरे प्रयोगात्मक विज्ञानका प्रचार बढ़ता गया और लेवोसियर ने पहले पहल तराज़ू काममें लानी शुरूकी। उसके बाद ही उपरोक्त नियम डालटन द्वारा निर्धारित हुआ।

कभी कभी दो मौलिकोंके संयोगसे एकसे अधिक यौगिक बनते हैं, जैसे तांबे और ओषजनके दो यौगिक बनते हैं—एकमें तांबेके ८ भाग और ओषजनका १ भाग होता है और दूसरेमें ताम्बेके ८ भाग और ओषजनके २ होते हैं। यह विचारणीय है कि तांबेके ८ भागके साथ ओषजनके एक या दो भागका ही संयोग होता है। एक और दोके बीचमें किसी मात्राका संयोग तांबेके ८ भागसे नहीं हो सकता। यह नियम अन्य यौगिकोंमें भी पाया गया है। अतएव हम कह सकते हैं कि जब एक मौलिक दूसरे मौलिकके साथ मिलकर एकसे अधिक

यौगिक बनाता है तो दूसरे मौलिककी भिन्न मात्राओंका, जो पहलेकी एक निश्चित मात्रासे संयोग करती हैं, आपसमें सरल सम्बन्ध होता है, अर्थात् अनुपात १: २, २: ३ आदि होता है। इस नियमको अपवर्त्य अनुपातका नियम कहते हैं।

इन्हीं दो नियमोंको निर्धारित करनेके बाद डाल्टन महोदयको यूनानियोंका परमाणुवाद याद आया। इनकी व्याख्या सिर्फ एक तरीकेसे हो सकती थी और वह तरीका परमाणुओंकी आस्तिकतामें विश्वास करना था। परमाणुओंका जो हाल पहले दिया जा चुका है वह डाल्टन महोदयके परमाणुवाद के अनुसार ही है। डाल्टन महोदय केवल परमाणुओंको ही मानते थे। इनके मतानुसार मौलिकोंके परमाणु अविभाज्य हैं और यौगिकोंके विभाज्य। परन्तु आगे चलकर बहुत प्रयोगोंकी व्याख्या करनेके लिए अवोगडरो महोदयने अणु की कल्पना की। उनका मत था कि परमाणु केवल मौलिकोंके होते हैं और वेअ विभाज्य होते हैं। पर अणु मौलिक तथा यौगिक दोनोंके होते हैं। मौलिकोंके अणुओंमें एक ही प्रकारके परमाणु होते हैं, परन्तु यौगिकोंके अणु भिन्न प्रकारके परमाणुओंके संयोगसे बनते हैं।

पदार्थका सूक्ष्मतम विभाग, जो प्रकृतिमें उसके गुण लिये हुये रह सकता है, अणु है। अणुके और छोटे भाग कीजिये, फिर पदार्थ छिन्न भिन्न हो जायगा, उसके गुण न मिलेंगे, फिर तो उसके अवयवी परमाणुओंके गुण देखनेमें आयंगे।

स्मरण रहे कि भिन्न भिन्न परमाणुओंके भार भिन्न भिन्न होते हैं। परन्तु एक ही मौलिकके परमाणुओंके भार बराबर होते हैं। यौगिक बननेपर उसके अणुका भार अवयवी परमाणुओंके भारके योगके तुल्य होगा।

क्या उपरोक्त नियमोंकी व्याख्या परमाणुवादके अनुसार हो सकती है ?

यह हम कह चुके हैं कि उपरोक्त नियमोंकी व्याख्या करनेके लिए ही परमाणुवादकी कल्पना की गई थी। अब ज़रा देखें कि वस्तुतः व्याख्या होती है या नहीं।

अणु परमाणुओंके संयोगसे बने हुए जुट्ट हैं। एक मौलिकका एक परमाणु दूसरे मौलिकके एक परमाणुसे मिलकर सरलतम जुट्ट बना सकता है। पहलेका एक दूसरेके दोसे मिलकर अन्य जुट्ट बना सकता है, परन्तु यह दूसरा जुट्ट पहलेसे बिलकुल भिन्न होगा। इसी प्रकार पहलेके एक, दो, तीन, आदि परमाणु दूसरेके एक या दो या तीन आदि परमाणुओंसे मिलकर अन्योन्य प्रकारके अणु बना सकते हैं, परन्तु एक ही प्रकारके अणुओंमें सदैव निश्चित संख्यामें निश्चित मौलिकोंके परमाणु मिलेंगे। यदि परमाणुओंकी संख्या या मौलिककी जाति भिन्न होगी तो अणु भी दूसरा ही होगा। उदाहरणके लिए लीजिये तांबेके ओषिद्, जिनपर हम पहले विचार कर चुके हैं। तांबेका सरलतम ओषिद् तांबेके एक परमाणु और ओषजनके एक परमाणुके संयोगसे बनेगा। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि तांबेका एक परमाणु ओषजनके एक परमाणुसे चौगुना भारी होता है। अतएव यदि सरलतम यौगिक बनेगा तो उसमें विद्यमान तांबे और ओषजनकी मात्राओंमें अनुपात ४ : १ रहेगा। यह अनुपात तब तक स्थिर रहेगा जब तक अणुमें परमाणुओंकी संख्या स्थिर रहेगी परन्तु यह संख्या बदल नहीं सकती, क्योंकि बदलते ही यौगिक ही दूसरा बन जायगा।

उपर्युक्त सरलतम यौगिकसे चलकर दूसरा जो यौगिक बन सकता है वह ओषजनके (अथवा ताम्बेके) एक परमाणुके ताम्बेके (अथवा ओषजनके) दो परमाणुओंके साथ संयोग होनेसे ही बन सकता है। ऐसी अवस्थामें इस नये यौगिकमें विद्यमान ताम्बे और ओषजनकी मात्राओंमें अनुपात ८:१ होगा। स्पष्ट है कि पहलेकी अपेक्षा ताम्बा दुगना है। ताम्बेका सवाया या ड्योढ़ा होना सम्भव ही नहीं, क्योंकि ताम्बेका सवा या

डेढ़ परमाणु ओषजनके एक परमाणुसे नहीं मिल सकता।

क्या अणु और परमाणु दीखते हैं ?

अणु और परमाणु आंखोंसे क्या बड़े प्रबल अणुवीक्षणोंसे भी नहीं दीखते। फिर यह सब तूमार क्यों बांधा गया ? कुछ दिन पहले तो केवल रासायनिक संयोगके नियमोंकी व्याख्या करनेके लिए, परन्तु बादमें अन्य युक्तियोंसे और प्रयोगोंसे अणु और परमाणुओंके अस्तित्वके ऐसे अकाट्य प्रमाण मिले कि अब हम दावेके साथ कह सकते हैं कि अणु और परमाणु वास्तविक वस्तुएँ हैं। उनके भार, उनके आकार, गति आदि सभी बातें जान ली गई हैं, परन्तु यह विषय भौतिक शास्त्रका है। रसायन शास्त्रमें तो हम केवल उनके आपेक्षिक भार जान लेते हैं, जिसकी विधि अगले लेखोंमें दी जायगी।

यहां यह कह देना उचित है कि उज्जनके परमाणुका भार १ मान कर अन्य परमाणुओंके भार निकाले जाते हैं। इस हिसाबसे ओषजनका परमाणु भार १५·६८ होता है। परन्तु प्रयोगोंमें गणित करनेमें इस संख्यासे असुविधा पड़ती है, इसीसे ओषजनका परमाणुभार १६ मान लेते हैं और तदनुसार उज्जन तथा अन्य मौलिकोंका परमाणभार निकालते हैं।

बीजज्यामिति

[ले०–'बनमाली']

१–कार्तीय भुजयुग्म

यदि किसी धरातलमें एक विन्दु स्थित हो तो उसके स्थान निर्णयकी कई रीतियां हैं, जिनमेंसे दो मुख्य हैं। उन्हींपर यहां विचार करेंगे।

उस धरातलमें दो ऐसी रेखाएँ अत, अल लो जो किसी विन्दुपर मिलती हों। मान लो कि व विन्दुका स्थान निर्णय करना है। इस विन्दुसे वम और वन दो रेखाएं अल, अत के समानान्तर खींचो। वम, वन की नाप लो। मान लो कि वम = ५ इञ्च। वन = ७ इञ्च वम, को कोटि और वन को उसका भुज कहते हैं। अत, अल रेखाओंको कार्तीय भुज युग्म कहते हैं। यह स्पष्ट है कि व को छोड़ कोई भी ऐसा विंदु अत, अल के बीचमें नहीं है, जिसका भुज = ७ इञ्च और कोटि = ५ इञ्च। जब कभी इस विन्दुका जिक्र करना होगा तो इसको (७, ५) कहा करेंगे। सदैव भुजकी लम्बाई पहले और कोटिकी बादमें दी जाती है।
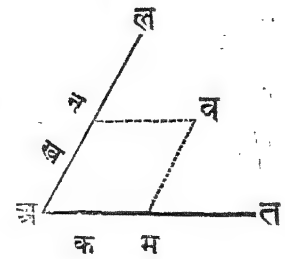
चित्र १८

मान लीजिये कि हम को विन्दु (३, ४) जानना है। तो अ से ३ इञ्च नापकर क विन्दु रखो, फिर अख ४ इञ्चके बराबर काट लो। क, ख में से दो रेखाएँ भुजयुग्मोंके समानान्तर खींचो, जहां यह मिलेंगी वही निर्दिष्ट विन्दु है। इसी प्रकार चित्र खींचकर नीचे लिखे विन्दु बताओः—

(७, ८), (१०, ८), (६, ७,), (१२, ६) और (४, ३)।

यहांपर हमने दो रेखाएँ अत, अल योंही खींच लीं। उनके बीचके कोणका बिलकुल विचार नहीं किया, पर प्रायः यह रेखाएँ ऐसे खींची जाती हैं कि इनके बीचका कोण समकोण होता है। ऐसी दशामें यह भुजयुग्म समकोणीय कार्तीय भुजयुग्म कहलाते हैं।

२–ध्रुवीय भुजयुग्म

व का स्थान निर्णय एक और सुगम रीतिसे इस प्रकार हो सकता है।

एक रेखा कल, व के धरातलमें ही खींच लो। व और क को रेखा द्वारा जोड़ दो और कव को नाप लो। कोण व क ल भी नाप लो।

मान लो कि कव = ५ इञ्च और व क ल = ३६° स्पष्ट है कि कोई दूसरा ऐसा विन्दु कल के ऊपर नहीं है जिसकी दूरी (क से) ५ इञ्च हो और जिसका झुकाव कल की तरफ ३६° का हो। ५ इञ्च और ३६° व के ध्रुवीय भुजयुग्म कहे जाते हैं। व विन्दुको (५, ३६°) कहेंगे।

चित्र १९
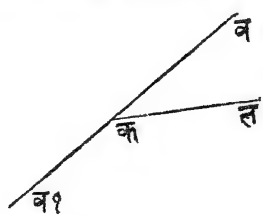
३—बीजात्मक चिन्ह

पहले हमने जब अल, अत रेखाएँ खींची थीं तो यह मान लिया था कि वे अ पर ही समाप्त हो जाती हैं, पर यह ज़रूरी नहीं है। वह अ की दूसरी तरफ चाहे जितनी दूर तक चली जायं। यह भी ज़रूरी नहीं है कि व, अत के ऊपर और अल के दाएँ को हो। अब सवाल यह है कि अगर ऊपरकी शर्तें हम न मानें तो चार विन्दु-व, वु, वू, वृ,-ऐसे होंगे जिनके भुज बराबर होंगे और कोटि भी। इसके लिए एक सहज पंचायती फैसला हो चुका है। उसके अनुसार अत और अल-पर नापी गयी लम्बाइयां धनात्मक और अतु, अलु पर नापी गई लम्बाइयां ऋणात्मक समझी जायंगी। इस प्रकार न केवल व, वु आदि विन्दुओंकी स्थितिमें ही तमीज़ किया जा सकेगें, वरन् बीज गणितिक मात्राएँ भी भली प्रकार सूचित कर सकेंगे। ऋणात्मक मात्राओंसे क्या अभिप्राय है, यह पाठक किसी ग्राफ या बीज गणितकी पुस्तकमें पढ़लें।
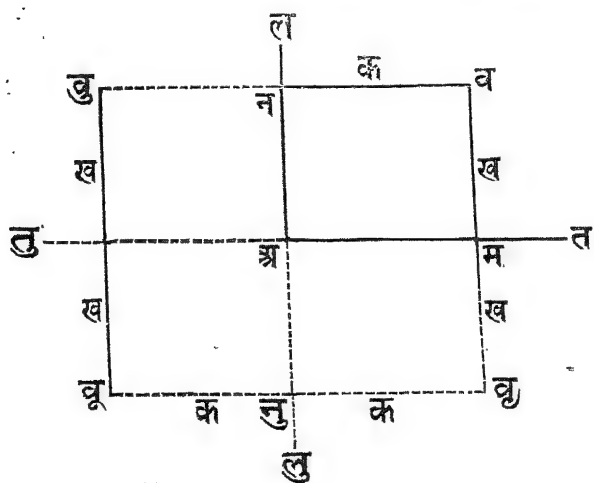
चित्र २०

अब व, वु, वू, वृ,विन्दुओंको (क, ख), (-क, ख), (-क,-ख) (क,-ख) कहेंगे।

इस प्रकार खींचे हुए भुजयुग्मोंसे चार पाद बन गये। प्रथम पाद अर्थात् ल अ त में भुज और कोटि दोनों धनात्मक हैं, दूसरे पाद अर्थात् ल अतु में स्थित विन्दुओंके भुज ऋणात्मक और कोटि धनात्मक हैं। तीसरे पादमें दोनों ऋणात्मक और चौथे पादमें भुज धनात्मक और कोटि ऋणात्मक है।

ध्रुवीय भुजयुग्मोंकेलिए जो पंचायती फैसला, नियम, है वह अगले लेखमें सुनाया जायगा।

४—दो विन्दुओंका, उनके भुजयुग्मोंको जानकर, अन्तर निकालना।

यहाँपर दो चार उदाहरण दिये जाते हैं जिनसे भुजयुग्मोंकी कुछ उपयोगिता मालूम हो जायगी।

य,व दो विन्दु (क,ग) (च,ज) हैं।
(देखो चित्र २१)।
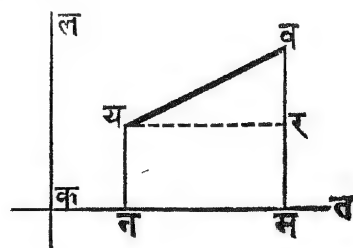
चित्र २१

इनकी दूरी = य व

पर $\text{यव}^2 = \text{यर}^2 + \text{वर}^2$

$= (\text{कम} - \text{कन})^2 + (\text{वम} - \text{यन})^2,$

∵ [यन = रम]

$= (क - च)^२ + (ग - ज)^२$

$\therefore यव = \sqrt{(क - च)^२ + (ग - ज)^२}$

अर्थात् भुजोंके अन्तरके वर्गमें कोटियोंके अन्तरका वर्ग जोड़ कर, योगफलका वर्गमूल निकालनेसे दूरी मालूम हो जायगी।

५—उपरोक्त सूत्रकी व्यापकता

अब मान लो कि य, व विन्दु दो भिन्न पादों-में हैं [देखो चित्र २२]। तब भी ऊपर दिया हुआ सूत्र य,व के बीचका अन्तर बतलायगा।
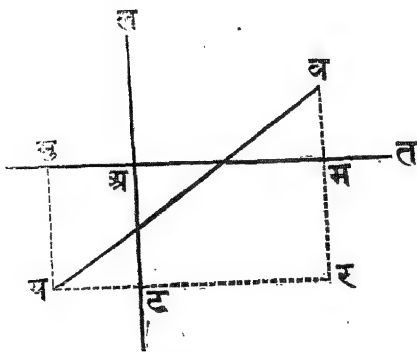
चित्र २२

यहांपर यह स्मरण रखना चाहिये कि यह ज़रूरी नहीं है कि अ की बाईं तरफ ही लम्बाइयां ऋणात्मक होती हैं और उसके दाईं तरफ धना-त्मक। वास्तवमें किसी भी विन्दुसे हम क्यों न नापें, यदि लम्बाइयां दाईं या ऊपरकी तरफ नापी जाती हैं तो धनात्मक समझी जाती हैं। और बाईं तरफ या नीचेकी तरफ नापी जाती हैं तो ऋणात्मक समझी जाती हैं। चित्र २२में देखिये।

मव = ज, अम = च

मुय = ग, अमु = क

परन्तु वम = - मव = - ज; रट = मअ = - अम

इसलिए, वर = वम + मर = - मव + अट = - मव + मुय

[यहां ऐसा प्रतीत होता है कि मव और मुय का पाटीगणितकी रीतिसे अन्तर ले लिया है, पर वर है दोनोंका योगफल। क्योंकि याद रखना चाहिये कि मव धनात्मक है और मुय ऋणात्मक, इसलिये - मव + मुय का परिमाण ऋणात्मक होगा और दोनोंके पाटीगणितिक जोड़के बराबर होगा। मान-लो कि व,य (५, ७), (- ६, - ८) विन्दु हैं। तो - मव + मुय = - ७ + (- ८) = - ७ - ८ = - १५]

इसी प्रकार

यर = यट + टर = मुअ + अम
 = - अमु + अम

[यहां भी अमु = - ६, और अम = ५

$\therefore$ - अमु + अम = - (- ६) + ५ = ६ + ५ = ११]

$\therefore यव^२ = पर^२ + वर^२ = (अम - अमु)^२ + (मुय - मव)^२$

$\therefore यव = \sqrt{(क - च)^२ + (ग - ज)^२}$

इससे स्पष्ट हो गया होगा कि जो सम्बन्ध एक पादकेलिए सिद्ध होगा, वह अन्य पादोंकेलिये भी ठीक होगा, यदि चिन्होंका पूरा पूरा ध्यान रखा जायगा तो।

६—वर्गफल

यदि विन्दुओं की स्थिति ज्ञात हो तो उनको जोड़कर बनाये हुये त्रिभुज, चतुर्भुज बहुभुज आदि-का वर्गफल निकालना बड़ा सुगम है *।

उदाहरणकेलिए हम एक चतुर्भुजका वर्गफल निकाल कर दिखलाएँगे। [देखिये चित्र २३]

क, च, प, त, चार विन्दु हैं, जिनके भुजयुग्म हैं (य, र), (यु, रु), (यू, रू), (यो, रो), हैं।

वर्गफल क च त प

= वर्गफल क च म मा - वर्गफल प क मा मु
+ वर्गफल प मु मू त - वर्गफल त च म मू

* त्रिभुजके वर्गफलकेलिये देखिये विज्ञान भाग ४. पृष्ठ १४०।

$$= \frac{1}{2}\,\text{म मा}\,(\text{च्र म} + \text{क मा}) +$$
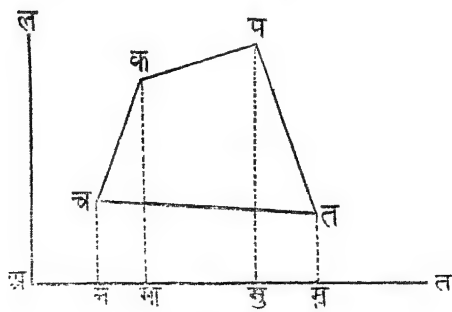
चित्र २३

$$\frac{1}{2}\,\text{मा मु}\,(\text{क मा} + \text{प मु})$$

$$+ \frac{1}{2}\,\text{मु मू}\,(\text{प मु} + \text{त मू}) -$$

$$\frac{1}{2}\,\text{म मू}\,(\text{च म} + \text{त मू})$$

$$= \frac{1}{2}(\text{यु} - \text{य})(\text{र} + \text{रु}) + \frac{1}{2}(\text{यू} - \text{यु})(\text{रू} + \text{रु}) + \frac{1}{2}(\text{यो} - \text{यू})(\text{रो} + \text{रू}) - \frac{1}{2}(\text{यो} - \text{य})(\text{रो} + \text{र})$$

$$= \frac{1}{2}\Big[\text{यु}(\text{र} + \text{रु} - \text{रू} - \text{रु}) - \text{य}(\text{र} + \text{रु} - \text{रो} - \text{र}) + \text{यू}(\text{रु} + \text{रू} - \text{रो} - \text{रू}) + \text{यो}(\text{रो} + \text{रू} - \text{रो} - \text{र})\Big]$$

$$= \frac{1}{2}\Big[\text{यु}(\text{र} - \text{रू}) - \text{य}(\text{रु} - \text{रो}) + \text{यू}(\text{रु} - \text{रो}) + \text{यो}(\text{रू} - \text{र})\Big]$$

$$= \frac{1}{2}\Big[(\text{र} - \text{रू})(\text{यु} - \text{यो}) - (\text{य} - \text{यू})(\text{रु} - \text{रो})\Big]$$

७—दो विन्दुओंके जोड़नेवाली रेखाको दिये हुए अनुपातमें विभक्त करनेवाले विन्दुका निश्चित करना।

व और प − (क, ग) और (च, ज) हैं। एक विन्दु र सरल रेखा व प को त:द के अनुपातमें विभक्त करता है। इस विन्दुका स्थान निर्णय करना है। [देखिये चित्र २४]
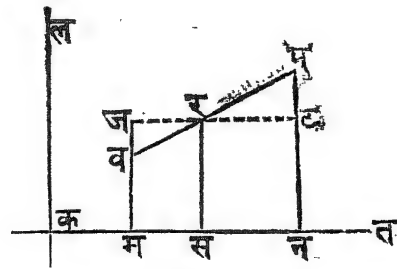
चित्र २४

व, र, प, से क त, पर लम्ब गिराओ और र में से एक रेखा क त के समानान्तर खींचो जो व म और प न से ज और ट में मिले।

अब स्पष्ट है कि त्रिभुज ज र व, र प ट सजातीय हैं इस लिए वर: र प : : त: द : : जर: र ट : : मस: सन, [परन्तु म स= कस−कम और स न=क न−क स]

$$\therefore \text{त} : \text{द} :: \text{मस} : \text{सन}$$

$$:: \text{कस} - \text{कम} : \text{कन} - \text{कस}$$

$$\therefore \text{त}\,(\text{क न} - \text{कस}) = \text{द}\,(\text{कस} - \text{कम})$$

$$\therefore \text{कस}\,(\text{द} + \text{त}) = \text{त.\,क न} + \text{द.\,कम}$$

$$\therefore \text{कस} = \frac{\text{त.\,च} + \text{द.\,क}}{\text{त} + \text{द}}$$

इसी प्रकार $\frac{\text{जव}}{\text{पट}} = \frac{\text{वर}}{\text{रप}} = \frac{\text{त}}{\text{द}}$

परन्तु, जव = जम − वम = सर−ग; पट=पन−टन = ज−सर

$$\therefore \frac{\text{त}}{\text{द}} = \frac{\text{सर} - \text{ग}}{\text{ज} - \text{सर}};$$

$$\therefore \text{स र}\,(\text{द} + \text{त}) = \text{त.\,ज} + \text{द.\,ग}$$

$$\therefore \text{सर} = \frac{\text{त.\,ज} + \text{द\,ग}}{\text{त} + \text{द}}$$

$$\therefore \text{र के भुज युग्म हैं} \left[\frac{\text{त.च} + \text{द.क}}{\text{त} + \text{द}},\ \frac{\text{त.ज} + \text{द.ग}}{\text{त} + \text{द}}\right]$$

नोट—यदि र मध्यबिन्दु है तो त=द

$$\therefore \text{र के भुजयुग्म हैं}\ \frac{\text{च} + \text{क}}{२},\ \frac{\text{ज} + \text{ग}}{२}$$

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. (५, ७), (८, ६) विन्दुओंकी स्थिति दिखलाओ। उनके बीचका अन्तर निकालो और उनके बीचके विन्दुके भुजयुग्म बताओ।

२. विन्दु (१०,—१८) की दूरी (३, ६), (-५,२) विन्दुओंसे निकालो और साबित करो कि इन तीनों बिन्दुओंको जोड़नेसे सम-द्विबाहु त्रिभुज बनता है।

३. दूसरे प्रश्नके त्रिभुजका वर्गफल निकालो।

४. (प, ब,), (च, ज), (क, ग) विन्दुओंके जोड़नेसे जो त्रिभुज बनता है, उसका वर्गफल निकालो

(उत्तर—१/२ [प. ज+च. ग+क. ब–ब.च–ज.क–ग.प])

५. बिन्दु (१, २) का अन्तर (६, ८) और (२,४) बिन्दुओंको जोड़नेवाली रेखाके मध्य विन्दुसे निकालो।

६. सिद्ध करो कि (७१,७१) (२७, ६), (०, ०) (-१३,-१) और (- ६४, १६) विन्दु उस वृत्तपर स्थित हैं, जिसका केन्द्र (-१३, ८४) विन्दु है और जिसका अर्द्ध व्यास ८५ है।

सिद्ध करो कि विन्दु (१, ४), (-१, १०), (२, १), (४,-५) एक ही रेखापर स्थित हैं।

[नोट—यदि यह विन्दु एक ही रेखापर स्थित हैं तो उनको जोड़कर बनाये हुए चतुर्भुजका वर्गफल शून्य होगा।]

अलूशियन द्वीपसमूह

[ले०—श्रीयुत लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव]

प्रकृतिकी रचना शक्ति अनन्त है। न जाने कितने अल्पकालमें वह कितनी बड़ी रचना कर डालती है। मनुष्यकी विचार-शक्ति उसकी इस असीम रचना शक्तिका पता लगानेमें सर्वथा असमर्थ है। जिस द्वीप समूहका विवरण हम नीचे देते हैं उससे प्रकृतिकी असीम रचना-शक्तिका अच्छा परिचय मिलता है।

उत्तर प्रशान्त महासागरमें एशियाई रूसके कमचटिका प्रायद्वीपके पूरब और उत्तरी अमेरिकाके अलास्का देशके पश्चिम-दक्षिण उसीसे मिला हुआ अलूशियन द्वीपसमूह स्थित है। इसका आकार एक टूटे हुए पुलके समान है। कितने ही पश्चिमीय विद्वानोंने एशियासे इसी पथ द्वारा लोगोंका जाकर पहले पहल अमेरिका बसानेका अनुमान किया है। पहले यह द्वीप-समूह रूसवालोंके अधिकारमें था। इसके ढूंढ़ निकालनेका गौरव भी रूसवालोंको ही प्राप्त हुआ है। रूसी भाषामें अलूट शब्दका अर्थ एक गुरु चट्टान है। इसलिए रूसियोंने इसका नाम अलूशियन द्वीपसमूह रखा। समुद्रके वक्षस्थल-पर दौड़नेवाले जहाज़ोंको यह समूह दूरसे एक विशाल चट्टानकी तरह दिखाई देता है। साधारणतः यह समूह तीन भागोंमें विभक्त है। कमचटिका प्रायद्वीपके निकटवाले भागको अलूशिया, मध्य-भागवालेको अन्द्रियानोव (Andreanov) या अन्द्रनोवियन (Andrenovian) और अलास्का देशके निकट वाले भागको फाक्सद्वीपसमूह (Fox island) कहते हैं।

कुल अलूशियनद्वीप समूह ५२° और ५५° देशान्तर (Longitude) और १७२° और १६३° पश्चिमीय अक्षान्तर (Latitude) के मध्यमें स्थित है। रूसके विख्यात जहाज़ी जनरल बेहरिंग साहबने सन् १७८५ वि० में इसका पहले पहल पता लगाया था। परन्तु कई कारणोंसे वह इसकी आन्तरिक अवस्थासे अनभिज्ञ रहे। सन् १८१७ वि०में रूसका महारानी केथराइनकी आज्ञासे कप्तान किरनिटजनने इसमें पदार्पण किया। परन्तु इस बार भी इसका ठीक पता न चला। तीसरी बार कप्तान कुकने सं० १८३५ वि० में बहुत सी बातोंका पता लगाया। पहले जहाज़रानोंकी कितनी ही बातोंको इन्होंने असत्य और भ्रममूलक साबित किया।

उन्होंने पूर्वीय भागके कई द्वीपोंकी पैमाइश की और उस भागके द्वीपोंकी स्थितिका ठीक ठीक विवरण प्रकाशित किया। उस विवरणसे कितनी ही ऐसी बातें प्रकट हुईं जिनसे सर्वसाधारणको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उस समयसे अब तक कितनी ही ऐसी बातें रूसी जहाज़रानोंके द्वारा प्रकट हुई हैं।

इस द्वीपसमूहके प्रायः सभी द्वीप पर्व्वत मालाओंसे आच्छादित हैं। यहांकी ज़मीन बिल्कुल कंकरीली है। समुद्रके किनारेकी ज़मीन बिल्कुल पथरीली है। स्थान स्थानपर बड़े बड़े खड्ड हैं, जिनमें समुद्रकी लहरें कलोलें किया करती हैं। किनारे बिल्कुल ढालुआं और ऊंचे नीचे हैं और धीरे धीरे ऊपर उठकर उन्होंने पहाड़ियोंका रूप धारणकर लिया है। इसी प्रकारकी पहाड़ियां पूरबसे लेकर पश्चिमतक इस द्वीप समूहकी पूरी लम्बाईमें फैली हुई हैं। किनारोंके ऊंचेनीचे होनेके कारण जहाज़ोंका इनके निकट पहुंचना बहुत कठिन हो जाता है। किनारोंके निकटका समुद्र भी बड़ा ही भयानक है। उसमें प्रतिक्षण बड़ी बड़ी लहरें उठा करती हैं। जहाज़रां जहां कहीं ज़रा भी चूके तो मानों सदाके लिए चूक गये, फिर उनका बचना कठिन ही नहीं वरन असम्भव हो जाता है। ऊंची ऊंची पहाड़ियोंके तल देशमें कितने ही छोटे छोटे चश्मे बहते हैं। इनमेंसे कितने ही तो बह कर और अन्यान्य चश्मोंसे मिलकर बड़े बड़े नदोंके रूपमें परिणत हो समुद्रमें जा गिरते हैं और कितने ही किञ्चित खुले स्थानोंमें एकत्र होकर बड़े बड़े झील बनाते हैं। इन झीलोंका जल जब अधिक हो जाता है तो छोटे छोटे प्राकृतिक नालों द्वारा बहकर निकटवाली खाड़ियोंमें जा गिरता है। इन पहाड़ियों और चश्मोंकी शोभा बड़ी ही मनमोहनी है। चश्मोंमें अनेक प्रकारके जल-पक्षी तैरते रहते हैं और अपने मनोहर शब्दोंसे निकटवाली पहाड़ियों और मैदानोंको प्रतिध्वनित करते रहते हैं।

कितने ही प्रत्यक्ष चिह्नों द्वारा जान पड़ता है कि यह द्वीप समूह ज्वालामुखी पर्वतों द्वारा बन गया है। इसके कुछ छोटे द्वीपोंमें तो ज्वालामुखी अभी तक रवानी ही की दशामें है और बराबर धुएंके बादल उड़ाया करते हैं। कभी कभी भयानक अग्नि शिखा भी निकलती दिखाई देती है। यहांकी पृथ्वी चट्टानी और कहीं कहीं चिकनी सफेद होनेके कारण कम उपजाऊ है। यहां बड़े बड़े और घने बन नहीं हैं। घास और फूल इत्यादि बहुत कम दिखाई देते हैं। पहाड़ी चश्मोंके किनारे कहीं कहीं कुछ छोटे छोटे वृक्ष उगते दिखाई देते हैं। खेती बारीका तो काम यहांके रहनेवाले बिलकुल ही नहीं जानते। जल वायुके बहुत शीघ्र शीघ्र बदलते रहनेके कारण यहां खेती-बारीका होना सर्वथा असम्भव सा जान पड़ता है। श्वेत चिकने छालका एक ठिंगना वृक्ष जिसे बर्च कहते हैं यहां बहुत उगता है। इसकी लकड़ी बड़ी मज़बूत होती है। विलोका (willow) वृक्ष भी कहीं कहीं दिखाई देता है। यह भी बर्च (birch) ही की तरह ठिगना होता है और इसकी डालियां बहुत नर्म और लचीली होती हैं। दल दली नर्म जगहोंमें कहीं कहीं आलडरका वृक्ष भी देखनेमें आता है। सिवाय इन वृक्षोंके और प्रकारके वृक्ष बहुत ही कम दिखाई देते हैं। यहांके अधिवासियोंको जब मकान बनानेकी आवश्यकता होती है तो बहकर आई हुई समुद्रके किनारेकी लकड़ियोंको काममें लाते हैं।

अलूशियन लोग मछली मारने और शिकार करनेमें बड़े होशियार होते हैं और सच पूछिये तो इन्हीं कामोंसे इनका जीवन निर्वाह भी होता है। मछलीके शिकारके लिए अनेक प्रकारके जाल और बंसियोंको बनाते हैं और जानवरोंके शिकारके लिए भी यह लोग बहुत से हथियार बनाते हैं। परन्तु यह हथियार केवल इन्हींके कामके होते हैं। सील, आर्टिक फाक्स और समुद्री ओटरका शिकार यह लोग बड़ी सुगमतासे कर लेते हैं। यह

जानवर समुद्रके किनारे बहुतायतसे पाये जाते हैं। गत शताब्दि (१८ वीं) के अन्त तक परके व्यवसायी लोग इन जानवरोंके शिकारके लिए समुद्रके किनारेकी पहाड़ियोंपर छावनियां डालकर रहते थे। परन्तु अब उनका यह कार्य्य बहुत कुछ घट गया है। मछलियोंका शिकार विशेष कर छोटी छोटी नौकाओंपर चढ़ कर किया जाता है। कुत्ते और उत्तरके सर्द मुल्कोंके बारहसिंगे भी यहां बहुतायतसे पाये जाते है।

यहांके बाशिन्दे आकार प्रकारमें केमचटिकावालोंसे बहुत मिलते हैं। कदमें छोटे परन्तु मोटे ताज़े होते हैं। इनका शरीर सुडौल होता है, गर्दनें छोटी होती हैं। हलके सांवले या भूरे रङ्गके चेहरे और आंखें काली होती हैं। इनके बाल काले लम्बे और सीधे होते हैं। स्त्रियां भी इसी रङ्गकी होती हैं, परन्तु इनके पहनावेका ढंग कुछ विचित्र ही होता है। यह लोग बड़े मिहनती और साहसी होते हैं और कठिनसे कठिन काम करनेके लिए भी तैय्यार रहते हैं।

कहा जाता है कि विदेशियों और परके व्यवसाइयों द्वारा इनकी स्वतन्त्रतामें बहुत कुछ बाधा उपस्थित हुई है और इनके रस्मरिवाज तथा आचार विचारमें भी बहुत कुछ आधुनिकता आगई है। परन्तु अभी तक यह अपनेको स्वतन्त्र ही समझते हैं। जब तक सभ्य विदेशियोंका चरण इन बिचारे भोले भाले मनुष्योंकी मातृभूमिपर नहीं पड़ा था तब तक यह स्वतन्त्र और सुखी थे। मूर्तिपूजक थे और देवी देवताओंके अवराधक थे। भोले भाले थे और सीधे सादे थे। अब धीरे धीरे सभ्यता देवीने इन्हें भी अपनानेकी कृपा की है। इसीलिए यह अब चालाक और मिथ्या प्रिय हो गये हैं। अब यह धीरे धीरे पवित्र ईसाई धर्म्मका अवलम्बन कर रहे हैं। शराब पीनेकी भी रिवाज इनमें बहुत है। प्रायः स्त्री और पुरुष दोनों ही पीते हैं। सत्य है संसारके किसी देश या किसी स्थानका जल वायु, रहन सहन और आचार विचार एकसा नहीं रहता, समयानुसार बदलता ही रहता है।

भारत-गीत-३७

सान्ध्य अटन

(१)

विजन-वन-प्रान्त था,
प्रकृति-मुख शान्त था,
अटन का समय था,
रजनिका उदय था।

प्रसवके कालकी लालिमामें लिहसा
बाल शशि व्योमकी ओर था आ रहा-
सद्य-उत्फुल्ल अरविन्द-निभ,नील सुवि-
शाल नभ-वक्ष पर जा रहा था चढ़ा;
दिव्य दिङ्नारि की गोद का लाल सा।
या प्रखर भूख की यातना से प्रहित,
पारणा-रक्त-रस-लिप्सु, अन्वेषणा-
युक्त, या क्रीड़नासक्त मृगराज-शिशु,
या अतिव क्रोध-सन्तप्त जर्मन्य नृप
सा; कि या अभ्र-बैलून-उर में छिपा
इन्द्र, या इन्द्र का छत्र, या ताज, या
स्वर्ग्य गजराज के भाल का साज, या
कर्ण-उत्ताल, या स्वर्ण का थाल सा।
कभी यह भाव था, कभी वह भाव था,
देखने का चढ़ा चित्त में चाव था।

(२)

विजन वन शान्त था
चित्त अभ्रान्त था
रजनि-आनन अधिक
हो रहा कान्त था—

स्थान-उत्थानके साथ ही चन्द्र-मुख
भी समुज्ज्वल लगै था अधिक तर भला।

(३)

उस विमल विम्बसे अनति ही दूर, उस
समय एक व्योममें विन्दुसा लख पड़ा—
स्याह था रंग कुछ गोल-गति डोलता,
किया अति रंगमें भंग उसने खड़ा;
उतरते उतरते आ रहा था उधर
जिधर को शून्य सुनसान थल था पड़ा,
आम के पेड़से थी जहां दीखती
प्रेम-आलिंगिता मालती की लता

(४)

बस उसी वृक्षके सीसकी ओर कुछ
खड़खड़ाकार एक शब्द सा सुन पड़ा,-
साथ ही पंखकी फड़फड़ाहट, तथा
शत्रु निःशंककी कड़कड़ाहट, तथा
पत्तियोंमें पड़ी हड़बड़ाहट, तथा
कंठ और चोंचकी चड़चड़ाहट, तथा
आर्ति-युत कातर स्वर, तथा शीघ्रता-
युत-उड़ाहट-भरा दृश्य इस दिव्य-छवि-
लुब्ध दृग-युग्मको घृणित अति दिख पड़ा।
चित्त अति चकित अत्यन्त दुःखित हुआ

श्रीपद्मकोट, प्रयाग २३-११-१८ —श्रीधर पाठक।

भूमिके जीवाणु

[ले०—प्रोफेसर तेजशङ्कर कोचक, बी. ए. एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

हम पिछले अङ्कमें देख आये हैं कि अनत्रीकर जीवाणु किस प्रकार पशुओं या पौधोंकी मृत्देहोंसे अमोनिया, नत्रजन और नत्रित (नत्रसाम्लके यौगिक) बनाया करते हैं। इनमेंसे नत्रजन उड़कर वायुमें मिल जाती है, पर नत्रित (nitrites) और अमोनिया मट्टीमें रहते हैं। अगर अन्य उपर्युक्त जीवाणुओंके द्वारा इनमें परिवर्तन करके नत्रेत (nitrate) बना लिया जाय तो यह फिर वृक्षोंके काम आ जाता है और भूमिकी उपजाऊ शक्तिमें कमी नहीं आती।

नत्रीकर जीवाणु

जीवाणुओंके द्वारा अलबूमेन परिवर्तन होकर अमाइड या अमिद (amide) बनते हैं और अमाइड-से अमोनियाके यौगिक बनते हैं। नत्रीकर जीवाणु इससे नत्रित बनाते हैं और नत्रितसे नत्रेत, जैसे शोरा, बनाते हैं। अनत्रीकर और नत्रीकर जीवाणु साधारण दशामें साथ साथ मिट्टीमें रहते हैं।

नत्रीकर जीवाणुओंके कामके लिए निम्न-लिखित बातोंका होना आवश्यक है।

१—उचित आहार होना। यह केवल खनिज पदार्थका आहार कर सकते हैं।

२—वायुका भली भांति प्रवेश होना। यही कारण है कि खेतको ज़्यादा जोतने और गोड़ने-से खेतकी उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है, क्योंकि खेतमें नत्रेतका अंश बढ़ जाता है।

३—खारका (alkali) बहुत थोड़ा होना नत्रीकर जीवाणुओंके काममें सहायता देता है और खटास अर्थात् एसिडका होना हानिकारक होता है। इसी कारण खेतमें थोड़ा सा चूना देनेसे उप-जाऊ शक्ति बढ़ जाती है।

४—अति उत्तम तापक्रम नत्रीकर जीवाणुओंके कामके लिए ६६ दर्जे फ़ारनहैट अर्थात् मनुष्य-के देहका इतना ताप है। इसी कारण बरसातमें, जाड़ेके आरम्भ होने तक खेतकी बार बार जोताई बड़ी लाभदायक होती है। नत्रीकर जीवाणु भी केवल खनिज पदार्थपर जीवित रह सकते हैं।

यह नत्रीकर जीवाणु मिट्टीमें नदियोंके जलमें, कीचड़में और प्रायः कुएँके जलमें भी मिलते हैं। खेतोंमें चार पांच फ़ुटकी गहराई तक मिलते हैं, परन्तु अधिकांश सतहपर एक फ़ुट नीचे तक रहते हैं।

साधारण रीतिसे जो रासायनिक परिवर्तन

खेतोंकी मट्टीमें होते हैं, उनके द्वारा थोड़ा थोड़ा करके नत्रजन मुक्त होकर वायुमें मिलता रहता है और खेतोंमें उसकी मात्रा कम होती जाती है। इसके अतिरिक्त अमोनिया, नत्रित और नत्रेत सब बड़ी शीघ्रतासे पानीमें घुल जाते हैं, वर्षा और सिंचाईके पानीमें घुलकर खेतसे बह जाते हैं और नदी नालेके द्वारा समुद्रमें चले जाते हैं। नगरोंके कूड़े करकट, कीचड़ इत्यादिमें भी नत्रजन बहुत होती है और यह भी जलमें बह कर समुद्रमें चली जाती है। बारूद, डाइनेमाइट इत्यादि जो बन्दूक और तोपोंमें भरे जाते हैं, उनके द्वारा भी बहुत कुछ नत्रजन खराब होती है।

पाठकोंको मालूम हो गया होगा कि किस किस तरह भूमिके नत्रजनीय पदार्थ खराब होते रहते हैं। इसीलिए नत्रजनका भूमिमें फिर पहुंचाना बहुत आवश्यक है। अगर ऐसा न किया जाय तो भूमिकी उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाय। अब देखना चाहिये कि भूमिमें किन किन उपायोंसे नत्रजन पहुंचती है। हम ऊपर कह आये हैं कि जब बादल गरजते हैं तब नत्रिक अम्ल बनता है और इसके द्वारा भूमिको नत्रेत प्राप्त होते हैं। परन्तु इसकी मात्रा बहुत थोड़ी होती है और इसीके भरोसे रहनेसे खेतकी उपजाऊ शक्ति कायम नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त हम खाद पांसके द्वारा नत्रजन खेतकी मिट्टीमें पहुंचाते हैं। साधारण दशामें एक एकड़ खेतमें एक सौ पौण्ड नत्रजन पहुंचा देना सब जिन्सोंके लिये काफी है। हम यहां क्लार्क-बनरजी रचित सूची देते हैं, जिससे मालूम होगा कि सौ पौण्ड नत्रजन खेतमें पहुंचानेके लिए किस खादकी कितनी मात्रा देनी चाहिये और अगर सब काश्तकार अपने खेतोंमें उपरोक्त मात्रा देना चाहें तो एक तिहाई काश्तकारोंको भी काफ़ी मात्रा खादकी नहीं मिल सकती है।

अतएव स्पष्ट है कि कोई उपाय हमारे पास

क्लार्क-बनरजी-सूची

नाम खाद	एक मनमें नत्रजनकी मात्रा		सौ पौण्डके लिए कितना खाद चाहिये
	सेर	छटांक	मन
अन्डीकी खली	२	८	२०
बिनौलेकी खली	१	...	५०
महुएकी खली	१	...	५०
नीमकी खली	२	४	२५
करन्जकी खली	१	८	३४
भेड़की मींगनी	...	४	२००
गोबर	...	४	२००
कूड़ाकरकटकी पांस	..	४	२००
मूत्र	...	४	२००
कण्डे अर्थात् ऊपले	...	८	१००
सोडा नत्रेत या पोटास नत्रेत	८	३	७ $\frac{७}{१०}$

नहीं, जिससे हम धरतीकी उपजाऊ शक्ति कम न होने दें। पर ईश्वरकी माया विचित्र है। उसने पहले ही ऐसे उपाय रच दिये हैं, जिनका सहारा ले हम यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। इस विषयमें हमारी सहायता नत्रजनजीवाणु करते हैं।

नत्रजन जीवाणु

नत्रजनजीवाणुओंसे हमको बड़ा लाभ पहुंचता है। इन्हींके कारण हमारी धरतीकी उपजाऊ शक्ति बनी हुई है। वायुमंडलमें हमारी ज़रूरतसे कितनी ही ज़्यादा, अथाह नत्रजन भरी है, पर यह केवल नत्रजनजीवाणुओंके द्वारा ही हमारे काम आ सकती है।

चने, अरहर, मटर, लोबिया इत्यादि किसी फलीदार वृक्षको जड़ समेत उखाड़ लीजिये और जड़ोंको पानीमें, डुबोकर बहुत आहिस्तासे, जिसमें जड़ें टूटने न पाएं, मट्टी धो डालिये। तो देखिये-

गा कि जड़ोंपर कितने ही मस्से या दानेसे मौजूद हैं। इन्हीं दानोंमें नत्रजनजीवाणु रहते हैं। आगे चलकर इनको निकालने और पालनेकी तर्कीब बतलायंगे। जब फलीदार दरख़्तोंको हम काट डालते हैं तो उनकी जड़ें जो भूमिमें रह जाती हैं, खादका काम देती हैं, क्योंकि नत्रजन जीवाणुओं-के द्वारा जो नत्रजनके यौगिक इन जड़ोंमें बनते हैं, खेतमें मिल जाते हैं।

इसी कारण जब कभी 'हरी' खाद खेतोंमें देनी होती है, तो फलीदार वृक्षोंको खेतमें बो देते हैं और जब वे फलने लगते हैं तो हल चलाकर उन्हें खेतकी मट्टीमें मिला देते हैं। दूसरी फसलके लिए भूमिमें बहुत कुछ नत्रजन विद्यमान रहता है। उस भूमिमें, जिसमें नत्रजन बिलकुल नहीं है या बहुत कम है, अगर फलीदार वृक्ष नत्रजन जीवा-णुओंका टीका लगाकर बो दिये जायं तो उपज बहुत अच्छी होगी। टीका लगानेकी रीति आगे बतलायंगे। फलीदार वृक्ष भूमिके नत्रेत भी अपने काममें ला सकते हैं। अतएव यदि किसी खेतमें पर्याप्त नत्रजन है तो पेड़ोंको नत्रजन जीवाणुओंकी अधिक आवश्यकता नहीं होती। इसीलिए इनकी जड़ोंपर ऐसे खेतमें दाने कम दिखलाई देते हैं। स्मरण रहे कि नत्रजन जीवाणु उसी नत्रजनको काममें लाते हैं जो मट्टीमें घुस सकती है। हवा मट्टीमें तभी आ जा सकती है, जब वह गोड़कर ठीक कर ली जाती है। इसलिए गुड़ाईका ध्यान रखना चाहिये।

नत्रजन जीवाणु उपजानेकी रीति

एक चाकू तपाकर खूब साफ करो। फिर ठंडा होने दो और किसी फलीदार वृक्षकी जड़का एक भाग, जिसपर दस पांच दाने हों, तोड़ लो। पानी डालकर मट्टी धोकर अलग कर दो और पहले मरकरी लोशन और बादमें शुद्ध पानीसे दानोंको धो लो। अन्तमें चाकूसे इन दानोंको चीरो। इनमेंसे दूध सा निकलेगा। अब हम डाक्टर मूटकी नत्रजन जीवाणुकी उपजा-नेकी रीति बतलाते हैं। नीचे दी हुई चीज़ें लो और उनका घोल तय्यार कर लोः—

१०० भाग पानी
 १ " अगर अगर
 १ " शक्कर
 $\frac{१}{२०}$ " मगनीसियम सलफेट (गंधेत)
 $\frac{१}{१०}$ मोनोबेसिक पोटास फोस्फेत

सब यंत्र और वस्तुओंको शुद्ध करके उपरोक्त घोलमें दूध थोड़ासा दानोंसे निकालकर छोड़ दो। इसके पश्चात् बीससे तीस दर्जे शतांश (२०°—३०° C.) की गरमीपर इन्हें रखनेसे महीने दो महीने तक जीवाणु नष्ट नहीं होंगे।

जब जीवाणुओंको काममें लाना हो अर्थात् जब ज़मीन अथवा बीजोंको टीका लगाना हो तब निम्नलिखित रीतिसे इस घोलको काममें लाना चाहिये। घोल नं २ नीचे लिखे पदार्थोंको लेकर तय्यार कर लोः—

$\frac{१}{२०}$ हिस्सा मगनीसियम सलफेट
 १ " शक्कर
 $\frac{१}{१०}$ मोनोबेसिक पोटासियम फोस्फेट
१०० " पानी

इसके बाद घोलके एक लाख भाग लेकर, पहले तय्यार किये घोलका एक हिस्सा मिलाना चाहिये। अब इन दोनों घोलोंके मिश्रणको पालन-यंत्रमें रख कर बीससे तीस शतांशकी गरमीमें वृद्धि (जीवाणुओं की) कर लीजिये। चौबीसघंटे बाद यह दूधके रंगका हो जायगा। जब ऐसा हो जाय तो बीजोंपर इसको छिड़क कर, बीजोंको छायामें सुखाकर, साधारण रीतिसे खेतमें बो दो। एक समय स्वर्गबासी डाक्टर हैमेन और लेखकने उपरोक्त रीतिसे टीका लगा कर चने बोये थे। साथ साथ कुछ बिना टीका लगाये भी बो दिये थे। चित्रमें दोनों वृक्षोंकी फोटो दी हैः—

† A बिना टीका लगाये हुये बीजका वृक्ष
B टीका लगाये हुये बीजका वृक्ष

यह दोनों तरहके बीज एक ही समय एक स्थानपर बोये गये थे और एक ही समयमें दोनों उखाड़े गये थे। दोनोंमें जो अन्तर है वह स्वतः स्पष्ट है। यह ध्यान रखना चाहिये कि टीका लगाना नौतोड़ भूमिमें या उस भूमिमें कि जिसमें नत्रेत कम हों अधिक लाभदायक होता है। अन्य खेतोंमें लाभदायक नहीं होता। टीका लगानेकेलिए जिस वृक्षको टीका लगाना हो उसी वृक्षकी जड़के दानोंके जीवाणु उपजाने चाहियें, उपर्युक्त वर्णनको पढ़कर पाठकगण भली भांति समझ गये होंगे कि—

(१) जिस भूमिमें जीवाणु नहीं होते उसमें उपज नहीं होती।

(२) भूमिके जैव अंशमें (आरगेनिकमेटरमें) जो रासायनिक परिवर्तन होता है वह केवल जीवाणुओंके द्वारा होता है।

(३) जैसा कि जोतना, बोना और खाद देना कृषिकर्ममें आवश्यक है वैसा ही उचित जीवाणुओंका उपजाना भी आवश्यक है।

रोगके जीवाणु

टिटानस—इस बीमारीसे आदमीकी गर्दन और मुंहके जबड़े जकड़ जाते हैं और जकड़न धीरे धीरे
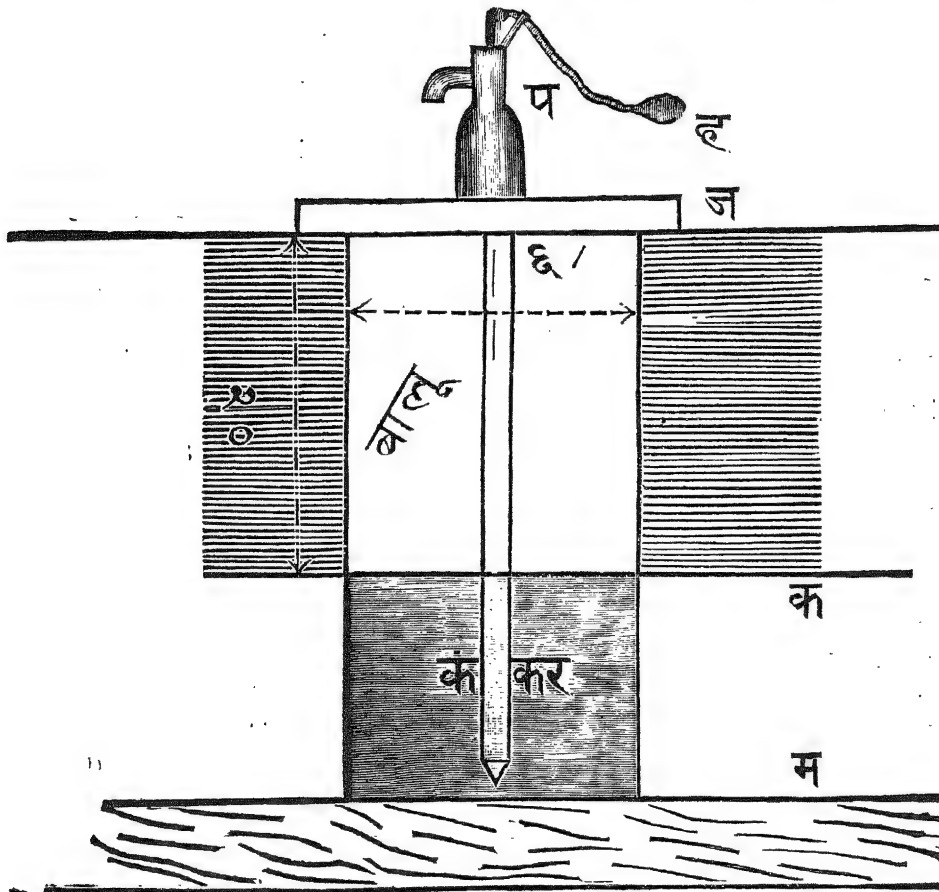
चित्र २५

फैलकर गर्दनसे फेफड़े और पेट तक पहुंच जाती है। बुखार तेज़ होता है। नाड़ी तेज़ चलती है और पसीना बहुत आता है और एक प्रकारसे मनुष्य दम घुट कर मर जाता है।

टिटानसका जीवाणु अवायव्य जीवाणु है, पर उबलते पानीमें भी यह कई मिनट तक जीवित रह सकता है।

काटर ईविल—टिटानसकी तरहसे यह भी अवायव्य है और भूमिमें ऊपर मिट्टीमें रहता है, बहुत गहरा नहीं जाता।

मैलिगनैन्ट एडीमा—यह घावोंके द्वारा एक प्रकारका विष रक्तमें फैला देता है।

ऊपर दिये हुए तीन मुख्य रोगोंके जीवाणु हैं। इनके अतिरिक्त एन्थ्रैक्स, कालरा, टाईफ़ायड, ट्यूबर्किल इत्यादि जीवाणु भी मिट्टीमें मिलते हैं और बहुत से जीवाणु धूलके द्वारा उड़कर साधारण दशामें मिट्टीमें न भी रहते हों तो एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुंच जाते हैं और मक्खियोंके द्वारा तो नाना प्रकारके रोग फैला करते हैं।

तराई इत्यादिमें मसलन गोरखपुर बस्ती, गोंडा, बहराइच, खेरी, पीलीभीत इत्यादि देशोंमें पानी दस बीस हाथपर मिलता है, भूमि बड़ी तर रहती है, और आंगारक पदार्थ (आरगैनिक मेटर) भी मिट्टीमें अधिक होता है। वहां कुओंके पानीमें तेल सा तैरता दिखलाई देता है, जो वास्तवमें वायव्य जीवाणुओंकी एक हलकी मकड़ीके जालेकी सी परत है। ऐसे स्थानोंपर पानी पीनेके कुएँ डाक्टर फोशकी रीतिके अनुसार बड़ी सुगमतासे बन सकते हैं और पीनेके लिए पानी बड़ा स्वच्छ प्राप्त हो सकता है। देखिये चित्र २५। यह कुआं है। इसका व्यास छः फुटका है।

म मोटा अर्थात् चिकनी मिट्टीकी तह है क स्थान तक इसमें पानी भरा रहता है। कच्चा कुआं खोद कर एक पम्प प उसके बीचमें खड़ा करो और जितनेमें पानी है कंकड़ भर दो। इसके ऊपर मुंह तक बालू भर दो और फिर (ज) पक्की जगत बांध दो। ह है हैंडिल, जिससे पम्पको चलाकर पानी जब चाहो निकाल लो।

जिन जीवाणुओंका वर्णन ऊपर कर चुके हैं, उनके अतिरिक्त और बहुत से, सैकड़ों प्रकारके जीवाणु, भूमिमें मिलते हैं, परन्तु उनका वर्णन रोचक नहीं है। इसीलिए यहां देना अनुचित होगा।

बाधाओंका बंधन

[ले०—प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस–सी.]

सब बिजलीके चक्रोंमें बाधाएं श्रृंखलाबद्ध या हारबद्ध होती हैं। चक्र कितना भी पेचदार क्यों न दिखलाई पड़े, उसके प्रत्येक भागपर ध्यान देनेसे यही नतीजा निकलेगा कि कुछ बाधाएँ श्रृंखलाबद्ध हैं और कुछ हारबद्ध। जब दो बाधाएं (मान लो १ और २ ओह्म) श्रृंखलाबद्ध या हारबद्ध हों तो इस जुट्टकी, दोनोंको मिलाकर, बाधा, जिसे बाधाओंको लब्ध बाधा कहेंगे, न १ ओह्म होगी और न २ ओह्म, किन्तु कुछ और ही होगी। जिन नियमोंके अनुसार यह लब्धबाधा निकाली जा सकती है, उनका वर्णन इस लेखमें करेंगे।

श्रृंखलाबद्ध बाधाएं

मानलो कई बाधाएं श्रृङ्खला बद्ध हैं। उनमेंसे पहली बाधा $ब_1$ ओह्म, दूसरी $ब_2$ और तीसरी $ब_3$ ओ० इत्यादि हैं। पहली बाधाका एक सिरा खुला है और दूसरा सिरा दूसरी बाधाके एक सिरेसे क विन्दुपर जुड़ा हुआ है। दूसरी बाधाका दूसरा सिरा तीसरी बाधाके एक सिरेसे ग विन्दुपर जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार शेष बाधाएं भी क्रमसे जुड़ी हुई हैं। जो धारा पहली बाधाके खुले हुए सिरेसे प्रवेश करती है वही उसके दूसरे सिरेमेंसे निकलकर दूसरी बाधामें प्रवेश करती है।

Electricity विद्युत् शास्त्र]

यही धारा दूसरी बाधामेंसे निकल कर तीसरीमें, तीसरीसे चौथीमें और अन्तमें आखिरी बाधाके परले सिरेमेंसे निकलती है। इससे यही नतीजा निकला कि चाहे कितनी ही बाधाएं शृङ्खलाबद्ध हों, उनमेंसे प्रत्येकमें एक ही धारा बहती है। ओह्मके नियमके अनुसार पहली बाधाके सिरोंमें अवस्था भेद $व_1$ ध वोल्ट है, यदि ध एम्पकी धारा चक्रमें बहती हुई मानली जावे। इसी प्रकार दूसरी बाधाके सिरोंमें अवस्था भेद=$व_2$ ध वोल्ट, तीसरी बाधाके सिरोंमें अवस्था भेद=$व_3$ ध वोल्ट इत्यादि। पहली बाधाके सिरोंमें अवस्था भेद=$व_1$ ध वोल्टोंके बराबर है और दूसरी बाधाके सिरोंमें $व_2$ ध वोल्टोंके पहली बाधाका दूसरा सिरा और दूसरी बाधाका पहला सिरा क विन्दु पर जोड़ दिये गये हैं, जिस कारण उनकी अवस्था एक ही हो गयी है। इसी कारण पहली बाधाके पहले सिरे और दूसरी बाधाके दूसरेमें (जो तीसरी बाधाके पहले सिरेसे ग विन्दुपर जुड़ा है) अवस्था भेद=$व_1$ ध+$व_2$ ध वोल्ट। इसी प्रकार तर्क करनेसे यह ज्ञात हो जायगा कि पहली बाधाके पहले सिरे और आखिरी बाधाके परले सिरेमें अवस्था भेद=$व_1$ ध+$व_2$ ध+$व_3$ ध इत्यादि, अर्थात् बाधाओंके जुट्टके सिरोंपर अवस्थाभेद इस जोड़के बराबर है। किन्तु यही अवस्था भेद लब्ध-बाधा और धाराके गुणनफलके बराबर होना चाहिये। यदि लब्धबाधा व ओह्म मानलें तो अवस्थाभेद वध वोल्ट होना चाहिये। क्योंकि धारा =ध एम्प, इसलिए।

$$व\ ध = व_1\ ध + व_2\ ध + व_3\ ध \text{ इत्यादि।}$$

समीकरणमें ध का भाग देनेसे

$$व = व_1 + व_2 + व_3 \text{ इत्यादि।}$$

इससे यह नियम निकलता है कि शृंखला बद्ध बाधाओंकी लब्धबाधा उनके जोड़के बराबर होती है।

हार बद्ध बाधाएं

तीन बाधाएं चित्र २७ में हार बद्ध दिखलायी गयी हैं। इनका एक एक सिरा क विन्दुपर जुड़ा हुआ है और दूसरा ग विन्दुपर। क पर जुड़े हुए सिरोंकी अवस्था एक ही होनी चाहिये। इसी प्रकार ग पर जुड़े हुओंकी अवस्था भी एक समान होनी चाहिये। इसलिए जो अवस्थाभेद एक बाधा-

चित्र २६ और २७
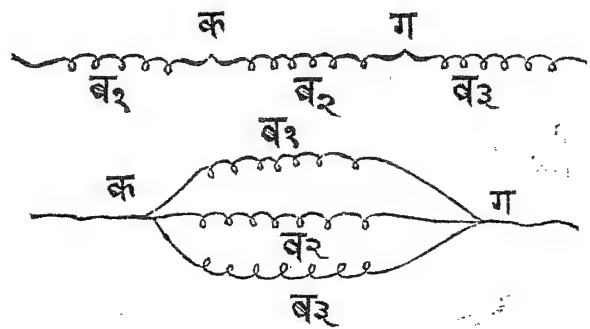
के सिरोंमें है वही अवस्थाभेद सब बाधाओंके सिरोंमें है। किन्तु जो धारा क विन्दुपर प्रवेश करती है वह किसी एक बाधामेंसे हो कर नहीं बहती है। वह तीनों बाधाओंमें होकर बहती है अर्थात् जैसे ही धारा क विन्दुपर आयी, उसके तीन भाग हो गये। एक भाग $व_1$ मेंसे दूसरा $व_2$ में से और तीसरा $व_3$ मेंसे होता हुआ ग विन्दुपर पहुंचा। इस विन्दुपर तीनों भाग फिर मिल गये और मिलकर निकल गये। शृंखलाबद्ध बाधाओं और हारबद्ध बाधाओंका अव भेद मालूम ही हो गया होगा। शृंखला बन्धनमें धारा प्रत्येक बाधामें एक ही रहती है, किन्तु अवस्थाभेद भिन्न होता है। हार बन्धनमें धारा बदल जाती है, किन्तु अवस्थाभेद एक ही रहता है। यदि क और ग में अवस्था भेद अ वोल्ट हो तो $व_1$ मेंसे बहती

हुई धारा $ध_1 = \frac{अ}{व_1}$ एम्प

इसी प्रकार $ध_2 = \frac{अ}{व_2}$ एम्प

और $ध_3 = \frac{अ}{व_3}$ एम्प

यदि उस धाराको जो क विन्दुपर बाटरीसे आती है और ग विन्दुसे निकलकर बाटरीमें चली जाती है ध से सूचित करें तो।

$ध = ध_१ + ध_१ + ध_३$

अब यदि लब्ध बाधाको ब से सूचित करें तो $ध = \frac{अ}{ब}$

किन्तु $ध = ध_१ + ध_२ + ध_३$

$\therefore \frac{अ}{ब} = \frac{अ}{ब_१} + \frac{अ}{ब_२} + \frac{अ}{ब_३}$

अ दोनों ओर से कट जायगा और हमको यह समीकरण मिल जायगाः—

$\frac{१}{ब} = \frac{१}{ब_१} + \frac{१}{ब_२} + \frac{१}{ब_३}$

इस समीकरणसे यह नियम निकला कि हारबद्ध बाधाओंकी लब्ध बाधाका व्युत्क्रम बाधाओंके व्युत्क्रमोंके जोड़के बराबर होता है। बाधाके व्युत्क्रमको चालकता (conductance) कहते हैं। इसलिए इसी नियमको यों भी लिख सकते हैं कि हार बद्ध बाधाओंके समूहकी चालकता उनकी चालकताओंके जोड़के बराबर होती है।

मधुमक्षिकाका छत्ता

मधुमक्षिकाओंके छत्तोंकी बनावटको वैज्ञानिक संसार आश्चर्यकी दृष्टिसे देखता है और उनके विलक्षण रचनाचातुर्य्यकी शतमुखसे प्रशंसा करता है। अब कुछ दिनोंसे विज्ञानवेत्ता उनकी भीतरी बातों-रहन सहन आदिका ध्यानसे निरीक्षण कर रहे हैं। पेरिससे प्रकाशित होनेवाले एक साप्ताहिक पत्रमें मधुमक्षिकाओंके युद्ध कौशल, व्यूहरचना आदि बातोंका बड़ा अच्छा वर्णन किया गया है। लेखकका कहना है किः—

'मक्षिकाएँ लड़नेमें बड़ी चतुर होती हैं। युद्ध छिड़नेके कई कारण हैं, जैसे जन संख्याकी अधिकता, दुकाल, लूट मारकी इच्छा, आदि। प्रायः जब फूलोंमें मधुका अभाव होता है तब युद्ध छिड़ता है। विजेता पराजितके घरका सब मधु ले जाता है। उस समय यह बात नहीं देखी जाती कि कितने मधुकी आवश्यकता है। प्रत्युत जितना उन्हें मिल जाता है सब ले जाते हैं।

'प्रत्येक छत्तेमें एक सम्राज्ञी-मक्षिका रहती है। युद्धमें सम्राज्ञी-मक्षिका साधारण मक्षिकाके साथ नहीं लड़ती। सम्राज्ञियां आपसमें द्वन्द युद्ध करती हैं। इस मल्लयुद्धमें कोई किसीको सहायता नहीं देता। रानियां लड़ते समय एक दूसरेके जबड़े और पंजोंको ख़ूब कसकर पकड़ लेती हैं और अपने डंकोंका प्रयोग भी एक दूसरेपर करती हैं। इस प्रकार लड़ते लड़ते घंटों बीत जाते हैं। जब वे देखती हैं कि दोनों शक्तिमें बराबर हैं तब लड़ना छोड़कर विरुद्ध दिशाओंमें भग जाती हैं।

'मक्षिकाएँ दुर्ग बना कर रहती हैं, जिसे वे मोमकी खाईसे संरक्षित रखती हैं। उसमें बचावकी सब सामग्री रखी जाती है। द्वार बहुत छोटा रक्खा जाता है, जिससे केवल एक बार एक ही मक्षिका प्रवेश कर सके। दुर्गके फाटकपर पहरेवाले नियत किये जाते हैं। ये किसी मक्षिकाको बिना संकेत-सूचक-शब्द बतलाये भीतर पैठने नहीं देते। जासूस पकड़े जानेपर अवश्य ही मार डाले जाते हैं। लुटेरोंकी संख्या जब अधिक होती है, तब पहरेदार तारद्वारा सेना-विभागको सूचित करता है। सेना भेजी जाती है। आक्रमण करनेवाले सरकारी आज्ञाके लिए ठहरे नहीं रहते किन्तु एक दम टूट पड़ते हैं। घमासान युद्ध होने लगता है। दोनों पक्ष अपनी अपनी सैन्य-संख्याको बढ़ाती चली जाती हैं। जिस ओरकी रानी पतित होती है उस ओरकी सेना बस भाग खड़ी होती है और तित्तर बित्तर हो जाती है। विजेता-दल उनपर टूट पड़ता है और ढूंढ़ ढूंढकर उनका विनाश करता है। दया कभी नहीं प्रदर्शितकी जाती। 'संहार' उनका मूल मंत्र है। सम्राज्ञी-हन्ताको सम्मान मिलता है।"

—कुलदीप सहाय

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला-महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१-विज्ञान प्रवेशिका भाग १— ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२-विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३-मिफताह-उल-फ़नून-अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४-ताप-ले० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५-हरारत [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला-प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६-पशुपक्षियोंका श्रृङ्गार रहस्य-ले० सालिग्राम वर्मा, ... -)

७-केला-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

८-सुवर्णकारी-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९-चुम्बक-ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०-गुरुदेवके साथ यात्रा-ले० बसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी., विशारद, ... ।=)

११-क्षयरोग ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... -)

१२-दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. -)

विज्ञापन छपाईके नियम।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास ... ... ५)
प्रति पृष्ठ २ कालम ... ... ४)
१ ,, ... २।)
आधा ,, ... १।)
आधे कालमसे कमका ... ... १)

२—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा। जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें।

३—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालोंको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा।

५—विज्ञापन बँटाईकी दर क्रोड़पत्र देखकर बतायी जायगी।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषत्, प्रयाग।

हमारे शरीरकी रचना भाग २

छपकर प्रकाशित हो गया !!

स्वास्थ्यरक्षाके नियम जाननेके लिए और संसारमें सुखमय जीवन बितानेके लिए इस पुस्तकका पढ़ना परमावश्यक है।

देखिये इसकी विषयसूची और स्वयम् विचारिये कि कैसे महत्वके विषय इसमें दिये हैं:—

१-पोषण संस्थान, २-रक्तके कार्य, ३-नाड़ी मण्डल, ४-चक्षु, ५-नासिका, ६-जिह्वा, ७-कर्ण, ८-स्वर यंत्र, ९-नर जननेन्द्रियां, १०-नारी जननेन्द्रियां, ११-गर्भाधान, १२-गर्भ विज्ञान, १३-नवजात शिशु।

इस भागमें ४५४ पृष्ठ हैं। १३३ चित्र हैं। १९ चित्र हाफ टोन प्लेट हैं। १ रङ्गीन चित्र है।

मूल्य केवल ३।)—विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सभ्य और परिसभ्योंको २॥।≡) में मिलेगी।

पता—मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग।

ललिता

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ नवजात सबसे सरस मासिक पत्रिका

औरोंकी दृष्टिमें

चित्रमय जगत्—पत्रिका सब प्रकारसे उच्च और अपने ढंगकी एक नई वस्तु है।

विश्वमित्र—हम इसे उच्च कोटिकी मानते हैं।

प्रकाश—ललिता वास्तवमें रूप, गुण, माधुर्य तथा लालित्यकी खानि है। ललिता, सोलहों आने श्रृङ्गारसे है। इस पर भी मूल्य ५) वार्षिक कुछ अधिक नहीं। लेख एक से एक बढ़िया, सार गर्भित, विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरञ्जक हैं।

सद्धर्म प्रचारक—पत्रिकाका स्वरूप कुछ सरस्वतीसे घटिया नहीं दिखाई देता।

धर्माभ्युदय—बहिरंग मनोहर है और हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उसका अन्तरंग भी हृदयग्राही है।

वार्षिक मूल्य ५) छः मासका मूल्य २॥) नमूनेकी प्रति ॥)

मेनेजर—ललिता, सेवा सदन मेरठ।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-काग़ज़ काम-रद्दीका उपयोग-).७-केला—मूल्य -). ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषद्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ४५ | Reg. No. A-708
भाग ८ | धन १९७५ । दिसम्बर १९१८ | संख्या ३
Vol. VIII. | No. 3

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक-गोपालस्वरूप भार्गव

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,

Telegram to be addressed thus :—
"DR. BHARGAVA", ALLAHABAD.

Ladies and Gentlemen desirous of gaining my advice in any case of Diseases, whether Acute or Chronic, should give a plain statement of their afflictions, when contracted, the present symptoms, &c., in fact everything should be made known to me precisely as would occur by personal interview.

All Letters will be treated as strictly Private and Confidential.

Invalids, on a visit to Allahabad, may call on me whenever convenient.

Office Hours, 6 to 8 in the morning and 4 to 5 in the Evening.

ADDRESS :—

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,
235, BAHADURGANJ, ALLAHABAD, U. P.
or VIJNANA CHARITABLE DISPENSARY,
626, *Katra*, *Allahabad*.

बच्चा

[ले० कप्तान कुरेशी, अनु० प्रोफ़ेसर करमनारायण, एम., ए.]

देशभक्तो ! आपको मालूम है कि सं० १९११ में ९१ लाख बच्चे पैदा हुए और उनमेंसे १८ ३/४ लाख अर्थात् पांचवां भाग एक वर्षके होनेके पहले मर गये । इस कुदशाका सुधार यदि करना है तो गृहदेवियोंको बालरक्षाके नियम सिखलाइये ।

बच्चोंके सम्बन्धमें जितनी बातोंका जानना आवश्यक है, वह सब बातें इस पुस्तकके पढ़नेसे ज्ञात होंगी । अतएव इस पुस्तकका पढ़ना प्रत्येक गृहस्थके लिए आवश्यक है ।

अनुवादकको पंजाब के छोटे लाट ने १००) इनाम दिया है ।

पुस्तकका मूल्य १), विज्ञानके ग्राहकोंको केवल ॥।=) में मिलेगी ।

मंगानेका पताः—

प्रोफ़ेसर करमनारायण,
एम. एस-सी.,
ज्योर्ज टौन, प्रयाग ।

वेदान्त केसरी

अनुभव और शास्त्र रहस्यको समयानुकूल दृष्टान्तों सहित सरल भाषामें विवेचन करनेवाला हिन्दी मासिक पत्र दिवालीसे प्रगट हो रहा है । वार्षिक मूल्य ३) एक प्रतिनमूनेका ।=) आना ।

—पं० शंकरलाल कौशल्य
ताजगंज, आगरा

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग ८ } धन, संवत् १९७५ । दिसम्बर, सन् १९१८ । { संख्या ३

मंगलाचरण

(१)

बन्दहुं मातृ भारत धरनि
सकल-जग-सुख श्रेनि,सुखमा-सुमति-संपति-सरनि

(२)

ज्ञान-घन, विज्ञान-धन-निधि, प्रेम-निर्भर-झरनि
त्रिजग-पावन-हृदय-भावन-भाव-जन-मन-भरनि
बन्दहुं मातृ भारत धरनि

(३)

सेत हिमगिरि, सुपय सुरसरि, तेज-तप-मय तरनि
सरित-वन-कृषि-भरित-भुवि-छवि-सरस-कवि-मति-हरनि
बन्दहुं मातृ भारत धरनि

(४)

न्याय-मग-निर्धार-कारिनि, द्रोह-दुर्मति-दरनि
सुभग-लच्छिनि,सुकृत-पच्छिनि, धर्म-रच्छन करनि
बन्दहुं मातृ भारत धरनि

श्री पद्मकोट
प्रयाग, १०-८-७५ —श्रीधर पाठक

सरल त्रिकोणमिति

[ले०-प्रो० मनोहरलाल भार्गव, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

छले लेखमें हम त्रिकोणमितीय निष्पत्तियोंके निम्न लिखित सम्बन्ध सिद्ध कर चुके हैं:—

(१) $\text{कोज्या ख} = \frac{१}{\text{छे ख}}$ (२) $\text{छे ख} = \frac{१}{\text{कोज्या ख}}$

(३) $\text{ज्या घ} = \frac{१}{\text{कोछे ख}}$ (४) $\text{कोछे ख} = \frac{१}{\text{ज्या ख}}$

(५) $\text{स्प ख} = \frac{१}{\text{कोस्प ख}}$ (६) $\text{कोस्प ख} = \frac{१}{\text{स्प ख}}$

(७) $\text{स्प ख} = \frac{\text{ज्या ख}}{\text{कोज्या ख}}$ (८) $\text{कोस्प ख} = \frac{\text{कोज्या ख}}{\text{ज्या ख}}$

अब हम निष्पत्तियोंके कुछ और मुख्य मुख्य सम्बन्धोंपर विचार करेंगे।

Mathematics गणित]

१०—सिद्ध करो कि—

$$(\text{ज्या ख})^२ + (\text{कोज्या ख})^२ = १$$

कखग समकोण त्रिभुज है, अतएव

$$\text{कग}^२ + \text{खग}^२ = \text{कख}^२$$

$$\therefore \frac{\text{कग}^२}{\text{कख}^२} + \frac{\text{खग}^२}{\text{कख}^२} = १$$

$$\therefore \left(\frac{\text{कग}}{\text{कख}}\right)^२ + \left(\frac{\text{खग}}{\text{कख}}\right)^२ = १$$

क ज छ ख च ग

चित्र १

$$\therefore (\text{ज्या ख})^२ + (\text{कोज्या ख})^२ = १$$
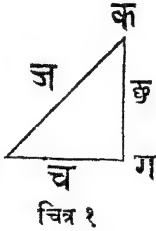
$(\text{ज्या ख})^२$ को ज्या^{२} ख भी लिखते हैं। स्मरण रहे कि ज्या^{२} स्वयम् निरर्थक है, क्योंकि ज्या संज्ञा मात्र है। परन्तु ज्या ख संख्या है, जिसका वर्ग हो सकता है। इसलिए कभी भूलकर यह न समझना चाहिये कि ज्या^{२} ख, ज्याके वर्गका और ख का गुणनफल है। याद रखना चाहिये कि वह ज्या ख का वर्ग है। इसी भांति अन्य त्रिकोणमितीय निष्पत्तियोंके घातोंके विषयमें जानना चाहिये।

११—सिद्ध करो कि—

$$१ + (\text{स्प ख})^२ = (\text{छे ख})^२$$

चित्र १ में $(\text{कख})^२ = (\text{कग})^२ + (\text{खग})^२$

$$\therefore \frac{(\text{कख})^२}{(\text{खग})^२} = \frac{(\text{कग})^२}{(\text{खग})^२} + १$$

$$\therefore (\text{छे ख})^२ = (\text{स्प ख})^२ + १$$

$$\text{या} \quad १ + \text{स्प}^२ \text{ख} = \text{छे}^२ \text{ख}$$

१२—सिद्ध करो कि—

$$१ + (\text{को स्प ख})^२ = (\text{को छे ख})^२$$

चित्र १ में $(\text{कख})^२ = (\text{कग})^२ + (\text{खग})^२$

$$\therefore \left(\frac{\text{कख}}{\text{कग}}\right)^२ = १ + \left(\frac{\text{खग}}{\text{कग}}\right)^२$$

$$(\text{को छे ख})^२ = १ + (\text{कोस्प ख})^२$$

$$\text{या} \quad १ + \text{कोस्प}^२ \text{ख} = \text{कोछे}^२ \text{ख}$$

१३—त्रिकोणमितीय निष्पत्तियोंको उनमेंसे किसी एकका रूप देना।

मान लीजिये कि समस्त निष्पत्तियोंको ज्याका रूप देना है।

$$\text{कोज्या ख} = \sqrt{\text{कोज्या}^२ \text{ख}} = \sqrt{१ - \text{ज्या}^२ \text{ख}}$$

$$\text{स्प ख} = \frac{\text{ज्या ख}}{\text{कोज्या ख}} = \frac{\text{ज्या ख}}{\sqrt{१ - \text{ज्या}^२ \text{ख}}}$$

$$\text{कोस्प ख} = \frac{\text{कोज्या ख}}{\text{ज्या ख}} = \frac{\sqrt{१ - \text{ज्या}^२ \text{ख}}}{\text{ज्या ख}}$$

$$\text{छे ख} = \frac{१}{\text{कोज्या ख}} = \frac{१}{\sqrt{१ - \text{ज्या}^२ \text{ख}}}$$

$$\text{कोछे ख} = \frac{१}{\text{ज्या ख}}$$

स्प ख के रूपमें निष्पत्तियां इस प्रकार होंगीः-

$$\text{ज्या ख} = \frac{१}{\text{को छे ख}} = \frac{१}{\sqrt{१ + \text{कोस्प}^२ \text{ख}}}$$

$$= \frac{१}{\sqrt{१ + \frac{१}{\text{स्प}^२ \text{ख}}}} = \frac{\text{स्प ख}}{\sqrt{१ + \text{स्प}^२ \text{ख}}}$$

$$\text{कोज्या ख} = \frac{१}{\text{छे ख}} = \frac{१}{\sqrt{१ + \text{स्प}^२ \text{ख}}}$$

$$\text{को स्प ख} = \frac{१}{\text{स्प ख}}$$

$$\text{छे ख} = \sqrt{१ + \text{स्प}^२ \text{ख}}$$

$$\text{कोछे ख} = \frac{१}{\text{ज्या ख}} = \frac{\sqrt{(१ \div \text{स्प}^२ \text{ख})}}{\text{स्प ख}}$$

इस भांति अन्य निष्पत्तियोंका रूप भी दिया जा सकता है।

१४—कोटिकोणकी त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां

जब दो कोणोंका योग एक समकोणके बराबर होता है, तो प्रत्येक कोण दूसरेका कोटि कोण कहलाता है। अब विचारणीय यह है कि यदि किसी कोण ख की त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां दी हुई हैं तो उसके कोटि कोणकी क्या होंगी।

चित्र १ से स्पष्ट होगा कि ज्या ख $= \frac{\text{क ग}}{\text{क ख}}$ = कोज्या क

इसी प्रकार कोज्या ख $= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ख}}$ = ज्या क, स्प ख $= \frac{\text{क ग}}{\text{क ख}}$ = कोस्प क। इसी प्रकार कोस्प ख = स्प क, छे ख = कोछे क और कोछे ख = छे क। यही परिणाम नीचे लिखे रूपमें भी रखे जा सकते हैं:—

कोज्या (९०° − क) = ज्या क ; ज्या (९०° − क) = कोज्या क इत्यादि ।

१५—ऋणात्मक और धनात्मक कोण।

पिछले लेखमें हम बतला चुके हैं कि यदि कोई रेखा अत स्थित हो और अव, घड़ीकी सुइयोंकी उल्टी दिशा में, अ की परिक्रमा दे तो एक पूरे चक्करमें चार समकोणके बराबरका कोण बनेगा। यदि यह चक्कर लगाना जारी रखे तो चार समकोणसे बड़ा भी कोण बन सकता है। मान लीजिये कि अब, अत स्थितिसे चलकर चित्र २ में दिखलाई स्थितिमें आकर पहुंचती है तो कोण ब अत = ६०° अब यदि अब रेख अ की चार परिक्रमा करके इस स्थितिमें आकर ठहरे तो तअब कोण = ४ × ३६०° + ६० = १४४०° + ६०° = १५००°

यदि तीन चक्करके बाद आकर ठहरेगी तो कोण तअब = ३×३६०° + ६०° = १०८०° + ६०° = ११४०°, इत्यादि। यह सब कोण धनात्मक माने जाते हैं। यदि अब घड़ीकी सुइयोंकी दिशामें चक्कर लगावे तो कोण ऋणात्मक कहलाते हैं। उनका परिमाण भी धनात्मक कोणोंकी नाईं नापा जाता है।

अब अत पर अल लम्ब खड़ा करो और त अ और ल अ को, ता और ला तक बढ़ा दो। स्पष्ट होगा कि त अ ल = ९०°; तअता = १८०°, तअला = २७०°; और त अ त = ३६०°।
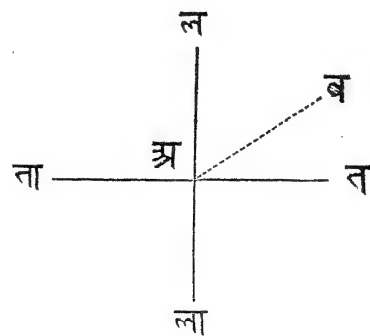
चित्र २

इसीलिए जो कोण त अ ब, ९०° से कम होगा, तो अब, तअल पादमें होगी। यदि ९०° से बड़ा, परन्तु १८०° से छोटा होगा तो अब, ल अ ता पादमें होगी। यदि १८०° से बड़ा, पर २७०° से कम होगा तो ताअला पादमें होगी; जो २७०° से बड़ा या ३६०° से बड़ा होगा तो पाद ला अ त में होगी। इसी प्रकार यदि चार समकोणसे बड़ा होगा पर पांचसे छोटा तो अब प्रथम पादमें होगी, इत्यादि।

१६—सम्पूरक कोणकी निष्पत्तियां

जब दो कोणोंका योगफल दो समकोण होता है, तो प्रत्येक कोण दूसरेका सम्पूरक कोण कहलाता है। अब क और १८०° − क की निष्पत्तियोंका सम्बंध निकालना है। ब और बा से त ता पर बम और बामा लम्ब गिरा दो, पर पहले अब को अबा के बराबर करलो। [चित्र ३]

अब अ बा मा और अ ब म त्रिभुजों में

अब = अबा, कोण बा अ मा = कोण ब अ म, ब मअ = बा मा अ

∴ दोनों त्रिभुज सब प्रकार बराबर हैं और और ब म = बामा, और अम = अमा। (केवल लम्बाईमें)

अब ज्या (१८०° − क) = ज्या बा अ म = $\frac{\text{बा मा}}{\text{अ बा}} = \frac{\text{ब म}}{\text{अ ब}}$ = ज्या क

कोज्या (१८०°—क) = कोज्या बा अ म

$= \frac{\text{अमा}}{\text{अबा}} = \frac{-\text{अम}}{\text{अब}}$

= – कोज्या क
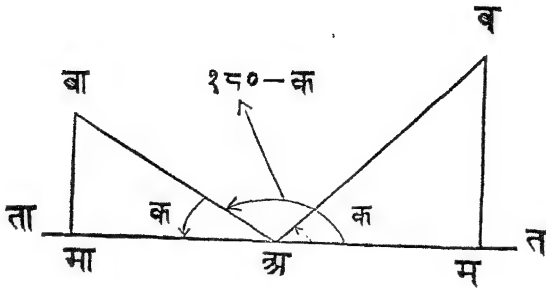
चित्र ३—इस चित्रमें अ ब को अ बा के बराबर बनाकर लम्ब खींच लीजिये।

क्योंकि जो लम्बाइयां अ की दाईं ओर या ऊपरकी तरफ़ नापी जाती हैं धनात्मक समझी जाती हैं और जो उसकी बाईं तरफ़ या नीचेकी ओर नापी जाती हैं धनात्मक समझी जाती हैं। इसी प्रकार स्प (१८०° – क) = – स्प क और (कोस्प १८०° – क.) = – कोस्प क, इत्यादि।

अतएव स्पष्ट है कि किसी भी कोणके ज्या और कोछे उसके संपूरक कोणके ज्या और कोछेके बराबर होते हैं, शेष निष्पत्तियां यद्यपि परिमाणमें तो बराबर होती हैं, तथापि चिन्हमें उल्टी होती हैं।

१७—सिद्ध करो कि

ज्या (१८०°+क) = – ज्या क और

कोज्या (१८०°+क) = –कोज्या क

मानलो कि कोणत अ ब=क (चित्र ४)

अ बा को अ ब के बराबर बनालो और अ त पर बम, बा मा लम्ब गिरा दो।

स्पष्ट है कि कोण त अ बा = १८०°+मा अ बा

= १८०°+म अ ब=१८०°+क

ज्या (१८०°+क) = $\frac{\text{मा बा}}{\text{अ बा}} = \frac{-\text{ब म}}{\text{अ ब}}$ = – ज्या क

और कोज्या (१८०°+क) = $\frac{\text{अ मा}}{\text{अ बा}} = \frac{-\text{अ म}}{\text{अ ब}}$

= –कोज्या क

∴ स्प (१८०°+क) = स्प क और

०°+ कोस्प (१८०°+क) = कोस्प क

चित्र ४

१८—सिद्ध करो कि ज्या (–क) = –ज्या क और कोज्या (–क) = कोज्या क

मान लो कि त अ ब कोई कोण है। ब से लम्ब ब म गिराओ और ब म को बा तक बढ़ा दो, जिससे ब म = बा म। यदि कोण त अ ब = क, तो त अ बा = –क, अब ज्या क =

$\frac{\text{ब म}}{\text{अ ब}} = \frac{-\text{म बा}}{\text{अ ब}}$ = –ज्या (–क)

और कोज्या क = $\frac{\text{अ म}}{\text{अ ब}} = \frac{\text{अ म}}{\text{अ बा}}$ = कोज्या (–क), इत्यादि [देखिये चित्र ५ व ६]

१८—उपरोक्त तीन सिद्धान्तोंकी व्यापकता। १८वें पदकी व्यापकतापर ही पहले विचार करिये। त अ ब का परिमाण या चिन्ह कैसा ही क्यों न हो, ब मा बा सदा एक ही रेखा रहेगी और म ब, तथा म बा के चिन्ह उलटे होंगे। इसीलिए एक कोणका ज्या दूसरेके ज्याके बराबर, परन्तु विपरीत चिह्नात्मक होगा। कोज्या बराबर और समान चिन्हवाले होंगे, क्योंकि दोनों कोणोंका वही (अ म) भुज रहेगा। [चित्र ५ तथा ६]

१७वें पदकी व्यापकताके विषयमें भी स्पष्ट है कि अ म और ब म जिस पादमें होंगे, उसके पीछेके

चित्र ५
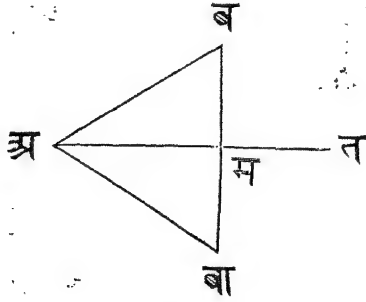
पादमें अ मा और मा बा होंगे। इसीसे उनके चिन्ह विपरीत होंगे। इसीलिए एक कोणके ज्या और कोज्या दूसरेके ज्या और कोज्याके बराबर परन्तु विपरीत चिह्नात्मक होंगे। [चित्र ४]
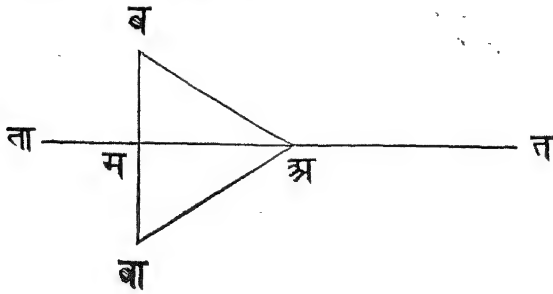
चित्र ६

१६वें पदकी व्यापकता भी इस प्रकार सिद्ध की जा सकती है:—

१७वें पदसे ज्या (१८०°+क)= -ज्या क

∴ ज्या (क—१८०°)= -ज्या क [क्यों कि कोण १८०°+क=क -१८०°]

∴ ज्या क= -ज्या (क—१८०°)

परन्तु १८वें पदसे ज्या (क—१८०°)= —ज्या (१८०°—क) [क्योंकि क—१८०°= —(१८०°—क)

∴ ज्या क =ज्या (१८०°—क)

स्पष्ट है कि १६ वें पदका सिद्धान्त १७वें तथा १८ वें पदोंकी सहायतासे सिद्ध किया है। पर १७ वें तथा १८ वें पदोंकी व्यापकता पहले ही दिखला चुके हैं। अतः १६वां पद भी सदा सर्वदा ठीक उतरेगा।

गैसोंका प्रसार

[ले०—प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव, एम.एस-सी. तथा प्रोफेसर व्रजराज, बी.एस-सी., एल-एल. बी.,]

जैसे ठोस और द्रव गरमी पाकर आयतनमें बढ़ जाते हैं ऐसे ही गैसें भी गरमी पानेसे आयतनमें बढ़ती और गरमी निकाल लेनेसे, ठंडा करनेसे, आयतनमें घट जाती हैं। पर गैसोंमें एक विशेषता यह है कि चाहे उनका तापक्रम न बदला जाय और न गरमी दी जाय, न कम की जाय, तो भी केवल दबावके घटाने बढ़ानेसे आयतनमें परिवर्तन हो जाता है। इसी अङ्क में* बायलका नियम सिद्ध करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि तापक्रम समान रखनेपर 'आयतन × दबाव = अचल राशि'। इसलिए गैसोंके प्रसार सम्बन्धी प्रयोग करते समय इस बातका ध्यान रहे कि यदि हम तापक्रमके परिवर्तनके कारण आयतनका प्रसार, तत्सम्बन्धी नियम और प्रसार-गुणक जानना चाहते हैं तो दबाव न बदलने देना चाहिये, नहीं तो प्रयोग निष्फल होगा, क्योंकि यह नहीं मालूम हो सकेगा कि आयतन तापक्रमके अथवा दबावके कारण बदल रहा है और कितना किसके कारण। इसीलिए जब दबाव और आयतनका सम्बन्ध जानना चाहते हैं तो तापक्रम नहीं बदलते और बायलके नियममें तापक्रम समान लेते हैं।

गैसें भी द्रवोंकी तरह बरतनोंमें रखी जाती हैं। इसलिए द्रवोंकी तरह गैसोंमें भी केवल घन-प्रसार नापकर घनप्रसारगुणक निकालते हैं।

* देखिये 'भार मान और बायलका नियम' शीर्षक लेख Physics भौतिक शास्त्र]

गैसें पारदर्शक होती हैं। इसलिए गैसोंका घनप्रसार गुणक निकालनेवाला यंत्र द्रवोंवाले यंत्रसे भिन्न होता है। इसका चित्र और वर्णन दिया जाता है।

यह यंत्र बिलकुल वैसा ही होता है जैसा बायलका नियम सिद्ध करनेवाला यंत्र, भेद केवल इतना ही है कि नली न के स्थानपर एक शीशेका बल्ब रहता है, जिसपर की नली बारीक छेदकी होती है और दो बार समकोणपर मुड़ी रहती है। [देखिये चित्र ७]
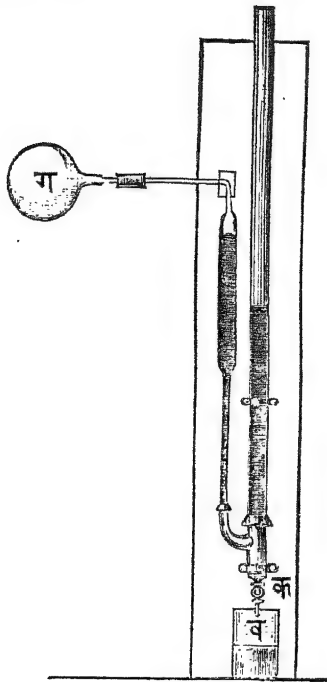
चित्र ७

इस बारीक छेदवाली नलीसे एक चौड़ी नली भी जुड़ी हुई है, जिसमें एक कौक क भी लगा है। यह चौड़ी नली बायलके नियमवाले यंत्र-की तरह दूसरी चौड़ी नलीसे रबड़की नली द्वारा जोड़ दी जाती है। प्रयोग करनेकेलिए बल्बका आयतन निकाल लिया जाता है। खुली नलीमें-से पारा यंत्रमें चौड़ी नलीके पेंदेतक भर लिया जाता है। बल्ब बरफमें रख दिया जाता है, जिससे उसके अंदरकी हवा सिकुडने लगती है। खुली नलीको ऊपर नीचे खिसकाकर ऐसे स्थानपर ले आते हैं कि पारा चौड़ी नलीके ऊपरके सिरेके पास पहुंच जाता है और उसकी पृष्ठ दोनों नलि-योंमें समान रहती है। ऐसी अवस्थामें बल्बके अंद-रकी हवाका दबाव वायु-मंडलके दबावके बराबर होता है। बल्ब बरफमेंसे निकाल कर भापमें रखा जाता है। कौकके रास्तेसे पारा चौड़ी नलीसे निकालते जाते हैं जब तक कि पारेका पृष्ठ दोनों नलियोंमें समान हो जाता है। इस उपायसे बल्बके अंदरकी हवाका दबाव ठंडी और गरम दोनों अवस्थाओंमें एक ही रहता है। पारा तोल लिया जाता है और इस तोलको पारेके घनत्वसे भाग देकर उसका आयतन निकाल लिया जाता है। यही बल्बके अंदरवाली हवाको बरफके तापक्रमसे भापके तापक्रम तक गरम करनेसे उसके आयतन-में अधिकता हुई। मान लो बल्बका आयतन अ घन शतांशमीटर है और यह अधिकता र घन शतांश-मीटर है तो एक घन शतांशमीटरमें १००° श के लगभग गरम करनेसे अधिकता हुई $\frac{र}{अ}$, जितनी अधिकता प्रति घन शतांशमीटरमें १° श गरम करनेसे होती है घन-प्रसार-गुणक कहलाती है। इसी कारण घन-प्रसार-गुणक $= \frac{र}{अ \times १००}$

विचित्र बात यह है कि यह संख्या $\frac{१}{२७३}$ के लगभग मिलेगी और प्रत्येक गैसके लिए करीब करीब इतनी ही पायी जायगी। दूसरी विचित्रता गैसोंमें यह है कि प्रत्येक तापक्रमपर आयतन न बदलने देनेसे दबाव बढ़ता है और १°श तापक्रम बढ़ानेसे जो एक शतांशमीटरके दबावमें अधिकता होती है वह दबावगुणक कहलाती है और घन-प्रसारगुणकके बराबर होती है। इसकी जांच इस प्रकारके यंत्रसे की जाती है। ब शीशीका बल्ब है, जिसके मुंहसे दो बार समकोणपर मुड़ी हुई एक बारीक छेदवाली शीशेकी नली जुड़ी हुई है। यह नली और यंत्रोंकी तरह एक खुली नलीसे रबड़की

नली द्वारा जुड़ी है। यह नलियां एक लकड़ीके तख्तेपर लगी होती हैं। इनके बीचमें एक गज लगा होता है। खुली नली ऊपर नीचे खिसकाई जा सकती है और जी चाहे उसी स्थानपर ठहरायी भी जा सकती है। बल्बको बरफमें रखकर खुली नलीको ऊपर नीचे खिसकाकर पारा बारीक छेद वाली नलीमें 'ग' स्थानपर ले आते हैं। या तो इस स्थान-पर नलीपर ही कोई चिन्ह बना होता है या जो गजका चिन्ह पारेकी पृष्ठसे समतल होता है लिख लिया जाता है। जो दोनो नलियोंके पारेकी पृष्ठों-की ऊँचाईमें भेद होता है वह भी लिख लिया
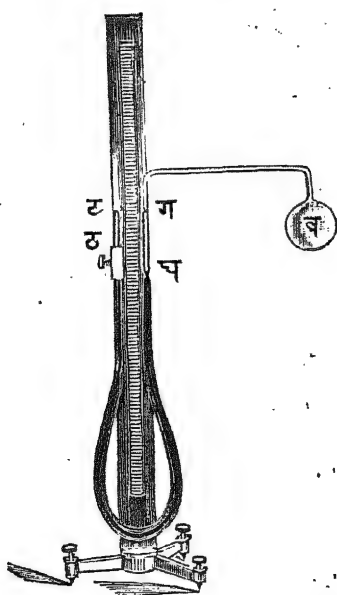
चित्र ८

जाता है। खुली नलीके पारेकी पृष्ठपर तो दबाव वायुमंडलके दबावके बराबर होता है और यह भारमापककी ऊंचाई देखनेसे मालूम कर लिया जाता है। बारीक छेदवाली नलीके पारेकी पृष्ठपर गैसका दबाव है जो भारमापककी ऊंचाईमें पृष्ठोंकी ऊंचाइयोंका अन्तर जोड़ने या घटानेसे मालूम कर लिया जाता है। बल्बको खौलते हुए पानी या भापमें रखकर गरम करते हैं, जिस कारण बारीक छेदवाली नलीका पारा गिरता चला जाता है और खुली नलीमें चढ़ता चला जाता है। किन्तु खुली नली ही ऊपर खिसकाकर बारीक छेदवाली नलीमें पारा फिर पहले स्थानपर ही ले आते हैं और दोनों नलियोंके पारेकी पृष्ठोंकी ऊंचाईका अन्तर लिख लेते हैं। उसमें वायुमण्डलका दबाव जोड़नेसे खौलते पानीके तापक्रमपर गैसका दबाव हुआ। उस दबावमेंसे पहलेका दबाव घटानेसे दबावमें अधिकता मालूम हो जाती है। उस अधिकताको शून्यपर के दबाव और तापक्रमके भेदके गुणन-फलसे भाग देनेपर दबावगुणक मालूम हो जायगा। स्मरण रहे कि यह सरल रीति उसी समय काम आ सकती है जब बल्बको पहले बरफ-में रख लिया हो।

यदि किसी वस्तुका तापक्रम मालूम करना हो तो उसे इस यंत्रके बल्बसे स्पर्श करना चाहिये। जब बल्बका तापक्रम वस्तुके तापक्रमके बराबर आ जायगा तो गैसके दबावमें अधिकता होगी और उस अधिकताको जानकर उस गैसके दबाव-गुणककी सहायतासे तापक्रम निकाला जा सकता है। उज्जन गैसका दबावगुणक निकाल लिया गया है और उसी गैसका ऐसा यंत्र बना कर जिसको उज्जनका (constant-volume-thermo-meter) स्थिरायतन तापमापक कहते हैं, साधारण तापमापकों पर चिन्ह लगानेके काममें लाते हैं।

—

बीजज्यामिति

विन्दु पथ, रेखाका समीकरण

[ले०—'वनमाली']

विन्दु क्या है ? यह बात समझ लेना बहुत ज़रूरी है। गणित शास्त्रमें विन्दु उसको कहते हैं, जिसकी लम्बाई, चौड़ाई या मोटाई कुछ भी न हो, उसकी केवल स्थिति मात्र हो। यदि कोई विन्दु किसी बारीक पेंसिलसे भी बनाया जाय, तो उसमें भी कुछ न कुछ लम्बाई, चौड़ाई होगी। उसे विन्दु कहना ठीक न होगा, परन्तु व्यवहारमें उसे विन्दु कह देते हैं।

अब विचार कीजिये कि यदि कोई विन्दु चलता हो तो उसका पथ कैसा होगा ? स्पष्ट है कि यह उसकी यात्रा करनेके नियमोंपर निर्भर होगा। आप जब लिखने बैठते हैं तो आपके अक्षर कैसे बनते हैं ? आपकी कलमकी नोक (विन्दु) के इधर उधर चलने मात्रसे ही तो। एक साधारण उदाहरण ले लीजिये। आप रेखा कैसे खींचते हैं ? आप एक रूलर लेकर उसके सहारे अपनी कलम या पेंसिलको खड़ा करते हैं। यदि इसी स्थितिमें एक बार रखकर आप उसे उठा लें तो केवल एक विन्दु बन जायगा। परन्तु यदि पेंसिलको रूलरके सहारे चलाएँ तो उसकी नोक (विन्दु) की पथ प्रदर्शक रेखा बन जायगी।

इस उदाहरणमें विन्दुपथ क्या है ? सरलरेखा। परन्तु यदि पेंसिल रूलरके सहारे न चलती तो क्या सरल रेखा बनती ? यदि रूलरका सहारे लिए बिना ही हाथ सीधा चलता तो सरल रेखा बन जाती, पर यदि हाथ बहक जाता तो रेखा टेढ़ी हो जाती।

इस उदाहरणसे स्पष्ट है कि विन्दुका पथ, तभी निश्चित होता है, जब किसी नियम विशेषके अनुसार चलता है। जब नियमका अभाव होता है, तो कोई निश्चित पथ नहीं बनता। किसी बच्चेको पेंसिल देकर देख लीजिये कि वह कैसे कैसे विन्दुपथ बनाता है।

परकारसे आप वृत्त कैसे खींचते हैं ? उसकी एक टांग तो कायम रहती है, दूसरी उसकी परिक्रमा करती है। दोनों टांगोंके सिरोंकी दूरी एक ही बनी रहती है। यदि वह बदलती जाय तो वृत्त न बनेगा। अब हम विन्दुपथकी परिभाषा दे कर उसीके अनुसार सरल रेखा और वृत्तकी भी परिभाषा देंगे।

विन्दुपथ

किसी विन्दुका विन्दुपथ वह है, जो उसके किसी नियम या नियमोंके अनुसार चलनेपर बनता है।

सरलरेखा

एक सरल रेखा उस विंदुका विंदुपथ है, जो सीधा एक दिशामें ही चलता है।

वृत्त

वृत्त उस विंदुका विंदुपथ है जो इस प्रकार चलता है कि उसकी दूरी किसी स्थिरि विंदुसे सदा एक सी ही बनी रहती है।

इसी प्रकार विंदुओंके अनेक पथ होते हैं, जिनकी आकृति उनकी गतिके नियमोंपर निर्भर होती है।

विन्दुपथका समीकरण

जब कभी कोई विंदु किसी नियम या नियमोंके अनुसार किसी धरातलमें चलेगा, तो इसका यही अर्थ हुआ कि उसका स्थान परिवर्तन उक्त नियम या नियमोंके अनुसार होगा। परन्तु उस विंदुके स्थान निर्णायक उसके भुजयुग्म हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि उसके भुज युग्मोंका परिवर्तन उक्त नियमोंके अनुसार ही होगा। किन्तु भुजयुग्मोंका परिवर्तन सहज ही किसी समीकरण द्वारा उपरोक्त नियमोंके आधारपर व्यक्त किया जा सकता है। इसी समीकरणको उक्त विन्दुपथका समीकरण कहते हैं।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि किसी विंदुपथ-

Mathematics गणित]

का समीकरण वह बीजात्मक सम्बंध है जो चलायमान विंदुकी प्रत्येक स्थितिमें उसके भुज-युग्मोंमें रहता है।

ऊपरकी सब बातें नीचेके उदाहरणोंसे भली भांति समझमें आजायंगी।

१—उस रेखाका समीकरण निकालो जो भुजके समानान्तर है और सदा अ दूरी पर रहती है।

अ त, अ ल कार्तीय समकोणीय भुजयुग्म हैं। अ ल में से अ क = अ के काट लो और क में से एक सरल रेखा ग, क ख भुजके समानान्तर खींचो। इसी रेखाका समीकरण निकालना है। [चित्र ९]

जिस विन्दुका यह रेखा विन्दु पथ है, वह इस प्रकार चलता है कि उसकी प्रत्येक स्थितिमें उसकी कोटि अ के बराबर होती है। इस रेखापरके तीन

चित्र ९
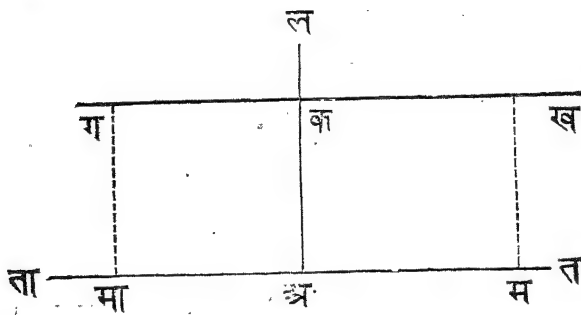
विन्दु क, ख, ग, पर ध्यान दीजिये। यद्यपि इनके भुज भिन्न भिन्न हैं, परन्तु कोटि बराबर हैं- ख म = क अ = ग मा। अब मानलो कि कोई विन्दु व इस रेखापर स्थित है और वह (य, र) विन्दु है, तो स्पष्ट है कि यह विन्दु कहीं भी क्यों न हो र = अ। यही इस रेखाका समीकरण है।

२—यदि कोई रेखा कोटिके समानान्तर हो और क उसकी दूरी हो तो उसका समीकरण होगा य = क, क्योंकि यह उस बिन्दु की गतिसे उत्पन्न होगी, जिसका भुज नहीं बदलता, यद्यपि कोटि बदलती रहती है।

३—उस रेखाका समीकरण निकालो जो मूल (विन्दु) में हो कर निकलती हो और भुजसे एक निश्चित कोण बनाती हो।

अ क रेखा मूल विन्दु अ में होकर जाती है। और अ त के साथ ट कोण बनाती है। इसका समीकरण निकालना है। अब इस रेखापर कोई विन्दु व, जहाँ चाहो तहां लेलो। इस विंदुको (य, र) मान लो और व से म लम्ब डालो। तो अ म = य, म व = र। [देखिये चित्र १०]

$$\text{अब स्प ट} = \frac{\text{म व}}{\text{अ म}} = \frac{\text{र}}{\text{य}}$$

$\therefore$ र = य स्प ट = स. य [यदि स = स्प ट]

यह सम्बन्ध विंदु व की प्रत्येक स्थितिमें पाया जायगा, अतएव यही रेखाका समीकरण है।

४—उस रेखाका समीकरण निकालिये, जो भुज और कोटिमेंसे अ, इ के बराबर टुकड़े काटती हो। चित्र ११ में क ख ग घ, रेखा है जो अ त में से अ ग = अ और अ त में से अ ख = इ के काटती है। इस रेखापर कोई विंदु व ले लीजिये, जो (य, र) है। व से व म और व न लम्ब खींचिये। तो म व = र, न ब = य, त्रिभुज व म ग, ख न व सजातीय हैं।
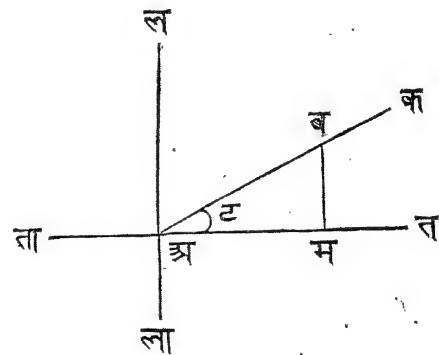
चित्र १०

$\therefore \frac{\text{न ख}}{\text{म व}} = \frac{\text{न व}}{\text{म ग}}$, [परन्तु न ख = अ ख - अ न = अ ख — म व = इ — र; म व = र; न व = अ म = य

और म ग = अ ग — अ म = अ — य]

$\therefore \frac{इ-र}{र} = \frac{य}{अ-य}$

$\therefore (इ-र)(अ-य) = य.र$

$\therefore इ.अ - इ.य - अ.र + य.र = य.र$

$\therefore इ.य + अ.र = इ.अ$

$\therefore \frac{इ.य}{इ.अ} + \frac{अ.र}{इ.अ} = \frac{इ.अ}{इ.अ} = १$

$\therefore \frac{य}{अ} + \frac{र}{इ} = १$

चूंकि यह सम्बन्ध व की प्रत्येक स्थितिमें सत्य है, इसीलिए यही उक्त रेखाका समीकरण है।
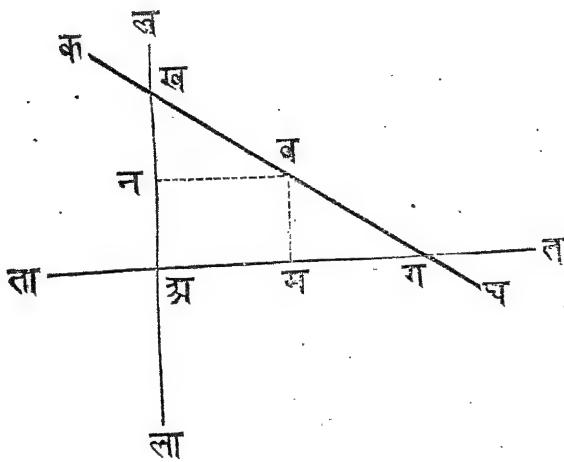
चित्र ११

५—उस रेखाका समीकरण निकालो, जो एक निश्चित कोण भुजके साथ बनाती हो और कोटि-मेंसे दी हुई लम्बाई काटती हो। चित्र १२ में मान लो कि अ ख = ई। ख मेंसे ऐसी रेखा खींचो कि जो भुजके साथ कोण ट बनावे। यह बहुत आसान बात है, ख पर ग ख अ कोण ट के कोटिकोणके बराबर बनाओ। ख ग को दोनों ओर बढ़ा दो, बस यही रेखा है, जिसे हम खींचना चाहते हैं।

इस रेखापर व, विंदु लेकर व म, व न लम्ब गिराओ। मान लो व है (य, र)। तो अ म = य, म व = र

$स्प\ ट = \frac{म व}{ग म} = \frac{र}{ग अ + अ म} = \frac{र}{ग अ + य}$

$परन्तु\ स्प\ ट = \frac{अ ख}{ग अ} = \frac{इ}{ग अ}$

$\therefore स्प\ ट = \frac{र}{ग अ + य} = \frac{इ}{ग अ}$

$\therefore स्प\ ट = \frac{र-इ}{य}$

$\therefore र - इ = य.\ स्प\ ट$

$\therefore र = य.\ स्प\ ट + इ$

$र = स.य + इ,\ यदि\ स = स्प\ ट$

यह सम्बन्ध व की सब स्थितियोंमें सत्य है, इसलिए यही उपरोक्त रेखाका समीकरण है।

यह समीकरण ४ थे पदमें दिये हुए समीकरण-से भी निकल सकता है [देखिये चित्र ११]—

चित्र १२

$\frac{य}{अ} + \frac{र}{इ} = १$

$\therefore \frac{र}{इ} = १ - \frac{य}{अ}$

$\therefore र = इ - \frac{इ}{अ} य$
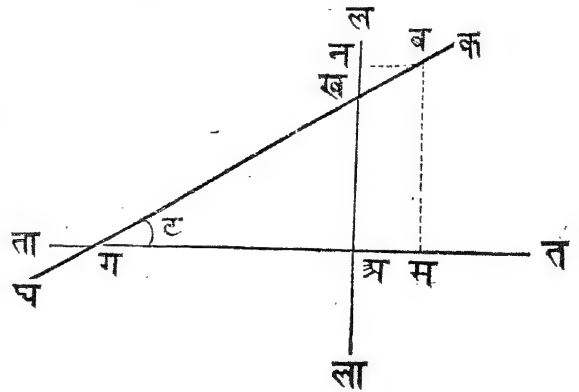
[परन्तु स्प व ग त = − स्प क ग अ = $-\frac{अ ख}{अ ग} = -\frac{ई}{अ}$]

∴ र = इ + स्प व ग त.य

∴ र = य.स + इ

जहाँ स = उस कोणके स्प के जो रेखा भुज-से बनाती है।

विविध विषय

[ले०—श्रीयुत लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव]

१—भारतीय प्रजातन्त्र शासनका एक आदर्श उदाहरण

इस समय प्रायः समस्त संसार दो प्रकारकी शासन विधियोंसे शासित हो रहा है, राजतन्त्र और प्रजातन्त्र। इनकी और भी कितनी ही शाखा और प्रशाखाएँ भी हैं, जिनके द्वारा कितने ही देश शासित होते हैं, परन्तु आजकल सभ्य संसार प्रायः इन्हीं दोनों रीतियोंका अवलम्बन कर रहा है। अब इन दोनोंके बीचमें भी दारुण वैमनस्यका अंकुर फूट निकला है। भीषण यूरोपीय युद्ध अब समाप्त हो गया है। कुछ ही दिनोंमें संधि करने और संसारमें शान्तिका अक्षय साम्राज्य स्थापित करनेके लिए विजयी और विजित दोनों ही दलोंके प्रतिनिधियोंकी एक बृहत सभा होगी। उस समय आप देखेंगे कि इन दोनों रीतियोंमें कैसी मुटभेड़ होती है। जो हो, हम तो आज एक दूसरा ही प्रश्न हल करनेकेलिए बैठे हैं। वह प्रश्न है—"भारतमें प्रजातन्त्र शासन प्रणाली कभी प्रचलित थी या नहीं और अगर थी तो कब थी ?"

प्राचीन समयमें भारतमें प्रजातन्त्र शासनका चलन था। इसके लिए किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह बात भली भांति सिद्ध हो चुकी है। अब रहा कबका प्रश्न, तो उसका उत्तर है—'आजसे केवल एक सौ पचास ही वर्ष पूर्व।' इसके सम्बन्धमें गत नवम्बर मासके माडर्न रिव्यू (Modern Review) में श्रीमान् कुंअर शिवनाथसिंह सेंगरका एक लेख प्रकाशित हुआ है, उसका मर्मांश हम नीचे देते हैं –

"जिस समय शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने कन्नौजपर आक्रमण किया था उस समय सेंगर राजपूत लोग जमुनाके दोनों किनारोंके उस देश विभागपर राज्य करते थे जो आजकल जालौन और इटावा ज़िलोंके अन्तर्गत है। इस देश विभागको श्रिङ्ग राष्ट्र या सिंगार घर कहते थे। इन दिनों जिस स्थानपर राजा लोकेन्द्र शाह बहादुरकी राजधानी है उस समय इसी स्थानपर महा महिप विशोक देवकी कर्णवती (कनार) नगरी थी। मुसलमानोंके लगातार आक्रमणोंके कारण इस राज्यके टुकड़े टुकड़े हो गये। फफूंद तथा अन्यान्य कई स्थानोंके स्वतंत्रता प्रिय सेंगरोंने यवनोंके सामने सिर नीचा न किया और अपने कुटुम्बियों तथा अपनी प्यारी मातृभूमिसे विदा होकर ऐसे स्थानकी तलाशमें चले जहां निर्द्वन्द रह सकें। इनमेंसे सूर शाह और वीर शाह अधिक मशहूर हैं। चलते चलते यह लोग बलिया ज़िलेके लखनेसरके जंगलोंमें पहुंचे। इस समय लखनेसर भर वंशके अधिकारमें था और इसकी बड़ी ही शोचनीय दशा थी। सूर शाहने आक्रमण करके इसपर अधिकार कर लिया और सेंगर राजपूत वंशके प्रजातन्त्र शासनकी नींव जमाई। कोई पांच सौ वर्ष तक लखनेसर स्वतन्त्र और सेंगर राजपूतोंके अधिकारमें रहा। इस बीचमें कई बार कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा लेकिन वीर सेंगर सदा स्वतन्त्र और निरवच्छिन्न रहे।

पतन कालके आरम्भ होनेके पहले केवल एक बार वीर सेंगरोंको मुसलमान शासकोंको कौड़ी देनी पड़ी। फिर भी यह काम सीधे नहीं हुआ। रक्तकी नदियां बह निकलीं, कितनी ही फौजें कट गईं। कितने ही वीर सेंगर रण चंडीके विकराल मुखमें पतित हुए, सैकड़ों राजपूत ललनाएँ अपने स्वर्गारोही मृत पतियोंके साथ सती हुईं, तब जाकर कहीं निर्दय मुसलमान इनपर कर लगा सके।

अकबरके समयमें इनको केवल नाम मात्रका

कर देना पड़ता था। सं० १७७६ वि० में अवधके नवाब वज़ीर सआदत अली और अन्यान्य दूसरे मुसलमान शासकोंने भी इन्हें दबाना चाहा, परन्तु ऐसा हो नहीं सका।

सं० १८१८ से १८३८ तक काशीनरेश महाराज बलवन्तसिंह मुसलमानों और इसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी ओरसे लखनेसरके जागीरदार रहे। शोकका विषय है कि इन्होंने भी सेंगरोंकी शक्तिको चूर चूर कर डालनेकी बहुत कोशिश की। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। सेंगरोंने बड़ी वीरतासे इनका सामना किया और अन्तमें उन्हींकी शर्तोंपर सुलह हुई। उस लड़ाईका चिन्ह अभी तक विद्यमान है और नाथ बाबा (अमरसिंह) के चारों ओरकी हजारों सती-समाधियां सेंगरोंकी स्वातन्त्र्य प्रियता और हिन्दू ललनाओंके प्रगाढ़ पति प्रेमको प्रगट कर रही हैं।

सं० १८४८ वि० में बृटिश सरकारने सेंगरोंसे उनका, निजका तहसीलदार रखनेका हक छीन लिया और तबसे सरकारी तहसीलदार और कानूंगो मालगुजारी वसूल करते हैं। फिर भी अब तक इनकी ज़मीनकी मालगुज़ारी बहुत ही कम है। इस प्रान्तमें मिर्ज़ापुरके केवल पहाड़ी स्थानोंको छोड़कर और किसी भी स्थानकी मालगुज़ारी इतनी कम नहीं है।

अब भी ज़मीनके ८३ प्रतिशतका पट्टा भइयाचारके नामसे है, जिससे इनकी अक्षय एकता प्रगट होती है।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बृटिश राज्यके आरम्भमें भी भारतमें केवल एक नहीं कई राज्य प्रजातन्त्र-शासन प्रणाली द्वारा शासित होते थे, जिनमेंसे एकका यह प्रत्यक्ष उदाहरण दिया गया है। उस समय यह देश कैसा उन्नत और समृद्धशाली था और इसमें कैसी शान्ति विराजती थी, इन बातोंका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं। धन्य थे वह सेंगर राजपूत जो सदा स्वतन्त्र रहे और जिन्होंने परतन्त्रताकी बेड़ी पहननेसे रणक्षेत्रमें प्राण दे देना उत्तम समझा।

२—भारतके बड़े शहरोंकी बस्तियां

भारतवर्षमें इस समय दो ही शहर बड़े महत्वके समझे जाते हैं, कलकत्ता और बम्बई। व्यवसाय वाणिज्य और अनेक प्रकारके रोज़गारोंकी दृष्टिसे सचमुच ही यह शहर बड़े महत्वके हैं। इस देशके हर एक प्रान्तके मनुष्य जब परदेसकेलिए तैयार होते हैं तो इन्हीं दो शहरोंकी शरण लेनेकी ठानते हैं। इतना ही नहीं प्रायः समस्त संसारके कोने कोनेके मनुष्य इन शहरोंमें दिखाई देते हैं। अधिकतः व्यवहारी ही लोग भरे हुए हैं। इन दोनों शहरोंके अतिरिक्त भद्रेश्वर, टीटागढ़ और खड़गपुर इत्यादि और भी कितने ही व्यवसायी शहर हैं जिनमें अधिकतर बाहरी लोग ही भरे हुए हैं। लोगोंको इस अंधाधुन्ध भरमारसे इन शहरोंकी कुछसे कुछ दशा हो गई हैं। गत चालीस ही वर्षोंके बीचमें हवड़ा शहरकी जनसंख्या दूनी हो गई है। किसी किसी मुहल्लेमें तो प्रति एकड़ नव्वे मनुष्य तक आबाद हैं। इस संख्याके प्रायः दो तिहाई लोग इस ज़िलेके बाहरसे आये हैं। इनमें अधिकतर मर्द ही हैं। स्त्रियोंकी संख्या बहुत कम है। भद्रेश्वरकी जन संख्या दूनी, टीटागढ़की तिगुनी और खड़गपुरकी पंच गुनी हो गई है। इतनी शीघ्र और इतनी अधिक भरमार होनेके कारण इन शहरोंका जल वायु बहुत बिगड़ गया है। अनेक प्रकारके रोगोंके वह केन्द्रस्थान हो गये हैं।

मिल (कागज़ और जूट इत्यादिके कारखाने) वाले शहरोंमें विशेषकर मिलमें काम करनेवाले कुलियोंकी बड़ी ही शोचनीय दशा है। काम करनेके लिए इनको कारखानोंके पास ही रहना पड़ता है। १० घंटे तक सख़ काम करनेके बाद पशुओंके समान छोटी, अंधेरी, गन्दी और सद कोठरियोंमें शरण लेते हैं। इस कारण यह लोग सदा रोगी रहते हैं और अकाल ही कालकवलित होते हैं।

बम्बईकी दशा भी कुछ कम शोचनीय नहीं।

आबादीके ७६ प्रतिशत मनुष्य एक कमरेके घरमें रहते हैं। पांच या छःकमरोंके घरमें रहनेवालोंकी संख्या बहुत ही कम है। यहां ६३८ मनुष्य प्रति एकड़ तकके हिसाबसे बसे हैं। जिसको पूरा घर कह सकते हैं वह यहां कदाचित ही कहीं दिखाई देता है। शहर और नालियोंकी सफाई ख़ासकर हिन्दुस्तानी क्वार्टरोंमें बिल्कुल बुरी है। घनी बस्तियोंमें तंग गलियां हैं, गलियोंके नीचे गंदे पानी, पेशाब और मैलेकी नालियां बहती हैं। मारे दुर्गन्धके नाक फटती है। मकानोंमें सूर्य्यकी किरणोंका आजन्म प्रवेश नहीं होता। घरसे कूड़ाकरकट निकाल कर बाहर फेंकनेका भी इन्तज़ाम नहीं। यहां के कारखानोंके निकटको आबादीमें मर्दोंकी ही संख्या अधिक है। मर्दोंके प्रति सहस्र संख्याके पीछे स्त्रियोंकी संख्या केवल पांच सौ है।

न्यूयार्क शहरकी आबादी संसार भरमें बड़ी घनी समझी जाती है। परन्तु बम्बईके कई स्थानोंकी आबादी वहांसे कहीं अधिक है। जहां बम्बईके एक कमरेके घरमें ५·४५ से १५·०७ मनुष्यों तक के रहनेका लेखा है वहां न्यूयार्कमें केवल १·५ मनुष्योंका है। हां यह अलबत्ता कहा जा सकता है कि न्यूयार्कमें सभ्यता-शिखरारोही गोरे बसते हैं और बम्बईमें दरिद्र काले भारतीय।

कलकत्ता और बम्बई दोनोंकी दशा प्रायः एक सी है। कलकत्तेमें सरकुलर रोडसे लेकर हुगली नदी तककी आबादी बहुत घनी है। बीच बीचमें बहुत ही तंग गलियां हैं। केवल दो हजार दो सौ एकड़के रकबेमें बाईस चकले (घने मुहल्ले) हैं। ऐसी घनी आबादी केवल बम्बई, काहरा, कुस्तुन्तुनिया, कैन्टन, मुर्कडन और चीनके अन्यान्य कई शहरोंकी है।

ऐसी घनी बस्तियोंके, और विशुद्ध वायुकी अनुपस्थितिके, कारण चेचक, हैजा, प्लेग और गठिया जैसी सैकड़ों भयानक बीमारियां इन शहरोंमें विचर रही हैं और दिनों दिन इनका प्रकोप बढ़ता ही जाता है। टुबरकिलोसिससे (क्षयरोग) कलकत्तेमें सं० १९६८ वि० में २०६० आदमी मरे थे। ऐसी ऐसी भयानक बीमारियोंसे प्रायः स्त्रियां ही अधिक मरती हैं।

मिलवाले कुलियोंकी ऐसी दुर्गति और रहन सहनसे देश और समाजको बहुत बड़ा धक्का पहुंच रहा है। मिलके आस-पासकी बस्तियां अत्याचारोंका केन्द्रस्थान हो रही हैं। बेचारे भोले भाले ग्रामीण धनके लालचसे मिलवाले शहरोंमें काम करने जाते हैं। वहांके कठिन परिश्रम और अपनी अज्ञानता तथा आत्मदौर्बल्यके कारण अपने शरीर और सदाचार दोनोंको ही खो बैठते हैं। कितने ही भयानक रोगोंके जालमें फँसकर अपनी जान दे देते हैं। क्या इनकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता? क्या देश और समाजकी लज्जाकी दशाका प्रबन्ध करना मिलके मालिकोंका कर्तव्य नहीं है?

कलकत्ता और बम्बईकी म्युनिसिपैलिटी यूरोपीय मुहल्लोंकी सफाईमें ही अपना सर्वस्व खर्च कर देती हैं। क्या हिन्दुस्तानी मुहल्लों और गलियोंकी सफाई और हिन्दुस्तानियोंकी स्वास्थ्यरक्षाका प्रबंध करना उनका धर्म नहीं है? यदि है तो वह अपना धर्म क्यों नहीं पालन करतीं?

३—तक्ष शिला

संसार परिवर्तनशील है। किसी देश, किसी जाति तथा किसी स्थानकी दशा सदा एकसां नहीं रहती। आजसे कुछ ही वर्ष पूर्व्व हमारे देश और समाजकी जैसी उन्नत दशा थी आज वह खोजनेसे स्वप्नमें भी नहीं मिलती। बड़े बड़े शहरोंके स्थानपर घने जङ्गल खड़े हो गये हैं। बड़े बड़े शौर्य्यशाली राजा महाराजाओंके नामोनिशान तक शेष नहीं रह गये हैं। बड़े बड़े विद्वद्वरों और पण्डितोंके पाण्डित्य गौरवकी परिचायक पुस्तकें नष्ट विनष्ट हो गई हैं। अभी हालमें ही तक्षशिलाके खण्डहरोंके कुछ भागकी खुदाईके सम्बन्धमें पुरातत्व विभागके डाइरेक्टर जनरल सर जान मार्शलने एक पुस्तक प्रकाशित की है। इस पुस्तक-

का नाम है "तक्ष शिलाका मार्ग प्रदर्शक"। इसके देखनेसे एक बार भारतके प्राचीन गौरव और समृद्धिका चित्र आंखोंके सामने खिच जाता है और इसकी वर्तमान दीन हीन अवस्थापर आंसू टपक पड़ते हैं।

रावलपिण्डी और हजारा जिलोंके बीचमें पहाड़ियोंकी एक रमणीक तराईमें तक्षशिलाके खण्डहरोंके तीन टीले हैं। इनका नाम है "भीड़ टीला, सिरकप और सिर सुख"। इन तीनोंमें भीड़ टीला अधिक पुराना है। कहा जाता है कि सिरकपको बैक्ट्रियन यूनानियों (Bactrian Greeks) और सिर सुखको कुशानों (Kushans) ने बसाया था। भीड़ टीलेकी खुदाई अभी नहीं हुई है। परीक्षाके लिए केवल थोड़ा सा हिस्सा खोदा गया है,जिसमें मौर्य्यकालके मिट्टीके बरतन इत्यादि मिले हैं।

सिरकपमें एरेमिक भाषा तथा एरेमिक अक्षरोंमें खुदा हुआ एक शिला लेख, बहुत से महलों और समाधियोंके भग्नावशेष, सिक्के, मिट्टीके बरतन और खिलौने, मूर्तियां, लोहेकी अनेक वस्तुएं, अस्त्रशस्त्र, बहुमूल्य सोने चांदीके गहने और अन्यान्य कितनी ही चीज़ें मिली हैं। एक चांदीका पत्र भी मिला है। इसमें लिखा है,—"एज़ेस (Azes) संवतके १३६ वें सालमें आसाढ़ महीनेके १५ वें दिन एक बाहलीक देश निवासीने तनुव नामके ज़िलेमें जो तक्ष शिला नगर है इसमें धर्म्मराजिक स्तूपके एक बोधिसत्वके मन्दिरमें श्री भगवान बुद्धकी धातु (अस्थि) को प्रतिष्ठापित किया।" इस पत्रसे, बौद्ध-धर्म्ममें विदेशियोंकी कितनी और कैसी श्रद्धा भक्ति थी, इसका बहुत अच्छा परिचय मिलता है। एरेमिक शिला लेखसे मालूम होता है कि किसी समय तक्षशिला पर्शियन साम्राज्यमें सम्मिलित थी। दाराके परसिपोलिस और नक्शई-रुस्तम स्थानोंके लेखोंसे भी यही बात प्रकट होती है।

तक्षशिलासे पारसियोंकी अपेक्षा मेसीडोनियनोंका सम्बन्ध कुछ घनिष्ठ प्रतीत होता है,क्योंकि यहांके शासक आम्भी नामक राजाने सिकन्दरके साथ मिलकर पोरसपर चढ़ाई की थी। परन्तु सेलूकसके समयमें महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य्यने मेसीडोनियनोंको भारतसे बाहर निकाल दिया। तक्ष शिलाका राज्य केवल तीन पीढ़ियों तक मौर्य्यवंशके हाथमें रहा। इसके बाद बैक्टीरियन ग्रीकोंने इसपर आक्रमण करके अधिकार कर लिया।

बैक्टीरियन ग्रीकोंके हाथसे तक्षशिला पार्थियनोंके हाथमें और पार्थियनोंके हाथसे कुशानोंके हाथमें गया। कुशानोंने कोई तीन सौ वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद हूणोंने आक्रमण करके इसे नष्ट भ्रष्ट कर डाला।

सिरसुखमें कुशानवंशी राजाओंके समयके बहुतसे सिक्के और मूर्तियां मिली हैं। इससे भारतवर्षके प्राचीन मूर्तिकारीका अच्छा परिचय मिलता है और विदेशियोंके कलाकौशलका कितना प्रभाव उसपर पड़ा इसका भी ठीक ठीक अनुमान हो जाता है। इस विषयमें सर जान मार्शलके एक नोटका मर्म है—"यूनानियोंकी मूर्तिकारीका प्रभाव भारतीय मूर्तिकारोंपर ऐसा नहीं पड़ा जैसा इटली और अन्यान्य पश्चिमी एशियाके देशोंपर पड़ा। इसका कारण यह है कि भारतियों और यूनानियोंके हार्दिक भावमें बहुत बड़ा अन्तर था। यूनानियोंके लिए मनुष्य और उसकी सुन्दरता और बुद्धिमत्ताका ही चित्रण सब कुछ था। परन्तु भारतीय परमात्मा और देवी देवताओंकी ही मूर्ति रचना करते थे। यूनानियोंका ध्यान मनुष्यों और भारतियोंका ध्यान परमात्माकी ओर आकर्षित था।"

अब तक जितनी खुदाई हुई है उससे मौर्य्य कालके पहलेके भारतीय इतिहासपर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ा है। फिर भी इतनी थोड़ी खुदाईसे जितना हाल मालूम हुआ है उससे भारतके प्राचीन कला-कौशल, मूर्तिकारी और शिल्प निपु-

णता इत्यादिका अच्छा परिचय मिलता है। बूढ़े भारत! तुम जीते नहीं मर चुके हो। तुम्हारी सड़ी गली हड्डियां कबरोंसे खोद कर निकाली जा रही हैं। इन हड्डियोंकी चमक दमकसे सारा संसार चकित हो रहा है। कौन कह सकता है कि तुम जीवितावस्थामें कैसे प्रभावशाली और अत्यन्त शौर्य्य सम्पन्न रहे होगे! *

भारत-गीत ३६

अटवि अटन

(१)

झाड़ बन खंड था, प्रखर मार्तंड था
विकट मरुवात-उत्पात उद्दंड था।
भूमिके पृष्ठ या व्योमके अंक में दृष्टिके पन्थ-गत दूर पर्यंत पशु,
पक्षि या पुरुषका कहीं दर्शन न था।
५ पास ही किन्तु एक सघन वन्य-स्थली थी कि जिसके समीपस्थ सुविशाल एक
सुघर तालाब, जल-शून्य, कर्दम लिये, अर्ध-सूखा पड़ाथा, जहां हाल ही
का खुदा, बहुत से बीच में कीर्ण, मौथा रहा था जता शूकरों की वहां
विपुलता, स्वैरिता तथा आचरण की चंडता; तथा पशु-वृन्द-निर्द्वन्द्वता।
किन्तु उस समय व्हां एक शूकर न था।

(२)

१० वायु संक्षुब्ध था, मन मेरा स्तब्ध अति,
प्रकृति के कुपित आक्रोड़ में नद्ध था—
विकट-गति-सनसनाहटित-संगीत-संघटित-संमोह-संपुटित, संरुद्ध था।
किन्तु नहिं क्रुद्ध था, किन्तु संबुद्ध था। उसे इस ढंगसे प्रकृति के संग मुठ-
भेड़ का कोई मौक़ा न पहले कभी था पड़ा। अतः कुछ मुग्ध सा था, तथा
१५ लुब्ध था। प्रकृति के प्रेम के पाश में बद्ध था। सुज्ञ, वह जानता था, सदा
नहीं ऐसा नज़ारा, सुगमतासहित, सब कहीं लभ्य था। अतः सुस्थित रहा।

* * * *

(३)

समय अब सांध्य था, पवनमें मान्द्य था,
उस विपिन पीठिकाका वदन सान्द्र था।
पक्षि-कुल, कलह में निरत, रव-रहित नभ-मध्यमें विहरने का निसंकोच, बहु,
२० मुदित से अतिव, आने लगे थे विपिन-ओर से। तथा क़ई एक ख़रगोश,
और स्यार और हिरन। और लोमड़ी भी बड़ी एक पड़ी नज़र,आकर खड़ी। देखकर
किन्तु मुझ को विकट-रूप, बन्दूक-धारी, शिकारी-सदृश, वह वहांसे बड़ी

---

* मोडर्न रिव्यूके लेखोंके आधारपर।

हड़ बड़ी से मुड़ी, उसी बन की तरफ़, थी जहांसे कढ़ी। मुझे कौतुक बढ़ा,
अतः मैं भी बढ़ा, उसी के पन्थको पकड़, कार्तूस झट एक हलका चढ़ा।
२५ दौड़ते, दौड़ते, लपकते, झपकते, हिचकते, झिझकते, चला अति दूर तक
घुसा यों ही गया गहन के बीच में, निपट निःक्षोभ, निर्भीक, जी कर कड़ा।

(४)

किन्तु रुकना पड़ा, वृत्त एक आ पड़ा—
दृष्टि मम धृष्ट आकाश ने ली उड़ा;

सबलता-सहित एक दृश्य से दी लड़ा। बहुत सी दौड़ और दपट के साथ एक
३० सुपट-संशोभि, मन-मुग्ध-कारी, नवल निपट, अति-ललित-लावण्य-धारी, सुभग,
सुष्ठु, सुललाम, लघु अनति, भारी अनति, विशद - शृंगार-सौन्दर्य-दर्शन-सुखद,
व्योम-वर-यान, कल किङ्किणीकी चटुल, मसृण ध्वनिसे स्वनित, सपटकर, विपलमें,
पवन-पथसे, तड़ित-चमक-सम, उधरसे जिधरको लोमड़ी थी गयी, निकल चट-
पट गया। अधिक भय- भीत, आक्रोश-अति-युक्त, नभ-अटन-रत, पक्षियोंका जथा,
३५ चट इधर उधर को फट गया। तब मेरा विस्मयावेग-पूरित हृदय अधिक तर
चकित, जागृत तथा कौतुकावृत हुआ।

(५)

और मैं अब उसी ओर को बढ़ चला जिधर नभ-यान-आगमन से गगनमग
चित्त में खचित मेरे हुआ था तदा।

विपिन की निबिड़ द्रुम-वीथियों में पिहित, पंथ के अंकमें निहित, बहु कंटका-
४० कीर्ण नव वल्लरी, झणित - रव - झल्लरी - ध्वनित, गुंजा - लड़ी से अलंकृत, तथा
कहीं मृदु मालती - मिलित विटपावली - वलित गहन - स्थली में अटकता, सुबट
से भटकता, महा कठिन श्रम-सहित बहु कष्ट करता, बहुत देर में एक अति
सुष्ठु थल में—जहां ताड़ और ताड़िका, आम्र-तरु-मालिका, बकुल की डालिका,
कदलि-कल-आलिका, माधवी, मल्लिका, स्वर्ग-शोभायुता, चारु चंपक-लता,
४५ खिलित बेला, चमेली, जुही, मौंगरा की मनोहर महक ने मिलित हो मुझे
पारितोषित किया—प्राप्त, सुथकित, हुआ।

(६)

वहां अति निकट एक विवृत तालाब था, विहग-कुल कररहा स्वरित संलाप था।
वकुल-द्रुम-कुञ्ज, त्यों मृदुल मधु-गंध, का लालची मैं सदा से रहा हूं अतिश,
अतः अति अधिक अन्वेषणा-युक्त हो फिर चला—मिलें यदि बकुल तो वहां पर
५० सुचित हो कुछक छन,सुरभि-मदछकित-मन, श्रम-विगत,अन-थकित,मुदित बैठूं ज़रा।
अहा, झट मिल गया मेल मनका बिना अधिक आयास ही, क्योंकि अति पास ही
झुंड था नवल एक विमल थल में बड़ा, मुकुल - भारा - वनत, मौलिश्री का खड़ा!

(७)

अहा ! पर वहांपर और एक गुलखिला। गुलखिला क्या भला, बल्कि व्हां भूमिपर
कमल-दल-अवलि-मय, कुसुम-आकीर्ण, एक दृष्टि आस्तीर्ण विस्तीर्ण सुन्दर पड़ा।
५५ एक हीरक-जड़ा अंगुलीयक, तथा इत्र की अल्प शीशी-समन्वित, सुघर,
बनी जापान की, सुबुक संदूकड़ी, तथा कंघी, तथा रेशमी क़ीमती
नया रूमाल, माला तथा मालती, मौंगरे की, बकुल की, बिकल रूप से
कोई टूटी, समूची, कोई जर्जरित, कोई सौरभ-भरित किंतु शोभा-विगत,
बहुत बिखरी पड़ी थीं। तथा और भी वात एक कथन के योग्य है—सिगरटें
६० अध-जली, मैच बहु अध-बली, बोतलों की तथा शीशियों की नली एक दो
निपट टूटी हुई, एक सुराही-निकट डबल रोटी पड़ी थी बड़ी सी गली।
स्वर्ण का बटन अम्मृतसरी ढंगका, कमलके बिस्तरे पर पड़ा एक मिला।
उसीके तले एक सुन्दरी की ललित कैबिनट सैज़ की वत्त-फ़ोटो मिली।
पृष्ठ पर शबी के उसी नभ-यान का चित्र सुस्पष्ट विधि से बना था हुआ,
६५ जिसे लख मार्ग में चित्त मेरा चमत्कृत, चकित प्रथम ही हो चुका था बड़ा।

* * * * *

(८)

विशद वह मुद्रिका, बटन वह स्वर्ण का, शबी वह छवि-भरी, अभी तक पास है।

श्रीपद्मकोट
प्रयाग, २५-८-१९७५

—श्रीधर पाठक।

नोट—यह एक प्रकार का मात्रिक दंडक छन्द है। शून्य वृत्तमें शायद यह प्रथम ही चेष्टा है। यदि हिन्दी प्रेमियों को यह पसन्द आया तो ऐसा पद्य और भी उन की सेवा में समुपस्थित किया जायगा। श्री० पा०।

नत्रजनकी कहानी

[ले०—प्रोफेसर रामसरनदास सकसेना, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

नत्रजन और ओषजनमें रासायनिक मेल करानेकेलिए बड़े ऊंचे तापक्रमकी आवश्यकता है, परंतु खटिक कर्बिद (ख $क_2$) के साथ यदि नत्रजन गरम करें तो १०००°श तापक्रमपर रासायनिक मेल हो जाता है और खटिक स्यानामिद प्राप्त होता है—

$$ख क_2 + न_2 = ख क न_2 + क$$

यह भी बड़ा उत्तम खाद है, जो बाज़ारोंमें नाइट्रोलियमके (nitroleum) नामसे बिकता है। जब यह खाद गेहूं, जौ, ज्वार, मक्का इत्यादिके खेतोंमें सावधानीसे दिया जाता है तो यह उतना ही उपयोगी सिद्ध होता है जितने कि अमोनियाके लवण होते हैं।

यदि खटिक स्यानामिदपर हो कर जलकी दबाववाली गरम भाप निकले तो उससे अमोनियाके यौगिक बन जाते हैं—

$$ख क न_2 + ३ उ_2 ओ = २ न उ_3 + ख क ओ_3$$
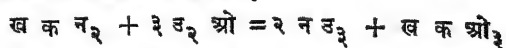
अमोनिया और उसके यौगिक बनानेकेलिए

नत्रजन और उज्जनको मिलाकर विद्युत भट्टीमें होकर निकालनेका विचार कई वैज्ञानिकोंने किया, परन्तु इसमें आरम्भमें बड़ी कठिनाइयां हुईं, केवल थोड़ी सी मात्रा अमोनियाकी बनती थी। रैमज़े और यंगने (Ramsay and Young) मालूम किया कि यदि तापक्रम कम हो और गैसोंका दबाव अधिक तो इनमें मेल अच्छा होगा।

शल्ट (Schultz) महाशयने एक विधि निकाली है, जिसमें वायु और भापका मिश्रण जलते हुए कोयलोंके ऊपरसे निकालते हैं और प्लाटीनम सहायकका कार्य्य करता है। जब इस मिश्रणमें विद्युत्की गुप्त चिंगारियां जाती हैं तो अमोनिया-के भिन्न भिन्न यौगिक बनते हैं। यदि ताप परिमाण ८०°–६०°श से अधिक न हो तो निम्न लिखित क्रिया होती है और अमोनिया उदकर्बनेत बनता है-

$$\text{न}_२ + ३\,\text{उ}_२ + २\,\text{क ओ}_२ + २\,\text{उ}_२\,\text{ओ} = २(\text{न उ}_४)\,\text{उ क ओ}_३$$
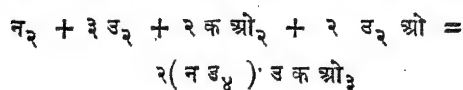
यदि ताप ८०°श से अधिक हो तो अमोनिया पिपीलकेत (फारमेत) बनता है।

$$\text{न}_२ + ३\,\text{उ}_२ + २\,\text{क ओ} + २\,\text{उ}_२\,\text{ओ} = २\,\text{उक ओ ओ}\,(\text{न उ}_४)$$
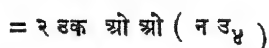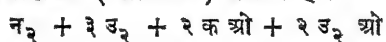
अमोनिया बनानेकी एक और भी विधि है। वह यह है कि पहिले खटिकको गरम करते हैं और जब लाल हो जाता है तब उज्जनकी धारा उसपर हो कर बहाते हैं। ऐसा करनेसे खटिक उज्जिद ($\text{ख उ}_२$) बनता है। इसको गरम करके जब नत्रजन इसके ऊपर होकर बहाते हैं तो खटिक नत्रिद ($\text{ख}_३\,\text{न}_२$) और अमोनियाप्राप्त होता है, रासायनिक क्रिया इस प्रकार होती हैः-

$\text{ख} + \text{उ}_२ = \text{ख उ}_२$; $३\,\text{ख उ}_२ + २\,\text{न}_२ = \text{ख}_३\,\text{न}_२ + २\,\text{न उ}_३$ ।

$$\text{ख}_३\,\text{न}_२ + ६\,\text{उ}_२ = ३\,\text{ख उ}_२ + २\,\text{न उ}_३$$
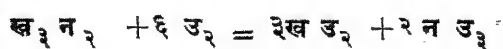
इस प्रकार बने हुए अमोनियाको नत्रिकाम्ल या गंधकाम्लमें सोख लिया जावे तो अमोनियम नत्रेत और अमोनियम गंधेत प्राप्त होते हैं, जो खेतीमें उत्तम खाद समझे जाते हैं। स्थानामिद्की तरह नत्रिद् भी खादके काममें आता है।

इससे सिद्ध होता है कि नत्रजन भिन्न भिन्न यौगिकोंके रूपमें कृषिके लिए कितनी उपयोगी है।

वैसे तो ओषधियोंकी संख्या जो नत्रजनके आङ्गारक यौगिक हैं बहुत बड़ी है, जिनकी विस्तार पूर्वक व्याख्या की इस लेखमें अवश्यकता नहीं है। हमारा अभिप्राय केवल यह दिखलाना है कि नत्रजनके यौगिक मनुष्योंको बहुत से रोगोंसे बचाते हैं। यह सिद्ध करनेके लिए हम नत्रजनीय ऐन्द्रिक क्षारोंका ज़िक्र संक्षिप्त रूपसे करेंगे।

अल्केलोयड़ अर्थात् ऐन्द्रिक क्षारसे उन ऐन्द्रिक या आङ्गारिक यौगिकोंका अभिप्राय है जो भिन्न भिन्न वनस्पतियोंमें पाये जाते हैं, जिनमेंसे एक दोको छोड़कर सबके सब ठोस, चूर्ण या रवेके रूपमें होते हैं। इनका स्वाद तीखा, कड़वा होता है और यह विषैले होते हैं। यह जलमें तो घुलते नहीं, मद्यसार, क्लोरोफार्म, ईथर इत्यादिमें सुगमतासे घुल जाते हैं और अम्लोंसे मिलकर घुलनशील लवण (Salts) बनाते हैं। इनके अणुओंकी रचना कुछ सीधी सादी नहीं होती। अभी तक बहुत से ऐसे ऐन्द्रिक क्षार हैं जिनकी आणविक रचना निश्चित नहीं है। इनमें कर्बन, उज्जन और ओषजनके अतिरिक्त नत्रजन भी होती है, जो प्रायः अमीनो समूह ($\text{न उ}_२$) के रूप में उपस्थित होती है, जैसा कि आगे चल कर प्रतीत होगा।

इन आङ्गारक क्षारोंको वनस्पतियोंमेंसे निकालना कुछ सुगम कार्य्य नहीं है। उनमेंसे इनका निकालना और शुद्ध करना बड़ा कठिन काम है। कभी कभी ऐसा होता है कि दो या दो-से अधिक क्षारोंका मिश्रण प्राप्त होता है, जिससे उनको अलग करना कठिन होता है। इनको प्राप्त करनेकी एक विधि यह हैः—

जिस वनस्पतिमेंसे ऐन्द्रिक क्षार निकालना हो, उसमें हलके तिंतिड़ीकाम्लका घोल मिला कर रख देते हैं। थोड़े समयमें क्षार अम्लके घोल-में आ जाता है। इसे छानकर और इसमें बुझा हुआ चूना मिलाकर खरल करते हैं। जब सब अच्छी तरह मिल जाता है तो इसमें मद्यसार और ईथर या क्लोरोफार्म मिलाकर रख देते हैं। धीरे धीरे सब ऐन्द्रिक क्षार क्लोरोफार्ममें घुल जाते हैं। जब सब घुल जाता है तो छान लेते हैं। छने हुए द्रवमें कोई खनिज अम्ल जैसे नमक या गंधकका तेजाब डालनेसे क्षार घुलनशील लवणके रूपमें आ जाता है। जो अम्लकी मात्रा बचती है उसे सोडियम उदित डालकर अलग कर देते हैं और क्षारके लवणको जल कुण्डी (water bath) पर या वाष्पीय भवनमें रखकर, सुखा लेते हैं।

जिस समय कोई उड़नशील क्षार नहीं होता तो जो घोल तितिड़ीकाम्लकी क्रियासे प्राप्त हुआ है उसमें क्षारीय सीसासिरकेत मिलाते हैं, जिससे अन्य क्षारीय पदार्थ अलग हो जावें। इसको छाननेपर जो द्रव्य आता है उसमें उज्जन-गंधिद ($ऊ_2$ ग) देते हैं जिससे सीसा अलग हो जाता है।

इसे फिर छानकर उबालते हैं जिससे उज्जन गंधिद वायु निकल जाती है। घोलमें अमोनिया और पोटासियम कर्बनेत मिलाते हैं, जिससे ऐन्द्रिक क्षार निक्षेपित हो जाता है। इस थक्केको गंधकके तेज़ाबमें गलाकर घुलनशील लवण बना लेते हैं। घुलनशील लवणको मद्यसारमें घुलाकर, रवे जमा लेते हैं।

[असमाप्त]

पैमाइश

१—मान (पैमाने)

लम्बाई नापनेके मान (पैमाने)

१२ इंच = १ फुट
३ फुट = १ गज़
$५\frac{१}{२}$ गज़ = १ पोल या पर्च
४० पोल या २२० गज़ = १ फ़रलांग
८ फ़रलांग या १७६० गज़ = १ मील
३ मील = १ लीग
७·९२इंच = १ गंटरीकडी
१०० कडी = २२ गज़ या ६६ फुट = १ गंटरीजरीब
१० गंटरीजरीब = १ फ़रलांग
८ फ़रलांग या ८० जरीबगंटरी = १ मील

क्षेत्रफलके अङ्गरेज़ी पैमाने

१४४ वर्ग इंच = १ वर्ग फुट
९ वर्ग फुट = १ वर्ग गज़
$३०\frac{१}{४}$ वर्ग गज़ = १ वर्ग पोल या पर्च
४० वर्ग पोल या १२१० वर्ग गज़ = १ रूड
४ रूड या ४८४०· वर्ग गज़ = १ एकड़
६४० एकड़ = १ वर्ग मील
१०००० वर्ग कड़ी या ४८४ वर्ग गज़ = १ वर्ग-जरीबगंटरी
१० वर्ग जरीब गंटरी या १००००० वर्ग कड़ी = १ एकड़

हिन्दुस्तानी लम्बाईके पैमाने जो ज़मीन नापनेके काममें आते हैं

$२\frac{३}{४}$ गज़ या ९९ इंच = १ गट्ठा
२० गट्ठा या ५५ गज़ = १ सरकारी शाहजहानी जरीब
३२ सरकारी जरीब शाहजहानी = १ मील (अंगरेज़ी)

क्षेत्रफलके हिन्दुस्तानी पैमाने

२० अनवांसी = १ कचवांसी
२० कचवांसी = १ बिसवांसी
२० बिसवांसी = १ बिसवा
२० बिसवा या ३०२५ वर्ग गज़ = १ बीघा या १ सरकारी शाहजहानी वर्ग जरीब या १ वर्ग

नाम ज़िला जहां भिन्न भिन्न लम्बाईकी जरीब काममें आती हैं	जरीबकी लम्बाई गज़ोंमें	बीघोंकी संख्या एक एकड़में	सूचना
बनारस, जौनपुर, आज़मगढ़, महाल मुस्तकिल	५६	१॥)०१७	
आगरा, अलीगढ़, एटा (पाः जलेसर छोड़कर) इटावा, फ़रुख़ाबाद, मैनपुरी	५२$\frac{१}{२}$	१॥।)०२	
इलाहाबाद, आज़मगढ़ महाल ग़ैर मुस्तकिल	५२$\frac{१}{४}$	१॥।)०६	
कानपुर, मुज़फ्फ़रनगर, सहारनपुर	४६$\frac{१}{२}$	१॥।)४०१०	
जालौन, झांसी, (ललितपुर छोड़कर), बांदा, हमीरपुर	४७$\frac{१}{२}$	२)२०१८	
	४५$\frac{३}{४}$	२)१०५	
फ़तहपुर	४४	२॥)	
इनके सिवाय बाक़ी ज़िलोंमें जहां शाहजहांनी जरीबसे पैमाइश हुई है ५५ गज़की जरीब काममें आती है	५५	१॥)२	

नोट—संयुक्तप्रांतमें केवल ज़िला बुलन्दशहर, बिजनौर वा बदायका कुछ हिस्सा, लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर हरदोई, फैज़ाबाद, सुलतानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी, इटावा, इलाहाबाद, कानपुर, मुज़फ़्फ़रनगर, सहारनपुर और फ़तहपुर-के देहीनक़्शे जातका हदवस्त टरावर्स द्वारा नहीं हुआ है।

रस्सी = $\frac{५}{८}$ एकड़

नोट—जरीब × जरीब = बीघा

जरीब × गट्ठा = बिसवा

गट्ठा × गट्ठा = बिसवांसी

परन्तु बीघा हर जगह एक सा नहीं है। संयुक्त प्रान्तमें उन ज़िलोंको छोड़ कर जहां टरावर्स होकर गंटरी जरीबसे पैमाइश हुई है बहुत से ज़िलोंकी शाहजहानी जरीबें भिन्न लम्बाईकी हैं और जो जरीब वहां काममें आती हैं उसका वर्ग एक पक्का बीघा माना जाता है। इसीलिये उन ज़िलोंके बीघोंमें फ़र्क है और उनका अनुपात भी एकड़से भिन्न है।

वह ज़िले जहां भिन्न भिन्न जरीबें काममें आती हैं निम्नलिखित हैं। उनकी जरीबकी लम्बाई और बीघोंकी संख्या जो एक एकड़में होती है नीचे-लिखी जाती हैं। [देखिये सारिणी]

२—परिभाषाएं

१—जिन वस्तुओंमें लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई होती हैं, उन्हें ठोस कहते हैं। जैसे लकड़ीका सिलीपर और सिल आदि।

२—जिसमें केवल लम्बाई और चौड़ाई हो (यानी जो स्थान केवल लम्बाई और चौड़ाईसे घिरा हो जैसे खेत या फ़र्श या मैदान आदि) उसको पृष्ठ या क्षेत्र कहते हैं।

३—जब क्षेत्रकी लम्बाई और चौड़ाईमेंसे एक निकल जाती है और केवल एक रह जाती है तो वह रेखा कहलाता है।

४—जिसमें लम्बाई, चौड़ाई या ऊंचाई कुछ भी न हो, जिसकी स्थिति मात्र निश्चय हो, वह बिन्दु कहलाता है।

जिस प्रकार रेखाकी नापका इकाई मील, गज़, फुट या इंच होता है, उसी प्रकार क्षेत्रकी

नापकी इकाई वर्गमील, वर्गगज़, वर्गफुट और वर्ग इञ्च होती है।

जैसे किसी रेखाके नापनेसे यह अभिप्राय होता है कि उसकी लम्बाईमें कितने गज़, फुट या इंच हैं, वैसे ही किसी पृष्ठका क्षेत्रफल निकालनेसे यह अभिप्राय है कि उसमें हमारी कितनी इकाइयां शामिल हैं।

५—दो विन्दुओंके बीचके छोटेसे छोटे फ़ासिलेको सरलरेखा कहते हैं।

६—दो रेखाओंके परस्परके झुकावको कोण कहते हैं, जैसे अ ब और ब स का झुकाव अ ब स कोण कहलाता है। [चित्र १३ देखिये]
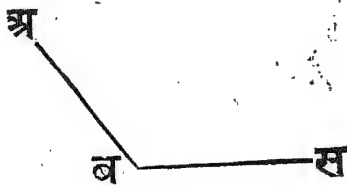
चित्र १३

७—जब एक सरल रेखा दूसरी सरल रेखापर इस तरह खड़ी हो कि उसके आस पासके दोनों कोण बराबर हों, तो इन कोणोंमेंसे प्रत्येकको समकोण कहते हैं और खड़ी रेखाको पड़ी हुई रेखाका लम्ब कहते हैं। चित्र १४ में अ ब लम्ब है और कोण अ ब ज = कोण अ ब द = १ समकोण।
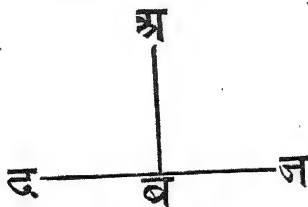
चित्र १४

नोट—एक समकोणमें ९० अंश होते हैं।

८—जो कोण समकोणसे बड़ा होता है उसको अधिककोण कहते हैं, जैसे कोण अ ब स (चित्र १३)

९—जो कोण समकोणसे छोटा होता है उसको न्यूनकोण कहते हैं, जैसे कोण अ द ह (चित्र १५)।

१०—यदि दो सरल रेखाएँ एक धरातलमें हों और उनके बीचका अन्तर सदा एक ही रहे, जैसा कि उनको दोनों ओर बढ़ानेपर उनके न मिलनेसे स्पष्ट हो सकता है, तो उन रेखाओंको समानान्तर रेखा कहते हैं। चित्र १६ में अ ब, द ज समानान्तर रेखाएँ हैं।

अ ——————— ह
द

चित्र १५

चित्र १६

११—जो क्षेत्र तीन सरल रेखाओंसे घिरा हो, सीमाबद्ध हो, त्रिभुज कहलाता है। त्रिभुज तीन सरलरेखाओंके आपसमें मिलनेसे बनता है। क ख ग त्रिभुज क ग, क ख, ख ग रेखाओंसे बना है, जो उसकी भुजा कहलाती हैं। [देखो चित्र १७]

त्रिभुजकी जातियां

भुजाओंके विचारसे त्रिभुजोंके तीन भेद होते हैं अर्थात् समत्रिवाहु त्रिभुज, समद्विवाहु त्रिभुज, विषमवाहु त्रिभुज।
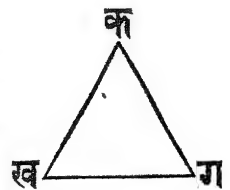
चित्र १७

१२—जिस त्रिभुजकी तीनों भुज बराबर हों, वह समत्रिवाहु त्रिभुज कहलाता है। जैसे चित्र १७ में क ख ग त्रिभुज समत्रिवाहु त्रिभुज है, क्योंकि क ख = क ग = ग ख

१३—जिस त्रिभुजकी दो भुज बराबर हों, समद्विवाहु त्रिभुज कहलाता है। चित्र १८ में क ख ग समद्विवाहु त्रिभुज है, क्योंकि क ख = क ग

१४—जिस त्रिभुजकी एक भी भुजा दूसरेके

बराबर न हो विषम बाहु त्रिभुज कहलाता है। [देखिये चित्र १९]
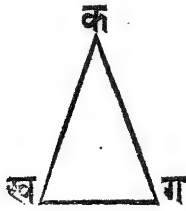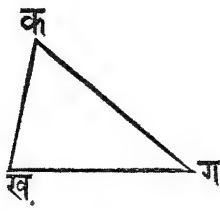
चित्र १८ चित्र १९

कोणके विचारसे भी त्रिभुजोंके तीन भेद होते हैं।

१५—जिस त्रिभुजका एक कोण समकोण हो तो उसे समकोण त्रिभुज कहते हैं। चित्र २० में कोण क ख ग समकोण है, क ग को कर्ण, क ख को लम्ब और ग ख को आधार कहते हैं।

१६—जिस त्रिभुजका एक कोण अधिक कोण हो, उसे अधिक कोण त्रिभुज कहते हैं।

चित्र २१ में कोण क ख ग अधिककोण है
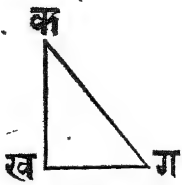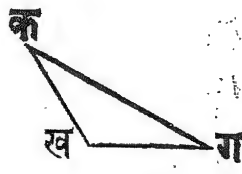
चित्र २० चित्र २१

१७—जिस त्रिभुजके तीनों कोण न्यून कोण हों उसे न्यून कोण त्रिभुज कहते हैं।

चित्र १६ में क ख ग त्रिभुज, न्यून कोण त्रिभुज है।

१८—त्रिभुजके किसी एक कोनेको शीर्ष मान सकते हैं, फिर उसके सामनेवाली भुजाको आधार कहेंगे। प्रायः सर्वोच्च विन्दु शीर्ष और सबसे नीची भुजा आधार मानी जाती है।

१९—चार भुज द्वारा परावेष्टित (घिरी हुई) आकृतिको चतुर्भुज कहते हैं। देखिये चित्र २२ इनके भी भुजा और कोणोंके विचारसे बहुत भेद हैं, जिनमेंसे मुख्य नीचे दिये जाते हैं।

२०—वर्ग वह चतुर्भुज है, जिसके सब कोण समकोण हों और भुजाएँ बराबर हों। क ख ग घ चित्र २२ में देखिये।
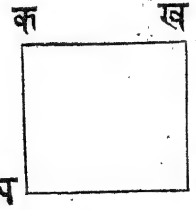
२१—आयत क्षेत्र वह है जिसके सब कोण तो समकोण हों, परन्तु केवल समानान्तर भुजाएं (आमने सामनेकी भुजाएँ) बराबर हों।

चित्र २२

च छ क ज में च ज = छ क और च छ = ज क, [देखिये चित्र २३]
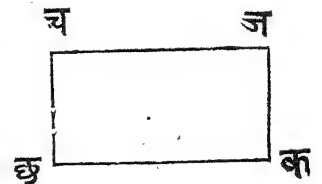
२२—सम लम्ब चतुर्भुज वह चतुर्भुज क्षेत्र है जिसकी दो भुजाएं समानान्तर हों। चित्र २४ में क ख और ग घ समानान्तर हैं।

चित्र २३

२३—वृत्त किसी धरातलका वह भाग विशेष है जो एक गोल रेखासे, जिसे परिधि कहते हैं, परावेष्टित (घिरा) हो और जिसके बीचमें एक ऐसा विन्दु हो (इस विन्दुको केन्द्र कहते हैं) कि उसकी दूरी परिधिपरके प्रत्येक विन्दुसे उतनी ही हो। चित्र २५ में ख ग घ ब वृत्त है और क केन्द्र है।
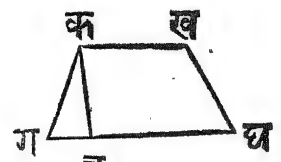
चित्र २४

२४—वह रेखा जो केन्द्रमें होकर खींची गई हो और परिधिपर जाकर दोनों ओर समाप्त हो जाती है, व्यास कहलाती है। चित्र २५ में घ ख व्यास है।
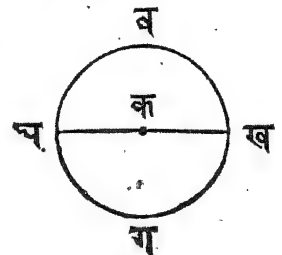
चित्र २५

२५—केन्द्रकी परिधिपरके किसी विन्दुसे जो दूरी हो, वह अर्धव्यास कहलाती है।

स्पष्ट है कि व्यासका आधा अर्धव्यास होता है। चित्र१३में ख घ व्यास है। क ख या क घ अर्ध व्यास है।

२६—परिधिके किसी हिस्सेको चाप कहते है। चित्र २५ ख च, व ग आदि चाप हैं।

३—रेखा गणितकी कुछ बातें

१—जब दो सरल रेखाएँ एक दूसरीको काटती हैं तो किसी कोणके बिलकुल पीछेका कोण उस कोणके बराबर होगा।

जैसे चित्र में रेखा क ख दूसरी रेखा च छ को बिन्दु अ पर काटती है। तो कोण क अ छ = कोण च अ ख और कोण क अ च = कोण छ अ ख। इन चारों कोणोंका योग चार समकोण या ३६०° के बराबर होगा।

२—किसी त्रिभुजमें उसकी कोई सी दो भुजाओंका योग तीसरी भुजासे बड़ा होता है। जैसे चित्र १६ में कख, कग, या खग मेंसे किन्हीं दोका योग तीसरीसे बड़ा होगा।

चित्र २६

३—त्रिभुजके तीनों कोणोंका योग दो समकोण या १८०° अंशके बराबर होता है। चित्र २२ में कोण कखग+कगख+खकग=१८०°

४—समकोण त्रिभुजमें लम्ब और आधारपरके वर्गोंका योग करणपरके वर्गके बराबर होता है।

चित्र २० में $कग^{२} = कख^{२} + खग^{२}$

५—वर्गक्षेत्रके करण एक दूसरेको बीचों बीचमें समकोण बनाते हुये काटते हैं।

क्षेत्रमितिके कुछ आवश्यक नियम

क्षेत्रमितिके (मेनसूरेशन या मसाहत) गणितकी वह शाखा है जिसमें क्षेत्रफल और आयतनकी नापपर विचार किया जाता है। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तकका विषय पैमाइश है, परन्तु पाठकोंको शुरूमें समझानेके लिए हम कुछ क्षेत्रमितिके नियम लिखेंगे, जिसमें पैमाइशकी विधि और क्रिया समझनेमें सुगमता हो।

१—त्रिभुजका क्षेत्रफल

(क) समकोण त्रिभुजका क्षेत्रफल, जिसका लम्ब और आधार मालूम हो:—

क्षेत्रफल = लम्ब × आधार

मान लो कि क ख ग समकोण त्रिभुज है, जिसका लम्ब क ख १० इंच और आधार ख ग २० इंच है तो क्षेत्रफल = १० × १० = १०० वर्ग इंच [देखिये चित्र २७]

(ख) किसी त्रिभुजका क्षेत्रफल आधार और ऊंचाई (लम्ब) के गुणन फलके आधेके बराबर होता है अर्थात् क्षेत्रफल = $\frac{आधार \times लम्ब}{२}$
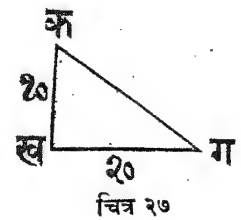
चित्र २७

त्रिभुज क ख ग में ख ग आधार है और क च लम्ब है तो

त्रिभुज क ख ग का क्षेत्रफल

$= \frac{ख ग \times क च}{२}$ [देखिये चित्र २८]

(ग) किसी त्रिभुजका क्षेत्रफल जिसकी तीनों भुजाएँ मालूम हों नीचे दी हुई रीतिसे निकालते हैं:—
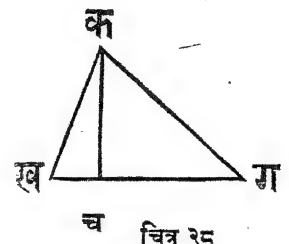
चित्र २८

कायदा—पहिले तीनों भुजाओंके योगफलका आधा करो। जो संख्या आये उसमेंसे हर एक भुजाको अलग अलग घटाओ। फिर तीनों भुजाओंके योगके आधेको और तीनों अन्तरोंको गुणा करके गुणनफलका वर्गमूल निकाल लो। यही त्रिभुजका क्षेत्रफल होगा।

उदाहरण—किसी त्रिभुजकी भुजा क ख = ४१ जरीब, ख ग = ५० जरीब, और क ग = ३९ जरीब, तो उसका क्षेत्रफल इस प्रकार निकालेंगे:—तीनों भुजाओंके योग फलका आधा $\frac{४१+५०+३९}{२}$ = ६५

(६५—४१) = २४ ; (६५—५०) = १५ और (६५—३९) = २६ [देखिये चित्र २६]

∴ त्रिभुज क ख ग का क्षेत्रफल = $\sqrt{६५ \times २४ \times १५ \times २६}$ = $\sqrt{६०८४००}$ = ७८० वर्ग जरीब या ७८० बीघा

(घ) किसी समत्रिबाहुत्रिभुजका क्षेत्रफल निकालनाः—

समत्रिबाहु त्रिभुजकी एक भुजाके वर्गको ·४३३ से गुणा करो, जो कुछ आवे वही उस त्रिभुजका क्षेत्रफल होगा

चित्र २६
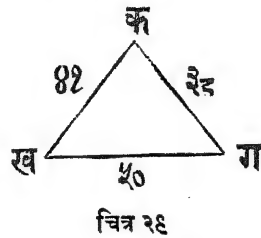
मान लो कि क ख ग एक समत्रिबाहु त्रिभुज है, जिसकी प्रत्येक भुजा ५ इंच है। इसका क्षेत्रफल

= $५^२ \times ·४३३ = १०·८२५$

२—चतुर्भुज क्षेत्रोंका क्षेत्रफल

(क) वर्ग क्षेत्रका क्षेत्रफल

(१) जब उसकी एक भुजा मालूम हो तो उसका वर्ग उसका क्षेत्रफल होगा।

क्षेत्रफल = $(भुजा)^२$

यदि एक भुजाकी लम्बाई ५ फुट हो तो उसका क्षेत्रफल = $५^२$ = २५ वर्ग फुट

(२) जब उसका कर्ण मालूम हो तो कर्णके वर्गका आधा उसका क्षेत्रफल होगा

क्षेत्रफल = $\frac{(कर्ण)^२}{२}$

यदि किसी वर्गक्षेत्रका कर्ण १२ फुट हो तो उसका क्षेत्रफल = $\frac{१२ \times १२}{२}$ = ७२ वर्ग फुट।

(ख) किसी आयत क्षेत्रका जिसकी लम्बाई और चौड़ाई मालूम हो क्षेत्रफल = लम्बाई × चौड़ाई।

यदि किसी आयतक्षेत्रकी लम्बाई १२ फुट और चौड़ाई ८ फुट है तो क्षेत्रफल = १२ × ८ = ९६ वर्ग फुट

(ग) समलम्ब क्षेत्र जिसकी समानान्तर रेखाओंकी लम्बाई और उनके बीचकी दूरी मालूम हो तो क्षेत्रफल निकालनेके लिए दोनों समानान्तर रेखाओंकी लम्बाईको जोड़ कर उनके बीचके लम्बसे गुणा करके आधा करो। जो संख्या आये उतना ही क्षेत्रफल होगा।

मान लो कि समलम्ब क्षेत्र क ख ग घ में समानान्तर रेखा क ख = ६५ गट्ठा और ग घ = ८० गट्ठा और उनके बीचकी लम्बाई कच = ५० गट्ठा है।

∴ क्षेत्रफल = $\frac{(कख + घग) \times कच}{२}$ =

= $\frac{(६५+८०) \times ५०}{२}$

= $\frac{१४५ \times ५०}{२}$

= ३६२५ वर्ग गट्ठा या बिसवांसी

= ९ बीघा, १ बिसवा ५ बिसवान्सी।

(घ) किसी चतुर्भुज क्षेत्रमें यदि कर्ण की लम्बाई मालूम हो और उस कर्ण पर जो सामनेके कोनोंसे दो लम्ब पड़ते हैं, उनकी भी लम्बाई मालूम हो तो उस चतुर्भुजका क्षेत्रफल निकालनेके लिए दोनों लम्बोंके योगको कर्णसे गुणा करके आधा करो।

मान लो कि किसी चतुर्भुज क्षेत्रका कर्ण ग ख = १२ शाहजहानी जरीब और लम्ब क म = ४ शाहजहानी जरीब लम्ब घ न = ३ शाहजहानी जरीब तो क्षेत्रफल = $\frac{(क म + घ न) \times ग ख}{२}$

= $\frac{(३+४) \times १२}{२}$ = ४२ वर्ग जरीब या बीघा

[देखिये चित्र ३०]

३—वृत्तका क्षेत्रफल

वृत्त की परिधि और व्यासमें एक स्थिर संबंध होता है। वृत्त चाहे छोटा हो या बड़ा परन्तु परिधि और व्यासका संबंध वही रहेगा। यह संबंध
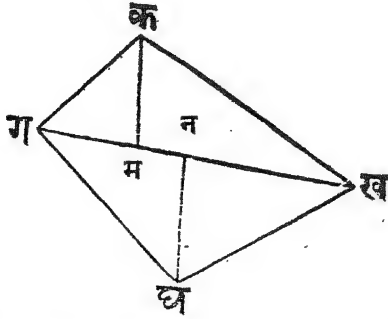
चित्र ३०—इस चित्रमें लम्ब घन,कम टेढ़े हो गये हैं, पाठक ठीक करलें।

२२ और ७ का होता है। यदि परिधि २२ है तो व्यास ७ होगा। यदि व्यास १ है तो परिधि $\frac{२२}{७}$ होगी। इस सम्बंधके स्थिर होनेके कारण यदि किसी वृत्तका व्यास मालूम हो तो उसकी परिधि और परिधि मालूम हो तो व्यास निकाल सकते हैं। मान लो किसी वृत्तका व्यास २८ फुट है तो उसकी परिधि $\frac{२८ \times २२}{७}$ = ८८ फुट। इसी प्रकार यदि परिधि मालूम हो तो उसे $\frac{७}{२२}$ से गुणा करनेसे व्यास निकल आवेगा। व्यास मालूम होनेपर वृत्त-का क्षेत्रफल निकालनेकी तरकीब यह है कि अर्ध व्यासके वर्गको $\frac{२२}{७}$ से गुणा करो। गुणनफल उस-का क्षेत्रफल होगा। मान लो कि वृत्तका अर्धव्यास ७ गज़ है तो उसका क्षेत्रफल = (७×७× $\frac{२२}{७}$) = १५४ वर्ग गज़। यदि व्यास २८ शाहजहानी जरीब हो तो उसका अर्धव्यास १४ जरीब और क्षेत्रफल = $१४^{२} \times \frac{२२}{७}$ = १४×१४ × $\frac{२२}{७}$ = ६१६ वर्ग जरीब या बीघा।

भारत-गीत-२६

बंक मयंक

ए हो सुघर सुधाँशु बंकिमा-संशोभित शशि
तू मोहि करत सशंक आज अति रैनि-अंक बसि

होइ न निहचय मोहि नील नभ में को है तू
जोह्यौ जो शशि कालि आज का नहिं सो है तू

व्योम-पंक-प्रस्फुटित सेत सरसिज-दल है तू
पारिजात सों पतित मुकुल कोइ कोमल है तू

कै कोई आनन्द-कन्द-नन्दन-फल है तू
शची - कर्न - आभर्न - रत्न कोइ चञ्चल है तू

दिशि भामिनि-भ्रू-भंग, काल-कामिनि-निहंग असि
कै जामिनि रही अधर बिम्ब सों मन्द हास हँसि

सुर-सुन्दरि-कल-कंठ-हँसुलि, विलुलित थल सों खसि
कै अनंग-झस लसत चपल निसि के उछंग बसि

कुपित काम-नृप-धनुष, बक्र-परजन्य-शस्त्र कोइ
किधौं भिन्न-हरि-चक्र, स्वर्ग कौ अन्य अस्त्र कोइ

मन्दाकिनि-तट-पर्‍यौ तृषित जल-हीन मीन कोइ
तड़पि रह्यौ तनछीन, व्योमचर कै नवीन कोइ

वृत्र-विदारक इन्द्र-कुलिस की कुटिल नोंक तू
निसि विरहिनि तन लगी मदन की किधौं जोंक तू

प्रथम काल कौ बच्यौ प्रकृति कौ बाल खिलौना
नजर बिड़ारन रच्यौ बजरबट्टू कै टौना

दृष्टि-तुला के पला किधौं स्रष्टा- बैठारौ
सृष्टि-गोद कौ लला मोद - प्रद मात-दुलारौ

निशा-योगिनी भाल - भस्म कौ बांकौ टीका
कै माया - महिषी - किरीट - छाया सुश्रीका

कै विरञ्चि - मस्तक - त्रिपुंड्र - आभास मनोहर
कै भारत - तप - तेज - पिंड कौ खंड मंजु तर

कै अछूत ब्रह्मांड - छोर कौ छिलुका छूट्यौ
किधौं प्रेम - आनन्द - अमृत कौ मटुका टूट्यौ

किधौं नन्दिनी-शृंग व्योम-पट में प्रतिबिम्बित
किधौं कुशंक त्रिशंकु अधर में है अवलम्बित

सप्त - ऋषिन कौ व्यवहृत बक्री - कृत तर्पण - कुश
किधौं अभ्र-पथ - पतित शुभ्र मघवा - इभ - अंकुश
शिव-गिरिसों सित शिला-खंड सुरिगयौ उछरि कोइ
गैल भूलि निज संगिन सों सुर गयौ बिछुरि कोइ
कै सुमेरु - शुचि - वर्न स्वर्न - सागरकौ कौंड़ा
कै सुर - कानन - कदलि - मूल कौ कोमल बौंड़ा
किधौं स्वर्ग - फुलवारी के माली कौ हँसिया
कै अम्मृत एकत्र करन की सेत अँकुसिया
रवि-हय-खुर की छाप किधौं, कै नाल नुकीली
काल - चक्र की हाल परी खंडित, कै कीली
नभ - आसन - आसीन कोई कै तपोलीन ऋषि
कै कछु जोति-मलीन कृशित सोइ कलाछीन शशि

श्री मग्रकोट, प्रयाग ।
—श्रीधर पाठक
१४-११-१९१८

भारमान और बायल का नियम

[ले०-प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव, एम.एस-सी. तथा
प्रोफेसर ब्रजराज, बी. एस-सी., एल एल-बी.]

वायुमें भी बोझ है, यह साधारण प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। जैसे यदि किसी कुप्पीको तोल लें, फिर वायु निःसारक यंत्र द्वारा इसमेंकी वायु निकाल डालें और फिर तोलें तो बोझमें कमी प्रतीत होगी। इससे प्रत्यक्ष होगा कि वायुमें भी बोझ है।

चित्र ३१ के आकारकी नली लीजिये। उसकी एक अ भुजा ३६ इंच लम्बी हो और उसका मुंह म बन्द हो। दूसरी भुजा छोटी २ इंच लम्बी और मुंह खुला हुआ हो। यह नली साधारण U-नलीके समान है, केवल भेद यह है कि एक भुजा लम्बी है और उसका मुंह बन्द है। उसमें इस ढंगसे पारा भरो कि कुल नली म से उ तक पारेसे भर जाय। अब नलीको सीधा खड़ा करो उ में से कुछ पारा निकल जायगा और अ में पारा कुछ उतर आवेगा। अ और उ के पारातलोंकी ऊँचाईका अन्तर ३० इंच-के लगभग ठहरेगा। यदि उ में से कुछ पारा निकाल दें तो अ के पारातलकी ऊंचाई भी घटेगी, परन्तु अ और उ के पारातलोंकी ऊँचाईका अन्तर वही बना रहेगा।

भुजा उ में त पर और भुजा अ में ट पर पारातल स्थिर है। त से होती हुई क्षितिज रेखा अ भुजाको ता में काटे तो ता और ट के बीच का पारा ता की प्रति इकाई क्षेत्रफल पर जो बोझ डालता है वही बोझ त की प्रति इकाई क्षेत्रफल पर भी होना चाहिए। यदि ऐसा न होगा तो पारातल स्थिर भी न होंगे। पर त पारातलपर वायु मण्डलकी वायुके अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसलिए वायुमण्डलका बोझ प्रति इकाई क्षेत्रफलपर वही है जो लगभग ३० इंच ऊंचे पारेका प्रति इकाई क्षेत्र-फलपर है।

म ट अ उ ता त इ

चित्र ३१

यदि एक सीधी गज़ भर लम्बी नली लेकर जिसका एक सिरा बन्द है पारेसे लबा-लब भर लें और इस सिरेको अंगूठेसे बन्द करके पारेसे भरे प्याले ग में इस प्रकार खड़ा कर दें कि खुला मुह पारेके भीतर रहे और हवा नलीके भीतर न पहुंचने पावे तो देखेंगे कि पारा नलीमें कुछ उतर आया है और प्याले और इस नलीके पारातलोंकी ऊंचाईका अन्तर ३० इंचके लगभग है। यह भी एक प्रकार-की तिलक नलिका बन गयी जिसकी एक भुजा नली है और दूसरी भुजा प्यालेके ऊपरवाले वायुमण्डलकी वायुकी है। [चित्र ३२]

उपरोक्त दोनों प्रकारके यंत्र वायुमण्डलकी वायुका भार (वायु चाप) नापनेके काममें

Physics भौतिक शास्त्र]

आते हैं। और वायु भारमान यंत्रके नामसे प्रसिद्ध हैं।
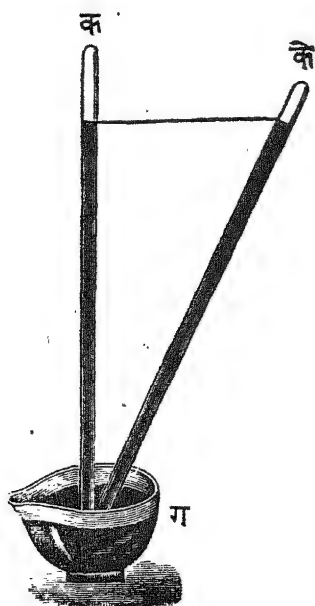
चित्र ३२–दोनों पारातलोंकी ऊंचाईका अन्तर सदा वही रहेगा।

वायुमण्डलकी अवस्था बदलती रहती है, इसलिए वायुमण्डलकी वायुका भार भी बदलता रहता है। इसलिए पारेकी ऊँचाई नापनेकेलिए यंत्रमें गज़ मीटर इत्यादि लगे रहते हैं।

प्रति इकाई क्षेत्रफलपर वायुमण्डलकी वायुके बोझको वायुमण्डलके दबावके नामसे सूचित करेंगे। यह बोझ पृथिवीके प्रत्येक स्थानपर समान नहीं है, क्योंकि पृथिवीकी आकर्षण शक्ति जो बोझका कारण है भिन्न भिन्न स्थानोंपर भिन्न है।

इसलिए ४५° शरान्तरमें समुद्रतलपर ७६० सहस्रांशमीटर ऊंचे पारेका बोझ इकाई क्षेत्रफलपर वायुमण्डलका प्रमाणित माना जाता है।

ऐसे प्रयोग करते समय जिनमें वायुमण्डलके दबावके कारण परीक्षाके फलमें भेद सम्भव हो प्रयोग करते समय वायुभारमान यंत्रमें पारेकी ऊंचाई देख लेना चाहिये। इस स्थानका शर और समुद्र तलसे इसकी ऊंचाई मालूम होनी चाहिये। चित्र ३३ में दिया हुआ एक यंत्र है जो बड़ी सरलतासे बनाया जा सकता है। न एक कांचकी नली है जिसका एक सिरा बन्द है और दूसरा खुला है। व एक छोटी कांच की नली है
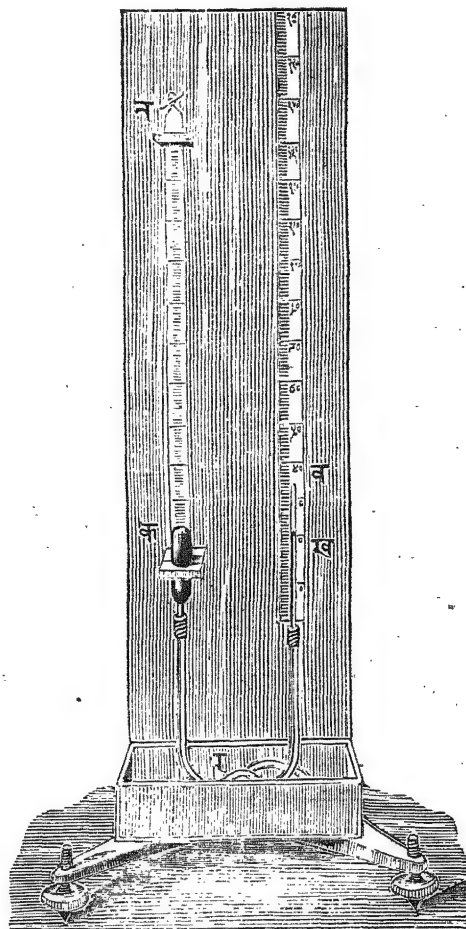
चित्र ३३

जिसके दोनों सिरे खुले हैं। दोनों नलियोंको एक दूसरेके साथ रबड़की नलीसे जोड़ दिया है। इन नलियोंको एक तख़्तेपर जड़ कर नलियोंके बीचमें एक मीटर गज़ जड़ दिया है। ऐसा प्रबन्ध है कि व को तख़्तेके जिस स्थानपर चाहे ठहरा दें। यंत्र तय्यार हो गया। अब व में पारा डालते हैं

और नलीको टेढ़ा करके हवाको निकल जाने देते हैं, जिससे दोनों नलियोंमें पारातलकी ऊंचाई एकही हो जाती है। नली व में पारातलपर वायुमण्डल का दबाव है, इसलिए नली न में बन्द वायुका दबाव पारातलपर वायुमण्डलके दबावके बराबर है। नली व को यदि ऊपर उठावें तो व नलीके भीतर भी पारातल ऊपर चढ़ेगा। इससे जान पड़ा कि न में वायुका आयतन घट रहा है। दोनों नलियोंमें पारातलकी ऊंचाई एक ही न होगी। व नलीमें पारातल अधिक ऊंचा रहेगा। मीटरकी सहायतासे नलियोंमें पारातलकी ऊंचाई सरलतासे नाप सकते हैं। व नलीके पारातलपर वायुमण्डलका दबाव रहता है और न नलीके पारातलपर बन्द हवा का दबाव है। इसलिए न में पारातलपर दबाव = वायुमण्डलका दबाव + दोनों नलियोंके पारातलोंकी ऊंचाईमें भेद। यदि व नली इतनी उठाई जाय कि पारातलोंकी ऊंचाईका भेद वायुभारमान यंत्रके पारेकी ऊंचाईके बराबर हो जाय तो न नलीकी वायुका आयतन पहलेसे आधा हो जायगा। वायुमण्डलका दबाव वायुभारमान यंत्रमें पारेकी ऊंचाईके बराबर होता है, जैसा पहलेसे सिद्ध कर आये हैं। इसलिए न नलीवाली वायुका दबाव पारातलपर वायुमण्डलके दबावका दुगुना है। सिद्ध हुआ कि दबावको दुगुना करनेसे वायुका आयतन आधा हो जाता है। यही दबाव वायुमण्डलके दबावका तिगुना कर दिया जाय तो वायुका आयतन तिहाई हो जायगा। जैसे जैसे दबाव बढ़ाते जायंगे आयतन घटता जायगा और दबाव घटानेसे आयतन बढ़ेगा। इस प्रयोगमें न नलीवाली वायुका तापक्रम बराबर एक ही रहता है। पहले पहले बायलने यह प्रयोग करके वायुके आयतन और उसके दबावमें जो सम्बन्ध है निकाला था। इस सम्बन्धको उन्होंने एक नियमके रूपमें रखा जो अब 'बायलका नियम' के नामसे प्रसिद्ध है। वह नियम यह है:-

यदि गैसकी नियत मात्रा लेकर उसका दबाव घटावें बढ़ावें, पर तापक्रमको न बदलें, तो आयतन और दवावका गुणनफल एक ही रहेगा। इस नियमका बीजात्मक रूप यह है—अ × द = अचल राशि, यदि तापक्रम अचल रहे। यहां अ आयतन और द गैसके दबावकेलिए लिखा है।

ऊपर बायलके प्रयोग का वर्णन करते हुए वायुको ही लिया है, पर भिन्न भिन्न गैसोंको लेकर प्रयोग करनेसे भिन्न भिन्न गैसोंके लिए इस नियमकी सत्यता सिद्ध की जा सकती है।

प्रयोग करते समय न नली वाली वायुका तापक्रम १५° श, २०° श २५° श इत्यादि कुछ भी रख सकते हैं, पर जो कोई तापक्रम, जैसे २०°श, लिया जाय तो वह प्रयोगके समय बदला न जाय, २०°श ही रहे। एक ही गैसके साथ भिन्न भिन्न तापक्रमोंपर प्रयोग करनेसे यह ज्ञात होगा कि कुछ तापक्रमोंपर आयतन और दबावका गुणनफल दबाव बढ़ानेसे बढ़ता जाता है और कुछ तापक्रमोंपर यह गुणनफल दबाव बढ़ानेसे घटता जाता है, पर प्रत्येक गैसकेलिए एक विशेष तापक्रम ऐसा है जिसपर प्रयोग करनेसे बायलका नियम बिलकुल सत्य ठहरेगा। भिन्न भिन्न गैसोंकेलिये यह तापक्रम भिन्न होता है। इस तापक्रमको व्युत्क्रम (inversion) का तापक्रम कहते हैं, क्योंकि इस तापक्रमके नीचे दबाव बढ़ानेसे आयतन और दबावका गुणनफल घटता है और इस तापक्रमके ऊपर बढ़ता है।

जब किसी गैसका आचरण बायलके नियमानुसार होता है वह सम्पन्न गैस कहलाती है। प्रत्येक गैस अपने व्युत्क्रमके तापक्रमपर सम्पन्न होती है। जो गैस प्रत्येक तापक्रमपर सम्पन्न हो वही पूर्ण सम्पन्न गैस है, उसीको हम सम्पन्न गैस कहेंगे।

बायलका नियम सिद्ध करनेवाले प्रयोगमें आयतन और दबावके भिन्न भिन्न फलोंको नीचे दिये हुए नकशेमें लिखना चाहिये :—

गैस...... । तापक्रम ·

संख्या	आयतन	दबाव	गुणनफल
१			
२			

यदि १० या १२ भिन्न आयतनों और उनके दबावोंका गुणनफल निकालें तो देखेंगे कि गुणनफल वाले खानेमें प्रायः ऐसी संख्या आती हैं जिनमें बहुत कम भेद है और यह भेद हमारी जांचमें कुछ अशुद्धताके कारण है। 'संख्या १ वाले आयतनको चित्र ३४ में अ त पर और दबाव-को अ ल पर प्रदर्शिति करें तो एक विन्दु मिलेगा।
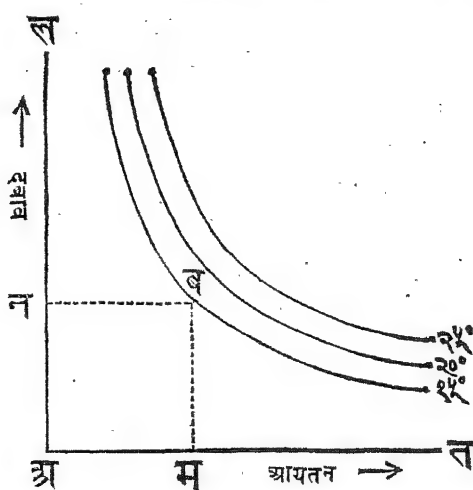
चित्र ३४

इसी प्रकार संख्या २, ३ इत्यादिसे एक एक विन्दु मिलेगा। उन सब विन्दुओंको जोड़ देनेसे एक वक्र बनेगा जो चित्र ३४ में दिखलाया है। इस वक्रको सन्तापक्रमक वक्र (isothermal curve) कहते हैं, क्योंकि उस वक्रके विन्दु निकालते समय तापक्रम एक ही रहा है। भिन्न भिन्न तापक्रमोंपर प्रयोग करनेसे प्रत्येकके लिए एक सन्तापक्रमक वक्र बनेगा। चित्र ३४ में १५° श, २०° श और २५° श के तीन सन्ताप क्रमक दिखाये गये हैं। वह सब एक दूसरेके समान और समानान्तर हैं और कोई किसीको काटता नहीं। वीजज्यामितिके शब्दोंमें कहना चाहिये कि सन्तापक्रमक वक्रका समीकरण है—'अ × द = अचलराशि'।

भारतके उद्योग धन्धे और औद्योगिक कमीशन

[ले०—श्रीयुत रामस्वरूप गुप्त, बी. ए.]

यों तो भारतीय सरकार भारतवर्षकी औद्योगिक उन्नतिकी चेष्टा पिछले २० वर्षोंसे कर रही है, परन्तु एक तो इतना बड़ा विशाल देश जहां सब प्रकारकी औद्योगिक उन्नतिकी सामग्री तथा सम्भावना है, दूसरे आर्थिक अवस्था इतनी हीन कि अपनी उन्नतिके लिये निःशक्त और पराधीन, अतएव वह चेष्टाएं सर्वथा अपर्याप्त थीं, क्योंकि वह केवल कुछ दूरदर्शी अफसरोंका प्रयत्न स्वरूप थीं—सरकारकी अभिमत किसी व्यापक नीतिका फल नहीं थीं। सरकारके यहां तो laissez faire सिद्धांतका राज्य था अर्थात् सरकारको इन बातोंसे कोई सरोकार नहीं, सबको अपनी अपनी व्यवसायकी उन्नति अवनति करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता है। इसी सिद्धांतके विपरीत जरमनी, जापान आदिमें सरकार उद्योग धंधोंकी उन्नतिका भरपूर प्रयत्न करती है। परिणामतः भारतवर्षकी आर्थिक पराधीनता और निर्बलता बड़ी भयंकर हो रही थी। भारतवासियोंके इसपर विलपनेका फल समझिये अथवा युद्धकी चेतावनीका, मई सन् १९१६ में सरकारने सर टी. एच हालैंडके सभा-

पतित्वमें औद्योगिक कमीशन रचकर उसके सामने यह प्रश्न रखे।

(अ) क्या व्यवसाय अथवा उद्योग धंधोंमें भारतीय पूंजीके उपयोगके नये लाभदायक मार्ग बतलाये जा सकते हैं ?

(ब) क्या औद्योगिक उत्थानमें सरकार लाभ पूर्वक सहायता दे सकती है ? यदि ऐसा है, तो किस प्रकारसे—

(१) वैज्ञानिक परामर्शके द्वारा ?

(२) विशेष विशेष उद्योग धंधोंको व्यापारिक ढंगपर चलाने योग्य दिखलाकर ?

(३) आर्थिक सहायता, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीतिसे, पहुंचाकर ?

(४) या अन्य किसी रीतिसे जो सरकारकी वर्तमान नीतिके विरुद्ध न हो ?

कमीशनको सरकारकी व्यापार नीतिपर विचार करनेका अधिकार नहीं था। यद्यपि रिपोर्ट विलम्बसे निकली है और उसके लिए उत्सुकता भी बहुत थी कि जिससे युद्धका अवसर हाथसे न निकलने पावे, परन्तु कार्य्य बड़ा था। तथापि कमीशनके प्रस्तावोंको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिए अब भी बड़ा अच्छा अवसर है।

ओषधि बतलानेके पूर्व निदानकी आवश्यकता होती है। भारतवर्षकी औद्योगिक अवस्था इतनी हीन क्यों है ? इसके कमीशनने यह कारण निश्चित किये हैं—

(१) कोई समय ऐसा अवश्य था जब भारतवर्षके उद्योगधंधे उन्नतिके शिखरपर थे। उस समय यूरोपनिवासी असभ्य थे। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें भी जब यूरोपीय जातियां यहां व्यापार करनेके लिए आईं हमारी अवस्था उनसे कम तो थी नहीं, कदाचित् अच्छी ही थी। परन्तु जब यूरोपमें 'औद्योगिक विप्लव' १७५० के पश्चात् प्रारंभ हुआ उस समय वहांके मध्यम श्रेणीके लोग वैभवशील थे तथा राजनैतिक और धार्मिक स्वतंत्रताके लिए युद्ध करते करते औद्योगिक युद्ध करने योग्य शक्ति और उत्साह उनमें उत्पन्न हो गया था। उसी समय भारतवर्ष आपसके कलह तथा राजनैतिक कुचक्रोंमें फंसा हुआ था।

(२) पश्चिमीय देशोंकी वर्तमान औद्योगिक अभ्युत्थानकी जड़ वहांके कच्चे और पक्के लोहेका शिल्प है। औद्योगिक विप्लवका प्रारंभ शिल्पमें वाष्प-यंत्रोंके प्रयोगसे प्रारंभ हुआ। जब औज़ारोंकी जगह मशीनें काममें आने लगीं तब यूरोपमें लोह शिल्पकी स्थिति ऐसी थी कि एक ही नापके कल पुर्ज़े बनने लगें, जिससे उनके प्रचारमें बड़ा सुभीता हुआ। लोहेके काममें भारतवर्ष बहुत हीन अवस्थामें है। यद्यपि यहां सन् १८७५ से लोहा (pigiron) निकाला जा रहा है तथापि उससे वस्तु निर्माणका कार्य्य केवल १९१४ में आरंभ हुआ। सन् १९१३-१४ में रेलकी पटरियां, लोहेकी चद्दरें आदि २५ करोड़का लोहा भारतवर्षमें आया। मशीनें, मोटरकार आदि इसके अतिरिक्त हैं।

(३) ईस्ट इंडिया कम्पनीने कुछ उद्योग स्थापित करनेकी चेष्टा की थी, उदाहरणार्थ दक्षिणमें लोहेका कारख़ाना था। परन्तु वह सफल न हुई। यह विचार किया गया कि यह उष्ण देश जहां भूमि उपजाऊ है केवल कृषि कार्य्यके योग्य है, कला-कौशलके नहीं। फिर जब यह सिद्धांत ढीला भी हुआ तब उद्योगकी उन्नतिकेलिए जो प्रबंध किया गया वह केवल व्यवसायका मार्ग साफ़ कर देना और आनेजानेकी सुविधाएँ कर देना था। परन्तु इस देशमें लोह-शिल्प न होनेके कारण केवल कच्चे मालका निर्यात (बाहर भेजा जाना) और बनी वस्तुओंके आयातकी (बाहरसे आना) वृद्धि इससे हुई।

(४) भारतवर्षकी पूंजी अत्यंत लाजवती है, जो घरोंके भीतर छिपी पड़ी रहती है। भारतवासी केवल व्यवसाय, लेनदेन, तथा अन्य पुराने धन्धोंमें रुपया लगाते हैं, जिनमें जोखों नहीं है। जो कुछ

उद्योग धन्धे अभी तक स्थापित हुए हैं वह विदेशियोंके उद्योगसे।

(५) भारतवर्षमें निपुण इंजीनियरों और शिल्पविज्ञान वेत्ताओंका अभाव है। इस विषयमें वह विदेशियोंपर आश्रित हैं। युद्धके समयमें यह पराधीनता तथा मशीनों-आदि के यहां बननेकी आवश्यकता सबको स्पष्ट हो गई है।

(६) राज्यकी ओरसे दो त्रुटियां चौथे और पांचवें कारणकी उत्तेजक हुईं। भारतकी सरकारका ख़रीदका कोई विभाग यहां नहीं है। वह इंडिया आफिसके (भारत मंत्रीका विभाग) द्वारा इंगलैंडसे खरीद करती है। फिर विज्ञानकी शिक्षाका प्रबंध न करना सरकारकी एक बड़ी भयङ्कर भूल है।

सारांश हमारे देशकी औद्योगिक-व्यवस्था सर्वथा अपूर्ण है। सामग्री, पूंजी और लादनेवाले-सबके लिए हम विदेशियोंपर आश्रित हैं। माननीय मालवीयजीको अपने भिन्न नोटमें तीसरे कारणके सम्बन्धमें कुछ और भी वक्तव्य है। एक तो वह यह सिद्ध करते हैं कि इंगलैंडने भारतीय आयात माल पर टैक्स बिठलाकर और ईस्ट इंडिया कम्पनीके राजनैतिक प्रभुत्वका उपयोग यहांके उद्योगोंको नष्ट करनेमें करके, वहांके स्वार्थी वणिकोंको लाभ उठाने दिया। उदाहरणार्थ कम्पनीके डाइरेक्टर-संघने जान बूझकर भारतवर्षके जहाज़ी कामको नष्ट कर दिया। दूसरे लार्ड डलहौसीके रेल निर्म्माणका मुख्य अभिप्राय अंगरेज़ोंके व्यापार व्यवसायकी उन्नति करना था। भारतवर्षके औद्योगिक अधःपतनके यह भी कारण हैं।

खनिज और उद्भिज कच्चे पदार्थोंसे किन किन वस्तुओंके प्रस्तुत करनेकी महान आवश्यकता है और किन रासायनिक चीज़ोंके बनाये बिना औद्योगिक उन्नति असम्भव है यह बतलाकर कमीशनने लिखा है कि शांति और युद्ध दोनोंके लिए आवश्यक उद्योगोंका अभाव भयानक है। जब तक उनकी सृष्टि न होगी भारतवर्ष शांतिके समय मुनाफ़ेसे वञ्चित रहेगा। युद्धके समय वर्तमान धन्धोंके बन्द हो जानेका डर रहेगा और देशकी रक्षा बड़े खतरेमें पड़ जायगी।

अतएव कमीशनने दो बड़े बड़े सिद्धान्त मान कर उनके अनुसार अपने भिन्न भिन्न प्रस्ताव किये हैं—(१) भविष्यमें सरकारको भारतके औद्योगिक उत्थानकेलिए स्वयं चेष्टा करनी चाहिये। और वह भी इस उद्देश्यको सन्मुख रख कर कि देश मनुष्य और सामग्रीके विषयमें स्वावलंबी हो जाय।

(२) यह बात तब तक असंभव है जब तक इसके लिए पर्याप्त राज्य व्यवस्थाका प्रबंध न हो, और जब तक विश्वसनीय वैज्ञानिक सम्मतिदाताओंका पूर्ण प्रबंध न हो।

इन्हीं सिद्धांतोंकी शाखा प्रशाखा रूप कमीशनने निम्न लिखित विषयोंपर विचार करके अपनी सम्मति प्रगटकी है।

(१) भारतवर्षकी वर्तमान औद्योगिक स्थिति क्या है और सम्भावनाएँ क्या हैं। भारतवर्ष वर्तमानकालकी उद्योग-गतिके साथ साथ नहीं चल रहा है। यहांकी अधिकांश जन-संख्या पुराने ढंगोंसे खेती करनेमें लगी है, जिनसे कठिनतासे जीवन निर्वाहके योग्य पैदा होती है। जो कुछ कृषिमें अंतर हुआ है वह आयात और निर्यात व्यापारका प्रभाव है, न कि औद्योगिक परिवर्तनका।

(२) कुछ स्थानों, जैसे बंबई, बंगालके कोयलेकी खानों, बिहारके नीलके ज़िलों आदिमें, पश्चिमीय ढंगोंका प्रचार हुआ है। परन्तु वहां भारतीय मज़दूरोंकी कमी, उनकी अक्षमता सर्वत्र देखी जाती है और निगरानी करनेकेलिए योग्य भारतवासी नहीं मिलते।

(३) उद्योगोंकी कच्ची सामग्रीपर कमीशनने विचार किया है। उद्भिज सामग्रीमें अमेरिकन कपासकी कृषि बढ़नी चाहिये। गन्ना जितनी भूमिमें यहां बोया जाता है अन्यत्र नहीं बोया जाता, परन्तु वह अच्छी नस्लका नहीं होता। बोनेका ढंग सुधारना चाहिये। छोटे छोटे

खत्तोंमें बोये जानेके कारण एक भी फेक्टरीका चलना कठिनाईसे होता है। तेलहन बहुत होता है। परन्तु कोल्हुओंमें उन्नति होना आवश्यक है। अभी तो अधिकतर कच्चा माल विदेशोंको भेज दिया जाता है। चमड़ेका धंधा देहातके चमार बहुत बुरी तरहसे करते हैं। उनके लिए यह कहा जाता है कि वे अच्छी खालको बुरा चमड़ा बना देते हैं। चमड़ा बनानेकी फेक्टरियां खोलना चाहिये। कमानेके कामके पदार्थ भारतवर्षमें अच्छे और बहुत भांतिके होते हैं। अभी बबूल और अवारमकी छाल काममें आती है। परन्तु म्यूनीशन बोर्ड अन्य पदार्थोंका गुणान्वेषण कर रहा है। यहांकी खाल क्रोम चमड़ेके बहुत योग्य होती है। यहां जितनी खाल पैदा होती है उतनी खर्च नहीं होती है। युद्धके पूर्व अधिकांश अवशिष्ट जर्मन व्यापारियोंके हाथमें था।

खनिज पदार्थ बहुतायतसे हैं, यद्यपि अच्छा कोयला कम खानोंमें मिलता है और खानें लोहेकी खानोंके समीप नहीं हैं।

बन विभागकी उन्नतिके लिए कमीशनने बहुत ज़ोर दिया है। भारतवर्षमें २॥ लाख वर्गमीलमें जंगल हैं, जिनमें २८ करोड़ घन फुट लकड़ी और १ करोड़ १६ लाखके अन्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं। सन् १९१२ में ७४ लाखकी लकड़ी (timber) विदेशोंसे आई और यद्यपि किराया बढ़ गया तथापि युद्ध-कालमें भी इसमें कमी नहीं हुई। इससे देशकी मांगकी दृढ़ता सिद्ध है। जंगलोंसे जितना लाभ उठाया जा सकता है उतना अभी नहीं उठाया जाता। इसके लिए एक तो अच्छा मार्ग और आने जानेकी सुविधा होनी चाहिये। जंगलोंसे आमदनी बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिये और नये आविष्कारोंको व्यापारमें लाभदायक सिद्ध करनेका उद्देश्य रहना चाहिये। बनज पदार्थोंके बहुतसे उद्योग चल सकते हैं। बांसका काम, लकड़ीका कोयला बनाना और तेल निकालना आदि उद्योगोंकी केवल चर्चा ही न होनी चाहिये। बांससे काग़ज़का मसाला बनानेकी फेक्टरी परीक्षार्थ गवर्नमेंट द्वारा खोलनेकी सलाह कमीशन ने दे दी है।

समुद्रमें मछलियोंकी उन्नतिकी ओर भी कमीशनने सरकारका ध्यान आकर्षित किया है।

(४) कृषि और उद्योगका घनिष्ट सम्बन्ध—भारतमें दूसरेकी पहिलेपर निर्भरता बतलाते हुए कमीशनने खेतीकी उन्नतिके लिए नयी कृषिप्रणालीके प्रचारकी आवश्यकता बतलायी है। ऐसी मशीनोंका व्यवहार बढ़ना चाहिये जिनसे मज़दूरोंकी मेहनत बचे। उदाहरणार्थ भारतवर्षमें कमसे कम ३० लाख कुओंसे सिंचाई होती है। शीघ्र ही आशा है कि इने कुओंसे काश्त होने लगेगी। तब यदि सौ में पांच कुए भी पानी उठानेके ऐसे छोटे छोटे यंत्रोंका व्यवहार करने लगें, जो मशीन द्वारा चलते हों, तो जिस मेहनतका अभी दुरुपयोग होता है बच जायगी। मशीनोंके उपयोगसे पैदावारमें भी वृद्धि होगी। अभी भारतवर्ष और इंगलैंड दोनोंमें गेहूं और जौकी अधिक खेती होती है। औसत पैदावार क्रमशः ८१४ पौंड और १९१९ पौंड गेहूंकी और ८७७ पौंड तथा १६४५ पौंड जौकी फी एकड़ है। मशीनें बनाने और सुधारनेके लिए एक बृहद् इंजीनियरी धन्धेकी सृष्टि भी आवश्यक है।

(५) परन्तु मशीनोंके चलानेके लिए शक्ति उत्पादक क्या क्या साधन भारतवर्षमें हैं। कमीशन भारतवर्षके कोयलेको अधिकतर घटिया बताता है। अतएव दूर स्थित स्थानोंमें उसके व्यवहारमें बचत नहीं है। धातुओंके कारखानोंमें बढ़िया कोयलेकी (coking coal) आवश्यकता बढ़ जानेसे उसकी कमी अधिक प्रतीत होने लगेगी। अतएव कोयलेकी बंगालस्थ खानोंका निरीक्षण, उसके खोदने और जलानेकी सुव्यवस्था और आसामकी खानों तक सुमार्गका प्रबंध होना चाहिये। पवन-शक्ति लगातार व्यवहार्य नहीं है। लकड़ीका (चार कोल) कोयला बनानेसे

उसमेंसे अन्य पदार्थ निकलेंगे और फिर उससे गैस बन सकेगी। जलनेवाली स्प्रिट (industrial alcohol) किन किन वस्तुओंसे बन सकती है, इसकी परीक्षा होनी चाहिये। और भारतवर्षकी नदियों आदिके जलप्रपातसे बिजलीकी शक्ति बहुत बड़ी मात्रामें उत्पन्न की जा सकती है। इसकी सम्भावनाएँ इस देशमें अधिक हैं। उनकी जांचकेलिए सरकारी प्रवन्ध स्थापित होना चाहिये।

(६) 'उद्योगमें भारतीय' शीर्षक में भारतीय शिल्पी और श्रमजीवियोंकी अक्षमताके तीन कारण बतलाये गये हैं। १ शिक्षाका अभाव, २ निकृष्ट जीवन प्रणाली और ३ प्रतीकारार्ह (रोक सकने योग्य) रुग्णावस्था।

इनके सुधारके प्रस्तावोंका बहुत विस्तार है। साधारण और औद्योगिक शिक्षाके प्रबन्धको मुख्य स्थान दिया गया है। कमीशन व्यापक प्राथमिक शिक्षाके पक्षमें है, परन्तु इसका भार कारखानेके मालिकोंपर नहीं किन्तु सरकारपर ही होना चाहिये। औद्योगिक तथा वैज्ञानिक, इंजीनियरी आदिकी शिक्षाके लिए कमीशनने बारीक प्रस्ताव किये हैं, जिनका पूर्ण विवरण स्थानाभावसे नहीं दे सकते। उनका मुख्य उद्देश्य मौखिक शिक्षाके साथ साथ उद्योग*स्थलोंमें कार्यानुभव है। नवीन नवीन संस्थाओंके खोलनेके प्रस्ताव किये गये हैं। शिल्पियोंके योग्य निरीक्षक (foremen) भारतवासी नहीं मिलते। इसके लिए उन्हें तैयार करनेका प्रस्ताव भी है। श्रमजीवियोंकी अक्षमताके दूसरे और तीसरे कारणोंके दूर करनेके आवश्यक उपायोंपर अध्याय १६ में भी विचार किया गया है जहां घने शहरोंमें फेक्टरीके मज़दूरोंके रहनेकी सुव्यवस्था सम्बंधी प्रस्ताव हैं। कल कारखानोंकी वृद्धिके साथ साथ यह समस्या महत्वपूर्ण होती जाती है। वर्तमान गन्दे, मांद सदृश घरोंको सुधारनेके अनेक उपाय बतलाये गये हैं। बालक मज़दूरोंकी शिक्षापर भी ज़ोर दिया गया है। तथा काम करनेके घंटे कुछ कम करनेसे सुपरिणामकी आशा की गयी है। शिक्षित भारतवासियोंकी औद्योगिक-जीवन-अरुचिका कारण वंशज स्वभाव है। रोज़गारी जातियां साहूकारी और व्यापारमें लगी रही हैं और मानसिक योग्यता रखनेवालोंकी शिक्षा उद्योगसे अरुचि उत्पादक रही है। बम्बई प्रांतके निवासियोंकी व्यवसायरुचिका कारण उनके इतिहाससे यह मालूम होता है कि वे बहुत जमानेसे उसी ओर प्रवृत्त हैं।

(७) नयी फेक्टरियां स्थापित करने तथा मज़दूरोंके लिए रहनेका प्रबंध करनेके लिए यदि उचित स्थान बलपूर्वक लेनेकी आवश्यकता पड़े तो कमीशन Land Acquisition एक्टके प्रयोगकी सलाह देता है। विशेषतः दूसरे प्रयोजनके लिए तो गवर्नमेंट अपने रुपयेसे भूमि खरीद कर फिर फेक्टरीके मालिकोंसे धीरे धीरे वसूल करले।

(८) जो उद्योग कारीगर लोग अपने घरोंमें रह कर (फेक्टरीमें नहीं) करते हैं उन्हें गृह शिल्प (cottage industries) कहते हैं। भारतवर्षमें ऐसे शिल्प और शिल्पियोंकी संख्या बहुत अधिक है। यद्यपि गत शताब्दीमें विदेशीय व्यापारके कारण बहुत नष्ट भी हो गये, परन्तु उनमें जीवनी शक्ति अभी शेष है। अतएव नये नये ढंगों और यंत्रोंके प्रचारसे उनके पुनरुद्धारकी चेष्टा करना चाहिये। इसके लिए सरकार इन कारीगरोंको कर्ज़ दे, औज़ार किरायेपर दे और नयी प्रणालीपर स्वयं फेक्टरियां चलाकर उनके लिए आदर्श उपस्थित करे। कलाओंके प्रान्तीय अफ़सर उनमें नये विचार तथा ढंगों (designs) का प्रचार करें। फिर जो वस्तुएँ वहां बनें उनकी बिक्रीके लिये भारतमें तथा विदेशोंमें एजेंसियां खोलनेका प्रयत्न किया जाय। ऐसे कारीगरोंमें सहयोग समितियोंके प्रचार द्वारा स्वावलंब तथा उद्यमका प्रसार किया जाय (अध्याय १७ व १८)।

* जहांपर बहुतसे कारखाने, मिल, हों (Industrial Centres)

(६) अभीतक रेलोंके किराये इस ढंगके रहे हैं कि विदेशी आयात मालपर रिआयत और भारतीय बने मालके निर्यातमें बाधा पड़ती रही है। यह अनौचित्य मिटाकर देशमें औद्योगिक कार्य्यको सहायता पहुंचे, ऐसा आयोजन करना चाहिये।

शेष रिपोर्टमें यह विचार है कि उपरोक्त ढंगसे औद्योगिक उन्नतिके लिए सरकारी शासन-यंत्रमें क्या वृद्धि तथा परिवर्तन किये जायं, कौनसे नवीन विभाग खोले जायं, वर्तमान विभागोंमें क्या वृद्धि हो, कौन सी नयी संस्थाएँ स्थापित हों, कमेटियां आदि स्थायी आयोजन क्या किये जायं और इनमें क्या प्रबन्ध हों। यह बड़े महत्वपूर्ण प्रस्ताव हैं, क्योंकि सरकारी सहायताका उद्देश्य रख कर भी यदि प्रबंध त्रुटि पूर्ण रहे तो लाभके बदले हानि हो सकती है। कमीशनके इन प्रस्तावोंमें बहुतोंसे असहमत होनेके कारण मालवीयजीने अपनी राय भिन्न ही लिखी है। कमीशनने प्रान्तीय और भारतीय औद्योगिक विभाग तथा एक भारतीय औद्योगिक कर्मचारीविभाग स्थापित करनेका प्रस्ताव किया है। विभागका अध्यक्ष वाइसरायकी कार्यकारणी समितिका सभासद हो और उसका स्वयं तीन सभासदोंका एक बोर्ड हो, जो भारतीय औद्योगिक बोर्ड कहा जावे और सरकारकी औद्योगिक नीति तथा सारे देश व्यापी औद्योगिक उन्नतिके कार्यक्रमके लिये उत्तरदाता हो। शासन सूत्र एकत्र न हो कर प्रान्तोंमें बांट दिया जाय। प्रान्तीय सरकारी शासन इस कार्य्यमें स्वतंत्र हो। इन कर्तव्योंके पालनके लिए एक बड़ा कर्मचारी समुदाय रखना होगा जो मेकेनिकेल इंजीनियरीका ज्ञान रखनेवाले होंगे। समय समय भरती करनेके बजाय एक भारतीय औद्योगिक कर्मचारी विभागकी स्थापना हो जिसमें अधिकतर इंजीनियर हों, जो प्रान्तीय सरकारोंके नीचे काम करें। मालवीयजी भी भारतीय औद्योगिक बोर्डकी रचना व्यर्थ समझते हैं। उसके लिए कोई काम ही शेष नहीं रहेगा।

प्रान्तीय विभाग डाइरेक्टरके नीचे रहेंगे, जिसकी सहायताके लिए निपुण कर्म्मचारी और वैज्ञानिक सम्मतिदाता होंगे। इस प्रकारसे वह अपने प्रान्तके उद्योग धंधोंकी सहायता इंजीनियरों और वैज्ञानिकोंद्वारा कर सकेगा। उसका सहायक एक प्रान्तीय बोर्ड होगा और वह सरकारके सेक्रेटरी-पद पर होगा, जिससे कार्य्य बिना विलंबके हो सके। मालवीयजी इसे उचित नहीं समझते, क्योंकि इस दशामें प्रान्तीय मेंबर जो, उद्योग तथा व्यवसायका अध्यक्ष है, उसपर देख रेख नहीं रख सकेगा। कमीशन औद्योगिक शिक्षापर औद्योगिक विभागका अधिकार रखना चाहता है। मालवीयजी शिक्षा विभागका भी अधिकार इसलिए चाहते हैं कि जिससे शिक्षाका सैद्धान्तिक (theoritical) अंग भी ठीक रहे।

रसायन शास्त्र, कीटाणु शास्त्र आदिके लिए कमीशन भारतीय कर्म्मचारी-विभागोंकी स्थापना चाहता है, जिसमें वर्तमान वैज्ञानिक अफ़सरोंका समावेश हो जायगा। यह कर्मचारी भारतीय सरकारकी अध्यक्षतामें प्रांतीय सरकारोंके साथ काम करेंगे। मालवीयजी भारतीय औद्योगिक विभागकी अध्यक्षता वैज्ञानिक आविष्कर्ताओंके उपयुक्त नहीं बतलाते। उनकी राय है कि जो सबसे बड़ा वैज्ञानिक कालिज भारतवर्षमें खोला जाय उसकी अध्यक्षता होनी चाहिये और यह विभाग अभी कुछ दिनोंतक स्थापित भी नहीं होने चाहियें। अभी स्थापित होनेसे उनमें सब यूरोपियन भर जायंगे, जिनकी सेवा, उनकी पक्कावस्थामें, भारतवर्षको नहीं किन्तु अन्य देशोंको मिलती है। जब छात्रवृत्ति द्वारा विदेशोंमें तथा अखिल भारतीय-वैज्ञानिक विद्यालयमें शिक्षित होकर भारतीय छात्र तैयार हो जायं तब इन विभागोंकेलिए भारतीय-रिक्रूट मिल सकेंगे।

धातु विद्या तथा इंजीनियरीकी उच्च शिक्षाके लिए कमीशनने दो बड़े बड़े कालिजोंका खोलना ठीक समझा है। मालवीयजी इन दोनोंको तथा

रसायन शास्त्र शिक्षाको एक ही वृहद् विद्यालयमें सम्मिलित करना चाहते हैं (the Imperial Polytechnic Institute) । इस प्रकारके विद्यालयकी मांग भारतीय जनता बहुत दिनसे कर रही है।

मालवीयजीने कृषि और व्यापार शिक्षाकी आवश्यकता जापानके साथ तुलना करके बतलायी है।

व्यापारिक और औद्योगिक विज्ञप्तिके वर्तमान साधनों और विभागमें उचित परिवर्तन द्वारा श्रेष्ठ व्यवस्था करना, सरकार और रेलवेके लिए सामान यथा सम्भव भारतवर्षमें ही मोल लेनेका प्रबन्ध औद्योगिक विभागोंकी अध्यक्षतामें एक भिन्न विभाग द्वारा करना, तथा उद्योग धंधोंको पूंजीकी सहायता पहुंचाना-यह तीन भार कमीशनने सरकारके ऊपर ही रखे हैं। इनमेंसे अंतिमका महत्व बहुत बड़ा है। इस प्रकारकी सहायता कारखानोंकी स्थापना और वृद्धिमें बड़ी उत्तेजक होती है। कमीशनने कहा है कि जब तक औद्योगिक बैंकोंकी विशेष सुविधापर सरकार पूर्ण विचार वा निश्चय करे तबतक मध्यमश्रेणीके उद्योगियोंकी सहायता सरकारी गारंटी द्वारा की जाय अर्थात् सरकारी औद्योगिक विभाग उसके धंधोंकी तथा उसकी देख रेख करके सरकारी जिम्मेदारीपर बैंकोंसे कर्ज़ दिलाया करे। कुछको सरकार स्वयं कर्ज़ दे कर, उनकी बनाई वस्तु ख़रीदकर, पूंजीमें साझेदार हो कर, अथवा मुनाफ़ेकी गारंटी देकर सहायता करे। इन सबमें उचित सावधानी रखी जाय । मालवीयजीका प्रस्ताव देशमें एक बड़ी सरकारी बैंककी स्थापना करनेका है, जिसमें वह भारतीय पूंजी रखी जाय जो अभी लंडनमें रहती है। उस बैंकमें भारतीय नवयुवकोंकी बैंकके कामसे अनुभव प्राप्त करनेका अवसर मिल सकेगा । उपरोक्त स्कीमों और प्रस्तावोंको कार्य्यमें परिणत करनेमें क्या व्यय पड़ेगा, इसका लेखा करके यह जोड़ आता है—

वार्षिक व्यय	प्रान्तीय	९८,९८,५००	रुपया
	,, (वर्तमान)	३८ ०००००	,,
	,, वृद्धि	६०९८५००	,,
	भारतीय ,,	२४६३९००	
	योग—	८५६२४००	
पूंजी रूपमें	प्रस्तावित स्कीमें	१,५०,००,०००	रुपया
	सम्भव ,,	६ ६,००,०००	,,

मालवीयजीका इन पड़तालोंपर यह कथन है कि इनमें जो वेतनका हिसाब रखा गया है वह यूरोपियनोंके योग्य रखा गया है। यदि उनके कथनानुसार भारतीय कर्म्मचारी रखे जांय तो इतने वृहद् बजटमें बहुत कमी हो सकेगी।

प्रकाश-विज्ञान

कुछ अद्भुत घटनाएँ

[ले०—प्रोफेसर निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

जब न्यूटन महोदयने (Newton) एक अंधेरे कमरेमें बहुत छोटे गोल छिद्रमेंसे प्रविष्ट कराकर सूर्यका प्रकाश एक कांचके त्रिपार्श्व (prism तिपहल) पर डाला तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उस त्रिपार्श्वमें केवल वर्तन ही नहीं होता, किन्तु उसके अतिरिक्त और भी कुछ होता है । उन्होंने देखा कि सामनेकी दीवारपर जिस जगह प्रकाश पड़ा था वह स्थान जितना चौड़ा था उससे पंचगुना लंबा था (चित्र ३५) और श्वेत रंगका न था, बल्कि उसमें इन्द्र धनुषके सभी रंग मौजूद थे। उनका क्रम भी वही था जो इन्द्र धनुषमें होता है। अर्थात् पहिले लाल तब पीला, हरा, नीला और अंतमें बैंजनी । बादको गोल छिद्रके स्थानपर तंग चौखूंटे (समचतुरस्र) छेदका प्रयोग करके उन्होंने उपरोक्त घटना बहुत अच्छी तरह देख ली। यह

Light प्रकाश विज्ञान]

अद्भुत दृश्य पहिले भी बहुत लोगोंने देखा होगा, और न सही तो झाड़ फानूस आदिमें जो कांचकी फलियां (तिपहल टुकड़े) शोभाके
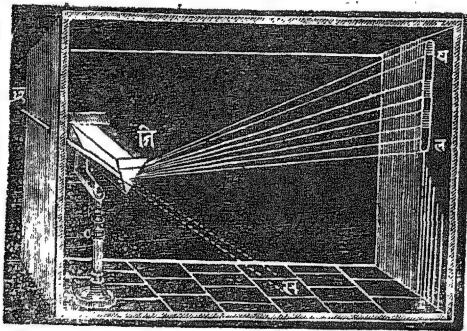
चित्र ३५—छ-छेद । त्रि-त्रिपार्श्व । ब-बैंजनी । ल-लाल ।

लिए लगाये जाते हैं उनमेंसे झांककर समस्त संसारको विविध रंगमय तो अवश्य ही देखा होगा, किन्तु इसका अर्थ समझना और इसकी सहायतासे एक प्रकाश सम्बंधी महत्वके सिद्धान्तका स्थिर कर लेना यह न्यूटनके समान विलक्षण बुद्धिवालेका काम था। उन्होंने सोचा कि यह रंग कहांसे आये ? दो ही बात हो सकती हैं। या तो वे श्वेत प्रकाशमें पहिलेसे ही थे और उन सबके मिलनेसे ही श्वेत रंग देखपड़ा था, पर त्रिपार्श्वने उन्हें पृथक् कर दिया। या वे त्रिपार्श्व-

चित्र ३६—दपर्णोंपरसे परावर्तित होकर रश्मियां एक विन्दुपर मिलती हैं।
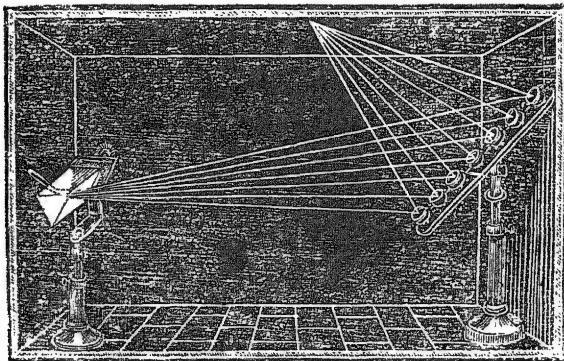
मेंसे निकलते समय उत्पन्न हो गये। दूसरी बातका सत्य होना ज़रा कठिन है, क्योंकि त्रिपार्श्व भी तो कांचका टुकड़ा है। कांचके और टुकड़ोंमें तो ऐसा दृश्य नहीं देख पड़ता। किन्तु पहिली बात-में भी विश्वास तभी हो सकता है जब हम प्रत्यक्ष देख लें कि भिन्न भिन्न रंगोंका प्रकाश मिला देनेसे भी श्वेत प्रकाश बन जाता है और यह भी निश्चित हो जाय कि त्रिपार्श्वमें रंग बनानेका कोई विशेष गुण नहीं है। पहिली बात सिद्ध करनेके लिए न्यूटनने त्रिपार्श्वमेंसे निकले हुए भिन्न भिन्न रंगों-की किरणोंको भिन्न भिन्न दर्पणोंपर डाला और उन दर्पणोंको घुमा घुमाकर, समस्त किरणोंको परावर्तित कर एक स्थानपर पहुंचाया। (चित्र ३६) परिणाम यह हुआ कि वहां कोई भी रंग न दिखलाई दिया, किन्तु श्वेत प्रकाश पड़ता हुआ जान पड़ा।

दूसरी बात सिद्ध कर देनेमें भी अधिक कठि-नाई न हुई। एक और त्रिपार्श्व ठीक पहिलेवाले त्रिपार्श्वके समान लेकर उसे भी पहिलेके निकट उलटा रख दिया। (चित्र ३७) परिणाम यह
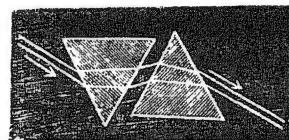
चित्र ३७

हुआ कि रंग सब गायब हो गये और श्वेत रंगका ही प्रकाश सामनेकी दीवारपर दिखाई पड़ा। यदि त्रिपार्श्व-में ही रंग बनानेका गुण होता तो दूसरा त्रिपार्श्व रंगोंको और बढ़ा देता, अधिक फैला देता। वह उनसे पुनः श्वेत प्रकाश कैसे बना सकता था ? इतनेपर भी संतुष्ट न होकर न्यूटनने बिना किसी त्रिपार्श्वकी सहायताके सिद्ध कर दिया कि इन्द्र धनुषके सब

रंगोंके मिलनेसे श्वेत रंग बन जाता है। एक वृत्ताकार लकड़ी या लोहेके टुकड़ेको उसने कई वृत्त खंडोंमें (segments) विभाजित किया। और एक एक खंडको एक एक रंगसे रंग दिया (चित्र ३८)
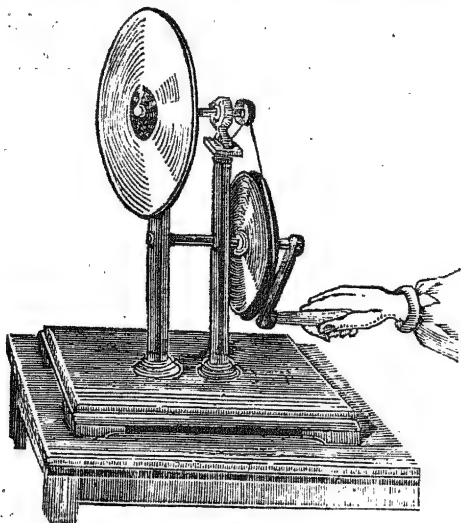
चित्र ३८—न्यूटनकी फिरकी (Newton's disc)

यह सब खंड बराबर क्षेत्रफलके न थे, किन्तु जिस परिमाणमें उसने रंगोंको त्रिपार्श्व द्वारा देखा था उसी हिसाबसे कोई बड़ा और कोई छोटा था। उस वृत्ताकार टुकड़ेको उसने चर्खीपर चढ़ाकर वेगसे घुमाया। तब जान पड़ने लगा कि उसमें कोई रंग नहीं है। वह तो निरा श्वेत है। क्योंकि नेत्रोंपर उन सब रंगोंका प्रकाश इतनी शीघ्रतासे पड़ता था कि नेत्र उनका केवल सम्मिलित प्रभावका ही अनुभव कर सकते थे।

इन परीक्षाओं द्वारा न्यूटनने सिद्ध कर दिया कि श्वेत प्रकाश सब रंगोंके प्रकाशका समुदाय मात्र है और त्रिपार्श्व भिन्न भिन्न रंगोंको भिन्न भिन्न परिमाणमें वर्तित करके पृथक
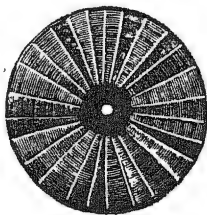
चित्र ३६ फिरकीके रंग

कर देते हैं। सारांश यह कि भिन्न भिन्न रंगोंके प्रकाशकेलिए वर्तनीय संख्या भी भिन्न भिन्न हैं।

इस भांति श्वेत प्रकाशकी प्रकृतिका निर्णय हो चुकनेपर प्रश्न होता है कि प्राकृतिक दृश्योंमें इसका उपयोग किस प्रकार होता है। यह स्पष्ट है कि इसीकी सहायतासे संसारमें रंगोंकी विचित्रता देख पड़ती है, क्यों कि प्रत्येक रंगीन वस्तु जिसे हम देख सकते हैं स्वयं अपना प्रकाश तो हमारे नेत्रोंमें पहुंचाती नहीं। यही सूर्यका अथवा अन्य दीपकका श्वेत प्रकाश उसपर पड़ता है और उसका कुछ अंश लौट कर हमारे पास आ जाता है। किन्तु जब उस वस्तुपर किसी अन्य रंगका प्रकाश पड़ता है तब उसका रंग भी कुछ और ही नज़र आता है। अतः यह विचित्रता अवश्य श्वेत प्रकाशके यौगिक संगठनका परिणाम है। किन्तु केवल इसीका नहीं। क्योंकि रंगीन वस्तुओंके परमाणुओंमें और श्वेत प्रकाशके अवयवोंमें कुछ पारस्परिक सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये कि जिसके कारण वे उसमेंसे रंगोंका वैचित्र्य प्रगट कर देती हैं। यदि ऐसा न हो तो दोनोंपर एक ही प्रकारका श्वेत प्रकाश पड़नेपर भी एक वस्तु लाल और दूसरी पीली क्यों देख पड़ती है?

इसमें वस्तुओंका काम केवल चयनात्मक (selective) है, सृजनात्मक (creative) नहीं। अर्थात् किसी भी प्राकृतिक वस्तुमें रंग उत्पन्न नहीं होता, वह उसमें बनाया नहीं जाता। इन वस्तुओंपर सूर्यके श्वेत प्रकाशके रूपमें सभी रंगोंका समूह पड़ता है। उनका काम केवल इतना है कि उस समुदायमेंसे कुछ रंगोंको पसंद करके ग्रहण करलें और शेषको वापिस लौटा दें। जो भाग वे ग्रहण कर लेती हैं वह तो हमारे नेत्रोंमें पहुंचता नहीं। अतः उनका रंग जो हमें देख पड़ता है वह उसी प्रकाश द्वारा दिखलाई देता है जो वे लौटा देती हैं।

इसकी परीक्षा करनेकेलिए सबसे पहिले हमें विचारना चाहिये कि कालापन क्या है? किसी

वस्तुको काली कब कहते हैं? साधारणतया यह सब जानते हैं कि रात्रिमें प्रकाश न होनेपर अंधेरेमें सब कुछ काला ही काला जान पड़ता है। किन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि काली वस्तु वह है जिससे लौटकर हमारे नेत्रोंमें प्रकाश नहीं पहुंचता ज़रा कठिन काम है। यदि एक काली वस्तुको त्रिपार्श्व द्वारा बनाये हुए सप्त रंजनके (spectrum) भिन्न भिन्न रंगोंमें रखें तो ज्ञात होगा कि वह प्रत्येक रंगको ग्रहण करके नष्ट कर देती है। इससे स्पष्ट है कि समस्त श्वेत प्रकाशको ग्रहण कर लेती है। कोई भी अंश लौट कर हमारे नेत्रोंमें पहुंचनेको बाकी नहीं बच जाता। उससे किंचिन्मात्र भी प्रकाश नहीं आता। हम ऐसी वस्तुओंको केवल प्रकाश विपरीतताके कारण देख सकते हैं। वे हमें इसलिए दिखलाई देती हैं कि आस पाससे प्रकाश आता है और उनसे नहीं।

उसी सप्त रंजनके रंगोंमें यदि लाल वस्तु रखें तो देखेंगे कि लाल रंगमें उसका बड़ा सुन्दर वर्ण देख पड़ता है और वह बहुत प्रकाशवान जान पड़ती है। इसका कारण यही प्रत्यक्ष है कि वह उस प्रकाशको ग्रहण नहीं कर सकती। प्रायः सबका सब ही वापिस लौटा देती है। वही लाल वस्तु यदि हरे या नीले रंगके प्रकाशमें रखी जाय तो सर्वथा कोयलेके समान काली मालूम होती है। क्योंकि जो प्रकाश उसपर पड़ता है उसे वह ग्रहण कर लेती है और हमारे नेत्रों तक कोई प्रकाश लौटकर नहीं आता। ठीक इसी प्रकार हरी वस्तु लाल प्रकाशमें रखनेसे काली जान पड़ती है, किन्तु हरे प्रकाशमें उसका स्वाभाविक रंग चमकने लगता है।

इन बातोंसे प्रकट है कि वस्तुओंमें जो रंग होता है वह निषेधात्मक (negative) क्रिया द्वारा बनता है। रंगीन वस्तुएं अपने रंग द्वारा किसी प्रकारका प्रकाश बढ़ाती नहीं, किन्तु जो होता है उसे भी कम कर देती हैं। लाल कांचका टुकड़ा लाल इस कारण होता है कि लाल प्रकाशको छोड़ शेष सभी रंगोंके प्रकाशको वह सोख लेता है। नीला कांच इस कारण नीला होता है कि उसमें होकर केवल नीला प्रकाश ही आरपार जा सकता है। दोनोंको एक साथ रखदेनेसे किसी प्रकारका प्रकाश भी उनमेंसे नहीं निकल सकता, जो अनुभव सिद्ध भी है।

किन्तु यह बात भूल न जानी चाहिये कि जिस क्रिया द्वारा वस्तुएँ प्रकाशका परावर्तन करती हैं वह उपरोक्त रंगोंवाली क्रियासे भिन्न है। दोनोंमें प्रकाश वस्तुपर पड़ कर पुनः लौट जाता है, किन्तु परावर्तनकेलिए वस्तु चिकनी होनी चाहिये, रंगकेलिए नहीं। परावर्तनमें प्रकाश नियमित पथपर गमन करता है। किन्तु रंगीन वस्तुसे वह सर्वत्र फैल जाता है। परावर्तनमें प्रकाश वस्तुके अंदर न जाकर बाहरसे ही लौट आता है। किन्तु जबतक वह कुछ न कुछ अंदर न चला जाय और वस्तुके परमाणु उसके कुछ अंशको सोख न लें तब तक लौटा हुआ प्रकाश रंगीन नहीं हो सकता। अतः परावर्तित किरणका रंग वही होता है जो आपात किरणका था। चाहे उस परावर्तक वस्तुका रंग कैसा ही हो। यह सब जानते हैं कि कालीसे काली भी वस्तु यदि खूब चमकदार हो तो उसपरसे श्वेत प्रकाश परावर्तित हो सकता है। चन्द्रमा इस बातका एक उदाहरण है।

यह सब प्रकाशके सम्बंधमें कुछ साधारण बातें हुईं। इस विषयका मामूली ज्ञान प्राप्त करनेके लिए इनके अतिरिक्त और किसी बातकी आवश्यकता नहीं होती। इन्हींका उपयोग ज्ञात हो जानेसे साधारणतया संसारका सभी काम चल सकता है। किन्तु हालमें ही जो और बहुत सी बातें प्रकाशके सम्बंधमें ज्ञात हुई हैं, वे न केवल स्वयं बहुत आश्चर्यजनक हैं, किन्तु उनके द्वारा प्रकाशका वास्तविक तत्त्व जाननेमें भी बहुत सहायता मिलती है।

हम देख चुके हैं कि प्रकाशका गमन सरल रेखात्मक है। और १७ वीं शताब्दीतक किसीको यह डर भी न था कि किसी समय इस सिद्धान्तमें भी कुछ हेर फेर करनेको आवश्यकता हो जायगी। सं०१७२२ वि० के लगभग इटलीके वैज्ञानिक ग्रिमाल्डो ने (Grimaldi) सिद्ध किया कि प्रकाश थोड़ा सा मुड़ भी सकता है। यदि कोना छोटा सा हो तो प्रकाश अपने सीधे रास्तेको छोड़ कर भी चल सकता है। इस बातको परीक्षा करनेके लिए निम्न लिखित प्रयोग किये जा सकते हैं।

१—अंधेरे कमरेमें एक बहुत तंग और छोटी झिरीमेंसे (समचतुरस्र छिद्र) प्रकाश आने दो। दो फुट दूर सामने एक परदा रखो। बीचमें दूसरी झिरी रख देनेसे सरल रेखात्मक गतिके नियमानुसार परदेके एक विशेष भागपर प्रकाश पड़ना चाहिये और बाक़ीपर नहीं। किन्तु देख पड़ेगा कि परदेपर प्रकाश उक्त भागसे बहुत दूर तक फैल गया है और उसमें कई रंग दिखाई पड़ते हैं। रंग क्यों होते हैं, यह दूसरी बात है। इस समय हमें यह देखना है कि सीधा चलनेसे जहां प्रकाश नहीं पड़ सकता था वहां भी वह पहुंच गया है।

२—दूसरी झिरीके स्थानपर एक सीधा तारका टुकड़ा रख दो। अब हमें केवल उसकी छाया दिखाई देनी चाहिये। किन्तु फिर वही रंगीन रेखाएं दीखेंगी और सबसे आश्चर्यकी बात यह होगी कि ठीक छायाके बीचमें जहाँ सीधा चलनेवाला प्रकाश किसी प्रकार पहुंच ही नहीं सकता ठीक वहीं प्रकाशकी रेखा देख पड़ती है।

३—तारके टुकड़ेको भी हटा कर उसके स्थानपर बारीक जाली रखो, बहुत अद्भुत दृश्य दिखाई देगा।

४—पहिली झिरीके स्थानपर एक छोटा सा पिनसे बनाया हुआ छिद्र रखके उसके सन्मुख दूसरा वैसा ही छिद्र अथवा वृत्ताकार अपारदर्शक वस्तुका टुकड़ा, जैसे दोअन्नी, रख दो, जो दृश्य दिखाई देगा उससे भी यही परिणाम निकलेगा कि प्रकाश कुछ न कुछ मुड़ सकता है।

यह सच है कि यह मोड़ बहुत कम होता है। अतः हमें सरल गतिके सिद्धान्तको बदलकर यों कहना चाहिये कि प्रकाश प्रायः सीधा हो चलता है, किन्तु विशेष दशाओंमें थोड़ा बहुत मुड़ भी सकता है। इस घटनाको विकृति (diffraction) कहते हैं।

इससे भी अधिक आश्चर्यजनक एक और बात ग्रिमाल्डीने देखी थी। किन्तु उसने उसका जो वर्णन लिखा है उससे यह ठीक ठीक पता नहीं लगता कि उसने सचमुच ही यह देख लिया था, किन्तु डाक्टर यंगने (Young) निस्सन्देह यह प्रमाणित कर दिया कि प्रकाशमें और प्रकाश मिलाकर भी अंधकार उत्पन्न कर देना सम्भव है। उन्होंने छोटे छिद्रमेंसे सूर्यका प्रकाश प्रविष्ट करा कर एक पर्देपर डाला, इस पर्देमें पास पास पिनसे बनाये हुए दो छिद्र थे। इन छिद्रोंमेंसे निकल कर प्रकाशके दो रश्मि पुंज एक और पर्देपर पड़े। जहां दो छिद्रोंका प्रकाश एकत्रित हुआ वहां अधिक प्रकाश होना चाहिये था, किन्तु देखा गया कि वहां तो भिन्न भिन्न रंगोंकी रेखाएं हैं। छिद्रोंकी दूरी बढ़ानेसे यह रेखाएँ सिकुड़ गईं और जब दूरी अधिक हो गई तब इनका सर्वथा लोप हो गया। एक छिद्रको बन्द कर देनेसे भी वे अदृश्य हो गईं और सूर्यके प्रकाशको पहिले छिद्रमेंसे न लाकर सीधा इन दोनों छेदोंपर डालनेसे भी यही दशा हुई। इन बातोंसे प्रमाणित हुआ कि यह रंगीन रेखाएँ एक छिद्रके प्रकाशपर दूसरे छिद्रका प्रकाश पड़नेके कारण ही उत्पन्न हुई हैं। यह आवश्यक है कि दोनों छिद्रोंका प्रकाश पहिले एक ही स्थानसे आना चाहिये। कहीं कहीं काली रेखाओंका होना यह सिद्ध करता है कि वहां बिलकुल प्रकाश नहीं पड़ता। एक प्रकाशने

दूसरे प्रकाशसे मिलकर अंधकार कर दिया। दोनों प्रकाश नष्ट हो गये। इस प्राकृतिक घटनाको व्यतिकरण (interference) कहते हैं। यदि सूर्यका श्वेत प्रकाश न लेकर एक ही रंगका प्रकाश लें अर्थात् सूर्यके प्रकाशको पहिले लाल कांचमेंसे निकाल कर तब छिद्रोंपर पड़ने दें तब यह काली रेखाएँ और भी अधिक साफ़ साफ़ दिखलाई पड़ेंगी।

अब हम इस प्रयोगमें और विकृतिके प्रयोगोंमें दिखलाई देनेवाले रंगोंकी उत्पत्तिको कुछ कुछ समझ सकते हैं। यह हमें ज्ञात हो चुका है कि श्वेत रंगका प्रकाश सब रंगोंके प्रकाशका समुदाय है और अब हम यह भी जान गये हैं कि एक प्रकाश दूसरेसे मिलकर नष्ट हो सकता है। किन्तु इन बातोंसे यह परिणाम नहीं निकलता कि श्वेत प्रकाशपर श्वेत प्रकाश पड़नेसे सभी रंग एक साथ नष्ट हो जाते हैं। यह बहुत सम्भव है कि एक स्थानपर केवल लाल रंग नष्ट हो और दूसरेपर केवल नीला। जहां लाल रंग नष्ट हुआ है वहां स्पष्ट है कि श्वेत प्रकाश श्वेत न रहकर कुछ कुछ नीला दिखलाई देने लगेगा और जहां नीला नष्ट हुआ उस स्थानपर कुछ लाल रंगकी अधिकता बोध होने लगेगी।

इसी सम्बन्धमें इस व्यतिकरणसे उत्पन्न हुई कुछ और घटनाओंका भी वर्णन कर देना उचित है। एक प्यालेमें पानी भर दो। तेलकी एक मात्र बूंद इस पानीपर डाल दो बूंद फैल जायगी और बहुत ही सुन्दर रंग उसमें देख पड़ेंगे। यह भी व्यतिकरणसे उत्पन्न हुए हैं। किन्तु प्रश्न होगा कि यहां दो प्रकाश कहांसे आये? थोड़े ही विचार-से ज्ञात हो जायगा कि दो प्रकाश यहां भी अवश्य हैं। जो प्रकाश उस तेलपर पड़ता है उसका कुछ अंश परावर्तित हो जाता है और कुछ अंश अंदर-को चला जाता है। यह जब पानीकी सतहपर पहुंचता है तब फिर कुछ अंश परावर्तित हो जाता है। पानी और तेलसे परावर्तित दोनों प्रकाश आपसमें व्यतिकरण करके ही रंग उत्पन्न कर देते हैं। जहां कहीं इस प्रकारकी पतली झिल्ली होगी वहीं रंग देख पड़ेंगे। साबुनका बुलबुला भी रंगीन जान पड़ता है। पीतलके बर्तनको भी गरम करनेसे उसपर जमे हुए ताम्रओषिद्की पतली तहके कारण उसमें रंग दिखलाई देने लगते हैं।

१७वीं शताब्दीसे पहिले सदा यही समझा जाता था कि वर्तक पदार्थोंमें एक आपात किरण-से एक ही वर्तित किरण उत्पन्न होती है। किन्तु सन् १६६६ ई० में डेनमार्कके तत्ववेत्ता बार्थोली-नियसने (Bartholinius) पहले पहल देखा कि आइसलैंडका (Iceland) एक विषेश प्रकारका पारदर्शक पत्थर भारीता (Baryta) इस नियमका अपवाद है। इसमें दो वर्तित किरणें होती हैं। पुस्तकपर इसे रखनेसे अक्षर दुहरे जान पड़ते हैं। छोटे छिद्रका प्रकाश उसमेंसे परदेपर डालनेसे दो प्रकाश विन्दु दिखलाई देते हैं। भारीताको घुमानेसे एक विन्दु तो स्थिर रहता है और दूसरा उसकी परिक्रमा करता है। इस घटनाको द्विवर्तन double refraction कहते हैं। इन दोनों वर्तित किरणोंकी परीक्षा करनेसे ज्ञात हुआ है कि स्थिर विन्दुवाली किरण तो वर्तनके नियमोंका पालन करती है। किन्तु दूसरीका उन नियमोंसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। पहिली किरणको साधारण (ordinary) और दूसरीको असाधारण (extraordinary) कहते हैं। अब तो ऐसे बहुत से द्विवर्त्तक पदार्थ मालूम हो गये हैं। किन्तु यह विचित्र गुण केवल रवोंमें (crystals) ही पाया जाता है।

इस आविष्कारके कुछ ही दिनों बाद टूरमलीन-के (tourmaline) रवेके सम्बंधमें भी एक विचित्र बात मालूम हुई। यह ज्ञात हुआ कि जो प्रकाश एक बार इसमें होकर निकल जाता है उसमें कुछ विशेष गुण, कुछ विचित्रता, आजाती है। यह प्रकाश टूरमलीनके किसी दूसरे रवेमें एक स्थिति-

में तो बिना रोक टोक निकल जाता है, किन्तु यदि उसे, प्रकाश किरणको अक्ष मानकर, एक समकोण घुमा दें तो वह प्रकाश उसमेंसे बिलकुल नहीं निकल सकता। पूर्ण अंधकार हो जाता है। किन्तु साधारण प्रकाश उसमेंसे सदैव निकल जाता है। इससे स्पष्ट है कि उक्त प्रकाशमें कोई विशेष गुण उत्पन्न हो गया। इस घटनाको ध्रुवीभवन (Polarisation) कहते हैं। वह किरण ध्रुवीभूत हो गई।

अब यदि भारीतेकी साधारण और असाधारण किरणोंकी भी टूरमलीन द्वारा परीक्षा की जावे तो मालूम होगा कि वे दोनों किरणें भी ध्रुवीभूत हैं, किन्तु फिर भी दोनोंमें कुछ अन्तर है। जब साधारण किरण टूरमलीनमेंसे निकल जाती है तब तो असाधारण रुक जाती है और जब समकोण घुमानेसे असाधारण निकल जाती है तब साधारण नहीं निकल सकती। जो स्थिति साधारणके निकल जानेके लिए अच्छी है वही असाधारणके लिए किसी कामकी नहीं। इससे स्पष्ट है कि द्विवर्तन और ध्रुवीभवनमें बहुत घनिष्ट सम्बंध है।

प्रकाश सम्बंधी घटनाओंका यहीं अंत नहीं हो जाता, किन्तु आरम्भिक परिच्छेदमें इससे अधिक उल्लेख करना उचित न होगा। अंतमें इस बातकी ओर पुनः ध्यान आकर्षित कर देना अनावश्यक न होगा कि अब तक जितनी भी बातें ज्ञात हुई हैं वे सब धैर्यपूर्वक अनुभव और प्रयोग करनेसे ही हुई हैं। किसीने केवल ध्यान लगाकर इन सब बातोंको नहीं जान लिया। किन्तु इनसे भी महत्वकी बात यह है कि यद्यपि प्रकृतिने अनुभवसे काम न लेनेवालेको कभी कुछ न सिखलाया तथापि उसने उन सज्जनोंसे जिन्होंने वास्तवमें दिल लगाकर प्रयोगों के प्राकृतिक मार्गका अनुशीलन किया है अपना रहस्य भी कभी नहीं छिपाया। ऐसे मनुष्योंको सदा ही प्रकृतिके भेदोंके उद्घाटनमें सफलता हुई है।

भारत-गीत-३४

(१)

भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है
शुचि भाल पै हिमाचल, चरणों पै सिंधु-अंचल
उरपर विशाल सरिता-सित-हीर-हार चंचल
मणि-बद्ध नील-नभका विस्तीर्ण पट अचंचल
सारा सुदृश्य-वैभव मनको लुभा रहा है
भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है

(२)

उपवन-सघन-वनाली, सुखमा-सदन, सुखाली
प्रावृटके सान्द्र घनकी शोभा निपट निराली
कमनीय-दर्शनीया कृषि-कर्मकी प्रणाली
सुरलोककी छटाको पृथिवी पै ला रहा है
भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है

(३)

सुर-लोक है यहींपर, सुख-ओक है यहींपर,
स्वाभाविकी सुजनता गत-शोक है यहींपर,
शुचिता, स्व-धर्म-जीवन, बेरोक है यहीं पर,
भव-मोक्षका यहींपर अनुभव भी आ रहा है
भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है

(४)

हे वन्दनीय भारत, अभिनन्दनीय भारत,
हे न्याय बन्धु, निर्भय, निर्बन्धनीय भारत,
मम-प्रेम-पाणि-पल्लव-अवलम्बनीय भारत,
मेरा ममत्व सारा तुझमें समा रहा है
भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है

श्रीपद्मकोट,
प्रयाग, २१-११-१८ } —श्रीधर पाठक।

बाधाओंका बंधन

[ले०—प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

उदाहरणकेलिए एक पेचदार चक्रकी बाधा और उसमें बहती हुई धारा निकाले देते हैं।

एक बाटरीके दो सिरे क और ग पर जुड़े हुए हैं, जिस कारण इन दोनों सिरोंमें २ वोल्टोंके बराबर अवस्थाभेद है। क और ग के बीचमें १, २, ३, ४, ५, ६ ७, ओह्मोंकी सात बाधाएं, जिस प्रकार चित्र ४० में दिखलायी हैं, जुड़ी हुई हैं। इन बाधाओंके समूहकी लब्धबाधा निकालेंगे और उस धाराका भी पता चलाएंगे, जो इस समूहमें क मेंसे प्रवेश करती है और प्रत्येक बाधामेंसे होती हुई ग द्वारा निकल जाती है।

१ और २ हारबद्ध हैं, इसलिए उनकी लब्ध-बाधा इस समीकरणसे निकलेगी

$$\frac{१}{ब} = \frac{१}{१} + \frac{१}{२} \quad [ब \text{ लब्धबाधा है}$$

$$= १ + \frac{१}{२} = \frac{३}{२}$$

$$\therefore ब = \frac{२}{३}$$

४, ५, ६ हारबद्ध हैं, इसलिए यदि उनकी लब्धबाधाको बा से सूचित करें तो

$$\frac{१}{बा} = \frac{१}{४} + \frac{१}{५} + \frac{१}{६}$$

$$= \frac{१५+१२+१०}{६०}$$

$$= \frac{३७}{६०}$$

$$\therefore बा = \frac{६०}{३७}$$

चित्र ४०
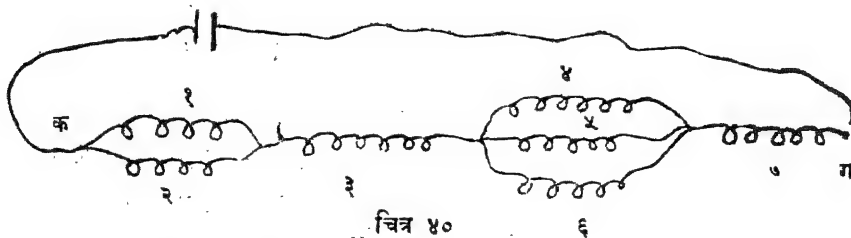
अब ३ और ७, १ और २ का समूह, ४, ५ और ६ का समूह शृंखलाबद्ध हैं अर्थात् यह चार बाधाएँ शृंखला बद्ध हैं—

$\frac{२}{३}$, ३, $\frac{६०}{३७}$ और ७, (क्योंकि उक्त दो समूहोंकी लब्धबाधा लेनी पड़ेगी।) इसलिए इस पेचदार समूहकी लब्धबाधा

$$बो = \frac{२}{३} + ३ + \frac{६०}{३७} + ७$$

$$= \frac{३२}{३} + \frac{६०}{३७}$$

= १२ ओह्मके लगभग

धारा 'ध' तो अवस्था भेदको बाधा से भाग देनेसे मिल जायगा। अवस्था भेद २ वोल्ट है, इसलिए

$$ध = \frac{२}{१२}$$

$$= \frac{१}{६} \text{ एम्प}$$

अर्थात् $\frac{१}{६}$ एम्पकी धारा क में प्रवेश करेगी और ग से निकल जायगी। इसीको यों भी कह सकते हैं कि जिन तारों द्वारा बाटरीके सिरे क और ग जुड़े हुए हैं उनमेंसे $\frac{१}{६}$ एम्पकी धारा बहेगी। बाटरीके धनात्मक सिरे और क के, (या बाटरीके ऋणात्मक सिरे और ग के) बीचमें एक एम्पमापक जोड़ देनेसे $\frac{१}{६}$ एम्पकी धारा बतलायेगा।

Electricity विद्युत शास्त्र]

मवाद उत्पादक जीवाणु

[लेखक श्री० मुकटविहारीलाल दर, बी. एस-सी.]

समस्त रोग उत्पादक जीवाणुओंकी अपेक्षा मवाद पैदा करनेवाले जीवाणु कहीं अधिक पाये जाते हैं। वे मनुष्य तथा पशुओंके रहनेकी जगहके आस पासकी ज़मीन और गंदे पानीमें प्रायः पाये जाते हैं। यह मनुष्यकी त्वचा-पर भी बहुत होते हैं, जहां वे मृत कोषों और अन्य पदार्थोंपर अपना निर्वाह करते हैं। यह कई प्रकारके होते हैं, परन्तु सब सूजन पैदा करके मवाद (पीप अर्थात् गाढ़ा द्रव पदार्थ जो फोड़े आदिमें पैदा होता है) उत्पन्न करते हैं। मवाद पैदा करनेवाले जीवाणु शरीरके किसी भी हिस्सेमें पहुंचकर सूजन पैदा कर सकते हैं। घावोंमें वे मवाद पैदा कर देते हैं और खालमें वे फुनसी, फोड़ा, पृष्ठव्रण (carbuncle) विसर्प (erysipelas) का कारण होते हैं। कभी कभी वे गले तथा आमाशयकी दीवारपर आक्रमण कर एपिन्डिसाइटिस (appendicitis) या आंतड़ियों-में सूजन, मुंह आना (tonsilitis), गला बैठना आदि रोगोंको पैदा कर देते हैं। अक्सर वे मस्तिष्क-को ढकनेवाली झिल्लियों (membranes) में इकट्ठा होकर एक रोग जिसको मेनिनजाइटिस (meningitis) कहते हैं कर देते हैं, तथा फेफड़ों-में अधिकार करके निमोनियाका कारण होते हैं।

इसी प्रकारसे वे हृत्पिण्डकी दीवारमें घुसकर अथवा शरीर भरमें फैल कर रक्तमें मंद विषका संचार करने लग जाते हैं। मवाद पैदा करनेवाले बैक्टीरिया तो कई प्रकारके होते हैं। इन सबमें

चित्र ४१—दो प्रकारके साधारण मवाद उत्पादक जीवाणु

एक छोटे आकारका 'काक्स' (coccus) जिसको कि 'स्टैफिलो काक्स' (staphylococcus) कहते हैं बहुत साधारण है। इनके झुंडकेझुंड पाये जाते हैं और प्रायः छोटे घावों, फुनसी, फोड़े, पृष्ठ-व्रण आदिमें मवादका कारण होते हैं तथा हड्डियोंमें घाव तथा सूजनका कारण भी हो सकते हैं। यह रक्तको विषैला कर देते हैं और अन्य प्रकारकी सूजनमें भी पाये जाते हैं।

दूसरा मवाद उत्पादक जीवाणु एक 'कौक्स' शृंखलाकार होता है, जिसको कि 'स्ट्रप्टोकोक्स' (streptococcus) कहते हैं। यह जीवाणु खालमें
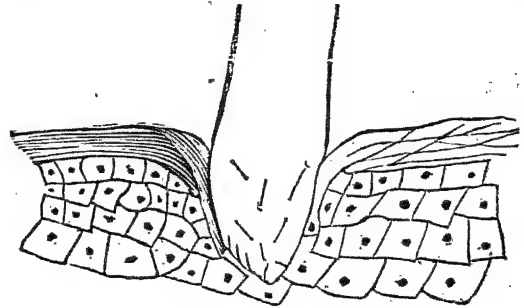
चित्र ४२—घावमें कील आदिके साथ जीवाणुओंका प्रवेश।

फैलकर विसर्प पैदा कर देते हैं। कभी कभी यह छोटे छोटे घाव तथा फोड़ोंमें भी पाये जाते हैं परन्तु यह प्रायः शरीरके भीतरी भागपर ही आक्रमण करते हैं। यह बहुधा टौंसलाइटिस, एपेन्डिसाइटिस और 'विषैले रक्त' का कारण होते हैं। और जीवाणुओंकी अपेक्षा बहुधा यही कर्णावर्त्तकी सूजनमें पाये जाते हैं और अन्य मवाद उत्पादक वैक्टीरियाकी अपेक्षा यही 'मेनिनजाइ-टिस' (meningitis) और निमोनियाके कारण होते हैं। इसी कारण यह उचित है कि जब कभी बच्चोंका कान बहे तो डाकृरको दिखानेमें असाव-धानी न करनी चाहिये, क्योंकि इसमें बहरे हो जा-नेका भय रहता है और यदि जीवाणु कानमेंसे हो-कर मस्तिष्क तक पहुंच जायं तो 'मेनिनजाइटिस' (meningitis) हो जाना भी सम्भव है। अतएव

यह अन्य मवाद उत्पादक बैक्टीरियाकी अपेक्षा अधिक भयंकर हैं।

एक तीसरी प्रकारके मवाद उत्पादक जीवाणु बारीक शलाकाकार (Bacillus) होते हैं, जिनको कि बैसिलस पायोसाएनियस (Bacillus pyocyaneus) कहते हैं और जो कभी कभी घावोंमें प्रवेश कर नीले हरे रंगका मवाद बनाते हैं। यह अन्य जीवाणुओंकी तरह न इतने साधारणतया पाये जाते हैं और न इतने भयानक ही होते हैं।
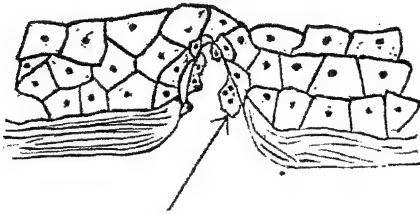
चित्र ४३—जीवाणुओं सहित धूल कणोंका घावमें प्रवेश

मवाद उत्पादक बैक्टीरियाकी निर्बल तथा बलवान जातियां

मवाद उत्पादक जीवाणुओं की कुछ जातियां तो बिलकुल नुकसानदह नहीं होतीं, परन्तु कुछ बहुत ही भयानक होती हैं, जो अवसर मिलनेपर बहुत अधिक सूजन पैदा कर देती हैं और (blood poisoning) रुधिरको विषाक्त बना देती हैं। यथा शक्ति इनको शरीरमें प्रवेश नहीं करने देना चाहिये।

चित्र ४४—मवाद उत्पादक शलाका-जीवाणु (bacillus)।

पृष्ठव्रण (carbuncle), पुराना फोड़ा, विसर्प (erysipelas) अथवा रुधिर विषाक्तकारी (blood poisoning) जीवाणुओंसे अन्य जीवाणुओंकी अपेक्षा अधिक डरना चाहिये। बहुधा मनुष्य जिनके फोड़े हुए हैं अपने नाखूनोंसे खुजलाकर जीवाणु खालमें भर लेते हैं और उसके कारण बहुत से फोड़े शरीरमें अन्य स्थानोंमें पैदा कर लेते हैं।

घावोंकी रक्षा

मवाद उत्पादक जीवाणुओंसे अपनी रक्षा करनेके लिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि छोटे घावोंकी किस प्रकार रक्षा की जाय। अगर घाव किसी साफ़ चीज़से हुआ है और रुधिर बहता है तो रुधिर जीवाणुओंको बाहर बहा देगा और जो जीवाणु घावमें रह गये हैं उनका, अपनी जीवाणुनाशक शक्तिसे, नाश कर देगा। ऐसी दशामें सबसे अच्छी बात तो यह है कि घाव बांध दिया जाय और खोला न जाय, जब तक कि अच्छा न हो जाय या सूजन न होने लगे। हलके घावों (जैसे खराश वगैरा) में सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि उस जगह को एक पतले साफ़ कपड़ेसे बांध दिया जाय और ऊपरसे एक और पट्टी बांध दी जाय। ऊपरवाली पट्टी जब खराब हो जाय तो बदल देनी चाहिये, परन्तु अन्दरवाला कपड़ा दवा लगानेके समयके अतिरिक्त कभी न खोला जाय। इस तरह जीवाणु घावमें प्रवेश न कर सकेंगे। पैर और हाथके घावोंकी रक्षाकी ओर, जहां खाक और धूलके पहुंचनेकी अधिक संभावना होती है, विशेष ध्यान देना चाहिये।

यदि घाव किसी गन्दी चीज़से हुआ है तो उसको साफ पानीसे अवश्य धोना चाहिये और जहां कुछ धूल आदि घावमें रह गई हो तो उसे निकालनेके लिए साफ कपड़ा तथा साबुनका प्रयोग करना ज्यादा अच्छा है। जिस घावमें बहुत मिट्टी हो उसको किसी हलके जीवाणु नाशक पदार्थ (disinfectant) से धोना चाहिये, जैसे कार्बोलिक अम्ल अथवा पारदद्वयोदिद (biniodide of mercury), परन्तु घावको किसी तेज़ जीवाणु नाशक पदार्थसे धोना अच्छा नहीं।

यदि जीवाणु धूलके कणमें चिपके हुए हों तो वे घावमें प्रवेश कर जाते हैं, इसलिए सब मिट्टी अच्छी तरह धो डालनी चाहिये।

तेज़ जीवाणुनाशक पदार्थोंका प्रयोग इस कारण अनुचित है कि वे घावके कोषोंको हानि पहुंचाते हैं, जिससे उनकी जीवाणुओंके आक्रमणको रोकनेकी शक्ति जाती रहती है। तारपीन घावके लिए बहुत अच्छा है। और यह एक ऐसी चीज़ है, जो आसानीसे हर समय मिल सकती है।

घावपर पट्टी बांधनेके बाद उसकी देख भाल सावधानीसे करनी चाहिये और यदि दर्द, सुर्खी अथवा सूजनसे जीवाणुओंके बढ़नेके लक्षण उसमें प्रतीत हों तो उसे खोल कर जीवाणु नाशक औषधि (disinfectant) से धो लेना चाहिये। कोई मलहम (जैसे carbolated vaseline) जिसमें कार्बोलिक ऐसिड हो ऐसे घावोंके लिये बहुत लाभदायक होता है। उज्जन द्विओषिद (peroxide of hydrogen) अर्थात् परोक्साइड ओफ हैड्रोजनका प्रयोग बड़े घावों तथा फोड़ोंके धोने व उनके जीवाणु मारनेके लिये होता है। परन्तु इस औषधको बहुत सावधानीसे इस्तेमाल करना चाहिये, नहीं तो तन्तुओं (Tissues) को हानि पहुंचनेका डर है। मवाद उत्पादक जीवाणु शरीरके लिये हानिकारक हैं। साधारणतया यह लोगोंका विश्वास है कि फुंसी, फोड़े, तथा घाव जो कि अच्छे नहीं होते 'खराब खून' की निशानियां हैं और प्रायः यह भी ख्याल करते हैं कि फोड़े शरीरके लिए लाभदायक हैं। यह विचार ठीक नहीं। जब मवाद उत्पादक जीवाणु शरीरमें बढ़ना शुरू करते हैं तो इसके यह मआनी हैं कि खून जीवाणुओंके नाश करनेमें असमर्थ है, न कि यह कि खूनमें किसी प्रकारकी गन्दगी व अशुद्धता है।

मवाद उत्पादक जीवाणुओंका शरीरके कोषोंको परास्त कर नाश करना तथा तमाम शरीरको अपने विष (Toxin) से विषैला बनाना उतना ही लाभदायक है जितना कि आन्त्रिक ज्वर (typhoid) वा फेफड़ेके प्रदाह (pneumonia) वा उपझिल्लीके प्रदाह (diptheria) के जीवाणुओंका शरीरपर आक्रमण लाभदायक हो सकता है।

जिस मनुष्यको ऐसे फुंसी फोड़े हों, जो अच्छे न होते हों, उनको चाहिये कि वे अपने रहन सहनकी अच्छी तरह देख भाल करें और यह पता लगानेकी चेष्टा करें कि उनका शरीर इतना निर्बल क्यों है कि जीवाणु उनके कोषोंमें अपना घर बनाये हुए हैं।

व्यायाम, अभ्यास और आहार

[ले०—अध्या० गोपालनारायणसेन सिंह, बी. ए.]

साधारणतः यह कहना कि बिना पोषक द्रव्योंके खाये व्यायाम नहीं हो सकता और यदि हुआ भी तो उससे कोई लाभ नहीं है, बहुत यथार्थ है। परन्तु लोग "पुष्ट" पदार्थ किसे कहते हैं, इसकी खोज की जाय तो अनेक प्रकारकी ऊटपटांग बातें सुननेमें आयेंगी। निश्चय यह है कि इस विषयमें अभी तक हमारे नवयुवक केवल सुनी सुनायी बातों और अपनी कल्पित धारणाओंके आश्रय काम करते आते हैं जिससे बहुधा उन्हें कितनी ही असुविधा और निराशाका सामना करना पड़ता है।

कुछ तो अब भी पुराने ढंगके ऐसे उस्ताद मिलते हैं, जो व्यायामकी मात्रा बढ़ाते समय या बल और पौरुषकी परीक्षाके दिन अपने शागिर्दोंको बढ़ बढ़ कर दूध जलेबी या दूध चने खानेसे ही बाज़ी मार लेनेकी आशा दिलाते हैं। उनकी दृष्टिमें जो एक साथ ५ सेर दूध और आध सेर चने नहीं खाता "पट्ठा" नहीं! वह क्या अखाड़ेमें उतरेगा!

---

* 'शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम' नामक ग्रन्थका एक अंश। Hygiene स्वास्थ्यरक्षा]

यह कहना न पड़ेगा कि जीवन-निर्वाहके लिए भी एक ऐसा आहार-द्रव्य ग्रहण करना, जिससे एक अंग विशेषपर बहुत ज़ोर पहुंचता हो, युक्ति संगत नहीं है, जैसे अधिक परिमाणमें चने खानेसे आमाशयमें बहुत तनाव आता है, इसीलिए ऐसे अन्न खानेवाले जानवरोंके, जैसे बैल, घोड़ोंके वृहत्काय पेट निकले रहते हैं। उसी तरह अधिक मात्रामें तरल द्रव्य जैसे दूध, मट्ठा इत्यादि खानेसे मूत्राशयपर (Kidneys) बल बड़ता है । फिर उन युवकोंके लिए जिन्होंने ५,७ माल दौड़ने, ३,४ गज़ कूदनेफांदने, गेंद फेंकने, बोझ उठाने इत्यादिके खेलोंमें नाम लिखवाया हो यह भोजन कहां तक उपयुक्त होगा, सहजमें अनुमान किया जा सकता है। इसपर विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं।

हां,आमिषाहारके नये खप्ती (Faddist दलको कुछ जवाब देनेकी ज़रूरत है। वह कहते हैं, बेधड़क मांस भक्षते जाओ। थोड़ी मिक़दारमें अधिक पुष्टि मिलेगी। शेर बबरकी झपट, भेड़ियेकी तेज़ी और बिल्लियोंकी फुर्ती दिखला सकोगे। इसमें कुछ तथ्य भी है। सहसा दो चार मिनटोंके बल प्रयोगसे ही यदि काम बनाना हो तो मांस खाकर पलनेवाले बना लेजायँगे। पर जहांपर थम कर ज़ोर लगाना है वहां पर वह चित हो जायंगे। उधर वानस्पतिक द्रव्य अर्थात् अन्न, ताज़ा फल, सूखे मेवे और उसके साथ थोड़ा बहुत दूध,घी,शकर इत्यादि खानेवाला दम साधकर ऐसा जुटेगा कि सबके आगे निकल जायगा।

बात यह है कि लाग-डांट वा बाज़ीके खेलके लिए जो तैयारी करनी पड़ती है, उसमें शरीरको स्थूल वा दृढ़ बनानेके बदले उसे और हलका और लचीला बनाना होता है। इतना ज़रूर है कि इसमें कुछ मांसाहार सहायक होता है। अर्थात् इसके खानेसे शरीरमें बल तो आता है पर बदनपर कहीं बेकार चरबी इकट्ठा नहीं होने पाती। परन्तु बुराई यह है कि इसके खानेमें आवश्यकतासे अधिक गरमी आ जाती है। मांसका सबसे बड़ा गुण यह है कि उसके द्वारा जो "प्रोटीड" प्राप्त होता है वह शीघ्र हज़म हो जाता है, इसलिए जब शरीरको बलिष्ठ वा मोटा करना होता था तो मांसका सेवन करते थे। अब चिटनडेन (Chitenden) इत्यादि शरीर-वैज्ञानिकोंने अनेक प्रयोगोंके द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि कसरती आदमियोंको अधिक प्रोटीडमय भोजन खिलाना व्यर्थ है। प्रत्युत् उनके आहारमें "प्रोटीड" कम कर देनेसे पेट और आंतोंका काम हलका हो जाता है, जिससे कसरती जवानोंका बल प्रत्यक्ष रूप बढ़ता देखा गया है। उन्होंने पहलेसे अधिक "सामर्थ" और ओज अनुभव किया है।

यह फल कसरतियोंको नीचे लिखे भोज्य पदार्थके व्यवहारसे देखनेमें आया है।

प्रातः—बे छने आटेकी रोटी, भुने आलू, गेहूं, जौ वा मक्केका दलिया, दूधमें पकी फ़ीरीनी, केला, नाशपाती इत्यादि मौसमी फल, बालाई, शकर।

तीसरे पहरः—रोटी, मक्खन, आलू, टोमाटो बैंगन, उबाला पियाज़, पकाया सेब।

शामका खाना—रोटी मसूरकी दाल, शोरवेदार आलू,मटरकी फली, और मौसमी तरकारियां।

इस भोजन-क्रम को पहलवानोंके भोजन-क्रमसे तुलना करनेपर बहुत बड़ा अन्तर प्रतीत होगा। कितने ही कहेंगे कि इससे किसी मर्दको तृप्ति भी न होगी, पर इस भोजनमें साधारण मनुष्योंको जो दोष मालूम पड़ता है वही इसकी विशेषता है। इससे बढ़कर हलका और प्रयोजन भर पुष्टिदायक दूसरा भोजन दुर्लभ है। इसमें प्रोटीड, मण्डादि कर्बोज और स्नेह उचित अंशमें मिले हैं। दिन रातमें ३ बार सादा, हलका शीघ्र पचने योग्य भोजन यदि शनैः शनैः चबाकर खाया जाय तो मनोवांछित बल प्राप्त हो सकता है। ऋतुके अनुसार शर्बत वा ठंडाई भी पी जा सकती है, परन्तु प्यास बुझानेके लिए स्वच्छ जल सबसे उत्कृष्ट है।

गरमीके दिनोंको छोड़कर और किसी मौसिम-

में आहार सम्बन्धी अधिक फेर फार करनेकी ज़रूरत नहीं है। उन दिनों में घी मक्खन कुछ कम कर देना और उनके स्थानमें छाछ, खान्ड, चावलकी खीर, फीरनी इत्यादि बढ़ा देना अच्छा है। शकरसे हमारे पेशियोंमें बड़ा ज़ोर आता है। इसलिए कठिन शारीरिक परिश्रम वा बल प्रयोगके अवसरपर किसी न किसी रूपमें इसे अवश्य लेना चाहिये। अच्छी बात तो यह हो कि पिन-खजूर, छुहारा, अंगूर, किशमिश इत्यादि सूखे या ताज़ा फलोंकी शकरसे काम लिया जाय। मिश्र, ईरान, दक्षिण अफ्रीकामें जी तोड़ मिहनत करनेवाले श्रमजीवी इसका महत्व खूब समझते हैं।

समालोचना

रास पंचाध्यायी और भ्रमरगीत—भूमिका और टिप्पणीके लेखक श्री० ब्रजमोहनलाल, विशारद। प्रकाशक श्री० परीक्षितसिंह, प्रबन्धक, काव्यकुसमाञ्जलि कार्यालय, लालाका बाज़ार मेरठ। पृष्ठ संख्या ७८, मूल्य ॥=)

नन्ददासजीकी रासपंचाध्यायी और भ्रमर गीतका यह एक नये ढंगका अच्छा संस्करण है। भूमिका बड़ी योग्यतासे लिखी गई है। उसमें कविकी रचनाशैली और उक्त काव्योंकी उत्तमतापर आलोचनात्मक दृष्टिसे विचार किया गया है। भूमिकाको पढ़कर मूलकाव्योंके पढ़नेमें कुछ और ही आनन्द आता है। टिप्पणी भी अच्छी की गई है। यदि हिन्दी साहित्य सम्मेलन लेखक जैसे विशारद बनाये तो हिन्दी कवियोंका उद्धार शीघ्र ही हो जायगा।

फिर निराशा क्यों ?—ले० गुलाबराय, एम-ए., एल-एल. बी., प्रकाशक कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, प्रेम, मंदिर आरा। पृष्ठ संख्या ८२। मूल्य ।=)

भारतवर्षमें वैराग्यका उपदेश नगर नगर और गली गलीमें पद पदपर सुननेमें आता है। राजप्रसादमें क्या, ओफिसों और कार्यालयोंमें क्या, रास्ते चलते क्या, जहां जाइये वहां वैराग्य विषयक कुछ न कुछ बातें अवश्य सुन पड़ती हैं। वैराग्य कुछ बुरी चीज़ नहीं, वास्तवमें वह आत्माकी उस अवस्थाका नाम है, जिसमें सारको असारसे, सत्यको असत्यसे और नित्यको अनित्यसे अलग जान, अपने रूप और गौरवका जीवको पूरा ज्ञान होता है। पर भारतमें वैराग्यके उपदेशने मनुष्योंको आलसी, निरुत्साही, असाहसी और निर्बल कर रखा है। वस्तुतः इसीके कारण मनुष्योंका मनुष्यत्व जाता रहा और हम लोगोंकी शारीरिक, आर्थिक और अध्यात्मिक अवनति हो रही है। जब तक प्रत्येक भारतीयका हृदय आत्मगौरवसे पूर्ण न होगा तब-तक देश और जातिका उत्थान कदापि न होगा। 'आत्मगौरवका' उपदेश ही इस पुस्तिकाका मूलमंत्र है।

पुस्तकमें स्टैलकी मौलिकता, शुद्धता, प्रौढ़ता और नवीनता, सभी सराहनीय हैं। पुस्तक अनुपम है और हम लेखक और प्रकाशक दोनों-को बधाई देते हैं कि वे ऐसी पुस्तक द्वारा हज़ारों-का उपकार कर सकेंगे।

बालिका बिनय—एक जैन महिला द्वारासम्पादित और प्रेम मन्दिरसे प्रकाशित पृष्ट संख्या ६४। मूल्य =)

यह २३ भजनोंका पाकेटमें रखने योग्य अच्छा संग्रह है।

सचित्र ऐतिहासिक लेख—ले० श्रीयुत राम कुमार गोयनका। हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, १२६ हरीसन रोड, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ संख्या ६०। मूल्य ।=)। (डवलक्रौन सोलह पेजी सैज़)

इसमें छः अध्याय हैं। चुरुकी बही वाला लेख उपदेश प्रद है। इससे पुराने जमानेके लोगोंकी हिसाबकी रीति आदिका पता चलता है।

लार्ड आकलैण्डको हिन्दीमें एक पत्र राजा रत्नसिंहजी ने लिखा था। उसका वर्णन और चित्र भी दिया है। इससे पता चलता है कि आजकल जैसी हमारी दशा है, वैसी पहले न थी। तब हममें आत्माभिमान था और हमें अपनी मातृ भाषामें पत्रव्यवहार करते लज्जा न आती थी। पुस्तक रोचक है।

—मनोहरलाल।

श्रमोपजीवी समवाय या (Trade Union)—
लेखक बा० राधामोहन गोकुल जी, प्रकाशक कर्मचारी मण्डल कलकत्ता, न० २०१ हरिसन रोड, दाम ≈)॥

इस पुस्तकके अन्तमें एक जगह लिखा है कि कलकत्तेमें साहूकारोंके मुनीम और गुमाश्तोंका एक दल कर्मचारीमण्डलके नामसे मशहूर है, इससे अधिक उसके संगठनके विषयमें विशेष हाल नहीं मालूम। अटकलसे कहा जा सकता है कि मण्डलवालोंने संभवतः एकेके द्वारा स्वत्व रक्षा करनेमें बहुत सफलता पायी है। इसीसे उत्साहित हो वह देशके दूसरे श्रमजीवियोंको भी अपने अधिकारोंका ज्ञान कराना चाहते हैं। उद्देश्य बड़ा ही सराहनीय है, परन्तु उसकी सिद्धिके लिए पुस्तकमें बहुत सरल भाषाका प्रयोग करना तथा एतद्देशीय संघोंका विस्तारपूर्वक परिचय देना उचित था।

खेद है लेखक महाशयने जान बूझकर संस्कृत शब्दोंका व्यवहार किया है। उनका दावा है कि मैंने "आवश्यक समझ कर" ही ऐसा किया है। पता नहीं "समाहृत" "आत्य" "निर्वेश" "नियोजक" "अविविक्त" "विजिगीषा"-ऐसे क्लिष्ट शब्दोंके समझनेवाले मज़दूर और कारीगर भारतवर्षके किस कोनेमें और कितने हैं। मुझे तो भय है कि जिनके उद्धारके लिए लेखकने इतना परिश्रम उठाया है वह उसकी दो चार पंक्ति भी न टटोल सकेंगे। हां, विद्यार्थियोंके दिमागपर ज़ोर पहुंचानेके लिए पुस्तकमें मसाला काफी है और यह परीक्षाओंके लिए पाठ्य ग्रन्थ भी बन सकता है। विषय बिलकुल निराला है, वास्तवमें किसीने इधर लेखनी नहीं मोड़ी। इसलिए मेरी सलाह मानें तो मौलिकताकी खोजमें मंडरानेवाले साहित्य-शकुनि झटपट इसे अपने घोंसलेमें रख छोड़ें। डेढ़ फार्मका मैटर पचीसों प्रूफ़की भूलोंसे जगमगा रहा है, तब तक इतनेसे दिल बहलाइये। यह इबतदा है। लालाजी ढाढ़स बंधाते हैं कि "विचार है और भी लिखूं"।

—गोपालनारायण सेन सिंह,

धन्यवाद

निम्नलिखित उदार हृदय, देशहितैषी और विद्या-प्रिय सज्जनों तथा दानव्रतशीला, देशहित-रता और परोपकारिणी देवियोंने परिषद्को दान दिया है। उसकेलिए हम उन्हें कोटिशः धन्यवाद देते हैं:—

१-श्रीमान राजा सूरज बख्शसिंह जी, कसमावा, सीतापुर	२००)
२-श्रीमान राजा रामेश्वर बख्शसिंह जी, शिवगढ़	२५)
३-श्रीमान बाबू सहदेव बख्शसिंह जी	५०)
४-श्रीमती ठकुरानी साहिबा, धनेवा	१००)
५-श्रीमती ठकुरानी साहिबा, गोरा	१००)
६-माननीय सर राजा रामपालसिंह कुर्री सुदौली राज, रायबरेली	१००)
योग	५७५)

—मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

सूचना

विज्ञान परिषद्प्रयागका पांचवां वार्षिक अधिवेशन, प्रयाग विश्वविद्यालयके उपाधिपत्र वितरणोत्सवके दूसरे दिन—इतवार, तारीख २६ जनवरी, १९१९ को ८ बजे सुबह-सेनेटहालमें होगा। परिषद्के हितैषियोंसे सानुनय प्रार्थना है कि अधिवेशनमें सम्मिलित होकर कृतार्थ करें।

—मंत्री,
विज्ञान परिषद्,
प्रयाग

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला-महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित ।

१-विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२-विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३-मिफताह-उल-फ़नून-अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४-ताप-ले० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५-हरारत [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला-प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६-पशुपक्षियोंका श्रृङ्गार रहस्य-ले० सालिग्राम वर्मा, ... -)

७-केला-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

८-सुवर्णकारी-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९-चुम्बक-ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०-गुरुदेवके साथ यात्रा-ले० बसीस्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी, विशारद, ... ।=)

११-क्षयरोग-ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... -)

१२-दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. -)

१३-शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम-ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. ।)

विज्ञापन छपाईके नियम ।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास ... ... ५)

प्रति पृष्ठ २ कालम ... ... ४)

१ ,, ... २।)

आधा ,, ... १।)

आधे कालमसे कमका ... ... १)

२—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा । जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें ।

३—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी ।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालेको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा ।

५—विज्ञापन बँटाईकी दर क्रोड़पत्र देखकर बतायी जायगी ।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषत्,
प्रयाग ।

हमारे शरीरकी रचना भाग २

छपकर प्रकाशित हो गया !!

स्वास्थ्यरक्षाके नियम जाननेके लिए और संसारमें सुखमय जीवन बितानेके लिए इस पुस्तकका पढ़ना परमावश्यक है ।

देखिये इसकी विषयसूची और स्वयम् विचारिये कि कैसे महत्वके विषय इसमें दिये हैं:—

१-पोषण संस्थान, २-रक्तके कार्य, ३-नाड़ी मण्डल, ४-चक्षु, ५-नासिका, ६-जिह्वा, ७-कर्ण, ८-स्वर यंत्र, ९-नर जननेन्द्रियां, १०-नारी जननेन्द्रियां, ११-गर्भाधान, १२-गर्भ विज्ञान, १३-नवजात शिशु ।

इस भागमें ४५४ पृष्ठ हैं । १३३ चित्र हैं । १९ चित्र हाफ टोन प्लेट हैं । १ रङ्गीन चित्र है ।

मूल्य केवल ३।)—विज्ञानके ग्राहकों और परिषद्के सभ्य और परिसभ्योंको २॥=) में मिलेगी ।

पता—मंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग ।

ललिता

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ नवजात सबसे सरस मासिक पत्रिका

औरोंकी दृष्टिमें

चित्रमय जगत्—पत्रिका सब प्रकारसे उच्च और अपने ढंगकी एक नई वस्तु है।

विश्वमित्र—हम इसे उच्च कोटिकी मानते हैं।

प्रकाश—ललिता वास्तवमें रूप, गुण, माधुर्य तथा लालित्यकी खानि है। ललिता, सोलहों आने शृङ्गारसे है। इस पर भी मूल्य ५) वार्षिक कुछ अधिक नहीं। लेख एक से एक बढ़िया, सार गर्भित, विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरञ्जक हैं।

सद्धर्म प्रचारक—पत्रिकाका स्वरूप कुछ सरस्वतीसे घटिया नहीं दिखाई देता।

धर्माभ्युदय—बहिरंग मनोहर है और हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उसका अन्तरंग भी हृदयग्राही है।

वार्षिक मूल्य ५)   छः मासका मूल्य २॥)   नमूनेकी प्रति ॥)

मेनेजर—ललिता, सेवा सदन मेरठ।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचा कर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥।)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग–दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २–ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३–करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥।). ४–संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५–सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६–कागज़ काम, रद्दीका उपयोग-).७–केला—मूल्य -). ८–सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९–खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य विज्ञान परिषद्-प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबादमें सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ४६ Reg. No. A-708

भाग ८ मकर १९७५ । जनवरी १९१९ संख्या ४

Vol. VIII. No. 4

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक-गोपालस्वरूप भार्गव

विषय-सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [एक प्रतिका मूल्य ।)

गंगा-पुस्तकमाला

का हिंदी-जगत् खूब स्वागत कर रहा है, क्योंकि इसके ग्रंथ सुयोग्य लेखकोंके लिखे हुए, टाइप, काग़ज़, छपाई, सफ़ाई सभी बातोंमें दर्शनीय एवं सुंदर, मनोभिराम जिल्द और चित्रोंसे विभूषित होते हैं। आइये, ॥) प्रवेश शुल्क भेजकर इसके स्थायी ग्राहक हो जाइये और १५) सैकड़ा कमीशन पर इसके सब ग्रंथ प्राप्त कीजिये।

इसमें यह ग्रंथ निकल चुके हैं—

१. हृदयतरंग-नव्य साहित्य सेवी पंडित दुलारेलालजी भार्गव रचित। मूल्य सजिल्द ।=)॥ सादी ।)

२. किशोरावस्था—हिंदीके सुयोग्य लेखक श्रीयुत गोपालनारायणजी सेन सिंह, बी० ए० लिखित। मूल्य सजिल्द ॥≡) ; सादी ॥)

३. खांजहां। मूल्य सजिल्द १=) ; सादी ॥।=)

यह ग्रंथ शीघ्र ही प्रकाशित होंगे—

४. गृहप्रबंध-प्रो० रामदासजी गौड़, एम०ए०

५. द्रौपदी (जीवन-चरित)—पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

६. भूकंप (अपने ढंगका पहला ग्रंथ)—बा० रामचद्र वर्मा

७. मूर्ख-मंडली (प्रहसन)—पं० रूपनारायण पांडेय

८. गृह-शिल्प—बा० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए०

स्फुट ग्रंथ

सुख तथा सफलता—श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव, बी० ए०। इस पुस्तक को सुख तथा सफलता प्राप्त करने का साधन समझिये। मूल्य सजिल्द ।-) ; सादी =)

सुघड़ चमेली—लेखक, तफ़रीह आदि पत्रोंके भूतपूर्व संपादक पंडित रामजीदास भार्गव। मूल्य =) मात्र

भगिनीभूषण—बा० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए० लिखित। मूल्य =)

पत्रांजलि—मूल्य ।=)

पत्र व्यवहार करने का पता है—

श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव बी० ए०
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

बहुमूत्रनाशक

बहुमूत्र जैसा बुरा रोग है इसे बतलानेकी ज़रूरत नहीं। मधुमेह आदि रोग उत्पन्न होकर पिलब दिमाग़की कमजोरी, सिरमें चक्कर आना, पिंडली, पीठ आदिमें दर्द, शरीरकी निर्बलता आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। हमारी, औषधिके सेवनसे यह सब शिकायतें शीघ्र ही दूर हो जाती हैं। बहुत पुराने पुराने रोगी आराम पा चुके हैं, जिसके प्रशंसा पत्र हमारे पास हैं। एककी नकल नीचे लिखते हैं। एक बार मंगाकर परीक्षा अवश्य कीजिये। मूल्य

२१ खुराकका २)

मंगानेका पता—

मैनेजर, रसशाला
कंखल (जि० सहारनपुर)

नकलसर्टिफिकेट

वैद्यराज जनाब पं० रामचन्द्रजी साहब

जो दवा आपने मुझको दर बारे शिकायत ज्यादा पेशाब आनेके दी थी जिसकी वजहसे रातको एक घंटे तक मुतवातिर सो नहीं सकता था और यह शिकायत मुझको अरसे चार सालसे थी और कमज़ोर भी बहुत हो गया था। आपकी दवाके एक हफ़्ता इस्तैमालसे सब शिकायत जाती रही और अब मैं बिलकुल तन्दुरुस्त हूं। लिहाज़ा यह ख़त आपको शुक्रियेके तौरसे लिखता हूं।

टीकम सहाय असिस्टैंट
२६-१२-१८ स्टेशन मास्टर
हरिद्वार

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०।३।५।

भाग ८ } मकर, संवत् १९७५। जनवरी, सन् १९१९। { संख्या ४

मंगलाचरण

भारत-गीत नं० ४८

प्रकृति वन्दना (संस्कृत-संगत हिन्दी)

(१)

अहे त्रिजग-वन्दिते त्रिजग-सत्व-संभाविते
त्रिशक्ति-घन-गुम्फिते त्रिगुण-तंत्र-अंतर्हिते
त्रिवृत्ति-वर-कंदरे त्रिजग-मातृके इन्दिरे
अबन्ध्य-विधि-बन्धुरे भुवन-मंडने त्वां भजे

(२)

अहे त्रिजग-शासिनी त्रिजग-धाम-आवसिनी
त्रिक-क्रम-विकासिनी त्रितय-वर्ग-विन्यासिनी
भव-भ्रुकुटि-लासिनी समभितःसमुद्भासिनी
मदन्तर-विलासिनी मसृण-हासिनि, त्वां वृणे

(३)

अहे त्रिजग-सुन्दरी त्रिजग-विस्फुरन्माधुरी
जग-त्रिक-पुरन्दरी त्रिजग-चक्र-धुर्यन्धरी
त्रि-विभ्रम-चमत्कृते कृति-चय-प्रपंचाकृते
सतां हृदि समादृते प्रकृति हे प्रियेत्वां स्तुवे

श्रीपद्म-कोट
प्रयाग, २४-१२-१९१८ }

—श्रीधर पाठक

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य

[ले० – श्रीसत्यभक्त जी]

आधुनिक संसारमें सबसे महत्वपूर्ण समझी जानेवाली वस्तु विज्ञान है। आजकल जगतमें जितनी विद्याएँ, कलाएँ प्रचलित हैं, उन सबकी अपेक्षा विज्ञानका आसन ऊंचा है। वर्तमान समयमें विश्वमें जितनी शक्तियां पाई जाती हैं, उन सबसे विज्ञानकी शक्ति अधिक है। इस समय बिना विज्ञानके कोई देश या जाति सभ्य नहीं समझी जाती, न उसकी कहीं पूछ होती है। जिधर देखो विज्ञानका राज्य जमा हुआ है। इसीके बलसे आज ज़रा ज़रासे देश संसारको भयभीत कर रहे हैं, और बड़ी बड़ी जातियां उनके सम्मुख अवनत हैं। विज्ञानने पृथ्वीको जो किसी समय असीम अनन्त समझी जाती थी रेल, तार, जहाज़ द्वारा एक छोटे-से देशके समान बना दिया है। जल, स्थल, वायु आदिमें सर्वत्र विज्ञानका झंडा उड़ रहा है। इसकी सहायतासे आज मनुष्य समुद्रके भीतर चलते हैं और हवामें उड़ते हैं। बिना विज्ञानके अब किसीकी क्षणभर गुज़र नहीं। यदि आजकल संसारमें अस्तित्व रखनेकी इच्छा हो तो विज्ञानका आश्रय लेना अनिवार्य है। अब अत्यन्त साधारण कार्यसे लेकर बड़ेसे बड़े कार्य तकमें विज्ञानकी सहायता लेनी आवश्यक होती है। इस दृष्टिसे इस समयका नाम विज्ञान-युग रखना सर्वथा उचित है। जिस प्रकार एक समय शारीरिक शक्तिका प्राधान्य था, दूसरे समय अध्यात्मिक शक्ति सर्वोपरि समझी जाती थी, उसी प्रकार आजकल विज्ञानकी शक्ति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

इसी विज्ञानहीनताके कारण आजकल यूरोपियनों द्वारा भारतवर्ष एक असभ्य अत्यन्त पिछड़ा हुआ देश माना जाता है। क्योंकि इस देशमें विज्ञानका प्रचार बहुत ही कम है। और जो है भी वह ऐसा है जिससे विशेष लाभ नहीं उठाया जा सकता। यहांकी शिक्षा प्रणालीके दोषोंके कारण मनुष्य सच्चे विज्ञानसे प्रायः वञ्चित रहते हैं। केवल कुछ लोग इस विषयकी ऊपरी बातोंको सीख लेते हैं। और ऐसे भाग्यवान दो चार ही निकलते हैं जो अपनी प्रतिभा, बुद्धिबलसे इस विषयमें थोड़ी बहुत वास्तविक योग्यता प्राप्त करते हैं। इसीलिए हमारा देश अन्य देशोंसे व्यापार, वाणिज्य, कलाकौशल आदि सब बातोंमें पिछड़ा हुआ है। अब यह भली भांति विदित हो चुका है कि वैज्ञानिक शिक्षाकी उन्नति किये बिना हमारे देशके उद्योग धन्धों, धन सम्पत्ति तथा और बहुत सी बातोंकी वृद्धि भली प्रकार कभी नहीं हो सकती है।

इस देशमें वैज्ञानिक शिक्षाकी कमीका एक कारण तो, जैसा ऊपर लिखा है, शिक्षा प्रणालीकी दूषकता है। और दूसरा इससे भी बड़ा कारण यह है कि इस देशकी भाषाओंमें यथेष्ट वैज्ञानिक साहित्य नहीं। हिन्दी, बंगाली, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू आदि चाहे जिस भाषाको देखिये किसीमें दस बीससे अधिक वैज्ञानिक पुस्तकें नहीं मिलेगी, और वे भी बालकोपयोगी'। जबकि अंगरेजी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि भाषाओंमें विज्ञान विषयक पुस्तकें दसदस पांच पांच हज़ारकी संख्यामें मिल सकती हैं। मातृभाषामें शिक्षा ग्रहण करनेकी महिमा सबको विदित है। जापानकी अनुपम उन्नतिका कारण मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना ही है। वहांके कर्मवीरोंने चेष्टा करके सब प्रकारकी पुस्तकें जापानी भाषामें सुलभ कर दीं और उनको पढ़कर अब जापानी बहुत शीघ्र ज्ञान, विज्ञानमें कुशल बन जाते हैं। इसीके प्रभावके बल चालीस पचास वर्षमें इतनी अधिक उन्नति कर सका है, जिससे अब उसकी गणना संसारकी प्रधान महाशक्तियोंमें की जाती है और कोई उसके विरुद्धाचरण करनेका साहस नहीं कर सकता। वास्तवमें जिस विषयको हम अंगरेज़ी या किसी अन्य विदेशी भाषा द्वारा शिक्षकके पास रहकर सालभरमें कठिनतासे सीख सकते हैं,

वही विषय मातृभाषा द्वारा तीन मासमें सुगमता पूर्वक सीखा जासकता है और यदि सीखनेवाला चतुर, प्रतिभाशाली हो तो उसे शिक्षककी भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती। पर यह सब होने-पर भी यहांके विद्वानोंने देशीभाषाओंमें वैज्ञानिक पुस्तकें लिखने अथवा अनुवाद करनेकी ओर बहुत कम ध्यान दिया है। यह अवस्था वास्तवमें बहुत असंतोषजनक है।

हिन्दीके वर्तमान वैज्ञानिक साहित्यकी जब हम खोज करने बैठते हैं, तो उसकी अल्पता देख कर बड़ा खेद होता है। न मालूम क्यों इतनी कहानी, किस्से, उपन्यास, नाटक, गाने बजाने आदि की, इधर उधरकी, पुस्तकें लिखनेवाले वि-द्वानोंसे थोड़ी बहुत वैज्ञानिक पुस्तकोंका अनु-वाद भी नहीं किया जाता है, अथवा लोग इस विषयके महत्वसे अनजान हैं। हिन्दीकी पुरानी पुस्तकोंमें केवल जीवविज्ञान विटप, वायुविज्ञान विटप आदि दो तीन छोटी छोटी विज्ञान विषयक पुस्तकें मिलती हैं। सो भी नाम मात्रकी। पीछे आराकी ना० प्र० सभाने 'रसायन शास्त्र' छपाया और गुरुकुल कांगड़ीसे भी रसायन और 'भौतिकीय' नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हुई। बाबू महेशचरणसिंहकी 'कैमिस्ट्री' 'वन-स्पतिशास्त्र' 'विद्युतशास्त्र' इस विषयमें हिन्दीकी सबसे बड़ी तीन पुस्तकें हैं। अभी काशी ना० प्र० सभा ने 'भौतिकविज्ञान' भी अच्छा निकाला है। प्रयागकी 'विज्ञानपरिषद्' का तो जन्म ही इसी उद्देश्यसे हुआ है और उसने अब तक दस बारह वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। बस, यही हिन्दी-की समस्त वैज्ञानिक पूंजी है। नहीं मालूम इसके द्वारा हम लोग दूसरे देशोंके साथ स्पर्धा और उनके समान सफलता-लाभ कर सकेंगे या नहीं। हिन्दीमें वैज्ञानिक पुस्तकोंकी यह कमी बड़ी खटकनेवाली है। जो विज्ञान सम्पूर्ण विद्याओंमें श्रेष्ठ है, सबकी अपेक्षा उपयोगी है, देशोन्नतिका प्रधान आधार है, कलाकौशलकी वृद्धिका द्वार है, वाणिज्य व्यापारका प्रसार जिसके बिना लाचार है, जो समस्तज्ञानका सार है, जिसकी महिमा अपार है, उसकी ओरसे ऐसी उदासीनता रखना किसी प्रकार अच्छा बुद्धिमानीका कार्य नहीं कहा जासकता। भारतकी राष्ट्रभाषा कह-लानेवाली हिन्दीमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी यह न्यूनता बड़ी बुरी जान पड़ती है। इसका शीघ्र प्रतीकार करना इसके हितैषियोंका प्रथम कर्तव्य है।

अब आवश्यकता है कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यकी वृद्धिकेलिए शीघ्र ही किसी विशेष प्रकारका प्रबन्ध किया जाय। इस प्रकार एक एक दो दो पुस्तकें लिखनेसे काम नहीं चलेगा। जैसे उपन्यास, काव्य आदि विषयोंपर ग्रन्थमालाएँ निकल रही हैं, उसी प्रकार वैज्ञानिक ग्रन्थोंकेलिए एक उत्तम ग्रन्थमाला निकालना आवश्यक है। इस कामके पूरा करनेका सबसे अधिक भार विज्ञान परिषद्पर है। यद्यपि अब भी यह वैज्ञानिक पुस्तकें निकालती है, पर बड़े ढीलेपनके साथ। पांच वर्षके भीतर दस बीस पुस्तकें निकालना, नितान्त अपर्याप्त है। इतने समयमें तो कमसे कम सौ पुस्तकें प्रकाशित हो जानी चाहिये थीं। इसी लिए हमारा कहना है कि विज्ञान परिषद् अथवा कोई अन्य सज्जन इस विषयकी वृद्धिकेलिए पूर्ण चेष्टा करें, जिससे कुछ ही समयमें हिन्दीमें विज्ञान-की सब शाखाओंपर अच्छे ग्रन्थ तैयार हो जायं।

इस समय हिन्दीमें दो प्रकारके वैज्ञानिक ग्रन्थोंकी आवश्यकता है। अभी हमारे देशमें विद्याका प्रचार बहुत कम हुआ है और लोग विज्ञानकी महिमा तथा उपयोगिताको पूर्ण रीतिसे नहीं समझते। अतएव जिस प्रकार रसायन भौतिकीय, जीवविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, यंत्रकला आदि वैज्ञानिक विषयोंपर बड़ी बड़ी और पूर्ण विवरणयुक्त पुस्तकें लिखी जायँ, उसी प्रकार साथमें छोटी छोटी मनोरंजक पुस्तकें भी, जिनमें वैज्ञानिक सिद्धान्तों और उनके महत्वको सरल भाषामें सुगमता पूर्वक समझाया जाय, प्रकाशित

करना आवश्यक है। यह पुस्तकें कहानी किस्से, वार्तालाप आदिके रूपमें भी लिखी जा सकती हैं। इस उपायसे यहां कुछ कालमें विज्ञानकी थोड़ी बहुत उन्नति हो जाना सम्भव है।

अन्तमें फिर हम यही कहना चाहते हैं कि आजकल संसारमें विज्ञानका राज्य है। इसके बिना उन्नतिकी आशा भ्रममात्र है। हमारे कहनेका आशय यह नहीं कि यहांके लोग केवल इस जड़ विज्ञानमें ही फंसे रहें और यूरोपवालोंके समान एक मात्र इसीके उपासक बन जायं। वरन आवश्यक यह है कि विज्ञान सीखकर उसका सम्यक् प्रयोग किया जाय। उसके द्वारा हम संसारकी दूसरी जातियोंसे अपनी रक्षा करें। वर्तमान समयमें विज्ञान-युक्त जातियोंके साथ हमारा स्पर्द्धा करना ऐसा है, जैसे निहत्थे पुरुषका तलवार बंदूकसे सुसज्जित मनुष्यका सामना करना। यदि हम विज्ञानमें उन्नति न करेंगे, अपनी भाषा द्वारा उसकी शिक्षा फैलानेका प्रयत्न न करेंगे, तो विदेशी लोग इसी प्रकार हमारे देशका कच्चा माल ले जाकर तथा उसके बदलेमें नाना प्रकारकी बनी हुई वस्तुएँ भेजकर हमारे धनको हरण करते रहेंगे। हज़ार 'स्वदेशी' 'स्वदेशी' चिल्लाते रहनेपर भी भारतीय कलाकौशलकी वृद्धि न होगी। और न हम दूसरी बातोंमें अन्य जातियोंका सफलतापूर्वक सामना कर सकेंगे। अतएव यदि हम आधुनिक संसारमें सुख पूर्वक रहना चाहते हैं, संसारकी जातियों द्वारा सम्मानकी दृष्टिसे देखे जानेके अभिलाषी हैं, यदि हमारी इच्छा है कि यह देश अधोगतिसे निकल कर उन्नत बने और संसारके बीच प्रतिष्ठित स्थानको प्राप्त करे; इसके वैभवकी वृद्धि हो, तथा विदेशी लोग इसे व्यापारके रूपमें न लूट सकें, यहांके नरनारी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें और सब प्रकारके रोग, शोक आपत्ति दुर्भाग्य, दुर्दशाका अंत हो जाय, तो उसके लिए विज्ञान विषयक उन्नति करना अनिवार्य है। और इस उद्देश्यको पूर्ण करनेके लिए हिन्दीमें सब प्रकारके वैज्ञानिक ग्रन्थ रचकर, उनका प्रचार करना आवश्यक है।

कागज़

[ले०—प्रो० राधाकृष्ण झा, एम. ए.]

कहा जाता है कि मुसलमान शासकोंने ही पहले पहल भारतवर्षमें कागज़का प्रचार किया। उन्होंने भी चीनियोंसे इसका व्यवहार सीखा था। पुराने समयमें हिन्दुस्तानमें ताड़के पत्तों और भोजपत्रोंपर लिखनेकी चाल थी। आजकल भी दक्षिणमें पुरानी चालके ब्राह्मण पण्डित ताड़के पत्तोंपर संस्कृतके पवित्रग्रन्थोंको लिखते हैं। अब भी बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मद्रास प्रान्तोंमें ताड़के पत्तोंपर हाथकी लिखी संस्कृतकी पोथियां मिलती हैं। दुआ, तावीज़, जन्मपत्र लिखनेकेलिए अबतक भोजपत्र तथा ताल पत्रका व्यवहार होता है। नेपाल और काश्मीरमें मुसलमानोंके समयसे भी पुरानी, हाथकी लिखी, कागज़की पोथियां पाई गई हैं। सम्भव है, वहां चीनसे कागज़ बनानेकी विद्या आई हो।

जो हो, मुसलमानी अमलदारीमें हाथसे कागज़ बनानेका रोज़गार बड़ी उन्नतिपर था। आजकल भी जगह जगहपर मुसलमान कागज़ी मिलते हैं। यद्यपि उनके बनाये कागज़ मोटे और भद्दे होते हैं, तथापि उनमें एक गुण अवश्य है, जो आजकलके सस्ते विलायती कागज़में नहीं होता। आजकलके कागज़ थोड़े ही दिनोंमें ख़राब हो जाते हैं, उनके रंग बदल जाते हैं, तथा उनको कीड़ोंसे बचाये रखना असम्भव नहीं तो मुश्किल तो ज़रूर है। बड़ी बड़ी लाइब्रेरियां इन कीड़ोंके मारे परेशान हैं। परन्तु देशी कागज़ोंमें यह गुण है कि उनमें झींगर, कीड़े जल्द नहीं लगते और पुराने होनेपर शीघ्र टूटते नहीं हैं। यद्यपि यहां कागज़

Economics अर्थशास्त्र]

बनानेकी कला सैकड़ों वर्षोंसे चली आती है, पर बड़े बड़े कलोंसे चलनेवाले कागज़के कारख़ाने बिल्कुल हालके हैं। थोड़े दिनोंसे ही विलायती ढंगपर, कागज़ बनानेकी मिलें खुली हैं।

कागज़की देशी मिलें

कोई पचास वर्षसे कागज़की मिलें खुली हुई हैं, इससे इनका व्यवसाय प्रायः दृढ़ सा हो गया है। सबसे बड़ी मिलें 'टीटागढ़ पेपरमिल कम्पनी' की हैं। इसकी एक मिल टीटागढ़में और दूसरी कनकिनारेमें (दोनों कलकत्तेके पास ही हैं) चलती हैं। यह दोनों मिलकर हरसाल १५ हज़ार टन कागज़ तैयार करती हैं। इनके बाद रानीगंजमें 'बंगाल पेपरमिल कम्पनी' की मिल है, जहां हर साल ६७०० टन माल तैयार होता है। तीसरी मिल लखनऊकी है, जहां २५०० टन कागज़ बनता है। बम्बई हातेमें पूनाकी मिल बड़ी है, जहां एक हज़ार टन माल तैयार होता है। देशी रजवाड़ोंमें ग्वालियर और ट्रावंकोरमें एक एक मिल है।

लड़ाईके पहले देशी मिलोंमें सब मिलाकर प्रायः २५ या २७ हज़ार टन कागज़ तैय्यार होता था और ५० हज़ार टनसे भी अधिक कागज़ और दफ़्ती (Paper and Paste board) बाहरसे मंगायी जाती थी। लड़ाईके कारण बाहरसे माल कम आने लगा तथा उसपर ख़र्च भी अधिक पड़ने लगा। इन कारणोंसे देशी मिलोंको उन्नति करनेका बहुत बड़ा अवसर मिला, क्योंकि देशी विदेशी दोनों प्रकारके मालका दाम चढ़ गया। बाहरकी प्रतियोगिता न रहनेसे मिलोंने अधिक माल बनाया और बेचा। जहां लड़ाईके पहले इन मिलोंमें कुल २५, २७ हज़ार टन माल तैयार होता था तहां सं० १६-१७में ३१ हज़ार टनसे भी अधिक माल तैयार हुआ। नीचे दिये गये विवरणसे देशी मिलोंका हाल मालूम होगा।

देशी पेपर मिल

	१९१३	१९१४	१९१५	१९१७
मिलोंकी संख्या	९	१०	११	×
पूंजी (लाख रु०)	५४	५१½	४९½	×
काम करने वाले (प्रतिदिन)	४५९७	४५६२	४६६५	×
तैयार माल (टन)	२७०००	२८७००	३०३६१	३१९००
मूल्य (लाख रु०)	८०	८२	९०	×

विदेशी कागज़की आमदनी

देशी पेपर मिलोंमें जितना माल तैयार होता है उससे दूना माल बाहरसे आता है। हम लोग बहुत सा कागज़, दफ़्ती, लिफ़ाफ़े और चिट्ठीके कागज़ विदेशसे मंगाया करते हैं। लिफ़ाफ़े और चिट्ठीके बढ़िया कागज़ देशी मिलोंमें नहीं बनते। अतएव इनके लिए बाहर जाना आवश्यक ही है। परन्तु जर्मनी, स्वीडन, नारवे और आस्ट्रियावाले लिखने तथा छापनेका कागज़ इतना सस्ता और बढ़िया तैयार करते हैं कि उनकी प्रतियोगितामें देशी मिलें ठहर नहीं सकतीं। लड़ाईके पहले देशी बादामी (बालीकागज़) कागज़ ही बाज़ारोंमें अधिक नज़र आता था। लड़ाईके पहले यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन, नारवेके व्यापारी छापेका कागज़ भेजते थे तथा चिट्ठीका कागज़ स्वीडन, नारवे और यूनाइटेड किंगडमसे आता था। परन्तु अब शत्रुदेशोंसे कागज़का आना बिल्कुल बन्द है; उनकी जगह स्वीडन नारवे, जापान और अमेरिका (संयुक्तराज्य) ने ली है। विशेषकर पिछले दो देशोंने तो लड़ाईसे बहुत ही लाभ उठाया है। अब सीधे स्वीडन नारवेसे जहाज़ोंके आने जानेका प्रबन्ध हो गया है, इस कारण वहांसे अधिक माल आने लगा है। उसी तरह जापानियोंने भी अपनी जहाज़ी कम्पनियोंकी सहायतासे अधिक माल भेजना शुरू किया है। जापान अपनी ज़रूरतसे अधिक माल तैयार करता है और बचे बचाये कागज़को अनायास ही भारतके बाज़ारोंमें पहुंचा देता है। शत्रुओंके स्थानको अन्य देशोंने किस प्रकार ले लिया है, उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

कहांसे कितना काग़ज़ और दफ़्ती आती है ?

देश	१९०८-१० से १३-१४ तक ५ वर्षोंका औसत (फी सैकड़ा)	१९१५—१६ (फी सैकड़ा)	१९१६—१७ (फी सैकड़ा)
यूनाइटेड किंगडम	५७·८	५८·४	४७·५
नारवे	३·५	१७·३	१८·४
जापान	·४	२·६	१२·७
अमेरिका (संयुक्त राज्य)	·७	२·३	६·२
स्वीडन	३·१	१२·२	८·३
जर्मनी	१७·२	·७	·१
आस्ट्रिया	८·६	...	...
अन्य देश	८·७	६·२	३·८
योग	१००	१००	१००

इस लड़ाईका यह परिणाम हुआ है कि नारवेने ६ गुना जापान ने ३० गुना और अमेरिका ने १२ गुना अधिक माल भेजना शुरू किया है। हर साल कितनेके काग़ज़, लिफ़ाफ़े, दफ़्ती वग़ैरह विदेशसे आते हैं उनका विवरण नीचे दिया गया है:—

विदेशी काग़ज़, लिफ़ाफ़े आदिकी आमदनी

सन्	काग़ज़, दफ़्ती		चिट्ठी लिखनेके काग़ज़	
	ग़ैर सरकारी खरीद	सरकारी खरीद	ग़ैर सरकारी खरीद	सरकारी खरीद
	लाख रुपये	लाख रुपये	लाख रुपये	लाख रुपये
१९०५-६	७०	४	३८	४
१९१०-११	११३	६	५३	५
१९१३-१४	१५६	८	७०	२०
१९१५-१६	१४४	६	५७	१६
१९१६-१७	२३३	७	७७·५	३१·२

काग़ज़के व्यवसायका भविष्य

ऊपर लिखा गया है कि देशी मिलोंमें जितना माल तैयार होता है उससे दूना माल बाहरसे आता है। फिर देशी मिलोंमें जितना माल तैयार होता है उसका भी बहुत सा हिस्सा विलायती सामग्रीके सहारे ही बनता है। १९१६—१७ में भी यद्यपि लड़ाई चल रही थी, हम लोगोंने ८५०० टन सामग्री मंगायी, जिससे कि देशी पेपर मिलोंने काग़ज़ तैयार किया। इनमें अधिक भाग (६६३० टन) लकड़ी या घासकी मुलायम लुगदी (Paper-Pulp) का था कि जो नारवे स्वीडन और जापानसे आयी थी। १९१३—१४ में इसका ड्योढ़ा माल (१३२५० टन पल्प) बाहरसे मंगाया गया था। इस 'पल्प' के अलावा काग़ज़ तैयार करने तथा साफ़ करनेके अन्य मसाले भी विदेशसे मंगाने पड़ते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि यद्यपि लड़ाईके पहले देशी मिलें ज़ाहिरा २५—२६ हज़ार टन माल तैयार करती थीं, पर असलमें केवल आधा ही देशी माल था। हर्षकी बात है कि लड़ाईके ज़मानेमें इन मिलोंमें अधिक काग़ज़ भी बनने लगा है तथा बाहरसे 'पल्प' भी कम आने लगा है। ज्यों ज्यों अधिक 'पल्प' बनानेका प्रबन्ध होता जायगा त्यों त्यों देशी व्यवसायकी तरक्की होती जायगी।

यूरोप, अमेरिकामें काग़ज़का व्यवसाय दो भागोंमें बंटा हुआ है। कुछ कारख़ाने तो लकड़ी और घाससे 'पल्प' तैयार करते हैं और कुछ कारख़ाने इस 'पल्प'से रंग बिरंगे काग़ज़ बनाते हैं। 'पल्प'का उपयोग काग़ज़के अलावा अन्य कामोंमें भी होता है, जैसे कचकड़े (सेलुलोस), कृत्रिम रेशम, कृत्रिम काठ इत्यादिक बनानेमें। पर भारतवर्षमें यह दोनों काम एक ही कारख़ानेमें होते हैं। पेपरमिलोंमें ही पल्प भी बनता है। कारण यह है कि आज तक यहां घास या काठसे 'पल्प' तैयार करनेका कोई कारख़ाना नहीं है। आजकल यहां पेपर मिलोंमें सावई, भबर, मूंज नामक घासोंसे पल्प बनता है। यह घास बंगाल, बिहार, छोटा नागपुर,

उड़ीसा, नेपाल और संयुक्तप्रांतमें बोई या जंगलमें पायी जाती हैं। इनके अलावा चिथड़े, ख़राब सन, जूट, पुराने बोरे, रस्सी, काग़ज़से भी पल्प तैयार होता है।

आजकल दुनियामें जितना पल्प तैयार होता है उसका सैकड़ा पीछे ६० लकड़ीसे और शेष घाससे बनाया जाता है। काग़ज़के अलावा कचकड़े, कृत्रिम रेशम और काठके लिए इसकी मांग होती है। आगे चलकर न मालूम और भी कितने पदार्थ इस पल्पके सहारे बनने लगेंगे। पर इतना तो स्पष्ट है कि काग़ज़का व्यवहार बढ़ता ही जाता है। यदि ग्लैडस्टनका कहना सत्य है कि काग़ज़के व्यवहारसे ही जातियोंकी सभ्यताका पता चलता है तब तो काग़ज़का व्यवहार बढ़ता ही जायगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं; और इसके साथ साथ 'पल्प' की मांग भी बढ़ती रहेगी। दुनियांमें सिर्फ़ काग़ज़की मांग, दस वर्षोंमें फी सैकड़ा २५ के हिसाबसे बढ़ रही है। इस समय प्रायः दस मिलियन टन काग़ज़ प्रतिवर्ष संसारमें ख़र्च होता है। इसमेंसे सिर्फ़ ६० हज़ार टनके लगभग भारतवर्ष ख़र्च करता है, पर आशा की जाती है कि प्राथमिक शिक्षाके प्रचारसे यह ख़र्च शीघ्र ही बढ़ जायगा।

आजकल फिनलैण्ड, स्केनडिनेविया, कनाडा, अमेरिका (संयुक्तराज्य) के जंगलोंसे सालाना ३० मिलियन टन लकड़ी काट कर 'पल्प' बनता है तब कहीं संसारकी काग़ज़की तृष्णा बुझती है। इधर तो यह तृष्णा दिनों दिन बढ़ती जाती है और उधर यह देवदारु और सनौपरके जंगल साफ़ होते चले जा-रहे हैं, उनमें फिरसे जंगल लगानेकी कोई नियमित चेष्टा नहीं की जाती है। इससे जान पड़ता है कि शीघ्र ही 'पल्प' का अकाल पड़ जायगा। इधर भारतके जंगल-विभाग वालोंने पता लगाया है कि देशी बांस और 'सभन्ना' जाति (हाथी घास, Elephant grass) की घासोंसे बहुत बढ़िया और सस्ता पल्प तैयार हो सकता है। यह दोनों द्रव्य भारतवर्षमें इस प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं कि कुछ ही दिनोंमें यहां २० मिलियन टन (अर्थात् आजकल सारी दुनियामें जितना पल्प तैय्यार होता है उसका दूना) 'पल्प' बन सकता है। यह दोनों द्रव्य आसाम, बम्बईमें ऐसी जगहोंमें पाये जाते हैं कि जहां पर 'पल्प' के कारख़ाने सुगमतासे चलाये जा सकते हैं। इधर जंगलातवालों ने 'पल्प' बनानेकी उलझनोंको सुलझानेमें बड़ी सफलता प्राप्त की है। बांसकी गांठोंको गलाने, पल्पको धोने, साफ़ करनेकी सरल वैज्ञानिक रीति निकाली है। शीघ्र ही एक ऐसा सरकारी कारख़ाना खुलनेवाला है जहाँ 'पल्प' तैयार करके दिखाया जायगा।

व्यापारकी दृष्टिसे भी इसमें सफलता होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। विलायती पल्प इस बांस या घासके पल्पसे कहीं महंगा पड़ता है। देशी पल्प सस्ता तो पड़ेगा पर एक अड़चन है। यह जंगल ऐसी जगहोंमें हैं जहांसे तैयार मालको बाज़ारोंमें पहुंचानेमें बहुत ख़र्च पड़ेगा। जबतक देशमें जंगलों और पहाड़ोंमें चलनेवाली सस्ती रेल वा ट्रामगाड़ियां न चलने लगेंगी, जबतक नदियोंमें तेज़ चलनेवाले सस्ते स्टीमर न चलने लगेंगे तबतक यह दिक्कत बनी ही रहेगी। इतनेपर भी हिसाब लगा कर देखा गया है कि देशी पल्प सस्ता ही रहेगा, क्योंकि यहां इसके बनानेका ख़र्च बहुत कम है।

अभी चार जगहोंपर कारखाने खोले जा सकते हैं; खुलनेपर उन्हें घर बैठे बिठाये हिन्दुस्तानमें ही ६० हज़ार टन पल्प बेचनेका मौक़ा मिलेगा। देशी सस्ते पल्पका सामना करनेमें सदा अमेरिका और यूरोपके व्यवसायी अवश्य ही सफल नहीं हो सकते। देशी बाज़ार हाथमें करलेनेपर आस्ट्रेलिया, चीन, दक्षिण अफ्रीकाका बाज़ार सहजमें ही हाथमें आ जायगा। फिर तरक्की करते करते यूरोप और अमेरिकामें देशी पल्पका बेचना भी मुश्किल न होगा, क्योंकि उस समय तक विलायती पल्पके दाम बढ़ जायंगे और 'पल्प'का व्यवहार बहुत ही बढ़ गया होगा। आशा की जाती है कि तबतक देशी जहाज़ी कम्पनियां भी

खुल जायंगीं। इसमें सन्देह नहीं कि अभी इन कारखानोंको मशीनों और रासायनिक द्रव्योंकेलिए विदेशका ही मुंह ताकना पड़ेगा, तथा कुछ दिनों तक यही हालत भी बनी रहेगी। पर यदि औद्योगिक कमीशनकी राय मान ली गई–और पूरी आशा है कि मान ली जायगी–तो यह दोनों अभाव भी शीघ्र ही दूर हो जायंगे और देशमें ही मशीन वगैरह बनने लगेंगी। पूरी आशा की जाती है कि अभी इन्हीं विलायती सामानोंके भरोसे कुछ 'पल्प'-के कारखाने अवश्य खुल जायंगे, जिससे भविष्यका मार्ग साफ़ और सुगम हो जायगा। *

नमक

[ले०-श्रीयुत रामस्वरूप गुप्त, बी. ए.]

नमक बड़े महत्वकी वस्तु है। राजाकेलिए उसका महत्व उतना ही है जितना कि प्रजाके लिए। भारत सरकारको नमकसे लगभग ६ करोड़ रुपयेकी आमदनी गतवर्ष हुई थी और जब कभी अधिक आमदनीकी ज़रूरत होती है तो सरकार पहिले नमकपर ही दृष्टि डालती है। गत वर्ष भी यूरोपीय महायुद्धके कारण सरकारके अधिक रुपयेकी आवश्यकता पड़ी तो १) मनसे बढ़ाकर टैक्स १।) मन कर दिया गया। प्रजाके लिए तो नमककी वैसी ही आवश्यकता है जैसी कि पानी या वायुकी। स्वास्थ्यरक्षाके लिए नमक बहुत आवश्यक है। यह एक ऐसा पदार्थ है जिसका व्यवहार ग़रीब लोग अमीरोंकी अपेक्षा अधिक करते हैं। इसके प्रमाणमें महात्मा गोखलेका केवल वह वाक्य उद्धृत करना पर्याप्त है जो उन्होंने १६११ की इम्पीरियल लेजिस्लेटिवकौंसिल (व्यवस्थापक सभा) में कहा था—"नमकके करका सबसे बड़ा बोझ नितान्त निर्धन प्रजापर पड़ता है। यद्यपि सब श्रेणीके लोग नमकका उपयोग करते हैं, परन्तु इसके अधिकांशकी खपत साधारण जनसमूहमें ही होती है"। ग़रीब लोग बहुधा केवल नमकके साथ भोजन करते हैं। अमीरोंमें जिस प्रकार मिठाईका अधिक प्रयोग होता है, उसी प्रकार ग़रीबोंमें नमकका। देहातोंमें किसान अपने बैलोंको हृष्ट पुष्ट रखनेके लिए नमक खिलाते हैं। इन कारणोंसे नमकका मूल्य बढ़नेसे निर्धन प्रजाकी अत्यंत हानि होती है।

नमक कहांसे आता है ?

भारतवर्षमें नमककी जितनी खपत होती है उसमेंसे अधिकांश देशमें ही उत्पन्न होता है, परन्तु कुछ भाग विदेशोंसे भी आता है। उत्तरी भारत अर्थात् पंजाब, राजपूताना, युक्तप्रांत, मध्यभारतमें नमक नीचे लिखे स्थानोंसे आता है:—

स्थान	कहांसे नमक आता है ?
(१) राजपूताना (पानीसे निकाला हुआ)	सांभर झील, जोधपुर रियासतमें पंचभद्रा तथा डीडवानेके लवणयुक्त सोते।
(२) पञ्जाब	मेयो, वरछा और कालाबाग़की खानें, कोहाटकी खानें, मंडीकी खानें, साल्ट रेञ्ज (लवण-पर्वत)।

बम्बई और सिंधमें समुद्रके पानीसे नमक तैयार करनेके कारख़ाने हैं। बम्बईका बरगड़ा (Baragra) नमक जो कच्छकी छोटी खाड़ीसे

---

*भारतकी 'साम्पत्तिक अवस्था' से उद्धृत। ग्रन्थ छप रहा है।
Imp. Gazetteer Vol III.
Work of the Forest Deptt. of India 1917
Review of the Trade of India for 1913--14 1915--16, 1916—17
Prof. Raith lecture on Paper making Industry at the Indian Museum, 1918; and the Statesman Calcutta
के आधार पर लिखा गया।

Economics अर्थशास्त्र]

तैयार होता है युक्तप्रांत और मध्यप्रांतमें जाता है।-मद्रास और ब्रह्मादेशमें सरकार और प्रजा दोनोंके खारे पानीसे नमक बनानेके कारखाने हैं। बंगाल उड़ीसा और आसाममें नमक दूसरे प्रांतोंसे तथा विदेशोंसे भी आता है। देशी नमकका लगभग १/२ भाग सरकारकी ओरसे बनता है और शेष लाइसेंस लेकर कारखानेवाले तैयार करते हैं।

मूल्य

सांभर नमक ४ आना फीमनके भावसे बिकता है और डीडवाना नमक २ आना और पञ्चभद्रा १ १/२ आना फीमनके भावसे। इनमें १ पैसा फी मन खुदाईका लगता है। मेयो और कोहाटकी खानोंका नमक १० पाई (१ आनेसे कम) फी मनके भावसे बेचा जाता है। परन्तु इन सब जगहोंपर सरकारी कर और लगता है, जिसके कारण नमक महंगा पड़ता है। इन करोंपर सरकार और प्रजामें बहुत वादविवाद हो चुका है। आमदनी बढ़ानेके लिए सरकार नमकपर कर बढ़ा दिया करती है, परन्तु महात्मा गोखलेके आन्दोलनसे यह कर क्रमशः बहुत घटा दिया गया है। इन करोंका संक्षेप इतिहास यह है। नमकका कर पिछले समयमें ३ आनेसे लेकर (ब्रह्मा देशमें) ३ ३/४ रुपया (बंगालमें) फी मन तक रह चुका है। सन् १८८८ में २ रु. फी मनका अविरल कर (सिवाय ब्रह्माके) बिठाया गया। यह सन् १८८८ में २ १/२ रुपये कर दिया गया। सन् १९०३ में पुनः २ रुपये हो कर सन् १९०५ में वह घटाकर १ १/२ रु० मन कर दिया गया। सन् १९०७ में फिर घटाकर १ रु० मन किया गया। सन् १९१६ से कर, युद्धके कारण, १ रु० चार आना मन हो गया है। ब्रह्मामें बाहरसे आये हुए नमकपर १ रु० मन लगता है और प्रांतमें बने हुएपर १२ आना फी मन।

नमक जीवनके लिए अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। अतएव उसके व्यवहारमें कोई रुकावट न हो, इस हेतु इंगलैंड आदि देशोंमें वह बहुत ही सस्ता कर दिया गया है। इसलिए निर्धनसे निर्धन आदमी भी जितनी खपत कर सकता है उतना खरीदनेमें संकोच नहीं करता। परन्तु हमारे देशमें लोग महंगीके कारण यथेच्छ व्यवहार नहीं करते। ज्यों ज्यों उसका मूल्य घटता गया है वैसे ही वैसे उसका व्यवहार भी बढ़ता गया है। जो नमक जानवरोंको दिया जाता है, मूल्यके घटने बढ़नेसे उस अंशके प्रयोगमें घट बढ़ तो अवश्य ही हो जाती होगी। यह बात देशमें नमककी खपत और उससे सरकारी आमदनीके अंकोंसे सिद्ध होती है।

वर्ष	नमककी खपत (लाख मन)	प्रतिमन कर	सरकारी आय (लाख पौंड)
औसत			
१८९८-९ से १९०२-३	३६०	२ १/२ रु०	६०
१९०३-४ और १९००-५	३८५	२	५३
१९०५-६ और १९०६-७	४१९	१ १/२	४४
वर्ष १९०७-८	४४४		३३.४
वर्ष १९०८-९	४५४	१	३२.८
... ...	...		......
... ...	...		......
१९१४-१५	...		३४.४
१९१६-१७	...	१ १/४	४०

अर्थात् सन् १९०३ से लेकर १९०९ तक टैक्स घटनेके कारण १८ फी सदी खपत बढ़ गई। इससे सिद्ध है कि नमकपर टैक्स और भी कम कर दिया जाय अथवा बिल्कुल ही उठा दिया जाय तो उसकी

खपत और भी बढ़ जायगी। फिर उसके यथेच्छ व्यवहारमें कोई बाधा न रहेगी, जिससे देशके मनुष्य और पशु दोनोंके स्वास्थ्यको लाभ पहुंचेगा और बचत सरकारको भी होगी। अर्थात् अभी बेक़ानूनी नमक बनानेपर सरकारको देख रेख करनी पड़ती है। मुक़द्मे चलाने पड़ते हैं। सज़ा देनी पड़ती है। फिर इन बातोंकी भी आवश्यकता न रहेगी। परन्तु सरकार दो एक गलतियोंमें पड़ी है। एक तो यह कि लाखों निर्धन प्रजापर और किसी प्रकारका कर नहीं लगता। जिनके पास न ज़मीन है न धन, उनसे न मालगुज़ारी मिलती है न इंकमटैक्स। परन्तु नमकका व्यवहार सभी करते हैं और इस प्रकार एक मज़दूर और कुली भी सरकारी आमदनीमें कुछ योग देता है। दूसरे सरकारका कथन है कि नमकपर टैक्स इस देशमें सदासे चला आया है और जितना कम टैक्स आजकल है उतना कम पहिले कभी नहीं रहा। पहिली बात निर्मूल है, क्योंकि रेल, पोस्टआफ़िस, चुंगी (custom duties) आदिसे जो आमदनी सरकारको होती है उसका अधिकांश दीन श्रेणीसे ही आता है। द्वितीय विषयकी आलोचना करना ऐतिहासिकोंका काम है। परन्तु यह बड़ा कच्चा सिद्धांत है कि यदि सदासे प्रजा कष्ट उठाती रही है तो अब भी उठावे।

मनुष्य और पशुओंके स्वास्थ्यके लिए नमक बहुत आवश्यक है। हमारे देशके आयुर्वेदमें इसका महत्व विख्यात है। यह कहावत है कि यदि कोई मनुष्य वर्षों नमक न खाय तो उसका रक्त विषैला हो जाता है। वर्तमान डाक्टरोंने भी नमकके अद्भुत गुण बतलाये हैं। जिन देशोंमें मछली खानेका रिवाज है, वहां यदि साथ ही नमकका प्रचुर परिमाणमें न उपयोग किया जाय तो कुष्ठकी वृद्धि होती देखी गई है। हैज़ा रोकनेका उपाय नमकका अधिक व्यवहार और उसीकी प्रस्तुत औषधियां हैं। सन् १८५७ में जब होशंगाबादके शहर और ज़िलेमें हैज़ा फैला हुआ था तब डाक्टर बीमैनने जेलके क़ैदियोंको जितना नमक दिया जाता था उससे एक तोला अधिक देनेकी आज्ञा दी। फल यह हुआ कि एक भी क़ैदीको हैज़ा नहीं हुआ, यद्यपि जेलके समीप ही कई मृत्यु हुईं। सन् १६०४ में मिस्टर हचिन्सनने अपने एक व्याख्यानमें कहा था 'इस टैक्सके द्वारा सारी जनसंख्याकी शक्तिपर आघात पहुंचाया जाता है और कुछ विशेष कष्टप्रद बीमारियोंकी उत्पत्तिकी आशंका खड़ी की जाती है। यदि इंगलैंड देशमें नमकपर बिल्कुल टैक्स उठा दिया गया है तो भारतवर्षमें क्यों न उठा दिया जाय। कमसे कम यदि घटिया नमकपर जो जानवरोंको दिया जाता है टैक्स उठा दिया जाय तो उनके स्वास्थ्यमें अपूर्व उन्नतिकी आशा है, १६०५ में हिन्दू पेट्रियट नामक पत्रमें एक लेखकने लिखा था कि "बरोदा राज्यके एक भागमें, जो काठियावाड़में है और जहां नमक बनानेपर टैक्स नहीं है रुपयेका ३ मनसे अधिक नमक बिकता है और दूसरे भागमें जहां टैक्स है (which is within the British salt-line) रुपयेका १४ सेर बिकता है" अब भी भारतवर्षके गोआ नामक नगरमें जहां हालैंडवालोंका राज्य है, नमकपर टैक्स नहीं है।

प्रकाश विज्ञान

प्रकाशका स्वरूप

[ले०—प्रो० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

पिछले अध्यायोंमें हमने प्रकाश-संबंधी साधारण घटनाओंका प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और दृष्टिके विषयमें भी कुछ आवश्यक बातें जान ली हैं। किन्तु एक अत्यन्त आवश्यक बात हम छोड़ आये हैं, क्योंकि वास्तवमें वह शारीर विज्ञानकी बात है। तिसपर भी प्रकाशका वास्तविक स्वरूप जाननेके लिए यह आवश्यक है कि

Physics भौतिकशास्त्र]

उस विषयसे भी संक्षिप्त रूपसे कुछ जानकारी हो जाय।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि "हमारे नेत्रोंमें प्रवेश करनेवाले प्रकाशके द्वारा समस्त ज्ञानके आगार मस्तिष्कपर कैसे असर होता है?" वास्तवमें यह प्रश्न अधिक विस्तृत है। "स्वाद, गंध, और स्पर्शकी भी ख़बर मस्तिष्कको कैसे मिलती है?" शरीर रचनाका जिन्होंने अध्ययन किया है उन वैज्ञानिकोंका मत है कि पहिले तो हमारी इंद्रियोंमें कुछ प्रस्फुरण (कम्पन) होता है, फिर मस्तिष्कसे इंद्रियोंतक फैले हुए ज्ञान-तन्तु-जालके द्वारा वह प्रस्फुरण पानीकी लहरोंके समान मस्तिष्क-में पहुंचकर वहां भी कुछ हलचल उत्पन्न करता है। इसके ही द्वारा मस्तिष्क ज्ञान प्राप्त करता है। यह सब कार्य ठीक तार द्वारा समाचार भेजनेके समान है। तार घर जहांसे समाचार भेजा जाता है—वह नेत्र, कान, नाक आदि इंद्रियां हैं। वहांसे दूसरे स्थानतक जो तार लगे रहते हैं वे ज्ञान-तन्तु हैं। मस्तिष्क वह स्थान है जहां समाचार भेजा जाता है और जो मनुष्य यंत्रकी खट खट-का सांकेतिक अर्थ समझकर काग़ज़पर लिख लेता है वह मन है। तारघरके यंत्रमें पहिले कुछ गति उत्पन्न की जाती है। तार द्वारा वह गति दूसरे स्थानके यंत्रोंको संचालित करती है। ठीक इसी प्रकार प्रकाश नेत्रके कणोंमें गति उत्पन्न करता है और वह गति मस्तिष्क तक तन्तुओं द्वारा पहुंच जाती है। यह तो दृष्टान्त हुआ। किन्तु इससे जो मुख्य बात हमें सीख लेनी चाहिये वह यह है कि वास्तवमें गति या प्रस्फुरण ही नेत्रमें उत्पन्न होता है और उसके ही कारण हम देख सकते हैं। प्रकाश हमारे नेत्रोंमें प्रविष्ट होकर केवल गति उत्पन्न कर देता है।

इसी स्थानपर एक और बात भली भांति समझ लेनी चाहिये। ऊपर कई स्थानोंपर यह लिखा गया है कि प्रकाशवान वस्तुसे प्रकाश चलता है। इस वाक्य द्वारा यह प्रतीत होता है कि कोई वस्तु दीपक, अथवा सूर्यसे निकल कर दूसरे स्थानों तक गमन करती है। चारों ओर फैल जाती है। किन्तु अब तक तो हमने यही मालूम किया है कि प्रकाश दीपक या सूर्यके कारण होता है और उस-की सहायता नेत्रोंके लिए अत्यन्त आवश्यक है। हम जानते हैं कि दीपक नेत्रोंपर असर डालता है। ऐसे ही हम यह भी जानते हैं कि गुरुत्वके कारण एक वस्तु दूसरीको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि यह असर भी किस प्रकार होता है। क्या इस असरके होनेमें भी कुछ समय लगता है या वह केवल दोनों वस्तुओंकी तत्कालीन दशा विशेषपर ही निर्भर होता है?

साधारण अनुभवसे हमें ऐसा नहीं जान पड़ता कि प्रकाशका असर दीपकसे नेत्रोंतक पहुंचनेमें कुछ समय लगता है। दो बहुत ही सही घड़ियां लेकर यह प्रयत्न किया भी गया था कि एक स्थानपर एक निर्दिष्ट समयपर प्रकाश उत्पन्न करके उसके दिखलाई देनेका समय देखा जावे। किन्तु ऐसे प्रयोगोंसे कुछ परिणाम न निकला। हां यह बात अवश्य सिद्ध हो गई कि यदि वास्तवमें प्रकाशको समय लगता भी है तो वह इतना थोड़ा होता है कि नापा नहीं जा सकता। किन्तु इसके लिए तो किसी प्रयोगकी आवश्यकता भी न थी। इन प्रयोगोंमें सफलता तब हो सकती है जब उन दो स्थानोंकी दूरी बहुत अधिक हो। पृथ्वीपर ऐसी दूरी नहीं मिल सकती, किन्तु पृथ्वी और तारों, ग्रहों और उपग्रहोंके बीचकी दूरी अवश्य ही बहुत बड़ी दूरी है। अतः यह आशा हुई कि आकाशसे ही प्रकाशके वेगका शायद कुछ पता चले। आगे चलकर हमें ज्ञात होगा कि किस प्रकार यह आशा फलवती हुई, किस प्रकार प्रकाशका यह आश्चर्यजनक वेग नाप लिया गया और अंतमें किस प्रकार ऐसे भी उपाय ज्ञात हो गये कि जिनकी सहायतासे आका-शकी अनुमान द्वारा जानी हुई दूरियोंकी सहायता-

के बिना भी इस पृथ्वीपर प्रयोगशालाके एक कमरेमें बैठकर ही प्रकाशका अतुलित वेग नाप लिया गया।

इस वेगका परिमाण आकाशी अथवा पार्थिव, सभी उपायोंसे, इतना अधिक निकलता है कि उसका ध्यानमें आना भी कठिन बात है। प्रोफ़ेसर टामसन (S. P. Thomson) ने इस वेगका अंदाज़ा करनेकी एक युक्ति बतलाई है। पृथ्वीपर सबसे तेज़ चलनेवाली किसी वस्तुका विचार करो। शायद पूर्ण वेगसे चलनेवाली डाक गाड़ीका ध्यान आवेगा। जितनी देरमें मनुष्य १ से लेकर १० तक गिन सकता है, उतने समयमें वह कितनी दूर चली जायगी? १० तक साफ साफ गिननेमें लगभग ५$\frac{१}{२}$ सैकंड लगते हैं। इतने समयमें ६० मील फी घंटे चलनेवाली डाक गाड़ी प्रायः ५०० फुट चल सकेगी। किन्तु बन्दूकसे निकलकर चलनेवाली गोली इतने ही समयमें और भी अधिक दूर पहुंच जायगी। एक और वस्तु है जो इनसे भी अधिक वेगसे चलती है। शब्द बहुत शीघ्रगामी है। ५$\frac{१}{२}$ सैकंडमें वह प्रायः एक मील दूर जा सकेगा। किन्तु ५$\frac{१}{२}$ ही सैकंडमें जहां डाक गाड़ी ५०० फुट जा सकती है और शब्द प्रायः एक मील चल लेता है प्रकाश १० लाख मील चल सकेगा! दस लाख मील कितनी दूरी होती है इसका अंदाज़ा कैसे किया जाय? साठ माल फी घंटा चलनेवाली डाकगाड़ीको उतनी दूर चलनेमें १६, ६६६$\frac{१}{२}$ घंटे अर्थात् ६९४ दिन १० घंटे और ४० मिनट लग जावेंगे। मान लो कि आज २१ जनवरी १९१९ को १२ बजे दिनके उस गाड़ीमें हम बैठें और वह गाड़ी बिना ठहरे चलती ही जाय, दिनमें चले और रातमें भी चले, वर्ष भर प्रति दिन चलती ही रहे और दूसरे वर्ष भी प्रत्येक महीने कहीं न ठहर कर आगे बढ़ती ही जाय तब कहीं १६ दिसम्बर १९२० को रातके १० बजके ४० मिनट पर प्रायः दो वर्षोंमें १० लाख मील पूरे होंगे। किन्तु जितनी दूर चलनेमें डाक गाड़ीको १ वर्ष ११ महीने लगे, उतनी दूर प्रकाश ५$\frac{१}{२}$ सैकंडमें, १ से १० तक गिनतेगिनते, पहुंच जाता है! "यदि प्रकाशको एक सैकंडका समय देकर कहा जाय कि जाओ पृथ्वीकी परिक्रमा कर आओ, तो सात बार चक्कर लगा चुकनेपर भी सैकंड पूरा होनेमें कुछ समय बाकी रह जायगा। कहा जाता है कि सूर्य हमसे प्रायः ९। करोड़ मील दूर है। किन्तु जितने समयमें प्रकाश वहां जाकर वापिस आ जावेगा उतनी देरमें हम लोग बैठ कर भोजन भी न कर पावेंगे। एक सैकंडमें १,८६,००० मील, अर्थात् एक घंटेमें लगभग ६६ करोड़ ९० लाख मील! यह प्रकाशका वेग है। तिसपर भी आकाशमें ऐसे ऐसे तारे हैं जिनसे प्रकाशको पृथ्वीतक आनेमें बरसों लग जाते हैं, और शायद कुछ ऐसे भी हों कि जिनका प्रकाश अभी तक यहां पहुंच ही न सका हो। इन बातोंसे कुछ अंदाज़ा किया जा सकता है कि संसार कितना बड़ा है।

अब यह शंका नहीं हो सकती कि "प्रकाशको गतिमान क्यों कहा?" प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा सिद्ध है कि प्रकाशको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक जानेमें समय लगता है। अतः ज्ञात हुआ कि प्रकाश दीपकसे निकल परिमित वेगसे चलकर नेत्रोंमें पहुंचकर वहां उसके अंशोंमें गति उत्पन्न करता है।

इस प्रकार एक वस्तुसे निकल कर संचालक शक्ति परिमित वेगसे चले और दूसरी वस्तुमें गति उत्पन्न करे, इसके दो ही उपाय सम्भव हैं। बिना पुद्गल पदार्थकी सहायताके तो शक्ति कभी गमन करती देखी नहीं गई। अतः या तो बन्दूककी गोलीके समान कोई पदार्थ उस शक्तिको लेकर एक स्थानसे दूसरे स्थानतक आ सकता है

अथवा यह हो सकता है कि उन दोनों स्थानोंके बीचमें पानीकी भांति कोई पदार्थ भरा हो और उसमें पहिली वस्तु तरंगोंकी नाईं कुछ प्रस्फुरण (कम्पन) उत्पन्न करे और इन तरंगोंसे टकरा टकरा कर दूसरी वस्तुमें भी गति उत्पन्न हो जाय।

उदाहरणके लिए मान लीजिये कि एक छोटा सा कुंड है और उसमें हमने कागज़की नौका बना कर छोड़ दी। वह नौका बीचमें पहुंच कर मान लीजिये कि ठहर गई। अब हमारी इच्छा है कि वह पुनः चलना प्रारम्भ करे, उसमें पुनः गति उत्पन्न हो। इसके केवल दो उपाय हैं। एक तो हम छोटे छोटे कंकड़ फेंकें। प्रत्येक कंकड़ नौकासे टकरा कर अपनी शक्ति उसे दे देगा और नौका चलने लगेगी। एक उपाय और है। हमारे और नौकाके मध्यस्थ जो पानी है उससे भी हम सहायता ले सकते हैं। हम अपनी शक्ति पानीमें लहरें उत्पन्न करनेमें व्यय कर सकते हैं। यह लहरें भी नौकासे टकरा कर उसे हिला सकती और गति उत्पन्न कर सकती हैं।

पहिले उपायमें प्रत्येक कंकड़ने दूतकी नाईं हमारे पाससे शक्ति लेजाकर नौकाको दे दी। इसमें शक्तिने भी गमन किया और उसके साथ ही साथ पुद्गल पदार्थने भी। किन्तु तरंगोंवाले उपायमें शक्ति केवल जलके एक परमाणुसे दूसरेमें चलती गई। जलका कोई परमाणु किनारेसे चल कर नौका तक नहीं गया। उस परमाणुमें तो केवल ऊपर नीचे कुछ दोलन मात्र हुआ। यह पिछली बात पानीमें एक तिनका तैराकर देखी जा सकती है। तरंगें बहुत दूर चली जावेंगी, किन्तु तिनका अपने स्थानपर ही हिलता रहेगा।

अतः जहां कहीं दूरसे आकर शक्ति कुछ गति उत्पन्न करे वहीं यह प्रश्न होता है कि यह शक्ति किस प्रकार आई? इसे कौन लाया? क्या कोई पुद्गल पदार्थ कंकड़की नाईं इसके साथ आया है? अथवा कोई पदार्थ पानीकी नाईं मध्यस्थ है, जिसमें तरंग रूपमें यह शक्ति आई है? कदाचित् इसके अतिरिक्त अन्य उपायोंका भी आविष्कार हो जाय अथवा कोई अन्य उपाय हो भी सकता है, ऐसा विचार करना भी इस समय शेख़चिल्लीका सा काम है, क्योंकि अभी हमारे पास उसे समझ सकनेकी सामग्री ही नहीं है। किन्तु हमें इस बातके लिए सदा तैयार रहना चाहिये कि यद्यपि इस समय हमें उसका कोई प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है, तो भी संभव है कि इनके अतिरिक्त भी कोई अन्य उपाय हों जो ज्ञानकी वृद्धि होनेपर हमें मालूम हो जायं अथवा तब भी जिनका कुछ पता न चल सके।

हम ऊपर देख चुके हैं कि प्रकाश नेत्रके परमाणुओंमें गति उत्पन्न करता है और उसे एक स्थानसे दूसरे स्थानतक गमन करनेमें समय भी लगता है। अब प्रश्न होता है कि यह संचालक शक्ति हमारे नेत्रोंतक किस प्रकार पहुंची? उपरि-लिखित दोनों बातें सम्भव हैं और उन दोनोंके आधारपर दो प्रकारके सिद्धान्त स्थिर किये गये हैं। एकका नाम है कण-सिद्धान्त (Corpuscular) या निर्गम सिद्धान्त (Emission) और दूसरेका तरंग सिद्धान्त (Wave)। सूर्य और पृथ्वीके अन्तर्गत किसी पौद्गलिक माध्यस्थका पता न होनेके कारण पहिला ही सिद्धान्त पहिले पहल स्थिर किया गया और उसके माननेवाले न्यूटन आदि विद्वानोंका विश्वास था कि प्रकाशवान वस्तुसे छोटे छोटे कण अत्यन्त वेगसे चलकर नेत्रमें टक्कर मारते हैं और इसी कारण दृष्टि व्यापार सम्भव होता है। दूसरा सिद्धान्त हाइगन्स ने स्थिर किया और इसके माननेवालोंका दृढ़ विश्वास है कि समस्त देश एक पौद्गलिक माध्यस्थसे भरा है, जिसमें प्रकाश तरंग-रूपसे गमन करता है।

आगेके अध्यायोंमें दोनों सिद्धान्तोंकी परीक्षा की जायगी, जिससे भली भांति समझमें आ जायगा कि यद्यपि कण सिद्धान्त बहुत सरल जान पड़ता है, किन्तु उसमें इतने दोष हैं और इतनी कमी है कि अब उसमें विश्वास नहीं किया जा सकता। आजकल समस्त संसारमें तरंग सिद्धान्त ही माना जाता है।

बवासीर

[ले०—पं० अयोध्याप्रसाद भार्गव]

मनुष्यके अत्यन्त दुखदायी रोगोंमें-से बवासीर भी एक है। यह दो प्रकारकी होती है—बादी और खूनी। जिन आदमियोंको कब्ज़ रहता है उनको ज़्यादातर हो जाती है। पाखानेकी जगह मस्से लटक आते हैं, उनसे खून अथवा मवाद निकलने लगता है। उसी स्थानपर दर्द, जलन, कांटा सा चुभना, खुजली, और भारीपन मालूम होता है और पेशाब करनेमें तकलीफ़ होती है। पेट और पीठमें और कूल्हेमें दर्द हो, कमरमें जकड़न हो, चलनेमें तकलीफ़ हो, पेडूमें मड़ोड़ हो, आंव आवे, सिरमें दर्द हो, जिगरमें दर्द हो, प्यास ज़्यादा लगे लेकिन पानी कम पिया जाय, आधी रातके पीछे ज़्यादा तकलीफ़ हो, कनपटीमें टपकन हो, मुंहमें सीठापन हो, बैठकर उठनेमें चक्कर आते हों, पाखाना होनेमें दर्द हो, तब समझना चाहिये कि बवासीर हो गई है।

होमियोपैथिक ओषधियां इस रोगके लिए बीसों हैं। हरेक ओषधि लक्षण देखकर देनेसे लाभ होता है। ऐसे मनुष्यों और स्त्रियोंकेलिए जो किसी कारण डाक्टर और हकीमोंके पास नहीं पहुँच सकते हम कुछ दवाएँ लिखते हैं, जिनके सेवनसे, आशा है कि, रोगीको लाभ होगा और मस्से कटवाने और कष्ट सहनेकी ज़रूरत न होगी। अपने रोगको इन लिखे हुए चिन्होंसे पहचान लेना कुछ मुशिकल नहीं है, फिर लिखी हुई ओषधिका सेवन अवश्य लाभदायक होगा।

Homeopathy होमियोपथी]

अक्यूलिस हिप (Æsculus Hip.)—जबकि मस्से बड़े और नीले रंगके हों, खुजली जलन और दर्द अधिक हो, थोड़ा थोड़ा खून निकले, पाखानेकी जगहपर खुश्की और बोझ मालूम हो। पीठ, कमर, और कूल्हेमें दर्द रहे और कमरकी जकड़न चलनेमें ज़्यादा हो।

एलोज़ (Aloes)—जबकि मस्से अंगूरकी तरह लटके हों, छूनेसे गर्म मालूम हों, मवाद निकले, पाखाना जाते समय बेहोशी हो जाय, पाखानेकी जगहपर बोझ मालूम हो, पेटमें मड़ोड़ा मालूम हो, पाखानेके साथ आंव और खून निकले, सिरमें दर्द हो, जिगरमें मीठा मीठा दर्द हो, ठंडे पानीके सेवनसे आराम मिले।

एकोनाइट (Aconite)—जबकि बवासीरसे खून निकले और डंकमारनेका सा दर्द हो और लेटे या बैठे आराम न मिले।

एपिस मैल (Apis mel.)—जबकि जलन और डंक मारनेका सा दर्द हो, जो ठंडा पानी लगानेसे कम हो जाय, पाखाना जाते समय पेटमें दर्द हो, और ऐसा मालूम हो कि कांखनेसे कोई चीज़ टूट जायगी, खांसीके साथ बांई तरफ़ छातीमें दर्द रहे।

आरसेनिकम एल्ब (Arsenicum Alb.)—जबकि बादी बवासीर हो और आगकी सी जलन मालूम हो, रातको नींद न आवे, चलनेमें दर्द और घबराहट हो, प्यास अधिक लगे लेकिन थोड़ा पानी पिये, आधी रातके पीछे अधिक तकलीफ़ हो।

बैलेडोना (Belladonna)—खूनी बवासीरमें उस वक्त देना चाहिये जबकि कमरमें दर्द हो, जो एकबारगी पैदा हो जाय और एकबारगी जाता रहे, सिरमें दर्द हो, कनपटीमें टपकन मालूम हो और नींद न आवे।

सीपिया (Sepia)—खूनी बवासीरमें देना चाहिये, खासकर जबकि पाखानेके मुकामपर दर्द, गर्मी, जलन, सूजन, मालूम हो और कांच निकले, मवाद सा निकले, यह मालूम हो कि बोझ है और कोई चीज़ अड़ी हुई है, और पाखाना फिरनेमें बेहोशी हो जाय।

कार्बोवेजीटेबिलस (Carbo. Veg.)—उस वक्त देना चाहिये जबकि बवासीरसे ताज़ा खून निकले, सूजन हो और खूनमें बू आवे, आंव आवे और ऐसा बदबूदार पानी निकले, जिसके लग जानेसे खुजली पैदा हो, पेटमें हवा भरी हुई मालूम हो और खट्टी डकार आवें।

कौस्टिकम (Causticum)—जबकि बवासीरके मस्से बड़े हों और ऐसा दर्द करते हों जैसे डंक मार दिया हो, छूनेसे जलन मालूम हो, पाखाना मुश्किलसे हो, पेटमें बोझ और फटन मालूम हो, और चलनेमें तकलीफ हो।

कौलनसोनिया (Collinsonia)—खूनी या बादी बवासीरमें देना चाहिये जबकि कब्ज हमेशा रहता हो, और पाखाना दर्दके साथ हो, और ऐसा मालूम हो कि पाखानेकी जगहमें किसीने रेत भर दिया है।

केलकेरियाकार्ब (Calcar. carb)—जबकि मस्से सूजे और लटके हुए हों और खून ज़्यादा निकले, जलन हो, पाखाना जानेके बाद तनाव मालूम हो, किसी जगह अगर चढ़नेका इत्तफाक हो तो चक्कर आ जायं।

पौडोफिलम (Podophyllum)—अकसर स्त्रियोंको बच्चा पैदा होनेके बाद कांच निकलनेकी और बवासीरकी बीमारी हो जाती है और कब्ज़की वजहसे बच्चादानी उलट जाती है और बाहर निकल आती है। ऐसी सूरतमें यह दवा लाभदायक होगी।

पलसैटिला (Pulsatilla)—बादी बवासीरमें जबकि पाखानेकी जगह पर खुजली, दर्द और बोझ मालूम हो, कब्ज़ हो, सुबहके वक्त मुंहका स्वाद खराब हो और उबकाई आवे, उठनेमें चक्कर आवें, सर्दी मालूम हो और रोनेको जी चाहे।

सलफर (Sulphur)—यह औषधि खूनी और बादी बवासीरमें दी जाती है, जब कि पाखानेके बाद पतला खून निकले और यह मालूम हो कि फिर पाखाना होगा, गुदामें और मुंहपर बहुत दर्द हो, पाखाना फिरनेमें कांच निकल आवे, चांपपर जलन और गर्मी मालूम हो, और पीठमें रह रह कर दर्द हो, चलने और खड़े होनेमें चक्कर आवें, पेशाब जलनके साथ हो।

फासफोरस (Phosphorus)—उस वक्त देना चाहिये जबकि पाखानेके साथ धार देकर खून निकले। पाखानेकी जगहमें घाव हो जाय, खून और मवाद निकले और कब्ज़के साथ लम्बा कड़ा पाखाना हो।

केली कार्ब (Kali carb.)-जबकि बवासीरके मस्से बड़े हो जायं, पाखाना मुश्किलसे हो, मस्से सूज जायं, पाखाना फिरनेमें खून निकले, और जलन हो, पाखाना फिरनेके बाद ज़्यादा दर्द हो, पेशाब करनेमें मस्से बाहर निकल आवें।

ग्रेफाइटीज़ (Graphites)—जबकि बवासीरके मस्से फट जायं और जलन हो, हर वक्त खुजली और चिपचिपाहट मालूम हो, बिला ज़ोर दिये हुए कांच निकल आवे, पाखाना कब्ज़के साथ गांठ गांठ हो कर निकले।

हैमैमिलिस (Hamamelis)—जबकि खून ज़्यादा निकले, पाखानेकी जगहमें खुजली और दर्द हो, बहुत कमज़ोरी हो जाय और ऐसा मालूम हो कि कमर टूटी जाती है और हर वक्त जी उदास हो।

नाइट्रिक एसिड (Nitric acid)—खूनी बवासीरमें जब कि हर दफा पाखाना जाते हुये मस्से बाहर निकल आवें, गहरा लाल खून निकले, पाखाना पतला हो, दर्द ज्यादा हो और घंटों रहे, पाखानेकी जगहकी चुनटोंमें फटन या घाव हो जाय।

म्यूरिएटिक ऐसिड (Muriatic acid)—जब बवासीरके मस्से बहुत बड़े हों और नीले रंगके हों

और दर्द करें, हर वक्त खुजली रहे और खुजानेसे आराम मिले, पाखानेके साथ खून आवे, पेशाब करनेमें कांच निकल आवे।

आहारके जीवाणु

[ले०—प्रोफेसर तेजशंकर कोचक, बी. ए. एस-सी.]

संसारमें सबसे उत्तम पदार्थ दूध है। इस कारण हम दूधसे आरम्भ करते हैं। दूधसे बढ़कर जीवधारियोंके लिए कोई आहार नहीं है। हालके निकले हुए दूधकी गरमी और उसके अन्दरके खनिज और प्राणिज पदार्थ जीवाणुओंकी उत्पत्ति और वृद्धिकेलिए अति उत्तम होते हैं। इस कारण दूधमें लाखों जीवाणु होते हैं, परन्तु ऐनसे (थनसे) दूध बिलकुल शुद्ध निकलता है और अगर मरकरी लोशनसे दूधका बर्तन, ऐन और ग्वालेके हाथ धोकर दूध दुहायें तो उसमें बहुत ही कम जीवाणु होंगे। दूध दुहनेके समय ऐनसे जो पहिले धार निकलती है उसको धरतीपर डाल देना चाहिये, बर्तनमें न लेना चाहिये। यही पुराने शास्त्रोंकी भी रीति है। इसका कारण यह है कि दूध दुह चुकनेपर थनोंके छिद्रोंमें कुछ दूध लगा रहता है और जब वायुके जीवाणु उड़कर इन छिद्रोंपर पड़ते हैं, तो इनकी वृद्धि होने लगती है और हज़ारोंकी संख्यामें विद्यमान रहते हैं। जो दूधकी पहली धार निकलती है उसीमें यह सब जीवाणु निकल जाते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि ऐनसे तो दूध शुद्ध निकलता है तो फिर इसमें जीवाणु कहांसे आ जाते हैं। दूधमें जीवाणुओंके गिरनेकी बहुत सी राहें हैं।

१—एक अंधेरी कोठरीमें कहीं एक तरफ़ एक छोटेसे छिद्र द्वारा सूर्य्यकी किरण आने दो। और एक ऊंचे स्थानपर अर्थात् किसी कटोरेमें जल लेकर किसी तिपाई या मेज़पर इस प्रकाशमें रखो और अलगसे चुपचाप बैठकर देखो कि वायुमण्डलके कण कैसे लाखों कटोरेके पानीमें गिर रहे हैं। इसी प्रकारसे गौशालाके वायुके कण जितनी देर दूध खुलारहता है दूधमें गिरते रहते हैं और उन्हींके साथ साथ जीवाणु दूधमें पड़ जाते हैं।

२—गऊके रोओंसे भी जीवाणु दूधमें गिरते हैं। अगर पशु न्हिला धुलाकर साफ़ न रखा जाय तो और भी अधिक जीवाणु दूधमें गिरते हैं।

३—ग्वालेके हाथों और कपड़ोंसे भी जीवाणु दूधमें गिरते हैं। इसलिए स्वच्छ पानीसे हाथ धोकर दूध दुहना चाहिये और दूध दुहते समय मैले अथवा बहुत से कपड़े न पहनने चाहियें।

४—दूधका बर्तन बिलकुल साफ़ होना चाहिये। दूधका बर्तन बहुत सुगमतासे साफ हो सकता है। स्वच्छ पानीमें एक चुटकी भर सोडा छोड़ो और इसके पश्चात् इस सोडाके पानीसे धो डालो। अगर हो सके तो एक ढक्कन ढककर खाली बरतनको कुछ मिनट आगपर रख दो। फिर उतारकर ठण्डा कर लो। जब आप ही आप ठण्डा होजाय, तो साधारण रीतिसे इसमें दूध दुह लो।

५—गन्दी और मैली दुकानोंपर भी गन्दगीके कारण जीवाणु दूधमें पड़ जाया करते हैं।

६—दूधमें पानी मिलानेसे भी पानीके जीवाणु दूधमें पड़ जाते हैं और पानीमें आहार न होनेके कारण जो जीवाणु शिथिल पड़े रहते हैं दूधमें पहुंचते ही तुरन्त चैतन्य होने लगते हैं और पुनः उनकी वृद्धि होने लगती है।

हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि थनोंमें जीवाणु छिद्रोंके मुँहपर होते हैं। यह जीवाणु अधिकांश लैकटिक अम्ल या तक्राम्ल (lactic acid) उत्पन्न करनेवाले होते हैं, रोग पैदा करनेवाले जीवाणु बहुत कम मिलते हैं।

कितनी संख्या जीवाणुओंकी दूधमें होनेसे दूध साधारण रीतिसे शुद्ध माना जाय, इसका कुछ ठीक नहीं है, पर यह भली भांति सिद्ध हो गया है

Bacteriology जीवाणु शास्त्र]

कि मनुष्यकी देहकी तापसे थोड़ी ही कम तापमें जीवाणु अति उत्तमतासे बढ़ते हैं। हम यहांपर केवल दो तीन जातिके मुख्य जीवाणुओंका वर्णन करेंगे।

लैक्टिक बैसिली अर्थात् छाछ-शलाका

साधारण दशामें दूधमें निम्नलिखित पदार्थ होते हैं—

पानी	८७·५%
पयशर्करा (milk sugar) ...	४·६%
चिकनाई (fats)	३·६%
खनिजपदार्थ ...	·७%
प्रोटीन्स (protiens) ...	३·३%
	योग—१००

पयशर्करा— दहीके तोड़में अधिकांश यही घुली होती है। अगर तोड़को थोड़ी सी फिटकरी डाल कर कुछ देर उबालें और फिर छानकर पानीपर गरम करें तो तोड़का पानी उड़ जायगा और तोड़ गाढ़ा हो जायगा। जब एक चौथाईसे कम मात्रा रह जाय तब उतार कर ठण्डा करनेसे, पयशर्कराके टुर्रे निकल आयेंगे।

अगर दूधको दुहनेके बाद कुछ समय अलग रखा रहने दें तो इसमें छाछ-जीवाणु पैदा हो जाते हैं और यह पयशर्कराको वायुकी सहायतासे छाछाम्लमें बदल देते हैं। दूधमें छेना अर्थात् प्रोटीन्स तभी तक घुले रहते हैं जबतक कि दूधमें खटाई नहीं होती। खटाई होते ही प्रोटीन्स अलग हो जाते हैं। इसी तरहसे दही बनता है। किसी अगले लेखमें दही बनानेकी नवीन रीति बतलाई जायगी। यहांपर केवल इतना बतलाये देते हैं कि छाछ जीवाणु कई जातिके होते हैं। दहीमें खटाईकी कुछ मात्रा पैदा होनेके पश्चात् छाछ जीवाणुओंकी उत्पत्ति रुक जाती है। *

छाछ जीवाणुओंके अतिरिक्त और बहुत से जीवाणु होते हैं जो दूधमें भांति भांतिके परिवर्तन पैदा कर देते हैं। उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(क) एक प्रकारके जीवाणुओंसे दूध दहीके रूपमें बदल जाता है पर खट्टा नहीं होता।

(ख) प्रायः जब पशुको बराबर चारा नहीं मिलता और उसकी पाचन शक्तिमें कुछ गड़बड़ हो जाती है तो दूधमें एक तरहकी नीमकी सी कड़वाहट हो जाती है।

(ग) प्रायः दूध कुछ देर रखनेके बाद तरल नहीं रहता बल्कि कीचड़ सा हो जाता है।

(घ) एक जातिके जीवाणु दूधमें भांति भांतिके रंग पैदा कर देते हैं जिससे दूधके ऊपर लाल, हरी, पीली, नीली मलाई ऐसी पड़ जाती है।

पशुके बीमार होनेपर प्रायः रोगके जीवाणु पशुकी देहसे दूधमें आजाते हैं।

(च) ट्यूबरकिलोसिस (क्षयरोग)—यह बड़ा बुरा रोग है और बच्चों और जवानोंको अधिक होता है। यह बात भी भली भांति सिद्ध हो गई है कि जब ऐनोंमें यह रोग होता है तभी इसके जीवाणु दूधमें आते हैं। ऐसी दशामें प्रायः ऐनों में बतोड़ियां ऐसी पड़ जाती हैं और एक ऐनसे दूध कम आता है अथवा बिलकुल नहीं आता। जब ऐसा हो, पशुको तुरंत किसी डाक्टरको दिखलाओ और दूध दुहना बंद कर दो। जब कभी पशु बहुत बुड्ढा होता है, बहुत दुर्बल होता है, आहार कम और बुरा पाता है, दूध बहुत दिनों तक उससे लिया जाता है और अंधेरे बन्द गन्दे गौशालाओंमें रखा जाता है, तब उसको यह रोग प्रायः हो जाया करता है। पर दूध पीनेवालोंको बहुत अधिक भय न करना चाहिये, क्योंकि ट्यूबरकिल बहुत कम जानवरोंके होता है और तन्दुरुस्त मनुष्यका आहार मार्ग (Alimentary canal) तन्दुरुस्त हालतमें इन जीवाणुओंको उत्पन्न नहीं होने देता। इसके अतिरिक्त दूध उबालनेपर पांच मिनटमें यह जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। अधिकांश कच्चा दूध पीनेवालोंको

* देखो विज्ञान भाग ७ अङ्क ३ पृष्ठ

इस रोगके होनेका भय रहता है, पर वह भी जब कि सदैव कच्चा दूध पीते रहें और दूध भी बीमार पशुका हो।

(छ) टाईफोयड बुख़ार अर्थात मोतीझिरा—यह भी अक्सर दूधके द्वारा फैलता है। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि पशुके दूधमें इसके जीवाणु नहीं होते, प्रायः गंदा पानी दूधमें मिलानेसे उत्पन्न हो जाते हैं।

(ज) हैज़ा–हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि इस रोगके जीवाणु खटासमें जीवित नहीं रह सकते। साधारण दशामें दूधके छाछ–जीवाणु इनका नाश कर डालते हैं, पर दूधके गरम करनेपर दूधके सब जीवाणु मर जाते हैं। गरम दूधमें अगर छूत लगे तब तो इस रोगके जीवाणु खूब ही फैलते हैं। डिपथीरिया, लाल बुखार, आमातिसार आदि (Diphtheria, Scarlet fever, Diarrhoea) रोग भी प्रायः दूधके द्वारा फैलते हैं।

दूधकी रक्षाकी विधि

१--सैलीसिलिक अम्ल (Salicylic acid, 1 in 1000) एक हज़ार हिस्से दूधमें एक हिस्सा छोड़ो। बोरेसिक अम्ल (Boracic acid, 1 in 2000) दो हज़ार हिस्से दूधमें १ हिस्सा छोड़ो फारमेलडीहाइड (Formaldehyde, 1 in 5000) ५००० पांचहज़ार हिस्से दूधमें एक हिस्सा छोड़ो। उपरोक्त तीनों पदार्थोंमेंसे किसी एकको दूधमें डालनेसे एक दिन और एक रात कच्चा दूध नहीं बिगड़ेगा। यह औषधें इस मात्रामें मनुष्यको हानिकारक भी नहीं होंगी और चौबीस घंटे तक दूधमें जीवाणु नहीं उत्पन्न होंगे।

२--छानकर भी दूधमेंसे जीवाणुओंकी संख्या कम की जा सकती है। परन्तु साधारण रीतिसे कपड़ेसे छाननेसे कुछ नहीं होता। दूध और अशुद्ध हो जाता है। छाननेकी दो रीति हैं।

(अ) बालूसे जिस तरह पीनेका पानी छानते हैं उसी प्रकार दूध भी छान सकते हैं, परन्तु यह विधि अच्छी नहीं है, क्योंकि दूधके बहुत कुछ लाभदायक अंश इस प्रकार निकल जाते हैं।

(इ) तुनी हुई रुई तापसे शुद्ध कर लो। इसके पश्चात् कीपमें रखकर इसमेंसे दूध छानो। इस प्रकार दो बार छाननेसे दूधके नब्बे प्रति सैकड़ासे अधिक जीवाणु निकल जाते हैं। परन्तु इस विधिसे छाननेमें बड़ी देर लगती है।

३—प्रथम इसके कि हम तीसरी विधि वर्णन करें हम दो शब्दोंका अर्थ बतलाना चाहते हैं। पासचरीकृत दूध (Pasteurised) अर्थात् परिष्कृत, शुद्ध दूध। चौहत्तर दर्जे शतांश अथवा एकसौ सड़सठ दर्जे फ़ारनहैटसे कुछ ही ऊपर दूधको गरम करनेसे दूधके बिगाड़नेवाले अथवा रोग फैलानेवाले जीवाणु सब मर जाते हैं, परन्तु जीवाणुओंके दाने नष्ट नहीं होते हैं (Spores)। यदि इस दूधको तुरन्त ठण्डा करके चार दर्जे शतांशपर रखें तो इन दानोंसे जीवाणु उत्पन्न नहीं होते। यह ध्यान रखना चाहिये कि ठंडकसे दाने शिथिल पड़ जाते हैं और नष्ट नहीं होते, उचित ताप पानेपर यह फिर उत्पन्न हो सकते हैं। अगर दूधको दो सौ पचास दर्जे फारनहैट पर दो घंटे गरम करें तो दूधके जीवाणु और उनके दाने सब नष्ट हो जायंगे और यह बहुत सरल रीतिसे हो सकता है। एक मोटी चद्दरके बर्तनमें दूध रखकर बर्तनका मुंह ढिबरीसे कसकर बन्द कर दो और अंडीके तेलमें बर्तनको रखकर गरम करो। ऐसे दूधको जीवाणु रहित अर्थात् (Sterilized) स्टरीलाइज़्ड दूध कहते हैं। जीवाणु रहित दूधमें एक तरहकी दुर्गन्ध अथवा पकसायँध सी आ जाती है और उसके गुण भी बदल जाते हैं। इस कारण यह दूध कुछ बहुत अच्छा नहीं होता।

इससे उत्तम रीति यह है कि दूधको आध घंटे उबालो। इससे दूधके जीवाणु सब मर जायंगे, पर थोड़ेसे दाने रह जायंगे। इसके पश्चात् ढककर दूध उठा रखो। दूध ठंडा होनेपर जो पराग दूधमें रह गये हैं उनसे जीवाणु उत्पन्न हो जायंगे। दूसरे

दिन इस दूधको फिर आध घंटे उबालो। अबकी बार उबालनेमें जीवाणु नष्ट हो जायंगे और दानोंकी बहुत ही कम संख्या रह जायगी। इस प्रकारसे बार बार दूधके उबालनेसे दूध कितने ही दिन रह सकता है। दूधको एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें उंडेलनेमें ख़बरदारी रखनी चाहिये कि जीवाणु रहित अथवा शुद्ध दूध फिर न अशुद्ध हो जाय। शुद्ध दूध जीवाणु रहित दूधसे अच्छा होता है। इसके तीन कारण हैं (१) शुद्ध दूध पचता जल्दी है (२) इसका स्वाद नहीं बदलता (३) इसकी चिकनाई और प्रोटीन अर्थात् छेनामें कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं होता।

दूधकी बालाईमें अर्थात् मलाईमें चिकनाई अधिक होती है, और अन्य अंश कम होते हैं। इस कारण जीवाणुओंको इसमें इतना उत्तम आहार नहीं मिलता जितना कि दूधमें मिलता है। इसी कारण मलाईमें जीवाणुओंकी संख्या कम होती है और मलाई देरमें बिगड़ती हैं और उससे रोग कम फैल सकते हैं। मक्खनमें और भी कम जीवाणु होते हैं, क्योंकि इसमें चिकनाई और अधिक होती है। इस कारण मक्खन मलाईसे भी ज़्यादा ठहरता है। घी अति उत्तम पदार्थ है इसमें दूधके बने और पदार्थोंसे कम जीवाणु होते हैं। और उन सब से ज़्यादा देर तक ठहरता है। अगर घीको किसी बर्तनमें उबालें तो जितने दर्जेपर घी उबालता है उतनी तापमें कोई जीवाणु अथवा दाना जीवित नहीं रह सकता और गरम ही गरम बर्तनको खूब कसकर बन्द करके घीको उठा रक्खें तो महीनों नहीं बिगड़ेगा। दही और पनीर केवल जीवाणुओंकी ही सहायतासे बनते हैं। किसी अगले लेखमें जहां जीवाणुओंके व्यवसायका वर्णन होगा इनकी विधि बतलाई जायगी। मांसमें जीवाणुकी संख्या बहुत कम होती है और परोपजीवियोंकी (Parasites) संख्या अधिक होती है। इसका कारण यह है कि मांसमें एक प्रकारकी खटास उत्पन्न हो जाती है। परन्तु मांसके द्वारा अकसर रोग फैलते हैं। इसका कारण गंदी छुरियोंका प्रयोग करना अथवा मांसपर गन्दी धूलका गिरना या मक्खीका बैठना है, परन्तु मांसके पकानेमें यह सब नष्ट हो जाते हैं। मांसको उबालकर अथवा घीमें तलकर पकानेकी रीति अति उत्तम है और केवल आगपर भून कर पकानेसे मांसके अन्दर प्रायः दाने जीवित रह जाते हैं।

मलाईकी बरफ़में भी जीवाणु होते हैं। जिस दूधसे बरफ बनाई जाती है उसमें जो जीवाणु होते हैं वही बरफ़में रहते हैं और जिस दूधमें पानी मिला कर बरफ़ बनाते हैं उसमें पानीके भी जीवाणु आ जाते हैं। जब तक कि बरफ़ ठण्डी रहती है इन जीवाणुओंकी संख्या नहीं बढ़ती। पानीकी बरफमें जिसमें वायुके बुलबुले ऐसे दिखाई देते हैं जीवाणुओंकी संख्या अधिक होती है और सम्भव है कि इनमें रोगके जीवाणु हों।

रोटीमें जीवाणु बहुत कम होते हैं और पकानेके समय रोटी बिलकुल शुद्ध हो जाती है, परन्तु रोटीके अन्दर सम्भव है कि रोटी जीवाणु रहित हो। इसीलिए हलके पतले खूब सिके हुए फुलके खाने चाहियें।

पैमाइश

[ले०—श्री० नन्दलाल जी तथा श्रीयुत मुर्लीधर, एल.ए. जी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

५—पैमाइशके यंत्र और उनका प्रयोग

नीचे दिए हुए (आलात) यंत्र साधारण पैमाइशके काममें आते हैं :—

१—(तख़ता मुसत्ता) समतल तख़ता
२—शिस्त
३—जरीब
४—सूजा
५—लट्ठा

६—राइट एँगिल या चरखी (जब राइट एँगिल न हो तो चरखीसे काम लेते हैं)
७—सुहावल
८—कुतुबनुमा
९—झंडियां

१. समतल तख़ता (तख़ता मुसत्ता)—यह किसी मुलायम लकड़ीका चौकोर, आयत-क्षेत्र,तख़ता होता है, जिसमें आलपीन गाड़ी जा सकती है। पैमाइशके महकमेका तख़ता सदा २४"×३०"×१" अर्थात् ३० इञ्च लम्बा, २४ इञ्च चौड़ा और १ इञ्च मोटा होता है। इसके नीचे लकड़ीकी पटरियां लगभग २ इञ्च चौड़ी और एक इञ्च मोटी इसलिए लगाई जाती हैं कि जलवायुके प्रभावसे तख़ता टेढ़ा न पड़ जावे। तख़तेकेलिए या तो देवदारकी लकड़ी या कोई और ऐसी लकड़ी, जिसपर जलवायुका प्रभाव कम पड़ता हो, लेनी चाहये।

इस तख़तेके नीचे बीचों बीचमें एक बड़ा पीतलका गोल पत्र होता है जो पेंचोंसे कसा होता है और जिसके बीचमें एक चूड़ी कटा हुवा ऐसा छिद्र होता है कि जिसमें तिपाईके नीचेसे पेंच कसा जा सकता है। तख़तेको तिपाईपर कसनेके वास्ते एक बड़ा पेंच होता है जिसके एक सिरेपर ऐसी चूड़ी कटी होती है कि वह तख़तेके नीचे पत्रके छिद्रमें कसा जा सकता है और दूसरे सिरेपर चुटकीवाली ढिबरी होती है जिससे कसने और ढीला करनेमें आसानी हो। इस पेंचके कस देनेसे तख़ता ख़ूब कस जाता है और ढीला कर देनेपर जैसे चाहें तख़तेको घुमा सकते हैं। तख़तेके साथ एक तिपाई होती है जिसकी टांगोंके ऊपरी सिरोंपर एक तिकोनी लकड़ी पेंचोंसे कसी होती है। यह पेच टांगोंके खोलने या बंद करनेमें सुगमतासे कसे या ढीले किये जानेके वास्ते लगे होते हैं, जिसमें तख़ता नीचा करनेमें दिक़त न हो। टांगोंके नीचेके सिरोंपर लोहेकी नोकीली टोपी लगी होती हैं, जिससे तिपाईको ज़मीनपर मज़बूत जमा सकते हैं। तिकोनी लकड़ीके बीचमें एक छिद्र होता है जिसमें तख़तेका नीचेवाला पेंच ठीक बैठ जाता है। इसलिए तख़तेको, काममें लानेकेलिए तिपाईपर रखकर पेंचोंसे कस देते हैं। तख़तेमें लोहेकी कीलें या पेंच नहीं लगाने चाहियें,जिसमें कुतुबनुमा काममें लानेमें कोई दिक़्त न पड़े। यह तख़ता मुसत्ता छोटे रक़बोंके हदबस्तकेलिए, जहां आबादी या जंगलके कारण त्रिभुज रूपमें पैमाइश नहीं हो सकती, काममें आता है। उसको ऐसे रक़बोंका किश्तवार करनेमें भी काममें लाते हैं जिनका हदबस्त टरावर्स द्वारा नहीं हुआ है।

२. शिस्त—यह १२ इञ्चसे ३० इञ्चतक लम्बी लकड़ी या किसी धातुकी पटरी होती है जो $\frac{1}{3}$ इञ्च मोटी और $1\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी होती है। इसके दोनों सिरोंपर पीतलके दो टुकड़े समकोणपर लगे होते हैं। कभी कभी इसके किनारे लम्बानमें ढालू होते हैं और कभी कभी पटरीपर नापके चिन्ह भी लगे होते हैं। पीतलके इन दोनों टुकड़ोंके बीचमें एक एक खड़ी झिरी होती है, जिनमेंसे एक कुछ अधिक चौड़ी होती है और उसके बीचमें एक खड़ा बाल या तार बंधा होता है। यह सिरा काममें लाते समय झंडीकी ओर रखते हैं। दूसरे टुकड़ेमें जो आंखकी ओर रहता है झिरी बिल्कुल बारीक होती है और कभी कभी उसके बीचमें या दोनों सिरोंपर छोटे छोटे छिद्र बने होते हैं। (देखिये चित्र १) पैमाइशमें यह समतल तख़तेके
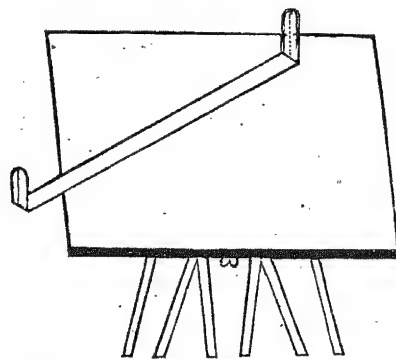
चित्र १—समतल तख़्ता (तख़्ता मुसत्ता), तिपाई और शिस्त

साथ नकशेपर भिन्न भिन्न स्थानोंकी ठीक दिशा और दो रेखाओंके बीचका कोण निश्चय करनेमें काम आती है।

३. जरीब—यह एक लोहेकी ज़ंजीर होती है, जो ज़मीन नापनेके काममें आती है। जरीब भिन्न भिन्न लम्बाइयोंकी होती हैं और प्रत्येकके १०० बराबरके भाग किये होते हैं, जिन्हें कड़ी कहते हैं। गंटरी जरीब जो बहुत प्रचलित है ६६ फ़ुट लम्बी होती है और $\frac{1}{8}$ इंच मोटे लोहेकी छड़से बनाई जाती है। इसमें १०० लम्बे लम्बे टुकड़े होते हैं जो दोनों सिरोंपर तीन छोटे छोटे छल्लोंसे जुड़े होते हैं। यह टुकड़े अपने इधर उधरके दूसरे छल्लोंके बीच तक ६६ फ़ुट या ७.९२ इंच लम्बे होते हैं। प्रत्येक टुकड़ेको कड़ी कहते हैं। ज़ंजीर यानी जरीबमें आठ स्थानोंपर (यानी हर दस कड़ीपर) पीतलके फूल लगे होते हैं और दोनों सिरोंपर पीतलके दस्ते होते हैं, जो जरीबकी लम्बाईमें शामिल होते हैं। पीतलके फूल दस दस कड़ीके अंतरसे गिननेके सुभीतेकेलिए लगाये जाते हैं। उनका शुमार जरीबके दोनों सिरोंसे बीचके मुकाम तक होता है। जो दो फूल कि जरीबके दोनों सिरोंसे दस दस कड़ीके अंतरपर होते हैं उनमें एक एक नोक होती है। जो फूल सिरोंसे २० कड़ीकी दूरीपर होते हैं, उनपर दो नोकें, ३० कड़ीकी दूरीवाले फूलोंमें तीन नोकें और ४ कड़ी वालेपर चार नोकें होती हैं। बीचोंबीचका फूल बिल्कुल गोल होता है। इस प्रकार फूलों और दस्तोंके बीचका अंतर १०, २०, ३०, ४० और ५० कड़ी होता है, परन्तु नापके चिन्ह दोनों सिरोंसे लगे होते हैं। इसलिए यदि जरीब फैलाई जावे तो जो फूल जरीबके एक सिरेसे १० कड़ीपर है वह दूसरे सिरेसे ९० कड़ीपर होगा। इसी प्रकार दो तीन और चार नोकवाले फूल जो एक सिरेसे २०, ३० और ४० कड़ीपर हैं वह दूसरे सिरेसे ८०, ७० और ६० कड़ीपर होंगे। इसलिए जरीब पढ़ते समय यह सदा देख लेना चाहिये कि बीचका गोल फूल यानी ५० कड़ीवाला चिन्ह हमारे पढ़नेके बिन्दुसे आगे है या पीछे। यह ध्यान देकर देख लेना चाहिये कि जरीबके दोनों सिरोंपरकी कड़ियां और सब कड़ियोंसे छोटी होती हैं। जिसका कारण यह है कि दस्तोंकी लम्बाई जरीबके ६६ फ़ुटमें शामिल है यानी दस्ता और सिरेपरकी छोटी कड़ी दोनोंकी लम्बाई एक पूरी कड़ीके बराबर होती है। इसलिए अगले जरीबकश (खींचने वाले) को चाहिये कि सूजा ठीक दस्तेकी बगलमें गाड़े और पीछेवाले आदमीको जरीब मिलाते समय दस्ता सूजेसे बिल्कुल सटाकर रखना चाहिये, जिससे लम्बाईमें सूजेकी मोटाईसे कुछ फ़र्क न आवे। (देखिये चित्र २)
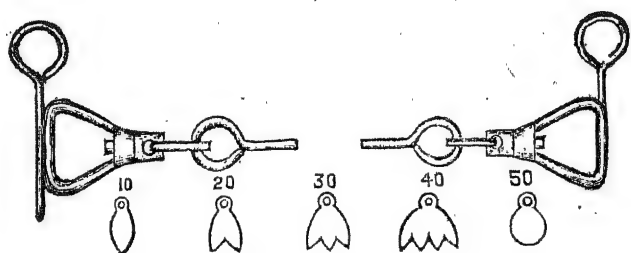
चित्र २—जरीब और फूल

४. सूजा—प्रत्येक जरीबके साथ १२ या १५ इंच लम्बे दस लोहेके सूजे होते हैं, जिनका एक सिरा नोकीला होता है और दूसरे सिरेपर गोल छल्ला सा बना होता है। जरीबसे नापते समय यह सूजे जरीबके सिरोंपर गाड़नेके काममें आते हैं।

५. लट्ठा—यह एक सीधी लकड़ी या बांसका होता है, जो दस या बीस कड़ी लम्बा होता है। इसके दोनों सिरोंपर पीतल या लोहेकी शाम लगी होती हैं। यह उन छोटी छोटी लम्बाइयोंके नापनेके काम आता है जो जरीबपर लम्बके रूपमें हैं।

नोट—लट्ठे और गट्ठेमें यह भेद है कि लट्ठा सदा गंटरी जरीबके साथ काम आता है और निश्चित लम्बाई यानी दस या बीस कड़ीका होता है, परन्तु गट्ठा शाहजहानी जरीबके साथ काममें आता है और स्थानीय जरीबका $\frac{१}{२०}$ होता है, यद्यपि सरकारी गट्ठा $२\frac{३}{४}$ गज़ या ९९ इंचका लम्बा होता है। स्पष्ट है कि गट्ठेकी लम्बाई स्थानीय जरीबके अनुसार बदलती रहती है।

९. राइटएंगिल—यह तिकोना खोखला पीतलका डिब्बा होता है, जिसके नीचे एक दस्ता लगा होता है और दस्तेके सिरेमें एक सूराख बना होता है। डिब्बेके भीतर दीवारोंपर एक एक शीशेका टुकड़ा आमने सामने लगा रहता है, जिनके बीचका कोण ४५° का होता है। शीशोंके ऊपर पीतलके भागोंमें दोनों ओर दो चौकोर झिरी होती हैं। इसका प्रयोग जरीबी लैनपर भिन्न भिन्न स्थानोंसे लम्ब डालनेमें होता है। [देखिये चित्र ३]

चित्र ३—राइट एंगिल (optical square)

राइटएंगिलका प्रयोग—जिस लैनपर लम्ब डालना हो, उस पर इस प्रकार खड़े होते हैं कि उसके दोनों सिरोंकी झंडियोंमेंसे एक तो बिल्कुल सामने हो और एक पीछे। जिस स्थानका उस लैनपर लम्ब उठाना है उसी स्थानपर एक आदमी सीधा लट्ठा लेकर खड़ा करते हैं। इसके पश्चात् राइटएंगिलको अपनी आंखके सामने इस प्रकार रखते हैं कि उसका खुला हुआ मुंह उस ओर रहे जिधर आदमी लट्ठा लिये खड़ा है। (राइटएँगिल काममें लाते समय उसके दस्तेमें एक सुहावल लगाना चाहिये, जिसका तागा केवल इतना लम्बा हो कि जब राइटएंगिल आंखके सामने हो तो सुहावल ज़मीनसे कुछ उठी रहे)। अब सामनेके शीशेपरकी झिरीके द्वारा सामनेवाली झंडीको देखते हैं और सामनेके शीशेमें देखते हैं कि ठीक झिरीके नीचे किस चीज की परछाई पड़ती है। जिस वस्तुकी परछाईं दीखती होगी, वही चीज़, उस स्थानपर जहां सुहावल ज़मीनसे मिलता है, जरीबी लैनसे समकोण बनाती होगी। अब यह देखना चाहिये कि लट्ठा उस लैनसे आगे पड़ता है या पीछे जो तुम्हारे कंधे और उस वस्तुके बीचमें होगी जिसकी परछाईं तुमने शीशेमें देखी है। यदि आगे हो तो जरीबी लैनपर धीरे धीरे आगे बढ़ो और यदि पीछे हो तो उसी प्रकार पीछे हटो, यहां तक कि लट्ठेकी मूर्ति सामनेके शीशेपर उस झंडीके बिल्कुल नीचे दिखाई पड़े जिसको तुम झिरियोंसे देखते हो। जब ऐसा स्थान आवे जहां झंडी और लट्ठा बिल्कुल ऊपर नीचे झिरी और शीशेमें दिखाई पड़ें तो समझो कि जरीबी लैनके उस विन्दुपर जहां राइटएंगिलका सुहावल ज़मीनसे मिलता है अब लट्ठेका स्थान समकोण बना रहा है। अब इन दोनों विन्दुओंके बीचका सीधा फासिला जो नापनेसे मिलेगा वह उस लैनपर लम्ब होगा।

जरीबी लैनपर सुहावलवाले विन्दुका फासिला (यानी जहांसे लम्ब उठा है) उस स्थानसे शुमार होगा जहांसे जरीब डालनी शुरू हुई थी और यह कहा जायगा कि चलनेके स्थानसे इतनी जरीब और कड़ीकी दूरीपर इतनी कड़ीका लम्ब सीधे या बाएँ हाथकी तरफ है। यदि पैमाइशके लिए राइटएंगिल न मिल सके तो वही काम चरखीसे भी किया जा सकता है।

नोट १—लम्ब उठानेवालेको उचित है कि राइट एँगिलमें देखनेसे पहिले ऐसे स्थानपर खड़ा हो जहांसे लम्ब उठानेके स्थानका लट्ठा उसके कँधेकी सीधमें हो; तब राइट एंगिलमें देखे।

नोट २—साधारणतया $१\frac{१}{२}$ जरीबसे ज़्यादा

लम्बा लम्ब न उठाना चाहिये। लम्बे लम्ब लेनेमें अशुद्धता यह होती है कि अक्सर राइट एंगिलके शीशोंके बीचका कोण ४५° से घट बढ़ जाता है और वह जरीबी लैनपर ठीक समकोण नहीं बनाता। इस कारण जब कोण अशुद्ध होजाता है तो उसका असर मेंड़ोंपर पड़ता है, परन्तु जब लम्ब छोटे होते हैं तो यह अशुद्धता इतनी कम होती है कि मालूम नहीं होती और जब लम्ब बड़े होते हैं तो अशुद्धता बहुत हो जाती है और स्पष्ट मालूम होने लगती है।

७. चरखी—यह लकड़ीका गोल या चौकोर छोटा तख़्ता होता है जिसके नीचे लकड़ीका लट्ठा लगभग ५ फुटका लगा होता है,जिससे वह ज़मीनपर गाड़ा जा सके। तख़्तेके ऊपर दो सरल रेखाएं एक दूसरेको समकोण पर काटती हुई बनी होती हैं। इसकी सहायतासे लम्ब इस प्रकार उठाते हैं कि चरखीपरकी एक रेखाको जरीबी लैनके आगेवाली झंडीकी सीधमें करके ऐसे स्थानपर उसे गाड़ते हैं कि उस स्थानका लट्ठा या झंडी जहांका लम्ब उठाना है दूसरी रेखाकी सीधमें आ जावे।

८. सुहावल—यह एक सीसे या पीतलकी सुराहीके आकारकी छोटी गोली होती है, जिसके ऊपर तागा बांधनेके लिए एक छोटा सा छल्ला रहता है और पेंदी नोकीली होती है। इसको तख़्ता मुसत्ता और राइटएंगिलके नीचे लटका कर विन्दु की स्थिति मालूम की जाती है।

९ कुतुबनुमा—हिन्दुस्तानके पैमाइशके मुहकमेमें कुतुबनुमा पीतलके बक्सके आकारका होता है जो लम्बाइमें ६ से ८ इं० तक और चौड़ाई में १ इं० होता है। इसके ऊपर एक शीशेका ढक्कन लगा होता है और बीचोंबीचमें एक कीलीपर एक हलका चुम्बक घूमता रहता है। बक्सके एक सिरेपर एक पेंच होता है जिसको कस देनेसे सुई कीलीसे ऊपर उठ जाती है और फिर ढीला कर देनेसे कीलीपर आकर घूमने लगती है। यह पेंच काम करते समय ढीला कर दिया जाता है और काम कर चुकनेके पीछे हमेशा कस दिया जाता है, जिससे कीलीकी बारीक नोक सुईके सदा घूमते रहनेसे खराब न हो जावे और बराबर हिलते रहनेसे और झटके खानेसे चुम्बक बिगड़ न जाय। चुम्बकका एक सिरा उत्तरकी ओर और दूसरा दक्खिनकी ओर रहता है। यदि चुम्बक बिल्कुल ज़ोरसे हिला भी दिया जाय, तो भी वही सिरा चुम्बकके ठहरनेपर उत्तरकी ओर होगा जो पहले था। इस सिरेपर एक निशान बना रहता है। इस यन्त्रको दिशा मालूम करनेके काममें लाते हैं। (देखिये चित्र ४)

१०. झंडी - यह पतले सीधे लम्बे बांसकी बनी होती है, जो १ या $१\frac{१}{२}$ इंच मोटा होता है और १० से १५ फुट लम्बा होता है। प्रत्येक बांसके ऊपरके सिरोंपर एक लाल और सफ़ेद कपड़ेका तिकोना फरेरा लगा होता है। नीचेके सिरेपर लोहेकी नोकीली शाम लगी होती है। यह उन स्थानोंपर गाड़नेके काम आती है जो पैमाइश करनेकेलिए निश्चित कर लिये गये हों। यदि बहुत लम्बे फ़ासिले नापने हों या ज़मीन बहुत ऊंची नीची हो तो ३० फुट तक लम्बी झंडी काममें लाते हैं।

चित्र ४—दिशा सूचक या कुतुबनुमा।
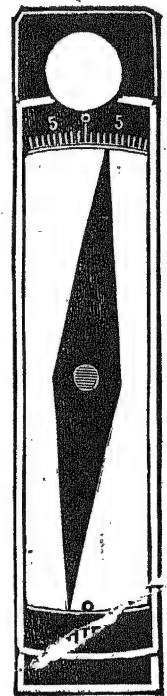
६—नक़शा खींचनेके यंत्र (आलात)

इसके पहिले कि हम पैमाइश करने और नक़शा बनानेकी विधि बतलावें यह आवश्यक मालूम होता है कि नक़शा खींचनेके वह यंत्र और उनका प्रयोग बतला दिया जावे जो साधारण

नक़शेके सम्बन्धमें काम आते हैं। यह यंत्र हैं:—

(१) परकार (२) बोपेन (३) ड्राइंगपेन (४) सीधी पटरी (५) पैमाना (६) गुनियां (७) रक़बा निकालनेकी कंघी।

(१) परकार—यह दो प्रकारके होते हैं। एक सादे और दूसरे पिन्सल या रोशनाईवाले। इसमें दो टांगें होती हैं, जिनके ऊपरके सिरे एक दूसरेसे रिवेट पेच द्वारा जुड़े होते हैं, जिसमें उनको ज़रूरतके मुवाफ़िक़ कम या ज़्यादा फैला कर जितनी भी दूरीपर चाहें रख सकते हैं। उनके नीचेके सिरे नोकदार होते हैं ता कि उनकी सहायतासे पैमानेपरकी छोटी छोटी दूरी नापी जा सके (देखो चित्र ५)। रिवेट पेचको परकारकी कजीसे जैसी भी आवश्यकता हो कड़ा और ढीला कर सकते हैं। यह यंत्र नक़शा और पैमानेपर दूरी नापने और वृत्त आदि बनानेके काम आते हैं। किसी किसी परकारकी एक टांग बीचसे अलहदा हो सकती है और उसमें स्याही या पिन्सल लगानेका टुकड़ा लगा कर वृत्त खींचे जा सकते हैं। परकार पकड़नेकी यह विधि है कि उसकी एक टांग अंगूठा
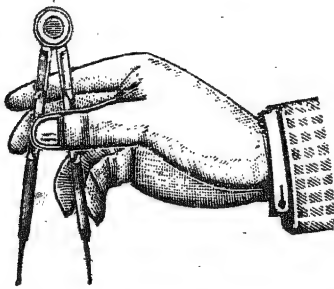
चित्र ५—परकार और उसके पकड़नेकी तरकीब।

और बीचकी अंगुलीसे पकड़ी जावे और दूसरी टांग तीसरी और चौथी उंगलीके बीचमें रखी जावे, जिससे छोटे बड़े फासिले नापनेमें दूसरे हाथकी सहायता न लेनी पड़े। परकार पैमानेपर खड़ा न रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे उसकी नोकें मोटी हो जाती हैं और फिर छोटे फ़ासिले ठीक नहीं नापे जा सकते।

(२) बोपेन—यह छोटे छोटे परकार होते हैं, जिनकी एक टांग नोकीली होती है और दूसरी टांगमें या तो पिन्सल लगानेकी जगह होती है या स्याही भरनेके लिए दो जीभ लगी होती हैं, जो पेंचसे पतली या मोटी रेखा खींचनेके लिए कसी या ढीलीकी जा सकती हैं। यह छोटे वृत्त या गोलाई बनानेके काम आता है।

(३) ड्राइंग पैन—यह एक क़लम होता है, जिसमें निबके स्थानपर लोहेकी दो जीभ लगी होती हैं, जिनके बीचका अंतर एक पेंचसे घटाया या बढ़ाया जा सकता है, ताकि जितनी मोटी या बारीक लकीर बनानी हो उसीके अनुसार इन ज़बानोंको घटा या बढ़ा सकें। यह सीधी लकीरें खींचनेमें काम आती है।

चित्र ७—पेन।

नोट—इसको काममें लाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस ओरको रेखा खींचना है उधरको क़लम कुछ थोड़ा सा झुका रहे और उसकी दोनों ज़बानें काग़ज़पर मिली रखी जावें।

(४) पटरी—यह एक लकड़ी या किसी धातुकी साधारण सीधी पटरी होती है, जो सीधी रेखा खींचनेमें काम आती है। उसको काममें लानेसे पहिले यह देखना अति आवश्यक है कि उसका किनारा बिलकुल सीधा है या नहीं। इसकी परीक्षा इस प्रकार हो सकती है कि दो पटरियोंके किनारोंको आपसमें मिलाकर उनके बीचसे आकाशकी ओर देखा जावे। यदि प्रकाश न देख पड़े तो उनको ठीक मानना चाहिये, नहीं तो उनसे काम न लेना चाहिये।

(५) पैमाना—यह दो प्रकारके होते हैं। एक तो सादा पैमाना, जिसको कभी कभी बीघेका

पैमाने भी कहते हैं। दूसरा डाईगोनेल इस्केल जिसको गंटरी पैमाना या सरवरी पैमाना भी कहते हैं। सादा पैमाना किसी सीधी पटरीपर चिन्ह लगा कर बनाया जाता है। नक़शा बनानेके लिए इसका प्रत्येक चिन्ह ज़मीनके किसी फ़ासिले जैसे एक जरीब या एक मीलके बराबर मान लेते हैं। पैमानेके किसी एक सिरेपरका एक चिन्ह फिर दस बराबर भागोंमें विभक्त किया जाता है, जिनमेंसे हर एक भाग ऊपरके माने हुए फ़ासिलेके दसवें भागको बतलाता है। कभी कभी एक चिन्हको दस बराबर भागोंमें विभक्त करके प्रत्येक छोटे चिन्हको, विशेष विधिसे जो आगे बतलाई जावेगी, दस बराबर भागोंमें फिर विभक्त करते हैं। इस प्रकारके पैमानेको डाईगोनेल स्केल कहते हैं।
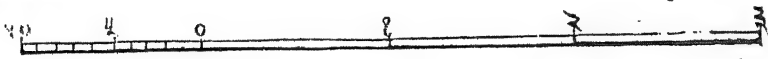
चित्र ७—साधारण पैमाना (माप दण्ड)

चित्र ८

मानलो कि चित्र ८ एक पीतलकी पटरी का है, जिसके दोनों किनारोंकी समानान्तर रेखाएं क ख, त थ इंचोंमें विभक्त हैं और इंचोंके चिन्ह एक दूसरेसे खड़ी रेखाओंसे मिलाये गये हैं। कख और तथ जो दो समानान्तर रेखाएँ हैं उनके बीचका अंतर कत या सद नौ समानान्तर रेखाओंसे दस बराबर भागोंमें बांटा गया है। इस प्रकार इन समानान्तर रेखाओंकी सहायतासे सब खड़ी रेखाएं दस बराबर भागोंमें बँट गई हैं।

इस पटरीका एक सिरेके इंच द त और क स दस बराबर भागोंमें बंटे हैं और इन भागोंके चिन्होंपर शून्यसे दस तककी संख्या अंकोंमें किनारोंपर लिखी हैं। अब यह चिन्ह अपने सामनेके चिन्होंसे इस प्रकार रेखाओं द्वारा जोड़ दिये हैं कि शून्य एकसे और एक दोसे और अन्तमें नौ दससे जुड़ा हुआ है। अब यदि इन रेखाओंपर हम एक सिरेसे दूसरे सिरे तक क़लम दौड़ायें तो अंत तक पहुंचनेमें $\frac{१}{१०}$ इंच पहिले सिरेसे आगे बढ़ जायगी।

यह $\frac{१}{१०}$ इंचका अंतर पड़ी हुई समानान्तर रेखाओंसे दस बराबर भागोंमें बट जाता है। इस लिए जब क़लम एक पड़ी रेखासे दूसरी पड़ी समानान्तर रेखापर पहुंचता है तो $\frac{१}{१०}$ का $\frac{१}{१०}$ इंच आगे बढ़ता है। इस प्रकार पहिलीरेखा पर $\frac{१}{१००}$ इंच, दूसरीपर $\frac{२}{१००}$ इंच और नवींपर $\frac{९}{१००}$ इंच तक ठीक ठीक नाप सकते हैं।

मानलो कि एक रेखा है जिसकी लम्बाई मालूम करनी है। परकारसे इस रेखाको नाप कर जब उस परकारको पैमानेपर रखते हैं तो मालूम होता है कि वह २·३ इंचसे बड़ी और २·४ से छोटी है। उसकी ठीक लम्बाई मालूम करनेके लिए हम परकारकी एक नोकको दूसरे इंचकी खड़ी रेखापर और दूसरी नोकको ·३ और ·४ इंचके चिन्होंके बीचमें रखकर उसको खड़ी रेखाके

समानान्तर ऊपरको बढ़ायेंगे जब तककि दूसरी नोक किसी ऐसे बिन्दुपर न आ जाय जहांपर कि खड़ी और पड़ी समानान्तर रेखाएं एक दूसरेको काटती हैं। मानलो कि इस प्रकार नापनेसे हमारा परकार तीसरी खड़ी और छठी पड़ी रेखाके कटानपर पहुंचती है तो दी हुई रेखाकी लम्बाई ३·३६ इंच होगी।

यदि यह रेखा १६ इंच प्रति मीलके नक़शेपर हो तो ज़मीनपर उसकी लम्बाई ११ जरीब और ८० कड़ी होगी। यदि और कोई पैमाना हो तो उसके अनुसार ज़मीनकी लम्बाई मालूम कर —कते हैं।

भारतीय शक्ति विज्ञान

[ले०—साहित्याचार्य्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री]

सभी प्राणी अपने अपने हितके काम करते हैं और दुःखोंको दूर करते हैं। कुछ ऐसे भी प्राणी देखे जाते हैं जो न तो अपने दुःखोंको दूर कर सकते हैं और न अपने कल्याणके काम ही कर सकते हैं। इसका कारण जब कोई उनसे पूछता है उस समय वे उत्तर देते हैं—"भाई, क्या करें, शक्ति नहीं है।" कुछ ऐसे भी प्राणी हैं, जो बड़ेसे बड़े कठिन काम कर डालते हैं। उस समय लोग कहते हैं—"भाई, यह बड़ा शक्तिमान् है।" इस प्रकार शक्ति शब्दका प्रयोग अनेक अवसरोंपर किया जाता है। हम इस बातका विचार करना चाहते हैं कि प्राचीन भारतीयोंने शक्तिका क्या स्वरूप समझा था।

प्रायः संस्कृतके शब्द उसी अर्थका बोधन करते हैं जो उनकी व्युत्पत्तिसे होता है। इसीलिए शक्ति शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ क्या है,यह जानना चाहिये। निघण्टुटीकाकारने शक्ति शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है-"शक्यते कर्तुम्, शक्यते वातया परलोकं जेतुम्" अर्थात् जिसके द्वारा कार्य किया जाय, अथवा जो स्वयं कार्यरूपमें परिणत हो वह शक्ति है। इसी बातको समझकर शङ्कराचार्यने कहा है—"कारणस्यात्मभूता शक्तिः शक्तेश्चात्मभूतं कार्यम्"। इससे मालूम पड़ता है कि कारणका जो प्राण वह शक्ति है और शक्तिका जो विकसित स्वरूप वह कार्य है। शक्तिका ही व्यक्तरूप कार्य है,यह बात भगवान् शङ्कर कहते हैं।

Philosoph दर्शन]

वेदोंमें भी शक्ति शब्दका प्रयोग किया गया है। अब देखिये कि वहां इसका क्या अर्थ समझा गया है।

> स्तोमेनहि दिवि देवासो
> अग्निमजीजनच्छक्तिभी रोदसिप्राम्
> तमुकृण्रावंस्त्रेधाभुवे
> कंसओषधी पचति विश्वरूपा

(ऋग्वेद संहिता)

इस मंत्रकी व्याख्या निरुक्तकारने ऐसी की है— स्तुतिके द्वारा देवताओंने जिस अग्निकी सृष्टि की, उसी अग्निके पृथिवी आकाश स्वर्गको पूरा करनेकेलिए शक्ति (कर्म) के द्वारा तीन भाग किये, उसीका तीसरा अग्नि सूर्य है।

अर्थात् देवताओंने स्तुतिके द्वारा, शक्ति (कर्म) केद्वारा, त्रिभुवन व्यापक और त्रिभुवन पूरक जिस सूर्य नामक अग्निकी सृष्टि की उसी अग्निको लोक कल्याणकेलिए आदित्य, विद्युत् और अग्नि तीन रूपोंमें विभक्त किया। यह तीनों व्यापक हैं और लोक कल्याणकेलिए ओषधियोंको पकाते हैं। अग्निसे ही मनुष्योंके सब काम होते हैं।

जलका वाचक एक "वार्" शब्द है, इसका हेतु बतलानेवाला अथर्ववेदमें एक मन्त्र है—

"अपकामं स्पन्दमाना अवीवरत् वोहि कम्,
इन्द्रोवः शक्तिभिर्देवी तस्माद्वार् नामवोहितम्"।

सायणाचार्य इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—"इन्द्रने शक्ति (हेतु) के द्वारा जलको वरण किया अर्थात् अपने अधीन करनेकी इच्छा की।

अर्थात् जल अपनी इच्छासे बहते थे। इन्द्रने हेतुके द्वारा इन्हें अपने अधीन किया। इन्द्रके द्वारा

वृत होनेके कारण "वार्" नाम हुआ। इस मन्त्रमें शक्ति शब्दका प्रयोग हेतुके अर्थमें किया गया है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्,
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढ़ाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि,
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥
(श्वेताश्वतरोपनिषत्)

यहां शक्ति शब्दका प्रयोग त्रिगुणमयी प्रकृतिके अर्थमें किया गया है, यह प्रकृति जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाली कही जाती है।

योगवाशिष्ठ रामायणके निर्वाण प्रकरणमें भी शक्ति शब्दका प्रयोग हुआ है।

"अप्रमेयस्य शान्तस्य शिवस्य परमात्मनः,
सौम्य चिन्मात्ररूपस्य सर्वस्यानाकृतेरपि।
इच्छासत्ता व्योमसत्ता कालसत्ता तथैवच,
तथा नियतिसत्ता च महासत्ता च सुव्रत।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः कर्तृताकर्तृतापिच,
इत्यादिकानां शक्तीनामन्तोनास्ति शिवात्मनः"॥

वसिष्ठने परमात्मासे पूछा — "इस महान् देवकी शक्तिका क्या स्वरूप है, उसके क्या भेद हैं, और कर्म्म कौनसे हैं"। इसके उत्तरमें परमात्माने कहा—"पहले शांत अप्रमेय चिन्मात्र निर्विकार और मंगलमय परमात्माकी इच्छासत्ता उत्पन्न होती है, पुनः क्रमसे व्योमसत्ता, कालसत्ता और नियतिसत्ता उत्पन्न होती है। इन सत्ताओंपर रहनेवाली सत्ताका नाम महासत्ता है। इसलिए परमात्माकी ज्ञान क्रिया कर्तृत्व और अकर्तृत्वरूप शक्तियोंकी गणना नहीं की जा सकती।

इस प्रकार वस्तुतः शक्ति और शक्तिमान्का अभेद ही बतलाया गया। इन दोनोंमें भेद मायाके कारण होता है। वह गुण कर्म और शक्तिके कारण परब्रह्मकी अनन्तता ही बतलाती है। योगवाशिष्ठ रामायणसे जाना जाता है कि परिच्छिन्न और अपरिच्छिन्न सत्ता ही शक्ति है। सब पदार्थोंमें शक्ति वर्तमान है। शक्तिके ही कारण द्रव्य गुण आदि नामोंके द्वारा पदार्थोंका व्यवहार होता है। देशकाल मन बुद्धि कर्म इन्द्रिय आदि नामोंसे उसीका व्यवहार होता है, इससे सिद्ध होता है कि सत्ता ही शक्ति है। साङ्ख्यदर्शन कारने लिखा है—

शक्त्युद्भवानुद्भवभ्यां नाशक्योपदेशः। १। ११।

सभी पदार्थोंका स्वभाव अनपायी होता है, स्वभावका नाश कभी नहीं होता। आत्मा भी यदि अपना कुछ स्वभाव रखता है तो उसका कभी मोक्ष नहीं हो सकता। यहां कुछ लोगोंको सन्देह होता है कि स्वभाव अनपायी कैसे? श्वेत वस्त्र काला अथवा किसी दूसरे रंगका बनाया जाता है, बीजका अङ्कुर उत्पन्न करनेका स्वभाव नष्ट किया जा सकता है। इस सन्देहका उत्तर साङ्ख्य प्रवचन भाष्यमें इस प्रकार किया गया है—

श्वेतवस्त्रका श्वेतरूप नष्ट नहीं होता है और न बीजका अङ्कुर उत्पन्न करनेकी शक्ति ही नष्ट होती है। अतएव धोबी लालरंग हटाकर वस्त्रको श्वेत करता है। योगी अपने सङ्कल्पसे बीजमें अङ्कुर उत्पन्न करनेकी शक्ति उत्पन्न कर देता है। विज्ञान भिक्षु कहते हैं कि "कार्यशक्तिमत्वमेवोपादानकारणत्वम्" अर्थात् शक्तिकार्यकी अनागत अवस्थाकाही नाम है।

पूर्व मीमांसादर्शनमें शक्ति शब्दका प्रयोग सामर्थ्य अर्थमें किया गया है—

"तदशक्तिश्चानुरूपत्वात्"

साधु शब्दोंसे अपभ्रष्ट शब्दोंकी उत्पत्तिकी बात इस सूत्रसे मालूम होती है। शक्तिके न होनेके कारण किसीने 'गो' के स्थानमें गवीका प्रयोग किया। इसलिए यह गवी शब्द यथार्थमें गो शब्द है। इसी प्रकार अन्य अपभ्रंश शब्दोंकी उत्पत्ति हुई है।

व्यास सूत्रका एक सूत्र है—

"शक्तिविपर्ययात्"

जिससे क्रिया हो उसको शक्ति कहते हैं। कर्ता करण आदिके द्वारा क्रियाकी सिद्धि होती है, इसलिए यह शक्ति है। इसीलिए पाणिनिने क्रियाकी सिद्धिमें जो स्वतंत्र हो उसको कर्ता बतलाया

है। साङ्ख्याचार्य बुद्धिको ही कर्त्री कहते हैं, क्योंकि पुरुष असङ्ग है, इसलिए वह कर्ता नहीं हो सकता। व्यास कहते हैं बुद्धि करण है, इसके द्वारा मनुष्योंको ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिए बुद्धिको कर्त्री नहीं कह सकते। यदि बुद्धि कर्त्री मानी ही जाय तो शक्ति विपर्यय नामक दोष आ पड़ेगा। बुद्धिकेलिए भी एक करण मानना पड़ेगा, इसलिए आत्मा ही कर्ता है। यही इस सूत्रका आशय है। यहां भी शक्ति शब्दका प्रयोग सामर्थ्य अर्थमें किया गया है।

निर्विशेष और अद्वितीय वस्तु अनेक रूपोंमें प्रकाशित कैसे हुई, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए वाक्यपदीयकारने कहा है—

"एकमेवयदाम्नातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यां पृथक्त्वेनेव वर्तते"॥

शब्द ब्रह्म एक है, पर उसकी परस्पर भिन्न अनेक शक्तियां हैं। इन्हीं शक्तियोंके भेदके कारण शक्त्यात्मक ब्रह्ममें भी अनेकत्वका ज्ञान होता है। यहांका शक्ति शब्द करणरूपा मायाका बोधक है। और भी—

निर्ज्ञातशक्तेर्द्रव्यस्य तां तामर्थक्रियां प्रति,
विशिष्टद्रव्यसम्बन्धे सा शक्तिः प्रतिवध्यते।

प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा जानी हुई द्रव्यशक्तियोंका साक्षात्कार हो सकता है। कभी कभी वे शक्तियां दूसरे द्रव्योंके संयोगसे वाधित भी हो जाती हैं। तेजकी फैलनेवाली शक्ति वाष्पपर अपना प्रभाव फैलाती है, पर तरल पदार्थोंपर उसकी वह शक्ति रुक जाती है। तरल पदार्थोंकी अपेक्षा कठिन पदार्थोंपर वह शक्ति और भी कम अपना प्रभाव फैलाती है। बात यह है, परमाणुओंकी आकर्षणात्मिका शक्ति जहां प्रवल होती है वहां तेजकी शक्ति मन्द हो जाती है। अग्निकी दाहक शक्ति और विषकी मारक शक्ति रोकी जाती है। आग छूनेसे हम लोगोंके शरीर जलने लगते हैं। पर बहुत से ऐसे भी मनुष्य हैं जिनपर अग्निका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। संखिया खानेसे हम लोगोंकी मृत्यु अवश्य होगी, पर बहुत लोग ऐसे हैं जो आनन्दसे संखिया खाते हैं, यहां भी शक्ति शब्दका अर्थ सामर्थ्य है।

अब हम इस बातको देखना चाहते हैं कि नैयायिक और प्राभाकर मीमांसकोंका इस विषयमें क्या अभिप्राय है।

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय यह छः पदार्थ वैशेषिक मानते हैं। अभाव भी इन पदार्थोंमें जोड़ा जाय तो वैशेषिकके मतमें पदार्थोंकी संख्या सात होती है। प्राचीन प्राभाकरोंके मतसे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, पारतंत्रता, शक्ति और नियोग यह आठ पदार्थ हैं। नवीनोंके मतसे द्रव्य गुणकर्म सामान्य समवाय शक्ति संख्या और सादृश्य, यह आठ पदार्थ हैं। नैयायिक और वैशेषिक दर्शनके अनुसार शक्ति और सादृश्य भिन्न पदार्थ नहीं माने जाते। कुसुमान्जलिमें लिखा है—

"एतेन शक्तिसंख्यादयो व्याख्याताः। ततो अभावेन सह सप्तैव पदार्था इति नियमः।"

प्राभाकर कहते हैं—"ईश्वरका अनुमान कार्यके द्वारा होता है, इसी प्रकार शक्तिका भी अनुमान किया जा सकता है। शक्तिका इन पदार्थोंमें अन्तर्भाव भी नहीं हो सकता। शक्ति द्रव्य नहीं है, क्योंकि वह गुण आदिमें भी रहती है, इसी प्रकार गुण और कर्मके अन्तर्गत भी नहीं हो सकती, क्योंकि द्रव्यमें भी रहती है। सामान्यमें इसका अन्तर्भाव तो हो ही नहीं सकता क्योंकि यह विनाशी है। इसकारण शक्ति नामक एक अतिरिक्त पदार्थ मानना ही चाहिए।

बात यह है-जिस हाथमें जैसे आग लग जानेसे जलन होने लगती है उसी हाथमें उसी आगसे प्रतिबन्धकमणि और मन्त्रके होनेसे जलन नहीं होती। इससे यह बात मालूम होती है कि अग्निमें कोई ऐसी बात है जिसके न रहनेसे वह जला नहीं सकती और जिसके रहनेसे जला सकती है। जब वैसी वस्तुका होना सिद्ध हुआ तब उसको शक्ति नामसे पुकारनेमें क्या हानि है।

कारणमें रहनेवाले और कार्य उत्पन्न करनेमें समर्थ धर्म विशेषको शक्ति कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा जानी हुई वस्तुकी शक्तियां सर्वत्र फल उत्पन्न नहीं करती। विषसे समूची दुनिया ही नहीं मर जाती, आग भी सबको नहीं जलाती। एक बात और है जो अग्नि जलाती है वही प्रतिबन्धकोंके रहनेपर नहीं जला सकती, और प्रतिबन्धकके दूर होते ही वही आग जलाने लग जाती है। जिसके अभावसे कार्य उत्पन्न न हो वह एक स्वतन्त्र पदार्थ माना जाना चाहिये और वह द्रव्यादिमें रहनेवाला शक्ति नामक पदार्थ है। यह प्राभाकरोंका मत है।

नैयायिक प्राभाकरोंके समान शक्तिको अतिरिक्त पदार्थ नहीं मानते। उदयनाचार्य कहते हैं-

"अथशक्ति निषेधे किं प्रमाणम्, नकिञ्चित्, तत् किमस्त्वेव, वाढम्, नहि नो दर्शने शक्ति पदार्थ एव नास्ति, कोऽसौ तर्हि कारणत्वम्। न्यायकुसुमाञ्जलि।

शक्ति निषेधमें क्या प्रमाण है, कुछ भी नहीं, तो क्या वह है, अवश्य हमारे यहां शक्ति पदार्थ है ही नहीं ऐसी बात नहीं है, तो वह क्या है? कारणमें रहने वाला धर्म ही शक्ति है। नैयायिक कारणमें रहनेवाले धर्मको ही शक्ति नामसे पुकारते हैं। अलग पदार्थ इसको नहीं मानते।

अब हम लोगोंको यह बात मालूम हो गयी कि शक्ति शब्दका प्रयोग किन किन अर्थोंमें किया जाता है। धर्म कर्म योग्यता, सामर्थ्य और कारण इन अर्थोंके बोधनके लिए शक्ति शब्दका प्रयोग किया जाता है। अब मैं इस बातको देखना चाहता हूं कि शक्ति शब्दके स्वरूपके विषयमें शास्त्रों ने क्या कहा है।

वेदोंमें शक्ति शब्द कर्म सामर्थ्य और कारण इन अर्थोंके बोधनके लिए प्रयुक्त हुआ है। इस लिए शक्तिशब्दका स्वरूप समझनेके लिए इन शब्दोंके अर्थका ज्ञान होना आवश्यक है। पहले हमने बतलाया है कि जिसके द्वारा कार्य सिद्ध किये जासकें, अथवा जो कार्यरूपमें परिणत हो उसे शक्ति कहते हैं। इससे शक्ति शब्द निमित्त कारण और उपादान कारणका बोधक होता है।

प्रकृति शब्द भी शक्ति शब्दके अर्थका ही वाचक है, जिसके द्वारा कार्य सिद्ध हो अथवा जो कार्यके रूपमें परिणत हो उसे प्रकृति कहते हैं, विज्ञान भिक्षु कहते हैं कि सब पदार्थोंको प्रकृति ही साक्षात् या परम्पर या परिणत करती है, इसीलिए इसका नाम प्रकृति है। शक्ति, अजा प्रधान माया, तम और अविद्या यह सब शब्द समानार्थक हैं। योगवाशिष्ठरामायणमें भी यह बात लिखी है-

नामरूपविनिर्युक्तं यस्मिन् सन्तिष्ठते जगत्,
तामाहुः प्रकृतिं के चिन्मायामेके परेत्वणून्।

अदिति शब्द भी प्रकृतिका ही वाचक है, यह बात ऋग्वेदमें नीचे लिखे मन्त्रसे स्पष्ट है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष-
मदितिर्माता सपिता सपुत्रः
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना
अदिति र्जातिमर्दितिर्जनित्वम्
(ऋग्वेदसंहितः, १। १५। ७०)

कर्म शब्दका क्या अर्थ है। जो किया जाय वह कर्म कहा जाता है। वैयाकरण कहते हैं कि क्रियाके द्वारा कर्ता जिसको पानेकी इच्छा करे वह कर्म है। चित्त शुद्ध करनेवाला और अभ्युदय देनेवाला अग्निहोत्र आदि कर्म कहे जाते हैं। स्वभावतः शरीर यात्राकेलिए जो कर्म किया जाता है वह सकाम कर्म अथवा अबुद्धि पूर्वक कर्म कहा जाता है। यज्ञकेलिए जो कर्म किया जाय वह निष्काम कर्म है अथवा शुक्ल कर्म है। पातञ्जलिदर्शनमें शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल कृष्ण और अशुक्ल कृष्ण चार प्रकारके कर्म कहे गये हैं। यह कर्मके चार भेद दूसरे शास्त्रोंमें भी माने गये हैं। निष्काम भक्तों और योगियोंके द्वारा जो कर्म किये जाते हैं उनको अशुक्ल कृष्ण कहते हैं। इससे भिन्न और सब कर्म तीन प्रकारके होते हैं।

आप पूछेंगे कि तुम तो शक्तिका स्वरूप बतलाने

चले थे, फिर कर्मकी ओर यह झुकाव कैसा ? बात यह है कर्मस्वरूपके ज्ञानके बिना शक्तिस्वरूपका ज्ञान नहीं हो सकता, इसीलिए हम कर्मकी ओर झुके हैं। सभी कर्म त्रिगुणात्मक होते हैं। भारतमें कर्मकी प्रधानता है। जो हमलोग जानते हैं या करते हैं वह सब कर्म है। भौतिक पदार्थोंके कर्म पदार्थविद्या बतलाती है, शरीरका कर्म शरीरविज्ञान बतलाता है। मानस कर्मोंका वर्णन मनोविज्ञानमें है, जगत्के कर्म दर्शनके द्वारा जाने जाते हैं। इसलिए शक्ति स्वरूप जाननेके लिए कर्म तत्वका ज्ञान आवश्यक है।

यह जगच्चक्र कर्मसे घूम रहा है, यह बात गीतामें कही गयी है—

अन्नाद्‌ भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः
यज्ञाद्‌ भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्
तस्मात्‌ सर्वगतं ब्रह्मनित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।

इन श्लोकोंका अर्थ स्पष्ट है और इनसे कर्मकी महिमा मालूम पड़ती है। सभी प्रकारके कर्मोंका तत्व भगवानने इन श्लोकोंके द्वारा बतलाया है।

श्रुति कहती है कि भोक्तृ भोग्य सम्बन्धात्मक यह जगत्‌ है। गति या कर्म अग्नि सोमके सम्भोगसे उत्पन्न होता है। अग्नि और सोमका सम्भोग ही कर्म कहा जाता है और वही जगत्‌ भी है। यह एक सिद्धान्त है कि अणुके कम्पनसे लेकर महद्‌ विकाश पर्यंत सब प्रकारके कर्म अग्नि-सोमसम्भोगसे उत्पन्न हुए हैं।

यह सम्भोग क्या है ? परस्पर उपकारिताका नाम सम्भोग है।

"सम्भोगो नाम परस्परोपकारित्वम्, समान कार्यतेत्यर्थः, तच्चपुनर्भिन्नस्थानानामपि भवति"
(निरुक्त टीका)

पृथिवीके साथ मेघ वायु सूर्य आदिके सम्भोगसे ओषधियां उत्पन्न होती हैं, यह बात ऋग्वेदमें लिखी है। वैज्ञानिक प्रक्रियाके द्वारा भी यह बात अनुमित होती है। इस जगद्‌यन्त्र का परिचालन भी उसी नियमके अनुसार होता है, जिस नियमके अनुसार भौतिक यन्त्र परिचालिति होते हैं। ताप विद्युद्‌ आलोक रसायन चुम्बक और आकर्षण आदिकी सब प्रकारकी शक्तियां सम्भोगके द्वारा ही प्रकाशित होती हैं। अग्नि और सोमके सम्भोगके द्वारा ही तापादि शक्तियोंका प्रत्यक्ष हम लोग करते हैं। इन्हीं बातोंको समझ कर वेदोंमें शक्ति शब्दका प्रयोग कर्मरूप अर्थमें किया गया है।

कर्मके द्वारा ही यह जगच्चक्र प्रवृत्त हुआ है, यह शास्त्रकारोंका मत है। अनादि कर्मके द्वारा सत्व रज और तमः स्वरूप प्रकृतिमें परिवर्तन होता है, यह साङ्ख्य शास्त्रका मत है।

" कर्माकृष्टेर्वानादितः "

शान्त और सुप्त, यह कर्मोंकी दो अवस्थाएँ मानी गयी हैं और यही सृष्टि स्थिति प्रलय भी कही जाती हैं।

वैशेषिक उत्क्षेपण अवक्षेपण आकुञ्चन प्रसारण और गमन यह पांच प्रकारके कर्म मानते हैं। वैज्ञानिकोंकी गति और वैशेषिकोंके कर्म दोनों एक ही बात हैं। द्रव्य अगुण और निरपेक्ष है, कर्म संयोग विभागका हेतु है, यह वैशेषिक कहते हैं। पर जगत्‌ चक्र चलाने वाली श्रुतिका कर्म इससे भिन्न है कि नहीं, यह एक सन्देहकी बात है।

वैशेषिक दो प्रकारके कर्म मानते हैं, एक प्रयत्नसे होनेवाला और दूसरा प्रेरणसे होनेवाला। हाथ का उठाना प्रयत्नसे होनेवाले कर्मके अन्तर्गत समझा जाता है। कारणसे ही कार्य उत्पन्न होता है। समवायी असमवायी और निमित्त यह तीन कारण इस दर्शनमें माने जाते हैं। वेद और वेदान्तमें आरम्भण तथा निमित्त यह दो कारण माने जाते हैं। हाथ उठाना एक काम है। दोनों हाथ इस कामके समवायी कारण हैं, आत्मसंयोग असमवायी कारण है और प्रयत्न निमित्त कारण है। आत्मामें इच्छा उत्पन्न होती है। उससे प्रयत्न, प्रयत्नसे चेष्टा और चेष्टासे कर्म उत्पन्न होता है।

उत्क्षेपणादि कर्म विशिष्ट हाथके संयोगसे प्रयत्नमें वेग नामक संस्कार उत्पन्न होता है।

आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म
तथा हस्त संयोगाच्च मुसले कर्म (वै०-८)

पृथिवी आदिमें जो कर्म उत्पन्न होते हैं वे नोदना अभिघात और संयुक्त संयोगसे उत्पन्न होते हैं। जिन कर्मोंमें यह नहीं देखे जाते वहां अदृष्ट या सूक्ष्मकारण माना जाता है।

बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके कर्मोंका वर्णन महर्षिकणादने किया है। इससे मालूम पड़ता है कि दूसरे शास्त्रोंके बतलाये कर्म वैशेषिकके कर्मसे भिन्न नहीं हैं। गीतामें भगवान ने पांच प्रकारके कर्म बतलाये हैं

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणञ्च पृथग्विधम्,
विविधाश्चपृथक् चेष्टा दैवञ्चैवात्र पञ्चमम्।

कर्मके इन पांच भेदोंमें शास्त्रीय और अशास्त्रीय सभी प्रकारके कर्म आ जाते हैं।

ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय यह तीन प्रकारके कर्मके कारण हैं। त्यागात्मक अथवा ग्रहणात्मक कर्म इन्हींमें संयोगसे उत्पन्न होते हैं। कारण कर्म और कर्ता यह तीन कर्मोंके अधिष्ठान हैं।

भगवानने गीतामें कहा है--

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्म चोदना,
कारणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।

यह बुद्धिपूर्वक कर्मका स्वरूप भगवानने बतलाया है। कर्ता पहले पदार्थोंका स्वरूप जानता है। पुनः उस पदार्थकी इच्छा करता है। इच्छाके द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है उसको लेकर वह काम प्रारम्भ कर देता है संदर्शन प्रार्थन और अध्यवसाय यह तीन मानसिक कर्म हैं और सभी कर्मोंके प्रारम्भमें होते हैं। सङ्कल्प ही सब कर्मोंका मूल है। मनुस्मृतिके टीकाकार मेधातिथिने सङ्कल्पका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है।

इन्होंने कहा है--यह सङ्कल्प क्या है जो सब क्रियाओंका मूल है? चेतः सन्दर्शन सङ्कल्प है, जो क्रमसे होनेवाले प्रार्थना और अध्यवसायसे पहले होता है। यह मानसिक व्यापार हैं और सब कर्मोंके पहले होते हैं। भौतिक व्यापार इनके बिना नहीं हो सकते। इनमें पहला पदार्थ स्वरूपका निरूपण है।

इस जगत्का मूल सङ्कल्प है, यह बात उपनिषदोंमें कही गयी है। सङ्कल्पसे ही जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होते हैं। प्राकृतिक अथवा कृत्रिम सभी प्रकारके कर्मोंका मूल सङ्कल्प ही है। पर यह बात सभीकी समझमें नहीं आ सकती। भौतिक कर्म भी सङ्कल्प मूलक ही हैं। इसके कारणके विषयमें प्रश्न नहीं होना चाहिए क्योंकि यह पदार्थोंका स्वभाव है। देखा जाता है कि जिस पदार्थमें जिस कामके करनेकी शक्ति रहती है वह पदार्थ उस कामको करता हो है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि शक्ति ही मूल है। पाश्चात्य पण्डित बालसमहोदयका भी मत इसके अनुकूल ही पड़ता है। वे कहते हैं—शक्तियोंका मूल क्या है, इसका निश्चय हम लोग नहीं कर सकते, अतएव हम लोग कहते हैं कि सभी शक्तियां इच्छाशक्तिसे उत्पन्न होती हैं। और यही हम लोगोंका सिद्धान्त भी है। यह जगत् किसीकी इच्छाके अधीन है, यह बात नहीं कही जा सकती, किन्तु यह जगत् इच्छा रूप है। सभी पदार्थ स्वतन्त्र हैं, स्वयं इनमें चेष्टा उत्पन्न होती है। यह अकृत्रिम हैं इस लिए नित्य हैं। पदार्थोंके साथ शक्तियोंका संयोग होता है। अथवा यह शक्तियां पदार्थोंके गुण हैं या धर्म, मन पदार्थोंसे भिन्न है, क्योंकि वह भूतोंसे उत्पन्न हुआ है या वह भूतोंका शक्तिविशेष है। पहलेकी बातोंकी छाया इस मतमें स्पष्ट दीखती है।

प्राकृतिक चेष्टाएँ भी सङ्कल्पके अनुसार ही होती हैं। इसीसे सङ्कल्प और प्राकृतिक नियम यह दोनों बातें एकही हैं। ताप, विद्युत् आलोक आकर्षण आदि सभी सङ्कल्प मूलक ही हैं। अत महर्षि कणादका बतलाया कर्म वेद और शास्त्रवर्णित कर्मसे भिन्न नहीं है। त्याग और ग्रहण यह दोनों कर्म हैं। यह त्यागके योग्य है और यह ग्रहणके योग्य है,

इसबातके ज्ञानके बिना कोई भी किसीका त्याग या ग्रहण नहीं कर सकता। जब जड़ पदार्थोंमें भी त्याग और ग्रहणकी योग्यता देखी जाती है तब इनके द्वारा होनेवाले कर्मोंकी सङ्कल्पमूलता अवश्य माननी चाहिए, क्योंकि इनमें भी तो राग और द्वेशका परिचय पाया जाता है।

वेदमें कितनी शक्तियोंका परिचय है इस बातका विचार अब किया जाता है। शक्ति और शक्तिमान् इन दोनोंमें अभेद है, यह बात मानी हुई है। एक परमात्माकी शक्ति ही अनेक रूपोंमें प्रकाशित होती है, यह बात ऋगवेदके नीचे लिखे मन्त्रसे स्पष्ट होती है।

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्व यजत्र, योनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ ते यः समानुर्णवो नृचक्षाः।

—ऋग्वेद संहिता ३। २२। २।

इस ऋचाके द्वारा अग्निरूप परमात्माकी स्तुति की गयीहै। पृथिवीमेंओषधिमें जलमें और अन्तरिक्षमें परमात्माकी शक्ति व्याप्त है।यहसब परमात्माकी शक्तिसे हीशक्तिमान् हैं, परमात्मा ही वायु आदित्य और अग्निरूपसे सब जगह देख पड़ते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वत्र परमात्माकी शक्तिका ही विकाश है।

अन्तरिक्षमें रहनेवाले विद्युत् और अग्नि इन दो देवोंका वर्णन वेदोंमें है। यह दोनों देवता कर्म प्रधान हैं। ऋग्वेदमें लिखा है कि मरुत्से वैद्युत अग्नि उत्पन्न होता है। यह मरुत्त् विश्वाकर्षण शक्ति युक्त माना जाता है, इससे उत्क्षेपण आदि कर्म उत्पन्न होते हैं।

शक्ति स्वरूप जाननेकेलिए कर्म तत्त्वका ज्ञान आवश्यक है, इसलिए कर्म तत्त्वका निरूपण किया गया। परमात्मा ही जगद्के परम कारण हैं। पारमार्थिकी और व्यावहारिकी यह दो अवस्थाएंउनकी होती हैं। व्यावहारिकी दशा त्रिगुण शक्तिकी होती है और वही कार्य कारणात्मिका भी है। यह व्यक्तावस्था से अव्यक्तावस्था तथा—अव्यक्तावस्थासे व्यक्तावस्था प्राप्त किया करती है। यह अवस्था पारमार्थिकी अवस्थाके आधारसे रहती है और उसीके आधारसे इसमें परिणाम भी होते हैं। इसके दो परिणाम होते हैं, एक वाह्य परिणाम और दूसरा आभ्यन्तर परिणाम। वाह्य परिणाममें सृष्टि और आभ्यन्तर परिणाममें प्रलय होता है। वेदके कर्म शब्दका अर्थ परिणाम ही है, यह बात सभी समझ सकते हैं।

परिणाम क्या है? व्यक्त और अव्यक्त अवस्थाएं कैसे होती हैं? इस प्रवाहका कारण क्या है, जगत् षड्भाव विकारके अधीन है, इसका भी क्या कारण है? पहले कहा गया है कि यह जगत् भोक्तृ भोग्यात्मक है। पुरुष भोक्ता है और प्रकृति भोग्य। वेदोंमें प्रकृति पुरुषका नाम अग्नि सोम अथवा अन्न अन्नाद कहा गया है। प्रकृति और पुरुष के ही योगसे जगत् उत्पन्न होता है। पुरुषका अंश अविकारी है और प्रकृतिका अंश विकारी, प्रकृतिका अंश ही प्रपञ्च रूपसे परिणत होता है। अतएव उसका नाम "अर्द्धगर्भा" कहा गया है। महदादि सात तत्व ही जगत्के आन्तर और वाह्य हैं। विष्णु के शक्तिस्वरूप यह महदादि सात तत्व ही कारण हैं।

" सप्तार्द्ध गर्भा भुवनस्य रेतो
विष्णो स्तिष्ठान्ति प्रदिशाविधर्मणि "

शक्ति क्या पदार्थ है इसका निर्णय करना अब कठिन नहीं है। परिणाम ही शक्ति है अथवा जिससे परिणाम उत्पन्न होता है वह शक्ति है। यही भारतीय शक्ति विज्ञानका संक्षिप्त स्वरूप है।

चमड़ोंका व्यवसाय

भारतवर्षसे हरसाल सब मिलाकर कोई १२ से १६ करोड़ रुपये तकका चमड़ा बाहर जाता है। और उससे अधिक नहीं तो उतने ही दामका चमड़ा देशमें ही ख़र्च हो जाता है। इस तरह कोई २५-३० करोड़ रुपयेका चमड़ा हर साल यहां पैदा होता है। आस्ट्रेलिया, अरजेनटीन (दक्षिण अमेरिका) जैसे कुछ देशोंको, जहां पशु-पालनका बहुत बड़ा व्यवसाय होता है, छोड़कर बिरला ही कोई देश होगा जो इतने मूल्यका चमड़ा इस तरह विदेश भेजता होगा। भारतवर्षमें एक तो दरिद्रताके कारण सब कोई जूते नहीं पहन सकते और दूसरे धार्मिक विचारोंके कारण चमड़ोंके उतने व्यवहारोपयोगी द्रव्य नहीं बन सकते जितने कि पश्चिमीय देशोंमें बनते हैं। तीसरे दरिद्रताके कारण लोग पशुओंको खिलाने पिलानेका पूरा प्रबन्ध नहीं कर सकते। इससे भी हरसाल—विशेषकर दुर्भिक्ष या अनावृष्टिके समयमें—हज़ारों लाखों पशु या तो भूखों मर जाते हैं या कसाइयोंके हाथ बेच डाले जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे सारी दुनियामें चमड़ोंकी मांग बढ़ गई है और उनका दाम बढ़ रहा है। इन सब कारणोंसे यहांसे चमड़ोंकी रफ़्तनी भी बढ़ती जा रही है।

व्यापारियोंने चमड़ोंके दो विभाग किये हैं—एक तो गाय बैल, भैंस भैसे इत्यादि बड़े पशुओंके चमड़े, जिनको 'हाइड' (hide) कहते हैं। और दूसरे भेड़, बकरी, बछड़े इत्यादि छोटे छोटे पशुओंके चमड़े, जिन्हें 'स्किन' (skin) कहते हैं। यहांसे जो चमड़े बाहर भेजे जाते हैं उनकी दो श्रेणियां होती हैं—एक तो सिर्फ़ नमक मिलाकर सुखाई हुई 'खाल', छोटी या बड़ी (undressed hide or skin), और दूसरे तैयार किये हुए चमड़े, बड़े या छोटे (dressed leather or skin)।

बढ़िया चमड़ा तैयार करनेके अच्छे कारखाने नहीं रहनेके कारण 'खालों' की रफ़्तनी ही यहांसे अधिक होती है। कलकत्तेसे सिर्फ़ नमक लगाकर सुखाई हुई खाल (बड़ी और छोटी) बाहर जाती है। बम्बईसे खालके साथ साथ थोड़े तैयार चमड़े (बड़े और छोटे) भी बाहर जाते हैं। भारतवर्षमें चमड़ा तैयार करनेके कारख़ाने (टैनरी) अधिकांश मद्रास हातेमें पाये जाते हैं। इस कारण मद्राससे जितने बड़े चमड़े बाहर जाते हैं वे सब तैयार किये हुए होते हैं; तथा छोटे छोटे चमड़ोंका भी दो तिहाई अंश तैयार किया हुआ होता है। १८९८ तक तो मद्राससे सूखीखाल बाहर जाती ही नहीं थी, पर अब धीरे धीरे छोटी छोटी सूखी खालोंकी (skins) रफ़्तनी बढ़ने लगी है, क्योंकि बाहरवाले दाम अधिक देते हैं। करांची और बर्म्मासे भी सूखी खाल (बड़ी और छोटी) ही भेजी जाती है।

लड़ाईके पहले जर्मनी बड़ी बड़ी सूखी खालोंका सबसे बड़ा खरीदार था। ४८ प्रतिशत माल वहीं जाता था; उसके बाद आस्ट्रिया-हंगरीका नम्बर था जो १९% माल खरीदता था। इसके बाद इटली, स्पेन, अमेरिका इत्यादि देशोंका नम्बर था। जिस तरह जर्मनी गाय बैलकी खाल सबसे अधिक लेता था उसी तरह आस्ट्रिया-हंगरी भैंसकी खाल अधिक खरीदता था। इसकेलिए अमेरिका, आस्ट्रिया दोनोंमें चढ़ा ऊपरी रहती थी। छोटी छोटी सूखी खालोंका बड़ा ख़रीदार अमेरिका था। उसके बाद फ्रान्स, इंगलैंड, हालैंड और जर्मनीका नम्बर था। इंगलैंड बहुत कम सूखी खाल (बड़ी या छोटी,) ख़रीदता था। वह अधिकतर बना बनाया चमड़ा ही लेता था। अमेरिका तथा जर्मनीवाले थोड़े ख़र्चमें अच्छा चमड़ा तैयार करनेकी हिकमत जानते हैं, इसी कारण सूखी

Economics अर्थशास्त्र]

खाल यहांसे लेजाते हैं। खालकी तिजारतको एक प्रकारसे जर्मनोंने अपनी मुट्ठीमें कर लिया था, उसका ख़रीदना और बाहर भेजना बिलकुल उनके अधिकारमें था; दाम भी वे लोग सुविधाजनक ही रखते थे। यूरोपकी कुल बिक्री जर्मनी (ब्रीमैन, हैम्बर्ग) के व्यापारियोंके हाथ थी। खाल रफ़्नी करनेकेलिए जर्मनोंकी बहुत सी आढ़तें शहरों और क़स्बोंमें खुली हुई थीं। तैयार चमड़ों, (बड़े छोटे दोनों प्रकारके) की सबसे अधिक मांग विलायतसे आती थी। युनाइटेड किंगडमके बाद अमेरिका, जापानका नम्बर था। लड़ाई छिड़नेके कारण जर्मनी, आस्ट्रियाके बाज़ार बन्द हो जानेसे बड़ी बड़ी सखी खालोंका बाज़ार बिलकुल मन्दा पड़ गया। चमड़ा कहीं निष्पक्ष राज्योंसे होकर शत्रुदलको न मिल जाय, इसको रोकनेका पूरा प्रबन्ध किया गया था। तैयार चमड़ोंकी रफ़्नी तो सरकारने अपने हाथमें ले ली थी, क्योंकि लड़ाईके सामानोंमें यह भी शामिल था। पर सूखी खालको सरकार नहीं ख़रीदती थी, क्योंकि विलायतमें इन सूखे मरे चमड़ोंके तैयार करनेके कारख़ाने नहीं थे। धीरे धीरे सूखी खालोंकी भी रफ़्नी बढ़ने लगी; जब इटलीने लड़ाईमें हम लोगोंका साथ दिया तब वहां भी चमड़ोंकी ज़रूरत हुई। जहां १९१३ में कुल पांच लाख सूखी बड़ी खालें कलकत्ते और कराचीसे इटली रवाना की गई थीं, तहां १९१५ में क़रीब ४० लाख बड़ी बड़ी खालें भेजी गईं। यह खालें कोई दो करोड़ जोड़े बूटके ऊपरले भागकेलिए काफ़ी थीं। यद्यपि १९१६ में इटलीकी रफ़्नी कम हो गई, पर तोभी शान्तिके समयसे कई गुनी अधिक ही रही। अमेरिका (संयुक्तराज्य) ने भी सूखी खालों (छोटी बड़ी दोनों) की मांग बढ़ाई। छोटी छोटी खालोंकी तो ६० प्रतिशत अमेरिकासे ही मांग आती है। लड़ाईके ज़मानेमें जर्मनी, आस्ट्रियाकी घटी अमेरिकाने पूरी कर दी है; अब सूखी खालोंका सबसे बड़ा ख़रीदार अमेरिका ही हो गया है। लड़ाईके पहले अमेरिका हरदर सैकड़े ११ बड़ी खाल और ७७ छोटी खाल लेता था। पर आजकल तो क्रमशः हरदर सैकड़े ५१ और ९७ माल ले रहा है। इंगलैण्डसे सूखी खालकी मांग धीरे धीरे बढ़ रही है। वहांके व्यापारी कह रहे हैं कि यदि सरकार इस बातका भरोसा दिलावे कि लड़ाई ख़तम होनेपर जर्मनों, आस्ट्रियनोंको बे रोकटोक खाल ख़रीदनेकी इजाज़त न मिलेगी तो इंगलैंडमें भी मरे चमड़ोंको तैय्यार करनेके कारख़ाने खोले जावें तथा इस व्यापारको इन देशोंके चंगुलसे बचाया जावे।

तैयार चमड़ों (बड़े और छोटे) की रफ़्नी सरकारने अपने हाथमें ले ली है। ख़रीदारोंमें यूनाइटेड किंगडम और अमेरिकाका ही नम्बर सबसे अव्वल है। नीचे दिये अंकोंसे खाल और चमड़ेकी रफ़्नीका पूरा विवरण मिल जायगा।

सूखी बड़ी खालों (hides) की रफ्तनी (सहस्र पौंडोंमें)

	१९११-१२	१३-१४	१६-१७
जर्मनी	१४९४	२०४४	०
हालैंड	५४	१९७	०
आस्ट्रिया-हंगरी	९३९	१२२९	०
इटली	४९२	५९३	१००८
स्पेन	३०१	२९६	२४८
अमेरिका	२२८	६९८	२५७२
यूनाइटेड किंगडम	२१२	१६६	७९५
बेलजियम	२०	९७	०
फ़्रान्स	४८	५०	१७१
अन्य देश	१९७	१७१	२०१
कुल (सहस्रपौण्ड)	३९८५	५५३१	४९९५

छोटी सूखीखालों (skins) की रफ़्तनी (सहस्र पौण्डोंमें)

	१९११-१२	१९१३-१४	१६-१७
अमेरिका	१७६२	१६६८	४०२२
फ़्रान्स	१४४	१२४	२१९
यूनाइटेड किंगडम	१४०	१४९	२८१

हालैंड	१०३	१५६	०
जर्मनी	६३	७७	०
अन्य देश	६८	८३	८१
कुल	२३१०	२२६०	४६०३

तयार बड़े चमड़ों की रफ़तनी (Dressed and tanned hides) (हज़ार पौण्डोंमें)

	१६११-१२	१६१३-१४	१६१६-१७
यूनाइटेड किंगडम	६६७	१०३१	२६७२
मिस्र	६	५	०
अन्य देश	१३	२३	६
कुल	६८६	१०५६	२६८१

तैयार छोटे चमड़ों की रफ्तनी (Dressed skins) (हज़ार पौण्डोंमें)

	१६११-१२	१३-१४	१६-१७
युनाइटेड किंग०	१६३६	१४०४	२२३६
अमेरिका	१८६	२०३	८२६
जापान	६५	८८	११५
अन्य देश	७८	६४	५१
कुल	२००१	१७५६	३२३१

चमड़ोंका देशी व्यवसाय

देशी छोटी छोटी खालें बहुत ही अच्छी होती हैं। उनसे ऊंचे दर्जेका चमड़ा तैयार हो सकता है। पर यहांकी बड़ी खालोंसे बढ़िया चमड़ा तैयार करना मुश्किल है। देशमें जो चमड़े खर्च होते हैं वे प्रायः बहुत ही मामूली दर्जेके होते हैं, तथा उनको तैयार करनेकी देहाती तरकीब भी ऐसी भद्दी है कि अच्छी खाल भी खराब हो जाती है। हर जगह हर देहातमें चमार रहते हैं जो चमड़ा भी तैयार (Tan)* करते हैं तथा जूते वगैरह भी बनाते हैं। देहातोंमें मसालोंसे भरे कच्चे चमड़े गाछोंसे लटकते हुए प्रायः नज़र आते हैं। कहीं कहीं मोचियोंके यहां नादोंमें भी चूनेके पानीमें डूबे हुए चमड़े पाये जायंगे। देशी चमार बहुत सी बढ़िया खाल तैयार करते समय खराब कर देते हैं, उनसे केवल भद्दे चमड़े तैयार करते हैं। अनुमान किया जाता है कि इस तरह करोड़ोंका माल हर साल खराब कर दिया जाता है। यदि देशमें अच्छी "टेनरी" खुलें,या देशी चमारोंको चमड़ा तैयार करनेकी शिक्षा दी जावे तो देशका बहुत सा धन बरबाद होनेसे बच जावे। हर साल देहातोंमें करोड़ोंकी लागतके देशी जूते, चपोड़े, साज़, मशक, मोट इत्यादि सामान बनाये जाते हैं और व्यवहारमें आते हैं। यदि यह सब चीज़ें अच्छे टिकाऊ मज़बूत चमड़ोंकी बनें तो इन चीज़ोंकी उम्र भी बढ़ जावे, तथा किसानोंको उनसे अधिक लाभ उठानेका भी मौका मिले और उतनी कीमतकी सालाना बचत होवे। पर पढ़े लिखोंका ध्यान इधर नहीं जा सकता, क्योंकि चमड़ेका व्यवसाय निकृष्ट समझा जाता है, चमारसे छूजानेसे छूत लग जाती है, लोग पतित हो जाते हैं। ऐसी अवस्था जबतक बनी रहेगी, तब तक यह व्यवसाय अपढ़ या इतर धर्मावलम्बियोंके हाथमें ही रहेगा।

इधर कुछ दिनोंसे अंगरेज़ी ढंगकी टैनरी और चमड़ेके कारखाने खुलने लगे हैं। कानपुरमें टैनरी और चमड़ेका सामान बनानेका एक बहुत बड़ा अड्डा है। बम्बईमें भी नये ढंगके चमड़े तैयार किये जाते हैं और कानपुरसे घटिया नहीं होते। उसी तरह आगरा, दिल्ली, इत्यादि कई शहरोंमें भी इन देशी तैयार चमड़ोंसे अंगरेजी ढंगके जूते, बूट, ट्रंक इत्यादि सामान बनानेके कई कारखाने हैं, जहां मशीनों तथा हाथोंसे काम होता है। कानपुर, बम्बई, मैसूरमें भी यह सब सामान तैयार होता है। यह सब नये ढंगके कारखाने फ़ौजी विभागकी कृपाके फल हैं। फ़ौजी विभागमें हर साल

* तैयार करनेकी जगह 'कमाना' कहना अधिक उपयुक्त है—सं०

लाखोंकी लागतके बूट, साज़ इत्यादि इन कारखानोंसे खरीदे जाते हैं और उसकी देखा देखी अन्य विभागवाले भी बहुत सा चमड़ेका माल इन कारखानोंसे लेने लगे हैं। फल यह हुआ है कि कानपुर, बम्बई आदिमें चमड़ेके कई बड़े बड़े कारखाने चल निकले हैं। इधर स्वदेशी आन्दोलनने भी अंगरेजी जूता बनानेवाले देशी कारखानोंको बड़ी सहायता दी है। यह सस्ते 'अंगरेजी जूते' लोगोंको खूब पसन्द आये हैं। ज्यों ज्यों इन सस्ते जूतोंका प्रचार बढ़ता गया, त्यों त्यों देशी कारखानोंकी जड़ मज़बूत होती गई और दिल्ली, आगरे और कानपुरका जूतेका व्यापार बहुत दृढ़ हो गया। लड़ाईके कारण जबसे विलायती तैयार चमड़ों तथा जूतोंका आना कम हो गया है, तबसे इन लोगोंने और भी उन्नति कर ली है। इधर सरकारने भी फ़ौजी विभागके लिए लाखों जोड़े बूट, साज़ वगैरह कानपुर, बम्बई से खरीदे हैं। दक्षिण भारतमें विशेष कर मद्रासमें पहलेसे ही अच्छा चमड़ा तैयार होता था। अब इधर उन लोगोंने 'क्रोमलेदर' नामका बहुत बढ़िया चमड़ा तैयार करना शुरू किया है। यह हलका, चिकना, मुलायम, मज़बूत और खूबसूरत होता है। इसके बने 'तल्ले' और 'ऊपरले' मुलायम तथा टिकाऊ होते हैं। पानीमें भीगनेपर भी यह मुलायम ही रहता है तथा बिगड़ता भी नहीं है। इससे मद्रास प्रान्तमें चमड़ा तैयार करनेके साथ साथ चमड़ेका सामान, जूता साज़ इत्यादि का भी रोज़गार बढ़ रहा है। मैसूरका चमड़ेका कारखाना बहुत बढ़िया समझा जाता है।

यद्यपि भारतवर्षसे चमड़ों और खालोंकी रफ़्नी बढ़ती जाती है, पर देशमें चमड़ा तैयार करनेके हुनरकी वैसी तरक्की नहीं हो रही है। हरसाल लाखोंके विलायती जूते तो बाहरसे आते ही हैं (१९१३-१४ में प्रायः ८० लाख रुपयेके जूते आये)। इनके अतिरिक्त भी कोई २५। ३० लाखका बढ़िया चमड़ेका सामान प्रतिवर्ष आया करता है। इसमें किताबकी जिल्द बांधनेके बढ़िया चमड़े, मशीन चलानेवाले बेल्टोंके चमड़े, तथा चमड़ेकी 'फैन्सी' चीज़ें शामिल हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सब यकायक हिन्दुस्तानमें नहीं बनने लगेंगे, पर इसमें कोई शक नहीं कि प्रयत्न करनेसे यहां भी बढ़ियासे बढ़िया चमड़ा तैयार हो सकेगा। पर उसका पूरा उद्योग होना चाहिये। लड़ाईने चमड़ेके व्यापारको बहुत सहायता दी है; अभी सरकारने इलाहाबाद जैसी जगहोंमें 'टैनिंग' सिखानेके लिए स्कूल खोले हैं। यदि हम लोग अच्छी तरह टैनिंग करना न सीखेंगे तो सदा कच्चा माल ही भेजते रहेंगे। कई साल हुए विलायतकी 'सुसाइटी आफ आर्ट्स' ने किताबों की जिल्दके लिए चमड़ेकी जांच करनेको कमेटी बिठायी थी। उस कमेटीने कहा था कि हिन्दुस्तानसे जो छोटे छोटे चमड़े (तरवरके छालसे तैयार किये हुए) आते हैं, उनमें ज्यादे दिन तक ठहरनेकी शक्ति नहीं होती। कुछ ही दिनोंमें कीड़े लग जाते हैं। इसका फल यह हुआ कि देशी तैय्यार किये हुये छोटे चमड़ोंकी रफ़्नी ही कम हो गई। यही अज्ञानताका फल है। एक बात और है जिसकी ओर सरकार ने लोगोंका ध्यान आकर्षित किया है। यहां घरेलू पशुओंको दागनेकी चाल बहुत प्रचलित है। इससे चमड़े ख़राब हो जाते हैं और उनका मूल्य घट जाता है। इस एक प्रथासे शायद एक करोड़का चमड़ा हर साल ख़राब होता है। जहां तक हो सके इसको रोकना चाहिये। १९१५ में ४० बड़े बड़े चमड़ेके कारखाने और 'टैनरियां' थीं, जिनमें ६७०७ मज़दूर काम करते थे। युक्तप्रान्त मद्रास और बम्बईमें अधिकांश कारखाने हैं।

राधाकृष्ण झा, एम. ए.

सरल त्रिकोणमिति

[ले०-प्रो० मनोहरलाल भार्गव, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

पिछले अङ्कमें जो सम्बंध हम सिद्ध कर आये हैं, नीचे दिये जाते हैं।

ज्या (१८० − क) = ज्या क ;
कोज्या (१८० − क) = − कोज्या क (१)
ज्या (९० − क) = कोज्या क ;
कोज्या (९० − क) = ज्या क (२)
ज्या (१८० + क) = − कोज्या क ;
कोज्या (१८० + क) = − ज्या क (३)
ज्या (− क) = − ज्या क ;
कोज्या (− क) = कोज्या क (४)

एक और सम्बंध जो हम अगले पदमें सिद्ध करेंगे यहां इसलिए दिये देते हैं कि जिससे यह पांचों सम्बन्ध ज़रूरतके वक्त एक जगह ही मिल जायं—

ज्या (९० + क) = कोज्या क ;
कोज्या (९० + क) = − ज्या क (५)

२०—यदि विचार किया जाय तो यह मालूम होगा कि प्रत्येक कोणकी त्रिकोणमितीय निष्पत्तियोंका सम्बन्ध किसी ऐसे कोणकी निष्पत्तियोंके साथ निकाला जा सकता है जो एक समकोणसे छोटा है। किसी कोणका परिमाण कितना ही क्यों न हो, यदि उसका एक भुज अत है तो दूसरा भुज चार पादोंमेंसे किसी एकमें अवश्य होगा।

यदि वह कोण चार समकोणसे छोटा हुआ तो कोई बात ही नहीं है, वरना ऊपर बतलाये हुए कारणसे (अब के किसी एक पादमें होनेसे) उसकी त्रिकोणमितीय निष्पत्तियोंका सम्बन्ध किसी एक ऐसे कोणकी निष्पत्तियोंके साथ निश्चित किया जा सकता है, जो चार समकोणसे छोटा है। मानलो कि कोण १०६५° का है, तो उसका भुज अब पूरे दो चक्कर लगाकर चौथे पादमें आकर ठहरेगा, क्योंकि १०६५° = २ × ३६०° + ३४५°। अब ब से लम्ब डालकर जो निष्पत्तियां प्राप्त होंगी वह ३४५° की निष्पत्तियोंके बराबर होंगी। इस प्रकार अन्य कोणोंके विषयमें भी जानना चाहिये।

यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि कोण यदि चार समकोणसे भी बड़ा है तो भी उसकी निष्पत्तियां किसी एक ऐसे कोणकी निष्पत्तियोंके बराबर होंगी जो चार समकोणसे छोटा होगा। अब यदि कोई कोण तीन समकोणसे बड़ा है तो पहले हम उसकी त्रि० निष्पत्तियोंका सम्बन्ध समीकरण (३) द्वारा एक ऐसे कोणकी निष्पत्तियोंसे निकाल सकते हैं जो दो समकोणसे छोटा है। परन्तु इस नये कोणकी त्रिकोणमितीय निष्पत्तियोंका सम्बंध (जो दो समकोणसे छोटा है) किसी ऐसे कोणकी त्रिकोणमितीय निष्पत्तियोंसे समीकरण (१) द्वारा निकाल सकते हैं जो एक समकोणसे छोटा है।

इसी प्रकार यदि दिया हुआ कोण दो समकोणसे बड़ा है तो समीकरण (३) द्वारा उसकी त्रि० नि० का सम्बन्ध किसी ऐसे कोणकी त्रि० नि० से निकाल सकते हैं, जो एक समकोणसे छोटा है। यदि दिया हुआ कोण २ समकोणसे छोटा है, पर एकसे बड़ा, तो समीकरण (१) द्वारा उसकी त्रि० नि० का सम्बन्ध किसी ऐसे कोणकी निष्पत्तियोंके साथ निश्चित कर सकते हैं जो एक समकोणसे छोटा है।

अतएव यदि हमें ०° से लेकर ९०° तकके सब कोणोंकी त्रि० नि० मालूम हो जायं तो संसारके समस्त कोणोंकी त्रि० नि० निकाल सकते हैं। पर वस्तुतः ०° से ४५° तकके कोणोंकी त्रि० नि० का ही निकाल लेना आवश्यक है, क्योंकि दूसरे समीकरणकी सहायतासे फिर ४५° से लेकर ९०° तकके कोणोंकी त्रि० नि० निकाल सकते हैं।

२१—ऊपरका कथन नीचेके उदाहरणोंसे पूरी तरह समझमें आ जायगा :—

उदाहरण—

(१) ज्या १०००° = ज्या (७२०° + २८०°)
= ज्या २८०°
= ज्या (१८०° + १००°)
= – ज्या १००°
= – ज्या (१८०° – ८०°)
= – ज्या ८०°
= – ज्या (९०° – १०°)
= – कोज्या १०°

(२) स्प ३४२° = स्प (१८०° + १६२°)
= स्प १६२°
= स्प (१८०° – १८°)
= – स्प १८°

(३) कोज्या २४५° = कोज्या (१८०° + ६५°)
= – कोज्या ६५°
= – कोज्या (९०° – २५°)
= – ज्या २५°

(४) कोस्प ११२° = कोस्प (१८०° + ६८°)
= – कोस्प ६८°
= – कोस्प (९०° – २२°)
= – स्प २२°

अभ्यासकेलिए ऊपरके उदाहरणोंमें दिये हुए कोणोंकी सब त्रि० नि० निकालो।

२२—सिद्ध करो कि—

ज्या (९० + क) = कोज्या क, और

कोज्या (९० + क) = – ज्या क

मान लो कोण त अ ब = क; अ में होकर अबा इस प्रकार खींचो कि कोण ब अ बा = ९०°

तो कोण त अ बा = त अ ब + ब अ बा
= क + ९०°

अ बा को अ ब के बराबर काटकर ब और बा से ब म और बा मा, त अ ता पर लम्ब डालो। [चित्र ९]

ब अ म, बा अ मा त्रिभुजोंमें

∴ अ ब = अ बा, कोण ब म अ = कोण बा मा अ, (क्योंकि दोनों समकोण हैं) और कोण अ ब म = कोण बा अ मा (क्योंकि दोनों क के कोटि कोण हैं)

∴ दोनों त्रिभुज सब प्रकार बराबर हैं और बा मा = अ म और ब म = मा अ (केवल लम्बाईमें)।

अब ज्या (९० + क) = ज्या बा अ म

चित्र ९

$$= \frac{\text{बा मा}}{\text{अ बा}} = \frac{\text{अ म}}{\text{अ ब}}$$

= कोज्या क

और कोज्या (९०° + क) = कोज्या बा अ म

$$= \frac{\text{अ मा}}{\text{अ बा}} = \frac{-\text{ब म}}{\text{अ ब}}$$

= – ज्या क

२३—दो कोणोंके योगके ज्या और कोज्या को कोणोंके ज्या और कोज्याके रूप में व्यक्त करो अर्थात् सिद्ध करो कि—

ज्या (क + ख)

= ज्या क. कोज्या ख + कोज्या क. ज्या ख; और

कोज्या (क + ख)

= कोज्या क कोज्या ख – ज्या क ज्या ख।

मान लो कि चित्र १० में कोण क = त अ च और कोण ख = च अ छ; अ छ में कोई बिन्दु ब लो और ब से ब म और ब न, अ त, और अ च पर लम्ब गिराओ। न से न ट, न प लम्ब गिराओ अ त, ब म पर। अब,

ज्या (क + ख) = ज्या (त अ च + च अ छ)

= ज्या त अ छ

$$= \frac{\text{ब म}}{\text{अ ब}} = \frac{\text{ब प} + \text{प म}}{\text{अ ब}}$$

$= \frac{\text{ब प}}{\text{अ ब}} + \frac{\text{न ट}}{\text{अ ब}}$ [क्योंकि प म = न ट]

$= \frac{\text{ब प}}{\text{ब न}} \cdot \frac{\text{ब न}}{\text{अ ब}} + \frac{\text{न ट}}{\text{अ न}} \cdot \frac{\text{अ न}}{\text{अ ब}}$

= कोज्या नबप. ज्या ख + ज्या क. कोज्या ख

= कोज्या क. ज्या ख + ज्या क. कोज्या ख
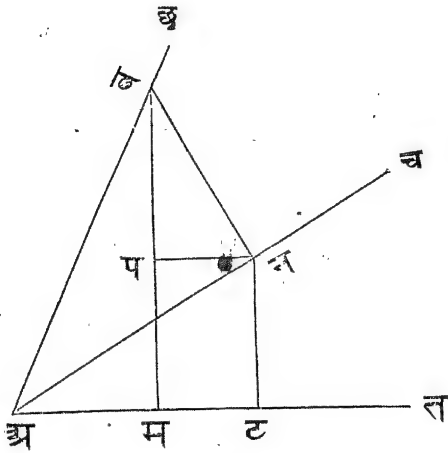
चित्र १०

[क्योंकि कोण नबप = ९० − बनप
= पनअ = नअत = क]

∴ ज्या (क + ख)

= ज्या क कोज्या ख + कोज्या क ज्या ख

पर कोज्या (क + ख)

$= \frac{\text{अ म}}{\text{अ ब}} = \frac{\text{अ ट} - \text{म ट}}{\text{अ ब}}$

$= \frac{\text{अ ट}}{\text{अ ब}} - \frac{\text{प न}}{\text{अ ब}}$ [∵ पन=मट]

$= \frac{\text{अ ट}}{\text{अ न}} \cdot \frac{\text{अ न}}{\text{अ ब}} - \frac{\text{प न}}{\text{ब न}} \cdot \frac{\text{ब न}}{\text{अ ब}}$

= कोज्या क. कोज्या ख − ज्या नबम. ज्या ख

= कोज्या क. कोज्या ख − ज्या क. ज्या ख

२४—सिद्ध करो कि—

ज्या (क−ख) = ज्या क. कोज्या ख − कोज्या क. ज्या ख

मानलो कि कोण तअच=क, और चअछ=ख

∴ तअछ=तअच—चअछ
=क—ख
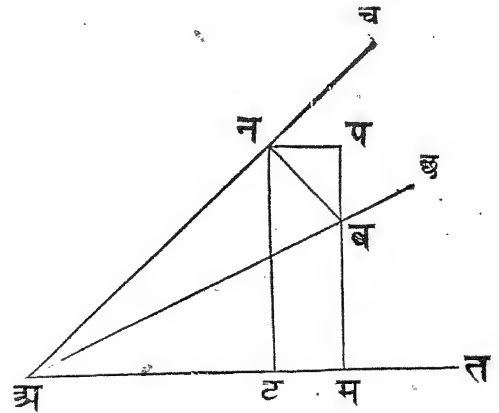
चित्र ११

अछ पर ब बिन्दु लेकर, बम, बन, लम्ब गिराओ। और न से भी नट, नप लम्ब गिरा लो।

अब ज्या (क−ख) = ज्या तअछ

$= \frac{\text{ब म}}{\text{अ ब}} = \frac{\text{प म} - \text{प ब}}{\text{अ ब}}$

$= \frac{\text{न ट}}{\text{अ ब}} - \frac{\text{प ब}}{\text{अ ब}}$ [∵ नट=पम]

$= \frac{\text{न ट}}{\text{अ न}} \cdot \frac{\text{अ न}}{\text{अ ब}} - \frac{\text{प ब}}{\text{न ब}} \cdot \frac{\text{न ब}}{\text{अ ब}}$

= ज्या क. कोज्या ख − ज्या पनब. ज्या ख

= ज्या क. कोज्या ख − कोज्या क. ज्या ख

[∵ पनब=९० − पनच
=९० − क; नप और अतके समानान्तर होनेसे

∴ ज्या पबन=ज्या (९०−क) = कोज्या क]

इसी प्रकार—

कोज्या (क−ख)=कोज्या तअछ

$= \frac{\text{अ म}}{\text{अ ब}} = \frac{\text{अ ट} + \text{ट म}}{\text{अ ब}}$

$= \frac{\text{अ ट}}{\text{अ ब}} + \frac{\text{न प}}{\text{अ ब}}$ [∵ टम=नप]

$= \frac{\text{अ ट}}{\text{अ न}} \cdot \frac{\text{अ न}}{\text{अ ब}} + \frac{\text{न प}}{\text{न ब}} \cdot \frac{\text{न ब}}{\text{अ ब}}$

कोण	०	३०	४५	६०	९०	१२०	१३५	१५०	१८०
ज्या	०	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{\sqrt{२}}$	$\frac{\sqrt{३}}{२}$	१	$\frac{\sqrt{३}}{२}$	$\frac{१}{\sqrt{२}}$	$\frac{१}{२}$	०
कोज्या	१	$\frac{\sqrt{३}}{२}$	$\frac{१}{\sqrt{२}}$	$\frac{१}{२}$	०	$-\frac{१}{२}$	$-\frac{१}{\sqrt{२}}$	$-\frac{\sqrt{३}}{२}$	−१
स्प	०	$\frac{१}{\sqrt{३}}$	१	$\sqrt{३}$	∞	$-\sqrt{३}$	−१	$-\frac{१}{\sqrt{३}}$	०
कोस्प	∞	$\sqrt{३}$	१	$\frac{१}{\sqrt{३}}$	०	$-\frac{१}{\sqrt{३}}$	−१	$-\sqrt{३}$	−∞
छे	१	$\frac{२}{\sqrt{३}}$	$\sqrt{२}$	२	∞	−२	$-\sqrt{२}$	$-\frac{२}{\sqrt{३}}$	−१
कोछे	∞	२	$\sqrt{२}$	$\frac{२}{\sqrt{३}}$	१	$\frac{२}{\sqrt{३}}$	$\sqrt{२}$	२	∞

भारत–गीत ४९

(१)

त्रिभुवन-वन्द्य, भारत धाम
त्रिजग-संपति-सुकृत-सुख-थल,
त्रिजग-छवि-अभिराम

(२)

सुरुचि-सुमति-सनेह-शुचिता-पुंज, मंजुल-नाम
वीर-गेह, अमेय-विक्रम, ध्येय-ध्रुव, गुन-ग्राम
त्रिभुवन-वन्द्य भारत धाम

(३)

त्रिजग-तेज-अशेष-शोभित, त्रिजग-शोभा-ठाम
सतत-श्रीधर-विहित-बहु-विधि-प्रयत-प्रेम-प्रणाम
त्रिभुवन-वन्द्य, भारत धाम

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग, ३१. १२-१९१८ } —श्रीधर पाठक

बीज ज्यामिति

[ले०—'बनमाली']

[गताङ्कसे सम्मिलित]

जब कभी कोई विन्दु किसी नियम विशेषके अनुसार स्थान परिवर्तन करता है तो उसकी पथप्रदर्शक रेखाको उसका विन्दु-पथ कहते हैं और उक्त नियमके आधारपर विन्दुके भुज-युग्मोंमें कोई न कोई सम्बन्ध निकाल लेना आसान होता है। इसी सम्बन्धको विन्दुपथका समीकरण कहते हैं। प्रत्येक विन्दुपथका समीकरण निकाल सकते हैं, पर ध्यान रहे कि कोई रेखा विन्दु-पथ कहलानेकी हक़दार तबतक न होगी जबतक कि उसके उत्पादक विन्दुकी गतिके नियम मालूम न होंगे। नियमको न जानने तक तो उसे केवल रेखा ही कहेंगे।

अब इस प्रश्नके दूसरे पक्षपर विचार करना चाहिये। प्रत्येक विन्दु-पथका तो कोई न कोई

कोण	०	३०	४५	६०	९०	१२०	१३५	१५०	१८०
ज्या	०	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{\sqrt{२}}$	$\frac{\sqrt{३}}{२}$	१	$\frac{\sqrt{३}}{२}$	$\frac{१}{\sqrt{२}}$	$\frac{१}{२}$	०
कोज्या	१	$\frac{\sqrt{३}}{२}$	$\frac{१}{\sqrt{२}}$	$\frac{१}{२}$	०	$-\frac{१}{२}$	$-\frac{१}{\sqrt{२}}$	$\frac{\sqrt{३}}{-२}$	−१
स्प	०	$\frac{१}{\sqrt{३}}$	१	$\sqrt{३}$	∞	$-\sqrt{३}$	−१	$\frac{-१}{\sqrt{३}}$	०
कोस्प	∞	$\sqrt{३}$	१	$\frac{१}{\sqrt{३}}$	०	$-\frac{१}{\sqrt{३}}$	−१	$-\sqrt{३}$	$-\infty$
छे	१	$\frac{२}{\sqrt{३}}$	$\sqrt{२}$	२	∞	−२	$-\sqrt{२}$	$\frac{-२}{\sqrt{३}}$	−१
कोछे	∞	२	$\sqrt{२}$	$\frac{२}{\sqrt{३}}$	१	$\frac{२}{\sqrt{३}}$	$\sqrt{२}$	२	∞

भारत–गीत ४९

(१)

त्रिभुवन-वन्द्य, भारत धाम
त्रिजग-संपति-सुकृत-सुख-थल,
त्रिजग-छवि-अभिराम

(२)

सुरुचि-सुमति-सनेह-शुचिता-पुंज, मंजुल-नाम
वीर-गेह, अमेय-विक्रम, ध्येय-ध्रुव, गुन-ग्राम
त्रिभुवन-वन्द्य भारत धाम

(३)

त्रिजग-तेज़-अशेष-शोभित, त्रिजग-शोभा-ठाम
सतत-श्रीधर-विहित-बहु-विधि-प्रयत-प्रेम-प्रणाम
त्रिभुवन-वन्द्य, भारत धाम

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग, ३१. १२-१९१८ } —श्रीधर पाठक

बीज ज्यामिति

[ले०—' बनमाली ']

[गताङ्कसे सम्मिलित]

जब कभी कोई विन्दु किसी नियम विशेषके अनुसार स्थान परिवर्तन करता है तो उसकी पथप्रदर्शक रेखाको उसका विन्दु-पथ कहते हैं और उक्त नियमके आधारपर विन्दुके भुज-युग्मोंमें कोई न कोई सम्बन्ध निकाल लेना आसान होता है। इसी सम्बन्धको विन्दुपथका समीकरण कहते हैं। प्रत्येक विन्दुपथका समीकरण निकाल सकते हैं, पर ध्यान रहे कि कोई रेखा विन्दु-पथ कहलानेकी हक़दार तबतक न होगी जबतक कि उसके उत्पादक विन्दुकी गतिके नियम मालूम न होंगे। नियमको न जानने तक तो उसे केवल रेखा ही कहेंगे।

अब इस प्रश्नके दूसरे पक्षपर विचार करना चाहिये। प्रत्येक विन्दु-पथका तो कोई न कोई

समीकरण होता है, पर क्या प्रत्येक समीकरण-का कोई विन्दुपथ नहीं होता? पूर्वानुभवसे कह सकते हैं कि अवश्य होता है, परन्तु यह स्मरण रहे कि सरल बीज ज्यामितिमें हम केवल उन्हीं समीकरणोंका विचार करते हैं, जिनमें दो अज्ञात राशियां होती हैं।

यदि किसी एक समीकरणमें दो अज्ञात राशियां हों तो उनको जान लेना असम्भव है, पर उनकी निष्पत्ति निकाल लेना आसान है। इसीसे यदि हम उनमेंसे किसी एकका कुछ मान (परिमाण) मानलें तो उक्त निष्पत्ति द्वारा दूसरी राशिका आपेक्षिक मान जान सकते हैं। इस प्रकार हमको दो परस्पर सम्बद्ध संख्या ज्ञात हो जाती हैं, जिनका सम्बन्ध बीज ज्यामितिकी सहायतासे एक विन्दु द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं। इसी भांति एक अज्ञात राशिके क्रमशः कई मान मान-लेनेसे दूसरी अज्ञात राशिके आपेक्षिक मान भी मालूम हो सकते हैं और प्रत्येक मानोंकी जोड़ीके लिए एक विन्दु मिल सकता है। अन्तमें इन सब विन्दुओंको जोड़ कर रेखा खींच लेनेसे समी-करणका विन्दुपथ ज्ञात हो जाता है। बीज गणि-तके ज्ञाताओंको मालूम होगा कि दो अज्ञात राशि-योंके जान लेनेके लिए दो समीकरणोंकी आवश्य-कता होती है। यदि यह दोनों समीकरण दिये हुए हों तो हम अज्ञात राशियोंको निकाल सकते हैं। अब विचार कीजिये कि दोनों समीकरण तो दो रेखाओंको सूचित करते हैं, फिर यह अज्ञात राशियोंके निकाले हुए मान (परिमाण) क्या सूचित करेंगे। गौर करनेसे मालूम हो जायगा कि यह उस विन्दुको सूचित करेंगे (अर्थात् उस विन्दुके भुज युग्म होंगे) जिसपर कि दोनों रेखाएं एक दूसरीको काटती हैं।

उदाहरण—(१) नीचे दिये हुए समीकरण-का विन्दुपथ क्या है—

$$य - र = ३$$

$$य - र = ३$$

$$\therefore\ य = ३ + र$$

अब र को क्रमशः ०,१,२,३, इत्यादि मान देकर य के भी सम्बद्ध मान निकाल कर एक सारिणी बनालो।

य	र	
३	०	
४	१	
५	२	
६	३	इत्यादि

अब (३,०), (४,१), (५,२), (६,३) आदि विन्दुओंको निर्दिष्ट करो और उनको जोड़ कर रेखा खींचो। यह एक सरल रेखा है।

(२) ३ य + ४ र = ५ का क्या विन्दुपथ है?

$$४ र = ५ - ३ य$$

$$\therefore र = \frac{५}{४} - \frac{३}{४} य$$

∴ यदि

$य = ०\ ;\ र = \frac{५}{४}$

$य = १\ ;\ र = \frac{१}{२}$

$य = २\ ;\ र = -\frac{१}{४}$ इत्यादि

अब $(०, \frac{५}{४})$, $(१, \frac{१}{२})$, $(२, -\frac{१}{४})$ आदि विन्दु-ओंको निर्दिष्ट करो और उनको जोड़कर रेखा खींच लो। यह एक सरल रेखा होगा।

(३) य = ५ का क्या विन्दुपथ होगा?

यहां पर य का मान सदा उतना ही बना रहेगा, पर र को जो चाहें सो मान दे सकते हैं। अतएव (५,०), (५,१), (५,२), (५,३), आदि विन्दु बनाकर जोड़ दो। यह एक सरल रेखा होगी, जो कोटिके समानान्तर होगी।

(४) $य^२ + र^२ = २५$ का कैसा विन्दुपथ है?

यहां $र^२ = २५ - य^२$; इसलिए $य^२$ कभी २५

से तो ज्यादा हो ही नहीं सकता, वरना $र^२$ ऋणात्मक हो जायगा। ∴ य का मूल्य -५ से लेकर +५ तक कुछ भी हो सकता है। स्पष्ट है कि यह विन्दुपथ (५,०) और (-५,०) विन्दुओंके भीतर ही भीतर है। इसी प्रकार ज्ञात होगा कि विन्दुपथ (०,५) और (०,-५) विन्दुओंके भीतर ही भीतर है। यह भी स्पष्ट है कि विन्दुपथपरके प्रत्येक विन्दुकी दूरी मूलविन्दुसे सदा एक समान रहती है।

[मूलविन्दु है विन्दु (०,०) और इस विन्दुपथ पर कोई विन्दु (य,र) ले लीजिये, जिसकी दूरी मूल विन्दुसे $= \sqrt{(य-०)^२ + (र-०)^२}$

$$= \sqrt{य^२ + र^२} = \sqrt{२५} = \pm ५$$

इसलिए विन्दुपथ एक वृत्त है जिसका केंद्र मूलविन्दु है और अर्धव्यास = ५।

ऊपर जो चार उदाहरण हमने दिये हैं वह केवल एक साधारण विधिके समझानेके लिए दिये हैं, जिसका प्रयोग सभी कर सकते हैं। परन्तु बीजज्यामितिके जाननेवाले विन्दुपथको सहज ही निकाल लेते हैं। जिन नियमोंका वह सहारा लेकर ऐसा करते हैं उन्हींका वर्णन इस लेखमालामें किया जायगा। पहले हम उन्हीं समीकरणोंपर विचार करेंगे, जिनमें अज्ञात राशियोंकी घात १ होगी अर्थात् जो एकघात समीकरण हैं।

पिछले अङ्कमें जो सरल रेखाओंके समीकरण निकाले थे वह यहां इकट्ठे करके दिये देते हैं:—

(१) र=अ

(२) य=क

(३) र=स. य

(४) $\frac{य}{अ} + \frac{र}{इ} = १$

(५) र=स. य+इ

इन समीकरणोंपर ध्यान देनेसे ज्ञात होगा कि यह समीकरण एकघात समीकरण हैं और सभी नीचे दिये व्यापक रूपके अन्तर्गत आ जाते हैं।

$$त. य + थ. र + द = ०$$

इस व्यापक रूपमें, यदि त = ० ; थ = १ ; और द = - अ, तो समीकरण (१) मिल जायगा। इसी प्रकार यदि त = इ, थ = अ; और द = - अ. इ, तो (४) समीकरण मिल जायगा। सारांश यह कि जितनी सरल रेखाओंके समीकरण हमने अब तक निकाले हैं वह सब इस व्यापक रूपमें रखे जा सकते हैं। और यदि कोई एकघात समीकरण दिया हो तो उसको हम (१) से लेकर (५) तकके किसी न किसी रूपमें रख सकते हैं। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि एकघात समीकरणका विन्दुपथ सदैव कोई न कोई सरलरेखा होगी, जिसका उपरोक्त (५) समीकरणोंकी सहायतासे खींच लेना बड़ा आसान है। यह कथन नीचे दिये उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगा:—

उदाहरण (१) य = ७ सरल रेखाको खींचो।

इस समीकरणका मिलान दूसरे समीकरणसे कीजिये, यह एकसे ही हैं। इसलिए यह हम मान लेंगे कि यह एक सरलरेखा है जो कोटिके समानान्तर है और ७ इकाईकी दूरीपर है।

उदाहरण (२) य-र=० सरल रेखा खींचो ?

$$य - र = ०$$

$$\therefore र = य$$

अब इसको (५) वें समीकरणसे मिलाइये तो ज्ञात होगा कि स=१, और ई=० अर्थात् यह सरल रेखा कोटिमेंसे ०के बराबर टुकड़ा काटती है और भुजके साथ वह कोण बनाती है जिसका स्प = १। स्पष्ट है कि सरलरेखा मूलविन्दुमें होकर निकलती है और ४५° का कोण भुजसे बनाती है।

(३) ३ य+५ र=१५ रेखा खींचो।

$$३ य + ५ र = १५$$

$$\therefore \frac{३ य}{१५} + \frac{५ र}{१५} = \frac{१५}{१५}$$

$$\therefore \frac{य}{५} + \frac{र}{३} = १$$

इसको [४] थे समीकरणसे मिलाकर देखिये कि यह रेखा भुजमेंसे ५ इकाई लम्बा और कोटि-

मेंसे ३ इकाई लम्बा टुकड़ा काटती है। इतने लम्बे टुकड़े काटकर रेखा खींच लो।

अभ्यासके लिए यह रेखाएँ खींचोः—

१ ७ य+३ र=२१
२ य=र+७
३ र=८
४ य=१२
५ य+७ र=१४
६ य−७ र=१४
७ ७ र−य=१४
८ ७ र−य+१४=०

विज्ञान परिषद्का पांचवां वार्षिक अधिवेशन

विज्ञान परिषद्का पांचवां अधिवेशन माघ कृष्ण १०, १९७५ तदनुसार ता० २६ जनवरीको प्रयाग विश्वविद्यालयके सेनेट हालमें प्रातःकाल ८ बजे हुआ। लगभग ४०० सज्जन उपस्थित थे, जिनमेंसे कुछ परिषद्के सभ्य, परिसभ्य तथा हितैषियोंके नाम नीचे दिये जाते हैं।

(१) महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए.; डी. लिट. (२) लाला सीताराम, बी. ए., एफ. ए. यू. (३) श्री० इसहाक खान, बारिस्टर (४) श्री युत खान बहादुर हबीब हुसैन, बी. ए., एफ. ए. यू. (५) श्री० बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी (६) श्री० राधाचरन साह, बी. ए., काशी (७) श्रीयुत श्यामलाल, एम. ए., एल- एल. बी. (८) डा० अन्नदाप्रसाद, एम. ए., डी. एस-सी (९) प्रो० क्षेत्रपद चटर्जी, एम. एस-सी, (१०) प्रो० नन्दकुमार तिवारी, एम. एस-सी., काशी (११) प्रो० करमनारायण, एम. एस-सी (१२) पं० नवलकिशोर भार्गव, उपदीवान, आवागढ़ (१३) श्री० श्रीप्रकाश, बार-एट-ला, काशी (१४) श्री० मोहम्मद रज़ी, फतहपुर बाराबंकी (१५) प्रोफेसर मोहम्मद अली नामी, बी. ए., एम. एफ. (१६) मोलवी इसहाक़ अली (१७) प्रो० सीताराम शास्त्री (१८) प्रो० अमरनाथ झा (१९) मौलवी मोहम्मद मोहसिन (२०) मौलवी मोहम्मद इब्राहीम (२१) श्रीयुत बाबू सोहनलाल, एम. ए., डिप्टी कलक्टर (२२) प्रो० भुवनचन्द्र बोस, एम. ए. (२३) प्रो० डी. एन. पाल, एम. ए. (२४) प्रो० शतीश्चन्द्र, एम, ए. (२५) प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी, (२६) प्रो० चुन्नीलाल साहनी, एम. एस-सी (२७) प्रो० मेहदीहुसेन नासिरी. एम. ए, (२८) प्रो० व्रजराज, बी. एस-सी., एल-एल. बी. इत्यादि इत्यादि।

परिषद्के प्रधान मन्त्री लाला सीताराम, बी. ए., एफ. ए. यू. ने माननीय राजा सर रामपाल सिंह, के. सी. आई. ई. का तार पढ़कर सुनाया, जिसमें यह लिखा थाः—

"मुझे खेद है कि मैं किसी आवश्यक कार्यके कारण वार्षिक अधिवेशनमें शरीक न हो सकूंगा"

तदनन्तर डा० सरकारने यह प्रस्ताव किया कि डा० गङ्गानाथ झा सभापतिका आसन ग्रहण करें, जिसका अनुमोदन प्रोफ़ेसर पालने किया। डा० झा ने अधिवेशनका कार्य आरम्भ करनेके पहले यह प्रस्ताव कियाः—

"परिषद्का यह अधिवेशन राज कुमार जोनकी मृत्युपर शोक प्रकट करता है और भारत सम्राटके साथ सहानुभूति प्रकट करता है।"

इसका अनुमोदन समस्त उपस्थित सज्जनोंने खड़े होकर किया।

सभापतिकी आज्ञासे दूसरे प्रधान मन्त्री श्री० शतीश्चन्द्र देव, एम. ए. ने पिछले सालका कार्य विवरण पढ़ कर सुनाया, जिसका सारांश अन्यत्र दिया गया है। प्रो० क्षेत्रपद चटर्जीके अनुमोदन करने और प्रो० गोपालस्वरूप भार्गवके समर्थन करनेपर उक्त रिपोर्ट स्वीकार की गई।

तदनन्तर प्रो० इसहाक अली साहबने निम्न-

लिखित प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसका समर्थन पं० सीताराम शास्त्रीने किया और स्वीकृत हुआ:—

"यह परिषद् यह निश्चय करती है कि अन्तरंग सभा द्वारा निर्धारित कार्याधिकारियों और अन्तरङ्गियोंकी गत अक्टूबरकी सूचीके अनुसार जिसके अनुकूल परिषद्के अधिकांश सभ्योंकी संम्मति प्राप्त हुई है कार्याधिकारी और अन्तरङ्गी नियुक्त किये जायं"।

बाबू श्यामलाल, एम. ए., एल-एल. बी. के उपस्थित करने तथा लाला सीतारामके समर्थन करनेपर नीचे दिया हुआ प्रस्ताव स्वीकृत हुआः—

"परिषद् म्योर सेन्ट्रल कालेजके प्रिंसिपेल तथा भौतिक और रसायन शास्त्रके प्रोफ़ेसरोंको और कायस्थ पाठशालाके प्रिंसिपेलको इसलिए हार्दिक धन्यवाद देती है कि उन्होंने स्थान और सामग्रीसे बराबर परिषद्के व्याख्यानोंमें सहायता की है और आशा है कि उनकी सहानुभूति और सहकारिता भविष्यमें भी इसी प्रकार हमको कृतज्ञ होनेका अवसर देगी"।

तदनन्तर दो और प्रस्ताव उपस्थित हुए और समर्थन होनेके पीछे स्वीकृत हुए। इन प्रस्तावों द्वारा अवसर प्राप्त अन्तरङ्गी प्रो० रामदास गौड़ तथा प्रो० गोमतीप्रसाद अग्निहोत्रीको और विज्ञानके सम्पादक और लेखकोंको धन्यवाद दिया गया और यह आशा प्रकट की गई कि भविष्यमें भी उक्त सज्जन परिषद्की सेवा करते रहेंगे, जैसे अबतक की है।

उपरोक्त प्रस्तावोंके स्वीकृत होनेके पश्चात् प्रो० मेहदी हुसैन नासिरीका व्याख्यान 'अरबके निवासी और सायंस' विषयपर हुआ। व्याख्यान विद्वत्ता पूर्ण था, जिसको सुनकर श्रोताओंको बड़ा लाभ और आनन्द हुआ। यह व्याख्यान भी विज्ञानमें छपेगा, इसलिए यहां उसकी चरचा न की जायगी।

व्याख्यानके उपरान्त सभापति महोदयने थोड़ेसे शब्दोंमें परिषद्के काम और उसकी आर्थिक स्थितिपर कुछ विचार प्रकट किये और उपस्थित सज्जनोंसे यह प्रार्थना की कि विज्ञान परिषद्की यथा शक्ति सहायता करें। परिषद्के कार्य कर्ताओंके प्रति सभापति महोदयका यह उपदेश था कि परिषद्के जीवनके पांच वर्ष समाप्त हो चुके, अब वह समय चला गया जब परिषद्की भूलों और त्रुटियोंको जनता क्षमा कर दिया करती थी। अब वह समय आयगा जब किये हुए कामकी इतनी सराहना न होगी, जितनी कि त्रुटियों और भूलोंकी खबर ली जायगी। इसलिए भविष्यमें कार्य कर्ताओंको बड़ी सावधानीसे काम करना उचित है।

सभापतिकी वक्तृताके पीछे श्रीयुत पुरुषोत्तम दास टण्डनने निम्न लिखित सज्जनोंको परिषद्का सभ्य निर्वाचित किया और वे सभ्य चुने गयेः—

१—बाबू राधाचरण साह, बी. ए. काशी।

२—प्रो० शङ्करप्रशाद भार्गव, एम. ए., सेन जोन्स कालेज, आगरा।

३—श्री० व्रजगोपाल भटनागर, एम. ए., रिसर्च स्कालर, प्रयाग विश्वविद्यालय।

४—बाबू श्यामलाल, एम. ए., एल-एल. बी.

५—श्री० सोहनलाल, एम. ए. डिप्टी कलेक्टर, प्रयाग।

सभापति महोदय, व्याख्याता तथा बाहरसे आये हुए सज्जनोंको धन्यवाद देते हुए टण्डन जी ने कहाः—

आजका व्याख्यान सुनकर आप सज्जनोंको यह भली भांति मालूम हो गया होगा कि कठिनसे कठिन विषय भी मातृभाषा द्वारा कैसी सुगमतासे बतलाये और ग्रहण किये जा सकते हैं। किसी विदेशी भाषामें उन्हीं बातोंको कहनेमें विषयका लालित्य और रसिकता कितनी कम हो जाती है, यह बात भी आप साहिबानसे छिपी नहीं है। हम चाहते हैं कि प्रति सप्ताह ऐसे सुललित, गवेषणापूर्ण व्याख्यान हुआ करें, जिससे सर्वसाधारणमें विज्ञानका प्रकाश फैले और देशकी दशा सुधरे।

समितिका दूसरा महत्वका कार्य है 'एम्बुलेन्स और फर्स्ट एड क्लास' अर्थात् विद्यार्थियोंका या नवयुवकों का वह वर्ग जिन्हें संघातकोंकी चिकित्सा व्यवहारिक रूपसे सिखलायी जाती है। एम्बुलेन्सकक्षाका प्रारम्भ अगस्त १६१७ से हुआ था। इसकी व्यवस्था समितिके सुयोग्य सदस्य डा. मोदीके हाथमें थी। गत वर्ष ७१ विद्यार्थी सम्मिलित हुए, जिनमेंसे ५१ परीक्षामें बैठे और ४३ उत्तीर्ण हुए। फर्स्ट एडका प्रारम्भ सितम्बर १६१७में हुआ। व्याख्याता थे डा० रामचरणलाल। कक्षामें ४८ विद्यार्थी दाखिल हुए। परीक्षामें बैठे केवल ३० और २६ को प्रमाण पत्र मिले। समितिने युद्ध सम्बन्धी 'अवर डे' के उत्सवमें प्रदर्शनीके द्वारा अनुमान २५) एकत्रित कर 'अवर डे' फण्डको दान किया।

नये सालकेलिए समितिके सभापति, डा. इ. एच. हैनकिन, उप सभापति रेवरेण्ड डेवीस, मि. जोन्स प्रभृति ६ महाशय, कोषाध्यक्ष प्रो० करमचन्द मेहता और मंत्री मि. के. सी पांड्या निर्वाचित हुए।

हम उपरोक्त महानुभावोंके पवित्र लोकहैतैषी कार्योंकी सफलता और समितिके उत्तरोत्तर विस्तारकी हृदयसे कामना रखते हैं।

—'मास्टर'

केसीन

[लेखक—श्रीशंकरराव जोषी]

केसीन दूधसे निकाला जाता है। रंग (paints), सरेस, कंघी, बटन आदि कई उपयोगी पदार्थ केसीनसे बनाये जाते हैं। संसारमें ऐसा एक भी घर न होगा जिसमें केसीनसे बने पदार्थ काममें न लाये जाते होंगे।

गायके दूधमें केसीनका परिमाण प्रतिशत ३.५ है। बड़े बड़े कारखानोंमें केसीन मक्खनिया दूध (स्किम मिल्क) से बनाया जाता है। मलाई या मक्खन निकाल लेनेपर जो दूध रहता है उसे ही मक्खनिया दूध (स्किम मिल्क) कहते हैं। दूधमेंसे सेपेरेटर नामक मशीन द्वारा मलाई निकाल ली जाती है। 'स्किममिल्क' में घृतांश बहुत ही कम होता है। केसीन निम्नलिखित रीतिसे बनाया जाता हैः—

७०० गैलन (गैलन = १० पौंड) स्किम मिल्क को कढ़ाईमें रखकर १३५° फा० तक गरम करते हैं और तब उसमें थोड़ा सा हलका गंधकका तेज़ाब (dilute sulphuric acid) मिलाते हैं। इससे दूध जम जाता है। बादमें दहीका पानी नितार लिया जाता है। पानी अलग करलेनेपर दहीको छननेमें रखकर पानीकी धारा छोड़ी जाती है ठंडा पानी डालनेसे दही धुल जाता है। दहीको धोनेका कारण यह है कि उसमें कांजी (whey) न रहने पावे। इस धुले हुए दहीको तब घुमने पंखों (Rotatory fans) द्वारा सुखा लेते हैं। सूख जानेपर दहीका महीन चूरा कर रख छोड़ते हैं। बस, यही केसीन है। सौ पौंड स्किम मिल्कमेंसे करीब ४ पौंड केसीन निकलता है।

कहीं कहीं छाछसे भी केसीन बनाया जाता है। किन्तु वह घटिया होता है और कुछ काला भी होता है। परन्तु स्किम मिल्कसे निकाला हुआ केसीन घुलनशील और बढिया होता है। इस केसीनसे अच्छी अच्छी चीज़ें बनाई जा सकती हैं।

केसीनसे सरेस भी बनाते हैं। एक भाग पानी और चार भाग केसीन लेकर उसमें प्रतिशत १ से ४ भाग सोडा बाइकार मिलाते हैं। केसीन और अमोनियाके समान भाग लेकर गरम करनेसे भी उत्तम सरेस बनता है।

केसीन बहुत ही जल्दी चटकता है। यही कारण है कि रंग बनानेमें उसका बहुत ही उपयोग किया जाता है। केसीनसे बने रंग "केसीन एनेमल पेंट्स", "केसीन सिमेंटेड पेंट्स" कोल्ड वाटर पेंट्स" आदि नामोंसे बाजारमें बेचे जाते

समितिका दूसरा महत्वका कार्य है 'एम्बुलेन्स और फर्स्ट एड क्लास' अर्थात् विद्यार्थियोंका या नवयुवकों का वह वर्ग जिन्हें संघातकोंकी चिकित्सा व्यवहारिक रूपसे सिखलायी जाती है। एम्बुलेन्सकक्षाका प्रारम्भ अगस्त १६१७ से हुआ था। इसकी व्यवस्था समितिके सुयोग्य सदस्य डा. मोदीके हाथमें थी। गत वर्ष ७१ विद्यार्थी सम्मिलित हुए, जिनमेंसे ५१ परीक्षामें बैठे और ४३ उत्तीर्ण हुए। फर्स्ट एडका प्रारम्भ सितम्बर १६१७में हुआ। व्याख्याता थे डा० रामचरणलाल। कक्षामें ४८ विद्यार्थी दाख़िल हुए। परीक्षामें बैठे केवल ३० और २६ को प्रमाण पत्र मिले। समितिने युद्ध सम्बन्धी 'अवर डे' के उत्सवमें प्रदर्शनीके द्वारा अनुमान २५) एकत्रित कर 'अवर डे' फण्डको दान किया।

नये सालकेलिए समितिके सभापति, डा. इ. एच. हैनकिन, उप सभापति रेवरेण्ड डेवीस, मि. जोन्स प्रभृति ६ महाशय, कोषाध्यक्ष प्रो० करमचन्द मेहता और मंत्री मि. के. सी पांड्या निर्वाचित हुए।

हम उपरोक्त महानुभावोंके पवित्र लोकहितैषी कार्योंकी सफलता और समितिके उत्तरोत्तर विस्तारकी हृदयसे कामना रखते हैं।

—'मास्टर'

केसीन

[लेखक—श्रीशंकरराव जोषी]

केसीन दूधसे निकाला जाता है। रंग (paints), सरेस, कंघी, बटन आदि कई उपयोगी पदार्थ केसीनसे बनाये जाते हैं। संसारमें ऐसा एक भी घर न होगा जिसमें केसीनसे बने पदार्थ काममें न लाये जाते होंगे।

गायके दूधमें केसीनका परिमाण प्रतिशत ३.५ है। बड़े बड़े कारखानोंमें केसीन मक्खनिया दूध (स्किम मिल्क) से बनाया जाता है। मलाई या मक्खन निकाल लेनेपर जो दूध रहता है उसे ही मक्खनिया दूध (स्किम मिल्क) कहते हैं। दूधमेंसे सेपेरेटर नामक मशीन द्वारा मलाई निकाल ली जाती है। 'स्किममिल्क' में घृतांश बहुत ही कम होता है। केसीन निम्नलिखित रीतिसे बनाया जाता है:—

७०० गैलन (गैलन = १० पौंड) स्किम मिल्क को कढ़ाईमें रखकर १३५° फा० तक गरम करते हैं और तब उसमें थोड़ा सा हलका गंधकका तेज़ाब (dilute sulphuric acid) मिलाते हैं। इससे दूध जम जाता है। बादमें दहीका पानी नितार लिया जाता है। पानी अलग करलेनेपर दहीको छननेमें रखकर पानीकी धारा छोड़ी जाती है ठंड़ा पानी डालनेसे दही धुल जाता है। दहीको धोनेका कारण यह है कि उसमें कांजी (whey) न रहने पावे। इस धुले हुए दहीको तब घुमने पंखों (Rotatory fans) द्वारा सुखा लेते हैं। सूख जानेपर दहीका महीन चूरा कर रख छोड़ते हैं। बस, यही केसीन है। सौ पौंड स्किम मिल्कमेंसे करीब ४ पौंड केसीन निकलता है।

कहीं कहीं छाछसे भी केसीन बनाया जाता है। किन्तु वह घटिया होता है और कुछ काला भी होता है। परन्तु स्किम मिल्कसे निकाला हुआ केसीन घुलनशील और बढ़िया होता है। इस केसीनसे अच्छी अच्छी चीज़ें बनाई जा सकती हैं।

केसीनसे सरेस भी बनाते हैं। एक भाग पानी और चार भाग केसीन लेकर उसमें प्रतिशत १ से ४ भाग सोडा बाइकार मिलाते हैं। केसीन और अमोनियाके समान भाग लेकर गरम करनेसे भी उत्तम सरेस बनता है।

केसीन बहुत ही जल्दी चटकता है। यही कारण है कि रंग बनानेमें उसका बहुत ही उपयोग किया जाता है। केसीनसे बने रंग "केसीन एनेमल पेंट्स", "केसीन सिमेंटेड पेंट्स" कोल्ड वाटर पेंट्स" आदि नामोंसे बाजारमें बेचे जाते

है। केसीनके रंगमें सिमेंट मिलाकर वृक्षोंपर पोतनेसे खरगोश आदिसे उनकी रक्षा होती है।

फोटोग्राफी प्लेट्स, चटाइयां, हाथीदांतके बटन, कंघे, अँगूठियाँ, घंटियां आदि नाना प्रकारकी वस्तुएं केसीनसे बनाई जाती हैं। केसीनमें प्रोटीड नामक पौष्टिक पदार्थ अधिक परिमाणमें होता है। अतः उससे भांति भांतिके खाद्य पदार्थ भी बनाये जाते हैं।

प्रेरित पत्र

श्रीयुत "विज्ञान" सम्पादक जी,
महाशय,

एक गुजराती महाशयका हिन्दीपत्र जयपुरसे भेजा हुआ आज मुझे प्राप्त हुआ है। उसमें उन्होंने अपना शुभ नाम नहीं दिया है और तिथि भी पूरी नहीं लिखी है; परन्तु मेरे भारत गीत ३८ (अटवि अटन) पर जो गत दिसम्बरके "विज्ञान" में प्रकाशित हुआ है, प्रसन्नता प्रकट की है। आप गुजराती भाषाके कवि हैं और लिखते हैं कि आप उक्त पद्यके छन्दमें अपनी मातृ भाषामें "अनुमान सात आठ" बरससे वाल्मीकीय रामायणका अनुवाद कर रहे हैं। और "बहुत ही मनन एवं प्रयत्नसे" आपने इस "नवीन प्रबन्ध (छन्द)" की "योजना की" थी। आप जानना चाहते हैं कि मेरी "रचना गुजरातीका अनुकरण है वा स्वतंत्र कृति है।" आपका नाम धाम अज्ञात होनेसे आपके कृपापत्रका उत्तर "विज्ञान" द्वारा देनेको विवश हो मैं निवेदन करता हूं कि मेरा छन्द आपके "प्रबन्ध" का अनुकरण नहीं है। मुझे आपके गुजराती ग्रन्थके दर्शनका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ और न उस भाषासे मैं विशेष परिचित हूं। पहले ही पहले यह छन्द तुकान्त रूपमें मैंने सन् १८८५ ई० में अपने "घन-दिग्विजय" नामक निबन्धमें व्यवहार किया था। यह पद्य मेरे "मनोविनोद" के २०२-३ पृष्ठोंपर अपूर्ण प्रकाशित है। "अटवि अटन" में वही छन्द अतुकान्त रूपमें व्यवहृत है।

श्रीपद्म कोट
प्रयाग, १७ फ़रवरी, १९१९ } —श्रीधर पाठक।

अंधेरेमें चमकनेवाली घड़ियां

अंधेरेमें चमकनेवाली घड़ियोंमें जो घंटोंके निशान बने होते हैं उनमें किसी विकीरक पदार्थका अंश रहता है। यह विकीरक पदार्थ ही अंधेरेमें भी उन अंकोंके देखनेमें सहायता करता है। अब तक रेडियम धातुका प्रयोग इन घड़ियोंकी डायलके निर्माणमें किया जाता था, परन्तु हालमें संयुक्त राज्य अमेरिकाके खानोंके महकमेके डा. रिचार्ड ल एन. मूर ने एक नया पदार्थ तैय्यार किया है जिसका नाम उन्होंने मेनो-थोरियम रखा है। उनका कहना है कि यह पदार्थ रेडियमके स्थानपर घड़ियों आदिके चमकनेवाले अंगोंके बनानेमें काम आ सकता है और रेडियमकी अपेक्षा बहुत सस्ता है।

टंग्स्टनका अकाल

टंग्स्टन (तुंगस्त) बिजलीके लम्पों और अच्छी फौलादके बनानेमें काम आता है। हालमें मालूम हुआ है कि संसारकी मंडियों में इतना भी तुंगस्त मौजूद नहीं है कि एक सालका भी काम चल सके। इसी कारण फ्रांस, इङ्गलैंड और संयुक्तराज्यकी गवर्नमेंट आपसमें इस विषयपर पत्र व्यवहार कर रही हैं और यह तजवीज़ हो रही है कि जितना तुंगस्त अमेरिकामें निकले उतना संयुक्तराज्य अमे० लेले, जितना बर्मामें निकले उतना इङ्गलैण्ड लेलें और जितना कि अन्य देशोंमें निकले उतना उक्त तीनों देशोंमें बराबर बांट दिया जाय।

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ नवजात सबसे सरस मासिक पत्रिका

औरोंकी दृष्टिमें

चित्रमय जगत्—पत्रिका सब प्रकारसे उच्च और अपने ढंगकी एक नई वस्तु है।

विश्वमित्र—हम इसे उच्च कोटिकी मानते हैं।

प्रकाश—ललिता वास्तवमें रूप, गुण, माधुर्य तथा लालित्यकी खानि है। ललिता, सोलहों आने शृङ्गारसे है। इसपर भी मूल्य ५) वार्षिक कुछ अधिक नहीं। लेख एक से एक बढ़िया, सार गर्भित, विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरञ्जक हैं।

सद्धर्म प्रचारक—पत्रिकाका स्वरूप कुछ सरस्वतीसे घटिया नहीं दिखाई देता।

धर्माभ्युदय—बहिरंग मनोहर है और हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उसका अन्तरंग भी हृदयग्राही है।

वार्षिक मूल्य ५) छः मासका मूल्य २॥) नमूनेकी प्रति ॥)

मैनेजर—ललिता, सेवा सदन मेरठ।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचाकर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥।)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥।). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-कागज़ काम, रद्दीका उपयोग-).७-केला—मूल्य -). ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ६-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग १—ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२—**विज्ञान प्रवेशिका** भाग २—ले० महावीर-प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३—**मिफताह-उल-फ़नून**—अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४—**ताप**—ले० प्रेमवल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५—**हरारत** [तापका उर्दू अनुवाद]—अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला, प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० सालिग्राम वर्मा, ... ‌-)

७—**केला**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... -)

८—**सुवर्णकारी**—ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९—**चुम्बक**—ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—ले० वसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी., विशारद, ... ।=)

११—**क्षयरोग**—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... -)

१२—**दियासलाई और फास्फोरस**—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. -)

१३—**शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम**—ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. ।)

विज्ञापन छपाईके नियम।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास ... ... ५)
प्रति पृष्ठ २ कालम ... ... ४)
१ ,, ... २।)
आधा ,, ... १।)
आधे कालमसे कमका ... ... १)

२—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा। जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें।

३—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी।

४—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालेको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा।

५—विज्ञापन बँटाईकी दर कोड़पत्र देखकर बतायी जायगी।

६—अधिक कालकेलिए तथा अन्य बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएँ।

निवेदक, मंत्री विज्ञान परिषत्,
प्रयाग।

'प्रभात'का विशेष अंक।

राष्ट्रीय शिक्षापर एप्रिल मासमें प्रकाशित होगा। मि. अरंडेल, पं० इकबालनारायण गुर्टू, मि. पी. के. तेलंग, प्रताप सम्पादक श्रीयुत गणेश शंकर विद्यार्थी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्रीयुत जगमोहन 'विकसित' श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव तथा अन्य स्वनामधन्य व्यक्ति इस अङ्कके लेखक हैं। इस संख्याकी मांग बहुत होगी, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। अतः विज्ञापन दाताओंको यह सुअवसर हाथसे जाने नहीं देना चाहिये। जो सज्जन केवल इस अङ्कके ग्राहक होना चाहते हों उन्हें अति शीघ्र हा चार आनेके टिकट भेजकर ग्राहक श्रेणीमें नाम लिखा लेना चाहिये।

भवदीयः—
मैनेजर 'प्रभात,' कानपुर

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

Reg. No. A-708

पूर्ण संख्या ४७ | कुम्भ १६७५। फर्वरी १६१६ | संख्या ५
भाग ८
Vol. VIII. | | No. 5

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] | [एक प्रतिका मूल्य ।)

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ नवजात सबसे सरस मासिक पत्रिका

औरोंको दृष्टिमें

चित्रमय जगत्—पत्रिका सब प्रकारसे उच्च और अपने ढंगकी एक नई वस्तु है।

विश्वमित्र—हम इसे उच्च कोटिकी मानते हैं।

प्रकाश—ललिता वास्तवमें रूप, गुण, माधुर्य तथा लालित्यकी खानि है। ललिता, सोलहों आने शृङ्गारसे है। इसपर भी मूल्य ५) वार्षिक कुछ अधिक नहीं। लेख एक से एक बढ़िया, सार गर्भित, विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरञ्जक हैं।

सद्धर्म प्रचारक—पत्रिकाका स्वरूप कुछ सरस्वतीसे घटिया नहीं दिखाई देता।

धर्माभ्युदय—बहिरंग मनोहर है और हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उसका अन्तरंग भी हृदयग्राही है।

वार्षिक मूल्य ५) छः मासका मूल्य २॥) नमूनेकी प्रति ॥)

मैनेजर—ललिता, सेवा सदन मेरठ।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचाकर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—

सुख-संचारक कंपनी मथुरा

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग-दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।). २-ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-). ३-करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥।). ४-संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -). ५-सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।). ६-कागज़ काम, रद्दीका उपयोग-).७-केला—मूल्य -). ८-सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९-खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः – पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग ८ } कुम्भ, संवत् १९७५। फ़रवरी, सन् १९१९। { संख्या ५

मंगलाचरण

भारत गीत—५४

(भक्ति प्रार्थना)

(१)

जय, जय, श्रीश हे, भुवन - भूपति, भूत-गते
जय करुणानिधे, जगत - कारण, सत्य - सखे
सुहृद त्रिधाम के, सकल-सद्गुण-मन्दिर हे
नितनित दे हमें अमृत - जीवन - ज्योति, हरे

(२)

जब जब धर्म का धरणि पै प्रभु ! ह्रास हुआ
थल थल पाप का प्रबल वर्तित त्रास हुआ
जग, सुख-वर्त्म से विमुख हो, दुख-ग्रास हुआ
तब तब तू हुआ उदय, दुर्नय नाश हुआ

(३)

प्रतिकृति की अतः सतत है, प्रभु, आस हमें
अघ-कृत हो जभी जगत में अति त्रास हमें
निज - परता करै निज नियंत्रित दास हमें
निज - पर - ज्ञान का अणु रहै न उजास हमें

(४)

जग यह किन्तु हे अनघ ! क्यों अघ-युक्त हुआ
अविरत क्यों नहीं, सुखद हे, सुख - भुक्त हुआ
तव पद - प्रेम में सतत क्यों नहीं सक्त हुआ
विविध प्रपंच के प्रभवसे परिमुक्त हुआ ?

(५)

प्रभु, इस प्रश्न का प्रमित उत्तर हो कि न हो
जग समझै नहीं, तुम कभी कुछ दो कि न दो
पर यदि है सही कुछ कहीं, तुम सो कुछ हो
जग सब है वही जगपते ! तुम जो कुछ हो

(६)

सब तव ही स्वतः प्रतत है प्रतिभास प्रभो
बहु गुण रूप से विवृत, व्यक्त, विवर्तित हो
इस विधि सिद्ध है जगत का जब सत्व विभो
तब जग-भक्ति ही सविध, क्यों तव भक्ति न हो ?

(७)

उस सद् भक्ति से भरित भू प्रभु भूरि करो
सदय स्वशक्ति से दुरित-उद्भव दूर करो
विनय - निकेत हे, अनय के सब हेतु हरो
पय - धर प्रेमके,-धरणि पै पय - प्रेम झरो

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग, १३-२ १९१९ } —श्रीधर पाठक

ताम्बेके पात्र और पवित्री

[ले०—'रसायन']

हिन्दुओंमें अनन्त कालसे ऐसा वि-श्वास चला आया है कि जो मनुष्य ताम्बेके घड़ोंमें रखे हुए पानीसे स्नान करता है वह गंगा स्नानका पुण्य लाभ करता है और जो उसको पीता है वह गंगाजलका पान करता है। परन्तु यह साफ़ तौरपर लोगोंको बतला दिया जाता है कि ताम्बेके पात्रमें भोजन बनाना या उसमें रख कर खाना अर्थात् ताम्बेके पात्रको जूठा करना सर्वथा अनुचित है और जो ऐसा करता है उसे पाप लगता है। मुसलमानोंमें भी ताम्बेके पात्रों-को साधारणतया व्यवहारमें लाना मना है, उनके मज़हबमें ताम्बा, जब तक उसपर क़लई न हो जाय, मकरूह समझा जाता है। आज हम इस बातपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करेंगे और यह निर्णय करेंगे कि यह न्यायसंगत है अथवा नहीं।

रसायन शास्त्रके पढ़नेवालोंको यह मालूम होगा कि ताम्बेके समस्त यौगिक विषैले होते हैं। उनके प्रयोगसे जन्तुओंका मारना बड़ा आसान है, खेतोंमें जब पौदोंपर काले या लाल धब्बे पड़ जाते हैं (जो विशेष प्रकारके जीवाणुओंके दाने होते हैं) तो राख और नीले थोथेको पानीमें घोल कर उनपर छिड़क देते हैं। ऐसा करनेसे पौदोंका रोग शान्त हो जाता है। नीला थोथा ताम्बेका गंधेत होता है। इसी प्रकार पेरिस ग्रीन (Paris green) या शील ग्रीन (Scheele's green) ताम्बेके दो अन्य यौगिक हैं, जो पोटेटो-बीटिल (Potato-beetles) वा अन्य कीड़े मकोड़ोंको मारनेके काममें आते हैं।

ताम्बेके घड़ोंमें जब पानी भर कर रखा जाता है, तो पानीमें घुली हुई हवा और कर्बन द्विओषिद-की क्रियासे ताम्बेका बहुत सूक्ष्म अंश पानीमें घुल जाता है। यह मात्रा अत्यन्त थोड़ी होती है, जिस-का प्रभाव मनुष्यपर तो नहीं पड़ता, परन्तु पानी-मेंके जीवाणुओंको मारनेके लिए पर्याप्त होती है। यही कारण है कि ताम्र घटोंमें रखा हुआ पानी गंगाजलके तुल्य पवित्र समझा जाता है।

अब मान लीजिये कि आप किसी ताम्बेके बर्तनमें खाना बनाना चाहते हैं। तो यह लाज़िमी है कि आप उसे चूल्हेपर चढ़ायेंगे और नमक वगैरा कई मसाले भी डालेंगे। यह सब पदार्थ ताम्बेके साथ रासायनिक क्रिया आरम्भ कर देंगे और उसका कुछ अंश घुला लेंगे। यह अंश इतना ज़्यादा होगा कि एक नहीं कई आदमियोंके मारने-के लिए काफ़ी होगा। यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि ताम्बेकी इतनी मिक़दार क्यों हल हो जाती है। इसके दो कारण हैं:—

(१) ऊंचे दर्जेकी गर्मीका होना।

(२) नमक आदि पदार्थोंका प्रस्तुत होना।

रसायन शास्त्र जाननेवालोंका अनुभव है कि यदि तापक्रम दस अंश बढ़ा दिया जाय तो रासा-यनिक क्रियाका वेग दुगुना हो जाता है। इससे स्पष्ट होगा कि तापक्रम बढ़ानेसे ताम्बेके घुलनेका वेग बढ़ जायगा और थोड़े ही समयमें बहुत सा ताम्बा घुल कर, जो चीज़ रांधी जा रही होगी उसे विषैला कर देगा।

दूसरे नमक, खटाई आदि पदार्थ जो डाले जायँगे, उनका प्रभाव पानीसे कहीं अधिक होगा। इस कारणसे भी ताम्बेकी अधिक मात्रा घुल जायगी और पाकको विषैला कर देगी। अतएव स्पष्ट है कि ताम्बेके पात्रोंमें किसी खाद्य पदार्थका रांधना अनुचित और हानिकारक है। ताम्बेके पात्रोंमें चीज़ोंको रखकर खानेमें हर्ज नहीं है, यदि चीज़ सूखी हो और पात्र मुंहसे न लगाया जाय। यदि चीज़ गीली होगी तो उसकी ताम्बेके साथ रासायनिक क्रिया आरम्भ हो जायगी और वह चीज़ बहुत जल्द ज़हरीली हो जायगी। ताम्र पात्रोंको मुंहसे लगानेमें भी यही दोष है, क्योंकि राल (saliva) ताम्बेको कुछ न कुछ मात्रामें घुला

लेगी, जिससे हानि पहुंचेगी, परन्तु यदि ताम्बेके पात्रपर कलई कर दी जाय तो उसमें खाना बनानेमें कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि कलईकी पतली तह ताम्बेको घुलने न देगी और खानेको विषैला न बनने देगी।

पवित्री

हिन्दुओंमें यह रिवाज है कि ताम्बे, चांदी और सोनेके तारोंका बना हुआ छल्ला, जिसे पवित्री भी कहते हैं, कनिष्ठिकामें पहना करते हैं। इसका कारण भी प्रायः यही बताते हैं कि ताम्बा सोना और चांदी पवित्र पदार्थ हैं। इनका बदनपर रहना अच्छा है। स्नान करते समय यदि इनसे स्पर्श करके पानी बदनपर गिरे तो गङ्गा स्नानका पुण्य होता है। इसी विश्वाससे गलेमें सुवर्ण और रुद्राक्षका रहना श्रेष्ठ समझा जाता है। प्रायः देखा गया है कि स्त्रियां दांतोंमें चोंप जड़वा लेती हैं, जिससे भोजन पवित्र होकर गलेसे उतरे। मरते समय भी यदि सोना मुंहमें पहुंच जाय तो धर्मात्मा हिन्दू समझते हैं कि आत्मा शुद्ध हो कर इस लोकसे प्रयाण कर स्वर्गारोहण करेगी। बच्चे जब किसी अशुद्ध वस्तु या अस्पृश्य व्यक्तिको छू लेते हैं तो उनको स्नान करना पड़ता है या गङ्गाजल या सोनेसे स्पर्श किया हुआ पानी उनपर छिड़क दिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि वह इस प्रकार शुद्ध हो जाते हैं।

पवित्री और सोने और चांदी आदि की शुद्ध करनेकी शक्ति वास्तविक है अथवा कल्पित? क्या आधुनिक विज्ञान इस प्रश्नपर कुछ प्रकाश डालता है अथवा नहीं? इन्हीं बातोंपर आइये आज विचार करें।

ताम्बेकी कृमिघ्न या कीटाणुनाशक शक्ति पर तो हम विस्तारसे पहले ही विचार कर चुके हैं। चांदीकी कीटाणुनाशक शक्तिपर हालमें ही कुछ प्रयोग पी. सेल (P- Saxl) महोदयने किये हैं। प्रयोगोंकी चर्चा करते हुए 'नेचर' (Nature) ने लिखा है "बहुत कालसे यह हमें मालूम है कि जो पानी ताम्बेकी नलियों या बम्बोंमें बह कर आता है वह कृमिघ्न गुण सम्पन्न होता है। हमें इस बातका भी ज्ञान है कि चान्दीको पानीमें डुबोनेसे पानीमेंके कीटाणु मर जाते हैं। इन्हीं बातोंके ज्ञानका उपयोग पी. सेलने पीनेके पानीको जीवाणुशून्य करनेके एक यंत्रमें किया है। कांचकी बोतलको पहले ऊपर तक पानीसे भरो, फिर चान्दीका एक तार उसकी गरदन तक पानीमें लटका दो और १४ दिन तक इसी प्रकार रखी रहने दो। तदनन्तर पानीको फेंक दो। फिर उसमें पानी भर कर तार लटका दो, तो पानी ८ घंटे तक जीवाणु शून्य रहेगा। परीक्षाओंसे पता लगा है कि इस रीतिसे पानीमेंके मोतीझिरे, हैज़े तथा आमातिसारके जीवाणु मर जाते हैं।"

उपरोक्त उदाहरणसे प्रतीत होगा कि पानीमें चान्दी डुबो कर रखनेसे पानीके जीवाणु मर जाते हैं। हमें आशा है कि कोई सज्जन सोने, रुद्राक्ष और कुशके गुणोंपर भी प्रयोग करके निश्चय करेंगे कि इनका जीवाणुओंपर क्या प्रभाव पड़ता है।

अद्भुत व्योम-विहरण

[ले०—श्री० लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव]

रामायणके पुष्पक विमानकी कथाएँ और नानीकी कहानीके उड़न खटोलोंकी बात अब विशेष रूपसे सत्य प्रमाणित हो रही है। सच मुच ही वर्तमान युगके सभ्यता शिखरारोही यूरोपीय वैज्ञानिकोंने विविध शक्तिशाली वायुयानोंका आविष्कार कर संसारके सामने एक प्रकारसे असम्भवको सम्भव कर दिखाया है। इन वायुयानोंके द्वारा मनुष्य आकाशमण्डलमें इतनी ऊंचाईतक पहुंच जाते हैं जितनी ऊंचाईतक पहुंचना कुछ दिनों पहले मानव शक्तिके बाहर समझा जाता था। अभी हालमें ही एक अङ्गरेज़ी

वायुयान (Biplane) की बहुत ही ऊंची, पर्व्वत राज हिमालयकी उच्चतम शिखर गौरीशंकरसे भी अधिक ऊंची, उड़ानका समाचार सुननेमें आया है। हम उसका कुछ हाल यहां देते हैं:—

कप्तान लेङ्क और लेफ्टिनेन्ट ब्लोज़ एक वायुयानमें उड़कर आकाशमंडलमें कोई छः मीलकी ऊंचाई तक पहुंच चुके हैं। यह वायुयान मि० हाल्ट थामसकी वायुयान निर्माणक कम्पनी (Aircraft Manufacturing Company) ने इङ्गलिस्तानमें ही बनाया है और उसमें नेपियर लायन (Napier lion) प्रकारका अङ्गरेज़ी एञ्जिन लगा है। गत यूरोपीय महासमरमें इस वायुयान द्वारा राइन नदीके किनारेवाले जर्मन शहरोंपर दिन दहाड़े बम गिराये जाते थे। उस समय बहुत भारी बोझसे लदे होनेपर भी यह बड़ी तेज़ीसे उड़ता फिरता था और युद्धके भारी सामान और कई यात्रियोंसे लदा हुआ भी दश हज़ार फुटकी ऊंचाईपर १४० मील प्रति घन्टेके हिसाबसे चलता था।

कप्तान लेङ्कने अपनी इस यात्राका वर्णन करते हुए कहा है—" हम लोगोंने 'ईप्सविच' के निकट 'मार्लशेम' नामक स्थानसे बड़ी तेज़ हवाके झोकेमें उड़ना आरम्भ किया और ३०५०० फुट अर्थात् लगभग छः मीलकी ऊंचाईतक पहुंच गये। मैं एक एक सहस्र फुटकी ऊंचाईपर वायुमण्डलकी दशाका ठीक ठाक हाल अपने दाहिने पैरके घुटनेपर बंधी हुई तख्तीपर लिखता जाता था। भिन्न भिन्न तापक्रमोंका हमारे वायुयानके कल पुर्ज़ों और उसकी गति विधिपर क्या प्रभाव होता था, एञ्जिनके जल और तेलका तापक्रम कहांपर कितना था, प्रति घंटा कितना पेट्रोल खर्च होता था, यह सब बातें मैं लिखता जाता था और कभी कभी इधर उधर देख कर दिशाका पता भी चलाता जाता था।

इस उड़ानका विचार कई सप्ताह पहलेसे ही हो रहा था। इसलिए हम लोगोंने तमाम मादक वस्तुओंका परित्याग कर दिया था। यहां तक कि कई सप्ताहसे तम्बाकू पीना भी छोड़ दिया था। हममेंसे हरएकने दो जोड़े रेशमी मोज़े, तीन जोड़े बड़े मोज़े, जांघ तकके ऊनी जूते, मोटे कपड़ेके नीचे पहननेके वस्त्र, तीन स्वेटर, बालोंसे भीतरकी ओर ढका हुआ एक आर्टिक सूट, एक बालाक्लाव (Balaclava) एक बालोंसे (नमदे) ढकी टोपी, कोल्हूके बैलोंकेसे चश्मे (Goggles) और बिजलीकी धारा द्वारा गरम होनेवाले दस्ताने पहने।

जब हमारा वायुयान ३०५०० फुटकी ऊंचाईपर पहुंचा तो शीतलता ७० अंश तक पहुंच गई। पृथ्वी तलसे ८००० फुटकी ऊंचाईपर पहुंचनेपर वायुयान पेड़की पत्तियोंकी तरह डांवा डोल था। हम अपने मार्गसे इतना हट गये कि छः मीलकी ऊंचाई तक पहुंचनेपर हम लोग यारमाउथसे पच्चीस मीलके अन्तरपर समुद्रके ऊपर आ गये। उस समय सूर्य्यकी ज्योति बड़ी उज्ज्वल और प्रखर जान पड़ती थी। ऊपरसे नीचेकी ओर दृष्टिपात करनेपर बिल्कुल धुंधला दिखाई पड़ता था। फिर भी बहुत दूर सागर वक्षपर तैरनेवाले कितने ही जहाज़ दिखाई देते थे और कभी कभी टेम्स नदीका भी कुछ दृश्य दीख पड़ता था।

मेरे पास दाहिनी आंखोंकी रक्षाके लिए मशीनमें लगा हुआ, एक छोटा शीशा था। परन्तु बाईं आंखकी रक्षाका कोई प्रबन्ध न था, क्योंकि तोपके लगे होनेके कारण शीशा नहीं लग सकता था। २०००० फुटकी ऊंचाईपर पहुंचनेपर मैंने अपना गोगिल उतार डाला। इसका कारण यह था कि शीशे पर आक्सीजन (?) जम गई। इसके उपरान्त मेरी बाईं आंखसे जल गिरने लगा और शीत लगनेके कारण वह शीघ्र ही बहुत फूल गई। १०००० फुट और अधिक ऊंचाईपर पहुंचनेपर मेरी बाईं आंख बिल्कुल निकम्मी हो गई और केवल दाहिनी ही आंखसे सब काम लेना पड़ा। २०००० फुटकी ऊंचाईपर पहुंचनेपर किसी पुर्ज़ेके टूट जानेके कारण मैं एञ्जिनके चक्करोंको दर्ज न कर सका।

१५०० फुट और ऊपर पहुंचनेपर उस नलीके टूट जानेसे, जिसमें होकर ओषजन आती थी लफ़्टेंट ब्लोज़ बेहोश हो गये। २७००० फुटकी ऊंचाईपर पहुंचनेपर वायुमंडलकी दशा बड़ी अस्थिर थी। वायु वेगके कारण मशीन इस ज़ोरसे नीची ऊंची होती थी कि उसका सम्हालना मुश्किल था। २८००० फुटकी ऊंचाईपर पहुंचनेपर मुझे ओषजन वायुकी न्यूनताका अनुभव होने लगा। इसी समय मैंने ले० ब्लोज़को सूचना दी, परन्तु वह बिल्कुल अचेत पड़े थे। पीछेसे मुझे मालूम हुआ कि यह पृथ्वी तलसे २०००० फुटकी ऊंचाई-पर आने तक सचेत रहे। इसके उपरान्त अचेत हो गये। उस समय वह मुझे कोई सूचना देनेकी कोशिश कर रहे थे। ३०५०० फुटकी ऊंचाई तक मैं किसी प्रकार पहुंच सका। यहां शीत ७० अंश तक पहुंच गई और एञ्जिनके पृष्ठ भागवाले पेटरोलके नल बिल्कुल अकर्मण्य हो गये।

नीचे उतरते समय १०००० फुट तक उतरनेमें कोई पच्चीस मिनट लगे। उस समय हम लोग 'यार माउथ' से बहुत दूर थे और वायुकी गति ५० मीलसे १७० मील प्रति घण्टे तक थी। पृथ्वीसे २०००० फुटके अन्तरपर पहुंचनेपर लफ्टेन्ट ब्लोज़ होशमें आये।"

शीताधिक्यके कारण इन दोनों वायुविहारियों (Airmen) को बहुत कष्ट उठाना पड़ा है। सर्दी लगनेसे इनके चेहरे और हाथोंपर ज़ख्म हो गये हैं। लफ्टेन्ट ब्लोज़के हाथोंपर गहरे ज़ख्म हो गये हैं। इनका आयु अभी केवल १६ वर्षकी है।

इस वायु यात्राके सम्बन्धमें 'वेस्ट मिनिस्टर गज़ट' का कहना है,—"कप्तान लेङ्ग और लफ्टेन्ट ब्लोज़की इस छः मीलकी ऊंचाई वाली यात्रा उन लोगोंको अधिक महत्वकी नहीं प्रतीत हो सकती जो मिस्टर ग्लेशियर और मिस्टर काक्सवेलकी बैलून यात्रासे भली भांति परिचित हैं। वह पहले पहल इतनी ऊंचाई तक पहुंचते थे। सन् १८६२ ई० के सितम्बर मासमें बुलवरहैम्पटन, नामक स्थानसे मिस्टर ग्लेशियर और मिस्टर काक्स वेल गुब्बारे (Balloon) में सवार हुए थे। २६००० फुट की ऊंचाई तक पहुंचते पहुंचते मिस्टर ग्लेशियरका दाहिना हाथ अशक्त हो गया और बायां हाथ भी शिथिल प्रतीत होने लगा। उनका सिर बिल्कुल निःशक्त हो कर कंधेपर आ पड़ा और आंखें भी बिल्कुल अंधी हो गईं। उनकी यह दशा देख कर मिस्टर काक्सवेलने समझ लिया कि यदि अब थोड़ी भी देर हुई तो हममेंसे कोई भी जीता बच कर पृथ्वीपर न उतर सकेगा। मिस्टर काक्सवेल-के भी दोनों हाथ बेकार हो गये थे, इसलिए उन्होंने वाल्व (Valve) की रस्सीको अपने दांतोंसे पकड़ लिया और गैसको धीरे धीरे निकल जाने दिया। इस उपायसे उनका बैलून पृथ्वीकी ओर लौटा और लडलो नामक स्थानमें आ उपस्थित हुआ। इन दोनों महाशयोंने बैलून यात्रा अपनी जानपर खेल कर केवल यह देखनेके लिए की थी कि मनुष्य-की पहुंच आकाश मंडलमें कितनी ऊंचाई तक हो सकती है। मिस्टर ग्लेशियरने इस यात्रामें ३७००० फुटकी ऊंचाई तक पहुंचनेका हिसाब लगाया था।"

जो हो, इस नये युगमें नये वैज्ञानिकोंके नये विज्ञान बल द्वारा आविष्कृत वायुयानोंपर चढ़ कर अभी इतनी ही ऊंचाई तक पहुंचना बड़ी बात है। इससे बुढ़ियाके उड़न खटोलोंकी किम्बद-न्तियोंकी सत्यता तो अवश्य प्रमाणित हो गई। परन्तु महाराज दुष्यन्त जैसे प्रतापशाली नराधिपों-के विमानोंपर चढ़ कर देवलोक तक पहुंचनेकी पौराणिक कथाएं अभी महज़ गप्प ही समझी जाती हैं। सम्भव है कि कभी ऐसे ही प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा वह भी सत्य प्रमाणित हो जायं और अविश्वा-सियोंको उनपर भी विश्वास होने लगे।

भारत-गीत ४७

" सर्वं खल्विदम्ब्रह्म "

दृष्टि के आगे पड़ा सृष्टि का
यह जो बड़ा पसारा है
क्या तुमने इस की बातों को
प्यारे कभी विचारा है ? १

है यह क्या, क्यों हुआ, रहेगा
कब तक, क्या निर्धारा है
क्या यह कभी बदलता है,
या रहै एक सा सारा है २

ऐसी बातों के विचार में
क्या तुम को रस आता है
अथवा क्या यह कभी चित्त में
चंचलता कुछ लाता है ३

बुधजन इसे सदैव दैव
माया का खेल बताते हैं
पता लगाते रहते हैं,
ग़ोते खाते, चकराते हैं ४

नित नूतन रहता है
प्रश्न यह यद्यपि परम पुराना है
मतवाला हो कर के मूढ़ नर
इसपर बना दिवाना है ५

कोई इसको निपट भ्रान्तिमय
मिथ्या कपट बताता है
बाजीगर का खेल कोई,
जो नहीं समझ में आता है ६

माना—है यह खेल निपट
धोखा-मय भूल भुलैया है
मायानटी अनादिकाल से
इसकी विकट खिलैया है ७

पर यह सारा खेल सभों को
भाता या कि न भाता है
क्या इसमें आनन्द सभी को
आता या कि न आता है ८

जब तुमको इस विकट खेल में
शामिल रहना पड़ता है
जो शामिल नहिं रहो एक दम
सारा खेल बिगड़ता है ६

जब कि तुम्हारे सुख दुःखों की
इसी खेल में सत्ता है
जन्म मृत्यु और हानि लाभ
और लघुता और महत्ता है १०

दुख पाकर सुख भी अवश्य जब
तुम्हें इसी में मिलता है
त्यों जीवन का सुमन स्वर्ग-सुख
से सुरभित हो खिलता है ११

तब निश्चय वह लोग विश्व को
मिथ्या जो बतलाते हैं
तथा दुःख की विभीषिका से
डर कर के घबराते हैं १२

सुख की मरीचिका के पीछे
दिन दिन दौड़ लगाते हैं
शोचनीय हैं, बड़ी भूल
करते हैं, धोखा खाते हैं १३

जैसा सुख वैसा ही दुख भी
जग का एक मसाला है
दोनों के बिन मेल ज़ीस्त का
कढ़ नहिं सकै कसाला है १४

बिना दुःख की कड़वाहट के
सुख में रस नहिं आता है
बिना तिक्त परिपाक शाक में
ज्यों नहिं स्वादु समाता है १५

जो जग में सुख नहीं मिला
तो और कहां पर पाओगे
पड़ संकल्प-विकल्प-जाल में
जीवन अल्प गंवाओगे १६

जैसा सुख-दुख-मय सारा है
वैसा ही बस रहने दो

जीवन के अनुकूल प्रकृति के
रस प्रवाह को बहने दो १७

है यह सब आनन्द ब्रह्म-मय
तत्व जो तुम इसका जानो
अपना और इसका अखंड
वास्तव अभेद जो पहचानो १८

दुख केवल मिथ्या एक भ्रम है
नहिं उसकी कुछ सत्ता है
सुखमय ब्रह्म, ब्रह्ममय है जग,
त्यों जगमय सुखवत्ता है १९

उस सुख-मय जीवन को सत्ता
भारत से मत जाने दो
स्वतंत्रता युत सत्वर उसको
अपना घर अपनाने दो २०

उसमें जीवन डाल शुद्ध तन
मन से तन्मय हो जाओ
करो शान्ति-सुख-भोग, दुःख
कोई प्रकार का मत पाओ २१

श्रीपद्म-कोट
प्रयाग, २४-१२-१९१८ —श्रीधर पाठक

प्राचीन भारतमें विज्ञानकी उन्नति

[ले० —श्री श्रीसत्यभक्तजी]

वर्तमान कालीन यूरोपको जिस विषयका सबसे अधिक अभिमान है, जिस वस्तुको निजी सम्पत्ति समझनेके कारण वह संसारके दूसरे देशोंको तुच्छ समझता है, और वास्तवमें कई सौ वर्षके अनुभव, परिश्रम, अखण्ड साधन और कठोर तपके फलस्वरूप जो शक्ति उसने प्राप्त की है, वह विज्ञान है। उसके प्रभावसे आज संसारमें जहां देखो तहां यूरोप दिखाई पड़ रहा है। जगतकी अधिकांश जातियां उसके चरणोंमें लोट रही हैं और विश्वकी समस्त सामग्री उसके अधिकारमें आगई है। उसी विज्ञानके बलसे वह नित नये आविष्कार करके प्राकृतिक शक्तियोंको अपनी दासी बना रहा है। उसकी बनाई हुई वस्तुओंको देखकर दर्शकोंकी आंखोंमें चकाचौंध हो जाती है और साधारण बुद्धिके मनुष्य उन्हें देवनिर्मित (Supernatural) समझने लगते हैं। इसी विज्ञानकी सहायतासे वह छोटा सा होते हुए भी सम्पूर्ण जगतकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो गया है और आज किसीका यह साहस नहीं कि उसकी ओर अंगुली उठा सके। अन्य देशोंको तो सदा उसीका रुख देखकर काल व्यतीत करना पड़ता है। पाठक गण, जिस विज्ञानका यूरोपको इतना अभिमान है, जिसके सहारे आज वह करने न करनेके सभी कामोंको कर रहा है, उसके विषयमें आज हम ध्यान पूर्वक खोज करेंगे कि वास्तवमें क्या वह उसीकी सम्पत्ति है, वही उसका एकमात्र आविष्कारक है अथवा दूसरोंका भी उसमें कुछ हिस्सा है।

यह सत्य है कि आज कल यूरोपीय विद्वानोंने बड़े बड़े वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी खोज की है, सहस्रों नई बातोंका पता लगाया है, लाखों उपयोगी और लाभदायक वस्तुओंका आविष्कार किया है, नाना प्रकारके युग परिवर्तन कारी यंत्रोंका निर्माण किया है। पर उनका यह अभिमान कि इन सब वस्तुओंके आविष्कर्ता हमी हैं, दूसरोंको हमसे पहले इन बातोंका कुछ भी पता न था, वस्तुओंके बनानेमें अन्य देशवासी समर्थ नहीं हो सकते, बड़े महत्वके वैज्ञानिक सिद्धान्तोंको निकालनेकी बुद्धि उनमें नहीं है, यह अभिमान निरा भ्रममूलक और अज्ञानजन्य है। उनसे कोई पूछे कि तुमने रेल तो निकाली, पर पहिये बनाने और उनके द्वारा गाड़ी चलानेकी युक्तिका आविष्कारक कौन है। तुम आजकल वनस्पति शास्त्रमें बड़ी उन्नति कर रहे हो, सब प्रकारके फल, फूल और

अङ्गोंको उत्कृष्टता प्रदान कर रहे हो, पर यह तो कहो कि जंगली घासोंसे गेहूं, जौ, चावल आदिको पहले पहल पैदा करनेवाले, तरह तरहके फलोंको मनुष्योपयोगी बनाने वाले, कौन थे ? तुमने रसायन विद्यामें बड़ी उन्नति की है, पर इस बातकी खोज कभी नहीं की कि लोहा, सोना चांदी आदि धातुओंको व्यवहारमें लानेकी विधि सबसे पहिले किस देशके निवासियोंने मालूम की थी ? तुम बड़े बड़े नगर बसाते हो, विशाल गृहनिर्माण करते हो, पर तुम्हें इस बातका ध्यान नहीं कि संसारकी किस जातिसे तुमने गुफाओं और गड्ढोंसे निकल कर मकानोंमें रहना सीखा है ? आज तुम्हारी बनाई वस्तुओंकी संसारके बाज़ारोंमें भरमार है, पर इस बातका उत्तर तुम क्या दोगे कि सूत कातने और उससे कपड़ा बुननेकी विद्या पहले पहल किसने निकाली थी ? इन सब बातोंका सारांश यही है, अभी थोड़े समयसे उन्नति करनेवाले नव यूरोप-को इस प्रकारका झूठा अभिमान करना उचित नहीं, क्योंकि बूढ़ा भारत अभी पृथ्वीपर स्थित है। जिसने संसारकी सब जातियोंसे पहिले पूर्ण सभ्यता प्राप्त की थी। जिसने मनुष्योंको पशुओंकी दशामेंसे निकाल कर वास्तवमें मनुष्यत्व पूर्वक रहना सिखलाया, जिसने रहने सहने, खाने पीने आदिकी समस्त वस्तुओंका प्रथम आविष्कार किया, जिसका सामाजिक संगठन सबसे प्राचीन है, जिस समय संसारकी दूसरी जातियां पशु वत जीवन व्यतीत करती थीं उस समय भी जो पूर्ण उन्नत अवस्थामें था उस भारतके सामने कलसे उन्नति करनेवाले यूरोपका घमण्ड करना क्या शोभा दे सकता है ? चाहे उसने नाना प्रकारके आविष्कार किये हों, अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्त निकाले हों, पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि समस्त ज्ञान विज्ञानका आदि जन्मस्थल इस भारतकी पुण्यभूमि ही है। इसीमें बैठ कर उन पूजनीय ऋषि महर्षियों ने संसारके वर्तमान ज्ञान-का आविष्कार करना आरम्भ किया था। वही संसारके प्रथम ज्ञान प्रचारक थे। वे ही समस्त जगतके सिरमौर समझे जाने चाहियें। अधिक क्या लिखा जाय मनु महाराजका यह श्लोक विख्यात है:—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वभानवाः॥

इस प्रकार यह भारतवर्ष संसारमें सबसे पहिले सभ्य हुआ। यहां सब प्रकारके ज्ञानोंका आविष्कार किया गया। यहीं सबसे प्रथम नियमा-नुकूल सामाजिक संगठनकी नींव पड़ी। यहींसे गृहस्थ विज्ञानका आरम्भ हुआ। पुरुष स्त्रियोंका विवाह सूत्र द्वारा बंध कर नियमानुसार समाजमें रहना, भारतवर्षसे पूर्व कहीं प्रचलित न था। वरन् इस सुधरे हुये ज़मानेमें भी विवाह तथा सामाजिक संगठनकी यहांके समान सर्वाङ्ग पूर्ण प्रणाली कहीं नहीं पाई जाती। यह बात दूसरी है कि लोगोंने उसमें अपनी मूर्खता द्वारा नाना प्रकारके दोष उत्पन्न कर दिये हैं। ऐसी दशामें यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि समस्त ज्ञान विज्ञानका कर्ता धर्ता यूरोप है।

भारतवासियोंके पूर्ण वैज्ञानिक उन्नति करनेके प्रमाण वेद शास्त्र पुराण काव्य आदि ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं। उनके पाठकोंको भली भांति ज्ञात है कि उस समय यहांके मनुष्य सब प्रकारसे सभ्य, विद्याकला सम्पन्न थे, न कि यूरोपियनोंके मता-नुसार निरे जंगली और ज्ञानशून्य। हमें तो यूरो-पियनों के प्राचीन भारतवासियोंको असभ्य और जंगली बतानेका यही कारण जान पड़ता है कि अबसे कुछ काल पहिले ही वह स्वयं महा असभ्य थे। सन् ईसवीसे पांच सौ या हज़ार वर्ष पूर्व वह लोग वन्य पशुओंके समान जीवन यापन करते थे। मनुष्यका स्वभाव है कि जैसा स्वयं होता है वैसा ही दूसरोंको समझने लगता है। पीलिया रोग-वालेको समस्त वस्तुएँ पीली दिखाई पड़ती हैं। सावनके अंधेको चारों ओर हरयाली दिखलाई देती है। इसी कारणवश यूरोपियन लोग विचार

करते हैं कि भारतवासी भी अबसे तीन चार हज़ार वर्ष पूर्व हमारे ही समान असभ्य और जंगली थे। पर जैसा हमने लिखा है भारतीय साहित्यके सच्चे ज्ञाता प्राचीन भारतवासियोंकी महिमासे भली भांति अभिज्ञ हैं। अतएव आगे चलकर हम इन्हीं प्राचीन ग्रन्थोंकी सहायतासे बतलायेंगे कि पूर्व कालमें भारतवासियोंने प्रशंसनीय वैज्ञानिक उन्नति की थी। और वे आजकलके यूरोपीय वैज्ञानिकोंसे किसी प्रकार कम नहीं थे। पर यदि सब बातोंके लिए पूरी तरहसे प्रमाण दिये जायंगे तो यह निबन्ध लेखके स्थानमें एक बड़ी पुस्तकका रूप धारण कर लेगा। अतएव हम अधिकांश स्थलोंपर उन प्राचीन ग्रन्थोंका नामोल्लेख ही करेंगे। तथा दूसरे प्रकारके प्रमाण भी इस छोटे लेखमें विस्तृत रूपसे नहीं दिये जा सकेंगे। अतएव पाठकोंको थोड़ेसे ही बहुत समझनेका कष्ट उठाना पड़ेगा।

वर्तमान समयमें यूरोपके बड़े बड़े विद्वानोंने जिस विज्ञानका आविष्कार किया है वह कितनी ही शाखाओंमें विभाजित है। रसायन (Chemistry) भौतिक विज्ञान (Physics) जीव विज्ञान (Zoology) वनस्पति शास्त्र (Botany) यंत्र विज्ञान (Mechanics) आदि पश्चिमीय सायंसके प्रधान अंग हैं। इनके अतिरिक्त ज्योतिष (Astronomy) शरीर रचना विद्या (Anatomy) मस्तक विद्या (Phrenology) ग्रह निर्माण विद्या (Architecture) आदि भी विज्ञानकी शाखाएं समझी जाती हैं। आजकल अर्थशास्त्र (Economics) राजनीति (Political science) समाज विज्ञान (Sociological science) को भी सायन्सका रूप दे दिया गया है। हमारे यहांके प्राचीन विद्वानोंने इनमेंसे प्रायः सभी विद्याओंमें सन्तोषजनक उन्नति की थी। यह बात दूसरी है कि उनके कुछ सिद्धान्त आजकलके यूरोपियन विद्वानोंसे न मिलते हों। पर इसमें सन्देह नहीं कि उनको इन सब प्रकारके विज्ञानोंका रहस्य भली भांति मालूम था। तथा इनके सिवाय उन्होंने और भी कितने ही वैज्ञानिक विषयोंमें अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। वास्तवमें जब हम अपनी उस पूर्व दशाका चित्र ध्यानमें लाते हैं, तो हर्षका वारापार नहीं रहता। और यूरोपियनोंकी वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति एक नितान्त साधारण बात जान पड़ने लगती है। पर वर्तमान दशाका ध्यान आते ही वह अत्याधिक हर्ष अपार असीम शोकमें बदल जाता है।

विज्ञानकी भिन्न भिन्न शाखाओंके विषयमें विचार करनेके पूर्व हम पाठकोंको प्राचीन भारतमें प्रचलित विद्या, शिक्षा कला आदिकी एक झलक दिखा देना चाहते हैं। यद्यपि अधिकांश विदेशी और बहुतसे विद्वान कहलानेवाले भारतीय मनुष्य भी कभी यह कहनेमें नहीं हिचकते कि यहां पूर्व कालमें शिक्षाका कुछ भी प्रचार न था। पर इन विचित्र बुद्धिमानोंसे कोई पूछे कि यदि यूरोपियनोंके आनेकी कृपासे ही भारत शिक्षित बना है तो अबसे आठ दस हज़ार वर्ष पूर्व वेद, वेदान्त, जैसे अद्वितीय ग्रन्थ भारतीयोंने कैसे बना दिये। उनमें विज्ञानके भी अनेक महत्व पूर्ण सिद्धान्त दिये हैं। फिर इन्हीं भारतीयोंने उपनिषद् बनाये, जिनको देखकर आज भी संसारके विद्वान अवाक रह जाते हैं। भारतीयोंकी विद्या शिक्षा यहां ही समाप्त नहीं हुई, वरन् इसके पीछे उन्होंने वह षड्दर्शन निर्माण किये जिनसे संसारके समग्र दर्शन शास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। आज तक कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला जिससे यह मालूम पड़े कि इन षड्दर्शनोंसे पूर्व भी संसारमें दर्शन शास्त्रका प्रचार था। दर्शनोंके पश्चात् भी यहां लाखों संस्कृत पुस्तकें सब प्रकारके विषयोंपर बनती रहीं जिनको इस सभ्य कालके मनुष्य भी आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। तो क्या यह सब कार्य असभ्य और जङ्गली मनुष्योंके किये थे। अथवा उस समय विद्या और शिक्षासे शून्य मनुष्य ऐसे महान ग्रन्थोंकी रचना कर सकते थे? फिर यदि विज्ञान कलाकौशलकी ओर दृष्टि की जाय तो यहां चौदह विद्या और

चौंसठ कलाओंका पूर्ण रूपसे प्रचार था। वास्तवमें यह कलाएँ कहनेको ही चौंसठ हैं वैसे इनकी संख्या दो तीन सौसे कम नहीं। इन विद्याओं और कलाओंमें प्रायः सभी बातोंका समावेश हो जाता है। वरन् एक कलाका नाम विज्ञान कला भी है। वास्तवमें जो विद्या और चौंसठ कला सम्पन्न-को विद्या, ज्ञान, विज्ञानसे शून्य कहनेका साहस करे, उसकी बुद्धि पर बिना तरस खाये रहा नहीं जा सकता।

[असमाप्त]

प्रकाश विज्ञान

परमाणुका गमन

[ले०-प्रो० निहालकरण सेठी, एम. एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

जब पुद्गल कण स्थान परिवर्तन करता है तो कहा जाता है कि वह गमन कर रहा है। गमन तभी हो सकता है जब कि वह किसी अनवच्छिन्न (continuous) मार्ग पर चले। अर्थात् ऐसा होना असम्भव है कि वह एक स्थान-से लुप्त हो कर बिना मध्यवर्त्ती स्थानोंमें गये ही दूसरे स्थानपर पहुंच जाय। चित्र १ में क से ख तक पहुंचनेमें उसे क और ख के बीचवाले सभी विन्दुओंमें होकर जाना होगा। किन्तु यह मार्ग सीधा या वक्र किसी प्रकारका हो सकता है। हां, यह अवश्य है कि मार्ग सबसे छोटा तभी होगा जब कि वह सरल रेखात्मक हो। गमनकी कुछ न कुछ दिशा भी अवश्य होनी चाहिये। यह नहीं हो सकता कि कण गमन करे, किन्तु किसी दिशामें नहीं। यदि वह गमन करता

चित्र १

ही है तो या तो वह सीधा एक ही दिशामें चला जायगा अथवा उसके गमनकी दिशा बदलती रहेगी और वह किसी प्रकारके वक्र पथपर (curve) चलेगा। वक्र पथके किसी भी विन्दुपर गतिकी वही दिशा है जो उस विन्दुपरकी स्पर्शरेखा की (tangent) दिशा है।

दूसरी बात जो गमनमें बहुत आवश्यक है वह वेग है। जब कभी कण चलता है तो यह आवश्यक है कि एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेमें उसे कुछ समय लगे। थोड़ा समय लगने-से उसका वेग अधिक कहा जाता है और बहुत समय लगने पर कम। यह वेग कभी शून्य नहीं हो सकता, क्योंकि इसका अर्थ तो यह हुआ कि वह स्थिर ही है। और न यह वेग अनन्त ही हो सकता है, क्योंकि तब तो वह कण एक ही समयमें अनेक स्थानोंपर स्थित होना चाहिये। भिन्न भिन्न इकाइयोंके अनुसार वेग भिन्न भिन्न प्रकार कहा जाता है, जैसे ६० फुट फी सैकंड, ४० मील फी घंटा, ३०० मीटर प्रति सैकंड इत्यादि।

यद्यपि दिशा और वेग (velocity) का पर-स्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है और जब कभी कहा जाता है कि वस्तु अमुक वेगसे गमन कर रही है तब किसी न किसी दिशाको भी निर्दिष्ट किया जाता है, किन्तु कभी कभी जब वह वक्र पथपर गमन करती है और दिशा पल पलमें बदलती रहती है तब भी उसकी गतिका परिमाण बत-लाया जाता है। ऐसी दशामें इस परिमाणको वेग न कहकर गति (speed) कहते हैं। रेलगाड़ी-के विषयमें चलनेकी कोई दिशा निर्दिष्ट न होनेसे यही कहा जाता है कि उसकी गति ४५ मील फी घंटा है। किन्तु जब वह ठीक पूर्वसे पश्चिमकी ओर चल रही हो तो कह सकते हैं कि इस समय उसका वेग ४५ मील फी घंटा पूर्वसे पश्चिम की ओर है।

यदि वस्तु बराबर समयमें बराबर दूर जाय, अर्थात् किसी मिनटमें ६ मील, और किसीमें

केवल आधा मील न चलकर प्रत्येक मिनटमें ६ ही मील चले तो कहा जाता है कि उसका वेग एक सा है, स्थिर है, सम है। जब तक वेग सम न हो तब तक उसके वेगका परिमाण बतलाना प्रायः असम्भव है, क्योंकि वह तो पल पल बदल रहा है। तिसपर भी हम कहते हैं कि अमुक रेल ४० मील फी घंटा चलती है। प्रारम्भमें बहुत ही धीरे धीरे चलकर धीरे धीरे उसका वेग बढ़ता है और शायद ६० मील फी घंटे तक हो जाता है। तब पुनः कम होते होते वह दूसरे स्टेशनपर बिलकुल ठहर ही जाती है। कुछ देर बाद पुनः चल पड़ती है और इसी प्रकार उसका वेग घटता बढ़ता रहता है। ऐसी अवस्थामें ४० मील फी घंटा कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि ४०० मील चलनेमें उसे १० घंटे लगते हैं। इसे उसका औसत वेग कहते हैं।

किन्तु वस्तुका वेग विषम होनेपर भी, उसका परिमाण स्थिर न रहनेपर भी, हम किसी विशेष पलमें उसका वेग बतला सकते हैं और कह सकते हैं कि इस समय वह तीस मील फी घंटा चल रही है। इससे हमारा आशय केवल यह होगा कि यदि वह ठीक इसी वेगसे एक घंटे तक चली जाय तो ३० मील चल लेगी। किन्तु एक घंटे न चल कर शायद वह एक ही मिनट तक उस वेगसे चले, तब हमारे कथनका मतलब यह होगा कि वह एक मिनटमें आधे मील चली, अतः घंटे भरमें तीस मील चल लेती। किन्तु सम्भव है कि उस एक मिनटमें भी उसका वेग बदल गया हो। अतः ठीक वेग जाननेके लिए और भी अच्छा हो यदि हमें यह मालूम हो कि ६ सैकंडमें वह $\frac{१}{२०}$ मील चली, या एक सैकंडमें $\frac{१}{१२०}$ मील। इस प्रकार विषम वेगका परिमाण जाननेके लिए यह मालूम होना चाहिये कि बहुत थोड़ेसे समयमें, एक सैकंड या इससे भी कम समयमें वह कितनी दूर चली और तब उससे हिसाब लगाना चाहिये कि यदि उसी प्रकार चलती रहती तो समयकी इकाईमें कितनी दूर चली जाती।

जब गतिमान वस्तुका वेग बदलता है, तब इस वेग परिवर्तनके परिमाणको वृद्धि (acceleration) कहते हैं। यह वृद्धि धनात्मक और ऋणात्मक दोनों प्रकारकी हो सकती है। पहले प्रकारमें वेग बढ़ता है और दूसरेमें घटता है। ऋणात्मक वृद्धिको बहुधा ह्रास (Retardation) भी कहते हैं।

वृद्धिका परिमाण बतलानेकेलिए यह जानना चाहिये कि समयकी इकाईमें वेग कितना बढ़ा। जैसे एक गाड़ी ३० मील फी घंटेके वेगसे चल रही है। यदि एक घंटेमें उसका वेग ४० मील फी घंटे हो जाय तो स्पष्ट है कि एक घंटेमें १० मील फी घंटेका वेग बढ़ा है। इसको ही संक्षेपसे इस प्रकार कहते हैं "उसकी वृद्धि १० मील फी घंटा फी घंटा है"।

वेगकी ही नाईं वृद्धि भी सम या विषम हो सकती है। विषम होनेपर जिस प्रकार वेग नापा जाता है ठीक उसी प्रकार वृद्धि भी नापी जा सकती है।

गमन सम्बंधी इन मूल बातोंको समझ कर अब हम समस्त पुद्गल पदार्थोंके एक विशेष गुणके विषयमें कुछ लिखना चाहते हैं। इसका नाम है जड़त्व (Inertia)। पदार्थोंको जड़ कहते हैं अर्थात् उनमें जीव नहीं होता। उनमें अपनी स्थिति परिवर्तन करनेकी शक्ति नहीं होती। यदि कोई वस्तु स्थिर है तो वह स्वयं ही गमन नहीं कर सकती। उसमें गति उत्पन्न करनेके लिए अन्य वस्तुओंको अथवा किसी जीव धारीको बल लगाना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि वह गमन कर रही है तो उसकी जड़ताके कारण उसमें ऐसा कोई गुण नहीं है कि वह अपना वेग स्वयं ही घटा बढ़ा ले। ठहर जानेकी तो बात ही क्या, वह दिशाका परिवर्तन भी नहीं कर सकती। क्योंकि दिशा परिवर्तन भी वेगका परिवर्तन ही

है और ऐसा करना उसके लिए सर्वथा असम्भव है।

"जड़ वस्तु स्थिरता भंग करके स्वयं हो गमन नहीं कर सकती, यह बात तो सब कोई मान लेंगे, किन्तु गमन करती हुई ठहर भी नहीं सकती यह मानना ज़रा कठिन काम है। यह तो समस्त अनुभवके प्रतिकूल जान पड़ता है। किन्तु यदि यह स्मरण रखा जाय कि जितनी वस्तुएं हम देखते हैं वह अन्य वस्तुओंसे सदा घिरी रहती हैं, जो उनपर सर्वदा ही अपना प्रभाव डाला करती हैं, तो सत्य बात समझ लेनेमें अधिक कठिनाई न होगी। क्या आपने गाड़ीके पहियोंसे कीचड़ उड़ती देखी है? पहियेसे पृथक् होकर भी क्या वह सीधी रेखामें गमन नहीं करती? चलती रेलके एक दम ठहर जानेपर क्या आपको कभी धक्का नहीं लगा है? आप रेलके साथ ही चल रहे थे। आपके शरीरमें यह शक्ति नहीं कि स्वयं ही अपनी गतिमें परिवर्तन कर ले। अतः रेलके ठहर जानेपर भी वह चलता ही रहता है। रुकता तभी है जब या तो दूसरे यात्रियोंसे या गाड़ीकी दीवारोंसे टकराता है और वह उसे आगे बढ़नेसे रोकते हैं, अथवा आप ही अपने पट्ठोंको तान कर उसे रोकनेका प्रयत्न करते हैं। ठोकर खाकर भी मनुष्य इसी कारण गिर पड़ते हैं। पांव ठहर जाते हैं किन्तु छाती और सिर चलते ही रहते हैं।

एक सन्दूकको ज़मीनपर रखकर धक्का लगाइये, उस धक्केसे वह कितनी दूर जा सकेगी? उसको चिकनी ज़मीनपर रखकर ढकेलिये। पहलेकी अपेक्षा उतने ही बलसे वह अधिक दूर जा सकेगी। चिकने फर्शपर थोड़ा साबुन या तेल लगा दीजिये। अब तो वह बहुत अधिक दूर जा सकेगी। आप उस सन्दूकपर प्रभाव डालनेवाले कणोंको घटा रहे हैं। और इसी कारण उसकी गति भी शीघ्र नहीं रुकती। और उदाहरण लीजिये। गाड़ियोंमें पहिये लगानेसे कौन कह सकता है कि लाभ नहीं होता? पहियोंपर भी लोहेकी हाल चढ़ा देनेसे कौन नहीं जानता कि चलानेमें सुगमता होती है? रेतेकी अपेक्षा पक्की सड़कपर और उसकी भी अपेक्षा लोहेकी पटरीपर चलानेमें बहुत कम बलकी आवश्यकता होती है। इञ्जिनसे पृथक् हो जानेपर भी क्या ३०, ४० गाड़ियोंकी ट्रेन बहुत दूर तक अपने आप नहीं चली जाती। इन सबमें असर डालनेवाले कणोंको घटानेसे ही यह परिणाम हुआ।

किन्तु प्रश्न हो सकता है कि ऊपर की ओर फैंकी हुई वस्तु थोड़ी देर बाद नीचे की ओर क्यों लौट आती है? उसपर तो किसी भी वस्तुका असर नहीं होता, क्योंकि उससे लगी हुई तो कोई वस्तु है ही नहीं। परन्तु याद रखना चाहिये कि दूरसे भी असर पड़ सकता है। गुरुत्वाकर्षण (gravitation) के कारण पृथ्वी सब वस्तुओंको अपनी ओर बड़े बलसे खींचती है।

इन बातोंसे तो जान पड़ता है कि यदि कोई वस्तु अन्य वस्तुओंके असरसे मुक्त हो जाय तो एकबार चला देनेपर वह कभी न ठहरेगी। सदा चलती ही रहेगी। न कभी वेगमें परिवर्तन होगा और न कभी गमनकी दिशा ही बदलेगी। किन्तु ऐसा तो कभी हो नहीं सकता। वस्तुपर सदा दूसरी वस्तुओंका असर होता ही रहेगा। फिर इस नियमसे हमें लाभ ही क्या? किन्तु क्या इस नियमके कारण अन्य वस्तुओंके प्रभावका हिसाब लगाकर यह नहीं बतलाया जा सकता कि अमुक अवस्थामें अमुक परिणाम होगा। यदि हमें ज्ञात हो कि अन्य वस्तुओंका असर थोड़ा है तो स्पष्ट है कि वेगमें परिवर्त्तन भी बहुत थोड़ा और बहुत धीरे धीरे होगा। विपरीत उसके यदि असर बहुत है तो सम्भव है कि वह पल मात्रमें ठहर जाय। यह रहस्य पहिले पहल न्यूटन ने जाना। अतः यह न्यूटनका प्रथम नियम कहा जाता है।

यदि बहुतसे कारण एक ही साथ काम करें तो जो परिणाम होता है उसमें सभी कारणोंका

भाग रहता है। प्रत्येक कारण अपना कार्य पूर्ण रूपसे करता है, अंतिम परिणाम उन सब कार्योंका समुदाय मात्र है। यह इतनी सरल बात है कि अब यह समझमें आना भी मुश्किल है कि गैलीलियोके पहिलेके लोग यह कैसे मानते थे कि जब एक कारणका कार्य समाप्त हो चुकता है तभी दूसरे कारणका कार्य आरम्भ होता है। दोनों एक ही साथ मिलकर एक ही कार्य नहीं कर सकते। जो हो अब यह प्रत्यक्ष है कि यदि दो मनुष्य किसी वस्तुको भिन्न भिन्न दिशाओंमें खींचें तो प्रत्येकको अपने इस प्रयत्नमें कि उसे अपनी ओर खींच ले उतनी ही सफलता होती है जितनी कि उस समय होती जब दूसरा मनुष्य न खींचता। यदि एक पूर्वकी ओर खींच रहा है और दूसरा उत्तर की ओर, तो पहिला मनुष्य यदि अकेला खींच कर १० गज़ पूर्वकी ओर ले जाता तो दूसरे मनुष्यके खींचनेपर भी उतना ही लेजायगा और दूसरा भी स्वतंत्रता पूर्वक पूर्ववत् उसे १० गज़ उत्तर की ओर लेजा सकेगा। परिणाम यह होगा कि वस्तु क से न ख पर पहुंचेगी और न ग पर किन्तु घ पर पहुंच जायगी जो क से १० गज़ गज पूर्व और १० उत्तर की ओर है। यह बात उस अवस्थामें सत्य नहीं जान पड़ती जब एक पूर्व की ओर खींचता हो और दूसरा पश्चिमकी ओर। किन्तु विचार करनेपर ज्ञात हो जायगा कि दोनोंको अपने अपने काममें पूर्ण सफलता होती है।

ख घ क ग

चित्र २

यदि पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहनेवाली एक नदीमें नौका भी पश्चिमसे पूर्वकी ओर चलना चाहे तो मल्लाहोंके कुछ परिश्रम न करनेपर भी वह नदीके वेगसे ही पूर्वकी ओर चली जायगी। किन्तु यदि मल्लाह भी परिश्रम करें तब तो और अधिक वेगसे जायगी। मान लीजिये कि स्थिर जलमें कुछ परिश्रमसे नौका एक घंटेमें ४ मील चली जाती और नदीका वेग है एक घंटेमें ३ मील। तब तो इस नौकाका वेग ७ मील प्रति घंटा हो जायगा। यदि नौका पूर्वसे पश्चिमको उतने ही परिश्रमसे चले तो स्पष्ट है कि यद्यपि वह चार मील चलेगी किन्तु पानी पुनः उसे तीन मील वापस लेजायगा और वस्तुतः एक घंटेमें वह केवल एक ही मील चल सकेगी। यदि उसका वेग ३ मील फी घंटा ही होता तब तो किनारेसे वह स्थिर ही जान पड़ती। और जो इससे भी कम होता तो मल्लाहोंके पश्चिम जानेके परिश्रम करनेपर भी वह पूर्व ही की ओर जाती। उसका वास्तविक वेग सदा उसके अपने वेगसे नदीका वेग घटानेसे ज्ञात हो सकता है।

परन्तु यदि वह दक्षिणसे उत्तर की ओर चले तो उसके गमन की दिशा न पूर्व होगी और न उत्तर। वह तो ईषाण की ओर चलती दिखाई देगी। (चित्र ३) क से चलकर नदीके पार ख पर न
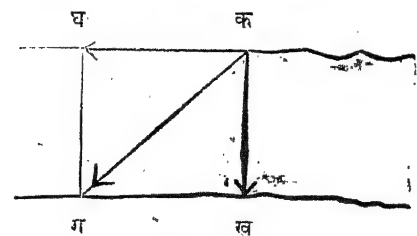
चित्र ३

पहुंच कर ग पर पहुंच जायगी। किन्तु उस पार पहुंचनेमें समय उतना ही लगेगा जितना कि स्थिर जल होनेपर ख तक पहुंचनेमें लगेगा। यदि क घ रेखासे नदीके वेगकी दिशा और उसका परिमाण दोनों ज्ञात हों और क ख से नौकाके ज्ञात हों तब क ख और क घ से समानान्तर चतुर्भुज बनानेसे उसका जो क ग कर्ण बना वही उसका वास्तविक लब्ध वेग बतलावेगा। अर्थात् नौका क से क ग की दिशामें चलकर क ग वेगसे ग पर पहुंच जायगी।

यह नियम उसी सिद्धान्तपर अवलम्बित है कि जिसके द्वारा हम यह मानते हैं कि प्रत्येक

कारण अपना अपना कार्य पूरा करता है और परिणाम उन कार्योंका समुदाय है । मल्लाह नौकाको उत्तर की ओर बिना रोकटोक ले गये। नदीका जल भी स्वतन्त्रतापूर्वक उसे पूर्वकी ओर बहा ले गया। और यह स्पष्ट है कि क से ग तक पहुंचनेमें नौका अवश्य ही क ग रेखापर ही चली होगी। यह समानान्तर चतुर्भुजका नियम और भी अधिक व्यापक है। वेगके समान और जितनी दिशासहित संख्याएं हैं उन्हें जोड़नेका यही नियम है। क ख और क घ तो घटक वेग (velocities) हैं और क ग उनका लब्ध वेग (resultant) है। जिस विधिसे दो वेगोंको जोड़कर एक लब्ध वेग ज्ञात हुआ है उसी को उलटकर एक वेगके दो घटक वेग भी भिन्न भिन्न दिशाओंमें ज्ञात हो सकते हैं।

जिस प्रकार बन्दूक द्वारा वेगसे चलाई हुई गोली जिस किसी वस्तुसे टकराती है उसे बल-पूर्वक धक्का मारती है, उसी प्रकार वर्षाकी बूंदें भी छातेपर गिर कर उसे नीचे ढकेलनेका प्रयत्न करती हैं। गोलीमें अधिक बल होता है और उसके धक्केसे वस्तु नष्ट भ्रष्ट हो जाती है किन्तु बूंदमें उतना बल नहीं होता। किन्तु तिसपर भी जब अनेक बूंदें मिलकर छातेपर गिरती हैं तब उनका दबाव इतना हो जाता है कि ऐसा मालूम होने लगता है मानों कोई भारी वस्तु उसके ऊपर रख दी गई है। इसी प्रकार छोटीसे छोटी वस्तुमें भी गतिके कारण इतना बल आजाता है कि वह सामनेकी वस्तुपर धक्का लगा सकती है। यह धक्का बहुत हलका होनेपर भी जब सैकड़ों सहस्रों ऐसे धक्के एक ही साथ लगते हैं तब सबका बल एकत्रित हो कर वही बहुत ज़ोरका बोध हो सकता है। गैसोंका जो दबाव होता है उसका भी मूल कारण यही है। उसके अणु बड़े वेगसे इधर उधर दौड़ते रहते हैं और लाखों अणु प्रति सैकंड बर्तनपर धक्के लगाया करते हैं। गतिमान वस्तुके विषयमें एक और बात स्मरण रखनी चाहिये। क्या आपने कभी कांचकी गोलीको चिकने पत्थरकी दीवारसे टकराते देखा है? कभी बिलियर्ड (billiard) की गोलीको मेज़की दीवारसे टकराकर परावर्तित कराया है? क्या टक्करके पश्चात् वह योंही जिधर चाहा चलने लगती है, नियम पूर्वक किसी दिशा विशेषमें गमन करती है? यह समझनेमें कुछ अधिक कठिनाई नहीं कि जब खेलनेवाले ऐसी टक्करें लगाकर उस गोलीको जिधर चाहें भेज सकते हैं तब उसके परावर्त्तनका कुछ नियम अवश्य ही होगा, जिसके कारण उन्हें ज्ञात हो जाता है कि अमुक प्रकार टक्कर मारने-से वह अमुक दिशामें जावेगी। नियम वही है कि आपातकोण परावर्तनकोणके बराबर होता है। गोलीके पूर्व मार्ग और परावर्तित मार्ग दोनों मेज़-को दीवारसे बराबर कोण बनाते हैं। किन्तु यह नियम तभी ठीक होता है जब गोली खूब सख़ और स्थितिस्थापक (elastic) हो औरमेज़को दीवार भी वैसी ही अच्छी हो। नरम पदार्थ, जैसे कपड़ेकी गेंद, यह नियम नहीं मानते। जितनी ही अधिक स्थितिस्थापकता होगी उतनी ही अच्छी तरह इस नियमका पालन भी होगा।

भारत गीत ५३

(१)

जय भारत जय, जय भारत जय
जय महिमामय, जय गुण - धारी

(२)

दिव्य दिगम्बर, सित - रज - धूसर
गंगाधर शुचि अंग - मनोहर
कनक - रजत - गिरि शीश छटा छबि
तप - मंडित द्युति - पुंज - प्रसारी

(३)

जय जग - पावन, जय जग - भावन
जय सुख - मन्दिर - शान्त सुहावन
सुपथ - प्रभाकर सुमति - सुधाकर
जय वसुधा - वर विश्व - विहारी

(४)

जय जय सुरधुनि, जय जय दिनमणि
जय उपवन वन, सघन - गगन - ध्वनि
जय जल, जय थल, जय जन कल कल
जयति सकल जल - थल - नभ - चारी

(५)

जय हिन्दू जन, जय मुसलिम गन
जैन, पारसी, बौद्ध, क्रिश्चियन
विविध - धर्म - पथ, सुकृत - कर्म - रत
जस बरनत श्रीधर बलिहारी

श्रीपद्मकोट, प्रयाग, श्रीवसन्त पंचमी, १६७५ —श्रीधर पाठक।

स्वास्थ्य रक्षा ❀

एक विख्यात डाक्टर (सर पारडोलूकिस) का कथन है कि स्वास्थ्य-रक्षा विज्ञानकी उस शाखाका नाम है जो हमारी बाढ़को पूर्ण, ह्रास-को धीमा, जीवनको बलयुक्त और मृत्युको असन्निहित बनाता है। आधुनिक विज्ञानकी बदौलत यद्यपि हम यह तो नहीं कह सकते कि हमको आबे हयात हासिल हो गया, तथापि यह कहना मुबालिग़ा न होगा कि प्राचीन दार्शनिकोंके स्वप्न-का कुछ अनुभव अब हमें होने लगा है। जब हम इस बातपर ध्यान देते हैं कि हम चारों ओरसे कितनी शक्तियोंसे घिरे हुए हैं जो दिनरात हमसे युद्ध करती रहती हैं और निरन्तर हमारे शरीरोंका शिकार करने की चेष्टा करती रहती हैं; जब हमें उस प्रकृतिकी विकराल मूर्त्तिका जो अपने रुधिरस्रावित नख और दांतोंसे हमारी जातिका अन्त करनेकेलिए घोर चिकार कर रही हैं ध्यान आता है, तब हमें जान पड़ता है कि स्वास्थ्यरक्षा कैसे महत्वका विषय है और इससे मनुष्य जातिको कितना लाभ पहुंचा है।

जीवन क्या है? वह केवल उस चेष्टाका नाम है जो आन्तरिक अवस्थाको वाह्य अवस्थाके अनुसार बदलनेकेलिए निरन्तर की जाती है। जहां इस चेष्टाका बल कम होता है, तहां शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। जब यह चेष्टा रुक जाती है, तो जीवनका अन्त हो जाता है। ज्यों ज्यों हमारे ज्ञानकी सीमा विस्तृत होती जाती है, त्यों त्यों हम प्रकृतिकी घातक शक्तियोंपर विजय प्राप्त करनेके अधिकाधिक योग्य होते जाते हैं, रोगसे बचने और उसके शान्त करनेमें हम उतने ही अधिक सफल प्रयत्न होते हैं।

यदि हम नीची कोटिके जीवन-इतिहासका अध्ययन करें, तो हमें ज्ञात होगा कि उनकी कैसे उत्पत्ति होती है, वह कैसे अपना जीवन बिताते हैं, कैसे सदा तंग जगहमें, अपने ही मल मूत्रमें निवास करते हैं और अन्तमें अपने ही पैदा किये हुए विषोंके घातक प्रभावसे जीवन समाप्त करते हैं। अब ज़रा इनकी अवस्थासे अपने यहांके गांवों और शहरोंकी दशाकी तुलना तो कीजिये। जहां देखिये तहां नीची छतके, वे खिड़कियोंके छोटे छोटे झोंपड़े और मकानात पास पास भिड़े हुए स्थित हैं। गलियोंको देखिये उनमें कूड़े करकट और गंदगीके ढेरके ढेर लगे हुए हैं और बिना नाक बन्द किये उनमें चलना नामुमकिन है। घर वैसे ही छोटे छोटे और तंग होते हैं, तिसपर भी आप पायेंगे कि पाखाना और गौशाला भी है। नतीजा यह होता है कि सैकड़ों तरहकी बीमारियां हर साल पैदा होती हैं और सैकड़ोंकी जीवन लीला अकालमें ही समाप्त हो जाती है। सर्व साधारण इन बीमारियोंको केवल दैवी प्रकोप समझ कर चुप रह जाते हैं और अपने भाग्यपर भरोसा कर मरनेकेलिए सदा तैयार रहते हैं। पर आधुनिक विज्ञानकी कृपासे हम इन बीमारियोंके रहस्यको

❀ श्रीयुत प्रोफ़ेसर शिवदास मुकर्जी, बी. ए., ने ट्रेनिङ्ग कालेज प्रयागमें एक व्याख्यान दिया था, उसके आधारपर यह लिखा गया है—ल० ना० श्री०।

अच्छी तरह जान गये हैं और उन नियमोंका भी ज्ञान हमको हो गया है जिनका पालन करनेसे हम अपना जीवन सुखमय बना सकते हैं और बल और दीर्घ जीवन लाभ कर सकते हैं।

पहले हम 'रोग' और 'छूत' के विषयपर ही विचार करेंगे, जिससे हमको आगे चलकर उन नियमोंके समझनेमें आसानी हो, जिनका प्रतिपादन स्वास्थ्य-रक्षाके अन्तर्गत है।

रोग क्या होता है? "स्वास्थ्यके किसी प्रकार बिगड़ जानेको रोग कहते हैं"। जब शरीरमें किसी प्रकारकी बेचैनी या अव्यवस्था पैदा होती है उस समय कहा जाता है कि रोग हो गया। जिस समय शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्ग अपना पूरा काम नहीं करते और तमाम रगें और नसें सुस्त और निर्बल सी जान पड़ने लगती हैं, उस समय शरीर व्याधि-ग्रस्त समझा जाता है। परन्तु जब शरीरकी रगें और समस्त अंग अपना पूरा पूरा काम करते रहते हैं और उनमें किसी प्रकारकी सुस्ती नहीं मालूम होती तब हम शरीरको स्वस्थ और नीरोग कहते हैं। जिन कारणोंसे हमारे शरीरके अवयवोंके कार्य्य-क्रममें शिथिलता उत्पन्न हो जाती है, उनकी संख्या अनगिनत है। परन्तु आधुनिक विज्ञान द्वारा यह मालूम हुआ है कि इसका प्रधान कारण हमारे शरीरके भीतर घुसकर पलने और बढ़नेवाले अणुवीक्षणीय, जीते जागते छोटे छोटे जीवाणुओं द्वारा पैदा किये गये विष हैं। यह अधिकांश घुआजातिके (moulds and fungi) वानस्पतिक जीव हैं। यह जीवाणु बहुत नन्हे नन्हे और कई प्रकारके होते हैं। गोल या बिन्दवाकार जीवाणुओंको बिंदु (cocci) या (micrococci), छड़ोंके समान सीधे कीटाणुओंको शलाका (bacilli) और कार्कस्क्रिके समान टेढ़े जीवाणुओंको सर्पिल (spirilla) कहते हैं। फिर इनमें भी कई भेद होते हैं। इनके बढ़ने और फैलनेके लिए गर्मी, नमी और द्रव-खाद्योंकी आवश्यकता होती है। वायु और सूर्य्यके प्रकाशसे भी बचना इनके लिए आवश्यक है। मनुष्यों और पशुओंके देहोंमें इन्हें यह बातें आसानीसे मिल जाती हैं और इसी लिए एक बार घुसने पर वहां यह खूब फलते फूलते हैं और विष पैदा करके मनुष्यों और पशुओंको हानि पहुंचाते हैं।

छूत कैसे फैलती है और रोग कैसे पैदा होते हैं?

बाहिरी ज़हरीला माद्दा (विषैला द्रव) जिसमें जीवाणु होते हैं शरीरमें पहुंचते ही चुपचाप एक स्थानपर जमा हो जाता है और वहां जीवाणुओंकी वृद्धि और उत्पत्ति आरम्भ हो जाती है। उसीके साथ साथ विषैले पदार्थ भी अत्यधिक मात्रामें पैदा होने लगते हैं। भिन्न भिन्न बीमारियोंमें इन जीवाणुओंकी संख्यावृद्धि का समय भिन्न होता है और भिन्न भिन्न विषैले पदार्थ पैदा होते हैं। अतएव उनके प्रभाव भी भिन्न भिन्न प्रकारके पड़ते हैं अर्थात् रोगोंके लक्षण भी जुदा जुदा होते हैं। वृद्धिके समयके समाप्त हो जानेपर रोगका विष फैल जाता है। रोग जीवाणु कभी कभी थोड़े ही स्थान यानी प्रवेश करनेके स्थानतक ही फैले रहते हैं और कभी कभी शरीरकी रक्त धारामें प्रविष्ट हो कर तमाम शरीरमें फैल जाते हैं। परन्तु किसी किसी स्थानपर फिर इनके झुण्डके झुण्ड जमा हो जाते हैं और बीमारीका एक नया केन्द्र बन जाता है, जैसा पीमीया (एक प्रकारका रक्तदोष) होनेपर होता है। ज्योंही यह कीटाणु (Virus) शरीरके भीतर घुसते हैं त्योंही, शरीरके तमाम सेलों (Cells) में अराजकता फैल जाती है और एक घोर जीवन संग्राम उपस्थित हो जाता है। श्वेत रक्ताणुओंकी सेना आगन्तुक शत्रुओंपर आक्रमण करने लगती है। लवण (Salts) और ओषजन परिपूर्ण रक्त धाराएँ अधिक वेगसे चक्कर लगाने लगती हैं। गरमी यानी बुखार (Fever) पैदा हो जाता है और आगन्तुक शत्रुओंको डुबो

कर मार डालनेके लिए सीरमकी बहुत सी मात्रा पहुंच कर विदेशियोंको मारना आरम्भ कर देती है और इस भांति एक नियत समयमें रोगका विष नष्ट होकर दूर हो जाता है। भिन्न भिन्न रोगोंके विषोंके नाशका समय प्रायः निर्धारित हुआ करता है। इसी निर्धारित समयके बीचमें रोगका विष जो छूत इत्यादिके कारण फैला रहता है नाश हो जाता है। शरीरके विजयी सेल्स सदा युद्धके उन उपायोंको याद रखते हैं जिनसे उन्होंने अपने शत्रुओंको पराजित किया और इसलिए जब फिर कभी वही शत्रु उन पर आक्रमण करनेका साहस करता है तो सहजमें ही उसे यह परास्त कर देते हैं। परन्तु जब रोगका विष अपना भीषण रूप धारण कर लेता है और शरीरके सेल्स (Cells) निर्बल प्रतीत होते हैं तो ऐसी दशामें रोगके जीवाणु ही विजयी होते हैं और सेलों (Cells) के जीवनकी समाप्ति होती है। युद्धके समयमें फेंफड़े बराबर अशुद्ध वायुके साथ तथा मल मूत्र इत्यादि द्वारा इन रोगके जीवाणुओं तथा इनके विषोंको बाहर निकाला करता है। बाहर निकलनेपर इनका असर भोज्य पदार्थों, जल, वायु और छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों पर पड़ता है। निम्न लिखित बातोंपर ध्यान देनेसे इन संक्रामक रोगोंके फैलने और बढ़नेके तरीक़ोंका ठीक ठीक ज्ञान हो जायगा।

१—कुछ रोग ऐसे हैं जो फेंफड़ेकी राहसे अन्दर घुस जाते हैं, जैसे शीतला (Small-pox) खसरा (Measles) लाल बुख़ार (Scarlet fever) डिपथीरिया (Diptheria) श्लेष्मज्वर (Influenza) कनपेड़े (Mumps) काली खांसी (Whooping-cough) क्षय रोग (Tuberculosis) और कुष्ट-रोग (leprosy)। इन संक्रामक रोगोंके जीवाणु वायुमण्डलमें फैले रहते हैं और हवाके ज़रियेसे शरीरके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं।

२—कुछ रोग खाने पीनेकी चीज़ोंके साथ शरीरमें पहुंचते हैं और उपाधि खड़ी कर देते हैं। जैसे आमातिसार (Dysentery) प्रवाहिका (Diarrhoea) हैज़ा (Cholera) अंत्रज्वर, (Enteric fever) और एबडोमिनल ट्युबरकिलोसिस या उदरका क्षयरोग (Abdominal tuberculosis) इत्यादि।

३—कुछ रोग जननेंद्रियकी झिल्ली द्वारा शरीरमें प्रवेश करते हैं, जैसे सूज़ाक (Gonorrhea) और गर्मी (Syphilis) इत्यादि।

४—कुछ रोग बाहरी खालके फटनेपर प्रवेश करते हैं। जैसे, एरीसीपिलेस, (Erysipelas) दन्ती बंधना (Tetanus) सेप्टीसीमिया या ज़हरवाद (Septicaemia) और रक्त-दोष (Blood poisoning) इत्यादि।

५—कुछ रोग खटमल और मच्छर इत्यादिके काटनेसे भी उत्पन्न होते हैं।

(क) जैसे एनोफिलीस (Anopheles) प्रकारके मच्छरोंके काटनेसे मौसमी बुखार (Malaria) (१) स्टेगोमिया प्रकारके मच्छरोंके काटनेसे पीत-ज्वर (yellow-fever) और (२) क्यूलेक्सफेटीगन्सके काटनेसे श्लीपद (Elephantiasis) डेंगू ज्वर (Dengu) और फाइलेरिया (filarial) रोग उत्पन्न होते हैं।

(ख) काटनेवाले पिस्सू भी अनेक रोगोंको फैलाते हैं जैसे ट्सेट्सी (Tsetsefly) प्रकारकी मक्खीके, जिसे ग्लोसिना पालपुलिस (Glosina palpulis) कहते हैं, काटनेसे ट्रिपेनोसोम (Trypanosomiasis) जिसे स्वप्न रोग (Sleeping sickness) कहते हैं पैदा होता है। बालुका मक्खीके (Sandfly) काटनेसे साधारण ज्वर पैदा होता है। एक प्रकारके खटमलके काटनेसे कालाआज़ार (Kalazar) और हेरफेरका ज्वर (Relapsing-fever) पैदा होता है। अफ़रिकाका टिक-ज्वर (African tick-fever) एक प्रकारकी किलनीके काटकनेसे उत्पन्न होता है और ब्युबोनिक प्लेग (Bubonic plague) चूहोंके पिस्सुओंके द्वारा उत्पन्न होता है।

(ग) डंक न मारनेवाली मक्खियोंसे भी अनेक रोग पैदा होते हैं, क्योंकि यह बहुतसे संक्रामक रोगोंको लिये हुए उड़ा करती हैं और मनुष्यके शरीर, कपड़ों और खाद्य पदार्थों इत्यादिको विषैला बना देती हैं। इन मक्खियोंके द्वारा हैज़ा, (Cholera) आमातिसार (Dysentery) प्रवाहिका (Diarrhea) और मोतीझिरा (Typhoid-fever) के फैलनेकी आशङ्का रहती है।

६—इनके अतिरिक्त साधारण और आंतोंमें रहनेवाले बहुत कीड़े हैं जो अनेक रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे (क) सेस्टोदा या टेपवर्म (Cestoda or Tape-worm) से टेनिया सोलियम (Tenia Solium) टेनिया मेडियो शाइनेलाटा (Tenia Media Chinellata) और बोथरियो केफेलस लाटा (Bothreo Cephalous Lata) इत्यादि कई प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

७—इनके अतिरिक्त सांप, बिच्छू, बर्र और शहदकी मक्खियोंके काटनेसे भी कष्ट होता है। कुत्तोंके काटनेसे भौंका रोग (पागल होकर कुत्तोंकी तरह भूकना) पैदा होता है। घोड़ों और अन्यान्य मवेशियों द्वारा एन्थ्रैक्स (Anthrrax) और पैर और मुंहकी बीमारियां पैदा होती हैं।

८—गन्दे कपड़ेसे दाद इत्यादि प्रकारके कितने ही चर्म-रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

ऊपर लिखी हुई बातोंसे स्पष्ट मालूम हो जायगा कि स्वास्थ्य-रक्षाकेलिए साफ़ सुथरे रहने और सदा सतर्क रहनेकी कितनी आवश्यकता है। इससे यह भी मालूम हो जायगा कि स्वास्थ्य-विज्ञान-वेत्ताओंके सामने कितना भयानक और कितने महत्वका काम उपस्थित है। इसके बादवाले प्रकरणमें हम इन रोगोंके नष्ट करने, इनसे बचे रहने और इनके द्वारा आक्रान्त होनेपर कतिपय औषधियोंके प्रयोग करनेका उपाय बतावेंगे।

[असमाप्त]

ज्योतिषशास्त्र

[ले०—श्रीयुत कन्नोमल एम. ए.]

भारतवर्षमें ज्योतिष विद्या अत्यन्त प्राचीन कालसे चली आती है। इस विषयमें एतद्देशीय विद्वानोंने बड़ी उन्नति की है। वेदोंके छः अङ्ग हैं, अर्थात् शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और कल्प। इनमें ज्योतिष एक ऐसा अङ्ग है जिसका सम्बन्ध वैदिक यज्ञादि अनुष्ठानोंसे बड़ा घनिष्ठ है। वेदाङ्गोंकी कब रचना हुई, इसके विषयमें अनेकधुरन्धर विद्वानोंकी अनेक सम्मतियां होनेपर भी यह बात अभ्रान्त सिद्ध है कि इनका समय अत्यन्त प्राचीन है। वह कमसे कम ईसाके जन्मसे १५०० वर्ष पूर्वका है। उस समयमें भारतवर्षके सिवा और कोई देश सभ्यता और विज्ञानकी ऐसी ऊँची दशामें नहीं था। यह कहना कि भारतीय ज्योतिषके सिद्धान्त अन्य देशोंसे प्राप्त हुए हैं सर्वथा निर्मूल है। यह विद्या नितान्त भारतीय ही है। इस विषयके भारतवर्षमें बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान हो गये हैं, जिनके लिखे अनेक गौरवशाली ग्रंथ हैं। गर्ग, वसिष्ठ, पाराशर, व्यास, नारद, जैमिनि, लगध, आर्य्य भट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि उद्भट विद्वान् हुये हैं।

अन्य वैज्ञानिक विद्याओंके समान ज्योतिष भी दो प्रकारकी है। सिद्धान्त पक्ष और फलित (pure astronomy and applied astronomy) ज्योतिषके सिद्धान्त पक्षको पाश्चात्य विद्वानोंने भी माना है, पर फलित ज्योतिषमें उनकी अनुभव नहीं के बराबर है। इस विषयमें भारतीय ज्योतिष बड़ी बलिष्ठ है। यह कहना कि फलित ज्योतिष मिथ्या है, वैज्ञानिक नियमोंके विरुद्ध है। यदि किसी शास्त्रका सिद्धान्त पक्ष है तो उसका प्रायोगिक पक्ष भी अवश्य हो सकता है। व्यापक नियमोंको खोज निकालना सिद्धान्त पक्ष है। उन

नियमोंका प्रयोग करना अर्थात् उन्हें प्रतिदिनके कार्योंमें लगाकर लाभ उठाना प्रायोगिक पक्ष है।

भारतवासी विद्वान् ज्योतिषके सिद्धान्तोंको मनुष्योंके लाभार्थ खूब काममें लाये हैं और फलित ज्योतिषका इतना प्रभाव बैठ गया है कि किसी हिन्दूके घरमें कोई शुभ कार्य ज्योतिषकी सहायता बिना होता ही नहीं है। यात्रा, हवन, भोज्य, विवाह, गृहनिर्माणादि कार्य मुहूर्त दिखाये बिना नहीं होते हैं। जबतक वर कन्याकी जन्म पत्रियां नहीं मिल जाती हैं तब तक उन दोनोंका विवाह निश्चित नहीं होता है। इस समय भी ज्योतिषका हिन्दू जीवन से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है और जबतक हिन्दू समाजकी प्राचीन मर्यादाएं रहेंगी, ज्योतिषका सम्बन्ध बराबर ऐसा ही चला जायगा। खेद है कि हमारे जीवनके साथ ज्योतिषका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध रहनेपर भी हमने अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें इसका पठन पाठन सर्वथा ही उड़ा दिया है।

अब सुनिये ज्योतिषके मूलाधारतत्त्व क्या हैं। नभमण्डल १२ भागोंमें विभक्त है, जिन्हें राशियां कहते हैं। १२ राशियोंके समूहको राशिचक्र कहते हैं। प्रत्येक राशिका नाम पृथक् पृथक् है—मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन। इन्हींके अंगरेजी नाम यह हैं:—

Aries, Taurus, Gemini, Cancer, Leo, Virgo, Libra, Scorpio, Sagittarius, Capricorn, Acquarius, Pisces.

इन सबके समूहका नाम राशिचक्र (Zodiac) है। राशियोंको अंगरेजीमें (signs of Zodiac) कहते हैं।

इन राशियों पर सब ग्रह अपने नियमानुसार घूमते हैं। ग्रह (planets) भारतीय ज्योतिषकी दृष्टिसे सात हैं और दो उपग्रह हैं, अर्थात् सूर्य (sun) चन्द्र (moon) मंगल (mars), बुध (mercury), बृहस्पति या गुरु (Jupiter), शुक्र (Venus) शनि (saturn); उपग्रह—राहु, केतु।

प्रत्येक ग्रहको एक या दो राशियां मुख्य हैं। उन्हींका वह ग्रह पूर्ण अधिपति है, वैसे तो प्रत्येक ग्रह प्रत्येक राशिपर घूमता है। सूर्यकी मुख्य राशि सिंह है, चन्द्रकी कर्क, मंगलकी मेष, वृश्चिक बुधकी, मिथुन कन्या बृहस्पतिकी; धनु, मीन, शुक्रकी वृषभ तुला, शनिकी मकर और कुम्भ।

ग्रह राशिचक्र पर इस प्रकार भ्रमण करते हैं-सूर्य एक राशिपर एक महीनेमें, चन्द्र सवा दो दिनमें, मंगल डेढ़ महीनेमें, बुध एक महीनेमें, बृहस्पति १३ महीनोंमें, शुक्र एक महीनेमें शनि ३० महीनेमें और राहु १८ महीनेमें। ग्रहोंके सिवा २८ नक्षत्र भी हैं। वह भी राशिचक्रपर घूमते हैं। एक नक्षत्र एक दिन ठहरता है। दूसरे दिन दूसरा नक्षत्र होता है। २८ नक्षत्रोंकी नामावली यह है—

१ अश्विनी २ भरणी ३ कृत्तिका ४ रोहिणी ५ मृग ६ आर्द्रा ७ पुनर्वसु ८ पुष्य ९ आश्लेषा १० मघा ११ पूर्वाफालगुणी १२ उत्तरा फालगुणी १३ हस्त १४ चित्रा १५ स्वाति १६ विशाखा १७ अनुराधा १८ ज्येष्ठा १९ मूल २० पूर्वाषाढ २१ उत्तराषाढ २२ अभिजित् २३ श्रवण २४ धनिष्ठा २५ शततार २६ पूर्वाभाद्रपद २७ उत्तरा भाद्रपद २८ रेवती अभिजित् नक्षत्रको छोड़कर नक्षत्र २७ ही हैं।

जिस तरह २७ या २८ नक्षत्र हैं वैसे ही २७ योग हैं जो तिथि, वार और नक्षत्रके संयोगसे होते हैं। एक दिनमें एक योग होता है। करण १२ हैं, जो एक दिनमें दो होते हैं।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण यही पञ्चाङ्गके पांच अङ्ग हैं।

राशियोंपर ग्रहादिके घूमनेका प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है।

मनुष्यके जन्मकालके समय कौनसा नक्षत्र, कौनसा योग, कौनसा करण और किस किस राशिपर कौन कौन ग्रह घूम रहे थे और उन राशियोंपर उनके कितने अंश हो गये थे-यही

बात पंचाङ्गके द्वारा मालूम करके उस मनुष्यके स्वभाव, चालचलन, तथा ऐसी ऐसी बहुत सी बातोंके विषयमें निश्चित हो सकता है। मनुष्यके समस्त जीवनका हाल इनके द्वारा बताया जा सकता है।

मनुष्यकी जन्मपत्रीमें इन्हीं सब बातोंका विचार होता है और इन्हींके आधारपर अभीष्ट फल कहा जा सकता है। यह विषय ज्योतिष ग्रन्थोंमें बड़े विस्तारसे लिखा है। लेख बढ़ जानेके भयसे अभी इस विषयको यहीं छोड़ते हैं। आगेके लेखमें अन्य बातें बताई जायेंगी।

कास्टिक सोडा या दाहक सोडा

[ले०—श्री० मुख़्त्यारसिंहजी]

युद्धके कारण यों तो सभी पदार्थोंके दाम बहुत चढ़ गये हैं, परन्तु दाहक सोडेके दाम बहुत बढ़ गये हैं। पिछले दिनों दाहक सोडेका भाव ६०) हंडेडवेट तक हो गया है जो किसी समयमें केवल १४) हंडेडवेट बिका करता था। दाहक सोड़ा साबुन बनानेमें बरता जाता है, इसीलिए साबुनका भाव भी पहिलेकी अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। जिस वस्तुसे दाहक सोडा (Caustic soda) बनाया जाता है वह सोडा (सोडियम कर्बनेत) या सोडा राख या सज्जी है, परन्तु इन पदार्थोंके दामोंमें इतना अन्तर नहीं पड़ा। आजकल शुद्ध कोटिके सोडेका भाव २०) मनसे भी कम है। यदि इससे दाहक सोडा बनाकर अपना साबुन बनाया जाय तो दाहक सोडेके दाम २५) मनसे कम ही पड़ेंगे जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि साबुन बनाने वाले कार्यालय दाहक सोडा न ख़रीद कर स्वयं बनावें तो उनको बड़ा भारी लाभ हो सकता है।

हमने बहुतसे साबुन बनानेवालोंको दाहक सोडा बनानेकी सम्मति दी, परन्तु वह यह कहते हैं कि ठंडी क्रियासे जो साबुन बनाया जाता है उसमें घरका बना सोडा काम नहीं देता। यद्यपि हमारा विश्वास था कि यह बात बिल्कुल ग़लत है तथापि हमने स्वयं दाहक सोडा बना साबुन बनानेका प्रयत्न किया तो वास्तवमें उपरोक्त कथनको असत्य पाया। अतः आज हम नीचे दाहक सोडा बनानेका विस्तार पूर्वक तरीक़ा अनुभव करनेके पश्चात् लिखते हैं और आशा करते हैं कि पाठक वृन्द उसको पढ़ और आज़माकर लाभ उठावेंगे। हां इसमें सन्देह नहीं कि साधारणतया मनुष्य इस तरीक़ेसे दाहक सोडा चूर्ण या ठोस रूपमें बना कर नहीं बेच सकते, क्योंकि पानी सुखानेमें बहुत व्यय करना होगा, परन्तु जो लोग साबुन बनाते हैं उनको चूर्ण या ठोस दाहक सोडेमें पानी मिलाना होता है और यह उनको पानी मिला मिलाया ही प्राप्त हो जायगा।

दाहक सोडा बनानेके लिए सोडा राख (Soda ash) लेनी चाहिये। यदि विशुद्ध कोटिकी राख [सोडा राख साधारण बाज़ारू सोडाका ही नाम है] न होगी तो उत्तम कोटिका दाहक सोडा न बनेगा। जब उत्तम कोटिकी राख मिल जाय तो एक लोहेके कढ़ावमें पानी डाल कर आग जलाओ। जब पानी खौलने लगे तो इसमें इतनी राख धीरे धीरे डालो कि जलका गुरुत्व १३ वामी हो जाय। इस कार्यके लिये ८५ पौंड सोडा राख और १०० गैलन पानी ठीक होगा। पानीमें राख भली भांति चला कर घोल देनी उचित है। कभी कभी पानीमें डालनेपर राख नीचे बैठ जाती है। यदि अहतयात न किया जाय तो इसका पानीमें घोलना बड़ा कठिन होता है। जब पानीमें राख घुल जाय तो आंच धीमी कर दो और जितनी राख डाली गई है उसीके बराबर बिना बुझी क़ली किसी चलनी या छेद दार पात्रमें रख कर इस पानीमें रख दो। धीमी धीमी आंच जलाते रहो, थोड़ी देरमें यह

Industrial Chemistry औद्योगिक रसायन]

सब वे बुझी कली पानीमें घुल जायगी और पत्थर कंकर आदि इस छेददार पात्रमें रह जायंगे। इन्हें फेंक देना चाहिये। अब मन्दी मन्दी आंच जलाते रहो और पानीको चलाते जाओ। घंटे भरके पश्चात् थोड़ा सा पानी एक पात्रमें निकाल कर नितारो। जब साफ़ पाना नितर जाय तो इस नितरे पानीका थोड़ा सा भाग एक कांचके पात्रमें डाल कर उसमें दो तीन बूंद गन्धकके तेज़ाबकी डालो। यदि तेज़ाबके डालने पर पानीमें झागसे उठने लगें और पानी उबलता प्रतीत हो तो समझो कि अभी और पकानेकी ज़रूरत है। यदि तेज़ाबके डालनेसे पानीमें कोई परिवर्तन न हो तो समझो कि दाहक सोडा ठीक बन गया। जब तक नितरा हुआ यह पानी तेज़ाब डालनेपर परिवर्तनशील रहे पकाना आवश्यक है। यदि पानीको बिना भली भांति नितारे तेज़ाब डालोगे तो भी झाग आयेंगे, चाहे दाहक सोडा ठीक ही क्यों न बन गया हो। इस लिए तेज़ाब डालनेसे पूर्व नितार लेना अत्यन्त आवश्यक है। अब इस कढ़ावको छोड़ दो, नीचेसे आग बुझा दो और चन्द घन्टोंके पश्चात् ऊपरका नितरा पानी अलग कर लो। यह नितरा हुआ पानी दाहक सोडेका पानी है। परन्तु इसका गुरुत्व कम है; अतः इससे ठंडी रीतिसे साबुन न बनेगा। अब इसको आंचपर उड़ा कर गाढ़ा कर लो, जब तक कि इसका गुरुत्व कमसे कम ३३ बामी न हो जाय। यदि इससे ऊंचे गुरुत्व पर साबुन बनाना हो तो उतना ही उड़ा कर गाढ़ा कर लेना उचित है। यह बहुत उत्तम कोटिका साबुन बनानेके काम आ सकता है। जो गाद रह गई है उसको कई बार पानीसे धो कर फेंक दो और यह पानी आगामी घानमें काममें लाओ। यदि अहतयात और सावधानीसे काम किया जायगा तो अवश्य सफलता होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उपरोक्त क्रियामें पीतलके पात्र नहीं बरतने चाहियें, केवल लोहेके बरतनोंसे काम लेना चाहिये।

पैमाइश

[ले०—श्री० नन्दलाल जी तथा श्रीयुत मुर्लीधर, एल.ए. जी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

सरवेरी या गंटरी पैमाने—यह सब इसी नियमपर बने हैं। इनमें केवल १ जरीब और उसके भाग नापनेकी सुगमताके लिए नीचेकी रीतिसे निशान लगाते हैं।

(१) १६ इंच फ़ी मीलवाले पैमानेमें इंचोंकी खड़ी रेखा खींच कर एक सिरेके दो इंचोंको दस बराबर भागोंमें बांटते हैं। ऐसा करनेसे प्रत्येक दशमांश चिन्ह अर्थात् $\frac{2}{10}$ इंच एक जरीबके बराबर और प्रत्येक (सौवां हिस्सा) शतांश दस कड़ीके बराबर हो जाता है और पैमाना बनानेके हिसाबमें कोई भिन्न नहीं आता। दस कडीसे क्रमका अंतर-अंदाज़से दो पडी सामानानतर रेखाओंके बीचमें नाप लिया जाता है। [चित्र ४]
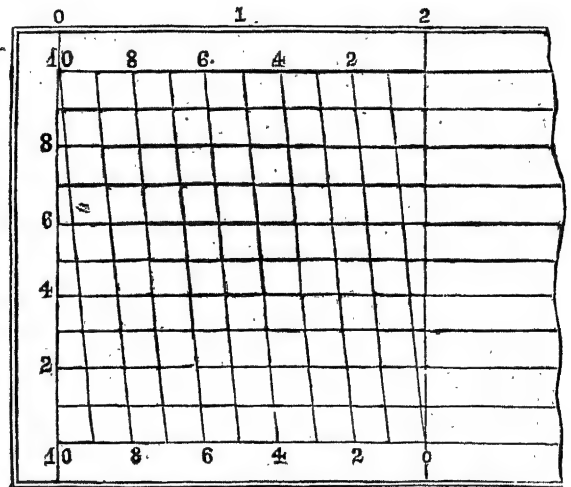
चित्र ४—गंटरी पैमाना, १६ इंच=१ मील

(२) ३२ इंच प्रति मीलके पैमानेमें इंचके चिन्ह लगानेके पश्चात् एक सिरेके दो इंचोंको पांच बराबर भागोंमें बांटते हैं। प्रत्येक (पंचमांश) चिन्ह या भाग एक जरीबके बराबर होता है और इसका दशमांश

१० कड़ीके बराबर होता है। दस कड़ीसे कमका अंतर दो पड़ी समानन्तर रेखाओंके बीच उसी विधिसे निकालते हैं जो ऊपर बतला चुके हैं। [चित्र ५]

चित्र ५—गंटरी पमाना, ३२ इंच=१ मील

(३) ६४ इंच प्रति मीलके पैमानेको इंचोंमें बांटनेकी जगहपर $\frac{५}{४}$ इंचके भागोंमें बांटते हैं, जिससे प्रत्येक भाग १ जरीबके बराबर हो और जब इन मेंसे एकको दस बराबर भागोंमें फिर बांटते हैं तो प्रत्येक नया भाग १० कड़ीके बराबर होता है। इस पैमानाका $\frac{१}{१००}$ भाग एक कड़ीके बराबर होता है। [चित्र ६]

चित्र ६—गंटरी पमाना, ६४ इंच=१ मील

(६) गुनिया या औफ़सेट स्केल—यह जरीबी लैनपर लम्ब प्लाट करने (खींचने) के काम आती है। यह दो इंच लम्बी और आध इंच चौड़ी होती है। इसके बीचोंबीचमें एक आर पार सरल रेखा खिंची होती है जिसपर किसी किसीमें एक अंडाकार (O) आकृति बनी होती है। इस रेखाके दोनों ओर अर्थात् सीधे और बाएँ हाथकी ओर एक एक इंचपर भी रेखा आर पार चौड़ाईमें खिंची होती है। प्रत्येक इंच पांच बराबर भागोंमें बंटा होता है और फिर प्रत्येक भाग भी पांच बराबर भागोंमें बंटा होता है (देखो चित्र ७)। इस प्रकार यदि नक़शा १ इंच प्रति मीलके पैमानेपर है तो

चित्र ७—औफसेट स्केल या गुनिया

$\frac{१}{५}$ इंच = १ जरीब और $\frac{१}{२५}$ इंच = २० कड़ी। यदि नक़शा ३२ इंच प्रति मीलके पैमानेपर है तो $\frac{१}{५}$

इंच = ५० कड़ी और $\frac{१}{२५}$ इंच = १० कड़ी और यदि नक़शेका पैमाना ६४ इंच प्रति मील है तो $\frac{१}{५}$ इंच = २५ कड़ी और $\frac{१}{२५}$ इंच = ५ कड़ी

इसको प्रयोगमें लानेकी विधि यह है कि जब कोई लम्ब उठाना हो तो पहिले अपनी उस रेखापर जो नक़शेमें जरीबी लैन है पैमाने और परकारकी सहायतासे नापकर वह बिन्दु निश्चित करो जहांसे लम्ब उठा है। फिर गुनियाको इस प्रकार रखो कि उसका वह किनारा जिसपर चिन्ह लगे हैं उस बिन्दुसे मिला रहे और जो रेखा कि उसपर आर पार खिंची है वह जरीबी लैन वाली रेखाके ठीक ऊपर रहे। ऐसी स्थितिमें गुनिया जरीबी लैनवाली रेखापर समकोण बनायेगी। फिर गुनियाके चिन्होंकी सहायतासे लम्बकी लम्बाई नापकर आवश्यक बिन्दुका स्थान निश्चित कर लेते हैं।
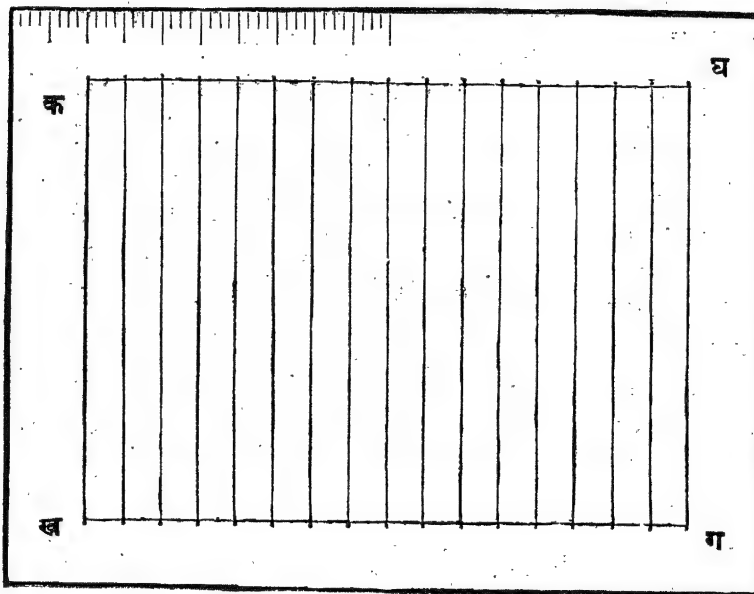
(७) क्षेत्रफल निकालनेकी कंघी—यह एक ऐसा यंत्र है जिसकी सहायतासे खेतोंका क्षेत्रफल चाहे वह कैसा ही टेढ़ा क्यों न हो निकाला जा सकता है (देखो चित्र ८) क ख ग घ पीतल या काग़ज़ या किसी और पदार्थका आयत क्षेत्र होता है, जिसकी दोनों लम्बी भुजाएँ इंचोंमें बंटी होती हैं और प्रत्येक इंच फिर बराबर भागोंमें बंटा होता है। प्रत्येक चिन्हके सिरेपर बारीक छिद्र बना होता है। एक बड़ा तागा लेकर इन आमने सामनेके छिद्रोंमें इस प्रकार पिरोते हैं कि इन तागोंसे बनी रेखाएँ आपसमें क ख, ग घ के समानान्तर होती हैं और कुलक्षेत्र बहुत से छोटे छोटे आयत क्षेत्रोंमें बंट जाता है।

सब कंघियोंमें इंचोंके चिन्ह नहीं बने होते हैं और छिद्रोंके बीचका अन्तर भी जुदा जुदा होता है और उन्हींके अनुसार उनके हाशियेके पैमाने भी भिन्न भिन्न होते हैं। कई प्रकारकी कंघियां नीचे लिखी जाती हैं।

(क) एकड़की कंघी—नियम यह है कि कंघीके आयत क्षेत्रकी चारों भुजाओंमें $\frac{१}{५}$ इंचकी दूरीपर छेद बनाये जायं, जिसका अभिप्राय यह है कि जब आमने सामनेके छिद्रोंमें डोरा डालकर खींच दें तो डोरेकी सब रेखाएं लम्बाई या चौड़ाईकी रेखाओंके समानान्तर हो जावें। इस प्रकार कंघीमें छोटे छोटे वर्ग क्षेत्र $\frac{१}{५}$ इंच लम्बाई चौड़ाई वाले बन जायेंगे।

चित्र ८—१६ इंच प्रति मीलकी कंघी

इसकी सहायतासे जब किसी खेतका क्षेत्रफल निकालना हो तो कंघीको खेतके नक़शेपर रखकर पूरे पूरे वर्गक्षेत्रोंकी संख्या गिन लेते हैं और जो वर्ग अधूरे हैं उनका अंदाज़से हिसाब लगा लेते हैं। १६ इंच प्रति मीलके पैमाने-

पर $\frac{१}{५}$ इंच = १ जरीब। इसलिए जितने वर्ग क्षेत्र उस खेतमें आवें उतने ही वर्ग जरीब उसका क्षेत्र-फल होगा। परन्तु इस प्रकार क्षेत्रफल निकालनेमें बहुत अशुद्धता होनेका भय रहता है, क्योंकि खेत भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं और खंड वर्ग क्षेत्रोंकी संख्या अधिक होनेके कारण अंदाज़से ठीक ठीक हिसाब नहीं लग सकता। इसलिए आजकल कंघी प्रायःकाममें लाते हैं। कंघीमें जो आयत क्षेत्र डोरोंकी समानान्तर रेखाओंसे बने हैं उनकी चौड़ाई $\frac{१}{५}$ इंच है अर्थात् १६ इंच प्रति मीलवाले पैमानेपर एक जरीब होती है। इसलिए यदि किसी आयत क्षेत्रकी लम्बाई आगे बतलाई हुई विधिसे २ इंच या १० जरीब निकले तो उसका क्षेत्रफल १०×१ = १० वर्ग जरीब अर्थात् एक एकड़ होगा।

कंघी का प्रयोग—किसी खेतका क्षेत्रफल जब इस कंघीसे निकालते हैं तो उसे खेतके नक़शेपर इस प्रकार रखते हैं कि उसकी एक मेंड़ किसी तागेसे ढक जाय और खेत कंघीके तागोंके नीचे आ जाय। अब खेत ऐसे आयत क्षेत्रोंमें बंट गया जिनकी चौड़ाई $\frac{१}{५}$ इंच है, परन्तु लम्बाई भिन्न भिन्न हैं। इन क्षेत्रोंकी लम्बाई तागोंके बीचोंबीच परकारसे नापी जाती है। तागोंके बीचोंबीच इस कारणसे नापते हैं कि यदि उसकी चौड़ाईकी भुजाएँ समानान्तर न हों तो उनके बीचकी औसत दूरी निकल आये। क्रियात्मक रूपसे एक टुकड़ेकी लम्बाई परकारसे नापनेके पश्चात् यदि दूसरे टुकड़ेकी लम्बाई पहले-वालेके साथ नापी जा सकती है तो उसे भी नाप लेते हैं। ऐसा करनेके लिए पहले टुकड़ेकी लम्बाई नापनेमें परकारकी दोनों नोकें तागोंके बीचमें उस टुकड़ेकी दोनों चौड़ाईवाली मेड़ोंपर रखते हैं और उसके बाद दूसरे टुकड़ेकी लम्बाई नापनेकेलिए पहले परकारकी अगली टांगकी नोंक दूसरेकी नीचेवाली मेंड़के बीचमें रखकर पीछेवाली टांग उसकी सीधमें खेतके बाहर जमा लेते हैं और फिर आगेवाली टांगको उस टुकड़ेकी दूसरी मेंड़-के बीच तक बढ़ाते हैं। इस स्थितिमें परकारकी दोनों टांगोंके बीचका अन्तर दोनों टुकड़ोंकी औसत लम्बाइयोंका योग होता है। इस प्रकार जितने टुकड़ोंकी लम्बाई एक बार परकारसे निकाल सकते हैं नाप लेते हैं। इन दोनों टांगोंके बीचकी दूरीको $\frac{१}{५}$ इंचसे गुणा करनेसे वर्ग इंचोंमें क्षेत्रफल प्राप्त होगा। लेकिन चूंकि इन सब टुकड़ों-की चौड़ाई, जो तागोंसे बने हैं, $\frac{१}{५}$ इंच होती है जो १६ इंच प्रति मीलके पैमानेपर एक जरीबके बराबर है। इसलिए इन सब टुकड़ोंकी चौड़ाई एक जरीब होगी और लम्बाइयां जो भिन्न भिन्न थीं परकारसे नापी जा चुकी हैं। इसलिए इन सब लम्बाइयोंके योगको जरीबोंमें निकालकर एकसे गुणा करनेसे क्षेत्रफल वर्ग जरीबोंमें प्राप्त होगा। क्योंकि यह बता चुके हैं कि इस पैमानेमें १ इंच = ५ जरीब, इसलिए यदि लम्बाई २ इंच है तो जरीबोंमें लम्बाई १० जरीब हुई और क्षेत्रफल = (२×५) ×१ = १० वर्ग जरीब।

१६ इंच प्रति मीलवाले क्षेत्रफल निकाल-नेकी कंघीमें एक ओरका किनारा दो दो इंचके लम्बे चिन्होंमें बंटा होता है और इसमेंसे एक सिरेका दो इंचका हिस्सा दस बराबर भागोंमें तकसीम करके, प्रत्येक दशमांशको ५ भागोंमें विभाजित करते हैं। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि दो इंचकी लम्बाई दस वर्ग जरीब या एक एकड़के क्षेत्रकी सम्वादी है। इसलिए उसका दसवां भाग अर्थात् $\frac{२}{१०}$ इंच एक वर्ग जरीब या $\frac{१}{१०}$ एकड़ का और पचासवां भाग ($\frac{२''}{१०}$ का $\frac{१}{५} = \frac{२''}{५०}$) २००० वर्ग कड़ा या ·०२ एकड़ होगा। क्रियात्मक रूपसे $\frac{२}{१०}$ इंचवाले भागको दस

बराबर भागोंमें बटा हुआ मानते हैं अर्थात् यदि परकारकी नोक छोटे भागोंके चिन्होंपर पड़ती है तो उन्हें ·०२,·०४,·०६,·०८ पढ़ते हैं और यदि नोक उन चिन्होंके बीचमें पड़ती है तो उनको ·०१,·०३, ·०५,·०७,·०९, पढ़ते हैं।

यदि नक़शा ३२ या ६४ इंच प्रति मीलके पैमानेपर बनाया गया है तो उसका क्षेत्रफल दो प्रकारसे निकाल सकते हैं।

(१) १६ इंच प्रति मीलकी कंघीसे—यदि नक़शा ३२ इंच प्रति मीलके पैमानेपर बनाया गया है तो जो क्षेत्रफल इस कंघीसे निकालनेमें प्राप्त हो उसको ४ से भाग देनेपर जो कुछ आवे वही असली क्षेत्रफल होगा अर्थात् असली क्षेत्रफल = कंघीसे नापा हुआ क्षेत्रफल × $\frac{१}{४}$

यदि नक़शा ६४ इंच प्रति मीलके पैमानेपर है तो असली क्षेत्रफल = कंघीसे निकला क्षेत्रफल × $\frac{१}{१६}$

(२) विशेष कंघियोंकी सहायतासे क्षेत्रफल निकालना।

(क) ३२ इंच प्रति मीलकी कंघीसे—इस कंघीमें भी तागोंके छिद्र उपरोक्त रीत्यानुसार $\frac{१}{५}$ इंचकी दूरीपर बने होते हैं, परन्तु किनारेका पैमाना भिन्न होता है अर्थात् इस पैमानेमें $\frac{४}{५}$ इंचकी दूरीपर चिन्ह लगाये जाते हैं और इनमेंका एक भाग दस बराबर भागोंमें विभाजित होता है। इन छोटे भागोंमेंसे भी प्रत्येक बराबरके दो अंशोंमें विभाजित है। इस कंघीमें तागोंके बीचका अन्तर पैमानेके हिसाबसे $\frac{१}{२}$ जरीब या ५० कड़ीके बराबर होता है।

चित्र ६—३२ इंच प्रति मीलकी कंघी

और एक जरीब = $\frac{२}{५}$ इंच। इसलिए यदि कंघीके किनारे पर $\frac{२}{५}$ इंचकी दूरी पर निशान होते, तो जो लम्बाई (इस पैमाने पर) परकारसे नापकर मिलती उसको $\frac{१}{२}$ से गुणा कर देनेसे क्षेत्रफल वर्ग जरीबोंमें मिलता।
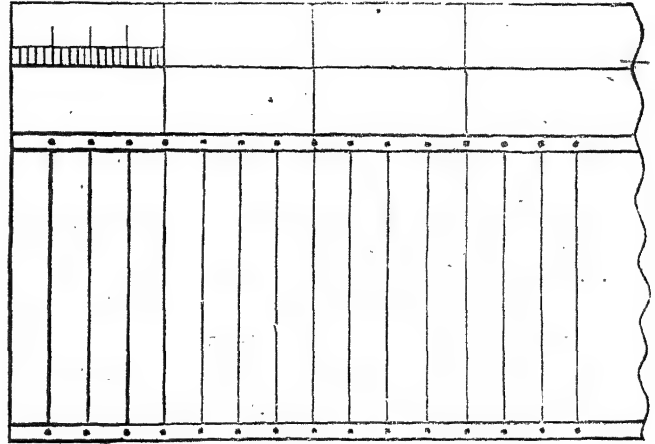
इससे स्पष्ट है कि लम्बाईका प्रत्येक अंक आधी वर्ग जरीबका द्योतक होता।

इसीलिए प्रत्येक चिन्ह $\frac{४}{५}$ इंचका रखा है, जिससे वह पूरी वर्ग जरीबका द्योतक हो।

इस प्रकार उपरोक्त कंघीमें प्रत्येक ($\frac{४}{५}$"का) चिन्ह १ वर्ग जरीब बतला वेगा। उसका दसवां भाग १० वर्ग कड़ीका द्योतक होगा और बीसवां भाग ५ वर्ग कड़ीका।

६४ इंच प्रतिमीलकी कंघी—इसमें समानान्तर तागोंके लिए ·१६ इंचकी दूरीपर छिद्र बने होते हैं, जो इस पैमाने पर $\frac{१}{५}$ जरीब अर्थात् २० कड़ीकी दूरी पर हुए। इस कंघीके किनारेके पैमानेमें ·८ इंच यानी एक जरीबकी दूरीपर चिन्ह

लगे होते हैं और प्रत्येक भाग १० दस बराबर भागोंमें बटा होता है। यह भाग १० कड़ीके बराबर और उनके बीचका चिन्ह ५ कड़ियोंके बराबर होता है। इस कंघीसे क्षेत्रफल इस प्रकार निकालते हैं कि जो लम्बाई परकारमें पैमानेके हिसाबसे आवे उसको $\frac{१}{५}$ से गुणा करनेसे क्षेत्रफल वर्ग जरीबोंमें प्राप्त होता है।

(ब) बीघेके क्षेत्रफलकी कंघी– शाहजहानी जरीबकी पैमाइशके नक़शे सदैव आध इञ्च फी जरीबके पैमानेपर होते हैं। इस कारण इसके डोरोंके छिद्र $\frac{१}{४}$ इञ्च यानी $\frac{१}{२}$ जरीबके अन्तरपर बने होते हैं और हाशियेके पैमानेपर एक एक इञ्च यानी दो जरीबपर चिन्ह होते हैं, जिससे कि क्षेत्रफल वर्ग जरीब या बीघेमें निकलता है। बीघेका भिन्न (बिसवा) नापनेके लिए एक इञ्चको पहिले चार भागोंमें, फिर प्रत्येक भागको पाँच बराबर भागोंमें विभाजित करते हैं। बड़ा यानी $\frac{१}{४}$ इञ्च वाला भाग पाँच बिसवेके बराबर होता है और छोटा यानी बड़ेका पांचवां भाग या $\frac{१}{२०}$ इञ्च एक बिसवेके बराबर होता है।

नोट—यह ध्यान रहे कि खेत जिसका क्षेत्रफल कंघीसे निकालना है यदि बहुत बड़ा या विचित्र आकारका हो तो सुगमताकेलिए उसको उचित भागोंमें बांट लेते हैं और फिर प्रत्येक भागका क्षेत्रफल निकालकर सबको जोड़नेसे कुल खेतका क्षेत्रफल निकल आता है। [देखो चित्र १०]
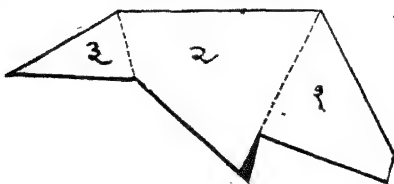
चित्र १०

५—पैमाइशकी कुछ आवश्यक बातें

(१) ज़मीनपर दो विन्दुओंके बीचमें सीधी लैन डालना– दोनों विन्दुओंपर झण्डियां गाड़कर एक झण्डीके पीछे स्वयम् खड़े होकर दूसरी झण्डीको देखते हैं और एक तीसरी झण्डी दूसरे आदमीको देकर दूसरी झण्डीकी ओर भेजते हैं। जिस आदमीके हाथमें झण्डी दी गई है उसका मुंह अपनी ओर करवाकर उसको अपने हाथसे इशारा करके ऐसे स्थानपर लाते हैं कि अपने पासकी झण्डी उस आदमीके हाथकी झण्डी और आगेवाली झण्डी तीनों एक सीधमें इस प्रकार हो जायं कि अपनी झण्डी आगेवाली दोनों झण्डियोंको निगाहमें छिपा ले। इस स्थितिमें जो लैन तीनों झण्डियोंपर होकर गुज़रेगी वह सीधी लैन होगी। पैमाइशमें जरीबसे नापते समय इस नियमपर काम करते हैं। जब दो स्थानोंके बीचमें जरीबकी लैन ले जाते हैं तो इस नियमके अनुसार पैमाइश करनेवाला पहिली झण्डीके पीछे खड़ा होकर अगले जरीब खींचनेवालेके हाथमें जरीबका एक दस्ता और कुल सूजे देकर आगेकी झण्डीकी ओर भेजता है और जरीब खींचनेवालेको अपनी और अगली झण्डीकी सीधमें लाता है। जब जरीब खींचनेवाला अगली झंडीकी सीधमें हो गया तो जरीबको एक हलका सा झटका देता है, जिससे उसमें कोई कड़ी उलझी हुई हो तो ठीक हो जाय। फिर अपने दस्तेके बराबर सूजा ज़मीनमें गाड़ देता है। जब और आगे नापनेकी आवश्यकता होती है तो गड़े हुए सूजेको वहीं गड़ा छोड़कर और बाक़ी सब सूजों और जरीबके दस्तेको हाथमें लिए आगेकी ओर बढ़ता है। पिछला आदमी जब गड़े सूजेके पास पहुंचता है तो अगले आदमीको सीधमें लाता है। वह पहिली प्रकारसे जरीबको हलका सा झटका देकर दूसरा सूजा गाड़ता है। इस प्रकार एक झंडीसे दूसरी झंडी तक सीधी लैन चली जाती है। पीछेवाला आदमी गड़े सूजोंको अपने साथमें लेता जाता है। इसीलिए

उन सूजोंकी संख्यासे जो पिछले आदमीके हाथमें होते हैं पूरी जरीबोंकी नाप मालूम हो जाती है। अन्तिम सूजेसे जितनी कड़ीकी दूरीपर अगली झंडी होती है यह अगला आदमी बतलाता है।

(२) कटान—कटान उन विन्दुओं या स्थानोंको कहते हैं जहांपर जरीबी लैन खेतकी किसी मेंड़ या स्थिर स्थानको काटे। बड़े क्षेत्रफलकी पैमाइशमें किश्तवारकी सुगमताके लिए हदबस्ती लैनोंपर कटानोंके चिन्ह लगाना आवश्यक होता है। जिस स्थानपर जरीब मेंड़को काटती है वहां थोड़ी सी ज़मीन खोद कर जरीबकी सीधमें लम्बा चिन्ह बना देते हैं।

(३)चांदा-पैमाइशमें चांदा उन स्थानोंको कहते हैं जहां किश्तवारकी सुगमताके लिए क्षेत्रको मुरब्बोंमें बांटनेकी सुगमताके लिये चिन्ह निश्चित कर लेते हैं। चांदा बनानेके लिए उस स्थानपर ज़मीनको एक वृत्तके आकारमें खोद देते हैं।

(४)—जरीबी लैनपर किन्हीं दो विन्दुओंकी बीचकी लैन सीधी आगे बढ़ाना

पहिले दोनों स्थानोंपर झंडी गाड़ो और पहिली झंडीके पीछे स्वयम् खड़े हो। एक आदमीको तीसरी झंडी देकर दूसरी झंडीके आगे भेजो और जो विधि ऊपर बता चुके हैं उससे तीनों झंडियां एक सीधमें लाओ। दूसरी और तीसरी झंडीके बीचकी लैन पहिली और दूसरी झंडीके बीचकी लैनकी सीधमें होगी।

(५)—जरीबके प्रयोगमें निम्न प्रकारकी अशुद्धियां प्रायः हो जाती हैं।

(क) जरीबी लैनका टेढ़ा होना—पैमाइश करनेवालेको चाहिये कि झंडीके पीछे खड़ा हो कर अगले आदमीको ध्यानसे देखता रहे कि वह एक-लैनमें जरीब ले जा रहा है।

(ख) जरीबका बहुत ढीला रखना या बहुत खींचना। जरीबको हलका सा झटका देकर साधारण खिंचावमें रखना चाहिये। ढीली रहनेसे छल्ले एक दूसरे पर चढ़ सकते हैं। बहुत ज़ोरसे खींचनेमें उनके मुंह खुल जानेका भय है। इन दोनों अवस्थाओंमें नापनेसे असली दूरीमें फ़रक पड़ जाता है।

(ग) सूजोंका ग़लत गिनना—यह उस हालतमें होता है जब पीछेवाले आदमीकी भूलसे या तो कोई सूजा खो जाता है या उसके हाथमें कोई सूजा कहींसे आ जाता है। इसलिए काम आरम्भ करते समय सब सूजे जरीब खींचनेवालेके हाथमें दे देने चाहियें और पीछेवाले आदमीको चाहिये कि सब सूजे ज्यों ज्यों वह उनके पास पहुंचे लेता जावे। जब पैमाइश करते करते सब सूजे पीछेवाले आदमीके हाथमें आजावें तो फिर सब एक बारगी जरीब खींचनेवालेको दे देने चाहियें। थोड़े थोड़े सूजे जरीब खींचनेवालेको कभी न देने चाहियें।

(घ) जरीब पढ़नेमें फूलों (दहाईके विरंजी चिन्ह) का गलत गिनना—जरीब पढ़ते समय सदैव ध्यानसे देख लेना चाहिये कि ५० कड़ीका फूल हमारे स्थानसे आगे है या पीछे।

(च) ऊंची नीची ज़मीनमें समतल (चौरस) दूरीकी जगह ऊंचाई नीचाईकी लम्बाई नापना—इसलिए जब ऐसा मौक़ा आये तो जरीबको किसी एक सूजेकी सतहमें करके दूसरे दस्तेसे ज़मीनपर कंकड़ी गिराना चाहिये। जहां वह कंकड़ी गिरे सूजा गाड़ना चाहिये। अगर ऊंचाई नीचाई इतनी अधिक है कि पूरी जरीबका एक सतहमें लाना कठिन है तो उसके छोटे छोटे टुकड़े करके पैमाइश करना चाहिये। मसलन क और ख के बीच एक गड्ढेकी पैमाइश करना है। आगेका जरीब कश अपनी जरीब गड्ढेके किनारे या उससे कुछ कड़ियां आगे ग विंदुतक ले जाय, जहां उसके जरीबका एक सिरा जब कि क बिंदुकी सतहमें किया जाता है तो इससे तीन या चार फुट ऊंचा रहता है। [चित्र ११]

अगर यह ५० कड़ी हो तो उसको चाहिये

कि पचासवीं कड़ीपर जरीब सीधी खींचकर एक लकड़ी खड़ी गाड़ दे और उस जगह ज़मीनपर एक निशान कर दे, लेकिन चूंकि लकड़ी तिरछी हो
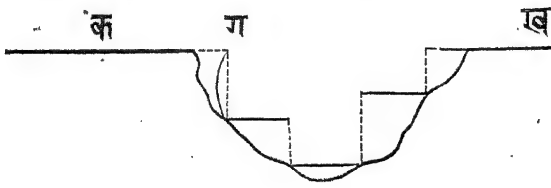
चित्र ११

जानेका डर है इसलिए अच्छी रीति यह है कि पचासवीं कड़ीपरसे एक कंकड़ी नीचेकी ओर गिरावे और उस जगह जहां कंकड़ी गिरे कोई चिन्ह बनादे। पिछला जरीब खींचनेवाला आगे बढ़ कर पचासवीं कड़ीको पकड़कर उसको ज़मीनपर जहां कंकड़ी गिरी थी लावे। अगला जरीब खींचनेवाला नीचे उतरे और जब तीन या चार फुट नीचे उतर जावे तो जरीबको सीधा करके फिर एक कंकड़ नीचे डाले और उसी तरहसे चिन्ह बनाये और यही क्रिया करता जाये। जब पूरी जरीब हो जाय तब सूजा गाड़ दे। ढालके चढ़ावके भागको पैमाइश करनेमें पिछला जरीब-कश अपना सिरा उठाए रहे और कंकड़ी गिराता जाय और अगला अपने सिरेको ज़मीनपर रखता जाय। इस प्रकारसे दोनों झंडियोंके बीचकी दूरी ऐसे भागोंमें बँट जायगी जो समानान्तर और समतल हैं और इन सबका योग क, ख के बीचकी दूरी है।

(छ) सूजोंका ग़लत स्थानपर गाड़ना—देखो विज्ञान भाग ८, अङ्क ४, पृष्ठ १६४ पैरा ३।

(ज) ग़लत जरीब काममें लाना—जरीब को काममें लानेसे पहले पैमानेसे नापकर ठीक कर लेना चाहिये। जरीब ठीक रखनेके लिए यह अच्छा होगा कि पैमाइश करनेवाला किसी चौरस स्थानपर दो खूंटे ६६ फुट (या जितनी कि जरीबकी लम्बाई होनी चाहिये) की दूरीपर फीतेकी मददसे गाड़े और सदैव काम करनेसे पहले अपनी जरीबकी शुद्धताको जांच इस पैमाने-से कर लिया करे। अगर फ़ीता न मिले तो उसके जांच करने और ठीक करनेकी सबसे अच्छी विधि यह है कि जरीबको चौरस जमीनपर ठीक तौरसे फैला दिया जाय और दो खूंटियां जरीबके सिरोंपर लगा दी जायं। अब उनमेंसे एक खूंटीको बिलकुल गाड़ कर धरातलसे मिला देना चाहिये और उसके ऊपर एक सूराख सूजेसे बनाकर जरीबका दस्ता बिलकुल उससे मिला कर रखना चाहिये। उसके पीछे दो दस दस कड़ीके लट्ठे एक को सूराखसे मिलाकर जरीबके बराबर लिटावे और दूसरेको पहलेके अगले सिरे-से सटा कर उसी तरहसे जरीबके बराबर लिटाये। फिर पहले लट्ठे को सावधानीसे उठाकर दूसरेके आगे उसी तरह रखे और उसके पीछे दूसरेको पहलेके आगे रखे। यह क्रिया करते हुये जब दस लट्ठे पूरे हो जायं तो दसवेंके सिरेपर दूसरी खूंटी गाड़ कर ज़मीनकी सतहसे मिला दे और इस खूंटे पर जहां दसवें लट्ठेका सिरा पहुंचता हो वहां पहलेकी भांति सूजेसे एक सूराख कर दे। इन दोनों खूंटियोंके छिद्रोंकी दूरी ठीक १ जरीब होगी और जरीबकी जांच करनेके लिये काफी होगी। अगर जांच करनेमें जरीब गलत निकले तो आवश्यकताके अनुसार जिन फूलोंके बीच गलती आती है उसमें और छल्ले बढ़ाके या घटाके उसकी लम्बाई ठीक की जाती है।

६—राइटएङ्गिल या चरखीकी सहायता बिना लम्ब डालना

पहिले जरीबी रेखापर तीस कड़ीकी दूरीपर दो झंडियां लगाकर उनके बीचमें अर्थात् पन्द्रहवीं कड़ीपर एक सूजा लगा देना चाहिये। तब एक झंडीपर जरीबका एक सिरा और दूसरी झंडी पर साठ कड़ी वाला फूल रख कर तीस कड़ी वाला फूल पकड़ कर खींच लेना चाहिये और साधा-रण तनावपर जरीबको जहां यह फूल पड़े सूजा लगा देना चाहिए। इस सूजे और पन्द्रहवीं

कड़ीवाले सूजेके बीच जो रेखा बनेगी वह जरीबी रेखापर लम्ब होगी।

७—विना राइटएङ्गल या चरखी ज़मीनपर समकोण बनाना

पहले ज़मीनपर ३० कड़ीकी एक सरल रेखा लेकर उसके दोनों सिरोंपर सूजे लगा देने चाहियें। उसके पीछे एक सूजेमें जरीबका एक दस्ता और दूसरेमें ६० कड़ा वाला फूल लगा कर गोल फूल यानी ५० कड़ीवाला चिन्ह पकड़ कर जरीबको खींचना चाहिये। जरीब खींचनेसे जिस विन्दु पर ५० कड़ीवाला फूल पड़े वहां भी एक सूजा लगा देनेसे एक समकोण त्रिभुज बन जायेगा जिसकी भुजाएँ ३०, ४०, ५० कड़ी होंगी। ३० और ४० कड़ी वाली भुजाओंके बीचका कोण समकोण होगा।

८—राइटएङ्गल यंत्रके ठीक होनेकी जांच करना

(१) उपरोक्त त्रिभुजमें उस सूजेको छोड़ कर जहां समकोण बना है बाकी दोनों सूजोंपर झंडियां गाड़ दो और समकोण परके सूजे पर राइट-एङ्गल लेकर खड़े हो और किसी झंडीको जैसा बताया जा चुका है यंत्र की झिरीसे देखो। अब अगर राइटएङ्गल ठीक है तो जिस झंडीका अक्स शीशेमें दिखाई पड़ेगा वह बिल्कुल उस झंडीके नीचे होगी जो झिरीसे दिखाई पड़ती है, नहीं तो इधर उधर हटी होगी।

(२) मामूली पैमाइशके सिलसिलेमें जब कोई लम्ब उठाया जाता है तो अगर यंत्र ठीक है तो पीछे घूमकर देखनेसे भी पोछे की झंडी लम्बके स्थानके लट्टूके बिल्कुल ऊपर नज़र आवेगी नहीं तो फरक होगा।

९—एकड़ और बीघेकी निष्पत्ति (निसबत)

एक एकड़में १० मुरब्बा जरीबोंका होना बतलाया जा चुका है। अगर नकशा १६ इञ्च फी मील-के पैमानेपर बना है तो इस पर १ इञ्चका फासला ज़मीनपर ५ गंटरी जरीबके बराबर होगा और १ वर्ग इञ्च यानी ५ जरीब × ५ जरीब बराबर होगा २५ वर्ग जरीब या २॥ एकड़के। बीघा मुकर्ररा ३०२५ वर्ग गजका बतलाया गया है यानी ५५ गज़ × ५५ गज़ = एक वर्ग जरीब शाहजहानी। अब चूंकि शाहजहानी जरीब ५५ गज़की होती है और गंटरी २२ गज़की। इसलिए १ शाहजहानी जरीब २॥ गंटरी जरीबके बराबर है और १६ इञ्च फी मीलके पैमानेके नकशे पर जिसमें १ इञ्च ५ गंटरी जरीब या दो शाहजहानी जरीबके बराबर होता है १ वर्ग इञ्च जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है ढाई एकड़ या चार बीघेके बराबर है। इसलिए ५ एकड़ ८ बीघे मुकर्रराके बराबर है। जब एकड़के बीघे बनाना हो तो उस अङ्कको $\frac{8}{5}$ से गुणा करना चाहिये और जब बीघेके एकड़ बनाना हो तो उस अङ्कको $\frac{1}{2}$ से भाग देकर भजन फलको सवाया करनेसे अर्थात् $\frac{5}{8}$ से गुणा करनेसे एकड़ बनाते हैं।

नवीन वर्षकी बधाई और अपनी चर्चा

[ले०—श्री गङ्गाप्रसाद बाजपेयी, एम. ए., बी एस-सी., एल—एल. बी.]

नई कोपलें, नये पल्लव, और नये फूल चारों ओरसे लहलहाने लगे। शीतका राज्य चला गया। वसंतने वियोगिनी और संयोगिनी दोनोंको ही होली मचादी। यदि एक हृदय होलीसा जलने लगा तो दूसरेको ऐसी होली खिलवायी कि नवीन बधुएं नई होली होकर कलिकाओंकी तरह पराग वर्षा करने लगीं। मलिंद वृन्द भी उड़ उड़कर अपना आनन्द झंकार मचाने लगे। अपने कलकंठसे प्रेम सुधा बहानेकेलिए कोकिल रसाल-मंजरीका आश्रय लेनेको चल पड़ीं। सालभर गुलाबके मूलपर अटकनेवाले मधुकरकी आशा पूर्ण हुई। भीनी भीनी सुगंध फैलाकर उसने अपनी प्यारी रंगीली पंखुड़ियोंका खोल ही तो दिया। "धन धान्य भरा बसुंधरा" ने पीत वसन धारण कर लिया। शुभ्र आकाशने अपने नील

पटपर रुपहली टिकलियां लगालीं। बीचमें अरुण-लालिमाके लिए पूर्णेन्दु सुनहले चकत्ताका काम करने लगा। अधरमें स्थित इस मनोहारी छत्र ने भारत माताके प्राकृतिक गौरवको अतुलनीय बना दिया। कौन है ऐसा देश जो भारतवर्षके आकाश-की समता कर सके? महासागर भी चंद्रमाके इस रूपपर मोहित हो उभड़ उठा। प्रेमकी हिलोरों-ने उसके हृदयपर अपनी लीक छोड़ दी। ललक ललक कर इस नव्य वेश-भूषावाली जगज्जननीके पाद पद्मोंको धोकर उसने पृथ्वीकी उपचारिणी चंद्रकलाका प्रेम-वर मांगा। प्रकृतिने 'जाह्नवीका हार धारण करनेवाली' इस राज्य लक्ष्मीको राज सिंहासन दिया। तितलियों ने अपने पर फैला फैलाकर नाच दिखाया। मधूक और पलाश ने धुरहरी मचादी।

प्रकृतिकी इस रंगरेलीमें आज भारतकी जनता भी सम्मिलित है। कल रातको होली जलाकर लोगोंने प्राचीन वर्षकी अंतिम क्रिया कर डाली। आज नवीन वर्षका राज्योत्सव मनानेकेलिए सभी तैयार खड़े हैं। द्रोह और मत्सरता एक क्षणके लिए बिलीन सी हो गयी हैं। एक भारतीय दूसरे भारतीयको छातीसे लगा भाई कहकर पुकार रहा है।

आज इस शुभ घड़ीकी बाट न जाने कितने लोग देख रहे होंगे। बारि बधुओंकी विलासतामें आज भारतका बहुत कुछ द्रव्य नष्ट हो जायगा। चारण और भाट गोकुलकी गलियों को अबीर वर्षा-का वर्णन करके बड़ा बड़ा इनाम पायेंगे। क्या हमारे पाठकोंके हाथसे प्रकृतिकी विरदावलीका मनोहर गान करनेवाला 'विज्ञान' ही हताश होगा? कोई समय था जब भारतवर्षकी होलीकेलिए कुसुंभका रंग बनता था। ग्राम ग्राम और नगर नगरमें इस दिनकेलिए महीनोंसे तैयारियां हुआ करती थीं। आज प्रकृति भांडारके वे रंग कहां हैं? अब बाज़ारोंसे विदेशो रंग ख़रीद कर हमारी होली होगी? प्रकृतिने भारतवर्षको संसारका नंदनबन बना रखा है। उसने भारतकी रचनामें अपना कोष ख़ाली कर दिया। परन्तु इस राज्य लक्ष्मीके भोग करनेवाले भारतवासियोंकी क्या दशा है? हमने इस रत्न भंडारका मनमाना अपव्यय किया। क्या होता है, क्या होना चाहिये इस बातका हमने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। जबतक खानेको मिलता रहा शृङ्गारके स्वर्ण मंदिर-में विलासका रास खेलते रहे। किंतु जब पूर्वके सूर्य्यने लज्जावश पश्चिममें अपना मुख छिपाया, पूर्वकी लालिमा पश्चिम दिशाको चली गयी; भारतवासियोंके मुखकी ललाई भी पच्छिमको ही चल पड़ी। विकराल कालने, कृतांत प्लेगने, दुर्भिक्ष राक्षसने, अविद्या और मूर्खताकी अंध रात्रिमें उसी विलासिताके हेम मंदिरमें चिता बनाकर पैतृक संपत्तिकी होली लगादी।

आज जो भारतीय क्षीण, हीन और मलीन दिखायी पड़ता है यह सब उसके पूर्व संचित पापोंका फल ही है। प्रकृतिने तो उसे अपने लाड़ले पुत्रकी पदवी दी, पर निकम्मे पुत्रने मां-की ओर दृष्टिपात भी न किया। उसके मुख-सरोजको विकसाना और उसके हार्दिक भावों-का पता लगाना तो दूर रहा, उसने मांकी दुर्दशा करनेमें एक भी त्रुटि बाक़ी न छोड़ी। नव विवाहिता बधूके साथ शृङ्गारकी पिचकारी चलती रही। अबीर, गुलाल और खेल खिलोनों-की कमी पड़ी तो झट मांके आभूषण उतार कर ज्ञान संपन्न बुद्धिमान जौहरियोंके हाथ विदेशी बाज़ारमें कौड़ियोंको बेच डाले।

× × × ×

हमारे पाठक शायद यह कहेंगे कि यह तो सब पुरानी बातें हैं। इस गाथाको खोलनेसे क्या फल। हमारी आंख तो अब खुल गयी हैं। परंतु खेदके साथ कहना पड़ता है कि अभी हमारी पलकें कुछ लौट तो अवश्य गयी हैं, पर आंख नहीं खुली हैं या यों कहिये कि आंख तो खुल गयी हैं पर हियेकी नहीं खुली हैं।

हममें से बहुत लोग अब रुपयेका बहुत मान करने लगे हैं। पर रुपयेकी इस मान वृद्धिमें भी कृपण भारत इतना अपव्यय कर रहा है, जिसका कुछ ठिकाना नहीं।

भारतवर्षसे न जाने कितना तिलहन लद लद कर जर्मनी और आस्ट्रिया जाया करता है। केवल १९११ में २८ करोड़ एक लाख रुपयेका तिलहन बाहर गया और एक करोड़ पांच लाख रुपयेका तिलहन भारतवर्षमें रहा। विदेशमें जाकर इसका तेल निकाला जाता है, इन तेलोंको वैज्ञानिक ढङ्ग से साफ़ करके वे लोग फिर भारत भेज देते हैं जो यहां आकर अपने पुराने मूल्यसे १०० गुने तक बिकते हैं। कुछ तेल जो बाहरसे भारतीय तिलहनोंके बनके आते हैं, घीमें मिला दिये जाते हैं और कुछ भिन्न भिन्न नाम धारण करके औषधिके काममें आते हैं। अब रही खली तो सच पूछिये वे तिलहनका व्यापार इसी खलीकेलिए करते हैं। यदि खली विषैली न हुई तो वे उसे जानवरोंको खिला देते हैं और इनके गोबरसे अपने खेतोंमें पांस देते हैं, और यदि वह विषैली हुई तो सीधी खेतमें पहुंचा देते हैं। पौधोंके होनेकेलिए ओषजन, नत्रजन, उज्जन, कर्बन, शिलाकण (silica), गंधक, चूना (lime), फ़ास्फ़ोरस, क्लोरीन, सोडियम, लोहा, पोटाशियम और मैग्नीशिया (magnesia) नितांत आवश्यक हैं। इनमेंसे पहले चार—ओषजन, नत्रजन, उज्जन और कर्बन—तो वायुसे मिल जाते हैं। पर बाक़ी नौ पदार्थ पृथ्वीसे ही मिलते हैं। बार बार फ़सल होनेसे इन नौ पदार्थोंका ह्रास होता रहता है। इसीलिए पांसकी आवश्यकता पड़ती है। खलीमें यह सभी पदार्थ होते हैं। दोआबकी सुंदर भूमिमें प्रतिवर्ष चूना, फास्फ़ोरस और मैग्नीशिया कम होता जाता है। हड्डियोंमें फ़ास्फ़ोरस अधिक रहता है पर उनका भी हम उचित प्रयोग नहीं करते। सबकी सब विदेश भेज देते हैं, जहांसे हाथी दांतके (नाममात्रके ही) खिलौने इन हड्डियोंके बन बनकर फिर यहीं चले आते हैं। इस प्रकार धन जोड़नेके कारण भूमिकी उर्वर शक्तिका नाश होता है, भोजनोंमें मिलावट होती है और वास्तवमें जितना कमाते हैं उससे अधिक द्रव्य हम ही व्यय कर देते हैं।

यदि बहुत कृपणता करनी हुई तो हम लोग गोबरके कंडे बना बनाकर जला डालते हैं और इस तरह भूमिके उपजाऊपनका नित्य होम किया करते हैं। न मालूम कितना मलमूत्र नालियों और मोरियों द्वारा नदियोंमें बहा दिया जाता है। यदि इसका उचित उपयोग किया जाय तो नदीका पानी भी स्वच्छ रहे और हमें खानेकेलिए अन्न भी अधिक मिले। इसके अतिरिक्त हमें संसारका कुछ हाल ही नहीं मालूम है। यूरोपमें तो भयंकर युद्ध हो रहा है, पर रुई और तिलहन बोते ही चले जाते हैं। शकर बाहरसे नहीं आती, पर गन्नेकी काश्त कम ही करते हैं। यद्यपि संपत्ति शास्त्रके नियम अपना काम करते हैं, अंतमें हमें व्ययके हिसाबसे उत्पत्ति करनी पड़ती है, पर "समय चूकि पुनि का पछिताने"। जापानने अवसर पाकर भारतका वाणिज्य अपने हाथमें करलिया, पर भारत युद्धके समयमें भी ऊंघता हो रहा।

और उदाहरण लीजिये। रुई सबसे अधिक भारतमें पैदा होती है, पर रुईके कपड़े बनकर भी सबसे अधिक भारतमें ही आते हैं। लकड़ीके जङ्गलके जङ्गल यहां खड़े हुए हैं, बहुत सा लकड़ीका कोयला बनता और काममें आता है। पर यह कोयला इस रीतिसे बनाया जाता है कि कोयला ही हाथमें रह जाता है, हीरे उड़ जाते हैं। इसी लकड़ीसे वैज्ञानिक कोयला बनाना तो खिलौना समझता है पर इससे अनेक जलनेवाली गैसें, तारकोल, सिरका, एक प्रकारकी शराब और अन्य उपयोगी द्रव जिनसे ग्लिसरीन और अनेक प्रकारकी पालिशें बनती हैं, बनाता है। तारकोल स्वयं ही एक रत्न है। कहिये हम लोग कैसी उन्नति कर रहे हैं?

इसके विपरीत तनिक पश्चिमकी ओर भी ध्यान दीजिये। युद्धके कारण नक़ली रंग नहीं

बनते। इससे कपड़ोंका रंगना भी बड़ा कठिन हो गया है। अमेरिकामें A. W. Braham नामी एक वनस्पति विशारदने बड़े परिश्रमसे कपासके पौधोंका पता लगाया तो उसे मालूम हुआ कि भारतवर्षमें एक प्रकारकी भूरी कपास, पेरूमें हल्के लाल रंगकी कपास, मिश्र, पेरू और हवाईमें बादामी कपास और चीनमें पीली कपास होती है। इसके अतिरिक्त यह भी पता लगा कि मेक्सिकोमें एक काही कपास उपजायी गयी है और साउथ कैरोलिनामें हरी कपास मिलती है। पहले लोगोंका अनुमान था कि यह कपास अपने अपने देशोंमें ही उगायी जा सकती है, पर परीक्षाओं द्वारा यह अनुमान भ्रमात्मक निकला। अब तो ब्राहम साहब कहते हैं कि इन कपासोंसे भिन्न भिन्न रङ्गकी प्राकृतिक कपासके पौधे पैदा कर देंगे। इस तरह रङ्गोंका खटका मिट जायगा और अभी तक घटिया कपासके तंतुओंके रङ्गनेमें जो बुराई आती थी वह भी मिट जायगी।

पश्चिममें लोग किसी भी वस्तुको व्यर्थ नहीं समझते। घास और चीथड़ोंसे कागज़ बनायेंगे, हड्डियोंसे जिलेटीन तैयार करलेंगे, कागज़के मकान और पत्थर बना डालेंगे, राख और घूरेसे एस्बस्टास निकालेंगे, कोयलेसे हीरे बनायंगे, बस कोई भी वस्तु हाथमें पड़ी तो उसका कुछ न कुछ उपयोग कर ही डालेंगे। उनके खानेका शास्त्र अलग, पीनेका अलग, चलनेका अलग और बैठनेका अलग है। जानवर, पहाड़, वृक्ष, फल, फूल, नदी तड़ाग जो कुछ उनके सामने पड़ा उसीको अपना गुरू बना डाला। दत्तात्रेयकी तरह उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है। प्रकृति और प्राकृतिक उनके दो मूल मंत्र हैं। वह यदि कोई सृष्टि भी करेंगे तो प्रकृतिके आधारपर। उनका बल, उनका साहस, उनकी द्रव्य, उनका ज्ञान और उनका मान सभी एक ऐसी दृढ नींव पर रक्खा है जो अटल है। वह नींव विज्ञान है। वृक्षोंके बढ़नेके लिए जैसे जड़की आवश्यकता है वैसे ही मनुष्यकी ज्ञान वृद्धिके लिए विज्ञानकी है। जैसे जड़ों द्वारा खींचे हुए पौधोंके जीवन रस उनकी नस नसमें बहा करते हैं वैसे ही प्रकृतिके भांडारसे विज्ञान द्वारा निकले हुए सत्यरस पाश्चात्यकी नस नसमें भर जाता है। विज्ञान उसका आहार, विज्ञान उसका प्रकाश और विज्ञान ही उसका जल तथा वायु है। यही कारण है कि वे पाश्चात्य जिन्होंने विज्ञानका कभी सम्यक् अध्ययन नहीं किया है बहुत से विज्ञान शिक्षा लब्ध भारतवासियोंसे व्यवहारिक विज्ञानमें बढ़े चढ़े हैं। जिस प्रकार अनपढ़ा बालक भी अपने देशकी भाषा सीखकर व्यवहारिक पंडित बन जाता है वैसे ही अनपढ़ा पाश्चात्य भी एक प्रकारका व्यवहारिक वैज्ञानिक बन जाता है।

इस प्रकारकी अनगिनत कहानियां पाठकोंको सुनायी जा सकती हैं। इनसे स्पष्ट है कि हमारी मोह निशा अभी टूटी नहीं है। भारतवर्षकी उन्नति स्थायी और स्थिर रखनेके लिए हमें उसकी नींवको सुदृढ़ बनाना होगा। गांव, गांवमें जाकर हमें अपने दीन भाइयोंको रहन सहनका ढङ्ग सिखाना पड़ेगा; जिससे वह क्षयी, मैलेरिया, प्लेग और विशूचिका इत्यादि भीषण रोगोंसे बच सकें। इसके अनन्तर हमें उन्हें व्यवहार कुशल और कलादक्ष बनाना पड़ेगा, उन्हें और उनके बच्चोंको शिक्षा देनी होगी। इस प्रकार उनके उचित भोजनका प्रबन्ध करनेके बाद ही हमें उनसे और उन्नतिकी आशा करनी चाहिये। बिना विज्ञानकी शिक्षाके केवल उत्साह काम न आयेगा। बिना पेटमें अन्न पड़े बरसोंतक काल्पनिक उन्नतिके विचारोंसे राष्ट्रकी रक्षा न होगी। जब कभी हम भारतकी महत्ताका वर्णन करने लगते हैं तो चट कह बैठते हैं कि हम "३३ करोड़" भाई क्या नहीं कर सकते? किन्तु क्या सचमुच हम इन ३३ करोड़ भाइयोंसे नाता जोड़ते हैं? क्या हम अपने दीन और दुःखित भाइयोंको भाई कह कर छातीसे लगानेको तैयार हैं? क्या हम जात पांतका भेद भाव छोड़नेको प्रस्तुत हैं? यदि ऐसा है तो अपने इन दीन किसानोंको, इन

भाइयोंके अंध हृदयमें शिक्षाका प्रकाश क्यों नहीं डालते ? उनसे गरजकर क्यों नहीं कहते कि अपने भाग्यको ठोकना बन्द करो। विज्ञान तुम्हें भाग्यका स्वामी बना देगा, अपने बल पर खड़े तो हो ?

विज्ञान परिषद्ने इसी उद्देश्यसे जन्म लिया है। जब तक ग्राम ग्राममें व्यवहारिक विज्ञानकी शिक्षा न होगी तब तक उसकी उद्देश्य पूर्ति कदापि नहीं हो सकती। देशके नवयुवक यदि अपने उत्साहसे विज्ञान शिक्षा प्राप्त कर उसका प्रचार इन अन पढ़ ग्रामीणोंमें करनेमें सफल मनोरथ हुए तो अवश्य ही उनका जीवन कृत कार्य्य होगा। 'विज्ञान' भी देशके इन उत्साही महानुभावोंको विज्ञान शिक्षा देनेके लिए निकला है। विज्ञान और वैज्ञानिकोंकी कीर्तिकेतुका फहराना ही उसका मुख्य उद्देश्य है।

इसी उद्देश्यसे निकल कर विज्ञानने अपने जीवनके चार वर्ष पूरे कर दिये। आज होलीके दिन इसे भी होली खेलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। किन्तु 'विज्ञान' वैज्ञानिकोंकी विजय वैजयंती अभी कितने घरोंमें फहराता है। यह सत्य है कि विज्ञानका विषय कुछ रूखा सा जान पड़ता है। जबतक उसमें अपना पूरा चित्त न लगायेंगे आप उससे लाभ नहीं उठा सकते। पर 'विज्ञान' यदि आपके कानोंमें अपनी कर्कश ध्वनिको कुछ काल तक बराबर डालता रहेगा, तो शीघ्र ही आप उसमें एक अपूर्व अनहदनादका स्वाद बोध करने लगेंगे। नववधूकी तरह विज्ञान जब अपने हाव भावोंसे आपके हृदयमें स्थान कर लेगा तो आप उसकी सुन्दरताका पूरा अनुमान कर सकेंगे। अर्जुनको इन्द्रसे अलौकिक आयुध मिलनेके लिए बारह वर्ष तपस्या करनी पड़ी। आप क्या एक दो वर्ष इस अलौकिक (विज्ञान) सरस्वतीको वरनेके लिए तपस्या न करेंगे ?

प्रिय पाठको, वैज्ञानिकोंका श्रृङ्गार रस बड़ा ही मनोहारी है, उनका हास्य रस विचित्र है। विज्ञानके कुमकुमे आपके कुमकुमोंसे कहीं अच्छे हैं, उसका अबीर आपके अबीरसे निरालाहै, उसकी होली बड़ी ही लुभावनी है। जो कहते हैं कि विज्ञान रूखा है, यह उनका केवल भ्रम है। वैज्ञानिकोंकी धुरहरी सूर्य्य भगवान नित्य प्रातः सायं कर जाते हैं। उसकी होली कभी अपने आप निकलनेवाले मिट्टीके तेलके चश्मेंको जलते देखनेसे मालूम होगी। ध्रुव देशोंमें जिस समय क्षण क्षणमें रङ्ग बदलनेवाला घूमता हुआ विद्युत चाप अपना नृत्य दिखाता है तो वैज्ञानिकोंके टेलीफ़ोन, टेलीग्राफ़ और मोटर तक चुप रह जाते हैं, जीव धारियोंकी बातका क्या कहना है ?

यदि विज्ञान अधिक नीरस रहा तो इसका दोष हमारे पाठकोंपर भी उतना ही है जितना हमपर। यदि हमारे प्रत्येक ग्राहक केवल एक ही एक नया ग्राहक बनानेकी कृपा करेंगे तो विज्ञानका रूप कहीं अच्छा हो जायगा। अब तक विज्ञानके लेख कैसे हुए, इसका अनुमान पाठकगण स्वयं कर लेंगे। जहां तक बन पड़ा वहां तक सब प्रकारके लेख दिये गये हैं। हमारे बहुत से पाठक सम्भवतः सब लेखोंको न समझ सके होंगे, पर मेरा उनसे अनुरोध है कि इस बातपर असंतुष्ट न हों। यदि वह विज्ञानके सब अङ्क इकट्ठा रखनेकी कृपा करते रहेंगे तो थोड़े ही समय बाद उन्हें सब लेख समझमें आने लगेंगे।

सम्पादकको रुचि वैचित्र्यका बड़ा ध्यान रखना पड़ता है, इसीलिए कुछ अधिक गंभीर लेख भी छापने ही पड़े। अन्य अनेक त्रुटियां भी इस साल होती ही रहीं, परन्तु अनुभव द्वारा ही मनुष्य सीखता है। इसलिए आशा है कि हमारे पाठक हमें इन त्रुटियोंकेलिए क्षमा करेंगे।

मधुमासके सुंदर महीनेमें विज्ञान फिर अपना मधुकोष खोलेगा। इस वर्षका शीत तो विज्ञानने किसी प्रकारसे सहन कर लिया, अब आशा है प्रकृतिका अनुचर यह विज्ञान उसके समान ही नई नई कलियां खिलायेगा। उसके बासंतिक उद्यानमें कोकिलोंका उन्मत्त राग सुनायी देगा।

उसके गुल्शनमें सदा बहार फूलेगी। पाठको! यदि आप अपना कर्तव्य पूरा करेंगे, यदि आप समुचित उपादान, मिट्टी, पानी इत्यादि इकट्ठा कर देंगे तो "विज्ञान" के माली एक ऐसे उद्यानकी रचना कर सकेंगे, जहां आप बसंतका मधुर आलाप हेमंतमें भी सुन सकेंगे। सच कहता हूं कि विज्ञानके उद्यानके विषयमें कवि यह कहनेको बाध्य होंगे कि "जहँ बसंत ऋतु रही लुभाई"। उस उद्यानके स्वामी विश्वजनककी तनया 'विद्या' जानकी के स्वयंबरमें आशा है "देश देशके भूपति" सम्मिलित होनेकी कृपा करेंगे। उन्हें इस बातपर असंतुष्ट न होना चाहिए कि वह स्वयं इस सुंदरीको न पासकें। यदि उनमेंसे एक भी राम डाॅक्टर बोसके समान इस सुंदरीके बरनेमें समर्थ होगा तो भारतका इतिहास फिरसे एक नया ही इतिहास हो जायेगा। पर स्वयंबर तब तक नहीं हो सकता जब तक मखशालामें समुचित बीरोंकी समुचित संख्या एकत्रित न हो जाय। यह संख्या कमसे कम १ हज़ार है।

आज भारत न जाने कितना व्यय करेगा। यदि वह एक सहस्रांश भी वैज्ञानिक शिक्षामें व्यय करता तो भारतकी बहुत कुछ काया पलट हो जाती।

प्यारे पाठको, आपके नव वर्षकी बधाईकेलिए 'विज्ञान' अपना प्रेमोपहार भेंट करता है! आशा है आप भी उसके गलेमें प्रेमका हार डालेंगे, पर स्मरण रखिये कि उस हारमें यदि एक लड़ी आपकी हो तो दूसरी विज्ञानके नये ग्राहक आपके मित्रकी।

सरल त्रिकोणमिति

[ले०—प्रो० मनोहरलाल भार्गव, एम. ए.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

पिछले लेखमें हमने कई उपयोगी गुर निकाले थे और उनका कुछ उपयोग भी बतलाया था। यहांपर हम उन गुरोंको एकत्र दिये देते हैं और तदनन्तर उनकी सहायतासे अन्य सम्बंध निकालेंगे।

ज्या (क + ख)

$$= \text{ज्या क कोज्या ख} + \text{कोज्या क ज्या ख} \quad (१)$$

कोज्या (क + ख) ...

$$= \text{कोज्या क कोज्या ख} - \text{ज्या क ज्या ख} \quad (२)$$

ज्या (क − ख)

$$= \text{ज्या क कोज्या ख} - \text{कोज्या क ज्या ख} \quad (३)$$

कोज्या (क − ख)

$$= \text{कोज्या क कोज्या ख} + \text{ज्या क ज्या ख} \quad (४)$$

$$\text{ज्या २ क} = \text{२ ज्या क कोज्या क} \quad (५)$$

$$\text{कोज्या २क} = \text{कोज्या}^{२}\text{ क} - \text{ज्या}^{२}\text{ क} \quad (६)$$

$$\text{स्प क} = \frac{\text{ज्या २ क}}{\text{१} + \text{कोज्या २ क}} \quad (७)$$

$$\text{कोस्प क} = \frac{\text{ज्या २ क}}{\text{१} - \text{कोज्या २ क}} \quad (८)$$

$$\text{ज्या च} + \text{ज्या छ} = \text{२ ज्या}\frac{\text{च}+\text{छ}}{२}\text{ कोज्या}\frac{\text{च}-\text{छ}}{२} \quad (९)$$

$$\text{ज्या च} - \text{ज्या छ} = \text{२ कोज्या}\frac{\text{च}+\text{छ}}{२}\text{ ज्या}\frac{\text{च}-\text{छ}}{२} \quad (१०)$$

$$\text{कोज्या च} + \text{कोज्या छ} = \text{२ कोज्या}\frac{\text{च}+\text{छ}}{२}\text{ कोज्या}\frac{\text{च}-\text{छ}}{२} \quad (११)$$

$$\text{कोज्या छ} - \text{कोज्या च} = \text{२ ज्या}\frac{\text{च}+\text{छ}}{२}\text{ ज्या}\frac{\text{च}-\text{छ}}{२} \quad (१२)$$

२७—दो कोणोंके योग या अन्तरका स्प निकालो।

$$\text{स्प (क + ख)} = \frac{\text{ज्या (क + ख)}}{\text{कोज्या (क + ख)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या क कोज्या ख} + \text{कोज्या क ज्या ख}}{\text{कोज्या क कोज्या ख} - \text{ज्या क ज्या ख}}$$

[इसके हर तथा अंशको कोज्या क कोज्या ख से भाग देने से]

$$= \frac{\frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}} + \frac{\text{ज्या ख}}{\text{कोज्या ख}}}{1 - \frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}} \cdot \frac{\text{ज्या ख}}{\text{कोज्या ख}}}$$

$$= \frac{\text{स्प क} + \text{स्प ख}}{1 - \text{स्प क स्प ख}} \qquad (१३)$$

इसी प्रकार

$$\text{स्प (क - ख)} = \frac{\text{स्प क} - \text{स्प ख}}{1 + \text{स्प क} \cdot \text{स्प ख}} \qquad (१४)$$

(१३) वें गुरमें यदि क = ख तो

$$\text{स्प २क} = \frac{२ \text{ स्प क}}{१ + \text{स्प}^2\text{क}} \qquad (१५)$$

इसी प्रकार नीचेके सम्बंध भी सिद्ध किये जा सकते हैं, अभ्यासके लिए, सिद्ध कर लीजियेः—

$$\text{कोस्प (क + ख)} = \frac{\text{कोस्प क कोस्प ख} - १}{\text{कोस्प क} + \text{कोस्प ख}} \qquad (१६)$$

$$\text{कोस्प (क - ख)} = \frac{\text{कोस्प क कोस्प ख} + १}{\text{कोस्प ख} - \text{कोस्प क}} \qquad (१७)$$

१६वें गुरुमें यदि क = ख तो क + ख = २ क और

$$\text{कोस्प २क} = \frac{\text{कोस्प}^2\text{ क} - १}{२ \text{ कोस्प क}} \qquad (१८)$$

२८— ज्या ३ क, कोज्या ३ क और स्प ३ क का मान निकालो; यदि ज्या क, कोज्या क, स्प क दिये हुए हों तो।

ज्या ३ क = ज्या (२ क + क)

$= \text{ज्या २क कोज्या क} + \text{कोज्या २क ज्याक}$

$= \text{२ ज्या क कोज्या}^2\text{क} + (१ - २ \text{ ज्या}^2\text{क})\text{ज्याक}$

$= \text{२ ज्या क} (१ - \text{ज्या}^2\text{क}) + (१ - २\text{ज्या}^2\text{क})\text{ज्याक}$

$= \text{३ ज्या क} - \text{४ ज्या}^3\text{क}$

कोज्या ३क = कोज्या (२क + क)

$= \text{कोज्या २क कोज्या क} - \text{ज्या २क ज्या क}$

$= (\text{२ कोज्या}^2\text{ क} - १) \text{ कोज्या क} - \text{२ ज्या}^2\text{क कोज्या क}$

$= (\text{२ कोज्या}^2\text{क} - १) \text{ कोज्या क} - \text{२ कोज्या क} (१ - \text{कोज्या}^2\text{क})$

$= \text{४ कोज्या}^3\text{क} - \text{३ कोज्या क}$

$$\therefore \text{स्प ३ क} = \frac{\text{ज्या ३ क}}{\text{कोज्या ३ क}}$$

$$= \frac{\text{३ ज्या क} - \text{४ ज्या}^3\text{ क}}{\text{४ कोज्या}^3\text{क} - \text{३ कोज्या क}}$$

अब अंश और हर दोनोंको कोज्या³क से भाग देने सेः—

$$\text{स्प ३क} = \frac{\frac{\text{३ स्प क}}{\text{कोज्या}^2\text{क}} - \text{४ स्प}^3\text{क}}{४ - \frac{३}{\text{कोज्या}^2\text{क}}}$$

$$= \frac{\text{३ स्प क} (१ + \text{स्प}^2\text{क}) - \text{४ स्प}^3\text{क}}{४ - ३ (१ + \text{स्प}^2\text{क})}$$

$$= \frac{\text{३ स्प क} - \text{स्प}^3\text{क}}{१ - \text{३ स्प}^2\text{क}}$$

नीचे अब हम कुछ प्रश्नोंको निकाल कर ऊपरके दिये हुए सम्बंधोंकी उपयोगिता बतलायेंगे।

उदाहरण (१)—

$$\frac{\text{ज्या क} + \text{ज्या ख}}{\text{ज्या क} - \text{ज्या ख}}$$

$$= \frac{\text{२ ज्या } \frac{\text{क} + \text{ख}}{२} \text{ कोज्या } \frac{\text{क} - \text{ख}}{२}}{\text{२ कोज्या } \frac{\text{क} + \text{ख}}{२} \text{ ज्या } \frac{\text{क} - \text{ख}}{२}}$$

$$= \frac{\text{स्प}\ \frac{\text{क} + \text{ख}}{२}}{\text{स्प}\ \frac{\text{क} - \text{ख}}{२}}$$

उदाहरण (२)—

$$\frac{\text{कोज्या क} + \text{कोज्या ख}}{\text{कोज्या क} - \text{कोज्या ख}}$$

$$= \frac{२\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{क}+\text{ख}}{२}\ \text{कोज्या}\frac{\text{क}-\text{ख}}{२}}{२\ \ \text{ज्या}\ \frac{\text{क}+\text{ख}}{२}\ \ \text{ज्या}\ \frac{\text{ख}-\text{क}}{२}}$$

$$= \text{कोस्प}\ \frac{\text{क}+\text{ख}}{२} \times \frac{\text{कोज्या}\ \frac{\text{क}-\text{ख}}{२}}{-\text{ज्या}\ \frac{\text{क}-\text{ख}}{२}}$$

$$= -\text{कोस्प}\ \frac{\text{क}+\text{ख}}{२}\ \text{कोस्प}\ \frac{\text{क}-\text{ख}}{२}$$

उदाहरण (३)—

$$\frac{\text{ज्या क} + \text{ज्या ख}}{\text{कोज्या क} + \text{कोज्या ख}}$$

$$= \frac{२\ \text{ज्या}\ \frac{\text{क}+\text{ख}}{२}\ \text{कोज्या}\frac{\text{क}-\text{ख}}{२}}{२\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{क}+\text{ख}}{२}\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{क}-\text{ख}}{२}}$$

$$= \text{स्प}\ \frac{\text{क}+\text{ख}}{२}$$

उदाहरण (४)—सिद्ध करो कि—

$$\frac{\text{कोज्या क} - \text{कोज्या ३ क}}{\text{ज्या ३ क} - \text{ज्या क}} = \text{स्प २ क}$$

इस समीकरणका बायां पक्ष

$$= \frac{२\ \ \text{ज्या}\ \frac{\text{क}+\text{३ क}}{२}\ \text{ज्या}\ \frac{\text{३ क}-\text{क}}{२}}{२\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{३ क}+\text{क}}{२}\ \text{ज्या}\ \frac{\text{३ क}-\text{क}}{२}}$$

$$= \frac{\text{२ ज्या २ क ज्या क}}{\text{२ कोज्या २ क ज्या क}} = \text{स्प २क}$$

उदाहरण (५)—१५° की त्रिकोणमितीय निष्पत्तियां निकालो—

ज्या १५° = ज्या (४५° − ३०°)

= ज्या ४५° कोज्या ३०° − कोज्या ४५° ज्या ३०°

$$= \frac{१}{\sqrt{२}} \times \frac{\sqrt{३}}{२} - \frac{१}{\sqrt{२}} \times \frac{१}{२} = \frac{\sqrt{३} - १}{२\sqrt{२}}$$

कोज्या १५° = कोज्या (४५° − ३०°)

= कोज्या ४५° कोज्या ३०° + ज्या ४५° ज्या ३०°

$$= \frac{१}{\sqrt{२}} \cdot \frac{\sqrt{३}}{२} + \frac{१}{\sqrt{२}} \cdot \frac{१}{२}$$

$$= \frac{\sqrt{३} + १}{२\sqrt{२}}$$

$$\text{स्प १५°} = \frac{\text{ज्या १५°}}{\text{कोज्या १५°}} = \frac{\sqrt{३} - १}{\sqrt{३} + १}$$

$$= \frac{(\sqrt{३}-१)\ \ (\sqrt{३}-१)}{(\sqrt{३}-१)\ \ (\sqrt{३}+१)}$$

$$= \frac{३ - २\sqrt{३} + १}{३ - १} = \frac{४ - २\sqrt{३}}{२}$$

$$= २ - \sqrt{३}$$

$$\text{कोस्प १५°} = \frac{\sqrt{३} + १}{\sqrt{३} - १} = \frac{(\sqrt{३}+१)\ (\sqrt{३}+१)}{(\sqrt{३}+१)\ (\sqrt{३}-१)}$$

$$= \frac{३ + १ + २\sqrt{३}}{३ - १} = \frac{४ + २\sqrt{३}}{२}$$

$$= २ + \sqrt{३}$$

उदाहरण (६)—

यदि, ज्या ४ क + ज्या क = ०, तो क का मान निकालो।

ज्या ४ क + ज्या क = ०

∴ ज्या ४ क = − ज्या क

= ज्या (१८०° + क)

या ज्या (३६०° − क)

क्योंकि किसी कोणका ऋणात्मक ज्या तभी होता है जब कोण ३रे या ४थे पादमें होता है और तीसरे और चौथे पादके उपरोक्त कोणोंका ही ज्या क के ज्याके बराबर होता है।

[देखो विज्ञान भाग ८ संख्या ३ पृष्ठ १००]

∴ ४क = १८०° + क, या ४क = ३६०° − क

∴ ३क = १८०°

∴ क = ६०°

या ४क = ३६०° − क

∴ ५क = ३६०°

∴ क = ७२°

उदाहरण (७)

ज्या ७ क − ज्या क = ज्या ३ क

∴ २ कोज्या $\frac{\text{७ क + क}}{\text{२}}$ ज्या $\frac{\text{७ क − क}}{\text{२}}$ = ज्या ३ क

∴ २ कोज्या ४ क ज्या ३ क = ज्या ३ क

∴ ज्या ३ क = ० (१)

या कोज्या ४क = $\frac{\text{१}}{\text{२}}$ (२)

(१) सम्बंधसे चूंकि

ज्या ३क = ०

∴ ३ क = ०°, १८०°, या ३६०°

∴ क = ०, ६०°, या १२०°

(२) रे सम्बन्धसे चूंकि

कोज्या ४ क = $\frac{\text{१}}{\text{२}}$ = कोज्या ६०° या कोज्या ३००°

∴ ४ क = ६०° या ३००°

∴ क = १५° या ७५°

∴ क = ०, १५°, ६०°, ७५°, या १२०°

अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित सम्बन्ध सिद्ध करोः—

१. $\frac{\text{कोज्या क + ज्या क}}{\text{कोज्या क − ज्या क}}$ = स्प २ क + छे २ क

२. २ ज्या² क ज्या² ख + २ कोज्या² क × कोज्या² ख = १ + को ज्या २ क को ज्या २ख

३. $\frac{\text{कोज्या २क − का ज्या ४ क}}{\text{ज्या ४ क − ज्या २क}}$ = स्प ३ क

४. स्प (क+ख+ग)

= $\frac{\text{स्प क + स्प ख − स्प ग − स्प क स्प ख − स्प ग}}{\text{१ − स्प क स्प ख − स्प क स्प ग − स्प ख स्प ग}}$

५. यदि क+ख+ग=१८०° तो

स्प क + स्प ख + स्प ग = स्प क स्प ख स्प ग

६. यदि क+ख+ग=९०°, तो

स्प क स्प ख + स्प ख स्प ग + स्प क स्प ग = १

नोट—नीचेके प्रश्नोंमें क+ख+ग=१८०°

७. ज्या क + ज्या ख + ज्या ग

= ४ कोज्या $\frac{\text{क}}{\text{२}}$ कोज्या $\frac{\text{ख}}{\text{२}}$ कोज्या $\frac{\text{ग}}{\text{२}}$

८. ज्या क − ज्या क + ज्या ग

= ४ ज्या $\frac{\text{क}}{\text{२}}$ कोज्या $\frac{\text{ख}}{\text{२}}$ ज्या $\frac{\text{ग}}{\text{२}}$

९. कोज्या $\frac{\text{क}}{\text{२}}$ कोज्या $\frac{\text{ख}}{\text{२}}$ कोज्या $\frac{\text{ग}}{\text{२}}$

= ४ कोज्या $\frac{\text{क + ख}}{\text{४}}$ कोज्या $\frac{\text{क + ग}}{\text{४}}$ कोज्या $\frac{\text{ख + ग}}{\text{४}}$

१०. $\frac{\text{ज्या क + ज्या ख − ज्या ग}}{\text{ज्या क + ज्या ख + ज्या ग}}$ = स्प $\frac{\text{क}}{\text{२}}$ स्प $\frac{\text{ख}}{\text{२}}$

११. कोस्प क + $\frac{\text{ज्या क}}{\text{ज्या ख ज्या ग}}$ = कोस्प ग + $\frac{\text{ज्या ग}}{\text{ज्या ख ज्या क}}$ = कोस्प ख + $\frac{\text{ज्या ख}}{\text{ज्या क ज्या ग}}$

१२. ज्या² क + ज्या² ख + ज्या² ग − २ कोज्या क कोज्या ख कोज्या ग = २

१३. ज्या² २ क + ज्या² २ ख + ज्या² २ ग + २ को ज्या २ क को ज्या २ ख को ज्या २ ग = २

१४. १ + को ज्या क कोज्या ख कोज्या ग

= कोज्या क ज्या ख ज्या ग + को ज्या ख × ज्या क ज्या ग + को ज्या ग ज्या क ज्या ख

अरब और सायंस*

[प्रोफ़ेसर मेंहदीहुसैन नासिरी., एम. ए., एम.आर.ए. एस., एफ. ए. यू.]

सभापति महोदय तथा उपस्थित सज्जनो !

व्याख्यान आरम्भ करनेके पहले मुझे यह आवश्यक जान पड़ता है कि मैं आपके सामने साफ़ साफ़ बयान करदूं कि विज्ञानपरिषद् प्रयागने आज व्याख्यान देनेकेलिए मुझे क्यों चुना। ज़ाहिरमें तो यह चुनाव बहुत ही अजीब मालूम होता है कि एक ऐसा शख़्श जिसे गतवर्षोंमें विज्ञानसे कोई सरोकार नहीं रहा, न भविष्यमें कोई आशा है, इस समय वैज्ञानिक विषयपर व्याख्यान देने खड़ा हो। बात यह है कि इस संस्थाने चुनाव करना नियमानुसार आरम्भ किया था, परन्तु अन्तमें यह आश्चर्यजनक परिणाम हुआ। मेरे दोस्त डा० वली मुहम्मद साहब, पी. एच. डी. (अलीगढ़ कालेज) आजके जल्सेमें अपने वैज्ञानिक अनुसन्धानोंका वर्णन करनेवाले थे। उन्हींका चुनाव हुआ था। वही आज बयान भी करते, अगर दस दिन पहले उनका तार न आ जाता और आज और कल अलीगढ़ कालेजके ट्रस्टियोंके जलसोंमें उनका रहना ज़रूरी न होता। डाक्टर साहबका उज़्र मजबूरन क़बूल करना पड़ा और दर्ख़्वास्त की गई कि प्रो० फ़ीरोज़-उद्दीन मुरादको इस जलसेमें व्याख्यान देनेके लिए भेजें, मगर अफ़सोस कि उनकी तरफ़से भी हताश होना पड़ा। अब वक्त कम, जलसा होना ज़रूरी। फिर क्या था, निराशाके समयमें जो ग़लतियां होती हैं उनमेंसे एक यों ज़ाहिर हुई कि 'कुरए फ़ाल बनामे मने दीवाना ज़दन्द' (अर्थात् रमलका फांसा जो डाला तो मेरे नाम निकला)। वस्तुतः इस सम्मानसे मैं घबरा गया कि आख़िर करूं तो क्या करूं। सोचा कि अंगरेज़ी तो थोड़ी बहुत जानता ही हूं और कमसे कम यह तो ज़रूर मालूम है कि 'सायंस' शब्द, आजकल बड़ा विस्तृत हो गया है। लाओ साहित्यको सायंसकी हैसियतसे या तारीखको (इतिहास) सायंसकी हैसियतसे बयान करदूं। मगर यह ख़याल आया कि एक तो चुनावमें भूल हो चुका है, अब अगर यह दूसरी ग़लती की तो लोग कहेंगे कि 'दीवाना बकारे खुद होशियार' (पागल अपने काममें बड़ा होशियार है)। दीवाना तो था ही देखो खूब टाला और अपनी जान बचा ले गया। आख़िर यही कोशिश की कि जिस तरह भी मुमकिन हो कुछ भौतिक, रसायन, प्रकाश, गणित आदि शास्त्रोंपर कथन किया जाय। अंगरेज़ीकी कुछ किताबें उलटीं और कुछ विषय एकत्रित किया। फिर उस बेकस ज़बानकी तरफ़ नज़र दौड़ाई जो 'अरबी' कहलाती है और कसमपुर्सीके आलममें (जिसकी कोई बात न पूछे) ज़िन्दगीके दिन पूरे करती है। मगर उस वीरानेमें इतना बड़ा ख़ज़ाना मिला जिसका बटोरना कठिन हो गया। ख़ैर, जितना सम्भव हुआ उस भाण्डारसे लेलिया। शेष यदि अवसर मिला तो साल डेढ़ सालतक क्रमशः हिन्दुस्तान रिव्यूमें छपता रहेगा।

मूर्खताके समयके चमत्कार (कमाल)

यह अरब जिनका सम्बन्ध इस समय मैं सायंससे बतलानेवाला हूं दो जातियोंमें विभाजित थे या यों कहिये कि दो कुटुम्बोंमें। एक यमन और यमनके निकटस्थ स्थानोंके रहनेवाले, जिनको बनीक़हतान कहते हैं, दूसरे हजाज़ और हजाज़के निकटस्थ ग्रामोंके रहनेवाले जिनका नाम बनीअदनान है। बनी क़हतानकी सभ्यता, आर्थिक दशा, विद्या और बुद्धिके बारेमें इतना कहना काफ़ी है कि यह लोग पुरानी सभ्य जातियोंके समकालीन थे और जिस तरह, मिस्र निवासी, भारतवासी, कलदानिया निवासी, अपने कमाल संसारके शैशवकाल में दिखा रहे थे, बनीक़हतान भी उनसे

* यह व्याख्यान प्रोफेसर नासिरी साहबने विज्ञान परिषद्के गत वार्षिक अधिवेशनमें दिया था।—सं०

कन्धा मिलाये नज़र आते थे। आज भी इन स्थलों-पर जो खंडहर और टूटी हुई दीवारें और दर्वाज़े खड़े हुए हैं, उनकी उन्नतिके स्मारक हैं, यद्यपि ज्ञान-दृष्टिकी उपेक्षा है। इसका विस्तृत वर्णन उस लेखमें मिलेगा जो म्योरकालेज मेगेज़ीनके सितम्बर अङ्कमें 'प्राचीन अरबोंका बुद्धि कौशल' (Intellect of the Ancient Arabs) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

दूसरी जाति जिसका नाम बनीअदनान था रेगिस्तानोंमें घूमती थी। उसकी सभ्यता इतनी ही थी कि कठिनाईसे अस्थायी मकान, खेमे, इत्यादिके रूपमें खड़े कर लिया करता था। वरना पहाड़ोंकी खोह, पेड़ोंकी छाया, नदीका किनारा, यहीं इनका जमघट हो जाता था या 'वन सेवन अरु मरु भ्रमण', का व्यवसाय इनका जीवन समाप्त कर देनेको काफ़ी था। गिबनका भी कथन है कि यह लोग मानो समुद्रकी तहपर पड़े थे। विद्याओं और कलाओंकी लहरें आती थीं और ऊपर ही ऊपर निकल जाती थीं। मगर उनको कुछ ख़बर न होती थी। स्वच्छ नील आकाश, सूर्यकी प्रखर किरण, गरम देश, शुष्क जल वायुने इनको चैतन्य और बुद्धिमान अवश्य बनाया था, मगर शिक्षणके लिए न कोई स्कूल था न कोई कालेज और न यूनिवरसिटी, न प्रयोगोंके लिए प्रयोगशाला। प्रकृतिका पृष्ठ पढ़ते थे, संसारकी प्रयोगशालामें काम करते थे, और अपने देश कालानुसार अपनी चैतन्यता तथा बुद्धि कौशलका परिचय देते थे। कविता कलाप और शिष्टाचारके लिए इनसे बढ़ कर कोई अन्य जाति उपयुक्त न थी। यही वजह हुई कि इन चीज़ों-में वह सबक़त ले गये। प्रकृतिकी जीती जागती तसवीरें जैसी इनकी शैरोंमें हैं शायद ही कहीं हों। यहां तक कि केटेलोनिया (Catalonia) प्रोविन्स (Provence) और इटलीको अपना शागिर्द (चेला) बनाके छोड़ा। कलदानियोंने स्वदेशत्याग अरबमें निवास किया तो इन लोगोंने ज्योतिष और शकुन विद्याके सिद्धान्त सीख लिये। आज तक अरबी और कलदानी ज़बानमें बारह बुरजों (राशियों) के नाम एकसे हैं। फिर स्वयम् अरबोंने बड़े बड़े नक्षत्रोंके नाम रखे जो पुरानी किताबोंमें बराबर मिलते हैं। बनी मारिया इब्न कल्ब और बनी मुर्राइब्न हामां बड़े मशहूर क़बीले (कुटुम्ब) थे, जिनका यश केवल तारोंके ज्ञान और ज्योतिषके कारण फैला। जन साधारण भी ज्योतिषसे इतना प्रेम रखते थे कि फ़सलों वग़ैराका हाल इसी विद्या द्वारा बताते थे और इतना ठीक ठीक कि शायद आजकल शिक्षित समुदाय भी नित्यकी वार्तालापमें न बताते होंगे। अगर पूछा गया कि जाड़ा कब ख़तम हो गया तो जवाब देते थे।

'इज़ामाक़ारनऽल्क़मरस्सुरय्या-लिसालिसतन् फक़द ज़हबश्शिताओ'

जब तीन घड़ी रात जाय और चान्दको कृत्तिका (Peleiades) में देखो तो समझो कि जाड़ा चला। अगर पूछा कि जाड़ा कब शुरू होगा तो कहा—

इज़ामा हिलाल श्शहरे अव्वला लैलतिना बदा-लै उयूनिन नासे बयनन अल नियाअम इत्यादि।

जब लोगोंको महीनेकी पहली रातका हलाल (द्वीजका चान्द) निआइम में दिखाई दे तो समझ लें कि जाड़ेकी हवाएं शुरू हैं। इस तारोंके ज्ञानके साथ भविष्योक्ति और शकुन ज्ञानकी भी क़द्र थी और वैद्यकका ज्ञान भी ऐसी विद्याओंके जानने-वालोंके लिए आवश्यक और अनिवार्य समझा जाता था।

आजकल तो हकीम साहिबान किसी सामग्री (औषधियां) और यंत्रोंके बिना ही रोगियोंके घर चले जाते हैं। केवल नाड़ी देख कर सब रोग पहचान लेते हैं। नुस्खा लिखा, फीस ली और वापिस आये। मगर डाक्टर साहिबानके हमराह एक हैण्डबेग ज़रूर होता है, जिसमें थरमामीटर (तापमापक), फुपफुस दर्शक वग़ैरह वग़ैरह मौजूद रहता है। अज्ञान कालमें मुल्क अरबके भेषज सब कुछ साथ लेकर चलते थे। शान यह होती थी कि आगे आगे हकीम साहिब, पीछे पीछे नौकर, उसके सर-

पर एक संदूक़, संदूक़में कुछ तावीज़, कुछ नक़्श (जंतर), कुछ फूंके हुए डोरे, कुछ दवाएं, सारांश कि करामाती संदूक़ मरीज़को हर प्रकार सान्त्वना देता था। दवाओंसे काम चला तो ख़ैर, वरना झाड़ फूंक, ग्रह पूजन, उतारो, भेंट, सारांश रोगीको अच्छा होना पड़ता था, वरना हकीम साहब जान न छोड़ते। फोस आदिका हाल नहीं मालूम कि मिलती थी या नहीं, परन्तु इलाज यों ही होता था।

इसलामका आरम्भ

जब इस्लामका प्रचार हुआ तो पैगम्बर उस्लाम सल्लअमकी शिक्षासे मिथ्या विश्वासका अन्त होने लगा, पर विद्याओंका सत्कार आरंभ हुआ। शल्य चिकत्सा और सलोतरी अरबमें अवश्य थी। हारिस बिन कलदा सक़फी का जितना सम्मान पैगम्बर सल्लअम तथा अन्य मुसलमान करते थे, वह इस्लामकी विद्या प्रियताका प्रमाण है। शम्सुलउलमा ख़ान बहादुर मौलवी ज़काउल्ला साहबका कथन है "सबसे अव्वल हर किस्मके उलूमोफनून (विद्या और कला) की तहसीलकी तरफ (अध्ययनकी ओर) हज़रत अलीने ही मुसलमानोंको राग़िब किया।" गए विचार और वाक्य रचना विचारका विकाश हुआ और धार्मिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त प्रयोग और निरीक्षणमें श्रद्धा होने लगी और हज़रत अलीका यह कथन कि "मैंने अपनी उम्र भरमें अनुभव और निरीक्षणसे यह निश्चय किया है कि मनुष्य अपने पूर्वजोंसे इतना अधिक नहीं मिलता है, जितना उस समयसे कि जिसमें पैदा हुआ है" बार बार अरबोंको यह ध्यान दिलाता रहा कि वाक्य प्रमाण अनुभव गम्य और प्रयोगसिद्ध बातोंकी अपेक्षा कम विश्वास योग्य हैं। धीरे धीरे इस शौक़ने यह रंग पकड़ा कि जिस फिरक़ेका मुल्की या जंगी कामोंसे सरोकार न रहा, वही विद्याध्ययनकी ओर झुका। चुनांचि अब ख़ालिद बिन यज़ीद (यज़ीद पुत्र ख़ालिद) राज पदसे अलग हुआ तो उसने ज्योतिष और रसायनका अभ्यास आरम्भ किया और दसवीं शताब्दीमें एक कुरह (गोला) क़ाहिराके पुस्तकालयमें देखा गया जो 'निज़ाम बतलीमियूसी, बतलीमियूसी संप्रदायके माफिक बनाया था और शायद ताम्बेका था। उसपर लिखा था—हुमिलतो ज़िहल कुरतो मिनल अमीर ख़ालिद बिनयज़ीद इब्नमुआविया' अर्थात् मैंने यह गोला ख़ालिद बिनयज़ीदसे पाया। जिससे मालूम होता है कि बनी उमय्याके ज़मानेमें ख़ालिदके गणित और फलित ज्योतिषकी क्या क़दर थी। इस ज़मानेमें मालूम होता है कि मासर जोय्याने तिबसुरयानी का अर्बीमें तर्जुमा किया और दो अध्याय अपनी तरफसे उसमें बढ़ाये। इसी तरह और ग्रन्थ भी इस ज़मानेके मिलते हैं, परन्तु मैं संक्षेपके विचारसे कुछ अधिक न कहूंगा।

बनी अब्बास का समय और ज्योतिष

अब्बासियोंका पहला राजा मंसूर है जिसके ज़मानेमें सायंस (विज्ञान) की ओर अभिरुचि बढ़ी। नौबख़्त अबूसहल बिन नौबख़्त, अली इब्न ईसा इस्तरलाबी आदिका नाम आधुनिक वैज्ञानिकोंमें कथनीय है। हमारे हिन्दुस्तानमें उस वक्त तीन प्रकारकी ज्योतिष मौजूद थी, जिसमें से सिद्धान्तपर एक ग्रंथ अरबोंको मिला और मुहम्मद इब्न इबराहीम फ़ज़ारी (लगभग ८२० ई०) ने उसका अनुवाद अरबीमें किया जो 'सनदेहिन्द' के नामसे प्रख्यात है। इसी सिद्धान्तके अनुसार मुहम्मद बिन मूसाने मामूनरशीदके ज़मानेमें (लगभग ८३२ ई०) एक पंचाङ्ग तय्यार किया जिसमें सायन (equinoxes) ईरानियोंके अनुसार और क्रान्त्यंश बतलीमियूसके अनुसार दिया था। यों समझना चाहिये कि हिन्दुस्तान, यूनान, तथा ईरानकी कोशिशोंका ऐसा अनोखा मजमूआ (संग्रह) था कि बिलकुल नई वस्तु समझी जाती थी और इसमें ऐसी ऐसी अजीब चीज़ें ईजाद (आविष्कार) कीं कि सारी दुनियामें मशहूर हो गईं। इस पंचाङ्ग की तारीखें फ़ारसी

महीनोंके हिसाबसे थीं, लेकिन सौ बरस के बाद स्पेनके मसलिमा इब्नअहमदने उसकी जगहपर अरबी तारीखें रखीं और यही एडीशन यूरोपके नज़र हुआ। हारून रशीदका शाशनकाल भी ज्योतिषके लिए बहुत अच्छा था। धूप घड़ियां, जल घड़ियां, धातु घड़ियां, बहुत सी आविष्कृत हुईं, बल्कि उस समयका यह फैशन था कि नये नये प्रकारकी घड़ियोंसे घरोंकी शोभा बढ़ाई जाय।

एक अद्भुत घड़ी

फ्रांसके इतिहासकारोंका कथन है कि हमारे देशमें पहले पहल वह घड़ी देखनेमें आई जो हारून रशीदने ८०७ ई०में शार्लमीनको भेजी थी। यह घड़ी ऐसी अजीबो ग़रीब थी कि तमाम फ्रांसका दर्बार अचम्भेमें रह गया। इस घड़ीमें बारह दर्वाज़े थे। जब घंटा पूरा हो जाता था तो एक दरवाज़ा .खुद बख़ुद (स्वयं) खुल जाता था और एक मोगरी जो ताम्बेकी थी जरस (घंटे) पर पड़ती थी। यह दरवाज़े खुले रहते थे और जब एक दौर पूरा हो जाता था तो दरवाज़ोंसे बारह सवार निकलते थे और घड़ीकी पेशानीपर चक्कर लगाते थे। ज्योतिषके सम्बन्धमें मैं इस समय केवल इतना ही कथन करता हूं, जिसमें अधिक समय न लगे। अन्यथा बनी अब्बास, बनो फ़ातिमा, तातरिया, गज़नविया, तेमूरिया, मुग़लिया राजाओंने जितनी इस शास्त्रकी वृद्धि की उसका संक्षेपसे भी कथन करनेके लिए कई व्याख्यानोंकी आवश्यकता होगी। अन्तमें यह कह देना काफी होगा कि बतलीमियूसी सम्प्रदाय आजकल असत्य मानना फैशन है और आधुनिक विज्ञानको इस बातका बड़ा अभिमान है, परन्तु इतिहास साक्षी है कि बारहवीं शताब्दीमें अन्दलस देशका एक मुसलमान मुहम्मद बिन अब्दुलमलिक बिन तुफेल (जो यूरोपमें अबूयासिरके नामसे विख्यात है) पहला इंकार करनेवाला इस सिद्धान्तका था और सूर्य सम्प्रदायको मानता था। यदि अरबी साहित्यमें ऐसे वाक्य मिलते हैं जिनसे बतलीमियूसी सम्प्रदायका सच होना प्रतीत होता है, तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि समस्त अरब इसी सम्प्रदायको मानते थे। भाषा इतनी कोमल वस्तु है कि विज्ञानकी कठोरता सहनेके लिए किसी प्रकार प्रस्तुत नहीं है। आजकल इस शिक्षाके युगमें भी साहित्यका यही हाल है। हमारे मान्य मित्र डा० सरकार इस समय यहां बैठे हैं, जो सायंसके डाक्टर हैं। यह भी सुबह उठ कर जब नौकरसे पूछते होंगे तो यह कहते होंगे कि देखो सूर्य कितना ऊंचा हुआ। वह जवाब देता होगा कि एक बांस या दो बांस। मगर इन्होंने, या कभी किसीने, आजतक यों न पूछा होगा (किलास की बात और है) कि देखो ज़मीन कितनी घूम कर सूरजके सामने आई। अन्तमें इतना और कह दूं कि उन्नतिके प्राथमिक कालमें अरबोंने क्या क्या बातें जान लीं। हारूनके बाद जब मामूनका ज़माना आया, तो एक विज्ञान परिषद् नियमित रीतिसे स्थापित हुई और पचास साठ अध्यापक अपने अपने विषयके धुरन्धर विद्वान इकट्ठे हुए। एंसाइक्लोपीडिया मेट्रोपोलीटेनासे मालूम होता है कि रवि परमाक्रान्ति पहले बहुत अधिक मानी जाती थी, परन्तु इस कालमें निश्चित हुआ कि २३ अंश ३५ कला है और साबित कुरा ने इससे भी कम बतलाई कि २३° ३३' ३०'' है। आजकल यह २३° २७' ८'' मानी जाती है। अलबतानीने जिसे बतलोमियूस द्वितीय कहते थे (और एंसाइक्लोपीडिया मेट्रोपोलीटेनाके लेखकके अनुसार ठीक कहते थे) बतलोमियूसके तरसीद (निरीक्षण) से मुक़ाबिला करके बिलकुल ठीक बतलाया कि बजाय १०० बरसके सत्तर बरसमें एक सितारा (साबित) तूल उलबलदके* एक अंश तक हरकत करता है। आजकल यह समय ७२ वर्ष माना जाता है। सालका परिमाण भी इससे पहले इतना सही नहीं मालूम था जितना अलबतानीने बताया कि ३६५ दिन ५ घण्टा ४६ मिनट २४ सेकंड है। आजकल भी लगभग यह माना जाता

* भुजांश।

है, केवल अन्तर इतना है कि ४६ मिनटकी जगह ४८ मिनट माना जाता है। पेंडुलमका भी आविष्कार इसी समय हुआ, मौलवी ज़काउल्ला साहबका कथन है कि मामूनको पृथ्वीके गोल होनेका पूर्ण विश्वास था। और उसीकी आज्ञासे पृथ्वीके एक (Longitude degree) भुजांशकी लम्बाई निश्चित की गई और पृथ्वीकी परिधिकी पमायशकी आज्ञा दी गई। शनआरके मैदानोंमें कुलजम समुद्र (Red sea) के किनारे ध्रुवकी ऊंचाई दो स्थानोंसे मापी गयी, जो एक ही याम्योत्तरमें एक अंशकी दूरीपर थे। फिर दोनों स्थानोंकी दूरीकी पैमाइश की गई, ज्ञात हुआ कि दो लाख हाशिमी गज थी, जिससे पृथ्वीकी परिधि २४००० मील निकली। कई अन्य रीतिसे भी इसको नापा गया और यही परिमाण निकला।

[शेष फिर]

पानीके भीतर प्रकाश

डूबे हुए जहाज़ों और किश्तियोंके निकालने, दरियाई पौदों और जानवरोंकी तसवीर खींचने और पन-डुब्बी नावोंकी गुप्त कार्रवाईके जानलेने आदिमें इस बातकी आवश्यकता होती है कि पानीके अंदर खूब रोशनी हो। यह भी सम्भव है कि यूरोपीय महाभारतके समाप्त होनेपर पनडुब्बीनावोंका प्रयोग समुद्रयात्रामें अधिक होने लगे, क्योंकि तूफ़ानोंमें जब पर्वताकार तरंगें बड़ेसे बड़े जहाज़ोंको भी बच्चोंके खिलौनोंकी तरह झकझोर कर और उछाल उछाल कर डुबो देनेका प्रयत्न करती हैं और कभी कभी डुबो भी देती हैं, उस समय पनडुब्बी नाव आनन्दसे पानीके अन्दर अपना रास्ता तय करती हुई चली जाती हैं। लेकिन इनकी सुखमय यात्राके लिए इस बातकी आवश्यकता है कि पानीमें रोशनी करनेके अच्छे साधनोंका आविष्कार किया जाय, क्योंकि समुद्री चट्टानों और दानवाकार जन्तुओंसे टकरा जानेका इन्हें भय सदा बना रहता है। इसी कारण पानीमें प्रकाशके गमनका प्रश्न बड़े महत्वका है।

हालमें ही श्रीयुत रोज़ (Mr. Rose) ने इस विषयपर कुछ प्रयोग किये हैं। उन्होंने एक गुरु निकाला है, जिसकी सहायतासे प्रकाशमान वस्तु (दीपक) से किसी अन्तरपर प्रकाशकी तीव्रता (तेजी) निकाल सकते हैं। उनका अनुभव है कि पानीमें १०० फुट तक पहुंचने तक प्रकाशका केवल दस हज़ारवां भाग बचता है, शेषको पानी सोख लेता है। अतएव स्पष्ट है कि थोड़ी सी दूरीपर भी वस्तुओंको देखनेके लिए अत्यन्त तीव्र प्रकाशका प्रयोग करना पड़ेगा।

पानी द्वारा प्रकाशके सोखे जानेके अतिरिक्त एक और कठिनाईका सामना करना पड़ता है। प्रायः यह समझा जाता है कि पानी पारदर्शी पदार्थ है, इसमें प्रकाशरश्मि स्वच्छन्दता पूर्वक गमन कर सकती हैं, पर स्मरण रहे कि प्रकाशके कुछ अंशको पानीके कण रोक कर इधर उधर बिथरा देते हैं (Scatter), जिसका परिणाम यह होता है कि पानीमें उजाला होनेके बजाय प्रकाशमान कुहरा सा दिखाई पड़ता है।

रोटी क्यों फूलती है ?

[ले०—अध्यापक महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस- सी., एल. टी., विशारद]

होलीकी छुट्टीमें बाबू गंगानारायण कालेजसे घर आये हुए हैं। बाहरके कमरेमें बैठे हुए कोई समाचारपत्र पढ़ रहे थे कि इतनेमें उनकी छोटी बहिन मुन्नो आयी और कहा, "दादा, कुछ दिन हुए रोटी फूलती हुई देखकर मेरे मनमें यह प्रश्न उठा कि रोटी क्यों फूलती है, परन्तु सन्तोषजनक उत्तर अभी तक नहीं मिला।

आपकी बाट देख रही थी कि जब आप आवेंगे तब इसका कारण पूछूंगी। आज आप मुझे समझा दीजिये कि रोटी क्यों फूलती है।"

बाबू गंगानारायण कालेजमें बी. एस - सी. कक्षामें पढ़ते थे। उनका विचार था कि विज्ञानका जो ज्ञान कालेजमें या स्वयम् अपने अनुभवसे प्राप्त होगा उसे अपनी मातृभाषामें लिख डालूंगा और जहां तक सम्भव होगा दूसरोंको सिखलानेका जब कभी अवसर मिलेगा उद्योग करूंगा। इस विचारको पहले उन्होंने अपने घरपर ही बर्तना आरम्भ कर दिया था और जब कभी घरपर आते थे बच्चोंको तथा स्त्रियोंको इकट्ठा करके विज्ञानकी छोटी छोटी रोचक बातें बतलाया करते थे, जिनसे उनकी पूछतांछकी इच्छा बढ़ती ही जाती थी और नये नये तर्क उठते जाते थे। इन सबमें उनकी छोटी बहिन मुन्नी जिसकी अवस्था दस बारह बरसकी होगी बड़ी मुंह लगी थी और प्रश्नपर प्रश्न करती थी। बाबू गंगानारायण तो कभी कभी उकता जाते थे, परन्तु अपनी झुंझलाहट प्रकट नहीं होने देते थे, क्योंकि समझते थे कि यदि किसीको मालूम हो जायगा कि प्रश्नका उत्तर देना बुरा लगता है तो यह जिस सरलतासे प्रश्न किया करते हैं वह ग़ायब हो जायगी और इनकी बुद्धिका विकास रुक जायगा। इसी कारण मुन्नी पूछने पाछनेमें हिचकती नहीं थी और जब बाबू गंगानारायण कालेजमें पढ़नेके लिए लखनऊ चले जाते थे तब उन प्रश्नोंको एक छोटी सी बहीमें लिखती जाती थी और उनके आनेपर एक एक करके जैसे जैसे मौका मिलता था सब प्रश्नोंके उत्तर समझ लेती थी।

मुन्नीके पूछनेपर कि रोटी क्यों फूलती है बाबू गंगानारायण कुछ देर तक तो अख़बार पढ़ते रहे और उससे कह दिया ज़रा ठहरो। थोड़ी देरमें अख़बार एक किनारे रख दिया और मुन्नीसे चुपकेसे पूछा "मुन्नी, यह बतलाओ कि रोटी कब फूलती है और अच्छी रोटी बनानेके लिए आटेके साथ क्या क्या बातें की जाती हैं।"

मुन्नी—यह तो अम्माने बहुत पहलेसे बतला दिया है कि अच्छी रोटी बनानेके लिए आटेको अच्छी तरह सानना चाहिए और ज़रा कुछ ढीला रखना चाहिए, क्योंकि आटा यदि कड़ा रह जाता है तो रोटी फूलती नहीं और न नरम ही होती है।

गं०—आटा अच्छी तरह सानने और ज़रा ढीला रखनेसे कैसा हो जाता है?

मुन्नी-आटा जब अच्छी तरह सना रहता है तब लसदार हो जाता है और बेलते समय रोटी किनारेपर फट नहीं जाती और ढीला रखनेसे तवेपर जल्दी जल नहीं जाती और खूब पक जाती है, जिससे खानेमें बड़ी मीठी लगती है।

गं०-बस, बस, अब तुमको यह समझनेमें देर नहीं लगेगी कि रोटी क्यों फूलती है। देखो जिस समय बेली हुई रोटी तपे हुए तवेपर छोड़ी जाती है एक ओर कुछ कड़ी हो जाती है। ऐसी दशामें रोटी उलट देनी चाहिए। उलटनेपर यह दूसरी ओर भी कड़ी होने लगती है। यदि रोटी मोटी हो तो देर तक तवेपर सेकनी चाहिए और यदि पतली हो तो तुरन्त ही तवेपरसे उतार कर जलते हुए कोयलेपर या चूल्हेकी बगलमें धुएंसे बचाकर रोटी खड़ी करके सेकनी चाहिए। जब फूलने लगे तब चिमटेसे घुमाते रहना चाहिए, जिससे चारों ओर बराबर आंच लगे और रोटी जलने न पावे। तवेपर रखनेसे रोटीकी एक ओर एक तह अलग हो जाती है और उलटनेसे दूसरी ओरकी तह भी कड़ी पड़ जाती है। दोनों स्तरोंके बीच कुछ गूदा रह जाता है, जिसमें पानीका अंश अधिक रहता है। जब रोटी आगपर सेकी जाती है, इस गूदेका पानी भाप बनकर फैलता है और फैलनेके साथ रोटीको फुला देता है, जिससे भीतरका अनपका गूदा भापकी समान गरमीसे अच्छी तरह सिक जाता है और रोटी मुलायम भी रहती है। यदि

आटा अच्छी तरह सना न हो अथवा कड़ा हो तो बेलते समय किनारेपर रोटी जगह जगह फट जाती है और इसी फटी जगहसे भाप निकल जाती है और रोटी पिचक जाती है, जिससे उसके पकनेमें देर लगती है और खानेमें फीकी मालूम पड़ती है।

मुन्नी—इस बात चीतसे तो यह भी मालूम हो गया कि आटा ढीला क्यों रखते हैं। यदि आटा गीला न हो तो तवेपर रखते ही रोटीका पानी जल्दी सूख जाता है और दोनों स्तरोंके बीचका गूदा भी कड़ा होकर दोनों स्तरोंको समेट लेता है, जिससे सेकते समय स्तर फैलने नहीं पाते और रोटीके सिकनेमें देर लगती है। क्योंकि जो काम भापसे भीतर ही भीतर लिया जा सकता है वह बाहरकी गरमी नहीं कर सकती, बाहरकी आंचसे तो बाहरके स्तर बहुत कड़े पड़ जाते हैं।

गं०—अच्छा अब मेरे एक प्रश्नका उत्तर दो। यह बतलाओ कि यदि तवेकी जगह सीधी आंच-में रोटी सेकी जाय तो क्या बुराई है।

मुन्नी—यह बतलाना तो कुछ कठिन नहीं है। सीधी आंचमें रखनेसे गीले आटेमें राख लग जाती है, रोटी कहीं ऊपरको उठ आती है और कहीं दब जाती है और सबसे बड़ी खराबी तो यह होती है कि रोटी फूलती भी नहीं, क्योंकि आंच कहीं अधिक लग जाती है तो काली काली चित्तियां पड़ जाती हैं और कहीं कच्ची रह जाती है। इससे इसके स्तर ठीक ठीक बनने नहीं पाते और यदि बनते भी हैं, तो जल जानेके कारण कहीं कहीं छेद हो जाते हैं, जिनसे भाप निकल जाती है, रोटी फुलानेका उसे मौका ही नहीं मिलता। अम्मा तो कहती थी कि यदि तवेपर भी रोटी पहली ओर देर तक पड़ी रहे और कहीं जलकर काली पड़ जाय तो नहीं फूलती। कभी कभी तो ऐसा होता है कि रोटी जब तवेपर किसी जगह कम सिकती है तब फूलते समय उसी जगहसे भाप निकल पड़ती है और रोटी पिचक जाती है। ऐसा होनेपर अम्मा चिमटेसे फटनेकी जगहको दबा देती हैं, जिससे रोटी कुछ फूल आती है।

गं०—तो अब तुम्हारी समझमें यह आ गया कि रोटी पकानेके लिए यह ज़रूरी होता है कि रोटी-में चारों ओर समान आंच लगे, जिसके लिए तवेकी आवश्यकता पड़ती है, जो गरम होकर रोटीमें सब जगह एक सी गरमी पहुंचाती है। सीधी आंचमें रोटी ही नहीं, जितनी चीज़ें पकाने या भूननेकी हैं सब बिगड़ जाती हैं, कहीं जल जाती हैं और कहीं कच्ची रह जाती हैं। इसीलिए आलू बैंगन शकरकन्द इत्यादि या तो पानीमें उबाल लेते हैं या खूब गरम राख या भाड़की गरम गरम बालूमें दबा देते हैं, जिससे चारों ओर समान आंच पाकर धीरे धीरे पक जाते हैं। समान आंच पहुंचानेके लिए गरम बालू, गरम राख, अथवा पानी, तेल, घी इत्यादि काममें लाते हैं। दाल, चावल, आलू इत्यादि पानीमें उबाल लेते हैं। पूरी, कचौरी, पकौड़ी इत्यादि तेल या घी-में पकाते हैं। क्योंकि पानीमें यह चीज़ें मिलकर एक हो जाती हैं।

मुन्नी—फूली हुई रोटी जब किसी बर्तनसे ढक कर रख दी जाती है तब तो बर्तनमें पानी जम जाता है, परन्तु यदि खुली हुई रखी रहे तो पानी ग़ायब हो जाता है, फिर रोटी क्यों फूली रहती है?

गं०—जितनी देर तक भाप रहती है उतनी देरमें रोटी के स्तर कड़े पड़ जाते हैं और उनमें पिच-कनेका गुण कम पड़ जाता है, इसलिए वे ज्योंके त्यों बने रहते हैं। साथ ही साथ भाप तो धीरे धीरे हलकी होनेके कारण हवामें मिल जाती है और उसकी जगह हवा अपना घर बना लेती है।

मुन्नी—हवा अन्दर कैसे घुस जाती है? जाने-की राह तो कहीं रहती ही नहीं?

गं०—गैसोंमें एक गुण यह होता है कि वह बहुत ही सूक्ष्म छिद्रों द्वारा बाहर भीतर आ जा सकती

हैं। जिन सूक्ष्म छिद्रों द्वारा भाप निकल कर हवा-में मिल जाती है उन्हींसे हवा भारी होनेके कारण अन्दर चली जाती है। इसीलिए फूली हुई रोटी-में कुछ देरके बाद भाप नहीं मालूम होती। वैज्ञानिकोंने तो गैसके इस गुणसे यह तर्कीब सोची है जिससे रोटी कई दिनों तक रखी रहे, तब भी बिगड़ नहीं सकती और न उसमें बुरी बास ही आती है। यह तो जानती ही हो कि रोटी या और कोई खानेकी चीज़ हवाके ओषजन और इसमें बिचरनेवाले असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओंके कारण बिगड़ जाती हैं। इसीलिए आचार, मुरब्बा, तेल या शीरेमें रखा जाता है, जिसमें ओषजन या जीवाणुओंकी पैठ नहीं हो सकती। इसलिए यदि रोटीमें हवा न घुसने पावे तो रोटी भी कई दिनों तक न बिगड़ सकेगी। रोटी सेक लेनेपर यदि कार्बोनिक एसिड गैसमें कुछ देर तक रख दी जाय तो भापकी जगह कार्बोनिक एसिड गैस हो जायगी और रोटी सड़ने नहीं पावेगी। इसकी चर्चा विज्ञानके किसी पिछले अंकमें की गयी है*। उसे देख लो।

मुन्नी—दादा क्या आप इसी समय यह भी बतला देंगे कि दाल चांवल पकाते समय बर्तन-का मुंह ढक देनेसे जल्दी क्यों पक जाते हैं?

गं०—आज इतना ही बस है। मौका मिलनेपर यह भी बतला दिया जायगा। बहुत सी बातें एक साथ समझायी जायंगी तो भूल जाओगी। अच्छा जो कुछ आज मैंने बतलाया है उसका सार समझ समझ कर लिख लेना।

[* देखो विज्ञान भाग ४ संख्या २ पृष्ठ ६२]

धारामापक

[ले०—प्रोफ़ेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी.]

स्पर्श धारामापकका वर्णन विज्ञानके मिथुन ७५ के (जून, १८) अंक-में दिया गया है। वर्णनके साथ ही साथ उससे धारा नापनेकी विधि भी बतला दी गई है। जिस धारामापकका वर्णन वहां दिया गया है उससे $\frac{१}{१०}$ एम्पकी धारा-से लेकर ५ एम्प तककी धारा नापी जा सकती है। यदि धारा $\frac{१}{१०}$ एम्पसे कम होगी तो चुम्बक-का विचलन बहुत थोड़ा होगा और यदि धारा $\frac{१}{१००००००}$ एम्पकी हो तो विचलनका पता चलाना ही असम्भव है। यदि धारा १०० एम्पका हो तो तार जल जलाकरका धारामापकका खातमा हो जायगा, विचलन पढ़नेकी नौबत भी नहीं आयगी। जिन धाराओं-से प्रायः काम पड़ता है उनका परिमाण $\frac{१}{१०^{१७}}$ एम्प से लेकर १०,००० एम्प या इससे भी अधिक है। $\frac{१}{१०^{१०}}$ एम्पसे दुर्बल धारा नापनेके लिए तो धारामापक अभी तक नहीं बने हैं। जिन यंत्रोंसे $\frac{१}{१०^{१७}}$ से $\frac{१}{१०^{१०}}$ एम्प तककी धारा नापी जाती हैं उनका वर्णन किसी दूसरे समयपर किया जायगा, इनमें धारा नापनेके लिए धाराके गुणोंसे काम नहीं लिया जाता है। किन्तु $\frac{१}{१०^{१०}}$ एम्पकी धारासे लेकर प्रबलसे प्रबल धारा नापनेके लिए जो यंत्र हैं उनमें धाराके गुणोंसे ही काम लिया जाता है। उनकी केवल बनावटमें ही भेद होता है। $\frac{१}{१०^{१०}}$ एम्पकी जैसी दुर्बल धाराका काम तो

कभी कभी, ख़ास ख़ास प्रयोगोंमें ही पड़ता है, किन्तु $\frac{१}{१०^८}$ एम्पकी धारा और इससे अधिक ५० एम्प तकका काम तो प्रयोगशालाओंमें रोज़ मर्रा पड़ता रहता है। हज़ार पांच सौ एम्पोंकी धाराएँ कारख़ानोंमें काममें आती हैं। इतना कह देनेसे पाठकोंको यह भी विदित हो गया होगा कि जो धारामापक जिस धाराके लिए बनाया गया है उससे वही धारा नापनी चाहिये। यदि धारा उससे प्रबल हुई तो यंत्रके टूट जानेका भय है और दुर्बल हुई तो उस यंत्रसे उसका पता चलाना कठिन है।

इन बातोंसे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि बिजलीकी धारा ही एक ऐसी चीज़ है कि जिसके नापनेके लिए तीन प्रकारके यंत्रोंकी आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् एक दुर्बल, दूसरे साधारण और तीसरे प्रबल धाराओंके नापनेके काममें आते हैं। यह नियम संसारकी कुल चीज़ोंकी नाप तोलमें पाया जाता है। जिस तकसे लकड़ियां अथवा और चीज़ें मनोंमें तोली जाती हैं, उसी तकसे क्या सोना कभी रत्तियोंमें तोला जा सकता है। सोना तोलनेके लिए तो कांटा ही काममें लाना पड़ेगा। और इस कांटेसे सोना और चांदी (जो तोलों और रत्तियोंमें ही तोले जाते हैं) या दवाई इत्यादिके सिवाए, जिनकी मात्रा भी बहुत नहीं होती, और चीज़ोंको नहीं तोल सकते। दस पांच रुपयोंकी चीजें जैसे गेहूं, चीनी आदि साधारण तराज़ूसे तोली जाती हैं और जब इन चीज़ोंकी मात्रा बढ़ जाती है तो तोलनेका यंत्र भी बदल दिया जाता है। तराज़ूके बदले तक हो जाता है। यह एक ऐसी बात है कि जिसका कभी कभी ध्यान नहीं रहता है और यंत्रोंको हानि पहुंच जाती है। इसलिए हम पाठकोंसे इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेका अनुरोध करते हैं।

अब हम दुर्बल धाराके नापनेकेलिए जो धारामापक काममें आता है उसका वर्णन करते हैं। पाठकोंके यह बात तुरन्त समझमें आजायगी कि ऐसा धारामापक वाल्टामापक नहीं हो सकता है। दुर्बल धाराको चांदी या तांबेके वाल्टामापकके पत्तरपर तोलनेके लायक चांदी या तांबेकी मात्रा चढ़ानेमें घंटों लग जायंगे, किन्तु चुम्बकीय गुणके आधारपर बने हुए धारामापकमें चुम्बकके विचलनसे तुरन्त धाराका पता चल जायगा। वाल्टामापक इसी कठिनाईके कारण बहुत कम काममें आते हैं।

स्पर्श धारामापकके सम्बन्धमें हम यह समीकरण साबित कर चुके हैं—

$$ध = \frac{च}{\frac{२ \pi न}{र}} \text{ स्पर्श } क$$

ध = धारा, च = पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्तिका क्षितिज अवयव, न = तारकी लपेटोंकी संख्या, र = लपेटोंका अर्द्धव्यास, क° = चुम्बकके विचलनका कोण। यह समीकरण केवल स्पर्श धारामापकके ही लिए नहीं है, किन्तु उन सब धारा मापकोंके लिए है कि जिनमें चुम्बक तारके लपेटोंके केन्द्रपर लटका अथवा कीलीपर रख दिया जाता है और उसके विचलनसे धारा नापी जाती है। इसी समीकरणसे हम दुर्बल धाराके नापनेवाले धारा मापकके बनानेकी विधि भी निकाल सकते हैं। ऊपरके समीकरणको हम इसप्रकार भी लिख सकते हैं—

$$ध = \frac{र च}{२ \pi न} \text{ स्पर्श } क$$

यदि यंत्रसे बहुत ही दुर्बल धारा नापी जाय तो $\frac{र च}{२ \pi न}$ स्पर्श क बहुत छोटा होगा। साधारणतः एक डिगरीसे छोटा कोण जांचना कठिन है। इसलिए मान लेते हैं कि स्पर्श क एक डिगरीके स्पर्शसे कम नहीं हो सकता है। जब स्पर्श क कम नहीं हो सकता है तो $\frac{र च}{२ \pi न}$ जिसको बदलने-

वाली संख्या कहते हैं जितनी छोटी कर सकते हैं करना पड़ेगी। इस संख्याको तीन प्रकार छोटा कर सकते हैं। र लपेटोंके अर्ध व्यासको छोटा कर देना चाहिये। यह केवल $\frac{1}{2}$ शतांश मीटर तकका हो सकता है। न को बढ़ा देनेसे भी यह संख्या कम हो जायगी। परन्तु न को बहुत नहीं बढ़ा सकते हैं। जितना न अधिक होगा उतनी ही तारकी लम्बाई भी बढ़ जायगी, जिस कारण धारामापककी बाधा बढ़ जायगी। इस कारण लपेटोंकी संख्या बहुत नहीं बढ़ा सकते हैं। उतनी ही लपेट लेते हैं, जितनीकी बाधा यंत्रके लिए उचित होती है। र को जितना घटा सकते थे घटा लिया और न को जितना बढ़ा सकते थे बढ़ा लिया। अब रह गया च इसके घटानेकी विधि धारामापकके चित्र और वर्णनसे तुरन्त समझमें आ जायगी।
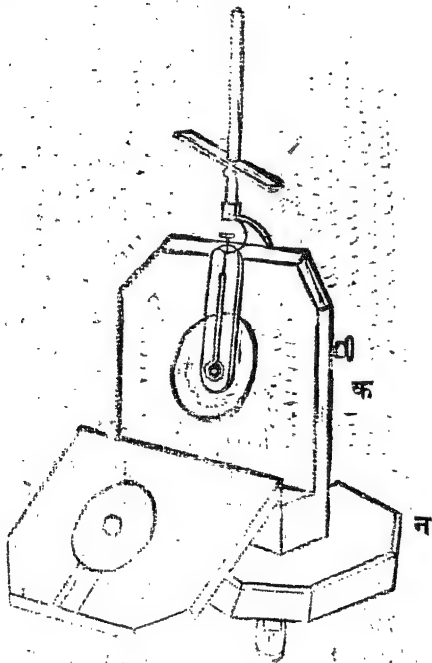
चित्र १२

एक लकड़ीके तख़ते न पर जिसकी लम्बाई ६ इंच और चौड़ाई ४ इंचके लगभग होती है और जिसके नीचे पेच भी लगे होते हैं, एक दूसरा तख़ता क, ५ इंच चौड़ा और ८ इंच लम्बा खड़ा लगा दिया जाता है। इस तख़तेपर एक दूसरा तख़ता ग कब्जोंसे लगा दिया जाता है। यह तख़ता पहले तख़तेको ढकनेका काम देता है। इन दोनों तख़तोंके बीचमें एक शतांशमीटर व्यासके बराबर छेद कर लेते हैं और इस छेदके चारों ओर ३ इंच व्यासकी गोल झिरी काट लेते हैं। क तख़तेपर एक पीतलकी छड़ ६ इंच लम्बी और ४ मिलीमीटर मोटी लगी रहती है। दोनों तख़तोंकी गोल झिरियोंमें तारकी लपेटें लगा दी जाती हैं, और तारके सिरे तख़तीके ऊपर पेचोंके नीचे दबा दिये जाते हैं। जब धारामापकको बाटरीसे जोड़ना हो तो बाटरी के सिरोंसे जुड़े हुए तार इन पेचोंसे कस दिये जाते हैं। पेचोंके तख़तोंके ऊपर होनेके कारण बिना खोले ही धारामापक बाटरीसे जोड़ा जा सकता है। एक पीतलका टुकड़ा जिसमें एक झिरी झ क और छेद छ कटा होता है खूंटियों द्वारा क तख़तेपर लटका दिया जाता है। इसका छेद तख़तोंके छेदके बराबर होता
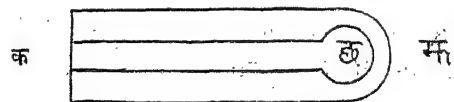
चित्र १३

है और इसकी लम्बाई ऐसी होती है कि इसका छेद तख़तोंके छेदके सामने आ जाता है। ग तख़तेमें एक झिरी कटी होती है ताकि बन्द करते समय यह पीतलका टुकड़ा उसके अन्दर बैठ जावे। एक चुम्बक एक शतांशमीटरसे ज़रा छोटा जो साधारणतः घड़ीके फनरमेंसे काट कर बना लिया जाता है, इतने ही बड़े पुट दर्पणके पीछे लगा कर रेशमके तागेकी सहायतासे पीतलके टुकड़ेकी झिरीके ऊपर लगे हुए पेचसे इसके छेदमें लटका दिया

जाता है। झिरीको और छेदको भोड़लके टुकड़ोंसे ढक देते हैं ताकि चुम्बक हवासे न हिले। इस दर्पणके सामने लम्प रखनेसे उसकी लौका चित्र उसके पास रखे हुए कागजके गज़ पर बन जाता है। जैसे ही धारा बहनेसे चुम्बक अपने स्थानसे हटता है लौका प्रतिबिम्ब भी गज़ पर हटता है। इस बिम्बके हटावसे चुम्बकके विचलनका ज्ञान होता है। प्रायः गज़ चुम्बकसे एक मीटर दूरी पर रखा जाता है। यदि एक मीटर लम्बा सूचक चुम्बकमें उसके विचलनको नापनेके लिए लगा देते तो यह चाहे कितना ही हलका क्यों न होता चुम्बकको मोटे धागेसे ही लटकाना पड़ता। और फिर धारामापक बहुत जगह घेरता और एक मीटर लम्बे सूचक लगे होनेसे इसकी सूरत भी बिगड़ जाती। इतना ही नहीं एक और बड़ी बात यह है, जो प्रकाश विज्ञानमें साबित की जायगी कि जब दर्पण किसी कोणपर मोड़ा जाता है तो उससे प्रतिफलित किरण दुगने कोणपर मुड़ती है अर्थात् हमारे चुम्बकके विचलनका कोण यदि एक डिगरी हो तो गज़पर लम्पका प्रकाश दो डिगरी हटेगा। इस कारण हमारा सूचक दो मीटर लम्बे सूचकका काम देगा। इतना बड़ा सूचक यदि चुम्बकमें लगाकर हम कितनी ही खराबियां पैदा कर लेते। जब एक ओर सूचक दो मीटर लम्बा हुआ तो वह ४ मीटर व्यास वाले घेरेपर घूमता है। इतने बड़े घेरे पर एक डिगरीकी लम्बाई २$\frac{१}{२}$ शतांशमीटरके लगभग होगी। हम गज़पर चित्रका एक मिली मीटरके बराबर हटाव भी मालूम कर सकते हैं। इस कारण चुम्बकका $\frac{१}{२५}$ डिगरीका विचलन भी मालूम हो जाता है।

क तख़तेपर जो पीतलकी छड़ लगी है उसमें एक बड़ा चुम्बक पहना दिया जाता है और यह चुम्बक नीचे ऊपर खिसकाया जा सकता है और किसी स्थानपर ठहराया जा सकता है। पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्तिके क्षितिज अवयवका काम यह है कि चुम्बकको एक नियत दिशामें रखे और जब धारासे चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न हो तो उसका प्रतिरोध करके चुम्बकको फिर किसी दिशामें ठहरा दे। यह रोकका सा काम करता है और इसको रोक शक्ति ही कहते भी हैं। जो चुम्बक कि पीतलकी छड़में पहनाया रहता है, उसका उत्तरी सिरा उत्तरकी ओर रखकर उसको नीचे उतारते हैं। जिससे धारामापकके चुम्बकपर रोक शक्ति कम होती चली जाती है। चुम्बकके झोटेका समय बढ़ता चला आता है, किन्तु एक स्थान ऐसा आता है कि चुम्बकको उसके नीचे उतारनेसे फिर रोक शक्ति बढ़ जाती है और उसके झोटेका समय फिर घट जाता है। इसलिए धारामापकके चुम्बकके झोटेका समय निकालकर इस चुम्बकको ऐसे स्थानपर छोड़ देते हैं कि जहां उसके रहनेसे झोटे-का समय अधिकसे अधिक हो। इन युक्तियोंसे हमने र को घटा लिया, च का प्रभाव भी कम कर दिया, न को बढ़ा लिया और छोटे कोणका पता लगा लिया अर्थात् ऐसा धारामापक बना लिया जो दुर्बल धाराओंको नाप सकता है। इसी धारा मापकको केलविन दर्पण धारामापक भी कहते हैं।

[असमाप्त]

सूचना

हमें अफसोस है कि छपाईके कुप्रबन्धसे 'विज्ञान' अपने जीवनमें पहलो बार एक मास पिछड़ कर निकल रहा है। हम ग्राहकोंसे क्षमा चाहते हैं और उन्हें यकीन दिलाते हैं कि हम शीघ्र ही छपानेका अन्यत्र उचित प्रबन्ध करेंगे।

निवेदक

मैनेजर

गंगा-पुस्तकमाला

का हिंदी-जगत् खूब स्वागत कर रहा है, क्योंकि इसके ग्रंथ सुयोग्य लेखकोंके लिखे हुए, टाइप, काग़ज़, छपाई, सफ़ाई सभी बातोंमें दर्शनीय एवं सुंदर, मनोभिराम जिल्द और चित्रोंसे विभूषित होते हैं। आइये, ॥) प्रवेश शुल्क भेजकर इसके स्थायी ग्राहक हो जाइये और १५) सैकड़ा कमीशन पर इसके सब ग्रंथ प्राप्त कीजिये।

इसमें यह ग्रंथ निकल चुके हैं—

१. हृदयतरंग-नव्य साहित्य सेवी पंडित दुलारेलालजी भार्गव रचित। मूल्य सजिल्द ।=)॥ सादी ।)

२. किशोरावस्था—हिंदीके सुयोग्य लेखक श्रीयुत गोपालनारायणजी सेन सिंह, बी० ए० लिखित। मूल्य सजिल्द ॥≥) ; सादी ॥)

३. खांजहां। मूल्य सजिल्द १=) ; सादी ॥।=)

यह ग्रंथ शीघ्र ही प्रकाशित होंगे—

४. गृहप्रबंध-प्रो० रामदासजी गौड़, एम०ए०

५. द्रौपदी (जीवन-चरित)—पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

६. भूकंप (अपने ढंगका पहला ग्रंथ)—बा० रामचद्र वर्मा

७. मूर्ख-मंडली (प्रहसन)—पं० रूपनारायण पांडेय

८. गृह-शिल्प—पं० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए०

स्फुट ग्रंथ

सुख तथा सफलता—श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव, बी० ए०। इस पुस्तक को सुख तथा सफलता प्राप्त करने का साधन समझिये। मूल्य सजिल्द ।~) ; सादी =)

सुघड़ चमेली—लेखक, तफ़रीह आदि पत्रोंके भूतपूर्व संपादक पंडित रामजीदास भार्गव। मूल्य =) मात्र

भगिनीभूषण—पं० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए० लिखित। मूल्य =)

पत्रांजलि—मूल्य ।=)

पत्र व्यवहार करने का पता है—

श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव बी० ए०
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

बहुमूत्रनाशक

बहुमूत्र जैसा बुरा रोग है इसे बतलानेकी ज़रूरत नहीं। मधुमेह आदि रोग उत्पन्न होकर पिलव दिमाग़की कमज़ोरी, सिरमें चक्कर आना, पिंडली, पीठ आदिमें दर्द, शरीरकी निर्बलता आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। हमारी, औषधिके सेवनसे यह सब शिकायतें शीघ्र ही दूर हो जाती हैं। बहुत पुराने पुराने रोगी आराम पा चुके हैं, जिनके प्रशंसा पत्र हमारे पास हैं। एककी नकल नीचे लिखते हैं। एक बार मंगाकर परीक्षा अवश्य कीजिये। मूल्य

२१ खुराकका २)

मंगानेका पता—

मैनेजर, रसशाला
कंखल (जि० सहारनपुर)

नकलसर्टिफिकेट

वैद्यराज जनाब पं० रामचन्द्रजी साहब

जो दवा आपने मुझको दूर बारे शिकायत ज्यादा पेशाब आनेके दी थी जिसकी वजहसे रातको एक घंटे तक मुतवातिर सो नहीं सकता था और यह शिकायत मुझको अरसे चार सालसे थी और कमज़ोर भी बहुत हो गया था। आपकी दवाके एक हफ़ता इस्तैमालसे सब शिकायत जाती रही और अब मैं बिलकुल तन्दुरुस्त हूं। लिहाज़ा यह ख़त आपको शुक्रियेके तौरसे लिखता हूं।

टीकम सहाय असिस्टेंट
स्टेशन मास्टर
हरिद्वार

२६-१२-१८

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी नूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१–विज्ञान प्रवेशिका भाग १—लें० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२–विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० महावीर-प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३-मिफताह-उल-फ़नून-अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४–ताप-ले० प्रेमबल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५–हरारत [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी,एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला, प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६–पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य-ले० सालिग्राम वर्मा, ... ‑)

७–केला-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ‑)

८–सुवर्णकारी-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९–चुम्बक-ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।=)

१०–गुरुदेवके साथ यात्रा-ले० बसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी, विशारद, ... ।=)

११–क्षयरोग-ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... ‑)

१२–दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. ‑)

१३–शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. ।)

नवम हिन्दी साहित्य सम्मेलन

नं० हि० सा० स० का अधिवेशन ईस्टरकी छुट्टियोंमें मि० चै० वि० ४, ५, ६ १९१९, ७६ मुताबिक ता० १९, २०, २१ अप्रेल सन् १९१९ ई० में होना निश्चित हुआ है। माननीय पं० मदनमोहन मालवीयने कृपा करके सम्मेलनका सभापति होना स्वीकार किया है। इसलिए सम्मेलनकी नियमावली के ५१ में नियमके अनुसार सम्मेलन-की संबद्ध संस्थाओं, अन्य नागरी प्रचारिणी तथा हिन्दी हितैषिणी सभाओं (जिनमें कमसे कम १५ सभासद हों) को बहुत जल्द अपने अपने अधिवेशन करके प्रतिनिधि चुनने चाहिएँ और उनकी सूची १ अप्रेल सन् १९ ईसवीके पहिले सम्मेलन-के कार्यालयमें भेज देना चाहिये। जिससे प्रतिनिधियोंके ठहरने आदिका प्रबन्ध सुविधाके साथ यथोचित हो सके। प्रतिनिधि फार्म सम्मेलन कार्यालय (नं० २० अपोलो स्ट्रीट बंबई) में पत्र लिखने पर भेजे जा सकते हैं।

सूचना—सर्वसाधारण हिन्दी-हितैषी सज्जन भी स्थान स्थान पर ऐसी सभाएं करके प्रतिनिधि चुन सकते हैं कि जिनमें कमसे कम १५ सज्जन उपस्थित हों।

स्वा० समिति कार्यालय,
२० अपोलो स्ट्रीट,
फोर्ट,
बंबई

भवदीय कृपाकांक्षी
जमनादास द्वारकादास
उमर सोबानी
गोविंदलाल शिवलाल
मोतीलाल
जमनालाल बजाज
मंत्री
नं० हि० सा० स० बंबई

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या ४८ | Reg. No. A-708

भाग ८ | मीन १९७५ । मार्च १९१९ | संख्या ६

Vol. VIII. | No. 6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक—गोपालस्वरूप भार्गव

विषय—सूची

प्रकाशक

विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३) [एक प्रतिका मूल्य ।)

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ नवजात सबसे सरस मासिक पत्रिका

औरोंको दृष्टिमें

चित्रमय जगत्—पत्रिका सब प्रकारसे उच्च और अपने ढंगकी एक नई वस्तु है।

विश्वमित्र—हम इसे उच्च कोटिकी मानते हैं।

प्रकाश—ललिता वास्तवमें रूप, गुण, माधुर्य तथा लालित्यकी खानि है। ललिता, सोलहों आने शृङ्गारसे है। इसपर भी मूल्य ५) वार्षिक कुछ अधिक नहीं। लेख एक से एक बढ़िया, सार गर्भित, विद्वत्तापूर्ण तथा मनोरञ्जक हैं।

सद्धर्म प्रचारक—पत्रिकाका स्वरूप कुछ सरस्वतीसे घटिया नहीं दिखाई देता।

धर्माभ्युदय—बहिरंग मनोहर है और हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उसका अन्तरंग भी हृदयग्राही है।

वार्षिक मूल्य ५) छः मासका मूल्य २॥) नमूनेकी प्रति ॥)

मैनेजर—ललिता, सेवा सदन मेरठ।

यह दवा बालकोंको सब प्रकार रोगोंसे बचाकर उनको मोटा ताज़ा बनाती है।

क़ीमत फ़ी शीशी ॥।)

दादको जड़से उखाड़नेवाली दवा।

क़ीमत फ़ी शीशी ।)

मंगानेका पता—सुख-संचारक कंपनी मथुरा

उपयोगी पुस्तकें

१. दूध और उसका उपयोग–दूधकी शुद्धता, बनावट और उससे दही माखन, घी और 'केसीन' बुकनी बनानेकी रीति ।)। २–ईख और खांड़-गन्नेकी खेती और सफ़ेद पवित्र खांड़ बनानेकी रीति ।-)। ३–करणलाघव अर्थात् बीज संयुक्त नूतन ग्रहसाधन रीति ॥।)। ४–संकरीकरण अर्थात् पौदोंमें मेल उत्पन्न करके वा पेवन्द कलम द्वारा नसल सुधारनेकी रीति, -)। ५–सनातनधर्म रत्न त्रयी-धर्मके मुख्य तीन अंग वेद प्रतिमा तथा अवतारकी सिद्धि ।)। ६–कागज़ काम, रद्दीका उपयोग-)। ७–केला—मूल्य -)। ८–सुवर्णकारी-मूल्य ।) ९–खेत (कृषि शिक्षा भाग १), मूल्य ॥।)

इनके सिवाय, नारंगी सन्तरा, ग्रहणप्रकाश, तरुजीवन, कृत्रिमकाठ, छप रहे हैं। कालसमीकरण (ज्योतिष), दृग्गणितोपयोगीसूत्र (ज्योतिष), रसरत्नाकर (वैद्यक), नक्षत्र (ज्योतिष), आदि लिखे जा रहे हैं, शीघ्र प्रेसमें जानेवाले हैं।

मिलनेका पताः—पं० गंगाशंकरपचौली—भरतपुर

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३। ५।

भाग ८ } मीन, संवत् १९७५। मार्च, सन् १९१९। { संख्या ६

मंगलाचरण

जगहु सकल प्रिय रूप नाम गुन मय, जग-मंगल
लगहु सकल जल-थल-गगन-ग,अग,जग,मग-मंगल
धरहु सुचित हित सहित सुमति-सूचित पग मंगल
करहु अंग संगलित संग रलि मिलि रँग-मंगल
उर भरहु उतंग अभंग अति मंगल-गंग-तरंग-तति
रति बढ़हु प्रगति-अति-युत सकल मंगल-मय विज्ञान प्रति

श्रीपद्मकोट,
प्रयाग ८-१२-७५ } — श्रीधर पाठक।

जार्ज स्टिफिन्सन

[लेखक—अध्यापक महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद]

सभी देशोंमें यह बात थोड़ी बहुत पाई जाती है कि जो अच्छे कुल-के हैं अथवा जो खाने पीनेके मुहताज नहीं हैं वे उन लोगोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं जो दीनताके कारण फटे पुराने कपड़ोंसे अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, पर हैं अच्छे कुलके, अथवा जो न तो अच्छे कुलमें ही पैदा हुए हैं और न कपड़े लत्तोंसे ही सुखी हैं। यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि इस विचार पद्धतिमें प्रकृतिके क्या रहस्य भरे हुए हैं, सम्भव है कि इससे प्रकृतिने यह शिक्षा देना विचारा हो कि प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वह अपनी दशा सुधारे। यदि नहीं सुधारेगा तो उसे पग पगपर अपनेसे ऊंचे मनुष्योंकी घृणा और अपमान सूचक बातोंकी ठोकरें खानी पड़ेंगी। यह भी बहुधा देखा जाता है कि जो लोग नीचे

Biography जीवनी]

दरजेसे ऊंचे दरजेपर पहुंचे हैं वह भी अपनी पुरानी बातें भूल जाते हैं, यहांतक कि दस पन्द्रह या बीस वर्ष पहले वह जिस दशामें थे उसी दशाके आदमियोंको खोटी खरी सुनानेमें चूकते नहीं और इस बातकी कोशिश करते हैं कि लोगोंको उनकी पुरानी बातें न मालूम हो जायं। वह इस चिन्तामें भी रहते हैं कि उच्च कुलके सिद्ध हो जायं और यही दिखाई पड़े कि यह सदैवसे ऐसी ही दशामें रहते आये हैं। इसके कारण कई हो सकते हैं, पर यहां वही लिखे जाते हैं जो अब तक मेरी समझमें आये हैं। (१) प्रत्येक व्यक्तिकी यह नैसर्गिक अभिलाषा कि वह श्रेष्ठ बने और जिन कर्मोंसे श्रेष्ठतामें बट्टा लगता हो उनसे घृणा करे। (२) सामाजिक कुप्रथा जिसके कारण साधारण मनुष्योंकी दृष्टि किसी व्यक्तिकी बड़ाई-का अन्दाज़ा स्वयं उसके वर्तमान गुणोंसे न लगाकर उसके पिछले अवगुणों तथा उसके कुलों-के अवगुणोंसे लगाते हैं और यदि लोगोंको मालूम हो जाय कि अमुक मनुष्यमें पहिले इतनी बुराइयां थीं तो उसका आदर कम करते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिसे मनुष्यकी श्रेष्ठताकी परख यह होनी चाहिए कि जो मनुष्य जितनी ही नीची दशासे ऊंची दशामें जाय उसमें उतनी ही अधिक महानता समझी जाय और उसका उतना ही अधिक आदर किया जाय। यहां मैं एक मनुष्यकी आर्थिक दशा का उदाहरण देकर इस बातको अधिक स्पष्ट कर देता हूं। मान लीजिये कि एक मनुष्यके पास पहले एक हज़ार रुपयेकी जायदाद थी। मरते समय यदि वह एक ही हज़ारकी जायदाद छोड़ जाय तो उससे अच्छा है जो कुल खर्च कर जाता है अथवा कुछ ऋणी भी हो जाता है। परन्तु उससे कदापि अच्छा नहीं है जो न्याय और धर्मको पालते हुए एक हज़ारसे अधिककी सम्पत्ति छोड़ जाता है और इससे भी अच्छा वह होता है जो इतनी सम्पत्ति ही नहीं कमा छोड़ता है वरन् इसकी ऐसी व्यवस्था कर जाता है जिससे उसके वंश-वालों के तथा गांव और देशके जीवनमें भी कुछ सुधार हो सके। गणितकी भाषामें मनुष्यकी

$$\text{श्रेष्ठता} = \frac{द_{व} - द_{अ}}{\text{समय}}$$

जिसमें $द_{व}$ से मनुष्यकी वर्तमान दशाका अर्थ समझना चाहिये और $द_{अ}$ से उसकी आरम्भिक दशाका अर्थ है। समयसे अर्थ उस कालका है जिसमें उस मनुष्यने अपनी दशामें परिवर्तन किया है और यह परिवर्तन उन्नतिकी ओर है।

पाठको, मुझे आशा है कि नीचे जिस महा-पुरुषके जीवनकी कुछ चर्चा आप लोगोंके लिए की जाती है उसकी श्रेष्ठता आप ऊपर कही हुई विधिसे जांचेंगे और देखेंगे कि एक इञ्जनके कुली-के घरमें जन्म लेकर भी मनुष्य अपने पुरुषार्थ, अपने सतत उद्योग और परिश्रमसे कितना बड़ा हो सकता है और अपनी जन्म भूमिका नाम संसारमें विख्यात कर सकता है।

इस पुरुषका नाम था जार्ज स्टिफिन्सन। इङ्गलैंड-के न्युकैसिल नगरसे चार कोस पर वाइलम नाम-का एक छोटा सा गांव था जिसमें कोयलेकी खान थी। सम्भव है कि यह गांव इसी खानके कारण बसा हो और इसमें खानमें काम करनेवाले कुली, मजूर इत्यादि रहते रहे हों। इस खानमें एक पम्पिंग इञ्जन था जिसमें आग जलाने और कोयला झोंकनेका राबर्ट स्टिफिन्सन काम करता था। ऐसे कुलीको अंगरेज़ीमें फैरमैन कहते हैं। इसी फैरमैनका दूसरा बेटा जार्ज स्टिफिन्सन १७८१ ई० को ६ वीं जूनको एक झोपड़ीमें पैदा हुआ। इस झोपड़ीमें चार कोठरियां थीं, दो ऊपर, दो नीचे। एक एक कोठरीमें एक एक कुलीका कुटुम्ब रहता था। राबर्ट स्टिफिन्सन उन दिनों १२ शिलिंग प्रति सप्ताह कमाता था, जिससे उस-को ६ लडके लड़कियोंका पालन पोषण करना पड़ता था। इतनी थोड़ी आयमें लड़कोंके पढ़ाने लिखानेका कौन कहे उनकी रोटी दालका भी

ठीक ठीक प्रबन्ध नहीं हो सकता था। इस कारण जार्ज स्टिफिन्सनको अपने जीवन सुधारनेकी कुछ सामग्री नहीं मिल सकी और उसका बालपन कुलियोंके बालकोंके साथ खेलने कूदने तथा कभी कभी किसीका छोटा मोटा बोझा ढोने अथवा और कोई काम कर देने और दो चार पैसे कमा लेनेमें बीता। उसमें उच्चाभिलाषा ज़रूर रही होगी, क्योंकि बड़े होने पर वह काममें ऐसा दिल लगाने लगा मानों बहुत पहलेसे वह तैयारी कर रहा था। जार्जका पिता अपना काम बड़ी सावधानी और मुस्तैदीसे करता था, जिससे उसके लड़कोंपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। जार्ज बदनका दृढ़ था, इसलिए छोटी अवस्थामें भी वह इतना कमा लेता था जितनेसे कोई भी सूखी रूखी रोटीका मुहताज नहीं हो सकता। उसकी यह अभिलाषा सदा रहा करती थी कि वह दिन कब आयगा जब यह अपने पिताकी सी नौकरी करने लगेगा। इसकी यह इच्छा बहुत जल्द पूरी हुई। चौदह वर्षकी ही अवस्थामें इसे असिसटेन्ट फैरमैनी मिल गयी, जिससे उसको प्रति दिन एक शिलिंग मिलने लगा।

जब कुटुम्ब रोज़गारकी खोजमें दूसरी जगह गया तो जार्ज मिडहिलविनिनमें फैरमैनी करने लगा, जहां वह उस इंजनकी पूरी पूरी जानकारी कर लेनेको कटिबद्ध हो गया जो इसकी देख भालमें था। इच्छा यह थी कि यदि इंजनके हरएक कल पुरज़ेसे जानकारी हो जायगी तो इंजनमैनकी नौकरी मिल जायगी, जिसमें अच्छा वेतन मिलता है। इसका यह नियम बड़ा ही अच्छा था कि सीढ़ी सीढ़ी ऊपर चढ़ना चाहिये। इसी नियमको सामने रखकर वह अपना सारा समय इंजनकी ही जांच पड़तालमें लगाया करता था। इससे एक लाभ यह भी था कि यह उन दोषोंसे भी बचा रहता था, जिनमें इसके साथी अवकाशके समय फंस जाया करते थे। इसके साथियोंको उसके गुणोंका स्वप्नमें भी ज्ञान नहीं था। हां शारीरिक बलमें, हथौड़ा फेंकनेमें और भारी भारी बोझोंके उठानेमें इसने अवश्य नाम प्राप्त कर लिया था। कहते हैं कि जिस समय इसका वेतन १२ शिलिंग प्रति सप्ताह हो गया उस समय फैरमैनके दफ़्रसे बाहर निकल कर उसने अपने साथियोंसे कहा 'अब मैं आदमी हुआ'; लेकिन थोड़े ही दिनोंमें उसको आगे बढ़नेकी इच्छा हुई।

सत्रह वर्षकी अवस्थामें यह इंजनमैनके पदपर नियुक्त किया गया। इसका पिता अब फैरमैन होनेके कारण इससे नीचे हो गया। इस समय ज़िम्मेदारी तो अवश्य बढ़ गयी, परन्तु साथ ही साथ इंजनकी पूरी जानकारी कर लेनेका मौक़ा भी ख़ूब मिलता था। अब तो यह अवकाशके समय इंजनके एक एक पुर्ज़ेको अलग कर लेता था और साफ़ करता था। इस काममें इसको तनिक भी घबड़ाहट नहीं मालूम होती थी। नियम यह था कि जब कभी कोई इंजन बिगड़ता था और इंजनमैन उसको ठीक नहीं कर सकता था तो खानके प्रधान इन्जीनियरको सूचना दी जाती थी। परन्तु जार्ज स्टिफिन्सनको इंजनका इतना ज्ञान हो गया था जितना किसी इन्जीनियरको भी नहीं था, इसलिए इसको किसी इन्जीनियरको सलाह नहीं लेनी पड़ती थी, वरन् जहां इन्जीनियरकी बुद्धि काम नहीं करती थी वहां जार्ज बुलाया जाता था।

इसने सुना था कि वाट और बोल्टनके इंजन उन सब इंजनोंसे अच्छे हैं जिनको इसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसलिए इसमें यह उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई कि उन इंजनोंकी जानकारी भी किसी तरह करनी चाहिये। परन्तु इन इंजनोंका ज्ञान तो पुस्तकोंमें बंद था, जो इसकेलिए काला अक्षर भैंस बराबर थीं। इसलिए उसने पढ़ना लिखना सीखनेके लिए स्कूलमें नाम लिखाया। ज्ञान बढ़ानेका प्रेम इतना था कि इसको इसकी लज्जा नहीं मालूम होती थी कि मूंछ डाढ़ावाला आदमी छोटे छोटे बच्चोंके साथ बैठकर

गिनती पहाड़ा और बारहखड़ीका पाठ पढ़े। रातमें इंजनकी आगके सामने स्कूलका काम किया करता था। इसने यह विचार पक्का कर लिया था कि आगे बढ़नेमें लिखना पढ़ना न जाननेसे जितनी रुकावटें पड़ती हैं सब दूर कर देनी चाहियें। इसलिए छोटी छोटी बातोंके सीखनेमें भी आनाकानी नहीं की और न यह विचार किया कि इसका समय नहीं रहा। इंजनके सम्बन्धका जो कुछ ज्ञान पुस्तकोंमें था कमसे कम उसको जाननेके लिए पासके ही गांवकी रात्रि पाठशालाके एक दीन अध्यापकका चेला बन गया और थोड़े ही दिनोंमें इतनी उन्नति की कि सबको अचम्भा हुआ। उसको यह तो समझानेकी आवश्यकता थी ही नहीं कि विद्यामें क्या बल होता है और विद्याकी उन्नति करनेकेलिए पढ़ना लिखना कितने अच्छे साधन हैं, इसलिए पढ़ने लिखनेमें उसने बड़ा परिश्रम किया। इंजनमैनसे भी ऊपर ब्रेकमैन होता है। इसका काम होता है इंजनकी तथा उन कलोंकी देख भाल करना जिनसे कोयला नीचेसे ऊपर खींचा जाता है। जार्जको इस कामकी जानकारी कुछ कठिनाईसे हो पायी क्योंकि इसके और साथी ईर्षासे बाधाएं डालते थे। लेकिन इन कठिनाइयोंको दूर करके १८०१ ईसवीमें जब इसकी अवस्था केवल २० वर्षकी थी डोली पिटका ब्रेकमैन नियुक्त किया गया। यहां यह एक छोटे किसानके साथ रहने लगा और यहीं उसने फैनी हैन्डरसन नामकी स्त्रीसे ब्याह किया, जो पहले इसी घरमें नौकरानीका काम करती थी। यह स्त्री नम्रता, दया, शालीनता और व्यावहारिक बुद्धिमें बड़ी चतुर थी। इसलिए दोनोंका निर्वाह बड़ी अच्छी तरह हुआ।

जार्ज स्टिफिन्सनका पहला आविष्कार २१ वर्षकी अवस्थामें हुआ। पहले पहल इसने इंजनका एक ब्रेक बनाया जो उपयोगी नहीं ठहरा।

१८०३ ई० के अक्तूबर महीनेमें इसके इकलौते बेटे राबर्टका जन्म विलिंगटन कोमें हुआ जो अपने पिताके समान बुद्धिमान और प्रसिद्ध हुआ। एक बरसके बाद इसकी स्त्रीका देहान्त हो गया। अब तक जार्ज न्यूकैसिलके आसपासके कोयलेकी खानवाले गांवोंमें ही रहता था, परन्तु अब उसने सवा सौ कोस दूर मौन्ट्रोज़के पुतलो घरके बोल्टन और वाटके बनाये हुए इंजनके सुपरडेंटका पद स्वीकार कर लिया और एक बरस काम करके ४२० रुपये बचा कर घर लौट आया। इस रुपयेमेंसे कुछ तो अपने बूढ़े मातापिताको दे दिया और कुछ रुपया देकर सैनिक सेवासे अपना जी छुड़ाया। इस समयसे १८०८ ईसवी तक इसे चिन्ताओंका सामना करना पड़ा। इसके पास इतना रुपया भी नहीं था कि अपनी बहिन बहनोईके साथ अमेरिका भी जा सके। बुद्धिमानी और कार्यपटुताके पुरस्कारमें तीस वर्षकी अवस्थामें कुछ रुपया उसके हाथ लगा। किलिंगवर्थ हाईपिटका एक पम्पिंग इंजन बिगड़ गया था, जिसको ठीक करनेके लिए बड़े बड़े इंजीनियर आये, पर सबकी बुद्धि चकरा गयी और सब निराश होकर लौट गये। तब स्टिफिन्सनकी पुकार हुई। स्टिफिन्सनने इंजन सुधार दिया। इसीके उपलक्ष्यमें उसको १५०) रुपयेका इनाम मिला था। इस घटनाके ठीक बीस बरस बाद उसने अपने हाथसे एक इंजन तैयार किया जो घंटेमें १८ कोस जा सकता था। फिर लिवरपूलसे मैनचेस्टरतक रेलवे बनाई जिसको बड़े बड़े इंजीनियरोंने भी असम्भव समझ लिया था। किलिंगवर्थ हाईपिटके इंजन ठीक कर देनेके लिए इसे डेढ़ सौ रुपये ही नहीं मिले वरन् १८१२ ई० में १५००) सालका इंजनराइट (इंजन बनानेके प्रधान कारीगर) का पद मिला।

अब तक तो इसे अपनी ही उन्नतिके लिए जान लड़ाना पड़ती थी। परन्तु अब इसका बेटा राबर्ट भी पढ़नेके योग्य हो गया। इसको पढ़ाने लिखानेका इसने अच्छा प्रबन्ध किया, क्योंकि इसको तो अपनी ही दशासे अनुभव हुआ था कि जो मनुष्य पढ़ना लिखना नहीं जानता उसे न

तो यही मालूम हो सकता है कि किस विषयमें कहां तक लोगोंने काम कर डाला है और नयी बातोंकी खोज कहांसे आरम्भ करना है और न उसे उन विघ्न बाधाओंका ही कुछ पता चलता है, जिनका सामना करके और लोगोंने मार्ग साफ़ किया है। इसी विचारसे सन् १८१५ ई० तक डेढ़ हज़ार रुपया बचाकर उसने अपने बेटेको न्यूकैसिलके बड़े स्कूलमें पढ़नेकेलिए भेजा। अपना पढ़ना लिखना भी इसने उसी मुस्तैदीके साथ जारी रखा। इसके विद्याव्यसन तथा काम करनेके प्रेमका प्रभाव इसके बेटेपर इतना पड़ गया था जितना शायद ही किसी स्कूली पढ़ाईसे पड़ता। इसका लड़का जो कुछ नयी बात स्कूलमें सीखता उसे यह भी पूछकर जान लेता था। राबर्टका यह नियम हो गया था कि पुस्तकालयसे विज्ञानकी अच्छी अच्छी पुस्तकें घर ले जाकर अपने बापके साथ पढ़ा करता था, जिससे बाप बेटे मिलकर इतनी जानकारी कर लेते थे जितनी शायद ही किसी अध्यापकके द्वारा हो सकती। सन्ध्याका समय पढ़ने लिखने और चित्र तथा नमूने (model) बनानेमें बीतता था।

जहां कहीं और जब कभी जार्ज स्टिफिन्सन किसी इंजन संबन्धी नये संशोधनकी बात सुनता उसे सीखनेमें जी जानसे लग जाता था। यदि कहीं उड़ती हुई ख़बर भी पाता कि कोई इंजन नये ढंगका बनाया गया है तो उसकी उत्कंठाका ठिकाना न मिलता। उस समय जिस जिस ढंगके इंजन बन चुके थे उन सबसे पूरा परिचय प्राप्त कर लिया था और यह भी जान लिया था कि उनमें कैसे कैसे संशोधनोंकी आवश्यकता लोगोंको मालूम होती है। अविश्रान्त जीवन, उच्चाभिलाषा और बुद्धिकी तीव्रता, यह तीन ही उसका जीवन उच्च और परोपकारी बनानेके लिये बहुत थे। पीछेसे तो प्रतिभाने भी उसका ऐसा साथ दिया कि सारे विघ्न रफ़ूचक्कर हो गये और उसने संसारकी गमनागमन (locomotion) प्रथाकी काया पलट कर दी। छुटपनमें उसे ट्रामगाड़ीके देखनेका मौका मिलता था क्योंकि इंगलैंडकी सबसे पहली ट्रामकी सड़कोंमेंसे एक सड़क उस झोंपड़ीके सामनेसे होकर जाती थी जिसमें स्टिफिन्सनका जन्म हुआ था। स्टिफिन्सन बचपनमें देखा करता था कि घोड़े किस परिश्रमसे लकड़ीकी पटरियोंपर ट्राम गाड़ी घसीटा करते थे। १८०८ ई० में लकड़ीकी पटरीकी जगह ढलवां लोहेकी रेल लगायी गयी। कोयलेकी खानसे सम्बन्ध रखनेवाली ट्रामगाड़ीको भापके बलसे चलानेका पहला उद्योग लीड्स निवासी ब्लेन्किन्सोपने १८११ ई० में किया था।

इस इंजनका एक पहिया दांतदार था, जो रेलके दांतोंपर होकर आगे बढ़ता था। यह रेल आज कलकी रेलकी तरह चिकनी नहीं थी वरन् दांतदार थी। उस समय लोगोंका विश्वास था कि चिकनी रेलपर चिकना पहिया घूमकर उसी जगह रह जायगा, आगे नहीं बढ़ेगा।

वाइलमकी कोयलेकी खानके मालिक मिस्टर ब्लैन्केटने मिस्टर हेडलेका बनाया और पेटेन्ट कराया 'पफिंगबिली' (Puffing billy) नामका इंजन खड़ा किया जो कई प्रयत्नोंके बाद १८१३ ई० में काम देने लगा और १८७२ ई० की छठी जून तक काम देता रहा। इस तारीखके बाद यह इंजन पेटेन्ट आफ़िसके संग्रहालयमें रखे जानेके लिए ख़रीद लिया गया। इस इंजनके पहिये बिना दांतके थे। यह संशोधन वाइलममें ही किया गया था। इसीके साथ एक और संशोधन किया गया था जो यह था कि धुआं निकलनेकी नली बैलरमेंसे होकर लगायी गयी थी, जिससे पानीका अधिक भाग आंचके सामने पड़ने लगा और कम कोयलेमें अधिक भाप बनने लगी। पीछेसे तो इस रीतिमें बहुत से महत्वके संशोधन हुए।

किलिंगवर्थमें नौकरी लग जानेपर स्टिफिन्सन खानमें काम करनेकी रीतिमें उन्नति

करनेका उपाय सोचने लगा। खानके हवा आने जानेके छेदको तलीमें एक इंजन खड़ा किया गया था जिससे अब तक केवल पानी खींचनेका काम लिया जाता था। स्टिफिन्सनने यह ढंग निकाला कि इसी इंजनके द्वारा और गहरी तहोंसे कोयला खींचकर ऊपर लाया जाने लगा। जहां जहां सम्भव था उसने खानसे नदीके घाटोंतक ढलवां सड़कें बनवाईं, जिनपर कोयलेसे लदी हुईं ट्रामगाड़ियां उतरते समय खाली ट्रामगाड़ियों-को ऊपर खींचती चलें। इस प्रकार उसने हर तरहसे अपने मालिकको दिखला दिया कि उन्हें एक अच्छा और चतुर इंजनका मिस्त्री मिल गया है जो उन्नतिका उपाय ढूंढनेमें कसर नहीं करेगा। इस समय वह मिस्टर ब्लैंकेटवाले इंजनको देखनेके लिए बहुधा जाया करता था और यह देखा करता था कि उससे कैसा काम निकल रहा है और उसमें कौन कौनसे गुण दोष हैं। १८१३ ईसवीमें उसने अपने हाथसे एक इंजन बनानेका निश्चय किया। इसको इसका तो डर था ही नहीं कि पहला इंजन ऐसा बने कि उसमें कोई दोष न रहने पावे। उसको यह नहीं पसंद था कि जब तक एक आदर्श इंजन कल्पना भवन-में न खड़ा हो जाय तब तक स्थूल इंजन बनानेमें हाथ ही न डाला जाय। उसको तो इसका अनु-भव था, जैसा कि हर क्रियावानका अनुभव होता है कि दोषोंके देखनेसे ही सुधार करनेका अवसर मिलता है और जो मनुष्य भूलके डरसे किसी काममें हाथ नहीं डालता वह कभी भी बड़ा आदमी नहीं हो सकता। जो दौड़ता है वही गिरता है। यदि गिरनेके डरसे कोई दौड़े ही नहीं तो उसे दौड़नेका बल प्राप्त ही नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो मनुष्य भूल करता है परन्तु सुधा-रनेका उपाय भी सोचा करता है वही आगे चल कर महापुरुषका पद पाता है और उसीके द्वारा बड़े बड़े महत्वके काम हो सकते हैं और उसीके हाथ सफलता की कुंजी आती है। पहले इंजनमें स्टिफिन्सनने दो ही एक शोध किये थे। अपने ही अनुभवसे उसने यह जान लिया था कि जिसे लोग चिकनी रेल कहते हैं उसमें भी इतनी रगड़ होती है कि पहिये या रेलको दांतदार रखनेकी आवश्यकता नहीं है। १८१४ ई० की २५ जुलाईको किलिंगवर्थ रेलवेमें इसका पहला इंजन चलाया गया। कुछ ही महीनों बाद इस इंजनके गुण दोषोंपर पूरी विवेचना करके दूसरा इंजन तैयार किया, जिसको १८१५ ईसवीमें पेटेन्ट करा लिया। इस इंजनसे तैयार करनेमें उसने नीचे लिखी बातोंका ध्यान रखा था—

(१) इंजनकी यंत्ररचना सरल हो और वर्तमान इंजनोंकी अपेक्षा थोड़े खर्चमें चलाया जा सके।

(२) भाप जितनी जल्दी बन सके उतना ही अच्छा; क्योंकि इंजनके चलानेका बल भापसे आता है। इसके लिए दो बातोंकी आवश्यकता थी-एक तो जिस भागमें पानी उबाला जाता है अर्थात् 'बैलर' उसका बहुत बड़ा अंश आगके सामने रहे; दूसरे आग भी ख़ूब तेज़ीसे जलायी जा सके।

(३) जब इञ्जनमें इतनी तेज़ी हो कि भारीसे भारी बोझोंसे लदी हुई गाड़ियां तेज़ीसे खींची जा सकें तो यह भी आवश्यक था कि भापका दबाव बहुत हो। परन्तु दोष यह था कि बड़े दबाव-वाली भाप डट्टेसे बाहर निकलनेपर आस पास के रहनेवालोंको बड़ा कष्ट पहुंचाती थी। इसलिए स्टिफिन्सनके चित्तमें यह विचार समाया कि यदि डट्टेसे (piston) निकली हुई भाप उसी राह बाहर निकाली जाय जिस राह आगका धुआं निकलता है तो यह दोष भी मिट जाय और आग-को तेज़ रखनेके लिए उचित झोंका (blast) भी पैदा हो जाय, जिससे धुआं और भाप ऊपर ही ऊपर हवामें उड़ जायं। इस युक्तिसे भापका बनाना भी सुगम हो गया।

अब बैलरका आकार ऐसा हो गया कि थोड़ी

थोड़ी दूरपर समानान्तर पानीके नल लगा दिये गये। इन नलोंके भीतर पानी भरा रहता था और बाहर चारों ओर आगकी लौ गरम करती हुई झोकेके साथ चिमनीमें चली जाया करती थी। इससे कोयलेकी बचत भी होने लगी। इस प्रकार अनेक-नल-युक्त बैलर (multitubular boiler) की रचना हुई। पर यह संशोधन उसी समय नहीं हो पाया था। इसके लिए तो बड़ा परिश्रम और माथा-पच्ची की गई थी। १८१५ ई० के इंजनमें तो यह हुआ था कि पहिये और बेलनका सम्बन्ध सीधा और सुगम हो गया, सब पहिये धरातलके समानान्तर छड़ों द्वारा जोड़ दिये गये और भाप द्वारा झोका पैदा करके आग भड़कानेका प्रबन्ध कर दिया गया।

आजकलके जितने इंजन देखनेमें आते हैं सबमें स्टिफिन्सनके दूसरे इंजनकी प्रधान यंत्र रचना की नकल है। यदि भापके द्वारा झोका पैदा करके आग जगानेकी युक्ति न निकली होती तो अनेक नल-युक्त बैलरोंका बनाना ही सम्भव नहीं था। इसलिए आजकलके रेलकी सवारी करके हफ्तों की राह घंटोंमें पूरी करनेवाले नरनारियोंको स्टिफिन्सनका कृतज्ञ होना चाहिये।

उन दिनों इंजन बनानेके लिए चतुर मिस्त्री तो कहीं मिलते ही नहीं थे, इसलिए स्टिफिन्सनको मिस्त्री बनानेका काम भी करना पड़ता था और उनको यह लालच दिलाना पड़ता था कि काम सीख लेनेपर उनको स्थायी नौकरी मिलेगी और अच्छा वेतन भी दिया जायगा।

पाठको, अभी जार्ज स्टिफिन्सनके जीवनकी बहुत सी बातें कहनी हैं, परन्तु लेख वैसे ही बहुत बढ़ गया है और सम्भव है कि आपको सब पढ़नेका अवकाश भी एक साथ न मिले। इसलिए वह दूसरी बारकेलिए रख छोड़ा है। यदि इससे हमारे बच्चों और नवयुकोंमेंसे दो चारको भी यह शिक्षा मिलेगी कि मनुष्य गिरीसे गिरी दशामें क्यों न हो यदि वह चाहे तो अपनेको, अपनी जन्मभूमिको, नहीं नहीं सारे संसारको उस दशासे उन्नत दशामें छोड़ सकता है, जिसमें उसने संसारको पाया था। संसारमें कोई बात असम्भव नहीं है। इसके साधन हैं—अविश्रान्त परिश्रम, खोजकी प्रवृत्ति, अपने गुण दोषको गुणदोष समझकर उन्नति करनेकी अच्छी अभिलाषा। फिर तो संसारकी सभी विघ्न बाधाएं चेरी हो जाती हैं।

दृष्टि

[ले०—प्रो० निहाल करण सेठी, एम. एस-सी.]

प्रकाश सम्बंधी साधारण घटनाओंका प्रारम्भिक ज्ञान हो जानेपर यह उचित जान पड़ता है कि दृष्टिके सम्बंधमें भी-स्पष्ट दिखलाई देनेके लिए जिन बातोंकी आवश्यकता है उनके विषयमें भी--कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय।

सबसे पहिले यह जान लेना चाहिये कि किसी भी वस्तुको देखनेमें हम एक एक विन्दुको पृथक् पृथक् किरणावलियोंके द्वारा देखते हैं। एक विन्दु विशेषसे चलनेवाली किरणावली उसी विन्दुका ज्ञान कराती है। यह किरणावली जिसके नेत्रमें पहुंचनेसे हम एक विन्दुको देख सकते हैं या तो समानान्तर होनी चाहिये या अपसृत (divergent) अर्थात् या तो उसकी किरणोंका पारस्परिक अंतर बराबर रहना चाहिये या जैसे जैसे वे नेत्रोंके निकट आवें तैसे तैसे यह अंतर बढ़ता रहना चाहिये। परिच्छिन्न (convergent) किरणावली के द्वारा-जिसमें यह अंतर घटता जाता है—हमारे नेत्र कभी नहीं देखते और न देख सकते हैं। केवल एक किरणसे भी उस विन्दुको देख लेना असम्भव है।

बहुत ही असाधारण नेत्र अर्थात् प्रत्येक निकटदर्शी अथवा अत्यधिक दूरदर्शी नेत्रको छोड़कर प्रत्येक नेत्रके लिए एक निश्चित दूरी है

(लगभग १० इंच) जहां पर रखनेसे अन्य स्थानोंकी अपेक्षा वस्तु अधिक स्पष्ट दिखलाई देती है। इस दूरीको स्पष्ट दृष्टिको लघुतम दूरी कहते हैं। स्वभावसे ही प्रायः प्रत्येक मनुष्य जब कभी वह किसी वस्तुको ग़ौरसे देखना चाहता है तब सदैव उसे लगभग इतनी ही दूरीपर रखता है। यदि अधिक निकट रखले तो उसके नेत्रोंको कुछ कष्ट बोध होने लगता है और वस्तु उतनी अच्छी और स्पष्ट रीतिसे नहीं दीखती। वास्तवमें उसे अपने पट्ठोंपर बल लगाकर नेत्र यंत्रको कुछ विकृत करना पड़ता है ताकि वह साधारण अविकृत दशाकी अपेक्षा अधिक अपसृत किरणोंसे भी स्पष्ट देख सके। प्रकृतिने इतना प्रबंध अवश्य रखा है कि आवश्यकता पड़नेपर ५ इंचसे भी मनुष्य देखले। किन्तु जब जब ऐसा किया जाता है नेत्रोंको हानि पहुंचती है। यदि वस्तु इससे अधिक दूरीपर हो तो वह स्पष्ट तो दिखलाई देगी किन्तु छोटी हो जानेके कारण उसका अंग प्रत्यंग स्पष्ट नहीं देखा जा सकता। नेत्रकी सहायताके लिए जो यंत्र दूरबीन, सूक्ष्मदर्शक इत्यादि बनाये जाते हैं उनमें इन बातोंका विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

ऊपर कहा गया है कि दूरसे वस्तु छोटी जान पड़ती है। इसका कारण यह है कि वस्तुकी छोटाई बड़ाईका ज्ञान इस बातपर निर्भर है कि उससे आनेवाली किरणावली थोड़ी अपसृत है या अधिक अर्थात् यह ज्ञान उस कोणके द्वारा होता है जो वस्तुसे हमारे नेत्रपर अवतरित होता है। अर्थात् उस वस्तुके शिरसे और अधोभागसे आनेवाली किरणावलियोंके बीचवाले कोणके द्वारा हमें भास होता है कि वस्तु छोटी है या बड़ी। यदि यह कोण छोटा हुआ तो वस्तु छोटी मालूम होती है और बड़ा हुआ तो बड़ी। यह प्रत्यक्ष है कि जब वस्तु निकट होगी तब यह कोण भी बड़ा होगा। अतः वस्तु बड़ी दिखलाई देगी। किन्तु दूर लेजानेपर कोण छोटा हो जायगा और वस्तु भी छोटी जान पड़ने लगेगी। यदि वस्तुको दूर ही रखकर किसी प्रकार उन किरणोंके इस कोणको बड़ा कर दें तो वस्तु बड़ी देख पड़ेगी और आदतके कारण हमें ऐसा भास होने लगेगा कि वह वस्तु हमारे बहुत निकट है। दूर दर्शकमें यही होता है।

यदि यह कोण एक कला (अंशका ६० वां भाग) से कम हो तो वस्तु इतनी छोटी जान पड़ेगी मानों उसकी कुछ लम्बाई है ही नहीं। तारोंके केवल विन्दुमात्र जान पड़नेका भी यही कारण है। यही नहीं किन्तु यदि दो वस्तुएं भी हमारे नेत्रपर एक कलासे कमका कोण बनावें तो वे पृथक् पृथक् न मालूम होंगी। दोनों एक ही जान पड़ेंगी। इसी कारण बहुत से तारे जोड़ले होनेपर भी एक ही देख पड़ते हैं। बड़े बड़े दूरदर्शक ही उन्हें पृथक् पृथक् दिखला सकते हैं।

कैसा भी असाधारण नेत्र क्यों न हो—कितना ही विकृत वह क्यों न हो गया हो—किन्तु यदि स्पष्ट देख सकनेकी शक्तिका नाश नहीं हो गया है तो उपयुक्त चशमा लगा देनेसे वह साधारण नेत्रके समान ही काम देने लगेगा। यह बात केवल निकटदर्शीपन और दूरदर्शीपनके लिए नहीं है किन्तु उस विकारके लिए भी सर्वथा सत्य है कि जिसमें मनुष्य खड़ी पड़ी और तिरछी रेखाओंको एक ही साथ स्पष्ट नहीं देख सकता। यदि खड़ी स्पष्ट दिखलाई देती हैं तो पड़ी नहीं दीखतीं इत्यादि। इस विकारका नाम असमदृष्टि (astigmatism) है।

किन्तु एक और प्रकारका विकार है जिसके लिए उपरोक्त बात ठीक नहीं। इसे वर्णान्धता कहते हैं। इसमें नेत्र किसी विशेष रंग अथवा रंगोंको नहीं देख सकता। यथा कोई कोई लाल वस्तु नहीं देख सकते और सब रंग भली भांति देख सकते हैं। उन्हें लाल वस्तु सर्वथा काली जान पड़ती है। वे समझते हैं कि उससे प्रकाश आता ही नहीं। यह विकार किसी भी

उपायसे दूर नहीं हो सकता, इसमें नेत्रकी एक विशेष शक्तिका नाश हो जाता है।

यह भी भली भांति समझ लेना चाहिये कि हमें वस्तुओंकी दूरीका जो ज्ञान होता है वह दो नेत्रोंके होनेका फल है। हम जो यह जान सकते हैं कि अमुक वस्तु दूर है, अमुक उसकी अपेक्षा निकट, अथवा एक ही वस्तुका अमुक भाग समीप है और अमुक कुछ परे, इसमें यह आवश्यक है कि दोनों नेत्रोंका एक ही साथ उपयोग हो। एक नेत्र द्वारा यह कार्य नहीं हो सकता। हां, यदि अंतर बहुत अधिक हुआ तो वस्तुके बड़े छोटे आकारसे, अथवा उसके स्पष्ट देख सकनेके लिए जो प्रयत्न करना पड़ता है उससे थोड़ा बहुत ज्ञान हो सकता है। किन्तु मुख्य बात यह है कि वस्तुको दोनों नेत्रोंसे देखनेके लिए दोनों पुतलियोंको घुमाकर ऐसी अवस्थामें रखना पड़ता है कि दो वस्तुएं न दिखलाई देकर एक ही देख पड़ें। यदि ऐसा न करें तो अवश्य दो वस्तुएं नज़र आयंगी। नेत्रके पास उंगलीसे थोड़ा दबाकर हम यह बात प्रत्यक्ष देख सकते हैं। प्रत्येक वस्तुके स्थानमें दो वस्तुएं दिखलाई देती हैं और उंगलीका दबाव बढ़ानेसे इनका अंतर भी बढ़ जाता है।

दूरकी वस्तुकेलिए पुतलियोंको थोड़ा घुमाना पड़ता है और निकटकी वस्तुके लिए अधिक। अपने मित्रसे कहो कि अपनी नाककी नोकको देखे। तब उसके नेत्रोंको देखो कि कितने घूम गये हैं। इस घुमावके लिए जो प्रयत्न करना पड़ता है उसीसे दूरीका ज्ञान हो जाता है।

किन्तु इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। यह हम बहुत आसानीसे पता लगा सकते हैं कि दोनों नेत्रोंसे ठीक एक सा नहीं दिखाई देता। दाहिनी आंखसे वस्तुकी दाहिनी ओरका और बाईंसे बाईं ओरका भाग कुछ अधिक दिखाई देता है। दोनोंसे एक साथ हम एक नेत्रकी अपेक्षा कुछ अधिक भाग देख सकते हैं। यदि नेत्रोंका अंतर और अधिक होता तो यह लाभ और भी बढ़ जाता। दूरघन चित्र दर्शक (Telestereoscope) नामक यंत्रमें कृत्रिम उपायसे ऐसा किया भी जाता है। परन्तु यही न समझना चाहिये कि नेत्रोंके होनेसे हम वस्तुका कुछ अधिक भाग देख सकते हैं। वस्तु घन रूप भी इसी कारण दिखलाई पड़ती है। यदि हमारे एक ही नेत्र होता तो हमें सब वस्तुएं एक ही धरातलमें चित्र लिखित सी जान पड़तीं। यह बात घन चित्रदर्शक (Stereoscope) नामी खिलौनेसे भली भांति प्रगट होती है। उसमें एक ही धरातलपर खिंचे हुए चित्र होते हैं। यों तो दोनों एक से ही जान पड़ते हैं किन्तु उनमें अन्तर अवश्य होता है। जो दृश्य दाहिनी आंख देखती है वह एक चित्रमें होता है और से बांई देखनेका दूसरेमें। इस यंत्रमें एक एक चित्रको एक एक नेत्र देखता है और ऐसा भास होने लगता है मानों वास्तविक रीतिसे दोनों नेत्र देख रहे हैं। इसी उपायसे जाली नोट पहचाना जा सकता है। वास्तविक नोटके बराबर रखकर इस यंत्र द्वारा देखनेसे यदि किसी भी अक्षरमें कुछ भी अंतर हो तो वह उभरा हुआ या धंसा हुआ मालूम होने लगेगा।

एक और भी बात स्मरण रखनी चाहिये कि हमारे नेत्रोंको प्रकाशका अनुभव ठीक उसी समय नहीं होता जबकि प्रकाश वास्तवमें नेत्रोंपर पड़ रहा हो। यह ज्ञात हो चुका है कि बिजलीकी चमक हमारे बहुत निकटस्थ विद्युत्‌की चिनगारीकी चमक हमें कुछ देर बाद दिखलाई देती है। वास्तवमें जिस समय हम उसे देख पाते हैं तब तो उसका अस्तित्व ही नहीं होता, कितनी देर बाद वह दिखलाई देती है यह भी नापा जा सकता है। बात यह है कि प्रकाश नेत्रपर पड़कर ज्ञान तन्तुओंमें कम्पन पैदा करता है और इस गतिका असर मस्तिष्क तक पहुंचनेमें कुछ समय लगता है।

यही नहीं लकड़ीका एक सिरा जलाकर वेगसे

घुमानेपर जो प्रकाशमान वृत्त दिखलाई देता है उससे स्पष्ट है कि एक बार प्रकाश पड़नेपर उसका असर प्रकाशके लोप हो जानेपर भी कुछ समय तक बना रहता है। क्योंकि यह तो सम्भव नहीं कि लकड़ीके सिरे द्वारा बनाये हुए समस्त वृत्तसे एक ही साथ प्रकाश नेत्रोंमें पहुंच जाता हो। किन्तु यह असर कितने समय तक रहता है यह बतलाना कठिन है, क्योंकि भिन्न भिन्न नेत्रोंके लिए यह समय भी भिन्न भिन्न होता है। और एक ही नेत्र-के लिए भी प्रकाशकी तीव्रताके अनुसार न्यूनाधिक हो जाता है। यदि प्रकाश बहुत अधिक तीव्र हो तो यह असर बहुत देर तक रहता है। हां, रंगमें अन्तर अवश्य हो जाता है। थोड़ी देर किसी प्रचंड प्रकाश पुंजकी ओर देखकर आंख मूंद लेनेपर भी अंधकार नहीं मालूम होता। वह वस्तु अब प्रायः कालीसी जान पड़ती है। इसका कारण यह है कि नेत्रके जिस भागपर तेज़ प्रकाश पड़ा था वह थक गया है। उसपर अब साधारण प्रकाश-का असर नहीं होता। किन्तु शेष नेत्रपर पलकोंमें-से जो थोड़ा थोड़ा प्रकाश आंखमें जाता है उसका भी असर हो जाता है। अतः वही थका हुआ भाग काला जान पड़ता है। इसी प्रकार यदि तेज़ लाल प्रकाशवाली वस्तुको कुछ देरतक देखकर सफ़ेद दीवारकी तरफ देखें तो वह वस्तु कुछ समयतक अब भी दिखलाई देगी किन्तु कुछ कुछ नीली रंगतकी। इस बार नेत्रोंका वही भाग थका है जो लाल प्रकाश पहचाननेका काम करता है। श्वेत प्रकाशके अन्य रंगोंके पहचाननेका कार्य नेत्र-का वह भाग अब भी कर सकता है। अतः श्वेत प्रकाशमेंसे लाल रंग निकाल देनेपर जो बाकी बचता है वही अब नेत्रको दिखलाई देता है।

किन्तु साधारण प्रकाशके लिए यह माना जा सकता है कि यह असर प्रायः $\frac{१}{७}$ सैकंड तक रहता है। यदि वह जलती हुई लकड़ी इस वेगसे घुमाई जाय कि सैकंडके सातवें भागमें पूरा वृत्त बन सके तब तो सारा ही वृत्त प्रकाशमय जान पड़ेगा। किन्तु यदि इससे कम वेगसे घुमाई जाय तो उस वृत्तका केवल वही भाग दिखाई देगा कि जो ७ सैकंडमें बना होगा।

दृष्टिके असरके इस थोड़े किन्तु वास्तविक सत्यपर ही बहुत से खेल और यंत्र अवलम्बित हैं। यदि मोटे कागज़के एक टुकड़ेपर एक ओर एक दौड़ते हुए घोड़ेका और दूसरी ओर एक सवारका चित्र खींचकर उस कागजको वेगसे घुमाएं तो सवार घोड़ेपर बैठा हुआ जान पड़ता है। इसी प्रकार तोतेको भी पिंजरेमें बैठा हुआ दिखला सकते हैं। एक यंत्र द्वारा वस्तुकी भिन्न अवस्थाओंके अनेक चित्र शीघ्रतासे एक के बाद एक दिखलाये जाते हैं, जिससे ऐसा मालूम होता है कि वह पदार्थ हमारे सामने ही अवस्थाका परिवर्तन कर रहा है। यथा मैंडक फुदकता हुआ जान पड़ता है और बच्चा बढ़ता हुआ देख पड़ता है! छाया चित्रणमें अब जो उन्नति हो गई है उससे सम्भव हो गया है कि अत्यन्त शीघ्रतासे चलती फिरती वस्तुके भी सैकड़ों सहस्रों चित्र खींचे जा सकें। वेही फिर वायस्कोप (bioscope, cinematograph) द्वारा हमें शीघ्रतासे दिखलाये जाते हैं और वास्तविक मनुष्योंकी नाईं चलते फिरते मनुष्य परदेपर देख पड़ते हैं। शीघ्रतासे दिखलाने-का अर्थ यह नहीं है कि चित्र नेत्रोंके सामने आता है और निकल जाता है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक चित्र कुछ नियमित समय तक नेत्रोंके सामने ठहरे और तब झटसे उसके स्थानमें दूसरा आ-जाय, अन्यथा कुछ भी दिखलाई न पड़ेगा। तेज़ चलती रेलगाड़ीके समीप खड़े होकर उसमें बैठे मनुष्यको पहिचानना असम्भव है। चलती गाड़ीके पहियेकी ताड़ियोंको पृथक् पृथक् देख लेना भी असम्भव है। सारांश यह कि नेत्रपर पहिले तो असर होनेमें समय लगता है, फिर उस असरके मस्तिष्कतक पहुंचनेमें भी समय लगता है, पर एक बार असर हो जानेपर वह कुछ देर तक बना भी रहता है (persistance of vision)।

नेत्रोंकी थकावटके (fatigue) विषयमें एक और बात विचारणीय है। यदि थोड़ी देर लगातार प्रकाश पड़नेसे यदि नेत्र थक जाता है तो यह कैसे सम्भव है कि हम घंटों बैठे बैठे देखते रहते हैं। इस सम्बन्धमें इस देशके परम प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचंद्र बोसने अपने विलक्षण यंत्रों द्वारा पता लगाया है कि हम लोग दोनों नेत्रोंसे एक साथ नहीं देखते। जब एक नेत्र देखनेका कार्य करता है तब दूसरा आराम करता है। जब पहिला थक जाता है तब दूसरा कार्यभार अपने ऊपर लेकर पहिलेको विश्राम करनेका अवसर देता है! प्रकृतिके रहस्य बहुत गूढ़ और अद्भुत हैं!

अरब और सायंस

[ले०—प्रोफेसर मेहदी हुसैन नासिरी, एम. ए.]

[गताङ्कसे आगे]

त्रिकोणमिति

त्रिकोणमिति जिस रूपमें आजकल वर्तमान है, वह रूप अरबोंने ही उसे दिया है। यही वह लोग थे जो पूर्णज्या (चापकर्ण) की जगह-पर ज्या काममें लाये। गोलीय त्रिभुजके क्षेत्रफल निकालनेका मौलिक नियम अरबोंने ही निकाला। वृत्तकी स्पर्श रेखाके स्थानपर कोणकी स्पर्श रेखाका प्रयोग भी इन्हीं लोगोंने पहले पहल किया। गोलीय त्रिभुजोंके जांचनेके जो छः क़ायदे हैं उनमेंसे पांचवां जाबिरने ग्यारहवीं शताब्दीमें निकाला। छठा क़ायदा चार सौ बरस हुए कि डाक्टर वेटने निकाला।

अलजबरा और हिसाब (बीजगणित और अङ्कगणित)

जो हिंदसे आजकल हम काममें लाते हैं भारतवर्षसे असलमें अरबमें पहुंचे थे, इसीसे हिन्दसे कहलाये। और इन्हें अरबोंसे यूरोपने सीखा, अतएव इनका नाम अरबी पद्धति (arabic notation) रखा। बीजगणितका आविष्कारक यूनानमें डाईफिस है और कुछ प्रारम्भिक बातें इसकी किताबमें लिखी हैं। मगर अरबोंने वह बातें निकालीं जो आविष्कारकको भी न मालूम थीं। इब्न मूसाने यूनानी अलजबरेका तर्जुमा किया और इस शास्त्रको उन्नतिकी उच्च कोटि तक पहुंचाया। इसके बाद भारतीय बीजगणितका भी अरबीमें अनुवाद हुआ, मगर मौलवी ज़का उल्ला साहब कहते हैं कि मैं ने इब्न मूसाके जब्रोमुकाबिलेका उर्दूमें तरजुमा किया और भास्कराचार्यके बीजगणितका भी तर्जुमा किया, परन्तु दोनोंमें इतना स्वतंत्र भेद है जिससे मालूम होता है कि अरब अपने जब्रोमुकाबिलेके स्वयं आविष्कारक हैं। करणीके प्रश्नोंको इन्होंने हल किया और बीजात्मक तथा रेखागणितिक राशियोंके सम्बन्ध निकाले। मुहम्मद बिनमूसाने दोघात समीकरणोंको और उम्र बिन इबराहीमने तीनघात समीकरणोंको हल किया। ज़रजी ज़ीदानका कथन है कि हसन बिन मूसा बिन साकिरने ऐसे रेखागणितके सिद्धान्त निर्णय किये और बातें निकालीं कि उससे पहले शायद ही किसीने पहले की हों, जैसे कोणको तीन भागोंमें विभाजित करना, दो झुकी हुई रेखाओंके बीचमें दो अन्य निश्चित निष्पत्तिकी लम्बाईकी रेखाएं स्थापित करना।

प्रकाश विज्ञान

कैजोरी (Cajori) ने अपने भौतिक शास्त्रके इतिहासमें जो अरबोंका सर्वोत्तम विज्ञान बतलाया है वह प्रकाश विज्ञान (optics) है। अबूअली अलहसन बिन अलहसन बिन अलहैसम अलबसरी (Alhazen) ने इस विज्ञानकी उन्नतिके शिखरतक पहुंचाया। [सं० ९६५–सं १०३८ ई०] इस धुरंधर विद्वानकी उन्नति अथवा अधोगतिके जो कारण इतिहास द्वारा मालूम हैं यहां उनका कथन अत्यधिक विस्तारके डरसे करना अनुचित जान पड़ता है। मैं केवल उन आविष्कारों और खोजोंका वर्णन करूंगा,

जिनके कारण उसका सम्मान आजतक वैज्ञानिक संसारमें होता रहा है। यह वही इब्नुलहैसम है जिसके ग्रन्थ लातिनी भाषामें अनुवादित होकर यूरोपकी वैज्ञानिक उन्नतिके साधन हुए। एँसाइक्लोपीडिया मेट्रोपोलीटेनाके अनुसार इब्नुलहैसम बतलीमियूसके प्रकाश शास्त्रसे परिचित था पर जो बातें उसने निकालो वह नीचे दी जाती हैं।

(१) दृष्टि सिद्धान्त—यूनानी दार्शनिकोंका विचार था कि प्रकाशकिरण आंखसे बाहर आती हैं तो चीज़ें दिखाई देती हैं। यह पहला अरबी दार्शनिक है जिसने ज़ीमिकरातीस (Democritus) और अरस्तू (Aristotle) का साथ दिया है और कहा है कि जो चीज़ दिखाई देती है उसके दिखाई देनेका सबब उसी चीज़से पैदा होता है।

(२) पहला मनुष्य है जिसने शरीर रचनाकी दृष्टिसे आंखके अवयवोंका सविस्तार वर्णन किया और उनमेंसे प्रत्येकका धर्म और उपयोगिता दिखलाई।

(३) बतलीमियूससे ज़्यादा अच्छी तरह बयान कर दिया कि दो आंखोंसे एक चीज़ क्यों मालूम होती है।

(४) सात किस्मके तालोंकी हकीकत दर्याफ़त की, बतलीमियूसको केवल तीन ही तरहके ताल मालूम थे।

(५) वर्तनकी पहले पहल परीक्षा की और उसकी सहायतासे ऊषाके सम्बन्धमें यह बतलाया कि ऊषाका आरम्भ सूर्यके क्षितिजके १८° नीचे रहनेके समयसे होता है।

(६) यह निश्चय किया कि सायंकाल और प्रातःकालको जो सूर्य और चन्द्रके बिम्बका व्यास अधिक मालूम पड़ता है वह केवल दृष्टि भ्रम है। कैजोरीका कथन है कि इस सिद्धान्तके समर्थनमें जो युक्तियां इब्नुलहैसमने दी हैं आजकल भी सम्मान योग्य समझी जाती हैं, यद्यपि वह सब सर्वसम्मतिसे मानी नहीं जातीं। उपर्युक्त बातोंके अतिरिक्त बहुत से अन्य आविष्कार हैं जो कथनीय हैं। उदाहरणतया, परावर्तनमें आपातकोण और परावर्तनकोणका बराबर होना यूनानियोंको मालूम था, परन्तु इब्नुलहैसमने परावर्तनका दूसरा नियम निश्चित किया अर्थात् यह बतलाया कि आपातकिरण, और परावर्तितकिरण उस तलमें विद्यमान होती हैं जिसमें आपात विन्दुपर आपात-तलका लम्ब होता है *। उसने गोलीय तथा परबलीय दर्पणोंके सम्बन्धमें कहा कि जितनी किरणें नाभिमें (Focus) होकर निकलती हैं, उतनी ही अधिक गरमी वहांपर पैदा होती है।

भौतिक शास्त्रका एक और सिद्धान्त

इस वैज्ञानिकके अनुसन्धानोंका अधिक वर्णन करूंगा तो समय बहुत लगेगा, अतएव केवल एक बात ही और कहूंगा, जो सम्भवतः आपको भी रोचक होगी। गुरुत्व निकालनेका जो कांचका यंत्र (हंस या गुरुत्वमापक) आप काममें लाया करते हैं वह भी एक अरबकी बदौलत हमको प्राप्त हुआ है। हां, तबसे अब अधिक फैशनेबिल बना दिया गया है। अलबरूनीने गुरुत्व निकालनेके लिए एक ताम्बेका बर्तन बनाया था जिसमें एक टोंटी नीचेकी तरफ झुकाके लगा दी थी। इस बर्तनमें पानी टोंटी तक भर देता था और जिस चीज़का गुरुत्व निकालना होता था उसे बर्तनमें डाल देता था। जितना पानी टोंटीसे बहकर बाहर आता था, वह दूसरे बर्तनमें लेके तोलता था। फिर उस चीज़को निकालकर तोलता था। दोनों वज़नोंको जब मालूम कर लेता था तो गुरुत्व भाग देकर निकाल लेता था। यह विधि आपको भी बतलाई गई है।

इसी प्रकार अल-ख़ाज़िनी एक बड़ा भारी भौतिक शास्त्री था, जिसकी विद्वत्ताका पता उसके ग्रन्थ मीज़ानुल अक़्लसे चल सकता है। इस ग्रन्थके कुछ अंशोंका अनुवाद 'अमेरिकाकी ओरियंटेल

* देखो विज्ञान भाग ८ संख्या १ पृष्ठ—२१

सोसाइटी' के रिसाले (पत्र) की छटी जिल्दमें १—१२८ पृष्ठोंमें छपा है।

[Chemistry] रसायन शास्त्र

इस कलाकी ओर अरबोंका ध्यान कुछ तो रसायन बनानेकी इच्छा और कुछ विद्या प्रेमके कारण आकर्षित हो गया था। बनी उमय्याके ज़मानेमें इस्कंदरियाके वैज्ञानिकोंसे यह कला विधि पूर्वक सीखी गयी। खालिद बिन यज़ीदने बड़ा नाम पैदा किया। इमाम जाफिर सादिकने भी संसारको बता दिया कि यह फन उनके पास भी मौजूद था। जब तवज्जह बढ़ी तो खूब ईजादें हुईं, बल्कि इतिहाससे भी प्रमाणित है कि वर्तमान रसायन शास्त्रकी नींव अरबोंने ही डाली। जाबिर बिन हैय्यान और अबूबक्र राज़ीने जो अनुसंधान किये वह आजतक दुनियाको मालूम हैं। नत्रिक अम्ल (शोरेका तेज़ाब), हरिकाम्ल (नमकका तेज़ाब), गंधकाम्ल, पटास, नौसादरकी वायु, नौसादर, पारद हरिद, हजर जहन्नुम, पारद ओषिद, शोरा, हीरा कसीस, अल्कहल, आदि पदार्थोंका निर्माण अरबोंने किया। जिस कालमें ज़ंजका संग्राम हुआ है (सम्भवतः नवीं शताब्दीके अन्तमें) अरबोंने एक ऐसा मसाला तैय्यार कर लिया था जो लकड़ियोंपर मल देनेसे लकड़ियां आगमें जलती न थीं।

बारूद

जहां तक मालूम होता है बारूद सबसे पहले कुस्तुनतुनियावालोंने कुस्तुनतुनियाकी चढ़ाईमें अरबोंका सामना करते हुए इस्तेमाल की थी। यह बारूद गंधक और गोंद और चर्बीके यौगिकोंसे तैय्यार की गई थी और उसकी मार भी मामूली थी। परन्तु प्रायः यूरोपीय इतिहासकारोंका ख़याल है कि १३४६ में क्रेसी (Crecy) के युद्धमें इसका प्रयोग हुआ। अरबी किताबोंसे मालूम होता है कि १२०५ ई० में अमीर याकूबने अफेरिक़ामें अपने एक बाग़ी सर्दारका मुहासिरा किया और दीवारोंपर यंत्रों और गरजनेवाली कलोंसे ज़िनको इस वक्त तक किसीने नहीं देखा था हमला किया। इन कलोंसे अग्निकी लौ निकलती थीं और बड़े बड़े पत्थर और गोले बरसते थे। इससे अन्दाज़ा हो सकता है कि अरबने केमिस्ट्रीमें कितनी तरक़्क़ी कर ली थी।

वैद्यक और स्वास्थ्य रक्षा

अन्तमें वैद्यक और स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें भी कुछ कहना आवश्यक है, क्योंकि अरबोंने अपनी मूर्खताके कालसे ही इन विद्याओंका प्रचार किया। इसकी पहली शाखा पिञ्जरनिर्माण (शरीर रचना) है। प्रायः लोग समझते हैं कि अरबवाले इस शास्त्रसे अनभिज्ञ थे, क्योंकि शवका चीरना पसन्द नहीं करते थे। महज़ बन्दर और बकरोंको चीर कर जो कुछ मालूम हुआ वही जानते थे। लेकिन ख़ान बहादुर सैय्यद खुदा बख़्शके मशहूर पटना पुस्तकालयमें एक हाथसे लिखी पुस्तक मौजूद है, जिससे मालूम होता है कि जालीनूसके पिञ्जर निर्माणपर अरबोंने क्या तरक़्क़ी की। उस ज़मानेमें यह क़ायदा मालूम होता है कि जो लोग मृत्यु-दण्ड पाते थे, उन्हें फांसी नहीं दी जाती थी, बल्कि हकीम साहिबानके नज़र कर दिये जाते थे कि मिहरबानी करके इन आदमियोंपर हाथ साफ़ कीजिये और निर्दोष आदमियोंपर (रहम दया) कीजिये। इस प्रकार हकीमोंको पूरा मौका मिला कि इल्म तशरीह (शरीर रचना) में तरक्की कर सकें। फिर शल्य चिकित्साका भी शौक़ था। दो सौ बासठ यंत्रोंके चित्र ज़ुहरावीने अपनी तसनीफ़में दिये हैं, जिनका प्रचार उनके समयमें था। केवल आंखके चीरनेके उन्होंने १२ यंत्र बतलाये हैं और एक दूसरे ग्रन्थमें ३६। जहां तक मालूम हो सका है कुल गणना इन यंत्रोंकी ६०० थी। इसके अतिरिक्त वह लोग इलाज दाग़ कर भी करते थे। चुनांचि आंखमें रोशनी लाने और पानी वग़ैरह दूर करनेके लिए बजाय आपरेशनके गलेकी एक रग (नस) दाग़ देते थे, फ़ौरन आंखोंमें रोशनी आ जाती थी। शफ़ाखाने जो बीमारिस्तान या मारिस्तान कह-

लाते थे, बिलकुल स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंपर बनाये जाते थे। विद्यार्थी भी अच्छे स्थानों-पर इन्हींमें रोगियोंके पास रखे जाते थे, ताक इल्म-से अमलके दर्जे तक आसानीसे पहुंच सकें। स्वच्छ वायु और निर्मल जल प्रचुर परिमाणमें प्रस्तुत रहते थे। कमरे भी बड़े बड़े और हवादार होते थे। जल वायुके परिवर्तनसे फ़ायदा उठाया जाता था। चिकित्सामें इतनी उन्नति कर ली थी कि बड़े बड़े कठिन रोग सूरत और नब्ज़ देखकर मालूम कर लेते थे। उनका ख़याल था कि बनावटी थरमा-मीटर ग़लती कर सकता है, मगर ख़ुदाके बनाये हुये थरमामीटर, नाड़ी,से ग़लती होना ना मुमकिन है। यौगिक और मौलिकोंके विषयमें उन्होंने ऐसे ऐसे आविष्कार किये कि उनका सा निघंटु दूसरी किसी जातिके पास न था। बात यह थी कि अरब विदेशोंसे विद्या ग्रहण करनेमें हिचकते न थे। फिर उसे अपनी भाषामें प्रकाशित कर देते थे, जिससे उनके देशी भाई उनके परिश्रमसे लाभ उठावें। वह इन बातोंको शीघ्र ही सीख लेते थे और फिर स्वयं नये आविष्कार कर संसारका ज्ञान भण्डार बढ़ाते थे। आज भी बहुत सी ओष-धियोंके नाम जो यूरोपमें प्रचलित हैं इस बात-के साक्षी हैं कि उनका प्रयोग अरबोंसे ही सीखा है। केम्फर क्या है काफूर। टेमेरिण्ड क्या है तमर-ए-हिन्द (इमली)।

बस अब मैं आप सज्जनोंका अधिक समय नष्ट न करूंगा बल्कि इस बातका धन्यवाद दूंगा और इतनी प्रार्थना करूंगा कि सुननेका असर सिर्फ थोड़ी देरके लिए होता है, क्योंकि सायंस बताती है कि जो शब्द मुंहसे निकलता है, हवामें लहरें पैदा करता है। यह लहरें कानके परदेसे टकराती हैं और इन्सान सुन लेता है। अतएव इन लहरोंका प्रभाव क्षणस्थायी है। पर यदि यह बातें यह कलाएं अपनी भाषामें लिखकर प्रकाशित की जायं तो फिर हमारी उन्नति रुक नहीं सकती। यह स्याह हर्फ़ जो काग़ज़पर रह जाते हैं बड़े काम करते हैं। लिखने-वाला चाहे नष्ट हो जाय, मगर विद्याओंका नाश होना बहुत मुश्किल है।

नविश्तः बमानद सियः बर सफ़ेद
नवीसिन्दः रा नेस्त फरदा उमेद'

"कोरे काग़ज़पर जो लिखा जाता है वह चिरस्थायी है, लिखनेवालेको कलकी भी क्या उम्मीद है"

विज्ञान परिषद्के वलवलोंकी क़द्र कीजिये और उसकी मददमें दरेग़ न कीजिये।

समाचार वाहक पक्षी जिन्होंने युद्धमें बड़ो बहादुरीका काम किया है

[ले०—प्रोफ़ेसर भुवनचन्द्र बोस, एम० ए०]

निःसन्देह इस युद्धमें आशातीत अने-कानेक घटनाएं हुई हैं। जो लोग कि केवल अपने घर और दूकानके सिवाय किसी और तरफ़ अपना ध्यान देना नहीं जानते थे, उन्होंने भा ऊँचेसे ऊँचे दर्जेके आत्मत्याग और भक्ति-के काम कर दिखाये। इतनेपर भी एक ऐसे पक्षीका जो कि अभीतक शांतिकी मूर्ति समझा जाता था, युद्धदेवके दूतके स्वरूपमें आ उपस्थित होना बड़े अचम्भेकी बात है।

सच तो यह है कि कबूतर और पड़कुलिया (dove फाख्ता या पिड़की) पक्के शान्ति प्रिय नहीं हैं। कहानियों और कहावतोंमें इनकी जैसी ख्याति है उसका निबाहना इन संसारी जीवोंके लिए अत्यन्त कठिन है। कबूतरखाने अथवा चिड़ियाखानेके समीप ५ मिनट व्यतीत करनेसे मालूम हो जायगा कि इन पक्षियोंका स्वभाव उन-की ख्यातिके प्रतिकूल है। यह बात सच है कि इनके झगड़ालू और शिकारी जन्तुओंके समान दांत, पंजे आदि अस्त्र नहीं हैं, तिसपर भी जो कुछ इनके पास है उससे समयपर वार करनेमें

नहीं चूकते। केवल चोंच और पंख इनके शस्त्र हैं। परन्तु जो कबूतर आदि इनके घोंसलोंमें आ घुसे या बच्चे जो अपने घोंसलोंको भूलकर भटकते भटकते इनके घोंसलोंमें आ निकले, फिर उनकी खैर नहीं।

वर्तमान युद्धने इन्हें अपने बल और साहसका परिचय देकर कीर्ति प्राप्त करनेका अच्छा अवसर दिया है। तदनुसार फ्रान्सके रणक्षेत्रोंसे आये हुए समाचार इनकी प्रशंसासे पूर्ण हैं, जहां इन्होंने चिरस्थायी यश कमाया है। इनकी कार्यदक्षता और उपयोगिताके उपलक्ष्यमें 'जंगी कबूतर' की उपाधि देनेकी अपेक्षा और कोई साधन इनके कीर्तिगानका क्या हो सकता है?

युद्धमें कबूतरोंसे काम लेना कोई नई बात नहीं है। ईरान और मिसिर देशके इतिहासमें इनसे, युद्ध तथा शांतिके समयमें, समाचार वाहकका काम लिये जानेकी प्रथाका कुछ कुछ पता लगता है। यह बात विदित ही है कि प्राचीन रोमनिवासियोंके समयसे लेकर आजतक इनकी घर वापिस आनेकी शक्तिको बढ़ानेका कैसा प्रयत्न हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि कई शताब्दियोंतक इस शक्तिको बढ़ानेका कार्य केवल पूर्वात्य ही करते रहे। बहुत कालके पश्चात् यह पत्नी यूरोपमें लाये गये। धीरे धीरे लोगोंमें इनके पालनेका शौक़ फैलने लगा, यहां तक कि बेलजियममें तो कबूतर उड़ाना एक जातीय खेल हो गया। इसी देशको आधुनिक घर फिर आनेवाले कबूतर (होमर) पैदा करनेका गौरव प्राप्त है।

पुराकालके कबूतरोंका रक्त मिश्रित हो जानेसे इनके वंशका ठीक ठीक पता नहीं लग सकता। तथापि १८ वीं शताब्दिके प्रारम्भमें बेलजियममें एक स्मर्ल नामक छोटी चोंच और फूली छातीवाले कबूतरका पता लगता है। जान पड़ता है कि पूर्वके असली गृह-प्रेमी* कबूतर और अफेरिकाके अऊल नामक जातिके खूब चालाक और उड़नेवाले कबूतरोंके मेलसे इसकी उत्पत्ति हुई है। स्मर्ल उड़नेमें साधारणतः अच्छा था। उसका यह गुण आधुनिक पत्नियोंमें भी दिखाई पड़ता है।

इसी कालमें अंग्रेज़ोंने भी बाहरसे लाये हुए पत्नियोंकी कई जातियां उत्पन्न कीं, जो घर वापिस आनेके कार्य्यमें दक्ष थीं। इनमेंसे ड्रगून, होर्समेन और स्किन्नम प्रधान हैं। इनमें अन्तिम वर्णशंकर है। यह बड़े और बली होते हैं। इनकी आँखों और चोंचोंके आस पास मांस पिंड विशेष रूपसे दिखाई पड़ते हैं। इनमेंसे कुछ पत्नी, सम्भवतः ड्रगून, किसी तरह बेलजियममें पहुँच गये। वहां उसका तद्देशीय स्मर्लसे तुरन्त नियोग कर दिया गया। इसी कालमें क्यूम्यूलेट नामक पत्नी भी जो कि ऊँचा उड़नेकेलिए प्रसिद्ध है यहां पहुंचा।

इन सबोंके मेलसे दौड़ लगानेवाले गृहप्रेमीकी (homer) उत्पत्ति हुई, जो सबसे तेज़ दौड़नेवाला, सहनशील और बुद्धिमान समझा जाता है। रंग, तरह तरहके निशान और दूसरी बातोंकी परवाह न करके कबूतर पालनेवालोंने उपर्युक्त गुणोंपर विशेष ध्यान दिया और इन्हीं गुणोंके कारण इनकी इतनी अधिक ख्याति हुई है। यद्यपि रंग रूपमें सुन्दर और मनोरंजन करनेवाले कबूतर भी मौजूद हैं तथापि क़दर इन गृहप्रेमियोंकी ही हुई है।

बेलजियममें अपने उड़नेकी शक्तिका प्रमाण देनेपर ये अमेरिका और इंग्लैण्ड लाये गये। वहां कबूतर दौड़ानेका खेल शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया और हज़ारों लोग इसके सच्चे भक्त हो गये। बहुतसे क्लब खड़े हो गये और वे बड़ी बड़ी जातीय सभाओंसे सम्बद्ध हो गये। जरमन लोगोंने जब बेलजियमपर चढ़ाई करके विजय प्राप्त की तब कबूतरोंको पकड़ पकड़ जर्मनी भेज दिया। लोगोंको आशंका है कि वे अवश्यमेव उदरसात् किये गये होंगे। यह बात यदि सही भी हो

* होमर या दूरसे घर फिर आनेवाला।

तो भी इस जातिके निर्मूल हो जानेका भय हृदयमें नहीं लाना चाहिये, क्योंकि इस जातिके हज़ारों पक्षी इङ्गलैण्ड और अमेरिकामें सुरक्षित हैं।

समाचार पत्रोंमें इस जातिके पक्षी यानी गृह-प्रेमीको "वाहक" 'कैरियर' कहते हैं। यद्यपि यह कुछ अंशतक ठीक भी है, क्योंकि यह पत्र-वाहकका काम करते हैं, परन्तु कभी कभी गड़बड़ इस वजहसे हो जाती है कि इसी "कैरियर" नामकी एक और कबूतरोंकी जाति है, जिसका पूरा नाम "इंगलिश कैरियर" है और जिसके लिए एक मीलकी दूरीपरसे भी घर लौट आना मुश्किल होता है। इसी वजहसे कभी कभी ऐसा होता है कि तारीफ़ तो की जाती है 'होमर' की और लोग समझते हैं 'इंगलिश कैरियर' की। इससे पाठकोंको ज्ञात होगा कि 'होमर' केलिए 'कैरियर' शब्दका प्रयोग करना कितनी भूलमें डाल देता है।

इन कबूतरों या पिड़कियोंके घर वापस आनेकी शक्तिके सम्बन्धमें लोगोंके विचित्र विचित्र विचार हैं। कुछ लोग तो यह समझते हैं कि कबूतरको पकड़ा और उसके कानमें कुछ बातें फूंक दीं और उड़ा दिया। फिर क्या है, कबूतर बतलाये हुए स्थानपर ही ठहरेगा। ऐसी ऐसी और बहुत सी मिथ्या बातोंपर अनेक मनुष्योंका विश्वास है, पर स्मरण रहे कि होमरमें कोई अप्राकृतिक या दैवी गुण नहीं है। उसमें केवल घरका अगाध प्रेम, दिशाका अद्भुत ज्ञान, बल और साहस है, जिसके कारण जहां कहीं भी वह छोड़ा जाता है अपने अड्डेपर पहुंचे बिना नहीं रहता।

दिशाका ज्ञान बहुत प्रकारके पक्षियोंमें विशेष रूपसे विकसित और प्रौढावस्थामें पाया जाता है। ऋतुके अनुसार देश देशमें बिचरनेवाले सभी पक्षियोंमें यह गुण पाया जाता है, वरना उनका यात्रा करना असम्भव होता। कबूतरोंमें यह गुण परम्परागत है। पर क़ैद रहनेके कारण घरेलू कबूतर इस गुणको भी अपनी स्वतंत्रताके साथ तिलाञ्जलि दे बैठते हैं। केवल होमर जातिमें यह गुण विशेष प्रयत्नसे बढ़ाया गया है।

होमरके घर फिर आनेकी शक्तिके विषयमें वैज्ञानिकोंमें बहुत मतभेद है। कई उसकी दीर्घ दृष्टिको सराहना करते हैं, जिससे वह दूरसे अपने घरकी आसपासकी चीज़ोंको पहचान लेता है और घर लौट आता है। कुछ लोग यह समझते हैं कि होमर वायुकी विद्युत्धाराओं तथा अन्य घटनाओं द्वारा अपने घरका पता लगा लेता है, पर सबसे प्रमाणिक बात तो यह मालूम होती है कि यह उसकी विचित्र दिशा ज्ञानका फल है। दिशाका ज्ञान प्रत्येक पक्षीको रहता है। होमरमें यह विशेष रूपसे पाया जाता है, क्योंकि छुटपनसे ही उसे ऐसी शिक्षा दी जाती है कि उसकी यह शक्ति बढ़े और मज़बूत हो जाय।

ज्योंही बच्चा घोंसलेसे बाहर निकलता है त्योंही उसे पूर्णस्वतंत्रता न देकर एक ऐसी जगहमें रख दिया जाता है जहांसे कि वह अपने मंचकी आसपासकी चीज़ोंको देख सके। इस उमरके कबूतरोंके बच्चोंको स्वतंत्र छोड़ देनेसे वह बहुधा उड़ जाते हैं और वापिस नहीं आते। जब इस तरहसे बच्चेको बाहर रहनेका अभ्यास हो जाता है तब वह छोड़ दिया जाता है। प्रायः इस प्रारम्भिक शिक्षाका यह प्रभाव होता है कि पक्षी अपना घर पहचान जाता है और वहीं रहने लगता है। परन्तु ज़रा भी भयका कारण उपस्थित होनेपर वह घबड़ा कर भाग जाता है। जब बचपनकी चरबीकी जगह तरुणावस्थाके पट्ठे जमने लगते हैं तब वह पक्षी अपने साथियोंके साथ प्रतिदिन उड़ने लगता है और बहुधा बहुत देर तक उड़ता रहता है। इस तरह वह कई मीलों तककी आसपासकी भूमिसे परिचित हो जाता है।

अब असली शिक्षा आरम्भ होती है। हवाका रुख़ और अन्य बातोंका विचार करके एक दिशा

निश्चित कर ली जाती है और उस तरफ जाकर धीरे धीरे बढ़ती हुई दूरीपर से कबूतरोंको छोड़ते हैं। पहले तो आधमीलसे उड़ाते हैं फिर एक मीलसे और इसी तरह दस मीलतक बढ़ाते चले जाते हैं। दस मीलके बाद उड़ानेका फ़ासिला पूर्वापेक्षा प्रत्येक बार अधिक बढ़ाते हैं। ५० मीलतकके उड़नेका अभ्यास हो जाने पर, उड़नेका फ़ासिला १५ या २० मील हर दफ़ा बढ़ा देते हैं।

जब १०० मील तक उड़ने लगते हैं तब १५०, २००, ३०० और ४०० मीलकी दूरीपर भेज दिये जाते हैं। साधारणतः यह पक्षी ४०० मीलतक-की उड़ान करते हैं परंतु कभी कभी ६०० मील तकके उदाहरण भी देखे गये हैं। बुड्ढे पक्षियों-के लिए ५०० मीलतककी उड़ान बहुत अच्छी समझी जाती है। परन्तु हर साल १००० मील-तककी कोई न कोई बाज़ी लगाई जाती है। एक प्रसिद्ध पक्षीने ८०० मीलकी दौड़ एक दिनमें लगाई थी, पर साधारणतः ५०० मीलके लिए एक दिनसे ज़्यादा लगता है। साधारण मनुष्यों-को यह जाननेकी कि यह पक्षी किस तेज़ीसे दौड़ सकते हैं अक्सर इच्छा हुआ करती है। तेज़ी फासिलेके ऊपर निर्भर होती है। कम फासिला बड़ी तेज़ीसे तय हो जाता है। यदि वायु अनुकूल हो तो १०० मीलकी उड़ान एक मिनट-में एक मील या थोड़े ज़्यादाके हिसाबसे पूरी करते हैं। युद्धक्षेत्रमें जो परीक्षा की गई है उस-से मालूम होता है कि मोटरकार अथवा मोटर-साइकिलकी अपेक्षा यह ज़्यादा जल्द ख़बर पहुंचा सकते हैं।

ज़्यादासे ज़्यादा १६८६ मीलतककी दौड़-का पता लगता है। इस दौड़में एक अमेरिकन पक्षी केवल दिन ही दिनमें चलकर २३ दिनमें अपने स्थानपर पहुंचा।

ऐसा हालमें सुननेमें आया है कि बुलेट नामक एक दूसरे अमेरिकन पक्षीने १००० मील १ दिन और ११ घंटेमें तय किये। इन प्रसिद्ध पक्षियोंके नाती मौजूद हैं और इनकी लोग बहुत क़द्र करते हैं।

अमेरिकामें इनकी उच्च शिक्षाके लिए पुरुषों तथा स्त्रियोंकी उच्च शिक्षाकी अपेक्षा कहीं अच्छा प्रबन्ध है।*

प्राचीन भारतमें विज्ञानकी उन्नति

[ले०—श्री० श्रीसत्य भक्तजी]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

अब हम विज्ञानकी भिन्न भिन्न शाखाओंपर विचार करना आरम्भ करते हैं। सबसे पहिले रसायनको लीजिये। धातुओं और उनके तत्वोंका पता यहां प्राचीनकालमें लगाया गया था। यहांपर धातुवाद नामकी एक कला प्रचलित थी, जिसमें इस सम्बन्धकी सम्पूर्ण बातोंका समावेश था। मिली हुई धातुओंको अलग करनेकी विधि भी भारतवासी जानते थे। यह बातें बिना रसायन जाने नहीं हो सकतीं। खेती, चिकित्सा आदिकी यहां जो अनुपम उन्नति हुई थी उसकेलिए भी रसायनका जानना परमावश्यक है। और तो क्या हमारे पूर्वजोंने इस विषयमें इतनी उन्नति की थी, कि कितनी ही नई धातुएँ बनाईं और सम्भवतः वे एक धातुको दूसरीमें बदल सकते थे। यह बात अभी यूरोपीय विज्ञानवेत्ता नहीं कर सके हैं, यद्यपि सर विलियम रेमज़ेने ताम्बेसे लीदियम धातुका बनना सम्भव बतलाया था और उनका अनुमान था कि उन्होंने एक बार ऐसा कर भी लिया। भारतकी प्राचीन रसायन विषयक उन्नतिके विष-यमें विज्ञानके पाठक रसायनाचार्य श्री प्रफुल्ल चन्द्ररायके लेख पढ़ ही चुके हैं। और यदि अधिक देखना हो तो उन्हींकी बनाई Hindu chemistry

---

* सन्टिफिक अमेरिकनसे।

नामक पुस्तक देखी जा सकती है। इसमें भारतीय रसायन विद्याका विस्तृत विवरण दिया गया है। हमारे यहां पारेके विषयमें बहुत अधिक खोज की गई थी। इसके गुणोंका ज्ञान पश्चिमी विद्वानोंको उतना कदापि नहीं है। वास्तवमें रसायन हमारे यहांकी एक अति प्राचीन विद्या है।

आजकल संसारमें भौतिक विज्ञानका बड़ा आदर है। एक समय हमारे अध्यात्म प्रेमी आर्य-गण भी उसमें बहुत कुछ उन्नति कर चुके हैं। विद्युत्, चुम्बक, प्रकाश, शब्द, गर्मी, आकर्षण आदि भौतिक विज्ञानके प्रधान अंग हैं। इस बातके दृढ प्रमाण मौजूद हैं कि इन सब विषयोंका ज्ञान भारतवासियोंको बहुत काल पहिलेसे था। इनके सम्बन्धमें यहांपर कितनी खोज की गई थी और इनका ज्ञान वर्तमान यूरोपियनोंकी अपेक्षा आर्योंको कम था या अधिक इसका तो पता नहीं। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनके स्वरूप और गुणोंसे वे लोग भली भांति परिचित थे और इनसे अनेक काम भी लेते थे। वास्तवमें आर्यगण प्रकृतिकी सभी शक्तियोंका ज्ञान रखनेवाले थे।

आकर्षणका सिद्धान्त भौतिक शास्त्रमें शिरोमणि है। कहा जाता है कि इसके आविष्कारक न्यूटन साहब हैं। पर भारतवासियोंको यह सिद्धान्त हज़ारों वर्षोंसे ज्ञात है। वेदसे लेकर पुराणों तकमें इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। आर्योंको पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिका ही ज्ञान नहीं था, वरन् वे इस बातको भी जानते थे कि पृथ्वी तथा दूसरे गृह सूर्यके आकर्षणके प्रभावसे ही अंतरिक्षमें अवस्थित हैं और विश्वके प्रत्येक कणमें यह शक्ति सन्निवेशित है। पुराणोंके शेष भगवान का वास्तविक आशय इस आकर्षण शक्तिसे ही है। हमारे पूर्वजोंको आकर्षण सिद्धान्तका पूरा पता था।

विद्युत्से भी यहांके लोग अपरिचित नहीं थे। यद्यपि यहांके विद्वानोंने लिखने पढ़नेसे रोटी पकाने तकके सब काम, बिजलीसे नहीं लिये, क्योंकि वे हाथसे काम करनेकी महिमा जानते थे, पर इसमें कुछ संशय नहीं कि बिजलीके गुणोंका ज्ञान उन्हें अवश्य था और वे कितने ही कार्योंमें उसका उपयोग भी करते थे। इन्द्रका वज्र बिजलीके सिवाय कुछ नहीं है। बहुत से लोगोंका ऐसा विचार है कि इन्द्रके वज्रका तात्पर्य केवल आकाशमें चमकनेवाली बिजलीसे है। पर यह बात ठीक नहीं। आर्योंने वास्तवमें प्राचीन समयमें बिजली द्वारा वैरियोंको मारनेका कोई अस्त्र बनाया था। उससे मिलते जुलते विद्युत्अस्त्रका नाम हमको रामायणादि पूज्य ग्रन्थोंमें मिलता है। बिजलीसे मकानोंको रक्षित रखनेके लिए कच्चे लोहेकी छड़ लगानेकी प्रथा हमारे यहांके हज़ारों वर्षोंके पुराने मंदिरोंमें देखी जाती है, पर यूरोपमें उसका आविष्कार अभी कुछ समय पूर्व बैंजमिन फ्रेंकलिन साहिबने किया है। यदि आर्यलोग बिजलीसे कुछ दूसरे कार्य भी लेते हों तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि प्राचीन साहित्यमें अनेक स्वयमेव कार्य करनेवाली पुतलियों, यन्त्रों, मशीनोंका वर्णन देखनेमें आता है। रावण आदि असुरोंके यहां इससे बहुत कुछ काम लिया जाता था, इसमें सन्देह नहीं। इसके भी प्रमाण मिलते हैं।

प्रकाश विज्ञानका प्रचार पहिले यहां भली भांति था। सूर्यकी सप्त रंगी किरणोंका वर्णन वेदोंमें भली भांति किया गया है। पुराणोंमें बतलाये गये सूर्यदेवके सात घोड़े यह सात प्रकारकी किरणें ही हैं। अभी एक सज्जनने इस विषयपर सूर्यसप्ताश्व वर्णन नामक पुस्तक लिखी है, उसमें इस बातका पूरा विवरण दिया गया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चुम्बक विषयक पर्याप्त ज्ञान यहांके लोग अनन्त समयसे रखते आये हैं। सोमनाथके मन्दिरका हाल कौन नहीं जानता, जिसमें कई मनकी मूर्ति अधर लटकी रहती थी। भारतके और भी बहुत से मन्दिरोंमें यही दृश्य दिखा कर भोले भाले लोगोंको दैविक शक्तिका धोखा दिया जाता था। चुम्बकका उपयोग हमारे यहां शस्त्र चिकित्सामें भी

पूर्ण रीतिसे होता रहा है। सुश्रुत संहितामें जो कई हज़ार वर्षकी पुरानी पुस्तक है इस बातका पूरा वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त हमारे यहांके पुराने काव्य, नाटकादिमें प्रेम, स्नेह आदिके लिए जगह जगह चुम्बककी उपमा दी गई है। इससे मालूम होता है कि यहांके प्राचीन निवासी चुम्बकके सभी गुणोंको जानते थे।

शब्द और गर्मी विषयक सभी प्रधान सिद्धान्त हमारे यहां अति प्राचीन समयमें जान लिये गये थे। अबसे ढाई हज़ार वर्ष पूर्व जैनाचार्य महावीर स्वामीने शब्दको स्पष्टतः पुद्गल (भौतिक) वस्तु माना है। गर्मीमें शक्ति है यह बात भी यहांके लोगोंसे छिपी नहीं थी। वेद, दर्शन आदिमें इसका पूरा वर्णन किया गया है। इस प्रकार आर्य लोग भौतिक विज्ञानके सभी अंगोंके ज्ञाता थे।

इसके पीछे जब हम जीव विज्ञानपर दृष्टि डालते हैं तो उसमें भी आर्योंके अखण्ड ज्ञानका परिचय मिलता है। हिन्दुओंने अध्यात्मिक दृष्टिसे जीवनके सभी तत्वोंका पूरा पता लगाया था। सुप्रसिद्ध जीवाणुशास्त्रके वे पूर्ण ज्ञाता था। बड़े बड़े वैद्यक ग्रन्थोंमें रोगोंके जीवाणु और उनसे बचनेके उपाय लिखे हैं। जिस प्रकार आजकल डाक्टर लोग तरह तरहकी दवाइयां और अर्क जीवाणुओंके नष्ट करने और वायुके शुद्ध करनेके निमित्त व्यवहार करते हैं, उसी तरह प्राचीन आर्य वैद्यगण भी नाना प्रकारकी धूप सुगन्धियां आदि जलाकर जीवाणुओंके प्रकोपसे बचनेका उद्योग करते थे। इसके अतिरिक्त जैन धर्म प्रचारक महात्मा महावीरने भी अत्यन्त सूक्ष्म जीवाणुओंका बड़ा विशद वर्णन अपने उपदेशोंमें अबसे हज़ारों वर्ष पूर्व किया था। उन्होंने भूमिकायके जीव, वनस्पतिकायके जीव, जलकायके जीव, वायुकायके जीव, अग्निकायके जीव आदि इतने प्रकारके जीवाणुओंका वर्णन किया है कि जिसे देखकर आर्योंके जीवविज्ञान विषयक ज्ञानमें तिल भर भी शंका नहीं रह जाती। इतना ही नहीं वरन् अग्निकायके जीवोंका हाल अभी यूरोपीय वैज्ञानिकोंके ग्रन्थोंमें नहीं दिखाई पड़ता।

आजकल जीव विज्ञानके अंगस्वरूप वृक्षोंमें जीव होनेकी बड़ी चर्चा है। कुछ समय पूर्व यूरोपके वैज्ञानिक वृक्षोंको निरा जड़ मानते थे। पर जबसे स्वनामधन्य श्रीजगदीशचन्द्र वसुने अपने आविष्कारों द्वारा वृक्षोंके चैतन्य होनेकी बात प्रत्यक्ष सिद्ध कर दी है, तबसे वैज्ञानिक संसारमें इस विषयका एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है। भारतकी अर्वाचीन उन्नति तो है ही, पर सच्ची बात यह है कि इस सिद्धान्तका हमारे यहांकी नितांत साधारण स्त्रियों तकको ज्ञान है कि वृक्षोंमें भी जीव है और उनका सताना अच्छा नहीं। वृक्षोंकी क्या बात हम लोग तो नदी, पहाड़, ईंट पत्थर सबमें जीवका अस्तित्व मानते हैं। वास्तवमें सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुमें वह महाशक्ति सन्निवेशित है। यूरोपीय वैज्ञानिक गण भी अब इस बातकी सत्यताको कुछ कुछ समझ गये हैं। वृक्षोंमें जीव होनेकी बात हमारे शास्त्रोंमें भी सर्वत्र लिखी है। इन बातोंसे भारतवासियोंके जीव विज्ञान विषयक पाण्डित्यका पता भली प्रकार चल सकता है।

प्राचीन भारतकी वनस्पति शास्त्र विषयक उन्नति इसीसे प्रकट होती है कि खेतीके प्रथम आविष्कारक आर्य लोग ही हैं। यहींके लोगोंने अनेक प्रकारके अन्नों और फलोंको मनुष्योपयोगी बनाया। इतना ही नहीं, किसी समय इस देशमें विश्वामित्रके समान वैज्ञानिक पाये जाते थे, जिन्होंने नारियल आदि अनेक प्रकारके नवीन फल उत्पन्न किये थे। जिस प्रकार आजकल कुछ अमेरिकन वैज्ञानिक बिलकुल नई तरह फल पैदा करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, उसी प्रकार हमारे यहां भी प्राचीन कालमें फल फूलोंकी बड़ी उन्नति की गई थी। विश्वामित्रने अपनी नवीन सृष्टिमें और भी अनेक नई वनस्पतियां उत्पन्न की थीं। इस नवीन सृष्टि रचनाका वास्तविक तात्पर्य विज्ञान द्वारा नई नई चीज़ें उत्पन्न करनेसे ही है। कुछ समय पहिले

एक साहबने कहा था कि भारतवर्षके गंवार किसानोंको खेती और मिली हुई फसलोंके उत्पन्न करनेके ऐसे अच्छे नियम मालूम हैं जिनका अभी यूरोपियनोंको ज्ञान नहीं। इस बातसे भारतकी वनस्पति विज्ञान विषयक चतुरतामें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

अब जिस बातका हम वर्णन करेंगे वह यंत्र विज्ञान है। यद्यपि विज्ञानके शास्त्रीय विषयकी दृष्टिसे इसका पद बहुत ऊंचा नहीं समझा जा सकता, पर आजकल इसीके प्रतापसे यूरोपका प्रभाव समस्त संसारमें फैला हुआ है। जगत भरकी सम्पत्ति उसके यहां खिंची चली जा रही है बड़ी बड़ी जातियां उसकी दास बन रही हैं, यूरोपमें आजकल प्रायः सभी कार्य कलों द्वारा किये जाते हैं। कपड़ा बुनने तथा पुस्तकें छापनेसे लेकर मिट्टी खोदने तकका काम वहां यंत्रों द्वारा किया जाता है। अब तो लिखने पढ़ने तथा नाना प्रकारकी चीज़ोंके बेचनेका कार्य भी कलें ही करने लगी हैं। वास्तवमें यूरोपवाले यंत्रों द्वारा काम करनेको बड़ी लाभदायक बात समझते हैं और वे सदा नये, नये, थोड़े समयमें बहुत काम करने वाले, यंत्र बनाते रहते हैं। यद्यपि भारतवासियोंने किसी समय इतने अधिक यंत्र नहीं बनाये थे, क्योंकि यहांके लोग हाथसे काम करनेकी महिमाको समझते थे और कलोंका विशेष उपयोग यहां लाभदायक और शुभ नहीं समझा जाता था, तो भी इस देशमें पहिले इन वस्तुओंका नितांत अभाव न था। अनेक आवश्यक यंत्र आर्योंने तय्यार किये थे और सदा उनका उपयोग करते थे।

आजकल यूरोपमें किया गया सबसे बड़ा यंत्र विज्ञान सम्बन्धी आविष्कार वायुयान है। इसका आविष्कार करके यूरोपियनोंने समझ लिया है कि अब संसारकी कोई शक्ति हमारा सामना नहीं कर सकती। पर प्रत्येक भारतवासी जानता है कि प्राचीन कालमें भारतवर्षमें वायुयानों अथवा विमानोंका पर्याप्त प्रचार था। आज भी हम बचपनमें उड़नखटोलोंकी कहानियां सुनते हैं। रावणके पुष्पक विमानकी बात तो प्रत्येक पढ़े लिखे भारतीयको मालूम ही है। वाल्मीकीय रामायणके सुन्दर काण्ड और युद्धकाण्डमें उसका विशद वर्णन किया गया है। वेदोंमें भी विमानोंका बहुत कुछ वर्णन पाया जाता है। मनुस्मृति तथा दूसरे शास्त्रोंमें विमान बनानेवालोंकी पृथक् जातिका होना बतलाया है। और हमारा सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य विमानोंका अस्तित्व बतलाता है। ऐसी दशामें इनके आदि आविष्कारक होनेका श्रेय यूरोपियनोंको देनेका साहस कौन करेगा। हमको इस प्रत्यक्ष बातकेलिए कि भारतवासी विमान-विद्याके पूर्ण ज्ञाता थे विशेष प्रमाण देनेकी तनिक भी आवश्यकता बोध नहीं होती। साथमें यह जान लेना भी ज़रूरी है कि उस समयके विमान वर्तमान यूरोपीय विमानोंकी अपेक्षा हज़ारों गुने उत्तम होते थे। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके वैसे विमान बना सकनेमें अभी बहुत विलम्ब है।

इस बातमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि प्राचीन कालके भारतवासी बड़े बड़े जहाज़ बनाते थे और उनके द्वारा दूर दूरका प्रवास करते थे। अब इस बातको संसारके समस्त प्रसिद्ध विद्वान मुक्त कंठसे स्वीकार करने लग गये हैं। इन जहाज़ोंकी सहायतासे ही हिन्दू लोग जावा, बाली, लम्बक, सुमात्रा आदिमें अपने उपनिवेश स्थापित कर सके थे। यहांके प्राचीन साहित्यमें जगह जगह जहाज़ोंका उल्लेख है और शिवाजीके समय तथा उससे पीछे तक यहां ऐसे ऐसे जहाज़ बनते थे जैसे यूरोपमें उस समय कहीं नहीं पाये जाते थे। स्वयं शिवाजीके यहां एक ज़बर्दस्त जहाज़ी बेड़ा सदा रहता था। इस प्रकार प्राचीन भारतमें जहाज़ोंके अस्तित्वमें तो कोई सन्देह रह नहीं जाता, पर इस बातका कह सकना कठिन है कि वे जहाज़ केवल हाथोंसे डांड आदि द्वारा ही चलाये जाते थे अथवा विशेष किसी प्रकारकी शक्ति और यन्त्रोंकी सहायतासे।

जहां तक मालूम है उस समय हमारे यहां इंजिन-का प्रचार नहीं था। तोभी अनुमान किया जाता है कि इस देशमें अवश्य ही तरह तरहके यंत्रोंकी सहायता और किसी विशेष शक्ति द्वारा चलाये जानेवाले जहाज़ भी बनाये जाते थे और आर्यों-को उनका उपयोग भली भांति मालूम था।

जब यह मालूम हो गया कि प्राचीन भारतमें जहाज़ोंका प्रचार था, तो दिग्दर्शक यंत्र (compass) का होना तो आवश्यक बात है। क्योंकि बिना इसकी सहायताके जहाज़ोंको बड़े समुद्रोंमें चलाना बड़ा कठिन और भय पूर्ण कार्य है। चुम्बकके गुणोंका परिचय भारतीयोंको था ही। अतएव उनके लिए दिग्दर्शक यंत्रोंका बनाना कुछ भी असम्भव न था। इस विषयपर अधिक प्रमाण अनावश्यक हैं। (Indian shipping) तथा दूसरी पुस्तकोंमें इस बातको पूरी तरहसे सिद्ध कर दिया गया है। इसलिए कम्पासके आविष्कारका महत्त्व यूरोपीय लोगोंको नहीं दिया जा सकता।

इन नाना प्रकारकी बड़ी वस्तुओंके साथ भारतवर्षमें और सब प्रकारके शिल्पकार्य भी प्रथम श्रेणीके किये जाते थे। इस बातकी सत्यताको सब स्वीकार करते हैं कि प्राचीन समयमें सबसे उत्तम वस्तुएं भारतमें ही बनती थीं। और स्थानकी बनी चीज़ें उनका मुक़ाबिला किसी भी दशामें नहीं कर सकती थीं। यहांसे दुनियाके भिन्न भिन्न भागोंमें सदा करोड़ों अर्बोंका माल जाया करता था और जिस प्रकार आजकल यूरोपके व्यापारका सिक्का संसारमें जम रहा है, उसी प्रकार उस समय भारतीय व्यापारकी तूती सर्वत्र बोलती थी। इसका कारण यही है कि यहांके लोग सब वस्तुओंके बनानेकी वैज्ञानिक पद्धतिको भली भांति जानते थे और वे विज्ञानमें पूर्ण कुशल थे। यहांपर कपड़े, कांचका सामान, लोहे, लकड़ीकी चीज़ें आदि सब वस्तुएं उत्तम और टिकाऊ बनती थीं। दिल्लीमें गढ़ी लोहेकी लाट इस बातकी साक्षी है कि भारतीय धातु-विज्ञानमें पूर्ण पंडित थे। वैसे बड़े लोहेके लट्ठे अबसे कुछ समय पहिले तक यूरोपमें नहीं बन सकते थे और सबमें बड़ी बात तो यह है कि दो ढाई हज़ार वर्ष बीतनेपर भी आजतक उसमें ज़ंग नहीं लगी है। यह बात यहांके लोगों-की विज्ञान कुशलताको कम प्रकाशित नहीं करती। इसके अतिरिक्त भारतकी शिल्प कुशलताके और भी सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं, जिन सबका इस छोटेसे लेखमें उल्लेख किया जा सकना कठिन है। सारांश यह है कि प्राचीन कालमें भारतीय लोग शिल्प-विज्ञानके सबसे बड़े ज्ञाता थे।

यूरोपियन लोगोंका कहना है कि हमारे समान रणकुशल जाति संसारमें कभी कोई नहीं हुई। हमारा युद्धविज्ञान सबसे श्रेष्ठ है। हमने विज्ञानके बलसे भयंकर तोपें, बन्दूकें, गोले, गोली बारूद, डाइनेमाइट, नाना प्रकारके विस्फोटक पदार्थ समुद्री सुरंगें, ड्रेडनाट, जल-मग्ननाव, ज़हरीली गैस, तरल अग्नि आदि ऐसी ऐसी वस्तुएं आविष्कृत की हैं जिनका इससे पहिले किसीको स्वप्नमें भी ज्ञान न था और जिनके द्वारा आज हम समस्त संसारको नष्ट भ्रष्ट कर सकते हैं। पर सच्ची बात यह है कि यह सब कुछ होनेपर भी यूरोपियनोंकी युद्ध विज्ञान विषयक उन्नति तथा युद्ध सामग्री भारतीयोंकी इन वस्तुओंके सामने तुच्छ हैं। उनसे पूछना चाहिये कि बारूद बनानेकी युक्ति तथा उसे उपयोगमें लानेकी विधि सबसे पहिले किसने निकाली? अभी एक सज्जनने भली भांति सिद्ध कर दिया है कि भारतवासी हज़ारों वर्षोंसे इन वस्तुओंका ज्ञान रखते हैं, जब कि यूरोपमें इनका प्रचार हुये एक हज़ार वर्ष भी नहीं हुये। हमारे यहांकी बहुत पुरानी पुस्तक शुक्रनीतिमें बारूद बनानेकी विधि स्पष्ट लिखी है। प्राचीन साहित्य-में जिन शतघ्नी और भुशंडियोंका वर्णन है वे

भयंकर तोपोंके सिवाय और कुछ न थीं। ज़हरीली धुआं द्वारा फौजोंको बेहोश करने, मारनेका वर्णन रामायणादि ग्रन्थोंमें साफ़ साफ़ लिखा है। हमारे यहांके अग्निवाणके सामने इन लोगोंकी तरल अग्नि बालकोंका खेल सी जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त इस देशके प्राचीन योद्धा जिस विद्युत्का प्रयोग करते थे, यूरोपियन अभी उसकी खोज ही कर रहे हैं। एकाधबार पढ़ा था कि वहांके किसी मनुष्यने दूरसे बिजली फैंक कर सेनाओंके नाश कर देनेकी विधि निकाली है, पर उसका प्रयोग होते नहीं सुना? हमारे यहां तो इन्द्रके वज्र और विद्युत अस्त्रके प्रयोगका उल्लेख स्पष्ट किया गया है, जिनके द्वारा अनायास ही बड़ी बड़ी सेनाएँ थोड़ी देरमें नष्ट कर दी जाती थीं। और भी मोहनास्त्र, विलापनास्त्र, जृम्भनास्त्र, वारुणास्त्र आदि बीसियों प्रकारके ऐसे ऐसे घोर शक्तिशाली अस्त्रोंका प्रयोग भारतीय मनुष्य जानते थे, जिनका नाम भी आज कलके यूरोपीय रणविशारदों तथा वैज्ञानिकोंको मालूम नहीं। ऐसी दशामें इन लोगोंको युद्ध-विज्ञानका आचार्य कौन कहेगा और कौन इनकी युद्ध कलाको सर्वश्रेष्ठ बतलायेगा।

ज्योतिषविद्याका आदि आविष्कार स्थल भी यह भारत ही है। जिस समय यूरोपवालोंको इस विषयमें तनिक भी ज्ञान न था उस समय यहांके विद्वान प्रायः समस्त प्रधान ग्रहों, उपग्रहों, तथा दूसरे तारोंका वेध कर चुके थे। नौ ग्रहोंके नाम तथा वर्णन हमारे यहांके बहुत प्राचीन ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीकी गोलाई, उसका सूर्यके चारों ओर घूमना, ग्रहण पड़नेका कारण, ग्रहोंका अपने स्थानसे हटना आदि ज्योतिष विद्या सम्बंधी सभी बातोंकी खोज यहां बहुत पहिले की जा चुकी है। इन बातोंके प्रमाण वैदिक कालसे लेकर पौराणिक काल तककी पुस्तकोंमें जगह जगह पाये जाते हैं। संस्कृतका सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ भी ज्योतिषविद्याका मूल भंडार है। इसके अतिरिक्त और भी सैकड़ों परमोत्तम ज्योतिष ग्रन्थ इस देशमें बनाये गये थे। पर काल प्रभावसे अब वे नष्ट हो चुके हैं। इस विषयमें भारतियोंने अन्य विषयोंकी अपेक्षा अधिक उन्नति की थी।

बहुतसे यूरोपियन कहते हैं कि पुच्छल तारोंके आविष्कारक हेली आदि पश्चिमीय पंडित हैं। यह बात नितान्त निर्मूल है। जिन लोगोंने ज्योतिषमें इतनी उन्नति की क्या उनको स्पष्ट दिखाई देनेवाले पुच्छलतारोंका ज्ञान न था। हमारे वेदादि प्राचीन ग्रन्थोंमें इन धूमकेतुओंका विशद वर्णन किया गया है और जिन बातोंका पता वर्तमान यूरोपीय ज्योतिषियोंने अब लगाया है वे भारत वासियोंको हज़ारों वर्ष पूर्व ज्ञात थीं।

पश्चिमीय डाक्टरोंको अपने चिकित्सा विज्ञान (medical science) का बड़ा अभिमान है। वे अपने इस ज्ञानके सामने दूसरोंकी चिकित्सा प्रणालियोंको नितान्त तुच्छ और दूषित समझते हैं। पर विद्वानोंने सिद्ध किया है कि पश्चिमीय चिकित्सा शास्त्रकी उत्पत्ति चरक सुश्रुत आदिसे ही हुई थी। पहिले ये ग्रन्थ अरबी भाषामें अनुवादित हुये और वहांसे यूरोपमें इनका प्रचार हुआ। आर्योंकी चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी उन्नति बड़ी विलक्षण थी। आजकल पश्चिमीय विद्वानोंने एलोपैथिक (Allopathic), होमियोपैथिक (Homeopathic), क्षार चिकित्सा (Biochemie), रंगचिकित्सा (Colour cure), जलचिकित्सा (Water cure), उपवास चिकित्सा (Fasting cure) अस्थि चिकित्सा (Osteopathy) आदि जो नाना प्रकार की चिकित्सा प्रणालियां निकाली हैं वे सब हमारे आयुर्वेदके एक एक अंग मात्र हैं। वैद्यक में इन सब प्रकारकी चिकित्साओंका वर्णन है। इन लोगोंने उनमेंसे एकएकको प्रधानता देकर बढ़ा लिया है। इसका पूरा वर्णन हम अपने चिकित्सा परिचय वाले लेखमें करेंगे। इस गिरे हुये समयमें भी वैद्यक औषधियोंके समान शक्तिशाली औषधियां और देखनेमें नहीं आतीं। उन सद्य फलदात्री तथा

सदाकेलिए केवल आरोग्य करनेवाली (न कि कुछ समयकेलिए रोगको दबा देनेवाली) औषधियों-के सामने विलायती दवाइयां किसी प्रकार प्रशंसनीय नहीं समझी जा सकतीं। किस विलायती दवाकी सामर्थ है कि वह च्यवन जैसे जराजीर्ण मनुष्यको पच्चीस वर्षके युवाके सदृश कर दे। कौन सी विलायती दवाई वैद्यक रस रामबाणका सा काम करके दिखा सकतीहै। इस देशमें चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि, अश्विनी कुमार आदि अनेक बड़े बड़े चिकित्सा विज्ञानके आचार्य हो चुके हैं। और संतोषकी बात है कि उनके उपदेशोंका कुछ अंश अब भी रक्षित है और वह इतना है कि इस दीन हीन अवस्थामें भी संसारकी समस्त चिकित्सा प्रणालियोंको परास्त कर सकनेमें समर्थ है। विद्वान पाठकोंको इस विषयकी सत्यता भली भांति मालूम होगी, अतः इस विषयका अधिक बढ़ाना व्यर्थ है। निस्सन्देह आर्योंमें चिकित्सा विज्ञानको उन्नतिके शिखरपर पहुंचा दिया था।

जो बात चिकित्सा विज्ञानके विषयमें लिखी गई है, वही उसके एक प्रधान अंग शस्त्र-चिकित्साके (surgery) विषयमें कही जा सकती है। भारतवासियोंने इस विद्यामें भी अद्भुत सफलता प्राप्त की थी। आजकलके डाकृर लड़ाइयोंमें घायल हुये सिपाहियोंके अच्छे करनेमें महीनों लगा देते हैं। पर महाभारतके समय इसका ऐसा प्रबन्ध था कि सन्ध्याके समय योद्धागण बीसियों भयानक घाव खाये हुये, लोहू लुहान लौटते थे और कुछ ही समयमें दिव्य औषधियोंके प्रभावसे उनके अंग पुनः पूर्ववत कर दिये जाते थे, जिससे दूसरे दिन वे पुनः भली भांति लड़ने लगते थे। बाणोंकी नोकोंके निकालनेमें भी असाधारण चातुर्य प्रकट किया जाता था। वास्तवमें आर्योंकी शस्त्र-चिकित्साकी अपेक्षा उत्तम और महत्वपूर्ण शस्त्र चिकित्सा दूसरी नहीं। अब भी इस विषयकी पुस्तक सुश्रुत संहिताको देखकर बड़े बड़े डाकृरोंको चकित होना पड़ता है। यहांपर इस कामके लिए ऐसे नश्तर बनाये जाते थे कि जिनके द्वारा खड़े बालके दो हिस्से किये जा सकते थे। यह बात वैद्यक ग्रन्थोंमें जगह जगह लिखी हुई है। नहीं मालूम आजकलके नश्तर इस कार्यको कर सकते हैं या नहीं। इतना ही नहीं इस देशके चिकित्सक मस्तिष्कपर भी शस्त्रक्रिया करते थे। पर आजकलके डाकृरोंको प्रायः इस कार्यके करनेका साहस नहीं होता। और भी कितनी ही बातें हैं जिनसे भारतियोंकी शस्त्रचिकित्साकी उत्कृष्टता सिद्ध होती है। इस विषयमें डाकृर अभी तक उनकी समानता नहीं कर सके हैं।

(असमाप्त)

खेतीके प्राण और उसकी रक्षा

(३) खेतीके काम और यंत्र

[लेखक—एल० ए-जी०]

पैदावारका कम या ज़्यादा होना उन कामोंपर निर्भर होता है जो किसान खेत या खलिहानमें करता है। इन कामोंके करनेके लिए उसे यंत्रों (औज़ारों) बैलों और अन्य मनुष्योंका सहारा लेना पड़ता है। खेत कितना ही उपजाऊ और खदीला क्यों न हो, यदि उसमें ठीक रीतिसे उचित समयपर जुताई, गुड़ाई नहीं की गई है तो उसमें पैदावार कभी अधिक न होगी। खेतमें जितने काम किये जाते हैं उनका प्रभाव पैदावारपर बहुत पड़ता है, ऐसा अनुभव द्वारा सिद्ध हुआ है।

खेतीके भिन्न भिन्न कामोंको हम समयानुसार निम्न लिखित विभागोंमें बांट सकते हैं:—

(१) बीज बोनेसे पहिलेके काम
(२) ,, ,, पीछेके काम
(३) फ़स्ल काटनेसे पीछेके काम

प्रथम दो विभागके काम खेतमें किये जाते हैं। तीसरे विभागके काम खलिहानमें किये जाते हैं।

(क) बीज बोनेसे पहिलेके काम

बीजमें अंकुर फूटने और बढ़नेके लिए ज़मीनका नरम और नम होना अत्यन्त आवश्यक है। नरम होनेसे जड़ें आसानीसे ज़मीनके अन्दर प्रवेश कर सकती हैं। नम होनेसे उनको अपनी ख़ुराक पानीमें घुली हुई मिल सकती है, क्योंकि पौदे अपनी ख़ुराक जड़ोंके द्वारा घोलकी दशामें ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त पौदे जिन पदार्थोंको भोजनके रूपमें ग्रहण करते हैं वह प्रायः ज़मीनमें अनघुल अवस्थामें होते हैं अर्थात् वह पानीमें घुल नहीं सकते। ज़मीनके नरम हो जानेसे हवा और सूर्यकी किरणें सरलतासे अन्दर चली जाती हैं और अनघुल पदार्थोंको घुलनशील बना देती हैं। ज़मीनके अन्दर जीवाणु भी होते हैं, वह भी पौदोंकी ख़ुराक तैयार किया करते हैं। उनके कार्यके लिए भी हवाकी आवश्यकता होती है। नरम हो जानेसे उन्हें भी यह मिल जाती है और उनका काम निर्विघ्नतासे हुआ करता है। इन बातोंसे प्रगट हुआ कि बीजके उगने और बढ़नेके लिए नरम, नम और पौदोंकी ख़ुराक रखनेवाली ज़मीनका होना अति आवश्यक है। ऐसी ज़मीनका तैयार करना ही पहिले विभागके कामोंका मुख्य उद्देश्य है।

इस विभागमें जुताई करना, पटेला देना, हैरो चलाना और गुड़ाई करना शामिल है।

जुताई करना—यह काम ज़मीनको नरम करनेके अभिप्रायसे किया जाता है। इसके करनेसे

(१) ज़मीन नरम हो जाती है।

(२) ऊपरकी मिट्टी नीचे और नीचेकी ऊपर आ जाती है।

(३) खर पतवार उखड़ कर दब जाते हैं और सड़ कर खादका काम देते हैं।

(४) वर्षाका पानी रम जाता है। कड़ी ज़मीन होनेसे वह बह जाया करता है।

(५) हवा सरलतासे प्रवेश कर जाती है और जीवाणुओंको पौदोंकी ख़ुराक तैयार करनेमें सहायता देती है। स्वयं भी ख़ुराक तैयार करती है।

(६) सूर्यकी किरणें भी ज़मीनमें प्रवेश कर जाती हैं और पौदोंके लिए ख़ुराक तैयार करनेमें सहायता देती हैं।

(७) कीड़े और उनके अंडे ऊपर आ जाते हैं जोकि या तो सूर्यके तापसे मर जाते हैं या उन्हें चिड़िया चुग जाती हैं। ज़िन्दा रहनेसे यह कीड़े फ़स्लको खाकर हानि पहुंचाते हैं।

(८) रेहके समान ज़मीनको ऊसर बनानेवाले पदार्थ नीचे ही रह जाते हैं ऊपर नहीं आने पाते।

जुताई करते समय निम्न लिखित बातोंका ध्यान रखना चाहियेः—

(१) खेत गीला न हो। गीले खेतमें जुताई करनेसे डले पड़ जायंगे जिनको कि तोड़ना कठिन हो जायगा। बैलों और हलवाहेके चलनेसे ज़मीन कड़ी हो जायगी।

(२) खेतकी मिट्टी भुरभुरी दशामें हो अर्थात् ऐसी दशामें हो कि जब उसे हाथमें लें तो उसकी गोली न बंधे वरन् दबानेपर छोटे छोटे टुकड़े हो जायं।

(३) खेत कड़ा न हो। ऐसा होनेसे जुताई गहरी न होगी। हलकी नोक टूट जायगी या घिस जायगी।

इसलिए जुताई करते समय ज़मीन न बहुत गीली और न बहुत सूखी होनी चाहिये। यदि सूखी हो तो सिंचाई करके और यदि गीली हो तो भुरभुरी दशामें हो जानेपर जोतना चाहिये। भुरभुरी दशावाला समय यदि निकल जायगा तो खेतमें डले पड़ जायंगे और जुताई अच्छी न होगी।

यह काम जिस यंत्र द्वारा किया जाता है, उसे हल कहते हैं (देखो चित्र १)। यह बैलोंके द्वारा खींचा जाता है। पश्चिमी देशोंमें घोड़ोंके द्वारा इसे चलाते हैं। आजकल तो इञ्जनकी सहायतासे यह काममें लाये जाते हैं।

(माप—१ इंच = २ फुट)

हलके चलानेकी रीति

हलके चलानेके लिये एक जोड़ी बैलकी आवश्यकता होती है। इनकी गर्दन पर जूआ (देखे। चित्र २) रख देते हैं। इसके बाद हलकी हरीसको महादेवाके नीचे एक रस्सीसे बांध देते हैं जिसे कि नहाना कहते हैं। हरीस हटेनीके द्वारा
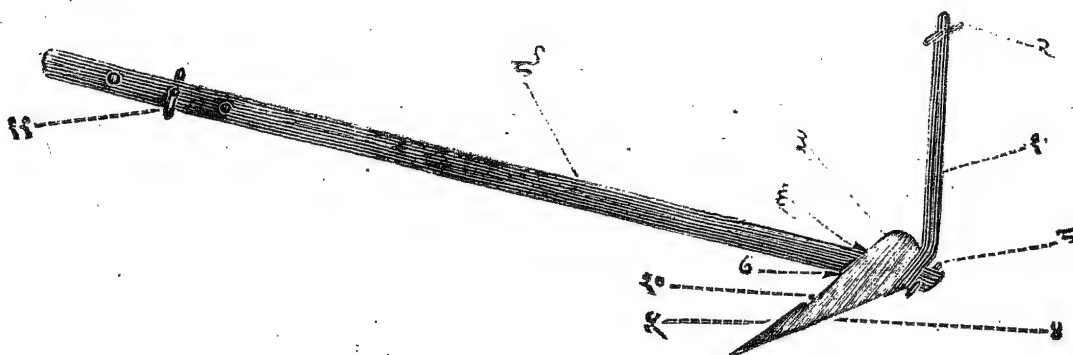
चित्र १—देशी हल

१—परेथा, २—मुठिया, ३, ४—मुड़िया ख़्वाज, ५—फार, ६—पाट, ७—खंजेली, ८—बरेल, ९—हरीस, १०—अगमासी या अगावट, ११—हटेनी।
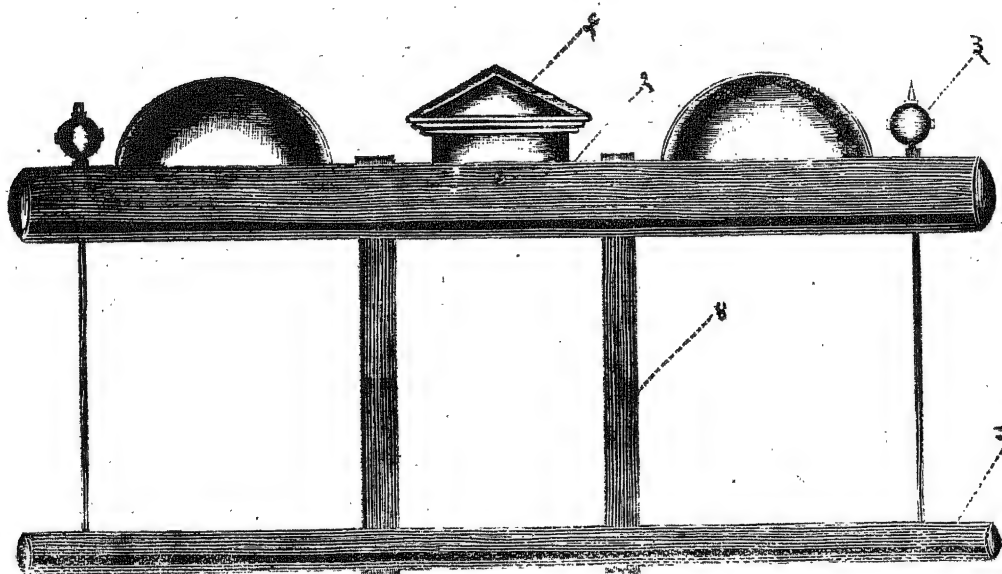
चित्र २—जुआ (मांची). १-जुआ २-तरमांची ३-सौलाया सैला ४-गतार ५-महादेवा

नहानेमें रुकी रहती है। यदि हरीसको लम्बा रखना होता है तो हटेनी अगले सूराखोंमें लगा दी जाती है और यदि छोटा रखना होता है तो पिछले सूराखोंमें। हल चलाते समय फारकी नोक बैलोंके पिछले पैरोंसे ६, ७ इंच पीछे होनी चाहिये। जोतना आरम्भ करनेसे पहिले बैलोंकी रस्सीको ज़रा ढीली रखकर मुठियामें बांध देते हैं। हलवाहा बाएँ हाथसे मुठियाको पकड़ कर दाहिने हाथसे बैलोंको हांकता है और हलके दाईं ओर चलता है। खेतके दूसरे सिरेपर पहुंचकर बैलोंको बाईं ओर घुमाता है। खेत यदि छोटा होता है तो जुताई (देखो चित्र ३) किनारोंकी ओरसे
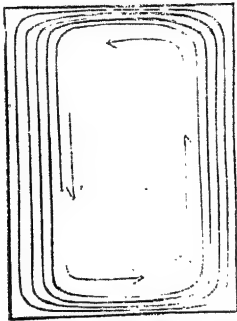
चित्र ३—छोटे खेतकी जुताई

हलाई
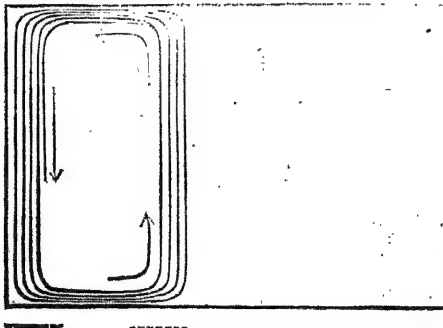
चित्र —४बड़े खेतकी हलाई भरके जुताई

खेतके बीचकी ओरसे होती हुई चली आती है और यदि खेत बड़ा होता है तो जुताई (देखो चित्र ४) उस खेतके छोटे छोटे कई टुकड़े करके की जाती है। हर एक टुकड़ेको हलाई या हराई कहते हैं। हलके द्वारा जो नाली बनती है उसे कूंढ़ कहते हैं।

एक बार जब खेत जुत जाता है तो दुबारा उसे आड़ा जोतते हैं।

देशी हलसे जुताई करनेसे कुल खेत नहीं जुत पाता क्योंकि इस हलसे अङ्गरेज़ी अक्षर V के समान कूंढ़ बनती है। ऐसी जब दो कूंढ़ें बराबर बराबर होकर गुज़रेंगी तो उनके बीचमें उल्टी V की के समान ज़मीन बिना जुती रह जायगी। (देखो चित्र ५)

जुती हुई ज़मीन

बीचकी बेजुती ज़मीन

चित्र नं० ५—इसमें यह दिखलाया गया है कि दो कूढ़ोंके बीचमें उल्टी वी (V) की शक्लकी ज़मीन बिना जुती रह गई है।

उपरोक्त चित्र द्वारा ज्ञात हो जायगा कि देशी हल कुल ज़मीनको एक बारकी जुताईमें नहीं खोदता। जब तककि ३,४ जुताइयां नहीं की जातीं तब तक खेतकी कुल मिट्टी नहीं खुदती। इसी कारणसे आज कलके कृषि विशारद देशी हलको हल नहीं कहते हैं। उनका कहना है कि हल वही कहला सकता है जो कि मिट्टीको एक बारकी जुताईमें ही खोद कर पलट देता है। इस अभिप्रायको पूरा करनेके लिए जो हल बनाये गये हैं वह मिट्टी पलटनेवाले हल कहलाते हैं (देखो चित्र ६)

मिट्टी पलटनेवाले हलोंकी हरीस प्रायः छोटी होती है, इसलिए चलाते समय एक ज़ंजीरके ज़रियेसे उन्हें जूएमें जोड़ते हैं। जूएमें महादेवाके नीचे एक कड़ा लगा रहता है उसीमें ज़ंजीरका एक सिरा अटका देते हैं। दूसरा सिरा हल-

के कड़ेमें लगा रहता है। ज़ंजीर आवश्यकता अनुसार छोटी या बड़ी की जा सकती है। चलते समय पहिया ज़मीनपर घूमता हुआ चलना चाहिये। इस हलके भिन्न भिन्न हिस्से निम्न लिखित काम देते हैं:—

(६) पहिया—पहिया कूंढ़की गहराई एक सी रखता है। जब गहरा जोतना चाहते हैं तो इसे ऊँचा करना पड़ता है।

(७) कड़ा—इसीमें जूएके साथ हलको जोड़ते समय जंज़ीर लगाते हैं।
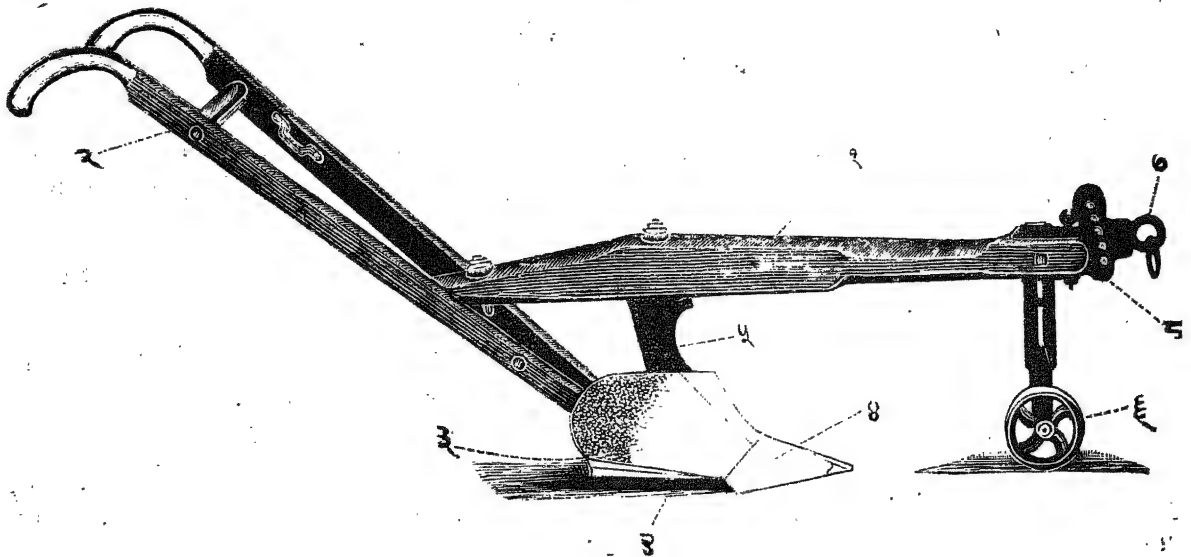
चित्र ६—(१) हरीस (beam) (२) मुठिया (Handles) (३) मिट्टी पलटने वाला भाग (Mould board) (४) फार (Share) (५) बाडी (body) (६) पहिया (Wheel) (७) कड़ा (Yoking ring) (८) हैड पीस (Headpiece) (६) तली (Slade and Sole)

(१) हरीस—हरीसके द्वारा ही हल खींचा जाता है।

(२) मुठिया—हलवाहा हलको मुठिया पकड़ कर ही सीधा रखता है या इधर उधर घुमाता है।

(३) मोल्ड बोर्ड या मिट्टी पलटनेवाला भाग—जो कुछ मिट्टी हलके द्वारा खुदती है वह इस भागके द्वारा ही पलट दी जाती है।

(४) फार (share)—इसके द्वारा हल मिट्टीको खोदता है।

(५) बाड़ी (body)—हलके अन्य हिस्से इसीमें लगे रहते हैं।

(८) हैडपीस (Head piece)—जितने ऊँचे बैल होते हैं उन्हींके लिहाज़से कड़ेको इसके सूराखोंमें ऊपर या नीचे लगा देते हैं। जब बैल ऊंचे होते हैं तो ऊपरके, और छोटे होते हैं तो नीचेके, सूराखोंमें लगा देते हैं। गहरा जोतना होता है तब भी कड़ेको ऊपरके, और उथला जोतना है तो नीचेके, सूराखोंमें लगा देते हैं।

(६) तली (Slade and sole)—हल इसी हिस्सेपर रगड़ता हुआ चलता है।

इस हलसे जुताई करनेके दो तरीक़े हैं। एक मेंड़की ओर से खेतके बीचकी ओर। दूसरे खेतमें बीचसे मेंड़की ओर।

जब मेंड़की ओरसे बीचकी तरफ जोतते हैं तो जुताई देशी हलकी तरह ही की जाती है। खेत यदि छोटा होता है तो एक बार ही सब खेतको जोत देते हैं और बड़ा होता है तो हलाई भर कर जोतते हैं (देखो चित्र नं ३,४)। इस रीतिसे जोतनेसे हर एक हलाईके बीचमें एक नाली पड़ जाती है। दूसरी बार जोतते समय इन्हीं नालियों परसे जोतना आरम्भ करते हैं। इस प्रकारकी जुताईको मध्यसे मेंड़की ओर की जुताई कहते हैं। इस प्रकारकी जुताईसे मध्यकी नाली भर जाती है और मेंड़के किनारोंपर नाली पड़ जाती है। इस प्रकारकी जुताई करते समय कूंढ़के अंतमें ही उसी स्थानपर बैल दाहिनी ओर घुमा देते हैं। (देखो चित्र ७)
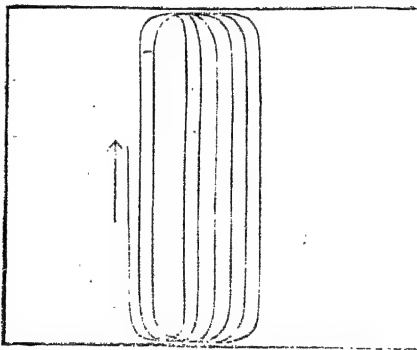
चित्र ७—मध्यसे मेड़ोंके ओर की जुताई

मिट्टी पलटनेवाले हलोंका प्रयोग करते समय इस बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि जहां तक हो सके खेतके अन्दर कम नालियां पड़ें और जो पड़ें भी तो वह मेड़ोंके सहारे, जहांपर कि वह पटेलेकी मिट्टीसे भर जायँगी।

हलको चलाते समय दबाना नहीं चाहिये। दबानेसे नोक ऊपर उठ जाती है, जिससे कि जुताई नहीं होती। इन हलोंका व्यवहार वर्षा ऋतुके समाप्त हो जानेके पश्चात् नहीं करना चाहिये। यह हल देशी हलकी अपेक्षा बहुत गहरे जाते हैं, इनकी कूँढ़ ऊपर नीचेसे एक सी चौड़ी होती है। जुताईके समय दहिना बैल सदा पहिली कूंढ़में चलता है।

देशी और मिट्टी पलटनेवाले हलोंकी जुताईकी तुलना

(१) देशी हल मिट्टी नहीं पलटता।	(१) मिट्टी पलटता है।
(२) कूँढ़ वी (V) की शक्लकी होती हैं।	(२) कूंढ़ ऊपर नीचे एक सी चौड़ी होती है।
(३) जुताई गहरी नहीं होती।	(३) जुताई गहरी होती है।
(४) घास फूंस नहीं दबता।	(४) घास फूंस दब जाता है।
(५) एक जुताईमें कुल मिट्टी नहीं खुदती।	(५) एक जुताईमें कुल मिट्टी खुद जाती है।

उपरोक्त दो प्रकारके हलोंके विवरणसे ज्ञात हुआ होगा कि मिट्टी पलटनेवाला हल जुताईके लिए विशेष उपयुक्त है। इसलिए जब किसी खेतको जोतना हो तो मिट्टी पलटनेवाला हल चलाना चाहिये, क्योंकि मिट्टी पलटनेवाले हल ही मिट्टीको एक ही बारमें खोदते और पलटते हैं।

अच्छी जुताईमें निम्न लिखित बातें होनी चाहियें:—

(१) कूंढ़ सीधी हों। कूंढ़ सीधी होनेसे काम शीघ्र समाप्त होता है और बिना जुती मिट्टी नहीं छूटती।

(२) मिट्टी एक सी पलटी हुई हो। यदि एक सी पलटी नहीं होगी तो खेतका धरातल ऊंचा नीचा हो जायगा।

(३) हलाई एकसी होनी चाहिये। प्रायः एक हलाई २२ गज़ चौड़ी होती है। हलाइओंमें कूढ़ोंकी संख्या एक होनी चाहिये।

(४) कूंढ़ सब भरे हुए होने चाहिये। घास फूँस सब अच्छी तरहसे दबा हुआ होना चाहिये।

(५) जुताईके पश्चात् खेत सुन्दर मालूम होना चाहिये।

यदि ऊपर लिखी हुई बातें जुताईमें पाई

जायेंगी तो जिन लाभोंका वर्णन आरम्भमें किया गया है, वे सब होंगे।

मिट्टी पलटनेवाले हल कई प्रकारके होते हैं परन्तु हमारे देशके किसानोंके लिए जो अच्छा होगा उसका चित्र नीचे दिया जाता है। इस हलसे नालियां नहीं पड़ेंगी। जुताई खेतके एक सिरेसे आरम्भ की जायगी और दूसरे सिरेपर पूरी कर दी जायगी। कुल जुताई भरमें एक नाली पड़ेगी जो कि मेंड़के किनारे आकर पड़ेगी। वह भी पटेलेके इस्तैमालसे भर जायगी।

उपरोक्त प्रकारके हलको टर्न रैस्ट (Turn Wrest) हल कहते हैं। कूढ़के सिरेपर पहुंचकर आंकड़ा मोल्डबोर्डमेंसे निकाल देते हैं। इसके निकल जानेपर हलके दूसरी ओर फार और मोल्ड बोर्ड घुमा दिये जाते हैं। ऐसा करनेसे फिर पहिली कूँढ़के किनारे किनारे जोतते हुये चले आते हैं। आंकड़ा लगानेके लिए मोल्डबोर्डमें दो सूराख़ होते हैं। एक सूराख़ एक तरफ़ काम देता है और दूसरा घूमनेपर दूसरी तरफ़, फार भी दोनों तरफ़ काम देता है।

इसलिए जुताई करनेके लिए मिट्टी पलटनेवाले हलोंको काममें लाना चाहिये। वर्षाके समाप्त हो जानेके पश्चात् देशी हलका प्रयोग करना चाहिये।

पटेला देनाः—जुताई करनेसे खेतका धरातल ऊँचा नीचा हो जाता है। ऐसा होनेसे दूसरी बारकी जुताई ठीक प्रकारसे नहीं होती। हल दूसरी बार एकसी जुताई नहीं कर सकता। इस कठिनताको दूर करनेके लिए खेतोंमें जुताईके बाद पटेला काममें लाते हैं। यह लकड़ीका ६, ७ फुट लम्बा शहतीर होता है जो कि लगभग १ फुट चौड़ा और ५ ६ इंच मोटा होता है।
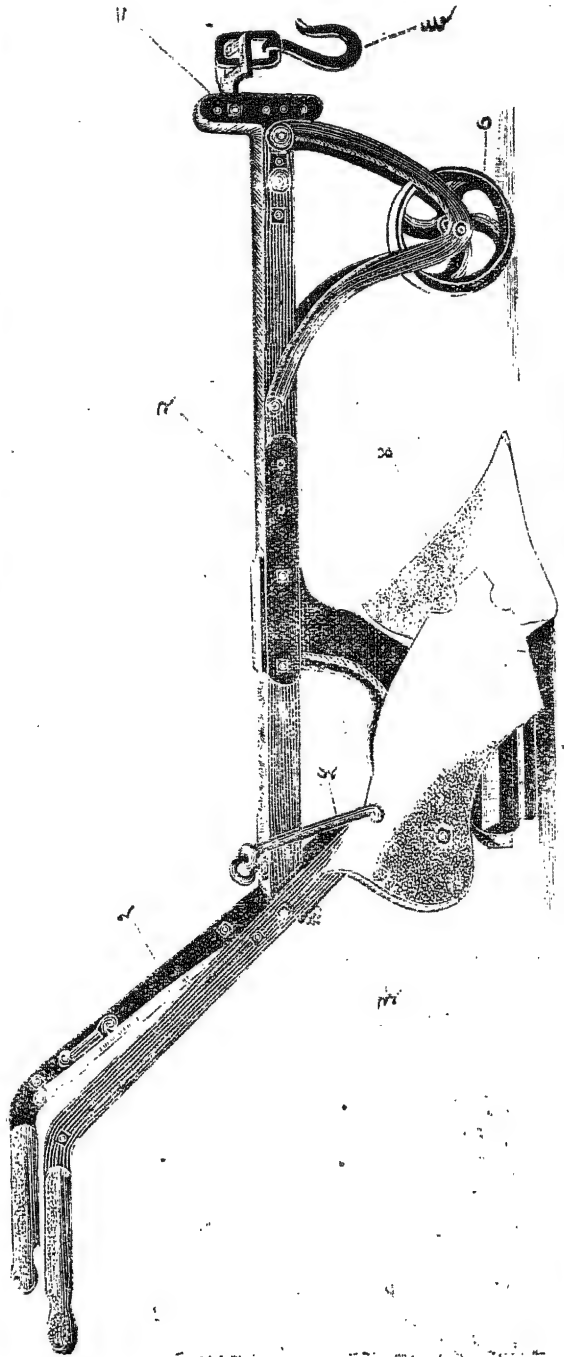
चित्र ८—(१) मुठिया (Handles) (२) हरीस (Beam) (३) मिट्टी पलटने वाला हिस्सा Mould board (४) फार (Share) (५) आंकड़ा (Hook) (६) कड़ा (Yoking ring) (७) पहिया (८) हैडपीस (Headpiece)

इसमें दो खूंटे लगे रहते हैं जिनमें कि रस्सी बांध-कर जुते हुये खेतपर बैलों द्वारा खींचते हैं। जो
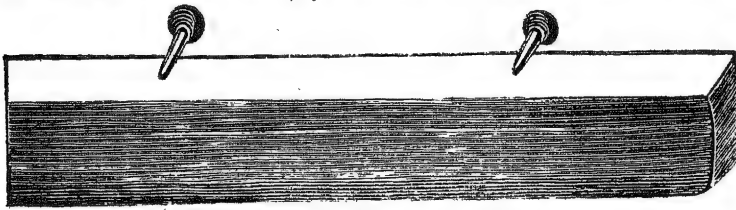
चित्र ६—पटेला

पटेले कि इससे दुगने लम्बे होते हैं उन्हें दो जोड़ी बैलोंके द्वारा खींचते हैं। हांकनेवाला उसके ऊपर खड़ा हो जाता है। जिस सिम्तको कि जुताई की गई हो उसी ओरको पटेला भी चलाते हैं। उसके चलानेसे खेतका धरातल यकसां हो जाता है।

जुताई करनेसे खेतमें डले पड़ जाते हैं। इन डलोंको तोड़नेके लिए भी पटेला काममें लाया जाता है। यदि पटेला न दिया जायगा तो यह कड़े हो जाते हैं और फिर इनका टूटना कठिन हो जाता है। इसलिए जुताईके बाद ही पटेला चला देना चाहिये।

जुताईसे खेत बहुत नरम हो जाता है। नरम हो जानेसे मिट्टीके कणोंमें बहुत अन्तर हो जाता है, जिससे कि उनके बीचमें होकर हवा सरलतासे आ जा सकती है। इससे खेतकी नमी कम होना आरम्भ हो जाती है। सूर्यके तापसे भी नमी उड़ने लगती है। ऐसा होनेसे खेतके सूख जानेका डर रहता है। इसके अतिरिक्त पानीको ऊपर लानेवाली नालियां (capillary tubes) भी टूट जाती हैं। मिट्टीके कणोंके प्रथक् प्रथक् हो जानेसे उनका व्यास बढ़ जाता है और पानी ऊपर नहीं चढ़ने पाता। पानीके ऊपर न चढ़नेसे जुती हुई मिट्टी सूख जाती है। ऐसी दशामें मिट्टी-को नरम रखनेके लिए पटेला फेर देते हैं इससे मिट्टीके कण दब जाते हैं, उनके बीचका अन्तर कम हो जाता है और पानीको ऊपर लाने-वाली नालियोंका सम्बन्ध फिर हो जाता है और मिट्टी ऊपर तक नम रही आती है।

सारांश यह है कि खेतका धरातल बराबर करनेके लिए, डलोंको तोड़नेके लिए और धरातल तक नमी स्थिर रखनेके लिए खेतोंमें जुताईके बाद पटेला देते हैं।

प्रायः बरसातके बाद ऐसा होता है कि बहुत-से खेत एक बार ही जुताईके योग्य हो जाते हैं। ऐसी दशामें सब खेत एक दम ही तो जोते नहीं जा सकते। उनको बारी बारीसे जोतना आरम्भ करते हैं। ऐसा करनेसे दूसरे खेत सूख जाते हैं और उनमें डले पड़ जानेकी सम्भावना हो जाती है। इसको रोकनेके लिए दूसरे खेतोंमें पटेला दे देना चाहिये। ऐसा करनेसे ऊपरकी लगभग १/२ इंच मिट्टी उखड़ जाती है। वह मिट्टी नीचेकी मिट्टीको सूखने नहीं देती क्योंकि ऊपर पानी लाने-वाली नालियोंका सम्बन्ध कणोंके पृथक् पृथक् हो जानेके कारण टूट जाता है। इससे पानी ऊपर नहीं आने पाता। सूरजका ताप भी नीचेकी मिट्टी तक नहीं पहुंचने पाता, इससे पानी खेतमें जमा रहा आता है।

बोये हुए खेतमें यदि नमी की कमीके कारण बीज न उपजा हो तो पटेला दे देनेसे शीघ्र उपज आता है, क्योंकि मिट्टी दब जाती है और नीचेसे ऊपरको अधिक पानी चढ़ने लगता है, जिसकी सहायतासे बीज जम आता है।

बुवाईके पश्चात् बीजको ढकनेके लिए पटेला दिया जाता है। इससे मिट्टी दब जाती है और बीजको नमी मिल जाती है।

जब डले पटेलेसे न टूटते हों तो बेलन (Roller) काममें लाना चाहिये। इससे डले

सरलतासे टूट जाते हैं। यह लोहे, पत्थर और लकड़ीके होते हैं। बैलोंकी ताकतके अनुसार बेलन बनवाने चाहियें।

पटेले और बेलनके काममें अन्तरः—

पटेला	बेलन
(१) पटेला रगड़ कर चलता है।	(१) बेलन घूमता हुआ चलता है।
(२) पटेला कम डले तोड़ता है।	(२) बेलन खूब डले तोड़ता है।
(३) पटेला कम मिट्टी दबाता है।	(३) बेलन मिट्टी अच्छी तरह दबाता है।
(४) खेतका धरातल बराबर करता है।	(४) धरातल कम बराबर नहीं करता।
(५) पानी कम ऊपरको उठाता है।	(५) अधिक पानी उठाता है

भारत-गीत २८

प्रेम अपनों ही पर कर रे
तू ए मेरे मन मान, प्रेम अपनों ही पर कर रे

(१)

अपनोंका कर बार बार घर। अपनोंका घर बार बार भर
अपनों से डर बार बार, अपनों ही पर मर रे
प्रेम अपनों ही पर कर रे

(२)

अपनों ने अपने पहँचाने । बढ़ा अपनपा, हुए दिवाने
अपनों सा नहिं कोई आन, अपनों हो को बर रे
प्रेम अपनों ही पर कर रे

(३)

अपने ही सब गुन की खान हैं। अपने ही प्रानों के प्रान हैं
अपनों का कर गान, तान अपनों ही पर भर रे
प्रेम अपनों ही पर कर रे

श्रीपद्मकोट,
प्रयाग, १. ११. १९१८ —श्रीधर पाठक

खाद और खाद डालना

(लेखक—'पथिक')

अनैन्द्रिक खाद

शोरेकी खाद (Potassium Nitrate)

हमारे प्रान्तमें शोरा गांवोंके आस पास पाया जाता है। जिस मिट्टीमें यह होता है उसको लोना मिट्टी कहते हैं। यह फ़स्लमें पांसके रूपमें इस्तेमाल की जाती है। इससे शोरा निकालनेकी क्रिया निम्न लिखित है:—

गांवके आस पाससे लोना मिट्टी खुरच कर जमा करते हैं। फिर उसे पानीमें घोलते हैं। जब मिट्टी बैठ जाती है तब उसके पानीको छान कर कढ़ाईमें औटाते हैं। जब थोड़ा पानी रह जाता है तो उसे नांदोंमें ठंडा करते हैं। ठंडा होने पर शोरेकी कलमें टट्टियोंके ऊपर बन जाती हैं और नीचेकी तहमें नमक जम जाता है।

शोरेके गुण

शोरेमें पोटासियम और नत्रजन दोनों होते हैं। यह दोनों तत्व पौदेके लिये अति आवश्यक होते हैं। इस पदार्थमें यह दोनों तत्व ऐसी दशामें होते हैं कि तत्काल पौदेके काम आ सकते हैं, क्योंकि यह पानीमें घुल सकता है।

खेतमें पांसके रूपमें डालनेकी रीति

यह खाद पानीमें शीघ्र घुल जाती है, इसलिए इसे थोड़ी थोड़ी मात्रामें २, ३ बार डालते हैं जिससे कि पानीके साथ बह कर न चली जाय।

यह खाद खेतमें बीज बोनेके बाद उस समय डाली जाती है जब कि पौदोंकी जड़ें अपनी खुराक आप लेनेके योग्य हो जाती हैं। जब कि पौदे लगभग ६ इंचके होते हैं तब इस खादके डालनेका उपयुक्त समय है। खेतमें जब सिंचाई हो चुकी हो और पानी सोख गया हो तब इसे महीन पीस कर और इसकी मात्रासे दुगनी मिट्टी मिलाकर

दोपहरके समय इसे खेतमें बराबर फैला देना चाहिये। ऐसा ही हर बार करना चाहिये।

यह खाद मूल्यवान होती है; इसलिए साधारण फ़स्लोंमें इसे न डालना चाहिये। तरकारी और गेहूं के लिए यह बड़ी लाभदायक है। एक मनसे तीन मन तक एक एकड़में डालनी चाहिये। इसकी मात्रा खेतकी दशा और क़िस्म फ़स्लपर भी निर्भर है। इसका मूल्य प्रति मन ८) या १०) होता है। इसे बोनेसे पहिले खेतमें कभी न डालना चाहिये।

सोडियम नाइट्रेट (Sodium Nitrate)

इसके गुण और खेतमें डालनेकी रीति शोरेके खादके ही समान हैं। उसमें शोरेके खादसे केवल इतना ही अन्तर है कि इसमें पोटासियमके स्थानमें सोडियम होता है।

सूखे सालमें सोडियम नाइट्रेट अधिक लाभदायक होता है।

भव्य भविष्य।

१-स्त्री-उत्कर्ष

(१)

स्त्री समाजमें चेतनाका उदय हमारे भविष्य शुभका सुखदायक चिह्न है। पाठकोंने श्रीमती उमादेवीके लेख 'भविष्य' के कई एक गत अंकोंमें अवश्य बड़ी रुचिसे पढ़े होंगे। श्रीमती लेखिकाकी भारतीयमहिलाओंके भविष्यकी चिन्तना मननयोग्य है। उससे पुरुष और स्त्री दोनों समाजोंमें अनुचिन्तन प्रवृत्त होना चाहिये। भारतका भविष्य स्त्री और पुरुष दोनों का ही भविष्य है। भूतकाल चाहे जैसा रहा हो, वर्त्तमान काल स्त्रियोंकी सर्वमान्यताका काल है और भविष्य इससे कहीं उत्तम होनेवाला है। बाल-विवाहकी हेयता; बाल विधवाओं अथवा विधवामात्रके विवाहकी विधेयता; पर्देका क्रमक्रमसे परित्याग; स्त्री शिक्षा; स्त्रियोंको पुरुषोंके समान समस्त सांसारिक कार्योंमें भाग लेनेका अधिकार; स्त्रियोंके सम्मान-वृद्धिके अनेक अन्य अन्य उपाय जो दिन दिन दृश्यमान होते जाते हैं सभी हमारे भविष्यकी भव्यताके सूचक हैं।

देहलीसे "शक्ति" नामकी एक नवीन स्त्री-पत्रिका निकलनेवाली है; प्रयागसे एक महिला-हितैषी साप्ताहिक प्रकाशित होनेवाला है; कई एक मासिकपत्र बहुत दिनोंसे निकल रहे हैं, जिनमें स्त्रियोंकी कमनीयता और अभिवृद्धि प्रदर्शित रहती है। यह सब अवश्य ही हमारे भविष्यके सौभाग्यके साधन हैं।

स्त्रियोंकी स्थितिमें समुचित परिवर्तन किये बिना समाजकी संस्थिति कभी उन्नत नहीं हो सकती, यह स्थूल परन्तु पुष्ट सिद्धान्त किसी मनस्वीको नहीं भूलना चाहिये। सुख-सुविधा-विधायक परिवर्तन सुजीवनका लक्षण है और सुजीवन मनुष्य जन्मकी सार्थकताका सूचक है। यदि मनुष्य-योनि पाकर तुम्हें पशुवत् जीवन बिताना पड़ा तो तुम्हारा मनुष्य होना नितान्त निरर्थक हुआ। तुमने अपनी उन शक्तियोंको, अपने उन अधिकारोंको जो भगवान्ने तुम्हें तुम्हारे जन्मके साथ दिये हैं उपयुक्त और उपभुक्त न किया तो नर देह धरकर क्या किया? तुम्हारी शक्तियों और अधिकारोंका उपयोग और उपभोग सबसे उत्तम तुम्हीं कर सकते हो। परोसे हुए भोजनके थालसे तुमको अपने हाथोंसे अपने मुखमें भोज्य पदार्थोंको पहुंचाना तुम्हारा कर्तव्य है। भोज्य पदार्थोंका संपादन करना भी तुम्हारा ही कर्तव्य है। संसार सुखमय है, सौन्दर्यमय है, उसके सुख और सौन्दर्यके पूर्ण उपभोगकी चेष्टा क्यों नहीं करते? "सकल पदारथ हैं जग माहीं। भाग्यहीन नर पावत नाहीं" यदि तुम जगतके किसी सुखद पदार्थसे वंचित हो तो इसमें किसका दोष है? तुम्हारी भाग्यहीनता का? पर भाग्यहीनता क्या है, योग्यता-

General साधारण]

की हीनता ही भाग्यहीनता है न ? अतः योग्यता सम्पादन करना सबका धर्म है मनुष्य अपने भाग्यका आप ही विधाता है। अपनी सब हीनताओंको दूरकर प्रवीणता प्राप्त करो। परन्तु तुम्हारी प्रवीणता अथवा सुख संपादनमें लीनता, तुम्हारा भाग्य, तुम्हारा जीवन, तुम्हारा सब कुछ कुछ भी नहीं है बिना तुम्हारी प्राणवल्लभाओंके योगके। बिना स्त्रीके पुरुष शून्य है और बिना पुरुषके स्त्री कोई वस्तु नहीं है। दोनों ही संसार रथके चक्र हैं। एक चक्रसे रथका चलना असम्भव है। अतः दोनोंकी ही निरंतर सुस्थिति अपेक्ष्य है। जिन उपायोंसे यह सुस्थिति साध्य हो उनका अवलंबन हमारा सर्वोपरि धर्म है।

श्रीपद्म कोट, प्रयाग, ६-४ १६ | —श्रीधर पाठक

अग्नि वा तेज

[ले०—डा० बी० के० मित्र, एल० एम० एस०]

प्राचीन कालके मनुष्य अग्नि वा तेजको पृथवी, जल, वायु आदिकी तरह एक 'महाभूत' समझते थे, परन्तु आधुनिक भौतिक विद्याकी दृष्टिसे यह उनके साथ एक ही कक्षामें शामिल नहीं किया जा सकता। यदि पृथवी आदिको हम पदार्थ कहें तो अग्निको हम आधुनिक परिभाषामें पदार्थकी एक अवस्था वा 'शक्ति' कहेंगे। अतएव हम अग्निके विषयमें कुछ आलोचना करेंगे और कुछ ऐसी परीक्षाओंके द्वारा जो हरेक आदमी अपने घरमें कर सकता है इसके स्वरूपके निर्णय करनेका प्रयत्न करेंगे।

साधारणतः अग्निके लिए हम लकड़ी, तेल, घी, आदि पदार्थोंको जलाते हैं, परन्तु यह प्रश्न उठता है कि वह जलते क्यों हैं ? यूरोपके प्राचीन रासायनिक इसके उत्तरमें यह कहेंगे कि लकड़ी, तेल आदिमें एक दाह्य पदार्थ है, अर्थात् एक अग्न्युत्पादक द्रव्य है, जिसके प्रकट होनेसे अग्निका विकाश होता है। उसीके निकल जानेसे राख वा काजल आदि जो कुछ बचता है, वह असली पदार्थसे हलका होता है। सम्भवतः अग्निका यह समाधान भारतीय है, जो कि अरब निवासियोंके द्वारा यूरोपमें पहुंच कर मध्ययुगमें स्टहाल आदि मनीषियोंका 'फ्लोजिस्टन वाद' बना। यह समाधान सन्तोषजनक प्रतीत होते हुए भी आधुनिक केमिस्ट्रीके प्रयोगोंकी कसौटीपर सही नहीं उतरा, इसलिए इसको छोड़ना पड़ा।

आधुनिक केमिस्ट्री प्रयोगात्मक है। भिन्न भिन्न घटनाओंको देखकर हम उनके सत्य जाननेके लिए अपनी प्रयोगशालामें उनपर तरह तरहकी परीक्षाएँ करते हैं। परीक्षाओंके बाद उनपर विचार किया जाता है। विचारके बाद हम घटनाओंके सम्बन्धमें कोई 'मत' स्थिर कर लेते हैं। यदि यह मत अन्य प्रकारकी घटनाओं तथा मतोंसे पुष्ट हो सके और किसी ज्ञात घटनाके विरुद्ध न जाय तब हम ऐसे मतको 'सिद्धान्त'-का स्थान देते हैं। आधुनिक विज्ञानमें भी इन सिद्धान्तोंके निर्णय करनेमें 'प्रत्यक्ष प्रमाणों' के अतिरिक्त बहुधा 'अनुमान' भी काममें आता है। परन्तु आजकल प्राचीन समयकी तरह 'उपमा' का प्रमाण नहीं माना जाता। 'श्रुति' प्रमाणका तो कोई स्थान ही नहीं। इसलिए बहुत दफ़े नये प्रयोगोंके द्वारा कोई घटना हमारे अनुमानके विरुद्ध सिद्ध होनेपर हम अपने सिद्धान्तोंको छोड़ देते हैं, वा उनका संशोधन करते हैं।

प्राचीनोंने भी भारतमें विद्याकी उन्नति इसी प्रकार की थी, कोई भी सिद्धान्त श्रुति वा आप्तवचनसे प्राप्त नहीं हुए थे। इसीलिए ऋषियोंमें इतना मत भेद पाया जाता है, वह अपने पूर्वजोंकी भूलोंका सुधार करनेमें उनकी अप्रतिष्ठा नहीं मानते थे। सच है कि जीवित और उन्नतिशील

Chemistry रसायन शास्त्र]

तातिमें युक्ति ही सत्यकी एकमात्र कसौटी समझी जाती है।

लीजिये, अग्नि सम्बन्धमें दो चार परीक्षा करके देखिये। आसानीके लिए चिरागकी जगह एक मोमबत्ती बाल लें। आप देख सकते हैं कि बत्तीकी गरमाईसे मोम केवल पिघलता ही नहीं, बल्कि विश्लेषित होकर गैस (वायु) बन जाता है। तेलकी यह गैस ही जलकर प्रकाश और तेज पैदा करती है। बत्तीकी लौकी ओर देखिये कि उसके बीचमें एक भाग बेजली गैसका है। फिर उसके चारों ओर एक बड़ा उज्ज्वल ग़िलाफ़ है जिससे प्रकाश पैदा होता है। उसके बाहर और चोटी-पर बेरंगका पतला ग़िलाफ़ है, जो सबसे ज़्यादा तेज़ है पर प्रकाश नहीं देता और सबसे नीचेकी ओर एक नीले रंगका ग़िलाफ़ भी पाया जाता है।

१—एक सफ़ेद चीनीकी रकाबीमें चिकनाई लगाकर उसको लौके ऊपर क्षणभरके लिए दबा दो। देखोगे कि मध्यभाग काला हो गया है, पर उसके चारों ओर एक घेरा कुछ कम काला है। इससे प्रमाणित हुआ कि बीचमें कबन विशिष्ट वायु है, जिसके चारों ओर लौके उज्ज्वल गिलाफ़-में कर्बन बहुत सा प्रज्ज्वलित अवस्थामें है और उसके बाहर कर्बनका कोई चिह्न नहीं।

२—यदि एक नली ले कर लौके इस बीच-वाले भागमें डाल दी जाय तो उसके दूसरे प्रान्त-से निकलती हुई गैस सुगमतासे जलाई जा सकती है।

३—एक दियासलाईकी तीलीको लेकर इस लौके मध्य भागके अन्दर जल्दीसे डाल दो। देखोगे कि उसके मुँहपर अधिक दाह्य मसालेके जलनेसे पहिले ही उसके बाहरके गिलाफ़से लगकर तीलीकी लकड़ी जल उठती है। कारण कि वहां तेज ज़्यादा है और जलानेकी सहायक हवा भी अधिक है।

४—एक बड़ा सा गिलास लेकर मोमबत्तीपर पलट दीजिये, जलती हुई बत्ती बुझ जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इसके जलानेमें हवाकी आवश्यकता है।

५—बुझते ही गिलास उठाकर निकलते धुआं-को सूंघिये, उसमें कैसी चिर्रायंद मालूम होती है। यह दुर्गन्ध मोमकी नहीं बल्कि मोमसे बनी हुई गैसों (वायु) की है। इस अवस्थामें इसको फिर बाल दीजिये, देखेंगे कि बत्ती भकसे जल उठती है। अतएव मोम गैस बननेके बाद ही जलता है।

अब प्रश्न उठता है कि जलकर होता क्या है? यों तो देखनेमें बत्तीका पदार्थ अदृश्य हो जाता है। इससे शायद कोई समझे कि वह बिलकुल लुप्त हो गया, अर्थात् उसने अपने अस्तित्वको छोड़ दिया। पर जटिलयन्त्रोंसे हम दिखा सकते हैं कि बत्तीके जलनेके बाद उसकी भाप आदि असली बत्तीसे ज़्यादा भारी होती हैं। परन्तु सामान्य यन्त्रोंसे भी हम आपको प्रमाणित कर देंगे कि पदार्थ बिलकुल नष्ट नहीं होता।

६—एक बड़े कांचके गिलास वा बोतलके अन्दर एक बत्तीके टुकड़ेको तारमें लगाकर नीचे-को उतार दीजिये और उसका मुख ऊपरसे ढांक दीजिये। बत्ती पहिलेकी तरह बुझ जाती है। इसको निकालकर तुरन्त ही इसके अन्दर थोड़ा सा स्वच्छ चूनेका पानी डालकर हिलाइये। पानी दूधिया बन जाता है। वैसे ही एक दूसरी बोतलमें डालकर देखिये वह दूधिया नहीं बनता।

७—चूनेके पानीके अन्दरसे धौंकनीके द्वारा हवा निकालिये, वह दूधिया नहीं बनता, पर यदि किसी नलीके द्वारा फेफड़ेकी हवा फूंकसे उसमें डाली जाय तो वह भी दूधिया हो जाता है।

इन परीक्षाओंसे यह सिद्ध हुआ कि बत्तीसे जला हुआ और फेफड़ोंसे निकला हुआ वायु मामूली हवासे भिन्न है। उसमें कोई चीज़ ऐसी है कि स्वच्छ चूनेके पानीको दूधिया बनाती है। न केवल यही बल्कि प्रयोगोंसे दिखाया जा सकता है कि उसके अन्दर फिर बत्ती नहीं जल सकती,

और न कोई जीव, जैसे कि चुहिया, उसमें जी सकता है। अतएव मामूली हवा जैसे कि हमारे प्राणके लिए ज़रूरी है उसी तरह बत्तीके लिए भी है। न मालूम महात्मा बुद्धने इन दोनों घटनाओंका सामंजस्य अनुभव किया था वा नहीं, जब कि उन्होंने यह शिक्षा दी थी कि 'प्राण अग्नि है'। परंतु केमिस्ट्री इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देती है कि दीपकी तरह प्राणोंके भी निर्वाण होनेपर शरीर ठंडा हो जाता है। नाकके सामने एक ठंडा शीशा थामिये, देखियेगा कि उसपर भाप (जलकण) जम जाती है। जलती हुई बत्तीपर एक ठंडा गिलास लौटाकर पकड़िये, देखोगे कि उसके अन्दर जल-विंदु जमा हो जाते हैं।

इन परीक्षाओंसे न केवल यह सिद्ध हुआ कि मोमबत्तीके जलने और शरीरकी क्रियाओंमें एक क़रीबका सम्बंध है, बल्कि यह भी कि जलनेसे पदार्थ लोप नहीं होता, केवल उसका रूप पलट जाता है। जलनेसे जो पदार्थ पैदा होते हैं उनमेंसे एक तो जल है और दूसरा एक प्रकारका वायु है। यह वायु स्वच्छ चूनेके जलको दूधिया कर देता है। इसमें पुनः बत्ती नहीं जलती, न साधारण जीव जीते रह सकते हैं। इस वायुको कार्योनिक एसिड गैस वा कर्बन द्विओषिद (कओ$_2$) कहते हैं। कारण कि यह जैव पदार्थों (जो दाह्य हैं) के कर्बन और हवाके ओषजनका एक रासायनिक यौगिक है। जल भी जैवपदार्थोंके उदजन (हाईड्रोजन) और हवाके ओषजनका एक यौगिक है। इसके प्रमाण आगे दिये जायँगे। बहुधा रासायनिक क्रियाओंसे अग्नि पैदा होती है, जिसके उदाहरण आगे बहुत मिलेंगे। इस समय केवल अग्निके कुछ भौतिक गुण बताकर इस विषयको समाप्त किया जायगा।

भौतिक उपायोंसे भी अग्नि पैदा होती है। जैसे कि रेलगाड़ीके पहियोंमें कभी कभी रगड़से आग लग जाती है वा कीलको ठोकते समय वह गरम हो जाती है। इसी तरह वैद्युतिक प्रवाहसे भी पदार्थ गरम हो जाते हैं, यहांतक कि बिजली-की कुप्पियोंमें तार रोशनी देने लगते हैं।

अब प्रश्न यह है कि अग्नि है क्या? पहिले ही कहा गया है कि तेज आधुनिक मतमें कोई पदार्थ नहीं किंतु पदार्थकी एक अवस्था मात्र है। एक सोनेकी डलीको (जो हवामेंसे आक्सिजन नहीं लेती) गरम करनेसे उसका भार नहीं बढ़ता है, केवल उसकी अवस्था थोड़ी देरके लिए बदल जाती है। तेजका एक भौतिक गुण यह है कि वह पदार्थोंकी बंधनशक्तिको शिथिल कर देता है, जिससे उसके अन्तराणु स्थान वृद्धि पाकर फैल जाते हैं और ठंडे होनेपर फिर सिकुड़ जाते हैं।

एक रुपयेके किनारेपर मोटा तार मोड़ कर रखो और फिर संडासी से तारोंके प्रान्तोंमें ऐसा बल देलो कि वह सुगमतासे तारके छल्लेमेंसे निकल जाय। अब यदि केवल रुपयेको ख़ूब तपाकर लाल कर लिया जाय तो उस छल्लेमें से नहीं निकलेगा। यदि रुपयेके स्थानमें कोई गाओदुम लोहेकी सलाख ली जाय तो यह परीक्षा और भी सुगमतासे दिखलाई जा सकती है।

किसी लम्बे गलेकी बोतलमें जल भरकर उसके गलेपर काग़ज़का एक चिन्ह देकर उसको धूपमें वा गरम जलमें डुबोकर देखोगे कि गरम होनेपर जलकी पीठ पूर्वसे अधिक ऊंची हो गई है। यदि इसी परीक्षामें बोतलके मुखमें एक छिद्र किया हुआ काक लगाकर छिद्रमें एक कांचकी नली लगादी जाय और नली तक जल भर दिया जाय तो जलका फैलाव सुगमतासे दिखलाई देगा।

यदि पूर्वोक्त परीक्षामें जलके स्थान हवा रहे और नलीके अन्दर एक बूंद जल डाल दिया जाय तो हाथकी गरमीसे भी हवाके फैलने या

सिकुड़नेसे जलकी बूंद ऊंची नीची होती रहेगी।

अतएव सभी पदार्थ कठिन, तरल वा वायवीय उत्ताप से फैलते हैं, अर्थात् उनके अन्तराणु-स्थानमें वृद्धि होनेसे उनका आयतन बढ़ जाता है।

पदार्थोंके इसी धर्मपर तापमान यन्त्र बनाये गये हैं। साधारणतः यह एक कांचकी नली होती है, जिसके एक प्रान्तपर घुंडी होती है। घुंडीमें पारा भरकर नलीमें से साधारण वायु निकाल दी जाती है। फिर यन्त्रका दूसरा प्रान्त अग्नि द्वारा पिघलाकर बंद कर देते हैं। इसके अनन्तर इस यन्त्रको पिघली हुई बरफमें रखते हैं। नलीमें पारद सिकुड़ कर घुंडीके समीप आजाता है। यहां एक शून्य चिन्ह लगा देते हैं, जो कि हिमांक कहलाता है। फिर यन्त्रको उबलते हुए पानीकी भापमें रखकर जहांतक पारा चढ़ जाता है वहां सौ का चिन्ह लगा देते हैं जो क्वथनाङ्क कहलाता है। दोनों चिह्नोंके बीचके स्थानमें नलीपर सौ भाग कर लेते हैं। एक एक भाग एक शतांश तापक्रम कहलाता है। उपर्युक्त प्रकार के तापमान को शतांशयंत्र कहते हैं। परन्तु और रीतियोंसे भी तापांश भाग किये जाते हैं। वैज्ञानिक क्रियाओंके लिए सेन्टीग्रेड शतांश क्रमका व्यवहार होता है, परन्तु रोग तापमान यन्त्रका (क्लिनिकल थर्मामीटर) के लिए फारनहैट क्रमका व्यवहार इस देशमें होता है। इसके अतिरिक्त एक और तापक्रम 'रोमर' का भी व्यवहार होता है जिसमें हिमाङ्क और क्वथनाङ्कके मध्यमें ८० दर्जे (तापांश) होते हैं। इनमेंसे एकको दूसरे क्रममें लेजानेके लिए एक गुर बताया जाता है:—
$\frac{\text{फ}-३२}{९} = \frac{\text{श}}{५} = \frac{\text{र}}{४}$। स्वस्थ शरीरका तापक्रम ९७° से ९८° फा० तक होता है।

अब हम अग्निके दो चार और भौतिक गुणों-पर परीक्षा करके देखेंगे:—

११—सभी पदार्थोंके अन्दर अग्निका तेज समभावसे नहीं फैल सकता। लोहेके चिमटेका एक प्रान्त अग्निमें रहनेसे वह दूसरे प्रान्ततक गरम हो जाता है, पर जलती हुई लकड़ीमें ऐसा नहीं होता। इसका कारण यह है कि धातु तेजके अच्छे 'सुबाहक' होते हैं। हाथपर थोड़ी सी राख रख कर हम उसपर सुलगा हुआ कोयला रख सकते हैं, कारण राख तापकी दुर्वाहक है।

१२—इसी प्रकारसे जल भी तापका दुर्वाहक है। इसलिए हम जलको पकाते समय परीक्षा-नलिका (टेस्टट्यूब) के नीचेके भागको हाथमें लेकर उसके ऊपरके भागमें द्रवको खौला लेते हैं और हमारे हाथमें गरमी नहीं लगती। परन्तु यदि नीचेसे तपायें तो खौलनेसे पहिले ही ऊपर तक गरम हो जाता है।

१३—उपरोक्त घटनाका कारण यह है कि तरल पदार्थोंमें ताप उसके नीचेके कणोंको उत्तप्त करके फैला देता है, जो ऊपर चढ़ते समय तापका वहन करते हैं। ऊपरसे ठंडे कण नीचे आते हैं और गरम हो हो कर ऊपर चढ़ते जाते हैं, इससे सारा द्रव समान गरम हो जाता है। इसको तापका 'परिवहन' कहते हैं। यह घटना किसी काँचकी कुप्पीके अन्दर थोड़ा सा बुरादा जलमें मिश्रित करके बालुकायन्त्र द्वारा तपानेसे स्पष्ट दिखाई देगी। वायवीय पदार्थोंमें भी ताप इसी प्रकार फैलता है।

१४—तापसे बहुधा पदार्थ कठिनसे तरल और तरलसे वायवीय बन जाते हैं। प्रायः पदार्थोंका तरल अवस्थामें ठोससे आयतन अधिक होता है, और भापका आयतन तो तरलसे बहुत ही ज़्यादा होता है। परन्तु जलमें इस नियमका कुछ व्यतिक्रम पाया जाता है, जिसका वर्णन आगे होगा।

१५—कठिनसे तरल और तरलसे भाप बनानेमें तापकी आवश्यकता है। इसीलिए दशा परिवर्तन करते समय पदार्थ अपने चारों ओरसे ताप को ग्रहण कर लेते हैं वा अपनेमेंसे गुप्त तापको प्रकट करते हैं। इसी कारण पसीना सूखते समय

हमारा शरीर ठंडा हो जाता है और भपकेके सिरपर जो ठंडा पानी होता है गरम हो जाता है। एक और अच्छा उदाहरण बरफ़ और शोरे या नमकका है कि जिन दोनोंको मिलानेसे दोनों ठोस चीज़ें द्रव होनेमें बरफ़ ०° से भी लगभग २०° तापांश ज़्यादा ठंडी हो जाती हैं। धोबीकी ज़्यादा भट्टीमेंसे गरम भाप ऊना वा रेशमी कपड़ेके अन्दर द्रव बननेमें उनको उबलते हुए पानीसे भी अधिक हानि पहुंचाती है।

कठिन, तरल तथा वायवीय पदार्थोंके अतिरिक्त ताप केवल आकाश अर्थात् शून्य पदार्थके अन्दरसे भी अपना मार्ग कर लेता है। यदि ऐसा न होता तो सूर्य्यसे पृथ्वीतक तापके विकीर्ण होनेका क्या आधार है। विद्वानोंने आकाशको भी एक प्रकारका अतिसूक्ष्म पदार्थ माना है, जिसमें भार नहीं होता।

तापके उपयुक्त गुणोंपर ही हमारे बहुत से कार्य और पृथ्वीकी घटनाएं निर्भर हैं। इनके दो चार और उदाहरण दिये जाते हैं:—

क—तापसे ठोस चीज़ोंके फैलनेके कारण हम पहियेकी हालको तपानेके अनन्तर लकड़ीपर चढ़ाकर उसको पानीसे ठंडा कर देते हैं, जिससे वह सिकुड़कर अरों और पुट्ठियोंको जकड़ लेता है। रेलोंके बीचमें क़रीब $\frac{१}{४}$ इंचका अन्तर छोड़ा जाता है।

ख—पानी उत्तप्त होकर जो भाप बन जाती है, उसके फैलनेकी शक्ति इतनी प्रचंड होती है कि उसके द्वारा हम इंजनके पुर्ज़ोंको फिराते और रेलगाड़ी चलाते हैं।

ग—किसी स्थानका उत्तप्त वायु फैलकर ऊपर चढ़ता है, जिससे चारों ओरसे ठंडा वायु उस स्थानपर बहा करता है, इसी कारण आंधियाँ चला करती हैं।

घ—वायुवीय पदार्थ भी तरलकी तरह तापप्रचालक न होनेके कारण उनमें गरमी कण कण उत्तप्त होकर बहती है जिसको परिवहन कहते हैं। इसी कारण दुहरी दीवारोंके काँचके पात्र बनाकर उनके मध्यमेंसे हवाको यन्त्र द्वारा बिलकुल निकाल लेनेसे उनमें बाहरकी गरमी हवासे नहीं पहुंच सकती और न उससे परिवहित होकर निकल सकती है। काँच तापका दुर्वाहक होनेके कारण ऐसे पात्रोंमें रखे हुए पादार्थ बहुत देर तक एक ही तापक्रमपर रहते हैं।

हिन्दुस्तानी हाथके छापे कपड़े

उनका इतिहास, छापनेकी विधियां और आधुनिक ढंगोंपर उनका प्रभाव

कई वर्षोंसे मुझे प्राचीन कालके पूर्वीय देशोंके कपड़े इकट्ठा करनेका शौक़ है। इनके नकशों (बेल बूटों) को देखकर पहले पहल मुझे अपने काममें उन्नति करनेका बड़ा उत्साह हुआ। तदनन्तर उनकी उत्पत्ति और बनानेकी विधि जाननेकी इच्छा हुई। मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस विषयकी पूरी छानबीन आजकलके वैज्ञानिकोंने नहीं की है। यद्यपि कुछ वैज्ञानिकों और लेखकोंने हिन्दुओंकी क्रियाओंके विषयमें कुछ लेख लिखे हैं, तथापि हिन्दुस्तानके निवासी जो छींटें जटिल और कठिन क्रियाओंसे तैयार करते थे उनका तो ज़िक्रतक नहीं किया है। वास्तवमें इसी प्रकारकी छानबीन से यह जाना जा सकता है कि समस्त सभ्य संसार छपाईके काममें भारतवर्षका कितना ऋणी है।

हाथकी छपी छींटें कुछ तो अब भी यूरोपके अजायबखानोंमें मिल सकती हैं, परन्तु अधिकांश रोज़गारी छीपोंके निजके संग्रहमें पायी जाती हैं। खोज करनेपर मुझे मालूम हुआ है कि हिन्दुस्तानके अजायबघरों (अद्भुतालयोंमें) अच्छे नमूनोंका संग्रह करनेका प्रयत्न नहीं किया गया है।

पहिले तो मैं छींट छापनेके इतिहासपर विचार करूंगा। छपाईके इतिहासज्ञ साधारणतः यह बात मानते हैं कि सूती या सनके कपड़ोंको छापने यानी उनमें ऐसे रङ्गीन चित्र उपाड़नेकी, जो पक्के हों यानी जो धोनेपर छूट न जायं, विद्याका प्रादुर्भाव भारतवर्षमें ही हुआ था। यह भी सब मानते हैं कि १७वीं और १८ वीं सदीमें, जब यूरोपमें छींटें या छपे हुए कपड़े प्रायः हिन्दुस्तानसे ही जाया करते थे, जिन रासायनिक क्रियाओंका हिन्दू लोग छापनेमें प्रयोग करते थे वह प्रायः वहीं थी, जिनका उल्लेख प्लिनीने सं० ७० ई० में किया था।

मिश्रके विषयमें उसने लिखा है कि वहां कपड़े बड़े विचित्र ढंगसे छापे जाते हैं। सफ़ेद कपड़ेको पहिले जगह जगहपर दवाओंसे भिगोते हैं, जो रङ्ग तो नहीं होतीं, पर जो रङ्गको पकड़ लेती हैं। यह मसाले पहिले तो नहीं दिखाई पड़ते पर जब रङ्गकी देग़में कपड़ेको डोबकर निकालते हैं तब वह रङ्गा हुआ निकलता है। आश्चर्य तो यह है कि यद्यपि हौज़में एक ही रङ्ग होता है तथापि कपड़ा भिन्न भिन्न दवाओंके भिन्न भिन्न स्थानोंमें लगे होनेसे कई रङ्गोंमें रङ्गा हुआ दिखाई पड़ता है। फिर यह रङ्ग भी धोनेसे नहीं छूटते। देखिये कितना आश्चर्य है। यदि एक रंगमें रंगकर कपड़ा हौज़में डालें तो ख़राब हो जाता, पर यहां जैसे जैसे देग़में रङ्ग खौलता है कपड़ेपर कई रंग चढ़ते जाते हैं, यद्यपि हौज़में रंग एक ही होता है।"

इस उदाहरणसे यह विदित होता है कि कपड़ोंको भिगोनेकी दवायें मोर्डेन्ट्स (mordants) थे और मिश्रवालोंको छींट रंगनेकी कलाका कुछ न कुछ अवश्य ज्ञान था और यह निस्सन्देह उन्हें हिन्दुस्तानसे प्राप्त हुई थी।

अब मैं १५ शताब्दी बादका हाल लिखता हूं जब कई ईस्ट इंडिया कंपनियां हिन्दुस्तानसे छींटें ला लाकर यूरोपमें पहले पहल इनका प्रचार कर रही थीं और यूरोपवासियोंको इन आश्चर्य जनक चीज़ोंका ज्ञान करा रहीं थीं। यूरोपकी जातियोंमें पुर्तगालवाले सबसे पहिले १४९८ ई० में हिन्दुस्तान गये। यह आशा अन्तरीप होकर वहां जाते आते थे और उसी मार्गसे व्यापार करते थे। इनके आनेके पहिले जेनोआ और वेनिसवालोंके हाथमें भारतवर्षका व्यापार था। वह लोग हिंदुस्तानसे माल फारिसकी खाड़ी, बसरा, बगदाद और हलबसे होकर वेनिसमें लाते थे और वहांसे फिर सारे यूरोपमें वह फैल जाता था। उस समय उत्तरी यूरोपमें ब्रुजेस (Bruges) व्यापारका केन्द्र था। उसके बाद एण्टवर्प और एण्टवर्पके बाद १५८५ से अम्स्टर्डम् वाणिज्यका केन्द्र स्थान हो गया। लगभग एक सदीतक आशा अन्तरीपके मार्गसे होनेवाला हिन्दुस्तानका व्यापार पुर्तगालवालोंके हाथमें पूरे तौरसे निर्विघ्न बना रहा। हिन्दुस्तानसे डच लोगोंका पूर्वकालीन व्यापार सीधा नहीं होता था। वह पुर्तगालवालोंके बीचमें होकर होता था, जो सामुद्रिक मार्गसे हिन्दुस्तानसे सीधा व्यापार करते थे। स्पेनके महाराज फिलिप द्वितीयके आज्ञापत्रसे १५८० से अम्स्टर्डमवालोंको लिस्बनसे व्यापार करनेका निषेध हो गया। अस्तु डच लोग भारतवर्षसे सीधा व्यापार करनेके लिए प्रयत्न करने लगे। भारतकी ओर यात्रा करनेवाले व्यापारियोंने अन्ततः १६०२ में "डच ईस्ट इंडिया कम्पनी" नामकी संस्था खोल दी।

१५८७ ई० में जबकि स्पेनका इंग्लिस्तानपर हमला होनेवाला ही था, उस समय जो जहाज़ ड्रेकने पकड़े उनमें 'सेंट फिलिप' नामकी एक पुर्तगाली नाव भी थी, जो भारतकी ओरसे आ रही थी। भारतीय व्यापारके महत्वके विषयमें इस नावके काग़ज़ोंसे बहुत कुछ पता चला। १५९२ में कुछ अंग्रेज़ी लुटेरे जहाज़ोंने एक दूसरी नाव पकड़ी और उसे डार्टमाउथमें लाये। सुननेमें आता है कि उसमें छींटें, रिज़ाइयां, कम्बल, ग़लीचे

आदि बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ थीं। इन्हीं जहाज़ोंके पानेसे अंग्रेज़ोंने भारतवर्षसे स्वयं व्यापार करनेकी ठान ली और १६०० में महारानी एलिज़बेथसे चार्टर ले लिया। इस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनीका जन्म हुआ। फ्रांसवाले जल्दी व्यापारके क्षेत्रमें नहीं उतरे और कहीं १६६४ में जाकर अर्थ विभागके मंत्री कोलबर्टने १४वें लुईसे फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनीको चार्टर दिलाया।

आइये अब ज़रा यह देखें कि मुसाफ़िरों और सौदागरोंने भी इस सम्बंधमें कुछ कहा है या नहीं। खोज करनेपर पता चलता है कि आशा अन्तरीप होकर भारतवर्ष पहुंचनेका मार्ग मालूम होनेके बाद ही बारबोसा नामी एक आदमी भारतवर्ष पहुंचा और उसने लौटनेपर 'पिंटेडोड' (छींट) कपड़ोंकी बड़ी तारीफ़ की।

१५८३ में बसरेकी राहसे फ्रेडरिक सीज़र हिंदुस्तान पहुंचा। उसने लिखा है कि "सेंट टामे और मलाकाके बीच बारीक छपे हुए क़ीमती कपड़ोंका बहुत व्यापार होता है। यह कपड़े बड़े क़ीमती इस कारण होते हैं कि वे बहुत से रङ्गोंसे रंगे हुए मालूम पड़ते हैं और जितने ही धोये जाते हैं उतने ही अधिक उनके रङ्ग खिलते हैं।

१६५७ में बोलेये-लेगूज़ (Boullaye-le-Gouz) ने लिखा है "यह अबतक नहीं मालूम है कि भारतके निवासी रंगोंको क़िस प्रकार ऐसी सफलतापूर्वक लगाते हैं कि धोनेसे उनको किंचित मात्र हानि नहीं पहुंचती। मैंने कुछ छींटें कई रंगरेज़ोंको फ्रांसमें दिखलाईं, वह उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे और उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि हिन्दुस्तानके रंग शुद्ध और सरल हैं और यूरोपके रंग झूठे, नकली और मक्कारीसे बनाये जाते हैं।

डाक्टर हावर्ट (Dr. Havart, M. D.) एम् डी नामी एक बड़े वनस्पतिज्ञ ने "कारो मंडलका उदय और पतन" नामक पुस्तकमें १६९३ में नीलकी रंगाईके विषयमें बहुत विस्तार पूर्वक लिखा है। उक्त ग्रन्थमें लिखा है:—

"पालीकोलमें जो चित्र या वेल बूटे आप चाहें कपड़ोंपर छपवा सकते हैं। चित्र या नक़्श आपको देने पड़ेंगे, क्योंकि वहांके निवासी इतने निर्बुद्धि होते हैं कि वह कोई वस्तु नई नहीं बना सकते। पर वह नक़ल करनेमें बड़े निपुण हैं और हूबहू वैसे ही नक़्श कपड़े पर बना सकते हैं। पर एक ही मनुष्यकी छापी दो छींटें एकसी नहीं होतीं।" दूसरे स्थानपर फिर उसने लिखा है कि "यहां (पाली कोल) पर ४ प्रकारके छीपी हैं; जिनका कार्य्य अलग अलग बँटा हुआ है। वह भी अपना काम अन्य मज़दूरोंसे कराते हैं, जो बहुधा बड़े निर्धन होते हैं। इस कारण उन्हें ऋण चुकाने और वार्षिक कर देनेके लिए बहुत परिश्रमसे काम करना पड़ता है, अन्यथा भीख मांगनेकी नौबत आ जाती है। इसीलिए दक्षिणकी अपेक्षा पालीकोलमें छींटें अधिक बनती हैं। छापनेका काम अत्यंत धीमी चाल से होता है। उनकी गति कीड़ोंके समान मालूम पड़ती है, जिनके रेंगनेमें ऐसा ज्ञात होता है कि मानों वे चल ही नहीं रहे। जो कोई धैर्य्यकी मूर्ति बनाना चाहता हो और उसके पास कोई और नमूना न हो तो पालीकोलके किसी छीपीको आदर्श मान सकता है।"

उपर्युक्त लेखकने एक स्थानपर छापनेकी क्रियाका भी वर्णन किया है पर वह ऐसा अधूरा है कि मैं उसे छोड़े देता हूं।

सन् १७७७ में अबे रेनाल (Abbe Reynal) ने जिसने "Histoire Philosophique et Politique" नामक ग्रंथ लिखा है कहा है कि यूरोपकी तमाम जातियोंकी एक बस्तीकी बस्ती मसलीपट्टममें बसी हुई है। वह कपड़े ख़रीदकर यूरोप भेजा करते हैं। वह छींटें भी मोल लेकर भेजा करते हैं, परन्तु यूरोपियन छीपी उन्हें छापनेका साहस कदापि नहीं करते।

"इन कपड़ोंके छापनेमें हिन्दुस्तानियोंकी सुस्त क्रियाओंका उल्लेख करनेसे पाठकोंका धैर्य्य छूट जायगा। वह लोग कहते हैं कि यह निपुणता उनके मस्तिष्कके बल या योग्यताकी परचायक नहीं है किन्तु परम्परागत है, प्राचीन कालसे चली आती है। इस कथनमें यह स्पष्ट समझ पड़ता है कि वे लोग कितनी ही पीढ़ियोंसे लकीरके फ़कीर बने हैं और एक पग भी आगे नहीं बढ़े।"

पांडिचेरीके एक जेसुइट पादरी (Father Cœurdoux) ने यूरोपके एक दूसरे जेसुइट पादरीको चिट्ठियोंमें छपाईका हाल लिखा है। व्यापारिक दृष्टिसे यह सबसे अच्छा छापनेका हाल है। यह (Lettres Edifianteset Curieuses) में छपे हैं और उनपर १७४२ सन् ईसवी पड़ा है। उनका सारांश नीचे दिया जाता है।* † असमाप्त

लड़ाईमें कुत्तोंका काम

[ले० प्रो० मनोहरलाल भार्गव, एम. ए,]

स्वामिभक्तिके लिए कुत्ता चिरकालसे प्रसिद्ध रहा है। परन्तु कभी किसीको यह ख़याल भी न आया होगा कि कुत्ते ऐसे ऐसे काम भी कर सकते हैं, जिनका उल्लेख इस लेखमें किया जायगा और मनुष्यके इतने सहायक हो सकते हैं। यद्यपि वर्त्तमान युद्धमें ऊंटों, खच्चरों, बैलों और कबूतरोंने भी बड़े बड़े मारकेके काम किये हैं, पर कुत्ते ही रणअजिरमें खन्दकोंमें रहनेवाली फ़ौजोंके साथ रहे हैं और समय समयपर लड़नेवाली फ़ौजोंके बीचके मैदानोंमें भी काम करते रहे हैं, जहां जानेका साहस बड़े वीरोंको भी न होता था।

इस युद्धमें पहले पहल बेलजियम निवासियोंने कुत्तोंको काममें लाना शुरू किया। इसके पहले वह शांतिके समयमें भी कुत्तोंसे काम लिया करते थे, पर युद्ध छिड़ते ही उन्होंने हलकी हलकी गाड़ियां बनवाकर उनपर मशीनगन चढ़ादीं और कुत्तोंको जोत दिया। परिणाम यह हुआ कि उनके पास यद्यपि मशीनगन थोड़ी थीं, पर वह उन्हें जहां चाहते थे आसानीसे और जल्दी ले जाते थे। इसीसे बेलजियम वासियोंकी प्रत्येक तोप बैरियोंकी अधिक संख्या मारनेके काम आ सकती थी।

इन्हींके देखा देखी और दूसरी सेनाएं भी सधे हुए कुत्ते रखने लगीं। पहले पहल उनसे चौकसी करने और चिट्ठी ले जानेका काम लिया। बादमें सामनेकी लैनोंतक खाना, और गोला बारूद पहुँचानेका काम भी लेने लगे। एक बार जहां सेनाओंको यह पता चला कि कुत्ता इतने कामका पशु है, फिर क्या था, हरेक फौजने भरती करनेवालों, साधनेवालों और कुत्तोंके केम्प और अस्पताल खड़े कर दिये और इन सब कामोंमें जल्दी होने लगी। पिछले दिनों लड़ाईके मैदानमें केवल फ्रांसवालोंके ही १०००० कुत्ते थे। इन कुत्तोंसे तरह तरहके काम लिये जाते थे। प्रायः यह कुत्ते लड़नेवाली फौजोंके बीचकी जगहमें सन्तरियों (पहरेवालों) का काम देते थे। यह विपक्षियोंको सिपाहियोंकी अपेक्षा जल्दी पहचान लेते थे और निर्भय विचरा करते थे। कैदियोंकी चौकसी करनेके काम भी यह आते थे, क्योंकि इनको ऐसी

---

* यूरोपियन कारीगरोंकी योग्यताका प्रमाणपत्र इससे बढ़कर क्या होगा, पर तब भी गूज़ जैसे हठ धर्मी भारतीय कारीगरोंको नीची कोटिका मानते हैं। रेनालका आगेका कथन भी बड़ा हास्योत्पादक है। आप स्वयम् कहते हैं कि भारतकी बनी छींटोंकी नकलतक करना यूरोपियन कारीगरोंके लिए असम्भव था, और वह भी २०० वर्षके निरन्तर परिश्रमके उपरान्त, फिर यदि भारतीय कारीगर उसमें अधिक उन्नति न कर सके—किसी पूर्ण तथा उन्नत और परवर्धित कलामें परिवर्तन या उन्नति करना स्वभावतः कठिन है—तो उनका क्या दोष। किसी कलाकी प्राचीनता उसकी सर्वोत्कृष्टता तथा उन्नतावस्थाका कारण नहीं हो सकती। अतएव स्पष्ट है इन लोगोंका कथन कितना लचर है।

† सैन्टिफिक अमेरिकनसे

General साधारण]

अच्छी शिक्षा मिलती थी कि विपक्षियों और स्वपक्षियोंमें झट भेद जान जाते थे। इस प्रकार बहुतसे सिपाही लड़ाईके अन्य काम करनेको मिल जाते थे। दूतों या पत्रवाहकोंका काम भी यह बड़ी मुस्तैदी और खूबीसे करते थे। जहां गोलियें और बम्ब शैलोंकी निरन्तर वर्षा होती रहती थी, वहां भी यह निडर चले जाते थे।

सबसे बड़े लाभका काम जो इन कुत्तोंसे लिया जाता था, गोला, बारूद, और खानेकी रसदका बिलकुल आगेकी लैनतक पहुंचानेका था। विपक्षी खन्दकोंके जिस भागको चाहते थे तोपोंकी सहायतासे ऐसा अगम्य और परावेष्टित बना देते थे, जितना शायद स्वयम् आकर और घेरा देकर भी न कर पाते। ऐसे स्थानोंतक भी यह सधे हुए कुत्ते सुगमतासे पहुंच जाते थे। फ्रांसीसियोंको केवल इनके लिए विशेष प्रकारकी खुर्जी या थैले बनाने पड़े थे। साबुन या बिस्कुटके डब्बे, हाथसे फेंकनेके ग्रेनेड (बम्ब), ३० सहस्रांश मीटरकी तोपके २० गोले, १२ डबल रोटी, या मशीनगनोंके लिए २५० कारतूसोंकी पेटियां, एक कुत्ता एकबार सहज ही लेजा सकता था।

पाठक ! इन कुत्तोंने कितना काम किया, इस बातका आप अनुमान करलें ! क्या यह काम कोई और पशु कर सकता था ? फिर एक बार संसार-के इतिहासमें यह प्रत्यक्षानुभव हो गया कि पशुओंमें कुत्तेसे बढ़कर मनुष्यका सेवक कोई नहीं है। [गौ तो कामधेनु ही है, उसका कहना क्या]

युद्ध समाप्त होनेपर कुत्तोंका प्रयोग

शायद कुछ लोग यह समझ बैठें कि युद्ध समाप्त होनेपर इन कुत्तोंका कुछ काम न रहेगा, पर ऐसा समझना बड़ी भूल है। अंधे सिपाहियों-को साथी और राह दिखानेवालेका काम एसे कुत्ते ही करते हैं। ज़खमियोंकी सुविधाके लिए हलकी हलकी गाड़ियां बना दी गई हैं, जिनमें कुत्ते जुते रहते हैं। पुलिस विभागमें तो कुत्ते बड़ा उपयोगी काम करते ही हैं। ढोरोंकी रक्षा, खेतोंकी रखवाली, खलिहानकी चौकसी और गांवकी चौकीदारी कुत्ते सदासे करते आये हैं और करते रहेंगे। मुजरिमोंका पता लगानेमें, बर्फ गिरनेपर बर्फमें दबे हुए आदमियोंकी खोजकर उन्हें सहायता पहुंचानेमें, ध्रुवीय देशोंमें स्लेजोंके खींचनेमें भी कुत्ते बड़ा काम करते हैं।

कुत्तोंके अस्पताल

फौजी कुत्तोंकी चिकित्साके लिए, खास अस्पताल खोले गये हैं ! सं० १८ में फ्रांसीसी फौजके ५००० घायल कुत्तोंकी चिकित्सा हुई और उनमेंसे ४१६६ भले चंगे होकर फिर काम पर वापिस भेज दिये गये।

भारत-गीत नं० ४५

(मेलकी उक्ति अमेलसे)

झेंपना छोड़ो अब तुम यार
आज भी छिप खिसके जाते थे छाँड़ गली, घर, द्वार !

(२)

जानो हो कि मित्र हैं आये मिलने चौथी बार
अबके भी डरते हो करते उनका कुछ सत्कार
झेंपना छोड़ो अब तुम यार

(३)

चलो, मिलो, बैठो और बोलो शब्द प्रेमके चार
प्रेमसे आये हैं वह प्रेमी करने प्रेम विचार
झेंपना छोड़ो अब तुम यार

श्रीपद्म कोट,
प्रयाग ११-१-१९१९ —श्रीधर पाठक

बीजज्यामिति

[ले० — वनमाली]

(मकराङ्कसे सम्मिलित)

जो पांच समीकरण पृष्ठ १८७ पर दिये गये हैं, वे सब, जैसा कि वहींपर सिद्ध कर चुके हैं, त.य + थ.र + द = ०, के अन्तरगत हैं। अर्थात् इस व्यापक समीकरणके वे विशेष रूप हैं। उन पांचों पर भी ध्यान दिया जाय तो मालूम होगा कि (१) ला तथा (२) रा, (३) रे के अन्तर गत हैं और (४) था पाचवेंके अंतरगत है। यह बात नीचे दी हुई युक्तियोंसे सिद्ध हैः—

(१) ला समीकरण उस सरलरेखाका समीकरण है जो भुजके समानान्तर है और उससे अ दूरीपर रहती है। यह रेखा भुजमें अनन्तपर जाकर मिलेगी,* अर्थात् भुजमेंसे अनन्त लम्बाईका टुकड़ा काटेगी, कोटिमेंसे यह अ लम्बाईका टुकड़ा काटती ही है, अतएव इसका समीकरण हुआ

$$\frac{य}{\infty} + \frac{र}{अ} = १$$

या $य.० + \frac{र}{अ} = १$ [क्योंकि $\frac{१}{\infty} = ०$]

या $र = अ$

(२) रा समीकरण भी (४) थे के अन्तरगत है, क्योंकि यह उस सरलरेखाका समीकरण है जो कोटिके समानान्तर है और उससे क दूरीपर रहती है। यह भुजमेंसे क लम्बाईका और कोटिमेंसे अनन्त लम्बाईका टुकड़ा काटती है। अतएव उसका समीकरण हुआ।

$$\frac{य}{क} + \frac{र}{\infty} = १ \text{ ; या } य = क$$

(३) रा समीकरण उस रेखाका समीकरण है जो मूल विन्दुमेंसे निकलती है और भुजके साथ ऐसा कोण बनाती है कि उसका स्प, स है। स्पष्ट है कि यह कोटिमेंसे शून्य लम्बाईका टुकड़ा काटती है। अतएव उसका समीकरण हुआ।

$$र = स.य + ०, \quad \text{या } र = स.य$$

अतएव यह सिद्ध हुआ कि (४) थे और (५) वें समीकरण व्यापक समीकरणके विशेष रूप हैं, जिनकी सहायतासे रेखाओंके निर्दिष्ट करनेमें आसानी होती है। (४) थे को सरल रेखाका खंड रूप का समीकरण और (५) वें को स्पर्शरेखा रूप या 'स्प. रूप' का समीकरण कहते हैं; क्योंकि किसी सरलरेखाके समीकरणको (४) थे के रूपमें रखनेसे भुज और कोटिमेंसे उक्त रेखा द्वारा काटे गये खण्ड मालूम हो जाते हैं और (५) वें के रूपमें रखनेसे उस कोणका स्प मालूम हो जाता है जो रेखा भुजके साथ बनाती है। व्यापक समीकरणके लिखनेकी एक और विशेष रीति है, जिसको 'लम्ब रूप' कहते हैं, जो आगे चलकर दिया जायगा। अभ्यासकेलिए और इन समीकरणोंका परस्पर सम्बन्ध समझनेके लिए पाठक यह सिद्ध करें कि (१), ले (२) रे, तथा (४) थे समीकरण भी (५) वें के अन्तरगत हैं।

[(१) ला समीकरण उस रेखाका समीकरण है जो भुजके समानान्तर है और उससे अ की दूरीपर रहती है। स्पष्ट है कि यह भुजके साथ $0°$ का कोण बनाती है और कोटिमेंसे अ लम्बाई का टुकड़ा काटती है। अतएव उसका समीकरण हुआ

*समानान्तर रेखाओंके बीचका अन्तर सदा एकसा बना रहता है, पर अनन्त दूरीपर जाकर दोनों मिल जाती हैं, ऐसा मान लिया जाता है, क्योंकि जो दो रेखाएं बहुत बड़े फासिलेपर जाकर मिलती हैं, और हमारे पास, जहां तक हम नाप सकते हैं एकसी दूरीपर रहती हैं सब प्रकारसे हमारे लिए तो समानान्तर ही हैं। दूसरे समानान्तर रेखाएं भी आंखोंको बहुत बड़े फासिलेपर मिलती हुई मालूम होती हैं। रेलकी पटरीपर जाकर दूरतक निगाह दौड़ाइये, देखिये कि दोनों रेलें कैसे मिलती हुई नज़र आती हैं, यद्यपि हम जानते हैं कि वास्तवमें वह मिलती नहीं हैं।

$र = य. स्प ०° + अ$

या $र = य. ० + अ$

या $र = अ.$ इत्यादि ।]

अब हम यहां पर फिर एक दूसरी रीतिसे यह सिद्ध कर देना चाहते हैं कि प्रत्येक (दो अज्ञात राशियोंका) एकघात समीकरणका विन्दुपथ एक सरल रेखा होती है ।

मानलो कि एकघात समीकरण

$त. य + थ. र + द = ०$

है । और इसके विन्दुपथपर तीन विन्दु (या, रा), (यु, रु) और (यू, रू) स्थित हैं । यदि यह विन्दुपथ सरल रेखा है तो इन तीनों विन्दुओंको मिला देनेसे जो त्रिभुज बनेगा उसका क्षेत्रफल शून्य होगा ।

∵ चूंकि यह विंदु उक्त विन्दुपथपर स्थित हैं, इसलिए य, र की जगह इनके भुजयुग्मोंका मान रख देनेसे समीकरणमें कुछ अन्तर न पड़ेगा अर्थात्

$त. या + थ. रा + द = ० \quad (१)$

$त. यु + थ. रु + द = ० \quad (२)$

$त. यू + थ. रू + द = ० \quad (३)$

(१) को (२) तथा (३) मेंसे घटानेसे

$त (या - यु) + थ (रा - रु) = ०$

और $त (यु - यू) + थ (रु - रू) = ०$

$$\therefore \frac{या - यु}{यु - यू} = \frac{रा - रु}{रु - रू}$$

$$\therefore (या - यु) (रु - रू) = (रा - रु) (यु - यू)$$

$$\therefore या रु + यु रू + यू रा - रा यु - रु यू - रू या = ०$$

अर्थात् (या, रा,) (यु, रु) (यू, रू) को जोड़ने से जो त्रिभुज बनता है उसका क्षेत्रफल = ०, इसलिए यह तीनों एक सरलरेखा पर स्थित हैं । अतएव सिद्ध है कि 'त य + थ र + द = ०' का विन्दुपथ सरल रेखा है ।

सरल रेखा का 'लम्ब रूप' समीकरण

मानलो कि प फ सरलरेखाका समीकरण निकालना है । मूल विन्दु अ से अश लम्ब डालिये प फ पर । मानलो कि कोण त अ श = ट और अ श = ल [देखिये चित्र १०]
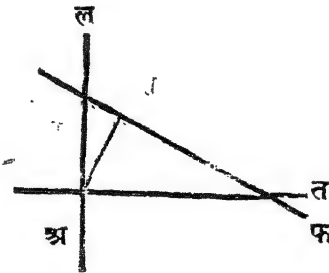
चित्र १०

यह रेखा भुज और कोटिमेंसे अफ, अप, खण्ड काटती है । अतएव उसका समीकरण होगा ।

$$\frac{य}{अ फ} + \frac{र}{अ प} = १$$

परन्तु अ फ कोज्या ट = अ श = ल

और अ प कोज्या (९०-ट) = अ प ज्या ट = ल

$$\therefore अ फ = \frac{ल}{कोज्या ट}$$

$$और \; अ प = \frac{ल}{ज्या ट}$$

∴ प फ का समीकरण हुआ

$$\frac{य}{\frac{ल}{कोज्या ट}} + \frac{र}{\frac{ल}{ज्या ट}} = १$$

या $य कोज्या ट + र ज्या ट = ल$

यही रेखाका 'लम्ब रूप' का समीकरण हुआ ।

व्यापक समीकरणको लम्ब रूपमें रखना

मानलो किसी सरल रेखाका समीकरण $त. य + थ. र + द = ०$ है । यह भी मानलो कि उसका 'लम्ब रूप' का समीकरण

$य कोज्या ट + र ज्या ट = ल$

है । इन दोनोंको 'खण्डरूप' में रखनेसे उनका रूप यह हो जाता है:—

$$\frac{य}{-\frac{द}{त}} + \frac{र}{-\frac{द}{थ}} = १$$

$$\frac{\text{य}}{\dfrac{\text{ल}}{\text{कोज्या ट}}} + \frac{\text{र}}{\dfrac{\text{ल}}{\text{ज्या ट}}} = १$$

यदि यह दोनों समीकरण एक ही रेखाके हैं तो

$$-\frac{\text{द}}{\text{त}} = \frac{\text{ल}}{\text{कोज्या ट}} ; \quad -\frac{\text{द}}{\text{थ}} = \frac{\text{ल}}{\text{ज्या ट}}$$

$$\therefore \frac{\text{कोज्या}^२ \text{ ट}}{\text{ल}^२} = \frac{\text{त}^२}{\text{द}^२}, \quad \frac{\text{ज्या}^२ \text{ ट}}{\text{ल}^२} = \frac{\text{थ}^२}{\text{द}^२}$$

$$\therefore \frac{\text{ज्या}^२ \text{ ट} + \text{कोज्या}^२ \text{ ट}}{\text{ल}^२} = \frac{\text{त}^२ + \text{थ}^२}{\text{द}^२}$$

$$\therefore \frac{१}{\text{ल}} = \frac{\sqrt{\text{त}^२ + \text{थ}^२}}{\text{द}}$$

$$\therefore \text{ल} = \frac{\text{द}}{\sqrt{\text{त}^२ + \text{थ}^२}}$$

$$\therefore \text{कोज्या ट} = \text{ल} \times -\frac{\text{त}}{\text{द}}$$

$$= \frac{-\text{द}}{\sqrt{\text{त}^२ + \text{थ}^२}} \times \frac{\text{त}}{\text{द}} = \frac{-\text{त}}{\sqrt{\text{त}^२ + \text{थ}^२}}$$

$$\text{और ज्या ट} = \frac{-\text{थ}}{\sqrt{\text{त}^२ + \text{थ}^२}}$$

इसलिए रेखाका समीकरण हुआः—

$$\frac{-\text{त}}{\sqrt{\text{त}^२+\text{थ}^२}} \text{य} + \frac{-\text{थ}}{\sqrt{\text{त}^२+\text{थ}^२}} \text{र} = \frac{\text{द}}{\sqrt{\text{त}^२+\text{थ}^२}}$$

$$\frac{\text{त}}{\sqrt{\text{त}^२+\text{थ}^२}} \text{य} + \frac{\text{थ}}{\sqrt{\text{त}^२+\text{थ}^२}} \text{र} = \frac{-\text{द}}{\sqrt{\text{त}^२+\text{थ}^२}}$$

नियम।

(१) जब किसी रेखाके सामान्य या व्यापक समीकरणको लम्ब रूपमें रखना हो तो अचल राशिको दाईं ओर लाओ और यदि आवश्यकता हो तो समीकरणके सब चिन्होंको बदल कर इसका चिन्ह धनात्मक कर लो।

(२) प्रत्येक राशिको $\sqrt{\text{त}^२ + \text{थ}^२}$ से भाग दे दो।

भारत-गीत नं० ४१

(१)

जयति भुवि भारत सती-समाज
परम पुनीत प्रेममय जिनका जाग रहा जगराज

(२)

जय जग-ज्योति, जगत-संजीवनि, जय जग-लाज-जहाज
शुचिता-सीम, पुण्य-पथ-प्रेमिनि, नेमिनि, नेह-निवाज
जयति भुवि भारत सती-समाज

(३)

जिनका सुखद सहाय पाय जग साजै सकल सुकाज
सुजस गाय, श्रीधर-उर-अन्तर आनन्दित अति आज
जयति भुवि भारत सती-समाज

श्रीपद्मकोट,
प्रयाग ६-१२-१९१८ } —श्रीधर पाठक

पैमाइश

७—फील्ड बुक

[ले०-श्री० नन्दलाल जी तथा श्री० मुर्लीधर जी, एल. ए. जी.]

यह एक कापी होती है जो क़रीब ७ इन्च लम्बी और ४ इन्च चौड़ी होती है। पन्ने चौड़ाईमें सिले होते हैं और हर पन्नेके बीचमें दो सुरखीकी लकीरें क़रीब $\frac{३}{४}$ इन्चकी दूरीपर इस तरहसे खिंची होती हैं कि वह पन्नेकी लम्बाईको ३ भागोंमें बांट देती हैं। यह किताब पैमाइशके समय मौक़े की याद दाश्त लिखने और नज़री ख़ाका बनानेके काममें आती है। इसके प्रयोगसे काममें बड़ी सुगमता होती है। एकतो काम बहुत जल्दी होता है और जरीब खींचने-

वालोंका समय ख़राब नहीं होता। दूसरे ऐसे मौक़े की पैमाइशकी याददाश्त लिखनेके काम आती है जिनका नक़शा बिना किसी विशेष भाग-के नापे हुये नहीं बन सकता है। तीसरे यदि फील्डबुक होशियारीसे बनाई जाय तो नपे हुये खेतोंका कच्चा चित्र बनाकर यह जांच की जा सकती है कि मौक़ेका काम ठीक हुआ या नहीं। इस प्रकार फ़ील्ड बुकमें नपे हुये खेतोंका एक कच्चा चित्र और उनकी ठीक नाप लिखी होती है, क्योंकि पैमाइशका मूल नियम यह है कि दो स्थिर स्थानोंके बीचमें एक सीधी जरीबी लैन लें और उसके दाएं बाएं जो कोने या मेंड़के मोड़ हों उन सबके स्थान जरीबी लैनपर लम्ब डालकर निश्चित करलें। इसी उद्देश्यसे फील्ड-बुकके बीचके खानेमें जरीबी लैनपर की लम्बाई और दाएं बाएं ख़ानोंमें दाएं बाएं ओरके लम्बों-की लम्बाई लिखते हैं। फील्डबुकमें आखिरी सफ़े-के नीचेसे लिखना शुरु करते हैं और ऊपरकी तरफ लिखते जाते हैं।

यह बतलानेसे पहले कि फ़ील्ड बुक के प्रकार-की होती है और उनको कैसे बनाते हैं यह उचित प्रतीत होता है कि एक खेतकी पैमाइश करके क्रियात्मक रूपसे फ़ील्डबुक बनाकर दिखा दी जाय। मानलो कि किसी खेत अ य त ब ट ज द स च ह म र क ल प ष की पैमाइश करके फ़ील्डबुक बनानी है। इसलिए इस खेतके दो आमने सामनेके कोनों अ द पर झंडियां गाड़ दीं और इन झंडियों-के बीचमें एक सीधी जरीबी लैन अ द मानकर नीचे दी हुई रीतिसे पैमाइश आरंभ की और उसके साथ ही साथ फ़ील्ड्बुकमें भी लिखते गये। अ विन्दुसे द की सीधमें जरीब डालनेपर मालूम हुआ कि अ से एक सीधी मेंड़ बाएंको गई है। फ़ील्ड बुकके बीचके ख़ानेमें बिलकुल नीचे शून्यका चिन्ह बनाया, जिसका अभिप्राय यह है कि यह हमारे चलने अर्थात् नाप आरंभ करनेका स्थान है। अब जरीबी लैनपर ४५ कड़ीकी दूरी पर दूसरी मेंड़ दाईं ओरको मिलती है। इसलिए बीचके ख़ानेमें ४५ लिख लिया, आगे चलकर दाहिनी ओर प और बाईं ओर य कोने मिलते हैं। दोनोंके लम्ब १२० कड़ीके विन्दु पर उठे हैं अर्थात् अ से १२० कड़ीकी दूरीपर त्र विन्दु परसे। इसलिए बीचके खानेमें १२० का अंक लिखकर उसके बराबर ही दाएं और बाएं खानोंमें ६२ और ७० के अंक लिख दिये और चूँकि दाईं ओरका लम्ब ६२ कड़ीका और बाईं ओर का ७० कड़ीका है, इसलिए दाईं और बाईं ओरके लम्ब लगभग इसी अनुपातमें बना दिये। फिर जरीबी लैनपर लम्ब उठनेके स्थान और दोनों लम्बोंकी लम्बाई फ़ील्डबुकमें लिखकर खेतकी ओरको देखा तो मालूम हुआ कि खेतकी मेंड़ ष, प और अ, य पर होकर गुज़-रती है, इसलिए फील्डबुकमें कच्चा चित्र बनानेके लिए ष, प और अ य को सरल रेखाओंसे मिला दिया। आगे बढ़ने पर १८७ कड़ी पर ६० कड़ीका लम्ब दाईं ओर और १६२ कड़ीपर ६० कड़ीका लम्ब बाईं ओर उठा है। इसलिए बीचके खानेमें १८७ और १६३ लिखकर पहिलेके बराबर दाएं ख़ानेमें ६० और दूसरेके बराबर बाएं ख़ानेमें ६० लिखा और खेतकी मेंड़ देखकर प को ल से और य को त से मिला दिया। आगे बढ़ने पर दो कोनों क और ब पर दो मेंड़के मोड़ दिखाई पड़ते हैं। इनके लम्ब जरीबी लैनपर उठाये तो २३५ और २४० कड़ीकी दूरी पर उठे। इसीलिए २३५ और २४० लिख, लम्बोंकी प्रदर्शक रेखाएं खींच, लम्बों-की लम्बाइयां दोनों तरफ लिख दीं। इस प्रकार फील्डबुकमें क और ब के स्थान मालूम हो जाने पर ल, क और त, ब को मिला दिया। (चित्र १२)

आगे बढ़ कर २५० कड़ीपर बाईं ओर ट कोनेका लम्ब ८० कड़ीका उठा है, इसलिए ऊपर-की विधिसे २५० और ८० फ़ील्ड्बुकमें लिखकर ट विन्दुको ब से मिला दिया। फिर २७२ कड़ी पर बाईं ओर ३५ कड़ीका लम्ब र कोनेसे उठा। इसको भी फ़ील्ड्बुकमें लिखकर र, क को मिला दिया।

इससे और आगे बढ़ कर खेतकी दाईं ओर-की मेंड़ हमारी जरीबी लैनको ३०० कड़ी पर काटती है। यह कटान म फ़ील्डबुकमें लिखकर देखा कि यह पिछले किन किन विन्दुओंसे मिलता है। मेंडके अनुसार र, म को मिला दिया। आगे बढ़ कर ३३६ कड़ी पर दूसरा कटान मिला।

इसकी दाईं ओर च कोनेसे ३२ कड़ीका और बाईं ओरके कोने से ४१ कड़ीका लम्ब उठा है। इनको भी फ़ील्डबुकमें लिखा और विन्दुओंकी रेखासे लम्ब बनाकर इनके सिरोंको खेतकी मेंड़के अनुसार मिला दिया अर्थात् म को ह से और ह को च से मिला दिया और चूंकि मेंड़ ह च विन्दु-ओं वाली रेखापर होकर गुज़रती है तो इन विन्दुओंकी रेखाको जो लम्ब बनाती थीं लकीरसे पक्का कर दिया अर्थात् ३३६ कड़ी पर दोनों ओर ३२ व ४१ कड़ीके पक्के लम्ब उठे।

नोट—यहांपर यह बात ध्यान रखनेकी है कि यदि खेतकी मेंड़को देखकर कटान और लम्ब जो एक दूसरेसे ज़मीनपर मिलते हैं फ़ील्डबुकमें उसी समय मिला दिये जायँ तो अशुद्धता कदापि न होगी।

आगे बढ़ कर ३६० कड़ीपर १०० कड़ीका लम्ब ज कोनेसे बाईं ओर और ४०० कड़ी पर ३० कड़ीका लम्ब दाईं ओर स कोनेसे उठा। इसलिए इनको फ़ील्डबुकमें लिखकर लम्बोंको विन्दुओंकी रेखासे बनाकर इनके सिरोंको खेतकी मेंड़के अनुसार मिला दिया अर्थात् ज को ट से और स को च से मिलाया।

अंतमें ४३८ कड़ी पर द कोना मिला। यह कोना दोनों ओर स और ज से मिलता है, इसलिए इस-को मिला दिया।

इस प्रकार खेतकी पूरी पैमाइश भी हो गई और उसका कच्चा चित्र भी फ़ील्डबुक पर तैयार हो गया। जरीबी लैनपर जो लम्ब उठे हैं और जहांसे उठे हैं उन सबकी लम्बाइयां अलग अलग लिखी गई हैं। इन सबको पैमानेके अनुसार प्लाट करनेसे खेतका नक़शा बन जायगा।

इस खेतकी पैमाइश दो तरहकी फ़ील्डबुकमें लिखकर दिखाई गई है। दो लकीरों वाली फ़ील्ड-बुक बनानेमें एक तो यह कठिनाई होती है कि जरीबी लैनकी लम्बाई लिखनेके लिए $\frac{3}{4}$ इंच चौड़ा खाना रखनेसे खेतके चित्रमें कुछ भेद पड़ जाता है अर्थात् बिलकुल वैसा नहीं बनता जैसा खेत होता है। दूसरी कठिनाई यह है कि इस प्रकारकी फ़ील्डबुकमें केवल एक लैनकी पैमाइश लिखी जा सकती है। त्रिभुज रूपमें पैमाइश करनी हो तो प्रत्येक भुजाकी फ़ील्डबुक अलग अलग लैनों-पर बनानी पड़ती हैं। एक दूसरेसे सम्बद्ध नहीं लिखी जा सकती। इसके अतिरिक्त जरीबी लैनों-के आदि और अन्तके स्थानों, कटानों और लम्बों-पर सूचना लिखनी पड़ती है कि वह दूसरी लैन-से किस विन्दु पर मिलेंगे।

इन सब कठिनाइयोंके दूर करनेके लिए एक लैनकी फ़ील्डबुक काममें आती है। इसमें केवल एक सरल रेखा खींचकर उसे जरीबी लैन मान लेते हैं। इसमें जरीबी लैनकी लम्बाई और लम्बों-के अंकोंके मिल जानेका भय रहता है। फिर भी यदि सावधानीसे काम किया जाय तो नपे हुए खेतका चित्र बिलकुल वैसा ही बनेगा। इसके सिवाय त्रिभुजोंकी पैमाइशकी सब लैनोंकी फील्ड-बुक एक दूसरे से सम्बद्ध लिखी जा सकती है। जरीबीलैनकी लम्बाईके अंक और लम्बोंके अंक लिखनेमें यह ध्यान रखते हैं कि जरीबीलैनकी लम्बाई तो उसके पास ही, जिस तरफ लम्ब खिंचा है उसकी दूसरी तरफ, लिखी जाती है और लम्बकी लम्बाई लम्बके परले सिरेपर लिखते हैं, जैसा चित्र ११से ज्ञात हो जायगा। १८७ कड़ी पर लम्ब जरीबीलैनकी दाईं तरफ खिंचा है। इसीसे १८७ बाईं तरफ लिखा और ६० का अंक लम्बके परले सिरे ल पर लिखा। इस प्रकार जरीबी लैनपर नापी हुई लम्बाइयां, लम्बोंकी लम्बाइयोंसे नहीं मिल सकतीं।

अब एक ऐसे नपे हुए खेतकी फ़ील्डबुक हम नीचे लिखते हैं जिसके कोने बहुत दूर होनेके कारण केवल एक लैनकी पैमाइश करके उस-पर सब कोने लम्बों द्वारा निश्चित नहीं किये जा सकते। इसीलिए उस खेतकी तीन लैनोंपर पैमाइश की गई है और उसकी दोनों प्रकारकी फ़ील्डबुकें अर्थात् दो लैन और एक लैनवाली अलग अलग लिखते हैं, जिससे पाठकोंको पूरी तरह यह साबित हो जाय कि कौनसी फ़ील्डबुक काम-ट त ड में लानेमें वास्तवमें सुगमता होगी। मानलो कि अ ब ज द ह ल म न स ड त ट र क प एक खेत है जिसकी पैमाइश करनी है। यह पहिले ही बता चुके हैं कि १५० कड़ीसे अधिक लम्बाईका लम्ब न उठाना चाहिये और इस खेतके कोने एक दूसरेसे बहुत दूरीपर हैं। इसलिए कुल खेतकी एक लैनपर पैमाइश करनेके स्थानपर उसे एक त्रिभुज अ द स में घेरकर तीन लैनों अ द, द स, स अ पर पैमाइश की, जिसकी दोनों प्रकार की फ़ील्डबुकें नीचे लिखी गई हैं।

पहिले अ स लैनकी पैमाइश अ विन्दु से आरम्भ की गई और जैसे पहिले बताया जा चुका है अ से स तक जरीब डालनेमें अ स लैन पर प-क–त–र–ट–ड कोने लम्ब लेकर निश्चित किये। उसके पाश्चात् स द लैन पर पैमाइश करके न, म, ल, ह कोने उसी प्रकार निश्चित किये। अंतमें तीसरी लैन द अ की पैमाइश करके ज, ब कोण निश्चत किये और इस प्रकार कुल खेतकी पैमाइश पूरी हो गई। अब यह निश्चय करनेके लिए कि पैमाइश ठीक हुई है द से उसके सामनेके भुजा अ स पर च तक की दूरी भी नाप ली गई इस दूरीको यइलाइन (?) कहते हैं जिसका मतलब आगे चलकर समझाया जायगा। फ़ील्डबुक की ओर देखनेसे पाठकोंको ज्ञात होगा कि एक लैनवाली फ़ील्डबुकमें खेतका चित्र संपूर्ण बन गया है परन्तु दो लैनोंवाली फ़ील्डबुकमें लम्बों और कटानोंके मेल पर सूचना लिखने पर भी खेतका चित्र पूरा नहीं होता। इसी प्रकार चतुर्भुजवाले खेतकी भी फ़ील्डबुक बन सकती है।

नोट—फ़ील्डबुक भरते समय यह सदा ध्यान रखना चाहिये कि पैमाइश करनेवाला उस ओर को मुहं करके खड़ा हो जिस ओर को जरीब जा रही है और जो लम्ब उसके दाएँ हाथकी ओरसे उठें वही जरीबी लैनकी दाईं ओर को और जो लम्ब उसके बाएँ हाथकी ओरसे उठें वही ज़रीबी लैनकी बाईं ओरको खींचे जायं।
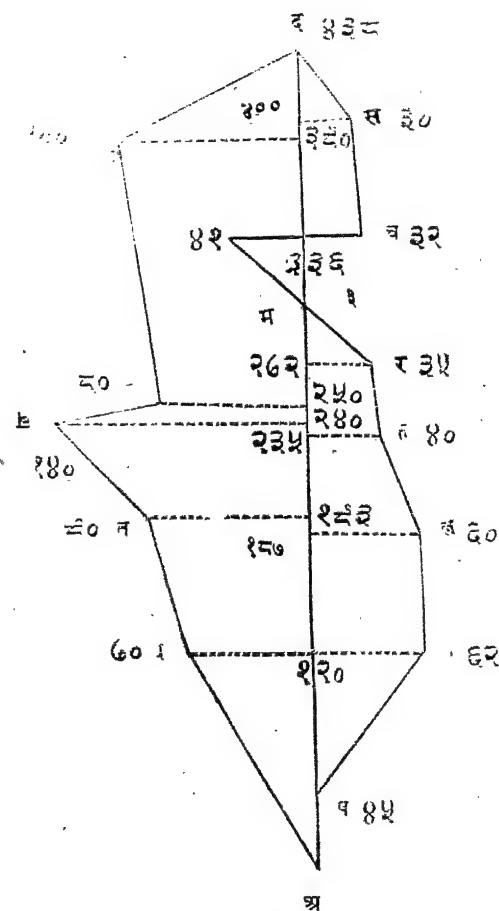
चित्र ११—एक लैनवाली फ़ील्डबुक
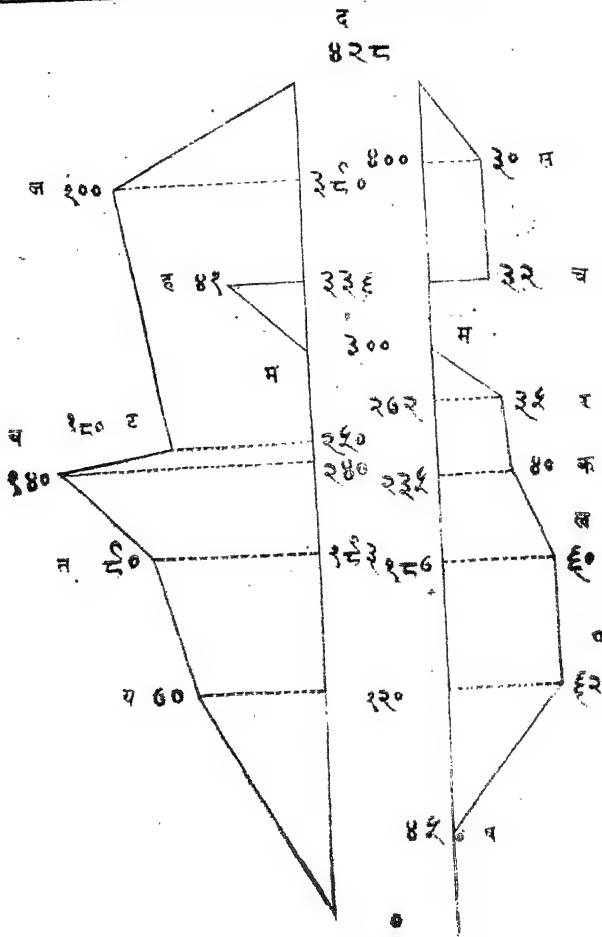
चित्र १२—दो लैनवाली फ़ील्ड बुक
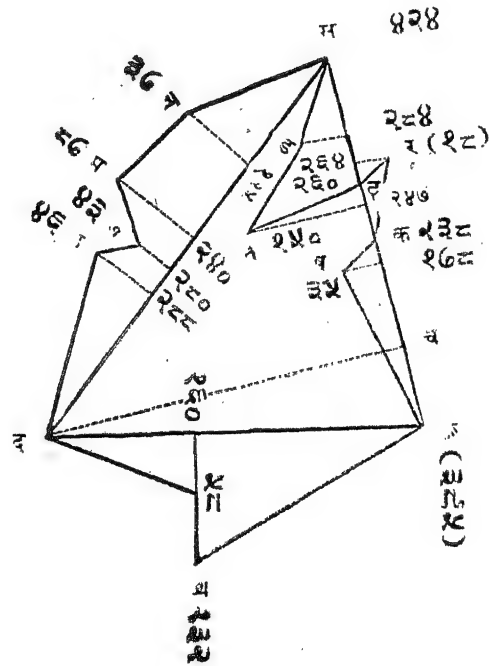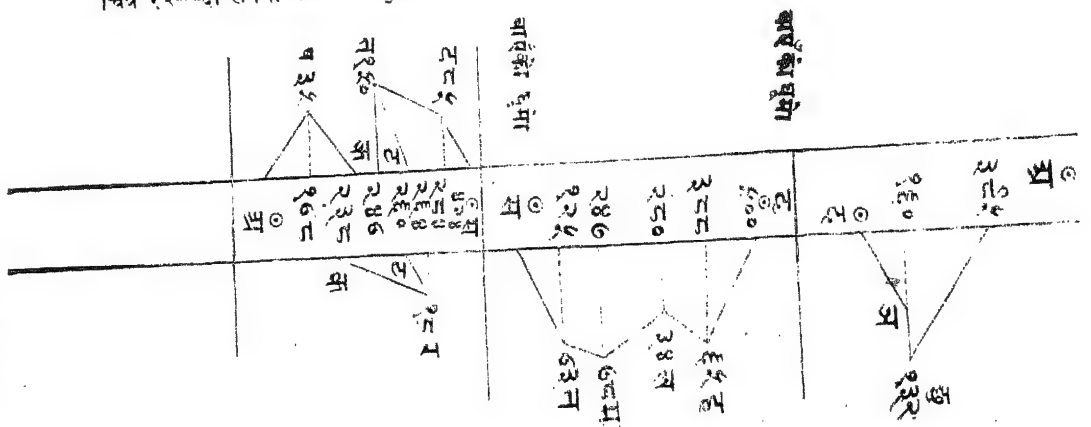
चित्र १३—तीन लैनकी पमाइश

चित्र १४—दो लैनवाली फ़ील्डबुक

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad

---

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

भाग—८

तुला—मीन १९७५

October 1918—March 1919.

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

अर्थ शास्त्र (Economics)

औद्योगिक रसायन (Industrial Chemistry)

कृषि शास्त्र (Agriculture)

गणित (Mathematics)

पैमाइश (Surveying)

जीवाणु शास्त्र (Bacteriology)

प्रकाश (Light)

दर्शन (Philosophy)

भौतिक शास्त्र (Physics)

स्वास्थ्य रक्षा (Hygeine)

होमियो पैथी (Homeopathy)

जीवनी (Biography)

गंगा-पुस्तकमाला

का हिंदी-जगत् खूब स्वागत कर रहा है, क्योंकि इसके ग्रंथ सुयोग्य लेखकोंके लिखे हुए, टाइप, कागज़, छपाई, सफ़ाई सभी बातोंमें दर्शनीय एवं सुंदर, मनोभिराम जिल्द और चित्रोंसे विभूषित होते हैं। आइये, ॥) प्रवेश शुल्क भेजकर इसके स्थायी ग्राहक हो जाइये और १५) सैकड़ा कमीशन पर इसके सब ग्रंथ प्राप्त कीजिये।

इसमें यह ग्रंथ निकल चुके हैं—

१. हृदयतरंग-नव्य साहित्य सेवी पंडित दुलारेलालजी भार्गव रचित। मूल्य सजिल्द ।=)॥ सादी ।)

२. किशोरावस्था—हिंदीके सुयोग्य लेखक श्रीयुत गोपालनारायणजी सेन सिंह, बी० ए० लिखित। मूल्य सजिल्द ॥=) ; सादी ॥)

३. खांजहां। मूल्य सजिल्द १=) ; सादी ॥।=)

यह ग्रंथ शीघ्र ही प्रकाशित होंगे—

४. गृहप्रबंध-प्रो० रामदासजी गौड़, एम०ए०

५. द्रौपदी (जीवन-चरित)—पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

६. भूकंप (अपने ढंगका पहला ग्रंथ)-बा० रामचद्र वर्मा

७. मूर्ख-मंडली (प्रहसन)—पं० रूपनारायण पांडेय

८. गृह-शिल्प—पं० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए०

स्फुट ग्रंथ

सुख तथा सफलता—श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव, बी० ए०। इस पुस्तक को सुख तथा सफलता प्राप्त करने का साधन समझिये। मूल्य सजिल्द ।~) ; सादी =)

सुघड़ चमेली—लेखक, तफ़रीह आदि पत्रोंके भूतपूर्व संपादक पंडित रामजीदास भार्गव। मूल्य =) मात्र

भगिनीभूषण—पं० गोपालनारायण सेन सिंह, बी० ए० लिखित। मूल्य =)

पत्रांजलि—मूल्य ।=)

पत्र व्यवहार करने का पता है

श्रीत्रिलोकनाथ भार्गव बी० ए०

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

बहुमूत्रनाशक

बहुमूत्र जैसा बुरा रोग है इसे बतलानेकी ज़रूरत नहीं। मधुमेह आदि रोग उत्पन्न होकर पिलव दिमाग़की कमज़ोरी, सिरमें चक्कर आना, पिंडली, पीठ आदिमें दर्द, शरीरकी निर्बलता आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। हमारी, औषधिके सेवनसे यह सब शिकायतें शीघ्र ही दूर हो जाती हैं। बहुत पुराने पुराने रोगी आराम पा चुके हैं, जिनके प्रशंसा पत्र हमारे पास हैं। एकको नकल नीचे लिखते हैं। एक बार मंगाकर परीक्षा अवश्य कीजिये। मूल्य

२१ खुराकका २)

मंगानेका पता—

मैनेजर, रसशाला

कंखल (जि० सहारनपुर)

नकल सर्टिफिकेट

वैद्यराज जनाब पं० रामचन्द्रजी साहब

जो दवा आपने मुझको दर बारे शिकायत ज्यादा पेशाब आनेके दी थी जिसकी वजहसे रातको एक घंटे तक मुतवातिर सो नहीं सकता था और यह शिकायत मुझको अरसे चार सालसे थी और कमज़ोर भी बहुत हो गया था। आपकी दवाके एक हफ़ता इस्तैमालसे सब शिकायत जाती रही और अब मैं बिलकुल तन्दुरुस्त हूं। लिहाज़ा यह ख़त आपको शुक्रियेके तौरसे लिखता हूं।

टीकम सहाय असिस्टैंट

२६-१२-१८ स्टेशन मास्टर

हरिद्वार

विज्ञान परिषद्-प्रयाग द्वारा प्रकाशित अपने ढंगकी अनूठी पुस्तकें:—

विज्ञान परिषद् ग्रंथ माला, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट् द्वारा सम्पादित।

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० रामदास गौड़, एम० ए० तथा सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मूल्य ।)

२—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० महावीर-प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

३-मिफताह-उल-फ़नून-अनु० प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, ... ।)

४—ताप-ले० प्रेमबल्लभ जोषी, बी. एस-सी. ।)

५—हरारत [तापका उर्दू अनुवाद]-अनुवादक प्रोफ़ेसर मेहदीहुसेन नासिरी, एम.ए. ।)

विज्ञान ग्रन्थ माला, प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

६—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य-ले० सालिग्राम वर्मा, ... ―)

७—केला-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ―)

८—सुवर्णकारी-ले० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

९—चुम्बक-ले० सालिग्राम भार्गव, ... एम. एस-सी., ... ।≈)

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा-ले० बसीश्वर सेन, अनु० महावीरप्रसाद, बी. एस-सी., एल.टी, विशारद, ... ।≈)

११—क्षयरोग-ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस ... ―)

१२—दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रोफेसर रामदास गौड़, एम.ए. ―)

१३—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० गोपालनारायण सेन सिंह, बी. ए. ।)

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S

Telegram to be addressed thus :—
"DR. BHARGAVA", ALLAHABAD.

Ladies and Gentlemen desirous of gaining my advice in any case of Diseases, whether Acute or Chronic, should give a plain statement of their afflictions, when contracted, the present symptoms, &c., in fact everything should be made known to me precisely as would occur by personal interview.

All Letters will be treated as strictly Private and Confidential.

Invalids, on a visit to Allahabad, may call on me whenever convenient.

Office Hours, 6 to 8 in the morning and 4 to 5 in the Evening.

ADDRESS :—

DR. S. P. BHARGAVA, L. H. P., F. T. S.,
235, BAHADURGANJ, ALLAHABAD, U. P.
or VIJNANA CHARITABLE DISPENSARY,
626, *Katra, Allahabad.*

प्रकाशक—पं० सुदर्शनाचार्य्य, विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लीडर प्रेस, इलाहाबाद में सी. वाई. चिन्तामणि द्वारा छपा।